ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

श्री पंचास्तिकायसंग्रह प्रवचन

(भाग - 4)

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत **श्री पंचास्तिकायसंग्रह** ग्रन्थ पर **अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** के गाथा 147 से 173 तक अक्षरशः मंगल प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

विक्रम संवत 2078 | **वीर संवत 2548** | **ई. सन 2022**

—: प्रकाशन :—

दशलक्षण महापर्व माघ शुक्ल चतुर्दशी
(उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म दिन) 15 फरवरी 2022
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

अहो उपकार जिनवर का, कुन्द का ध्वनि दिव्य का,
जिन-कुन्द ध्वनि गाथा, अहो श्री गुरु कहान का॥

परमपूज्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महासमर्थ आचार्य भगवन्त द्वारा प्रणीत पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ जिनसिद्धान्त और जिनअध्यात्म का प्रवेश द्वारा है। इसमें जिनागम में प्रतिपादित द्रव्य-व्यवस्था और पदार्थ-व्यवस्था का संक्षिप्त में प्राथमिक परिचय प्रदान किया गया है।

उक्त दोनों व्यवस्थाओं की यथार्थ जानकारी बिना जैन सिद्धान्त और जैन अध्यात्म में प्रवेश पाना सम्भव नहीं है, इससे यह पंचास्तिकाय ग्रन्थ सर्व प्रथम स्वाध्याय करनेयोग्य शास्त्र है।

आचार्य जयसेनदेव के कथनानुसार इस शास्त्र की रचना शिवकुमार महाराज इत्यादि संक्षिप्त रुचिवाले शिष्यों को समझाने के लिये हुई है।

महाश्रमण तीर्थंकरदेव की वाणी दिव्यध्वनि का-प्रवचन का सार ही संक्षिप्त में इस शास्त्र में समायोजित किया गया है।

नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग प्रपंच चूलिका अधिकार में 147वीं गाथा से बन्ध तत्त्व का स्वरूप का कथन प्रारम्भ होता है। 148वीं गाथा में बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है। तत्पश्चात् की तीसरी (149) गाथा में बन्ध तत्त्व का समापन करते हुए आचार्य श्री समझाते हैं कि 'जहाँ रागादि नहीं वहाँ बन्ध ना...'

बन्ध के निरूपण के पश्चात् गाथा 150 से 153, ऐसे चार गाथासूत्रों में द्रव्यमोक्ष-भावमोक्ष के प्रकरण में भावकर्म, मोक्ष का प्रकार तथा द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत परम संवर का प्रकार समझाया है, तथा द्रव्य कर्ममोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन प्रस्तुत किया है।

मोक्षतत्त्व की अन्तिम गाथा अत्यन्त भावगर्भित है।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।

चार अघातियारूप कर्म पुद्‌गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह द्रव्यमोक्ष है। इसके साथ मोक्ष पदार्थ का व्याख्यान समाप्त होता है।

इसी प्रकार में पूर्व के समुच्चय प्रकरण का उपसंहार करते हुए आचार्यदेव सूचना देते हैं कि और मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नौ पदार्थ का व्याख्यान भी समाप्त हुआ।

इसके पश्चात् 'मोक्षमार्गप्रपंच चूलिका' आरम्भ होती है।

यह अधिकार बीस गाथाओं में पूरा होता है।

परम अध्यात्मरस से सभर यह 'चूलिका' ही पंचास्तिकायसंग्रह का अत्यन्त प्रयोजनभूत सार है। वस्तु व्यवस्था के प्रतिपादक इस सैद्धान्तिक ग्रन्थ के लिये आध्यात्मिकता प्रदान करनेवाली यह चूलिका है।

इसमें स्वचारित्र और परचारित्र इस चारित्र के ये भेद समझाये हैं, उन्हें ही स्वसमय और परसमय भी कहा गया है। 156वीं गाथा में इन दोनों की मूल व्याख्या दी गयी है।

वह इस प्रकार है—

'स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं
परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति।'

अर्थात् स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है और परद्रव्य में सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है।

'स्वचारित्र मोक्षमार्ग है और परचारित्र बन्धमार्ग है' इस तथ्य की स्पष्टीकरणरूप चर्चा 157-158 गाथा में की गयी है।

पारमेश्वरी तीर्थ प्रवर्तना दोनों नयों के आधीन होने से साधन-साध्यरूप व्यवहार और निश्चय दोनों प्रकार से मोक्षमार्ग का निरूपण किया गया है, जो मूल में से गहराई से समझने योग्य है, और अनुकरणीय है। व्यवहार मोक्षमार्ग को साधनरूप से निरूपित करते-करते उसके प्रति बारम्बार सावधानी रखना भी आवश्यक है, ऐसी समझ दी है।

आचार्यदेव फरमाते हैं कि 'अरिहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन, मुनिगण और ज्ञान के प्रति भक्ति सम्पन्न जीव बहुत पुण्य बाँधता है परन्तु वह वास्तव में कर्म का क्षय नहीं करता (गाथा-166) आगे की मूल गाथा का हरिगीत नित्य आडोलन करनेयोग्य है—

अणुमात्र जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति राग है।
हो सर्व आगमधर भले जाने नहीं निजभक्ति को।।१६७।।

तत्पश्चात् की 168वीं गाथा में तो ग्रन्थकर्ता, अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की सन्तति का कथन करते हुए फरमाते हैं कि '**अनर्थ सन्तति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।**'

अधिक क्या कहना? 'संयमतपसंयुक्त होने पर भी नौ पदार्थों और तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का जुड़ान वर्तता है और सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है उस जीव को निर्वाण दूरतर (विशेष दूर) है। बाद की गाथा में मात्र अरहन्त आदि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होता जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय, उसका प्रकाशन करते हुए आचार्य समझाते हैं कि सुचिरकाल पर्यन्त रागरूपी अंगारों से सिंकता हुआ अन्दर में संतप्त-व्यथित होता है।

शास्त्र के अन्त में साक्षात् मोक्षमार्ग के सार—सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार करते हुए आचार्यश्री फरमाते हैं—

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो।।१७२।।

विस्तार से बस होओ। जयवन्त वर्तो वीतरागपना कि जो साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्र तात्पर्यभूत है।

इस गाथा की टीका में आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने व्यवहाराभासी और निश्चयाभासी का जो मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, उसे ही आधार बनाकर आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार में इस प्रकरण का विशेष स्पष्टीकरण किया है।

शास्त्र की अन्तिम गाथा में प्रवचन की भक्ति से प्रेरित ऐसे मैंने मार्ग की प्रभावना के लिये प्रवचन के सारभूत 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र कहा है, ऐसी सूचना करते हुए अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता शास्त्रकर्ता श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव शास्त्र पूर्ण करते हैं।

आध्यात्मिक सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने इस सभी गाथाओं के प्रवचनों में आगम के सारभूत अध्यात्म निचोड़ निकालकर व्याख्यान किये हैं। उनमें यह चौथा भाग सर्व आत्मार्थी भव्यात्माओं के करकमल में प्रस्तुत है, इसमें कुल 31 अक्षरशः प्रवचन प्रकाशित करते हुए श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट अत्यन्त हर्ष का अनुभव करता है। पंचास्तिकाय संग्रह के प्रवचनों की इस भाग में पूर्णाहुति होती है।

इन सभी प्रवचनों को सी.डी. से कम्प्यूटराईज्ड (गुजराती भाषा में) करने का कार्य आत्मार्थी श्रीमती बीनाबेन चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिन्हें सी.डी. से मिलान करने का कार्य आत्मार्थी भाईश्री डॉ. देवेन्द्रभाई दोशी, सुरेन्द्रनगर और चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज को भी लाभ प्राप्त हो इस उद्देश्य से इस प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा सम्पन्न हुआ।

संस्था सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com में शास्त्र भण्डार में पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचनों में उपलब्ध है।

सभी भव्यात्मायें इस ग्रन्थ का निज हित के लक्ष्य से स्वाध्याय कर आत्महित साधें, ऐसी भावना के साथ....

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है—

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का

प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के

समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
४६	२१.१०.१९६४	१४७–१४८	००१
४७	२३.१०.१९६४	१४८–१४९	०२२
४८	२४.१०.१९६४	१४९–१५१	०४१
४९	२५.१०.१९६४	१५०–१५१	०६४
५०	२६.१०.१९६४	१५०–१५१	०८२
५१	२७.१०.१९६४	१५२–१५३	०९९
६४	१४.०५.१९७०	१५४	११९
६५	१५.०५.१९७०	१५४–१५५	१३९
६६	१६.०५.१९७०	१५५–१५६	१६०
६७	१७.०५.१९७०	१५५–१५६	१८०
६८	१८.०५.१९७०	१५७–१५८	२०२
६९	१९.०५.१९७०	१५८–१५९	२२२
७०	२०.०५.१९७०	१५९	२४५
७१	२१.०५.१९७०	१६०	२६४
७२	२२.०५.१९७०	१६१	२८४
७३	२३.०५.१९७०	१६१–१६२	३०४
७४	२४.०५.१९७०	१६२–१६३	३२२
७५	२६.०५.१९७०	१६३–१६४	३४२
७६	२६.०५.१९७०	१६५–१६६	३६५
७७	२७.०५.१९७०	१६७–१६८	३८७
७८	२८.०५.१९७०	१६८–१७०	४०५
७९	२९.०५.१९७०	१७०–१७१	४२५
८०	३०.०५.१९७०	१७२	४४६
८१	३१.०५.१९७०	१७२	४७४
८२	०१.०६.१९७०	१७२	४९१
८३	०२.०६.१९७०	१७२	५११
८४	०४.०६.१९७०	१७२	५२९
८५	०५.०६.१९७०	१७२	५४८
८६	०६.०६.१९७०	१७२	५६८
८७	०७.०६.१९७०	१७२	५८७
८८	०८.०६.१९७०	१७३	६०७

ॐ

परमात्मने नमः

श्री पञ्चास्तिकायसंग्रह प्रवचन

भाग–४

गाथा - १४७

अथ बन्धपदार्थव्याख्यानम् ।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेह हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।।१४७।।

यं शुभमशुभमुदीर्णं भाव रक्तः करोति यद्यात्मा।
स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन।।१४७।।

बन्धस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यदि खल्वयमात्मा परोपाश्रयेणानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति । तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः, तन्निमित्तेन शुभाशुभकर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ।। १४७ ।।

आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभभाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को।।१४७।।

अन्वयार्थ :— [यदि] यदि, [आत्मा] आत्मा, [रक्तः] रक्त (विकारी) वर्तता हुआ, [उदीर्ण] उचित, [यम् शुभम् अशुभम् भावम्] शुभ या अशुभभाव को [करोति] करता है, तो [सः] वह आत्मा [तेनः] उस भाव द्वारा (-उस भाव के निमित्त से) [विविधेन पुद्गलकर्मणा] विविध पुद्गलकर्मों से [बद्धः भवति] बद्ध होता है।

टीका :- यह, बन्ध के स्वरूप का कथन है।

यदि वास्तव में यह आत्मा अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से उदित (-प्रगट होनेवाले) शुभ या अशुभभाव को करता है, तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है। इसलिए यहाँ (ऐसा कहा है कि), मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभपरिणाम, वह भावबन्ध है और उनके (-शुभाशुभ-परिणाम के) निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन (-विशिष्ट शक्तिसहित एकक्षेत्रावगाहसम्बन्ध), वह द्रव्यबन्ध है॥१४७॥

प्रवचन-४६, गाथा-१४७-१४८, आसोज शुक्ल पूर्णिमा, बुधवार, दिनांक-२१-१०-१९६४

इसमें नौ पदार्थ का कथन चलता है। नौ पदार्थ किसे कहना, भगवान ने जो नौ पदार्थ का स्वरूप कैसा जाना? और कैसा कहा, उसका यहाँ स्पष्टीकरण अधिक है। पश्चात् उसका-मोक्षमार्ग का वर्णन बाद में चलेगा। यह अपने चल गया है। अपने निर्जरा अधिकार तक चला है।

पहला जीव अधिकार—जीव पदार्थ की व्याख्या आ गयी, अजीव की व्याख्या आ गयी, पुण्य-पाप की, आस्रव की, संवर और निर्जरा, यह सब व्याख्या आ गयी है। जीव और अजीव दो द्रव्य हैं और पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा इनकी-जीव की विकारी-अविकारी पर्याय है और पुद्गल में भी यहाँ कर्म की अवस्था का, पर्याय का होना, वह जड़ की अवस्था है, यह सब आ गयी है।

अब बन्धपदार्थ का व्याख्यान है। १४७ (गाथा)। भावबन्ध और द्रव्यबन्ध किसे कहना? १४७ (गाथा)।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेह हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।।१४७।।

आतमा यदि मलिन हो करता शुभाशुभभाव को।
तो विविध पुद्गल कर्म द्वारा प्राप्त होता बन्ध को।।१४७।।

इसकी टीका—**यह, बन्ध के स्वरूप का कथन है।** भावबन्ध की पहली व्याख्या।

भावबन्ध अर्थात् क्या? और भावबन्ध, वह दु:खरूप है। भावबन्ध वह दु:खरूप है। आत्मा को अहितरूप है। वह भावबन्ध किसे कहना और उसका क्या स्वरूप है, इसका वर्णन है।

यदि वास्तव में यह आत्मा अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा... क्योंकि जीव जो विकारी भाव करता है, उसमें उसे स्वस्वभाव का आश्रय नहीं है। स्वस्वभाव के आश्रय से कहीं विकारी भाव नहीं होते। इसलिए कहा कि **यह आत्मा,...** 'यह', ऐसा कहकर आत्मा सिद्ध किया। यह आत्मा वस्तु है, अनादि-अनन्त तत्त्व-पदार्थ है।

यह आत्मा अनादि-अनन्त पदार्थ है। वह अन्य अर्थात् साथ में पुद्गलकर्म-पुराने कर्म पड़े हैं, वह पुराने कर्म की बात है। नये (कर्म) की द्रव्यबन्ध की बात बाद में आयेगी। **पुद्गलकर्म के...** अवलम्बन द्वारा-**आश्रय द्वारा...** अनादि काल से **रक्त रहकर,...** भगवान आत्मा अपना स्वरूप ज्ञान-आनन्द आदि शान्त, उसका मूल स्वभाव तो अनाकुल आनन्द और शान्त है। यह आत्मा है, उसका मूल अन्तर स्वभाव शाश्वत् असली अनाकुल शान्त और आनन्द वास्तविक स्वभाव पदार्थ में विकार और दु:ख नहीं हो सकता। ऐसा आत्मतत्त्व अपना स्वभाव शान्ति, आनन्द को चूककर, अन्य कर्म अन्दर जो दूसरी चीज़ है - परमाणु, जड़, मिट्टी। पूर्व के बँधे हुए जड़कर्म, उसके **आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर...** उसमें अनादि से लीन रहा हुआ है। कहो, समझ में आया?

ऐसा आनन्दस्वरूप, उसका सच्चिदानन्द सिद्ध परमानन्द शुद्ध (स्वरूप) उसमें अनादि से अज्ञानी लीन नहीं है। समझ में आया? अपना अन्तरस्वभाव निज शाश्वत् असली स्वभाव शान्त आनन्द और ज्ञायकभाव ज्ञान और आनन्द का स्वरूप, उसमें कोई अनादि काल से अज्ञानी एक समय भी उसके आसक्तपने स्वभाव में उसका रक्तपना नहीं है। इसलिए वह **(-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त रहकर...** पर में लीन-लीन अपना ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव छोड़कर, अनादि कर्म के आश्रय से लीन रहकर, **कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से...** कर्म का जो पाक, उसका जो विशेष भाव, उसके सहितपने वर्तने से, सहितपने वर्तने से। स्वभाव के सहितपने न वर्त

कर, अपना आनन्द शान्तरस है, उसके सहित / युक्तपने न वर्तते हुए, कर्म के पाक के युक्तपने वर्तना, उसके सहित वर्तना। समझ में आया?

कर्मोदय का जो पाक, उसके सहित, उसके ऊपर लक्ष्य करके, अनादि से मोह और राग-द्वेष के परिणामरूप से वर्त रहा है। यह मोह और राग-द्वेष के भाव, वह भावबन्ध है। वह दु:खदायक है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रभाव कहाँ किया? अर्थ क्या किया? **कर्मोदय के प्रभावयुक्तपने...** सहितपने वर्ता है। स्वयं उसके प्रभाव-बात में सहितपने, उसके सम्बन्ध में वर्ता है। ऐसा स्वभावपने वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के उदय का प्रभाव-पाक, उसका युक्तपना, पाठ में सहित जुड़ान हो गया। धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, प्रभावयुक्तपने। युक्त आया न? स्वयं युक्त हुआ है। कहीं कर्म युक्त कराता है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

एक सिद्धान्त यह आत्मा वस्तु है, पदार्थ है, अनादि-अनन्त है। जो पदार्थ-वस्तु है, उसकी कोई कृत्रिमता या आदि किसी ने करायी हुई नहीं हो सकती। यह वस्तु आत्मा पदार्थ देह, वाणी से भिन्न ऐसी चीज़ अनादि है, सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... सत्.... है, उसका अन्तरस्वभाव अनादि ज्ञान और आनन्द और शान्त है। अविकारी वीतरागी समस्वभाव उसका त्रिकाली स्वरूप है।

क्योंकि मूलस्वभाव में विकार, अपूर्णता, सदोषता नहीं हो सकती। उसका वास्तविक स्वरूप स्वभाव, वस्तु जैसे अनादि है, वैसे उसका स्वभाव अनादि, ज्ञान-आनन्द और शान्तरस ऐसा उसका स्वभाव है। उसे छोड़कर अनादि काल से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर साधु होकर गया, तथापि अभी मिथ्यादृष्टि अनादि आठ कर्म के आश्रय में रक्त रहकर कर्मोदय के पाक के युक्तपने वर्तता है। आत्मा के आनन्द के पाकपने न वर्त कर... ऐसा अमेरिका में कुछ आता होगा? ऐसी भाषा! वहाँ तो सर्वत्र गप्प-गप्प चलते हैं। नहीं? बजुभाई!

मुमुक्षु : ऐसा कुछ नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं होता। सच्ची बात है। वहाँ तो दूसरी पढ़ाई होती है। भगवान आत्मा यह वस्तु है न, वस्तु। वस्तु अर्थात् 'है'। सत् है। है, उसकी आदि नहीं होती; है, उसका अन्त नहीं होता; है, उसे कोई करे, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा यह भगवान आत्मा अनादि ऐसा का ऐसा है। उसे जैसे वस्तु है, उसका स्वभाव स्व, स्व—अपना भाव—ज्ञान, आनन्द, शान्त। क्योंकि मूल स्वभाव निर्विकारी और निर्दोष ही होता है। मूल स्वरूप में कोई विकार या अपूर्णता नहीं हो सकती। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसके ऊपर इसने एक क्षण भी अन्दर लीनता की एकाग्रता नहीं की। समझ में आया?

यह कर्मोदय के प्रभाव के सहितपने, उसके प्रभाव के पाक के सहितपने स्वयं वर्ता है। है न? **वर्तने से,** ऐसा कहा है। कर्म के पाक के सम्बन्ध में वर्ता है। अपने ज्ञानानन्द के स्वभाव में अन्तर्दृष्टि करके वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के.... अब यहाँ तो स्पष्ट गुजराती (भाषा) आती है। हिन्दी बहुत ही चला। समझ में आया? अनादि से भगवान अपने महिमावन्त स्वरूप को स्वयं ही अनादि से भूलकर कर्म के प्रभाव के पाक के सहितपने... सहितपने; रहितपने चाहिए... कर्म के पाक से रहितपने स्वभाव के आनन्द में लीनता चाहिए। उसके बदले कर्म के पाक में सहित दृष्टि से सहितपने **वर्तने से उदित,...** देखो!

उसे कर्म के पाक के सहितपने वर्तने के कारण उदित। पाठ में है न '**सुहमसुहमुदिण्णं**' मूल तो यहाँ '**सुहमसुहमुदिण्णं**' भाव कहना है। स्वभाव में है नहीं और शुभ और अशुभभाव जिसने प्रगट किया। शुभ और अशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, वह शुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, वह अशुभभाव। दोनों मलिनभाव, दोनों विकारभाव, दोनों बन्धभाव। समझ में आया? भावबन्धभाव—भावबन्धभाव। यह ठीक! भावबन्ध, ऐसा भाव। जड़ नहीं। जड़ की पर्याय की बात बाद में करेंगे। विकार के कारण से नया बन्धन पड़ता है, यह बात बाद में करेंगे। पहले तो विकारी भाव कैसे हुआ, उसे पुराने कर्म के पाक के युक्तपने वर्ता , इसलिए उसमें शुभाशुभभाव प्रगट हुए। कहो, समझ में आया? यह बन्ध अधिकार है। भावबन्ध आत्मा की विकारी पर्याय, द्रव्यबन्ध कर्म की विकारी पर्याय अर्थात् पुद्गल की कर्मरूप विकारी पर्याय, वह द्रव्य बन्ध। दो (विकारी) पर्यायों की बात चलती है। परन्तु पर्याय अर्थात् अवस्था।

वस्तु कायम रही और उसकी अवस्था, रूपान्तर, हालत होती है, उस हालत में अनादि से अज्ञानी को अपने स्वभाव चैतन्यज्योति आनन्दसहित, दृष्टिसहित स्वभावयुक्तपने वर्तना चाहिए, ऐसे न वर्तकर कर्म के स्वभाव के युक्तपने वर्तने से **(-प्रगट होनेवाले) शुभ या अशुभ भाव...** देखो! यह दया, दान, व्रत, भक्ति जो शुभविकल्प उठता है, वह सब शुभ और अशुभभाव कर्म के निमित्त के संग से वर्तने से आत्मा में शुभ और अशुभभाव प्रगट हुआ है। कहो, समझ में आया? इसे भी खबर नहीं होती, यह शुभभाव कहाँ से हुए और क्यों हुए? हें? अभी दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, यह विकल्प / राग, वह हमारा धर्म!

यहाँ कहते हैं कि वह धर्म नहीं है। वह परिणाम मलिन है। पुण्य और पाप दोनों भाव शुभभाव विकार है। भगवान उसे भावबन्ध कहते हैं। समझ में आया? भावबन्ध अर्थात् क्या? धर्मचन्दजी! भावबन्ध अर्थात् स्वभाव शुद्ध त्रिकाली है, वह विकार में रुके, रुके। विकार में रुकता है, वह भावबन्ध है। समझ में आया? अभी तो नौ तत्त्व में, नौ यह बन्धतत्त्व किसे कहना, उसकी व्याख्या है। बन्ध की भी खबर नहीं होती।

कहते हैं कि भाई! प्रभु! तेरा स्वरूप तो अन्दर शुद्ध और आनन्द, उससे सहित वर्तमान दशा को उसके सहित स्वभावसहित वर्तना चाहिए, वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसे न वर्तकर वह कर्म जड़, वह पाक अन्दर दूसरी चीज़ है, उसके सहित के संग के सम्बन्ध में जुड़ान होने से तेरी पर्याय में, अवस्था में शुभ और अशुभभाव प्रगट हो, उसे वह जीव करता है। यह जीव करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक ओर तो आप ऐसा कहते हो 'कर्म बेचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।'

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा? क्या सुना यह?

मुमुक्षु : एक ओर कर्म को यहाँ स्थापित किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म को स्थापित किया नहीं। कर्म का इनकार किया? किसने कर्म का इनकार किया? कर्म स्थापित नहीं किये? कर्म नहीं? परन्तु कर्म के कारण विकार होता है, ऐसा किसने कहा? ध्यान कहाँ रखा तुमने? जेचन्दभाई! परन्तु अन्दर थोड़ा बदल गया। जेचन्दभाई! दूसरी बात की भाई ने।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि कल की अपेक्षा आज दूसरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दूसरा है ही नहीं। कर्म बेचारे कौन, वह तो यहाँ आगे है। कहा नहीं? कर्म वस्तु नहीं कर्म? जगत में कर्म पदार्थ नहीं? जड़कर्म है, आठ कर्म है। जड़, मिट्टी, धूल, अजीव। परन्तु उस कर्म के कारण जीव को विकार है, ऐसा नहीं है। यह कर्म के आधीन हो, इसलिए विकार होता है, ऐसा है। यह तो बात अभी हो गयी। बराबर ध्यान रखना चाहिए। जेचन्दभाई! आज और शिथिल होकर आये हैं, थोड़े ढीले। हें? कहा न? इस समय ढीला होकर। राजा भी सिंह भी हो गया पिल्ला। गडुलिया समझते हो? यह कुत्ती का बच्चा होता है न, क्या कहलाता है? हमारे (काठियावाड़ी में) कुरकुरियां कहते हैं। तुम्हारे क्या कहते हैं? पिल्ला। सिंह, सिंह!

इसी प्रकार आत्मा अन्दर में सिंह अनन्त ज्ञान, दर्शन का भरपूर पदार्थ है। महावीर्य की मूर्ति पूर्ण... पूर्ण... बल का वह स्वामी है। खबर नहीं होती! इसलिए जहाँ जिसकी प्रीति हुई, वहाँ उसका भाव उस जाति का प्रगट हुआ, इसे कर्म में प्रीति हुई। कर्म ने करायी नहीं। समझ में आया? जरा भी कराता नहीं और आज कहा कि जरा भी कराता नहीं। किसने कहा?

कर्म के सम्बन्ध में जुड़ान था, वह ऐसा कहा। कर्म ने कराया, ऐसा यहाँ अभी बात है नहीं। कल भी नहीं थी, आज भी नहीं और कभी नहीं होगी। कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि **अन्य के (-पुद्गलकर्म के) आश्रय द्वारा...** ऐसा कहा है। अन्य द्वारा हुआ, ऐसा नहीं। और वह अनादि काल से उसमें रक्त रहा है, पर के आश्रय में। **कर्मोदय के प्रभावयुक्तरूप वर्तने से उदित (-प्रगट होनेवाले)...** देखो! भाषा कैसी है? स्वभाव में यह है नहीं। पुण्य और पाप, दया और दान यह आदि शुभाशुभभाव, वह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। शुद्ध शक्ति में नहीं है। पर्याय में नये प्रगट करता है। शुभ और अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, काम, क्रोध, कमाना, कमाना, वह पाप, वह पाप। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा, यात्रा यह दोनों शुभ और अशुभ विकार भाव है। भगवान इसे भावबन्ध कहते हैं। इसकी भी खबर नहीं होती, उसे धर्म किस प्रकार होगा? समझ में आया?

शुभ या अशुभभाव को करता है,... है न पाठ? '**करेदि जहि अप्पा**' ऐसा पाठ में है न? इसका शब्द है इसके साथ। '**स्तो**' लिया और '**उदिण्णं**' लिया, उसमें है वह लिया है। तो वह आत्मा, देखो! ऐसा करे तो वह आत्मा अब... यह गुजराती कहीं बहुत ऐसा (न समझ में आये ऐसा) नहीं है। समझ में आये ऐसा है। समझ में आया? ध्यान रखे न तो समझ में आये ऐसा है। कहीं हमेशा हिन्दी हो फिर? दो महीने से हिन्दी चलता है। अब तो यह गुजराती चलेगा। यह तो आवे, न समझ में आये ऐसा नहीं है। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास कर लेना। जैसा गुजराती में आता है, वैसा स्पष्ट विस्तार हिन्दी में नहीं आता। अब यहाँ तो गुजराती की भाषा काठियावाड़ी है न! हिन्दी में अमुक भाव आवे, परन्तु उसका स्पष्टीकरण और विस्तार (स्पष्ट नहीं आता।) समझ में आया?

शुभ या अशुभ भाव को करता है, तो वह आत्मा... ऐसा। यदि यह आत्मा अपने को भूलकर या अस्थिरता में कर्म के पाक के प्रभावनासहित स्वयं वर्ते तो शुभ और अशुभभाव उसमें प्रगट होता है। यह दोनों विकारी मलिन दुःखरूप, आकुलतारूप दोनों भाव हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

शुभ-अशुभभाव दोनों दुःखरूप होंगे? हें? यहाँ ही अभी सबको दिक्कत है न? भगवान तो ऐसा कहते हैं कि शुभ और अशुभ दोनों कर्म के आश्रय से तुझमें हुआ विकारी भाव है। उसमें शुभभाव, वह धर्म और पाप भाव वह अधर्म, दो कहाँ से लाया? सम्यग्दृष्टि को शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है। मिथ्यादृष्टि को शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है, वह धर्म का कारण है ही नहीं। भावबन्ध कहीं और अबन्ध परिणाम का कारण होगा? भावबन्ध, वह अबन्ध परिणाम। अबन्ध परिणाम कहो या मोक्षमार्ग कहो। कहो, समझ में आया?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... इस निमित्तभूत भाव द्वारा **विविध पुद्गलकर्म...** अब नये कर्म। वे पहले पुराने थे। आहाहा! बात का नव तत्त्व की जिसे अभी पृथक्ता की खबर नहीं होती, श्रद्धा की पहिचान नहीं होती और हो गया धर्म। लो! करो धर्म। प्रतिमा ले लो और व्रत ले लो! कहाँ से प्रतिमा और व्रत आये? सम्यग्दर्शन बिना अभी प्रतिमा का विकल्प सच्चा होता ही नहीं। उसे व्रत का विकल्प

भी सच्चा नहीं होता। व्रत और प्रतिमा भी अभी विकल्प–व्यवहार है। समझ में आया?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... आत्मा में निमित्तभूत भाव हुआ। किसे? नये कर्म को। नये कर्म जब बँधे, उसे यह शुभाशुभभाव निमित्त हुआ। निमित्तभूत भाव द्वारा, भाव कहो या पर्याय कहो, हों! पर्याय कहो, भाव कहो, अवस्था कहो। शुभ–अशुभभाव, वह विकारी पर्याय है। शुभ–अशुभभाव, वह आत्मा की मलिन, सदोष दशा है। वह धर्मस्वरूप नहीं। धर्मरूप हो, उसका उस बन्ध में निमित्त नहीं होता। नये जड़ बन्ध में धर्म पर्याय हो, वह बन्ध में निमित्त नहीं होती। नये बन्ध में निमित्त हो, वह पुण्य–पाप का भाव अधर्म पर्याय है। और स्पष्ट भाषा हुई। समझ में आया? आहाहा!

नये कर्म के बन्धन पड़े, उसे जो निमित्त हो, वह अधर्मभाव होता है, धर्मभाव नहीं। धर्मभाव से बन्धन में निमित्त होने की योग्यता नहीं होती। धर्म तो संवर और निर्जरा का कारण है। आहाहा! समझ में आया? **तो वह आत्मा...** जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव धर्म नहीं। कहो। वह कर्म संयुक्तपने के लक्ष्य से–वश से उत्पन्न हुआ शुभभाव है। वह शुभभाव, वह नये कर्म को तीर्थंकरप्रकृति बाँधे, उसे निमित्तभूत होता है समकिती को। वह राग को हेय जानता है। बन्ध को ज्ञेय जानता है। स्वभाव चिदानन्द शुद्ध को उपादेय जानता है। कहो, समझ में आया?

तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा... वह निमित्त कौन? शुभाशुभभाव हुए वह। शुभ और अशुभभाव जो प्रगट हुए, उन निमित्तभूत भाव द्वारा, ऐसे निमित्तभूतभाव द्वारा, विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है। नये रजकण आठ कर्म से जो बँधें (वह) व्यवहार से बँधते हैं। कहो, समझ में आया? आत्मा बँधता है, ऐसा लिया है न? व्यवहार से लेना है न? वह निश्चय से बँधता है। यह व्यवहार से। यह तो आत्मा शब्द पड़ा है न? **तो वह आत्मा उस निमित्तभूत भाव द्वारा विविध पुद्गलकर्म से बद्ध होता है।** यहाँ तो अभी ऐसा कहना है। समझ में आया? अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि यह क्या कहा? **इसलिए यहाँ (ऐसा कहा है कि), मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, वह भावबन्ध है...**

यहाँ ऐसा कहा कि मिथ्यात्वभाव, वह पुण्यभाव से धर्म होता है, पापभाव में मजा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और राग–द्वेषभाव, दया, दान, वह पुण्यपरिणाम; हिंसा,

झूठ, वह पापपरिणाम, ऐसे मोह-राग-द्वेष द्वारा, स्निग्धतावाले—स्निग्ध-स्निग्ध। स्निग्धतावाले **ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम...** देखो! शुभभाव भी मोह-राग-द्वेष द्वारा स्निग्धतावाले परिणाम हैं। समझ में आया? है?

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध... स्निग्ध-चिकने ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, मोह और राग-द्वेष, पुण्य को धर्म मानना, वह मिथ्यात्व और साथ में राग और हिंसा का भाव-द्वेष। यह जो सब भाव चिकने। समझ में आया? **जो जीव के...** शुभ जो दया, दान का भाव वह शुभ, हिंसा का अशुभ। वे सब परिणाम चिकने हैं। वे आत्मा के स्वभाव की अरागी वीतरागी पर्याय नहीं है। धर्म पर्याय नहीं है। ओहोहो! समझ में आया इसमें?

यह तो अभी नौ पदार्थ की व्याख्या चलती है। लो! यहाँ नौ तत्त्व लिखे। नौ पदार्थ। समझ में आया? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। सात की व्याख्या चल गयी। बन्ध और मोक्ष की व्याख्या चलती है। तो कहते हैं कि भावबन्ध किसे कहा? कि **मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम, वह भावबन्ध है...** वह विकारी परिणाम आत्मा के अबन्धस्वभाव को रोकनेवाले भावबन्ध परिणाम हैं। कहो, समझ में आया? वजुभाई! यह तो सरल है। आज कहीं बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं है।

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध... भाषा देखो! यह चिकने परिणाम हैं, तब बन्ध का निमित्त होते हैं न? चिकने बिना नये जड़ का निमित्त नहीं होता। नये जो कर्म बँधते हैं, उसे यह निमित्त होते हैं। कौन? कि चिकने परिणाम। कैसे? कि शुभभाव और अशुभभाव। कैसे? कि मोह-राग-द्वेषवाले, स्निग्धतावाले। ओहोहो! हें? चिकनाई अर्थात् यह चिकनाई कहाँ है? स्पर्श की चिकनाहट। यहाँ तो मोह-राग-द्वेष द्वारा चिकनाहट, विकार की चिकनाहट, विकारभाव की चिकनाहट। जड़ की चिकनाहट तो स्पर्श अन्दर में रही जड़ में। आत्मा में कहाँ है?

यह तो आत्मा की पर्याय में, अवस्था में मोह-राग-द्वेष द्वारा चिकनाहटवाले शुभ और अशुभभाव। शुभ को (भी) मोह-राग-द्वेष की चिकनाहटवाले शुभ कहे, अशुभ को (भी) मोह-राग-द्वेष की चिकनाहटवाले कहे। कहो, समझ में आया? अब, देखो! अभी जगत के प्राणी एक तो ऐसा कहते हैं कि यह शुभभाव है, वह पुण्य है और पुण्य

करते-करते धर्म होगा। यह दृष्टि अत्यन्त मिथ्यात्व है। एकदम उल्टी दृष्टि है, ऐसा यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं)। स्निग्धता परिणाम शुभ भी स्निग्ध परिणाम हैं, बन्ध का कारण है। उससे आत्मा को वीतराग दृष्टि, सम्यग्दृष्टि नहीं होती। समझ में आया?

मोहरागद्वेष द्वारा स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम... कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, भाव कहो। शुभ-अशुभभाव, वह भावबन्ध है। लो! भावबन्ध है। आत्मा अबन्धस्वरूपी, वह भावबन्ध में रुके, वह भाव पर्याय विकारी है। ऐसा तत्त्वों के जाननेवाले को भावबन्ध को भावबन्धरूप से जानना चाहिए। यह संवर और निर्जरा है, ऐसा उसे नहीं जानना चाहिए। कहो, समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को भी जितना रागादि, द्वेष है, वह भावबन्ध है। छूट जाये तो केवल (ज्ञान) हो जाए। यहाँ तो मोह-राग-द्वेषसहित लिया है न एक साथ सब। कहो, समझ में आया? भावबन्ध समझ में आया? आत्मा वस्तु अनन्त ज्ञानादि निर्मल कन्द प्रभु आत्मा, वह कर्म के निमित्त के संग में जुड़ा हुआ विकार पुण्य-पाप के करे मोह और राग-द्वेष के परिणाम चिकनाई, उसे यहाँ भावबन्ध कहा जाता है। भगवान अरूपी, अबन्धस्वरूपी, वह विकार में अटका, इसका नाम भावबन्ध, अरूपी विकार को भावबन्ध कहते हैं। समझ में आया? कहो, शिवलालभाई! कहीं है नहीं। यह सब गड़बड़-गड़बड़। शिवलालभाई को तो अब... कहो, समझ में आया इसमें?

टीका में कितनी स्पष्टता है। पढ़े नहीं, विचारे नहीं, ऐसा का ऐसा बिना भान के मुट्ठियाँ बाँधकर चले, यह चलो, चलो। परन्तु कहाँ जाना है? अभी जीवतत्त्व कौन है? अन्दर पुण्य-पाप के भावरूपी नये आवे वह आस्रव, परन्तु रुका वह भावबन्ध कौन? संवर-निर्जरा वह अन्दर क्या चीज़ है? (जो) स्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है। यह पुण्य और पाप के भाव तो पर के आश्रय से प्रगट हुए। चिकने हैं। इसका नाम भावबन्ध कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

और उसके यह शुभाशुभपरिणाम के निमित्त से इस शुभाशुभपरिणाम के संयोग-निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत पुद्गलों का। यह नया आने का। देखो! यहाँ शुभाशुभपरिणाम निमित्त है। नये कर्म स्वयं के कारण से **शुभाशुभकर्मरूप परिणत**

पुद्‌गलों का... कर्मों का **जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन...** यह विशिष्ट शक्ति निमित्त-निमित्त सम्बन्धरूप से विशिष्ट शक्तिसहित एकक्षेत्रावगाह, एक क्षेत्र में रहना, ऐसा सम्बन्ध, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं। वे रजकण जो नये शुभाशुभभाव स्निग्ध बन्ध का कारण भाव, उसका निमित्त और नये कर्म उसे आये, वे आत्मा के एकक्षेत्रावगाह से रजकणों का रहना, उसे द्रव्यबन्ध कहा जाता है। हीराभाई घड़ी के सामने देखते हैं। कब समाप्त हो। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में नहीं आये और क्या करे परन्तु? क्या कहा, समझ में आया इसमें?

उनके निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत... यह नयी बात क्या है, नया क्या है, यह समझ में नहीं आता। बस, वह का वह लगा करता है, ऐसा का ऐसा मानो... क्योंकि ज्ञान नहीं होता और पहिचान नहीं होती। समझ की दरकार नहीं होती। आहाहा! यह क्या और भावबन्ध, उसके निमित्त से शुभाशुभकर्मरूप परिणत वे परमाणु, **पुद्‌गलों का जीव के साथ अन्योन्य...** निमित्त-निमित्त की **विशिष्ट शक्ति सहित...** अवगाहन अन्दर एक क्षेत्र में कर्म का रहना, उस कर्म को द्रव्यबन्ध कहा जाता है।

कर्म के रजकणों की दशा को द्रव्यबन्ध (कहा जाता है)। आत्मा के साथ एक प्रदेश में रहना, उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं। और विकारी परिणाम को भावबन्ध कहते हैं। कहो, यह तो सरल भाषा है। अब कोई बहुत ऐसी (कठिन नहीं है)। समझ में आता है न भाई! बहुत पुराने हैं न हमारे यहाँ हिन्दी ललितपुर। अब थोड़ा-थोड़ा समझते हैं। ऐसी कोई भाषा है। समझ में आया? आहाहा!

एक गाथा। एक ही गाथा, देखो! कितना स्पष्ट है! अमृतचन्द्राचार्य महाराज नौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त भावलिंगी मुनि (हुए हैं), उनकी यह टीका है और मूल श्लोक भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के श्लोक। अभी भावबन्ध और द्रव्यबन्ध की यह व्याख्या इसे मस्तिष्क में नहीं होती। पुण्य से धर्म होता है और व्यवहार करते-करते—व्यवहार अर्थात् पुण्य। व्यवहार अर्थात् पुण्यपरिणाम, ऐसा करते-करते धर्म होता है अर्थात् कि वीतरागभाव होता है। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार करते हुए निमित्तरूप से होकर नया बन्ध पड़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! इस एक गाथा में भावबन्ध और द्रव्यबन्ध दोनों की व्याख्या हुई।

गाथा - १४८

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो।।१४८।।

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसम्भूतः।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः।।१४८।।

बहिरङ्गान्तरङ्गबन्धकारणाख्यानमेतत् ।

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मरस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तम् । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बन आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्ति-परिणामेनवस्थानम् । स पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुना रतिरागद्वेषमोहयुतः, मोहनीयविपाकसम्पादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद्बहिरंगकारणं योगः विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ।। १४८ ।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।।१४८।।

अन्वयार्थ :— [योगनिमित्तं ग्रहणम्] ग्रहण का (कर्मग्रहण का) निमित्त योग है; [योगः मनोवचनकायसंभूतः] योग मनवचनकायजनित (आत्मप्रदेश-परिस्पन्द) है। [भावनिमित्तः बन्धः] बन्ध का निमित्त भाव है; [भावः रतिराग-द्वेषमोहयुतः] भाव रतिरागद्वेषमोह से युक्त (आत्म-परिणाम) है।

टीका :- यह, बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है।

ग्रहण अर्थात् कर्मपुद्गलों का जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) कर्मस्कन्धों में प्रवेश; उसका निमित्त योग है। योग अर्थात् वचनवर्गणा, मनोवर्गणा, कायवर्गणा और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है, ऐसा आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द (अर्थात् जीव के प्रदेशों का कम्पन)।

बन्ध अर्थात् कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणामसहित स्थित रहना (अर्थात् कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्तिसहित अमुक काल तक टिकना); उसका निमित्त जीवभाव है। जीवभाव रतिरागद्वेषमोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाला विकार है।

इसलिए यहाँ (बन्ध में), बहिरंग कारण (-निमित्त) योग है क्योंकि वह पुद्गलों के ग्रहण का हेतु है, और अन्तरंग कारण (-निमित्त) जीवभाव ही है क्योंकि वह (कर्मपुद्गलों की) विशिष्ट शक्ति तथा स्थिति का हेतु है।

भावार्थ :- कर्मबन्ध पर्याय के चार विशेष हैं : प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध। इसमें स्थिति-अनुभाग ही अत्यन्त मुख्य विशेष हैं, प्रकृति-प्रदेश तो अत्यन्त गौण विशेष हैं; क्योंकि स्थिति-अनुभाग के बिना कर्मबन्धपर्याय नाममात्र ही रहती है। इसलिए यहाँ प्रकृति-प्रदेशबन्ध का मात्र 'ग्रहण' शब्द से कथन किया है और स्थिति-अनुभागबन्ध का ही 'बन्ध' शब्द से कहा है।

जीव के किसी भी परिणाम में वर्तता हुआ योग, कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है और जीव के उसी परिणाम में वर्तता हुआ मोहरागद्वेषभाव, कर्म के स्थिति-अनुभाग का अर्थात् 'बन्ध' का निमित्त होता है; इसलिए मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण (अन्तरंग निमित्त) कहा है और योग को—जो कि 'ग्रहण' का निमित्त है उसे—'बन्ध' का बहिरंग कारण (बाह्य निमित्त) कहा है ॥१४८॥

गाथा - १४८ पर प्रवचन

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो।।१४८।।

है योग हेतुक कर्म आस्रव योग तन-मन जनित हैं।
है भाव हेतुक बन्ध अर भाव रतिरुष सहित है।।१४८।।

टीका :- यह, बन्ध के बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण का कथन है। देखो! आचार्य कितना विवेक बताते हैं! योग है, आत्मा के प्रदेश का कम्पन है, वह बहिरंग कारण है और आत्मा के अन्दर के मिथ्यात्व, राग-द्वेष के परिणाम, वे विशिष्ट कारण हैं। नये बन्ध में भी दो अन्तर किये हैं। समझ में आया?

टीका :- यह, बन्ध के... नया जो बन्ध पड़ता है न, जड़? उसके **बहिरंग कारण**

और अन्तरंग कारण का कथन है। नये कर्म के रजकण जो बँधते हैं, उसमें निमित्तपने में वह योग है, वह बाह्य निमित्त है और राग-द्वेष के परिणाम, वे अन्तरंग निमित्त हैं। कहो, है तो इसकी और इसकी पर्याय। कम्पन आत्मा के प्रदेश, है तो आत्मा की पर्याय, परन्तु वह नये बन्ध में बहिरंग कारण कहा। मात्र कर्म आने में वह निमित्त है। वह मूल बन्ध का कारण नहीं है। और कर्म में स्थिति-रस पड़ने का मूल निमित्त कारण... पड़ता है तो उससे, परन्तु उसका अन्तरंग कारण मोह और राग-द्वेष एक ही कारण अन्तरंग कर्म कारण है।

जीव के प्रदेशों का कम्पन, उसे बहिरंग कारण कहा। समझ में आया? और यह इसका बहिरंग कारण? वह नये कर्म रजकण बँधते हैं, जड़ परमाणु, उनका बाह्य कारण कम्पन और उनका निमित्त-यह निमित्त के दो भाग किये। एक बाह्य निमित्त, एक अन्तरंग निमित्त। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, मिथ्यात्वभाव, वह अन्तरंग कारण नये बन्ध का अन्तरंग निमित्तकारण है। आहाहा! समझ में आया?

ग्रहण अर्थात् कर्मपुद्गलों का जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) कर्मस्कन्धों में प्रवेश;... कहो, समझ में आया? ग्रहण अर्थात् पाठ है न? **'जोगणिमित्तं गहणं' कर्मपुद्गलों का...** नये रजकणों का एक **जीवप्रदेशवर्ती (-जीव के प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में स्थित) रजकणों, कर्मस्कन्धों में प्रवेश; उसका निमित्त योग है।** कर्म स्कन्धों का आना। समझ में आया? उसका निमित्त आत्मा के प्रदेशों का कम्पन है। आत्मा कर्म स्कन्ध में यह निमित्तरूप से प्रवेश हुआ न? निमित्त, उसका योग है। कम्पन-प्रदेश कम्पन, वह कहीं मूल कारण नहीं है।

योग अर्थात् वचनवर्गणा, मनोवर्गणा, कायवर्गणा और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है... आत्मा के प्रदेश के कम्पन में जिसमें वचनवर्गणा वचन के परमाणुओं का निमित्त-अवलम्बन हो। जिसे मनोवर्गणा का निमित्त हो, वह मनायोग। जिसे कायवर्गणा का परमाणु का निमित्त हो वह काययोग—कम्पन। वह निमित्त। **और कर्मवर्गणा का जिसमें आलम्बन होता है ऐसा आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द...** आत्मा के प्रदेशों का कँपना, कम्पन, जरा कम्पन, उसे योग कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया? समझे? उसे ग्रहण... ग्रहण। योग निमित्त का ग्रहण लिया है। बन्ध लिया है। रजकण आवे,

उसमें कम्पन निमित्त है, वह कहीं मूल वस्तु नहीं है। इसलिए उसे बन्ध में निमित्तकारण—बाह्य निमित्तकारण कहा।

देखो! एक की एक आत्मा की पर्याय, उसके दो प्रकार किये। एक कम्पन को बहिरंग कारण और राग-द्वेष को अन्तरंग कारण (कहा)। अपने जो नियमसार में ५३वीं गाथा आती है, अन्तरंग कारण और बहिरंग कारण। मूल तो आचार्य, इन्हें पद्मप्रभमलधारिदेव ने अमृतचन्द्राचार्य की बहुत पद्धति ली है। यहाँ यह पद्धति अपनायी। अमृतचन्द्राचार्य के पद्य—गद्य-पद्य क्या कहलाते हैं वह सब? यह सब उनका ही अनुसरण किया है। अमृतचन्द्राचार्य तो! ओहोहो! इस पंचम काल में वे मुनि गणधर जैसा (और) तीर्थंकर जैसा काम तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने किया है। पंचम काल की योग्यता प्रमाण। गणधर जैसी टीका। अमृतचन्द्राचार्य मुनिधर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ। महासन्त मुनि! समझ में आया? धर्म-धर्माचार्य।

कहते हैं, भगवान आत्मा में दो बात होती है। एक तो प्रदेश जो है, असंख्य प्रदेश आत्मा है। वस्तु देखो! एक पॉइन्ट परमाणु जो है, पॉइन्ट-परमाणु। जितने जगह को रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे असंख्य प्रदेशी चौड़ा आत्मा है। उन असंख्य प्रदेश में कम्पन हो, उसे योग कहते हैं। उस कम्पन में निमित्त जो-जो वर्गणा हो, उस प्रकार का उसे योग कहा जाता है। कम्पन तो यहाँ एकरूप है, परन्तु उस कम्पन में मनोवर्गणा का निमित्त हो तो उसे मनोयोग कहते हैं। वचनवर्गणा का निमित्त (हो तो) वचनयोग कहते हैं। कायवर्गणा का निमित्त हो तो (काययोग) उसे कहते हैं। कार्मणयोग का निमित्त हो तो काययोग कहते हैं। भाई! लिया है न चौथा कर्मवर्गणा? यह वह काययोग लिया। कार्मण-काययोग। इसलिए वह इकट्ठा डाला। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा वस्तु है असंख्य प्रदेशी। अनन्त गुण का धाम। उसमें जो असंख्य प्रदेश का कम्पन, उसका नाम रखा है कि यह मनयोग, यह वचनयोग, यह काययोग, यह कार्मणकाययोग। भाई! काययोग तो औदारिक और वैक्रियिक का भी होता है। इसलिए यह कार्मण और काययोग को अलग करके रास्ते में जब होता है, तब... दूसरे नहीं। औदारिक शरीर या ऐसा कुछ भी वह योग नहीं तो काययोग में वह आ जाता है। परन्तु

काययोग से कर्मवर्गणा पृथक् एक निमित्त किया। क्योंकि मार्ग में काययोग का दूसरा नहीं है। रास्ते में कार्मणकाययोग कम्पन है तो उस कम्पन को वे कर्म के रजकण ऐसे हैं और इतना उसे निमित्त है। इसलिए उसे कार्मण-काययोग कहा है।

मुमुक्षु : कठिन तो पड़ता है, हों!

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु धीरे-धीरे तो कहते हैं। इसमें कठिन पड़ता है? थोड़ा तो पड़े भाई! अमेरिका जाकर आये वहाँ मस्तिष्क रुका हो। कितने वर्ष हुए? पाँच वर्ष। ओहो! परन्तु है कोमलता थोड़ी। कहीं वह इसे बहुत असर नहीं हुआ। कहो, समझ में आया? वहाँ जाये न तो पावर फट जाता है। ओहो! अमेरिका अर्थात् क्या? पैसेवाले, किराये का बड़ा मकान-बकान। धूल है सब वहाँ। समझ में आया? फिर से कहते हैं, देखो न!

देखो! यह आत्मा है या नहीं? यह वस्तु है न अस्ति, है। तो 'है' उसमें अनन्त ज्ञान आदि शक्ति अर्थात् हदरहित स्वभाव, ऐसे उसमें अनन्त स्वभाव है। और उसमें एक योग नाम की भी शक्ति है। अब एक योग नाम का भी अन्दर एक गुण है। अब जब इन मन के परमाणुओं का अवलम्बन हो, पुद्गल परमाणु, तब उस कम्पन को मनयोग कहा जाता है। कम्पन तो एक प्रकार का, परन्तु उस मनोवर्गणा का निमित्त तो इसे मनोयोग कहा जाता है। वचनवर्गणा परमाणु है, सूक्ष्म यह, यह तो आवाज निकलती है न वर्गणा की, उसका तो निमित्त अन्दर वचनयोग, कम्पन को वचनयोग कहा जाता है। यह काया है, यह मिट्टी। यह वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, उनके परमाणुओं का निमित्त अवलम्बन तो यहाँ काययोग कहा जाता है। और कार्मणशरीर के परमाणु का निमित्त अवलम्बन तो वहाँ काययोग कहा जाता है। इस प्रकार योग का कम्पन, उसका चार प्रकार से वर्णन किया है। फिर काया के भी बहुत भेद हैं, वह अलग बात है। मन के चार, वचन के चार। यह तो सामान्यरूप से... मन के चार, वचन के चार, काया के सात, ऐसा करके। यह सूक्ष्म बात है। कहो, समझ में आया इसमें?

ऐसा आत्मप्रदेशों का... ऐसे अर्थात् जिसमें ऐसा आलम्बन, निमित्त हो, ऐसे आत्मप्रदेशों का, अन्तर में अपने उपादान के कारण से परिस्पन्द-कम्पन हो, उसे योग

कहते हैं। वह योग तो मात्र नये कर्म में निमित्त ग्रहण में निमित्त है। आते हैं, उसके कारण से उसमें। परन्तु वास्तविक बन्ध वह नहीं है। समझ में आया?

बन्ध अर्थात् कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित स्थित रहना (अर्थात् कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्ति सहित अमुक काल तक टिकना); उसका निमित्त जीवभाव है। देखो! उसको साधारण बात की, यहाँ जीवभाव, ऐसा शब्द वापस अलग रखा है, भाई! उसको शब्दयोग कहा। भाव निमित्त शब्द है न, भाई! उसमें योगनिमित्तं, योगभाव, ऐसा शब्द प्रयोग नहीं किया।

यहाँ पाठ में भावनिमित्तो कहा। नहीं तो योग, वह भी भाव है। परन्तु उसकी न्यूनता-तुच्छता बतलाने को मात्र प्रदेश में कम्पन है, वह नये पुद्गल आने में निमित्त बहिरंग कारण कहने में आता है। समझ में आया? और जो कर्म में स्थिति, देखो न! **कर्मपुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप परिणाम सहित...** स्निग्धता के विकारी अनुभागसहित स्थित रहना, वह स्थिति हो गयी, दोनों हो गये। अनुभाग और स्थिति। समझ में आया?

बन्ध अर्थात् जड़ के परमाणु, द्रव्यबन्ध अर्थात् कर्म पुद्गलों का विशिष्ट शक्तिरूप खास अनुभाग शक्तिसहित परिणामसहित उन पुद्गलों का वहाँ स्थिर रहना। अनुभाग और स्थिति दोनों ले ली। समझ में आया? भाई ने स्पष्टीकरण किया है, देखो! **कर्मपुद्गलों का अमुक अनुभागरूप शक्ति सहित...** अर्थात् अनुभाग आ गया। पुद्गलों का, हों! जड़ के कर्म में। और अमुक काल तक रहना, वह स्थिति आ गयी। योग में तो प्रदेश और प्रकृति। प्रदेश आवे और प्रकृति हो। सामान्य हो गयी। अनुभाग और स्थिति खास वस्तु है, इसलिए कहा, समझ में आया? कहो, अब बन्धतत्त्व की व्याख्या में भी सूक्ष्म पड़ता है, भाई! जमभाई! जमभाई (ने) अधिक सुना। यह सब ऊपर-ऊपर, ऊपर-ऊपर कितनी ही बातें पकड़े और ले। क्या कहा? समझ में आया इसमें? इसे वापस जाना पड़े चार दिन में और आठ दिन में, वे अट्ठाईस दिन। क्या कहा? है? झटकिया! पुस्तक है? ऐसा न? ठीक।

यह योग और स्थिति, रस का पृथक् किया। अपने वह नियमसार की ५३वीं गाथा है या नहीं? उसमें दोनों भिन्न किये हैं या नहीं? ५३वीं गाथा में समकित पानेवाले

को, सम्यग्दर्शन के परिणाम पानेवाले को बहिरंग और अन्तरंग कारण दो के भाग किये हैं। ज्ञानियों की वाणी को बहिरंग कारण कहा है और ज्ञानियों के अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा! यह शैली यहाँ से ली है। बहिरंग की लाईन। क्योंकि अमृतचन्द्राचार्य का ही सब अनुसरण करते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

आत्मा अपने परमानन्दस्वरूप के प्रतीति का भान—कि मैं तो एक स्वभाव का सागर ज्ञायक दरबार आनन्दस्वभाव से भरपूर। ऐसी अन्तर अनुभव की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन, उस सम्यग्दर्शन में निमित्त कौन? एक तो, अभ्यन्तर, हों! अभ्यन्तर निमित्त के दो प्रकार। एक तो ज्ञानियों की वाणी, सम्यग्दृष्टि की वाणी को बहिरंग कारण कहा। उपचार से उसे अन्तरंग कहा है। समझ में आया? बहिरंग है परन्तु उपचार से उसे अन्तरंग (कहा है)। इस प्रकार वह बहिरंग है। और वे परिणाम जो हैं, वे हैं बहिरंग परन्तु वास्तव में उसे उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। उसे अन्तरंग कारण कहा है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले को धर्मी के सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि के परिणाम अभिप्राय को अन्तरंग कारण (कहा है)। है तो बाह्य। उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। कौन वह? बाह्य कारण। समझ में आया?

इस प्रकार यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने... पाठ में है न कुन्दकुन्दाचार्य... **'जोगणिमित्तम्'** हल्का शब्द कर डाला। यह योग के भाव का निमित्त, ऐसा कहकर नहीं कहा। वास्तविक भाव तो राग-द्वेष और मोह है। वही संसार, वही उदयभाव, वही विकार और वही दु:खदायक है। मोहभाव, मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव, वही वास्तविक भाव।

इसलिए कहते हैं कि नये जड़ जो आठ कर्म बँधते हैं, समझ में आया? उसका बहिरंग निमित्त तो योग है, यह बाद में स्पष्टीकरण आयेगा। उसका निमित्त जीवभाव है। किसका? उस कर्म में स्थिति और अनुभाग कर्म के कारण से जहाँ पड़े, उसका निमित्त जीव के विकारी मिथ्यात्व राग-द्वेष के भाव हैं। वापस भाव की व्याख्या की है। वह योग की व्याख्या की थी न? निमित्त योग है, ऐसा कहा। परन्तु योग वापस कौन, उसे बतलाया था, हों! वह। यहाँ वापस कहा कि जीव भाव, परन्तु जीव भाव है कैसा?

रतिरागद्वेषमोहयुक्त (परिणाम) है अर्थात् मोहनीय के विपाक से उत्पन्न होनेवाला विकार है। यह रति, अधिक प्रेम कहा न! वह रक्त था न रक्त उसमें। रक्त राग, उसमें राग हुआ। पर में रति, राग, द्वेष और मोहसहित परिणाम जीव की पर्याय नये द्रव्यबन्ध को मूल कारण वह विकारी भाव है। समझ में आया? आया था, परन्तु एक घण्टे में कितना आया? इसमें कितना याद रखना? यहाँ कहीं संसार नहीं ध्यान रखता? हजारों बोल का? व्यापार करे वहाँ ध्यान रखता है या नहीं? हें? भंगार यहाँ से आया और यहाँ से गया, अमुक, अमुक। उसमें से गोटी निकली थी और कितना याद रखे! लो! उसमें से चाँदी। कहा न? योगफल सब धूल-धाणी और वा पाणी। उसमें सब ध्यान रखे। आहाहा! देखो! गाथा कैसी वर्णन की है न?

नया द्रव्यबन्ध है न? उसे मात्र जीव के कम्पन परिणाम बाह्य निमित्तरूप से प्रदेश को आने में निमित्त है। निमित्त आता है तो उसके कारण से। वह वास्तविक बन्ध नहीं है। वास्तविक बन्ध तो उस पुद्‌गल में अनुभाग और स्थिति उसके कारण से पड़े, उसमें निमित्त जीव का भाव हुआ मिथ्यात्व, राग-द्वेष का, रति राग, द्वेष मोहयुक्त भाव। यह स्निग्ध परिणाम नये द्रव्यबन्ध को निमित्तरूप से बाह्य कारण कहने में आते हैं। कम्पन भी बाह्य कारण है और यह भी बाह्य कारण है, परन्तु इसका खास वजन देने के लिये इसे भाव कहने में आया है। कहो, समझ में आया? उसको अन्तरंग कहेंगे। कहेंगे। अब स्पष्टीकरण करे न? वह तो अभी स्पष्टीकरण करते हैं। योग। बस इसका।

इसलिए यहाँ (बन्ध में), बहिरंग कारण... नये जड़कर्म में बाह्य निमित्त कारण **(-निमित्त) योग है क्योंकि वह पुद्‌गलों के ग्रहण का हेतु है,...** मात्र पुद्‌गल आवे, उनका निमित्त है। समझ में आया? यहाँ बन्ध में, नया जड़बन्ध, कर्म की पर्यायरूप द्रव्यबन्ध एक आत्मा के स्निग्ध भावबन्ध। दोनों को निमित्त-निमित्तसम्बन्ध ऐसे दो बन्ध की व्याख्या चलती है। तो उसमें नये जो बन्ध, उसका निमित्त-योग है। क्योंकि मात्र पुद्‌गलों के ग्रहण का योग निमित्त है। **अन्तरंग कारण (-निमित्त) जीवभाव ही है...** है तो वह बाह्यनिमित्त। कर्म में स्थिति और अनुभाग वह तो उपादान उसका, उसमें जीव के विकारी भाव बाह्य कारण है। परन्तु योग की अपेक्षा से अन्तरंग निमित्त जीव भाव ही

है। ऐसा कहने में (आता है)। निमित्त की खास विशेषता विकार में है, ऐसा बताने को उसे अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया?

अन्तरंग कारण किसका? नया द्रव्यबन्ध पड़े कर्म का। जीव भाव ही है। वह जीव भाव कौन सा? कि रतिरागद्वेषमोहयुक्त परिणाम, जो ऊपर कहे वे। वह विकारीभाव नये जड़कर्म को अन्तरंग कारण है। **क्योंकि वह (कर्मपुद्गलों की)...** उसमें ऐसा था कि उन कर्म पुद्गलों के ग्रहण का हेतु था। यहाँ पुद्गलकर्म का **विशिष्ट शक्ति तथा स्थिति का हेतु है।** शक्ति अर्थात् अनुभाग। कर्म पुद्गलों का अनुभाग और स्थिति, उसका यहाँ विकारी और मिथ्यात्वभाव और दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम, वह विकारी परिणाम कर्म का अनुभाग और स्थिति कर्म के कारण पड़ती है। उसमें निमित्त यह है। है तो बाह्य, परन्तु अन्तरंग कारण उसकी (योग की) अपेक्षा से कहा... कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो एक की थी। यहाँ तो उसमें रक्त हुआ न? सब सब सबमें प्रेम। रक्त कहा है न उसमें? पाठ में। लिया है न? '**रत्तो करेदि जदि अप्पा**' ऐसा था न? १४७ गाथा में। '**रत्तो**' सबमें रक्त है। सब लीन ही है। कहो, समझ में आया? यह अधिक न समझ में आये तो रात्रि में पूछना। रात्रि में समय है नहीं? आहाहा! सूक्ष्म है। द्रव्यबन्ध पुद्गल तो उसके कारण से बँधता है परन्तु उसमें बाह्य निमित्त योग का कम्पन, वह भी निमित्त। दूसरा कुछ नहीं। उसमें स्थिति रस पड़े कर्म में। उसमें निमित्त। पुद्गल का उपादान तो उसका। उसमें निमित्त जीव का राग-द्वेष-मोहभाव, वह जीव भाव, वह निमित्त है। वह जीव भाव, वह भावबन्ध है। अन्य द्रव्यबन्ध है। द्रव्यबन्ध के दो प्रकार कर दिये। पुद्गल का आना और प्रकृति का होना। साधारण बात करके योग उसका निमित्त कहा। स्थिति रस का होना, उसमें राग-द्वेष-मोह के भाव का अन्तरंग कारण कहा। है तो उसकी अपेक्षा से दोनों बाह्य परन्तु इसका अधिक वजन देने के लिये अन्तरंग कारण कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४७, गाथा-१४८-१४९, आसोज कृष्ण ०२, शुक्रवार, दिनांक -२३-१०-१९६४

यह १४८ गाथा चलती है। पंचास्तिकाय, इसमें नौ पदार्थ का स्वरूप है। वे नौ पदार्थ जैसे हैं, वैसे यथार्थ श्रद्धापूर्वक मोक्षमार्ग होता है। जिसे नौ पदार्थ की भी यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान नहीं, उसे मोक्षमार्ग और धर्म नहीं हो सकता। इसमें यह अधिकार बन्ध का चलता है। बन्धतत्त्व किसे कहना?

सात तत्त्व आते हैं न? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। उसमें बन्धतत्त्व जड़बन्ध और भावबन्ध किसे कहना? और उसका क्या स्वरूप है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। ऐसा यहाँ १४८ का भावार्थ आया है। जो कर्म जड़ बँधते हैं न? जड़कर्म। भावार्थ है न, १४८ (गाथा का)। जड़ के रजकण कर्म जो बँधते हैं, वह द्रव्यबन्ध कहा जाता है। उस **कर्मबन्ध पर्याय के चार विशेष हैं :...** कर्मबन्ध, वह पुद्गल की पर्याय है। जड़कर्म बन्ध, वह पुद्गल की पर्याय है। इसके चार प्रकार हैं। **प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध,...** प्रकृति अर्थात् कर्म बँधते हैं, इसमें उसका स्वभाव होता है। प्रदेश अर्थात् कर्म बँधते हैं, उसमें परमाणु की संख्या होती है। स्थिति अर्थात् उसमें कर्म की अवधि पड़ती है और अनुभाग अर्थात् पाक, उसमें रस फलदान शक्ति। ऐसे कर्मबन्ध की पर्याय जड़कर्म आठ हैं, जहाँ आत्मा है, उसके एक क्षेत्रावगाह में है। उसके चार प्रकार में इसमें स्थिति-अनुभाग ही अत्यन्त मुख्य विशेष है, यह सिद्ध करना है। उस कर्मबन्धन में जो स्थिति पड़े और अनुभाग जो फल देने की शक्ति है, वह चार में मुख्य वह है। अभी जड़ की बात चलती है, पश्चात् भाव लेंगे। इस जड़ को निमित्त कौन होता है कौन सा भाव?

तो कहते हैं कि कर्म के बन्धन में जो पुद्गल की पर्याय है, उसके विशेष चार प्रकार हैं। उसमें एक प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और रस (अनुभाग)। ऐसे चार प्रकार जड़ बन्ध में हैं। समझ में आया? नौ तत्त्व, अभी खबर न हो और नौ तत्त्व किसे कहना— जड़ और चेतन। उसकी श्रद्धा सच्ची नहीं होती और उसे सम्यग्दर्शन बिना धर्म तीन काल में नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने से पहले उसे सात तत्त्वों का बराबर जड़ और चैतन्य की

भिन्नता का भाव का भान होना चाहिए। इस भान बिना उसे आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन बिना कोई चारित्र, व्रत, तप आदि का धर्म अज्ञानी को नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं, कर्म जो जड़-अजीव है, उसके चार प्रकारों में स्थिति और पाक कर्मफल दे। फल दे, उसी और उसी में। परन्तु निमित्त जीव को होता है। उसके दो मुख्य विशेष स्थिति और अनुभाग। **प्रकृति-प्रदेश तो अत्यन्त गौण विशेष हैं;...** जड़कर्म में कर्म का स्वभाव होना और प्रदेश का-संख्या का होना, वह तो गौण उसकी दशा है। वह कहीं मुख्य आत्मा को निमित्त होने में कारण है नहीं। **क्योंकि स्थिति-अनुभाग के बिना...** यदि कर्म में स्थिति और अनुभाग न हो तो **कर्मबन्धपर्याय नाममात्र ही रहती है।** सात तत्त्व में बन्धतत्त्व की व्याख्या है। जड़ का बन्ध और चेतन का बन्ध दो बतलाते हैं। उसमें जड़ में स्थिति और पाक कर्म के पाक, दो के बिना उस कर्मबन्ध की अवस्था नाममात्र है। इसलिए यहाँ प्रकृति, प्रदेशबन्ध को मात्र ग्रहण शब्द से कहा है। पाठ में देखो! **'जोगणिमित्तं गहणं'**

इसलिए यहाँ प्रकृति-प्रदेशबन्ध का मात्र 'ग्रहण' शब्द से कथन किया है और स्थिति-अनुभागबन्ध का ही 'बन्ध' शब्द से कहा है। अब यह जड़ की व्याख्या की। अब उसमें निमित्त जीव का कौन सा भाव भावबन्ध है। जीव का भाव कौन सा मुख्यबन्ध का कारण है और कौन गौण अर्थात् बहिरंग कारण है, उसकी व्याख्या अब जीव के परिणाम की करते हैं। कहो, समझ में आया?

अब **जीव के किसी भी परिणाम में...** आत्मा में परिणाम वर्ते, पर्याय में भाव वर्ते, उसमें **वर्तता योग...** आत्मा के प्रदेश का कम्पन, वह **कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है...** बात सूक्ष्म है। सात तत्त्व की इसे भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्याय का क्या स्वरूप है, उसकी पहिचान की नहीं और समझे बिना (हम) धर्म करते हैं। कहो, समझ में आया? उसे धर्म हो नहीं सकता। सात तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। वह जड़ रजकण कर्मबन्धन के परमाणु की पर्याय जीव की दशा से भिन्न है। उसमें दो प्रकार है। प्रकृति और प्रदेश, अनुभाग और स्थिति। वह प्रकृति और प्रदेश तो

नाममात्र बन्धन है। स्थिति और अनुभाग वास्तव में जड़ का बन्धन है। उसे कहाँ निमित्त हो, उसकी व्याख्या अब करते हैं।

जीव के किसी भी परिणाम में वर्तता हुआ योग कर्म के प्रकृति-प्रदेश का अर्थात् 'ग्रहण' का निमित्त होता है... क्या कहा इसमें? समझ में आया? आत्मा वस्तु है, वह तो ज्ञान, आनन्द शान्त आदि अविकारी स्वभाव का कन्द है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् ज्ञान, आनन्द की मूर्ति आत्मस्वभाव है। उसे भूलकर अनादि काल से उसकी पर्याय में, उसकी दशा में जो विकारी मिथ्यात्व या राग-द्वेष आदि के परिणाम होते हैं, उन परिणाम में योग अर्थात् कि आत्मा के प्रदेश का कम्पन वर्तता है। यह तो मात्र प्रकृति और प्रदेश के ग्रहण नाम से कहा जाता है। कहो, जमुभाई! सूक्ष्म तो इसमें साधारण बात है परन्तु अब कभी जगत को अभ्यास नहीं होता। बाहर के तत्त्वों की बात। परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसमें विकार क्या होता है, यह कौन सा विकार किसे निमित्त होता है? कौन सा विकार, कौन सी प्रकृति, प्रदेश और स्थिति-अनुभाग को निमित्त होता है, उसके ज्ञान बिना यह जड़ और चैतन्य की भिन्नता जान नहीं सकता और भिन्नता जाने बिना उसे चैतन्यमय दृष्टि, उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना धर्म (नहीं होता)। कहो, रतिभाई! धर्म नहीं होता।

अभी आत्मा कौन है, इसका भान ही नहीं होता। धर्म तो आत्मा की निर्विकारीदशा है। धर्म, वह आत्मा की निर्दोष, निर्विकारी पर्याय / दशा है। परन्तु वह दशा कहाँ से प्रगट होती है, कैसे प्रगट होती है और अशुद्धता और मलिनता कैसे प्रगट होती है? उस मलिनता के प्रकार में भी जो गौण मलिनता और मुख्य मलिनता कौन है, उसके भान बिना उसे कर्मबन्धन के जड़ में निमित्त कौन मुख्य और गौण होता है, इसकी खबर नहीं, उसे सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। समझ में आया?

आत्मा के... भगवान आत्मा स्वभाव से तो ज्ञान और आनन्द का कन्द है। आत्मा शुद्ध पूर्णानन्द अनन्त गुण की आनन्द की खान है। वह आत्मा अपने स्वभाव के सन्मुखपने के भाव उसने अनादि से छोड़े हैं। समझ में आया? अनादि से छोड़े अर्थात् हुए और छोड़े हैं, ऐसा नहीं। ज्ञानानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द और 'सिद्ध समान सदा पद

मेरो' सिद्धस्वरूप आत्मा भगवान अन्दर है। निज आत्मा भगवान है। ऐसे आत्मा के स्वरूप को पवित्र आनन्द और शुद्ध के स्वभाव के भान बिना, उसके ज्ञान बिना, उसकी प्रतीति-श्रद्धा बिना और उसमें रमणता बिना अनादि काल से विकार के भाव को, मिथ्यात्वभाव को वह करता है। कहो, समझ में आया?

यह मिथ्यात्व आदि भाव के जो परिणाम हैं, उन परिणाम में आत्मा के प्रदेश जिन्हें योग कहते हैं, कम्पन, प्रदेश अरूपी प्रदेश कँपते हैं, वह तो मात्र कर्म के प्रकृति-प्रदेश को ग्रहण आना, उसमें निमित्त होते हैं। समझ में आया? यह योग का बन्ध में खासपना—विशेषपना नहीं है। नये बन्ध में खास—विशेषपना अनादि से जीव के उसी परिणाम में... अब आया, देखो!

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसकी इसे अनादि से खबर नहीं होती। मिथ्यादृष्टिरूप से अनन्त काल चौरासी के अवतार इसने किये हैं। समझ में आया? बाह्य त्याग भी अनन्त बार (किये)। नाम धराया परन्तु अन्तर वस्तु आत्मा ज्ञायक अखण्ड आनन्द का कन्द, सच्चिदानन्द शुद्ध परमात्मस्वरूप निज, उसकी इसने प्रतीति और अनुभव किया नहीं। यह अनुभव किये बिना इसके **परिणाम में,...** अर्थात् कि वर्तमान दशा में जो **वर्तता मोह-राग-द्वेषरूप भाव,...** मोह शब्द से मिथ्यात्वभाव। यह शुभ और अशुभभाव होता है, वह मुझे हितकर है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। पापभाव वह मुझे ठीक मजा आता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। शरीरादि की अनुकूलता हो तो मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव। बाहर की सामग्री प्रतिकूल हो तो मैं दुःखी हूँ, ऐसा मिथ्यात्वभाव। जैचन्दभाई!

आत्मा के अतिरिक्त बाहर में यह जड़, मिट्टी, शरीर में रोग-निरोग, निर्धन-सधनता, सन्तानहीनता, पुत्रपना, अविवाहित या विवाहितपना, वह सब बाह्य के संयोग हैं। वे संयोग प्रतिकूल हों तो मैं दुःखी हूँ, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की मिथ्यात्वभाव में है। कहो, रतिभाई! क्या होगा यह? आहाहा! ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसे यहाँ मोह कहा है। उस परिणाम में उसकी वर्तमान दशा में जो मोहभाव वर्तता है, उसे यहाँ मिथ्यात्व कहा है। उस परिणाम के काल में आत्मा के प्रदेश का कम्पन हो, उसकी विशेषता नहीं

है। यह उसकी दुःखदायक दशा नहीं और बन्धन में उसकी निमित्तता मुख्यता नहीं। साधारण बन्ध प्रकृति और प्रदेश आवे, इससे उस बन्ध की विशेषता में गिनने में आया नहीं। समझ में आया?

परन्तु आत्मा ज्ञान शुद्धचैतन्य प्रभु, अपने स्वभाव के आनन्द की सावधानी महिमा, माहात्म्य, आदर छोड़कर अनादि काल से वह पुण्य और पाप के भाव में मुझे मजा है, यह मेरा स्वरूप है। अनुकूलता मुझे सुख का कारण है, प्रतिकूलता मुझे दुःख का कारण है, ऐसी मिथ्याश्रद्धा का पाप। वह पाप महान पाप है। समझ में आया?

किसे पाप महान और क्या पाप कहना, इसकी खबर नहीं होती, अब वह पाप से रहित आत्मा कब जाने? समझ में आया? बन्धतत्त्व! भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी है। उसके स्वभाव तो वह विकार भाव और जड़कर्म से रहित उसका स्वरूप है। ऐसे स्वरूप के भान बिना, ऐसे स्वरूप के ज्ञान बिना उस स्वरूप के अनुभव-वेदन बिना उसका वेदन अनादि से मिथ्यात्वभाव का वेदन उसे वर्तता है। समझ में आया? भाषा समझ में आती है न थोड़ी-थोड़ी रतलामवाले? थोड़ा समझ लेना। अब तो गुजराती चलता है। अभी तो हिन्दी चला था। दो महीने तक चला था। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तुस्वभाव आत्मा का शान्त आनन्द अनाकुल और अनन्त गुण का चिद्धाम ऐसा आत्मा प्रत्येक का है। ऐसा आत्मा, उसके अन्तर का आदर छोड़कर, ऐसे स्वभाव का आदर छोड़कर, ऐसे स्वभाव का बहुमान छोड़कर, ऐसे स्वभाव की महिमा छोड़कर, उस स्वभाव का आदर छोड़कर अनादर करके... समझ में आया? उसके परिणाम में पर्याय में जो मिथ्यात्वभाव वर्तता है, वही वास्तव में कर्म का जो स्थिति और रसबन्ध होता है, उसमें वह मिथ्यात्व परिणाम ही मुख्य कारण है और उसे दुःखदायक मिथ्यात्व परिणाम वह वास्तविक दुःखदायक है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें यह तो बन्ध का अधिकार अभी है। यह मिथ्यात्व के भाव मिटे कब? कैसे? कि ज्ञानानन्द आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य, मैं देखनेवाला मुझे, मैं जाननेवाला मुझे, मैं रमनेवाला मुझमें। समझ में आया? मैं जाननेवाला मुझे, देखनेवाला मुझे, माननेवाला मुझे, रमनेवाला मुझमें, ऐसे आत्मा के स्वभाव की सम्यक् दृष्टि हो, इससे

मिथ्यात्व का नाश होता है। दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है। समझ में आया? इसने अनन्त काल शास्त्रों के पठन किये, बाहर के व्रत, नियम की क्रियाएँ शुभपरिणामरूप से अनन्त बार की। परन्तु इसने मिथ्यात्व को टाला नहीं और सम्यग्दर्शन प्रगट किया नहीं। इससे इसका जन्म-मरण एक भी मिटा नहीं। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो परिणाम में जिसकी स्निग्धता और उग्रता की दुःखदशा है, उसका वर्णन करते हैं। जो कर्मबन्धन में खास जिसकी विशेषता निमित्तरूप से है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया इसमें कुछ? द्रव्य-गुण-पर्याय—किसके द्रव्य, किसके गुण, किसकी पर्याय, इसकी तो खबर नहीं होती। यह तो कहते हैं कि जड़कर्म की एक अवस्था बँधती है, वह पुद्गल की जड़ आठ कर्म की पर्याय है। परमाणु कायम रहे, परमाणु की शक्ति कायम रहे और उसमें एक अवस्था विकृत कर्म पर्याय हो, उसे द्रव्यबन्धरूप से कहा जाता है, जो कि अजीव की पर्याय है। उस अजीव की पर्याय को जीव की कौन सी पर्याय किस बन्ध में खास निमित्त है और किस बन्ध में गौण-साधारण निमित्त है, इसकी व्याख्या है। कहो, समझ में आया? जो जीव के भाव, जीव तो वस्तु है। अनादि-अनन्त, अकृत, अनिर्मित, अनाशक—नाश न हो ऐसी अनादि-अनन्त वस्तु। उसकी चीज़ का भान नहीं होता। मैं तो आनन्द और ज्ञातादृष्टा हूँ। मुझमें मेरा आनन्द है। मुझमें मेरी शान्ति है। मुझमें मेरा सब ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसीलिए तो कहते हैं। अन्धे को कैसे दिखाई दे? उसने आँखें बन्द की हो तो। जैचन्दभाई! कौन उघाड़े? भगवान आत्मा ऐसा चैतन्य के नेत्र से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है। वह यह (जड़) आँखों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यह तो मिट्टी है, धूल है, यह तो धूल। यह तो जलकर राख हो, ऐसी राख है यह। कहो, समझ में आया? इन आँखों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। तथा अन्दर में पुण्य और पाप, दया और दान, भक्ति और व्रत के विकल्प उठते हैं, (वह) राग है। उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता, अनुभव में नहीं आता, सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! जगत को सत्य मिला नहीं और जब मिला, तब उसका अनादर कर दिया है।

यह नहीं... यह नहीं... यह निश्चय...! यह तो ऊँचा, यह तो निश्चय! यह तो ऊँचा, ऐसा कहकर अनन्त काल इसने मिथ्यात्व की सेवा में अनन्त काल व्यतीत किया है। परन्तु आत्मसेवा... आत्मसेवा कैसे हो, उसकी इसने खबर नहीं की। समझ में आया? **जीव के उसी परिणाम में...** जीव कहा यह। यह कहा ऐसा है वह। उसके भान बिना उसकी दशा में, उसके परिणाम में अर्थात् अवस्था में, उसकी वर्तमान हालत में। वर्तता मोह-मिथ्यात्वभाव। यहाँ तो नये कर्म को स्थिति पड़े और रस (अनुभाग) पड़े, उसमें यह निमित्त है और यही मुख्य बन्ध का कारण है और यही दोष का मूल कारण है, ऐसा दोनों बतलाना है। कहो, समझ में आया?

मोह और राग-द्वेष भाव। मोह, वह मिथ्यात्वभाव है और राग-द्वेष, वह चारित्र के दोष का भाव है, सम्यग्दर्शन होने पर भी ज्ञानी को भी अभी राग और द्वेष होते हैं, वे कर्म में स्थिति-रस का निमित्त है। ज्ञानी का कम्पन योग है, वह प्रकृति और प्रदेश के आने की योग्यता से आते हैं, उसमें वह योग निमित्तमात्र है। वह योग कहीं बन्ध की विशेषता का कारण नहीं है। बन्ध के कारण में विशेषता मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्यबन्ध और भावबन्ध दोनों का ज्ञान कराते हैं। उसमें भी द्रव्यबन्ध में खास बन्ध कौन और गौण बन्ध कौन, उसका ज्ञान और उसमें निमित्त में खास बन्ध का निमित्त कौन और गौण बन्ध का निमित्त कौन, इसका ज्ञान कराते हैं। गौण क्या और मुख्य क्या उसमें? भीखाभाई! कहते हैं, **जीव के उसी परिणाम में...** भगवान आत्मा ऐसे सिद्ध भगवान हुए परमेश्वर अरिहन्त, वे आत्मा में से हुए हैं, कहीं बाहर से नहीं हुए। वह बाहर से कोई दशा आवे, ऐसी नहीं है। कहो, समझ में आया? वह दशा आत्मा में से आती है। आत्मा में वह अरिहन्तदशा, सिद्धदशा, वह आनन्ददशा, वह सब आत्मा में अन्दर पड़ी है। उसका पूरा स्वरूप वह आत्मा आनन्दकन्द और पूर्णानन्द है। ऐसे आत्मा को स्वस्वभावसन्मुख होकर श्रद्धा और ज्ञान और रमणता किये बिना अर्थात् कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र को प्रगट किये बिना इसने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को सेवन किया है। वही वास्तव में दुःखदायक है और वही वास्तव में बन्ध में निमित्त कारण वास्तविक उसका है। समझ में आया?

उसी परिणाम में वर्तता हुआ मोहरागद्वेषभाव कर्म के स्थिति-अनुभाग का

अर्थात् 'बन्ध' का निमित्त होता है;... जड़कर्म में स्थिति पड़े कर्म में। कितने काल कर्म का रहना और उसमें रस पड़े, फल देने की शक्ति, ऐसा परमाणु में होता भाव, परमाणु में कर्म के बन्ध में होता विशेष भाव, उसमें निमित्तपना मोह और राग-द्वेष का बाह्य निमित्तपना वह है। समझ में आया? योग का निमित्तपना प्रकृति और प्रदेश को... प्रकृति आवे तो कर्म का स्वभाव हो परन्तु कर्म के प्रदेश होने पर उसका अनुभाग है, वह खास विशेष दु:खदायक में निमित्त है। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं, यह तो अभी सात पदार्थ, सात तत्त्व की व्याख्या चलती है। सात तत्त्व का जैसा स्वरूप है, ऐसा जाने और जानकर स्वभावसन्मुख हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे धर्म की पहली दशा प्रगट होती है। इसके बिना उसे धर्म तीन काल, तीन लोक में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया इसमें? **इसलिए मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण...** देखो भाषा! है तो भगवान आत्मा के ही दोनों भाव। आत्मा के प्रदेश का कम्पन, वह भी आत्मा की ही एक पर्याय है और विकारी मोह और राग-द्वेष, वह भी आत्मा की ही पर्याय है, परन्तु वह आत्मा के परिणाम होने पर भी, समझ में आया?

मोहरागद्वेषभाव को 'बन्ध' का अन्तरंग कारण... भगवान ने कहा। अन्तरंग कारण अर्थात् है तो वह बहिरंग कारण। बन्ध में—नये बन्ध में मोह-राग-द्वेषभाव, है तो बाह्य परन्तु मुख्यपना बतलाने के लिये उसे अन्तरंग कारण कहा। आज सूक्ष्म है। कभी इसने सात तत्त्व की पहिचान क्या कहलाती है और साथ में द्रव्य किसे कहा जाता है और पर्याय किसे कहा जाता है, यह भान नहीं होता। सात तत्त्व में द्रव्य किसे कहना और पर्याय (किसे कहना)? द्रव्य यह पैसा और पर्याय अर्थात् यह प्रजा, ऐसा होगा?

सात तत्त्व है, भगवान ने कहे हुए, उसका ज्ञान जहाँ नहीं, उसे सम्यग्दर्शन हो सकता ही नहीं। सम्यग्दर्शन बिना किसी प्रकार का धर्म उसे नहीं होता। सात तत्त्व में यहाँ तो अभी बन्धतत्त्व की व्याख्या और उस बन्धतत्त्व के दो प्रकार। एक जड़ की पर्याय का बन्ध और एक आत्मा की विकारी पर्याय का भावबन्ध। भावबन्ध जीव की पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह भावबन्ध है और जड़बन्ध की पर्याय में स्थिति,

अनुभाग, प्रकृति, प्रदेश, ये चार जड़ के हैं। उसमें प्रकृति, प्रदेश की मुख्यता नहीं है। स्थिति और अनुभाग की मुख्यता बन्ध में है। उसमें बन्ध के कारण में आत्मा का मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव अन्तरंग कारण अर्थात् मुख्य कारण है, इसलिए अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया?

और योग को—जो कि 'ग्रहण' का निमित्त है... और परमाणु रजकण जड़ के प्रकृति और प्रदेशरूप होने की योग्यता से आते हैं। उसमें आत्मा के प्रदेश का कम्पन जो आत्मा की पर्याय में होता है, वह मात्र ग्रहण का निमित्त कहने में आया है। इसलिए **उसे—'बन्ध' का बहिरंग कारण (बाह्य निमित्त) कहा है।** हैं तो दोनों बाह्य निमित्त। एक को मुख्यपने का जोर देने के लिये उसे अन्तरंग कारण कहा। एक साधारण कम्पन है, वह प्रकृति, प्रदेश में निमित्त है, इसलिए उसे बहिरंग कारण कहकर उसकी तुच्छता वर्णन की है। कहो, समझ में आया इसमें? कानजीभाई! समझ में आता है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी ही महत्ता है विपरीतता की, ऐसा कहते हैं। प्रदेश का कम्पन है अन्दर। यह शरीर नहीं, हों! यह तो मिट्टी है, यह तो अजीवतत्त्व है।

अन्दर आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। वे कँपते हैं, उसे योग कहा जाता है। भगवान उसे योग कहते हैं। वह कम्पन का योग वह नये कर्म में प्रकृति, प्रदेश में निमित्त। प्रकृति-प्रदेश साधारण बात है। उसमें कोई स्थिति, अनुभाग बिना दुःख में निमित्त होने का कारण नहीं है। इसलिए उसका निमित्त योग भी साधारण बहिरंग कारण कहने में आया है। परन्तु उसके साथ मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम, वे वास्तव में दुःखदायक जीव का भावबन्धस्वरूप, जीव की विकारी पर्याय, वह भावबन्ध। वह नये प्रकृति, प्रदेश में पड़ती स्थिति और रस में वह अन्तरंग कारण, मुख्य कारण गिनकर अन्तरंग कारण कहा गया है। कहो, समझ में आया? हो गया, बहुत समय हो गया। देखो! इसमें आधा घण्टा तो हुआ! अब इसमें याद रहे या नहीं? पाँच मिनिट में कुछ बोल सके या नहीं? कुछ नहीं भाई! रखो ऐसा का ऐसा १४९ (गाथा)।

इसमें क्या कहा कि यह आत्मा है, उसका शाश्वत् रहनापना और शाश्वत् उसका

स्वभाव। आत्मा वस्तु है, वह कायम रहनेवाला और उसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव ध्रुव कायम रहनेवाले। ऐसे कायमी चीज़ की श्रद्धा, ज्ञान बिना उसे अकृत्रिम यह बाहर के संयोगी निमित्तों की अनुकूलता, प्रतिकूलता में मुझे ठीक-अठीक की मान्यता और या ठीक-अठीक का राग-द्वेष, ऐसे जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव, वे वास्तविक भावबन्धरूप है और नये बन्ध में स्थिति और रस पड़ने में वास्तविक अन्तरंग कारण, मुख्य कारण उसे गिनने में आया है।

उस परिणाम के काल में जीव का कम्पन वर्ते, वह कम्पन बन्ध में निमित्त है। वह बन्धरूप तो है। परन्तु कम्पन है साधारण, वह कहीं आत्मा को दुःखदायक नहीं है, इसलिए उस कम्पन को साधारण प्रकृति और प्रदेश में ग्रहण करने का निमित्त कहकर उसे बन्ध का गौणपना कहने के लिये उसकी अधिकता न बतलाकर, उसमें अधिकता नहीं; इसलिए प्रदेश का कम्पन वह प्रकृति और प्रदेश को निमित्त होता है। प्रकृति, प्रदेश जड़ की पर्याय, वह कम्पन यह। परन्तु वास्तव में आत्मा में स्वभाव को भूलकर होता मिथ्यात्वभाव और भूलकर अस्थिरता से होता भाव, राग और द्वेष, पुण्य और पाप दोनों बन्ध के कारण नये कर्म, स्थिति पड़े, उसमें उसे अन्तरंग कारण गिनने में आया है। कहो, धर्मचन्दजी! डॉक्टर की बात कितनी याद रहे? ऐसी यह बात याद रहे या नहीं? अभी कोई पूछा जाये? यह उतरता है वह।

अब १४९ गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त मुनि हुए। यह गाथा उनकी बनायी हुई है और इसका अर्थ-टीका की है ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य महासन्त दिगम्बर मुनि ने। जंगल में रहते थे। उनकी यह संस्कृत टीका है। इसकी गाथा १४९ है।

गाथा - १४९

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति।।१४९।।

हेतुश्चतुर्विकल्पोऽष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यन्ते।।१४९।।

मिथ्यात्वादिद्रव्यपर्यायाणामपि बहिरणङ्गकारणद्योतनमेतत् ।

तन्त्रान्तरे किलाष्टविकल्पकर्मकारणत्वेन बन्धहेतुर्द्रव्यहेतुरूपश्चतुर्विकल्पः प्रोक्तः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगा इति । तेषामपि जीवभावभूता रागादयो बन्धहेतुत्वस्य हेतवः, यतो रागादिभावानामभावे द्रव्यमिथ्यात्वासंयमकषाययोगसद्भावेऽपि जीवा न बध्यन्ते । ततो रागादीनामन्तरङ्गत्वान्निश्चयेन बन्धहेतुत्वमवसेयमिति ।। १४९ ।।

–इति बन्धपदार्थव्याख्यानं समाप्तम् ।

प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे।।१४९।।

अन्वयार्थ :- [चतुर्विकल्पः हेतुः] (द्रव्यमिथ्यात्वादि) चार प्रकार के हेतु [अष्टविकल्पस्य कारणम्] आठ प्रकार के कर्मों के कारण [भणितम्] कहे गये हैं; [तेषाम् अपि च] उन्हें भी [रागादयः] (जीव के) रागादिभाव कारण हैं; [तेषाम् अभावे] रागादिभावों के अभाव में [न बध्यन्ते] जीव नहीं बँधते।

टीका :- यह, मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का [१]प्रकाशन है।

ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु जीवभावभूत रागादिक हैं; क्योंकि [२]रागादिकभावों का अभाव होने से द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्य-असंयम, द्रव्यकषाय और

---

१. प्रकाशन=प्रसिद्ध करना; समझाना; दर्शाना।
२. जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं। यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र

द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं। इसलिए रागादिभावों को अन्तरंग बन्धहेतुपना होने के कारण [3]निश्चय से बन्धहेतुपना है, ऐसा निर्णय करना॥१४९॥

इस प्रकार बन्धपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ।

गाथा - १४९ पर प्रवचन

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति।।१४९।।

प्रकृति प्रदेश आदि चतुर्विधि कर्म के कारण कहे।
रागादि कारण उन्हें भी, रागादि बिन वे ना बंधे।।१४९।।

इसकी टीका। टीका है न? **यह,...** इसमें क्या कहा जाता है? क्या कहते हैं कि **मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (प्रत्ययों को)...** अर्थात् कि कर्म के जड़पने में जो दर्शनमोह के परमाणु पड़े हैं, चारित्रमोह के परमाणु पड़े हैं। वह कम्पन होने में भी जो शरीरादि के परमाणु की प्रकृति पड़ी है, वह **(-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का प्रकाशन है।** समझ में आया? मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्ये अर्थात् जड़, वह नये बन्ध में बहिरंग कारण है। कौन? वह जड़-जड़। दर्शनमोह की प्रकृति है, चारित्रमोह की प्रकृति है, आठ कर्म हैं। यह आठ कर्म का उदय नये कर्मबन्धन में जैसे वहाँ योग को बाह्य कारण कहा था, समझ में आया? उसी प्रकार यह एक भी बाह्य कारण है।

पुराने जड़कर्म का उदय नये बन्धन को बाह्य कारण है। अन्तरंग कारण अज्ञानी के मिथ्यात्व राग-द्वेष के भाव। अज्ञानी आत्मा को भूलकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे

से बन्ध हो तो सर्वदा बन्ध ही रहे (-मोक्ष का अवकाश ही न रहे), क्योंकि संसारियों को सदैव कर्मोदय का विद्यमानपना होता है।

३. उदयगत द्रव्यमिथ्यात्वादि प्रत्ययों की भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं, इसलिए उन्हें 'निश्चय से बन्धहेतु' कहे हैं।

तो उस बन्ध में वह बाह्य कारण होता है, यह अन्तरंग कारण करे तो। यह अन्तरंग कारण न करे तो जो जड़ का उदय है, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं होता। देखो! यहाँ जड़कर्म का उदय आत्मा को विकार करावे, यह बात झूठी सिद्ध करते हैं। कर्म-वर्म आत्मा को विकार करावे या कर्म का उदय आवे तो आत्मा को दोष हो, यह भगवान के न्याय में शास्त्र में नहीं है। समझ में आया?

मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को (प्रत्ययों को)... द्रव्य प्रत्यय, समझ में आया? यह जड़ मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग जो जड़ प्रकृति-प्रकृति। मिट्टी आठ कर्म, उसे नये आठ कर्म के बन्ध में बहिरंग कारणपने का प्रकाशन है। बाह्य कारण है। यह अज्ञानी राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो बाह्य कारण होता है। राग-द्वेष अज्ञान न करे तो बाह्य कारण भी नहीं होता। उसका कहीं जोर नहीं। जोर अज्ञानी का है। समझ में आया?

कहते हैं न भाई! कि कर्म का उदय आवे तो आत्मा को... दर्शनमोह का उदय हो तो मिथ्यात्व करना पड़े, यह यहाँ खोटी बात है, कहते हैं। झूठी (बात है)। तुझे जड़ और चैतन्य का भान नहीं। वह जड़ की पर्याय पाक में आवे तो चैतन्य को मिथ्यात्व की विकारी पर्याय करनी पड़े, ऐसा है ही नहीं। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का स्वामी नहीं है। वह स्वतन्त्र है। इसी तरह अन्दर चारित्रमोह का कर्म का उदय आवे (तो) हमें वेद-वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म के कारण करना पड़ते हैं, (यह) एकदम झूठ बात है। अत्यन्त पाखण्डी ने मानी हुई बात है। ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

प्रकाशन=प्रसिद्ध करना; समझाना; दर्शाना। प्रकाशन कहा है। उसमें ऐसा था कि नया जो बन्ध पड़े, उसमें योग का बाह्य कारण निमित्त था। क्योंकि उसकी कुछ विशेषता नहीं है, मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम इसके हैं तो बाह्य निमित्त, परन्तु वह मुख्य निमित्त नये बन्ध का अन्तरंग कारण। यहाँ पुराने कर्म हैं अभी, उनकी यह बात है। वे नये बन्ध को किस प्रकार बन्ध का बाह्य कारण होतु हैं। समझ में आया?

१४८ में तो नया बन्ध होता है। उसमें अज्ञानी के परिणाम कहाँ मुख्य निमित्त है कि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष। कम्पन, वह कहीं उसका कारण नहीं। वह तो मात्र प्रकृति-प्रदेश आवे, उसमें निमित्त है, इतनी साधारण बात कर डाली। तब अब? पुराने-

जूने कर्म हैं, वे नये का बन्धन होता है न? तो कहते हैं वह बाह्य कारण है। किसे? कि जो अन्दर आत्मा को भूलकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव करे, उसे नये बन्धन में वास्तविक कारण अज्ञानी के भाव हैं, उसे पुराने कर्म निमित्तरूप से कहे जाते हैं।

बाह्य कारण, आत्मा विकार न करे और आत्मा के स्वभाव सन्मुख-देखकर आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करे तो कर्म के उदय हो, वह अपने आप खिर जाता है। बाह्य कारण भी नये को बन्ध में नहीं होता। समझ में आया? पुकार करते हैं न लोग जैन में कि भाई! अपने तो कर्म है। दूसरे को ईश्वर हैरान करे, इसे कर्म हैरान करे। यह तो उससे अधिक मूढ़ हुआ। क्योंकि दूसरे का ईश्वर चैतन्य, वह उसे हैरान करे। इसका ईश्वर कर्म। कर्म ने मार डाला, कर्म ने हैरान किया, कर्म का पाक आवे तो दुःखी हो जाते हैं। इसका ईश्वर कर्म, जड़, मिट्टी। अनन्त ईश्वर जड़।

यहाँ भगवान कहते हैं कि तू मूढ़ हो गया? कर्म तुझे विकार करावे और कर्म तेरा ईश्वर, किसने तुझे कहा? समझ में आया? ओहोहो! तेरे स्वरूप को स्वयं भूलकर और तू विकार करे, तब पूर्व के कर्म को निमित्त कहा जाता है, तब नये बन्ध को निमित्तकारण कहा जाता है और तेरा भाव, वह मुख्य कारण बन्ध में कहा जाता है। समझ में आया? कर्म ने इसे अज्ञान में भुलाया है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या कहते हैं? यह किसकी चलती है? तूने तुझमें विपरीतता लगायी है। कोई कर्म-वर्म बाधक नहीं, ऐसा कहते हैं। मोहनभाई! आहाहा! यह तो पुकार करते हैं न जहाँ और तहाँ, अरे भाई! ढँके कर्म ऐसे उदय में आवे! यह ढँके कर्म की खबर पड़ती नहीं, भाई! ऐसी बातें फुरसत में हो तब महिलायें करती हैं मुफ्त की! और आदमी भी स्त्रियों जैसे हों न भान बिना के, वे भी ऐसी बातें किया करते हैं। यह कर्म बापू! कठोर हों और बाँधे हुए हों न, निध्धत और निकाचित हो न, वे अपने भोगना पड़ें। भगवान कहते हैं तुझे ऐसा किसने कहा? मूर्ख! ऐसी बात लाया कहाँ से? किसी के पास तूने सुनी होगी, मूर्खों के पास। मूरख से यह सुनी है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। हमने कहा नहीं और ऐसा है नहीं।

यहाँ आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, जिन्होंने १४९ गाथा लिखी, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य करते हैं कि भाई! यह नये कर्म बन्धन में तेरा अज्ञानभाव और राग-द्वेषभाव करे तो वह निमित्त होता है। तो पुराने कर्म को निमित्तरूप से कहा जाता है। परन्तु जड़कर्म का उदय आया, इसलिए मुझे विकार करना ही पड़े, ऐसा भगवान ने कहा नहीं। तेरी मान्यता में मिथ्याश्रद्धा में गड़बड़ उठी है। मिथ्याश्रद्धा तेरी है और ऐसा मानता है और तू कहता है कि हम सच्चा मानते हैं। कहो, समझ में आया?

ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में) मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। गोम्मटसार आदि में। मिथ्यात्व, यह मिथ्यात्व कौन? जड़, हों! दर्शनमोह। अन्दर एक जड़ प्रकृति दर्शनमोह है। मोहनीयकर्म के दो भाग। एक दर्शनमोह और एक चारित्रमोह। यहाँ अभी जड़ की बात चलती है। सुनो! यह मिथ्यादर्शनमोह, असंयम चारित्रमोह, कषाय चारित्रमोह, योगकम्पन नामकर्म....

इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को) आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्धहेतु कहे हैं। देखो! यह गोम्मटसार में ऐसा कहा है, उसका स्पष्टीकरण हम यहाँ करते हैं, ऐसा कहते हैं। वहाँ कहा है कि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग। कषायमात्र में ही आ गया। यह चार प्रकार के जड़कर्म आठ नये कर्मों के बन्ध के कारण कहे हैं, **उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु...** वे पुराने कर्म जो नये का बन्ध होता है, उसका हेतु, उसका हेतु, **जीवभावभूत रागादिक हैं;...** यह आत्मा मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव करे, तब नये कर्म के बन्धन में पुराने कर्म को बाह्य कारण कहा जाता है। समझ में आया?

देखो! यहाँ तो दर्शनमोह का उदय हो तो आत्मा को मिथ्यात्व करावे, यह यहाँ इनकार करते हैं। चारित्रमोह का उदय हो तो आत्मा को भाई! चारित्रमोह ऐसा कर्म आड़े आवे! कि राग-द्वेष अन्दर से सिर घूम जाता है। राग-द्वेष कोई कर्म का उदय आवे तो होते हैं। मूढ़ है। ऐसा तुझे किसने कहा? ऐसी उल्टी मान्यता कहाँ से लाया? जड़कर्म तुझे विकार करावे, परद्रव्य तुझे विकार करावे, तुझसे निराला तत्त्व, वह तुझे

दोष करावे—ऐसा भगवान कहते हैं हमने देखा नहीं, ऐसा कहा नहीं, शास्त्र में ऐसे कथन आये नहीं। समझ में आया?

कहो, यह गोम्मटसार में सब आता है या नहीं? एक व्यक्ति कहता था कि गोम्मटसार में लिखा है कि चारित्रमोह का उदय हो तो क्रोध होता है। लो! एक पण्डित ने एक लड़के को थप्पड़ मारी। ऐसी मारी कि अरे! भाई पण्डित! तुम इस लड़के को क्या करते हो? तुम्हें खबर नहीं, ज्ञान नहीं। क्या ज्ञान नहीं? गोम्मटसार में लिखा है कि चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध होता है। बहुत अच्छा किया बापू! ठीक सीखा तू यह। यह अन्ध अच्छा सीखा तू! सिर में मारी तो क्रोध से... परन्तु तू क्या करता है? तुमको खबर नहीं। वह पण्डित था। तुम कुछ पढ़े हो? कर्मकाण्ड, कर्म ग्रन्थ सीखे और कर्म में ऐसा लिखा है। चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध होता है। साला! मूरख! ऐसा किसने कहा है? कहाँ कहा है? ऐसा हो नहीं सकता। तूने क्रोध किया, तब चारित्रमोह के उदय को बन्ध का बाह्य निमित्त कहने में आया। जड़कर्म तुझे दोष करावे? समझ में आया? कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई। स्तुति में आता है। आता है या नहीं? कर्म विचारे कौन? वह तो जड़-मिट्टी है। आठ कर्म धूल है। जैसी यह धूल है, वैसी सूक्ष्म धूल कर्म है। उसे तो खबर भी नहीं कि मेरे ऊपर कौन आरोप डालता है?

'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघाति लोह की संगति पाई।' अग्नि लोह का संग करे तो घनघात पड़ते हैं। इसी प्रकार आत्मा विकार के भावकर्म का संग करे तो उसे दुःखदायक है। कर्म उसे दुःख करावे और संग (करने का कहता नहीं)। कर मेरा संग! मैं उदय आया, इसलिए मेरा संग कर, ऐसा (कर्म) कहता है? वह तो जड़ है। कहो, जैचन्दभाई!

मुमुक्षु : प्रभु आप.... ही खिलाते हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हं,... है ऐसा। गुलाँट खा। ऐसा कहते हैं। उल्टी मान्यता छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। जैचन्दभाई! उल्टी मान्यता छोड़ दे। ऐसी प्रतिकूलता आयी और इस शरीर में रोग आये और अब हो गये ऐसे के थेथड़ा-पेथड़ा और इसलिए दुःखी। छोड़ दे, यह मान्यता तेरी भ्रमणा है। बाहर के कारण तुझे दुःख है नहीं। ऐसा कहते हैं।

जैचन्दभाई! पागल भूल जाता है। एक रात जहाँ जाये और नींद न आवे वहाँ यह भूल जाता है। और सवेरे आवे खोंखारो करते हुए। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा देखा, ऐसा जाना, ऐसा कहा, ऐसा है कि जड़कर्म का पाक आवे तो जीव को विकार करना पड़े, ऐसा भगवान इनकार करते हैं। अज्ञानी कहता है कि नहीं... नहीं, वह भले कहते भगवान परन्तु शास्त्र में लिखा है न दूसरे ग्रन्थ में। दूसरे ग्रन्थान्तर में लिखा है न? यहाँ भले इनकार करे, परन्तु वहाँ लिखा है, किन्तु उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया?

गोम्मटसार में कर्मकाण्ड में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका। ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को आवृत किया। मूढ़ है! ऐसा उसका अर्थ नहीं है। तुझे नहीं आता। तब? तू तेरे ज्ञान को उल्टा विपरीत करे, तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहने में आता है। उसने तुझे ज्ञान को रोका है, ऐसा हमने कहीं शास्त्र में कहा नहीं। भान नहीं होता-भान नहीं होता! कहो, समझ में आया? ज्ञान में हीनाधिकपना हो, वह तो कहीं कर्म के कारण होता होगा या नहीं? ज्ञानावरणीय और यहाँ आठों कर्म लिये हैं या नहीं? ज्ञानावरणीय का कोई उदय तीव्र हो तो ज्ञान कम हो, मन्द हो तो कुछ ज्ञान उघड़े। तुझे किसने कहा? कर्म के कारण होता है, ऐसा तुझे किसने कहा?

नव तत्त्व में अथवा सात तत्त्व में जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व दोनों पृथक् हैं। उन अजीवतत्त्व की पर्याय के कारण तेरी पर्याय हो, यह तो दोनों तत्त्व एक हो गये। दो तत्त्व भिन्न रहे नहीं। कर्म का उदय, वह जड़तत्त्व है और तेरा विकार करना, वह चैतन्य का विकार, वह आस्रव, बन्धभाव है। उस दूसरे तत्त्व से दूसरे में हो, ऐसा भगवान ने किसी शास्त्र में कहा नहीं। और जिस शास्त्र में कहा निमित्तरूप से आठ कर्म के उदय से बाह्य बन्ध पड़ता है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं और उसका स्पष्टीकरण यह है। यह कर्म के निमित्त में नये बन्धन में पुराने कर्म निमित्त हों, **उन्हें भी बन्धहेतुपने के हेतु...** वह निमित्त जो नये को हो, उसका हेतु अज्ञानी का भाव। **जीवभावभूत रागादिक हैं;...** राग-द्वेष, मिथ्यात्वभाव है। यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष जीव करे तो नये कर्म को पुराने कर्म निमित्तरूप से कहने में आते हैं। न करे तो पुराने कर्म खिर जाते हैं। नये बँधते नहीं। तेरे

अधिकार की बात है। यह तो जैन में तो कितने ही तो ऐसा ही मानकर बैठे हैं कि अपने को कर्म हैरान करते हैं। अपने को कर्म हैरान करते हैं। अपने कर्म के खिलौने, खिलौने। कर्म का खिलौना। वह जादूगर डोरी जैसे हिलावे, वैसे पुतलियाँ हिले; इसी प्रकार हम कर्म जैसा हिलावे, वैसा हिलना। मूढ़ है मिथ्यादृष्टि, तुझे ऐसा किसने मनाया, ऐसा तुझे किसने कहा?

मुमुक्षु : अभी सम्प्रदाय में तो ऐसा ही है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कहीं अपने काम नहीं है। यहाँ तो वस्तु क्या है, उसकी बात होती है। कहो, समझ में आया इसमें? यहाँ तो भगवान आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं कि तुझे बँधे हुए कर्म जो जड़ पड़े हैं, ऐसे दूसरे ग्रन्थान्तर में अन्य ग्रन्थ में कहा है कि जड़कर्म का उदय नये बन्ध का इतना कारण होता है। उसमें ऐसा हमारे कहना है कि पुराने कर्म नये बन्ध का कारण कब होते हैं, नये बन्ध के हेतु कब पुराने होते हैं कि उसका हेतु तू मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे तो। समझ में आया?

है या नहीं सब स्पष्टीकरण है या नहीं? बहुत... देख लिया। दर्शनमोह का उदय हो तो भी मिथ्यात्व हो, ऐसा है नहीं। चारित्रमोह का उदय हो तो राग-द्वेष हो, ऐसा है नहीं। देखो! **उन्हें भी...** अर्थात् कि नये कर्म में पुराने कर्म हेतु हो-निमित्त हो, उसे भी **बन्धहेतुपने के हेतु...** नये बन्ध के हेतु के हेतु, **जीव भावभूत,...** राग-द्वेष, काम-क्रोध, मिथ्यात्वभाव। **क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से...** देखो! क्योंकि आत्मा ही स्वयं अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि पुरुषार्थ से करके शुद्धस्वभाव में रमणता के भाव किये तो आत्मा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव का भाव नहीं है।

ऐसे **रागादिकभावों का अभाव होने से द्रव्यमिथ्यात्व-जड़कर्म का उदय, द्रव्य-असंयम-चारित्र का उदय, द्रव्यकषाय और द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** कहो, इतनी तो बात! यह द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्यकषाय, द्रव्ययोग, समझ में आया? द्रव्यअसंयम, अव्रतपरिणाम जड़ के हों! जड़ के चारित्रमोह के। ऐसा होने पर भी जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव न करे तो वह बन्ध के कारण में निमित्त नहीं होते।

कर्म का घोटाला तो इतना भरा है न! इसलिए इतना तो स्पष्टीकरण आचार्य

महाराज जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। प्रकाशन हुआ था न? प्रसिद्ध करना, समझाना, दर्शाना। क्या कहा? भाई! तूने तेरी सम्हाल नहीं की, इसलिए तुझमें मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव हुआ, इसलिए पुराने कर्म नये का हेतु तेरे भाव का, उसमें हेतुपना हुआ तो नये का हेतु पुराने को कहने में आता है। परन्तु पुराने कर्म के उदय काल में तू यदि आत्मा की दृष्टि और धर्मदृष्टि आत्मज्ञान और आत्मस्वभाव का भान कर तो राग और मिथ्यात्व के भाव में पुराने कर्म, बन्ध में निमित्त भी नहीं होते। समझ में आया?

समाज में तत्त्वज्ञान घट गया और बाहर की क्रिया-काण्ड के थोथा रह गये। वास्तविक तत्त्वज्ञान क्या है, उसका भान गोथाई गया। छोटाभाई! ऐसा होगा या नहीं? ऐसा ही है न? वह तो वहाँ बलीन में मास्टर थे। अहमदाबाद, ईडर, नहीं? ईडर न, छोटूभाई! सर्वत्र गप्प-गप्प चलती है, कहते हैं। भगवान... यहाँ आचार्य ने नाम देकर तो स्पष्टीकरण किया है। यह ग्रन्थान्तर, इस ग्रन्थ के अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों में कहा हो कि कर्म पुराने, नये बन्ध का कारण तो उसका अर्थ ऐसा करना कि तू यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष भाव कर तो पुराने कर्म को नये में बन्धन हेतु में हेतु तू हो तो बन्धन का हेतु होता है। तू यदि ज्ञान-श्रद्धा को आत्मा की सच्ची पहिचान कर तो पुराने कर्मबन्ध का निमित्तपना भी होता नहीं। क्योंकि हेतु को हेतु मिला नहीं।

नये बन्ध का हेतु पुराने कर्म, उसे हेतु ऐसे। राग-द्वेष के भाव तूने नहीं किये तो क्या कर्म का उदय आता है तो राग-द्वेष करना पड़ते हैं और उसके कारण कर्म है, ऐसा नहीं है। तीन काल-तीन लोक में ऐसा नहीं है। अज्ञानियों ने जगत को भ्रमणा में डालकर भुलाया है। यह उसे समझाते हैं। समझ में आया? उसने कहा न, प्रसिद्ध-प्रकाशन। प्रकाशन का उद्योत् शब्द पड़ा है। '**बहिरंग कारण उद्योतमेतत्**' भगवान आचार्य उद्योत करते हैं। भाई! अनादि से अज्ञान की तेरी बड़ी भूल है। पुराने कर्म हमारे शास्त्र में आया है, गोम्मटसार में भी आया है। ज्ञान का बढ़ना-घटना ज्ञानावरणीय का जैसा उदय आवे, वैसा होता है। हमारे ज्ञान कम करने का भाव है? हाँ! कम करने का भाव नहीं। तेरे ज्ञान की पर्याय तू उल्टी कर और तू कहे कि कर्म के कारण हुई। मूढ़ है। महा मिथ्यात्व के नये पाप को बाँधता है। यह वास्तव में बन्धन और पाप का कारण है। विशेष कहेंगे।	(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४८, गाथा-१४९-१५०, आसोज कृष्ण ०३, शनिवार, दिनांक -२४-१०-१९६४

नौ पदार्थ का वर्णन है। नौ पदार्थ का वास्तविक ज्ञान हो तो उसे आत्मा का ज्ञान अन्तर होकर सम्यग्दर्शन होता है। इससे यह नौ तत्त्व जैसे हैं, वैसे भगवान ने जाने, ऐसा कहा, ऐसा है। वह किस प्रकार है, उसका अधिकार चलने पर अभी बन्ध अधिकार चलता है।

जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा इतने अधिकार हो गये हैं। यह बन्धतत्त्व किसे कहना? तो आत्मा वस्तु स्वभावरूप से तो ज्ञान-आनन्द का धाम शुद्ध पवित्र है। वह वस्तु स्वयं निज स्वभाव से तो अबन्ध है। समझ में आया? उसका स्वरूप सच्चिदानन्द, निर्मल, अनन्त चेतनगुण का धाम ऐसा आत्मा दृष्टि का विषय करने से, वह वस्तु अबन्ध है। वह वस्तु आत्मा के स्वभाव में बन्ध नहीं। उस स्वभाव को भूलकर चैतन्यज्योत ज्ञानानन्द को भूलकर वर्तमान में पुण्य और पाप के विकारी स्निग्धता के मोह और राग-द्वेषभाव करता है, वह भावबन्ध है। और वह नये द्रव्यकर्म के जड़ का वह भावबन्ध निमित्त कारण है। समझ में आया?

द्रव्यबन्ध और भावबन्ध की क्या व्याख्या है? उसकी यह व्याख्या चलती है। कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति होने पर भी अनादि से उसका जहाँ भान नहीं, उसे मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, ऐसे भाव उसकी पर्याय में करता है। कर्ता स्वतन्त्र होकर विकार करता है। वह विकार नये द्रव्यकर्म को बाह्य निमित्त है, तथापि पुराने कर्म नये कर्म को जो बाह्य निमित्त हैं, उनकी अपेक्षा इसकी विशेषता बतलाने को पुराने आठ कर्म नये बन्ध का कारण वह बाह्य निमित्त है। क्योंकि आत्मा यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव करे तो नये कर्म को बाह्य निमित्तकारण होता है। नये कर्म को पुराने बाह्य निमित्त होते हैं। तो वास्तव में द्रव्यबन्ध का वास्तविक कारण जीव का मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव है। रावजीभाई! समझ में आया?

यह बात—यहाँ १४८ में ऐसा वर्णन आ गया कि बन्ध जो होता है जड़, उसमें आत्मा के प्रदेश का कम्पन है, उसे बाह्य निमित्त कहते हैं। ऐसा कहा, क्योंकि पाठ ऐसा

था कि '**जोग गहणं**' मात्र कर्म के स्वभावरूपी प्रकृति और परमाणु, उनका आना हो, उसमें योग निमित्त है। इसलिए योग वास्तव में बन्ध में बाह्य निमित्त गिनने में आया है। क्योंकि उससे कहीं मूल कर्म में स्थिति और अनुभागरस जो पड़े, उसका वह कारण योग नहीं है। योग तो परमाणु आने को स्वभाव होने में निमित्त है। इसलिए योग की कम्पन पर्याय तो आत्मा की है, तथापि उसे ग्रहण के आने में निमित्त गिनकर बाह्य कारणरूप से जोग को कहा है। और आने में अन्तरंग कारणरूप से निमित्त मोह-राग-द्वेष और मिथ्यात्व आदि के भाव को नये बन्ध में अन्तरंग कारण अर्थात् मूल कारण कहने में आया है। समझ में आया?

अब यहाँ जो १४८ गाथा में कहा था कि नये कर्मबन्धन में पुराने कर्म निमित्त है, निमित्त योग है और अन्तरंग कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। ऐसा कहा था। यहाँ विशेष बात थोड़ी बढ़ाई, कि पुराने कर्म भी नये कर्म में बाह्य निमित्त है। जैसे योग निमित्त कहा था, वैसे पुराने कर्म नये को बाह्य निमित्त है। कब? कि यदि जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव करे तो। यह बात अब अधिक वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया? देखो! टीका, फिर से १४९। १४९ गाथा की टीका।

यह, मिथ्यात्वादि द्रव्यपर्यायों को, (प्रत्ययों को) अर्थात् पुराने जो जड़कर्म हैं, १४९ की टीका हिन्दी-हिन्दी-गुजराती। पुराने जो दर्शनमोहकर्म है, चारित्रमोहकर्म है या नामकर्म है। यह द्रव्य प्रत्यय कहलाते हैं। जड़ प्रत्यय कहो या द्रव्य प्रत्यय कहो या अजीव प्रत्ये कहो। **यह (-द्रव्यमिथ्यात्वादि पुद्गलपर्यायों को) भी (बन्ध के) बहिरंग-कारणपने का प्रकाशन है।** क्या कहा? १४८ गाथा में ऐसा कहा था। नये कर्मबन्धन में योग का कम्पन आत्मा की पर्याय बाह्य निमित्त कहा था और मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष अन्तरंग निमित्त कहा था। १४९। समझ में आया?

वह यह १४९ गाथा में नये कर्म को पुराने कर्म बाह्य निमित्त हैं, ऐसा सिद्ध करना है। देखो! मिथ्यात्व आदि द्रव्य... धीरे-धीरे समझने जैसी जरा सूक्ष्म बात है। जड़कर्म जो पुराने जड़कर्म हैं, दर्शनमोह, चारित्रमोह उसे यहाँ द्रव्य प्रत्यय कहते हैं। द्रव्य आस्रव कहो, द्रव्य प्रत्यय कहो, वह जड़ का उदय। वह नये बन्धन को बहिरंग कारणपने का इस गाथा में प्रकाशन है।

अब कहते हैं, **ग्रन्थान्तर में (अन्य शास्त्र में)...** गोम्मटसार आदि में **मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रकार के द्रव्यहेतुओं को (द्रव्यप्रत्ययों को)...** दर्शनमोह, चारित्रमोह। चारित्रमोह में असंयम और कषाय दोनों आ गये। और योग में नामकर्म और शरीर आ गये। यह दूसरे शास्त्रों में इन चार प्रकार के द्रव्य प्रत्ययों को आठ प्रकार के कर्मों के कारणरूप से बन्ध हेतु कहा है। दूसरे शास्त्रों में ग्रन्थ में गोम्मटसार कर्मकाण्ड में पुराने द्रव्य प्रत्यय, पुराने कर्म, जड़, वे नये बन्ध का कारण कहा गया है।

अब उसमें स्पष्टीकरण करते हैं। उन्हें भी बन्ध हेतुपने के हेतु, वे पुराने जड़कर्म चार उदय में होने पर भी नये कर्म को निमित्तरूप से बन्ध हेतु कब होते हैं कि उस हेतु में बन्ध हेतुपना जीवभावभूत रागादिक है। जीव यदि मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव करे तो पुराने कर्म नये (कर्म को) बाह्य निमित्त होते हैं। जो राग-द्वेष और मिथ्यात्व न करे और पुराने कर्म उदय में हो तो नये बन्ध का कारण नहीं होते। रावजीभाई! पुराने कर्म उदय में आवे, इसलिए मिथ्यात्व और राग-द्वेष करना पड़े, ऐसा नहीं है। यह ग्रन्थान्तर में जो कहा कि चार पूर्व के प्रत्ययों दर्शनमोह, चारित्रमोह में अव्रत और कषाय और योग आ जाते हैं। ये चार आठ कर्म के बन्ध के कारण पुराने कर्म का उदय नये बन्ध को कारण कहने में आया है।

यहाँ अब कहते हैं कि उस निमित्त में भी वह हेतु जो नये के थे, उनका हेतु जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेष करे तो वह नये कर्म को बाह्य हेतु कहने में आता है। समझ में आया? **उन्हें भी...** उन्हें अर्थात् पुराने जड़कर्म के उदय को भी **बन्ध हेतुपने के...** वह बन्ध हेतु कब कहलाये? कि उसके **हेतु जीवभावभूत रागादिक हैं;...** यदि जीव आत्मा के ज्ञातादृष्टा को भूलकर पुण्य और पाप के परिणाम में अपनापन मानकर भ्रमणा करे और पर आदि की क्रिया मेरे कारण से होती है, ऐसा मिथ्यात्वभाव सेवन करे तो वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव वह पुराने कर्म को निमित्त होने पर पुराना कर्म नये का निमित्त होता है। रावजीभाई! सूक्ष्म बात! वह पुराना कर्म उदय आवे, इसलिए बन्ध होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा यदि राग-द्वेष और मिथ्यात्व

न करे, आत्मा ही मिथ्या भ्रमणा और राग-द्वेष न करे तो द्रव्य मिथ्यात्व, दर्शनमोह का द्रव्य मिथ्यात्व, वह बन्ध का कारण नहीं होता। द्रव्य मिथ्यात्व जड़। भाव मिथ्यात्व जीव न करे तो द्रव्य मिथ्यात्व से नया बन्धन नहीं होता। वास्तव में द्रव्य मिथ्यात्व बन्ध का कारण नहीं है। वह द्रव्य मिथ्यात्व का उदय होने पर भी जीव सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पर्याय प्राप्त करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त भी न होकर निर्जरा का कारण हो जाता है। समझ में आया?

यह लोग कहते हैं न कि भाई! कर्म का उदय आवे, इसलिए जीव को राग-द्वेष करना पड़े। मिथ्यादृष्टि है वह। अथवा कर्म का उदय आवे तो डिग्री टू डिग्री विकार करना पड़े। डिग्री टू डिग्री थर्मामीटर आता है न कि भाई! शरीर में जितना बुखार आवे, उतना (थर्मामीटर में) बुखार आवे। इसी प्रकार कर्म का उदय आवे, उसके प्रमाण में जीव को मिथ्यात्व और राग-द्वेष करना पड़े। वीतराग कहते हैं कि तेरी मान्यता एकदम भ्रम और अज्ञान है। रावजीभाई! ऐसा ही चलता है न अभी सब, ऐसा ही चलता है।

क्या कहते हैं, देखो! कि पुराने कर्म द्रव्यमिथ्यात्व और द्रव्यचारित्र जड़ नये को बाह्य हेतु कब होते हैं? कि उस हेतु को जीव हेतु राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव होवे तो। परन्तु जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव न करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त भी नहीं होते। समझ में आया? यह वर्तमान में बहुत ही गड़बड़ चलती है। पण्डित नाम से और त्यागियों के नाम से। रावजीभाई! रावजीभाई को खबर है न? ये तो निवृत्तिवाले व्यक्ति हैं। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो! पुराने को बन्ध हेतुपने के हेतु जीव राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो पुराने कर्म नये को निमित्त कहलाते हैं।

क्योंकि रागादि भावों का अभाव होने पर, नीचे फुटनोट में। **जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से...** जीव स्वयं ही आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है। ऐसी अन्तर्दृष्टि और स्वभाव का भान करने से **जीवगत रागादिरूप भावप्रत्ययों का अभाव होने से...** अर्थात् कि स्वभाव का भान करने से, मैं ज्ञायक शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ। यह पुण्य-पाप के विकल्प जरा होते हैं, वे मुझसे पृथक् आस्रवतत्त्व हैं। कर्म और शरीर, वह अजीवतत्त्व है। कर्म और शरीर, वह अजीवतत्त्व है। मेरी पर्याय में अपराध से पुण्य

और पाप की वृत्तियाँ होती हैं, परन्तु वह मलिन आस्रवतत्त्व है। मैं एक ज्ञायकतत्त्व हूँ। ऐसा चैतन्य के ज्ञायक का सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने पर उसे भाव प्रत्यय अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष नहीं होते। समझ में आया?

यह **भावप्रत्ययों का अभाव होने से द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी...** पुराने कर्म उदय में आने पर भी, दर्शनमोह, चारित्रमोह जड़रूप से आने पर भी, रहने पर भी, होने पर भी, जीव बँधते नहीं। स्वयं आत्मा की वीतराग दृष्टि करे, ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। मेरे स्वभाव में विकार नहीं, विकार में मैं नहीं। अजीव में मैं नहीं, मुझमें अजीव नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि भिन्न भान करे, उसे नये कर्म में जो पुराने कर्म बाह्य निमित्त होने पर उसका हेतु यहाँ अज्ञानभाव रहा नहीं। इसलिए उसे पुराने कर्म नये कर्म को निमित्त नहीं होते। वे पुराने कर्म उदय में आने पर भी विद्यमान रहने पर भी, होने पर भी। राग-द्वेष और अज्ञान जीव न करे तो पुराने कर्म नये बन्ध में निमित्त नहीं होते। पण्डितजी! बहुत ही गड़बड़ करते हैं। यहाँ पण्डित भी गड़बड़ करते हैं। रावजीभाई! पण्डित लोग भी ऐसा ही चलाते हैं।

मुमुक्षु : पण्डित गड़बड़ नहीं करते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक कहते हैं। यह ठीक कहते हैं। नहीं समझे हुए गड़बड़ करते हैं। नामधारी। भाव पण्डित हो, वह गड़बड़ नहीं करता। बात सच्ची है।

यहाँ कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा देवाधिदेव परमेश्वर ने कहा, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य इस प्रकार से दो हजार वर्ष पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ थे। वे महाविदेहक्षेत्र में भगवान के पास आठ दिन रहे। गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से यहाँ आकर यह शास्त्र रचे हैं। उसमें इस शास्त्र की गाथा १४९, पंचास्तिकाय। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने ९०० वर्ष पहले महामुनि भावलिंगी सन्त महन्त ज्ञानी-ध्यानी, उन्होंने यह टीका की है। उस टीका में ऐसा कहते हैं कि भाई! प्रभु! तू आत्मा है न, भाई!

यह आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को भूले और राग-द्वेष में धर्म माने, निमित्त के कारण मुझमें कार्य होता है और मैं दूसरे के कार्य कर दूँ, ऐसी दो द्रव्य के प्रति

एकताबुद्धि करे और विकार से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यात्वभाव यदि सेवन करे तो उसे नये कर्म में पुराने कर्म जो हेतु थे, उनका हेतु इसने दिया, इसलिए नये में पुराने कर्म निमित्त हुए। परन्तु यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेष यदि जीव न करे तो पुराने कर्म उदय में होने पर भी जीव को बन्ध का कारण नहीं होता। स्पष्ट है इसमें। देखो!

यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी... देखो! **द्रव्यप्रत्ययों के विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं।** जड़कर्म भले हो। वह तो मिट्टी-धूल है, परवस्तु है, वह कहीं आत्मा को विकार कराते नहीं। वह विकार कराते नहीं और वास्तव में वे बन्ध के निमित्त भी नहीं हैं। वे तो बहिरंग कारण हैं। अन्तरंग कारण तू मिथ्यात्व और राग-द्वेष कर तो बहिरंग कारण कहलाता है। अन्तरंग कारण तो तेरा मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव ही बन्ध में कारण है। समझ में आया? है या नहीं पण्डितजी! देखो!

द्रव्यप्रत्ययों के... अर्थात् कि जड़ उदय **विद्यमानपने में भी जीव बँधते नहीं हैं। यदि जीवगत रागदिभावों के अभाव में भी द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र से बन्ध हो...** जीव अपने स्वभाव की दृष्टि करके रागादि को ज्ञान में पृथक् जाने और वैसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान करे, ऐसे जीव को **द्रव्यप्रत्ययों के उदयमात्र से बन्ध हो...** पुराने कर्म का उदय बन्ध का कारण हो तो सर्वदा बन्ध ही रहे। कभी मुक्ति होने का प्रसंग ही न बने। समझ में आया?

(-मोक्ष का अवकाश ही न रहे), क्योंकि संसारियों को सदैव कर्मोदय का विद्यमानपना होता है। कर्मोदय तो सदा होता है। इसलिए कर्मोदय के कारण तुझे विकार हो तो कभी छूटने का प्रसंग बने नहीं। रावजीभाई! देखो! गाथा ऐसी आयी हे, हों बराबर! आहाहा! अभी तो यह ही विपरीतता (बात चलती है) बस! विकार हो वह कर्म के कारण होता है, विकार हो... परन्तु बापू! कर्म अजीवतत्त्व है, विकार आस्रवतत्त्व है, आत्मा ज्ञायकतत्त्व है।

सात तत्त्व में भिन्न-भिन्न की यह व्याख्या चलती है। नवपदार्थ की व्याख्या। तो कर्म, शरीर अजीवतत्त्व में जाते हैं। पुण्य-पाप के भाव मिथ्यात्वभाव आस्रवतत्त्व में जाते हैं। भगवान ज्ञायकतत्त्व आत्मा है। ऐसा जिसे ज्ञायकतत्त्व का भान नहीं, उसे

मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव हो, वह कर्म का विद्यमान उदय होने पर भी पुरुषार्थ उल्टा करे तो होता है। सुलटा करे तो कर्म उदय होने पर भी विकार नहीं होता। यह तो कहे—क्या करें हमारे कर्म का उदय, शास्त्र देखो! विकार कर्म के उदय बिना बना हो तो लाओ दृष्टान्त। विकार कर्म के बिना, परन्तु यहाँ कहते हैं कि कर्म का उदय हो और विकार करे, करना पड़े तो सदा संसार से कोई मुक्त होगा नहीं। सदा ही कर्म का उदय तो रहा ही करता है। भारी गड़बड़ चली है, बहुत ही गड़बड़।

कर्म के नाम से, अन्य में ईश्वर कर्ता, इसे कर्म कर्ता अर्थात् जड़ कर्ता, वह ईश्वर करावे, हिलावे, ऐसे हिलना। पत्ता भी ईश्वर के बिना नहीं हिलता। जैन में कहे, नाम धरानेवाले जैन, हों! कर्म प्रमाण विकार होता है, आत्मा कर्म का खिलौना है। जैसे खिलावे वैसे खेलता है। मूढ़ है। तेरा ईश्वर कर्ता जड़ हो गया। सीधे ऐसा हुआ या नहीं? वह ईश्वर कर्ता कहे, चैतन्यवाला है नहीं। थोथा! यह कहे कि हमारे कर्ता कर्म। अपने जैन हैं और इसे कर्म भटकावे। चार गति में निगोद में, एकेन्द्रिय में, दो इन्द्रिय में कर्म भटकावे। भगवान कहते हैं कि ऐ मूढ़! ऐसा तूने कहाँ से कहा? ऐसा निकाला कहाँ से? हमने तो ऐसा कभी कहा नहीं। पण्डितजी! क्या कहा?

क्योंकि रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा ही अपने स्वभाव की दृष्टि और विकारी दृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ—ऐसी दृष्टि करे तो उसे द्रव्यमिथ्यात्व होने पर भी, जड़कर्म में द्रव्यमिथ्यात्व का उदय होने पर भी, दर्शनमोह का उदय होने पर भी, यहाँ विकार होता नहीं। पण्डितजी! यहाँ थोड़ा निर्णय कर देना। यह पण्डितजी बाहर के सुधरे हुए में सबमें मिलते हैं, जहाँ हो वहाँ। ठीक बात है या नहीं? निर्णय करना चाहिए। यह तो वीतरागमार्ग है। यह तो जैन परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग है। यह कोई कल्पित या दुनिया के साथ मिले, ऐसा नहीं है।

यह तो तीन काल, तीन लोक में सर्वज्ञ ने देखा हुआ स्वरूप, इस प्रकार से कहा हुआ और इस प्रकार से है। तीन काल में दूसरे प्रकार से नहीं हो सकता। और अन्यमत की या दूसरे के साथ इसका कहीं मिलान खाये, ऐसा है नहीं। मिलान समझते हो? मिलान, समन्वय करते हैं न, समन्वय। दूसरे के साथ समन्वय हो, ऐसा वीतरागमार्ग है

नहीं। देखो! क्या कहा? जैन में रहने पर भी ऐसा मानता है कि कर्म का उदय आवे चारित्रमोह का उदय आवे, इसलिए राग-द्वेष के भाव करना पड़ते हैं। देखो! यह राम और लक्ष्मण! रामचन्द्रजी लक्ष्मण को छह-छह महीने तक रखा। यह चारित्रमोह का उदय था, इसलिए राग हुआ। भगवान इनकार करते हैं कि तेरी यह बात मिथ्या है। तुझे एकदम भ्रमणा हुई है।

यह द्रव्यमिथ्यात्व होने पर भी भावमिथ्यात्व न करे तो बन्धन है नहीं। भावमिथ्यात्व करना, न करना, वह द्रव्यमिथ्यात्व के कारण नहीं है। तेरे उल्टे पुरुषार्थ के कारण से है। द्रव्यमिथ्यात्व-द्रव्य असंयम देखो! द्रव्य असंयम। द्रव्य असंयम अर्थात् जड़ का उदय अव्रत का। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान है जो कर्म जड़, उसका उदय। यह उदय, वह तुझे राग-द्वेष कराता है—ऐसा नहीं है। **द्रव्य-असंयम, द्रव्यकषाय और द्रव्ययोग के सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** जड़ का उदय होने पर भी जीव राग-द्वेष स्वयं न करे, मिथ्यात्वभाव न करे तो कर्म से बँधता नहीं।

जड़ का उदय ही विकार करावे और विकार करना पड़े तो कभी उसे सम्यग्दर्शन होने का भी प्रसंग बनता नहीं। शान्ति और वीतरागदृष्टि होने का भी प्रसंग नहीं बनता। इसलिए तेरी बात एकदम झूठी है। जड़कर्म हो, इसलिए विकार होता है। यहाँ इनकार करते हैं कि जड़कर्म के विद्यमानपने में-अस्ति में भी यदि जीव अपने पुरुषार्थ से (आत्मा) ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द का भान करे तो उसे जड़कर्म के कारण से विकार करना पड़े, ऐसा है नहीं। रावजीभाई! यह निर्णय करना पड़ेगा, हों! अभी यह सब बहुत गड़बड़ चली है। उसमें मुख्य-मुख्य तुम्हारे जैसे को तो यह सब निर्णय करना पड़े। तुम्हारे कारण लड़के—विद्यार्थी भी ऐसा समझे। लो! है या नहीं? वहाँ कारंजा में व्यवस्थापक हैं वहाँ। कारंजा में। बालब्रह्मचारी। वहाँ कर्ता-हर्ता। समझ में आया?

यह गाथा ऐसी ली है न! कि भाई! द्रव्यकर्म बन्ध का हेतु नहीं। द्रव्यकर्म के निमित्त में तू यदि विकार करे तो निमित्त हो। न करे तो वह द्रव्यकर्म छूट जाता है। द्रव्यकर्म उदय आया, इसलिए मुझे राग-द्वेष... चारित्रमोह का उदय आया हो तो राग-द्वेष होते हैं। भगवान इनकार करते हैं। असंयम का विद्यमान उदय होने पर भी जीव

राग-द्वेष असंयम न करे तो बन्धन नहीं होता। है टीका में, स्पष्ट शब्द है, पाठ में, हों! पूरी गड़बड़ कर्म की अभी इतनी अधिक है न? बस। प्ररूपणा करते हैं ऐसी! अपने तो भाई! कर्म के कारण हैं। गति में कौन ले जाये? कर्म। आत्मा को जाने का भाव है? परन्तु वह अपनी पर्याय की योग्यता से गति में जाता है। कर्म के कारण नहीं। वह तो जड़ परद्रव्य है। परद्रव्य तुझे कहीं तेरे कार्य में तिरा दे? समझ में आया? उसका उदय होने पर भी तू यदि अज्ञान और राग-द्वेष न करे तो वह तेरे अधिकार की बात है। समझ में आया?

देखो! क्योंकि राग-द्वेष के अभाव में धर्मी जीव को यह कर्म का असंयम का उदय होने पर भी, जीव स्वयं ही अपने में राग-द्वेष के भाव को न करे तो वह असंयम का उदय **सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं हैं।** असंयम के उदय में भी जीव राग-द्वेष स्वयं न करे तो असंयम से नया बन्धन नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु साहेब! उदय आवे तब क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय आवे उसके कारण से। उदय जड़ में आता है। यह आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर पुण्य-पाप और पर को माने-पर को अपना माने, तो मिथ्यात्व के कारण नया बन्धन पड़ता है। पुराने कर्म उदय में आये, इसलिए मिथ्यात्वभाव रना पड़ता है, ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। चारित्रमोह का उदय आया, इसलिए राग-द्वेष (करने पड़ते हैं)। नहीं, चारित्रमोह का द्रव्य (कर्म) का उदय होने पर भी, विद्यमान होने पर भी तू राग-द्वेष न करे तो बन्धन नहीं होता। इसलिए उदय तुझे राग-द्वेष कराता है, ऐसा तीन काल, तीन लोक में वस्तु में नहीं है। भाई! समझ में आया? आहाहा! देखो न! क्या कहते हैं?

द्रव्यमिथ्यात्व, द्रव्यअसंयम अर्थात् जड़ उदय, द्रव्यकषाय अर्थात् चारित्रमोह का उदय और द्रव्ययोग अर्थात् नामकर्म का उदय। यह सद्भाव में भी उसके उदय की अस्ति होने पर भी जीव यदि विकारादि का भाव न करे तो बँधता नहीं है। स्पष्ट बात है या नहीं? या कोई थोड़ी गड़बड़ है? स्पष्ट लिखा है।

पण्डितजी! इस गाथा में बन्ध अधिकार है। भावबन्ध, द्रव्यबन्ध में निमित्त होता

है। बस, द्रव्यबन्ध तो जड़ (और) भावबन्ध यदि करे तो निमित्त होता है। न करे तो द्रव्यबन्ध खिर जाता है। द्रव्यबन्ध उदय में आया, इसलिए जीव को विकार करना पड़ेगा, यह एकदम खोटी बात है। मिथ्यादृष्टि की पुष्टि करनेवाले का यह भाव है। जड़कर्म आवे तो हमारे राग करना पड़े। पुरुषवेद का उदय आवे न, तो वासना होती है। मूढ़ है। तुझे किसने कहा?

यह तो कहते हैं। वासना होती है, जड़ का-वेद का उदय आया, वह तो जड़ में आया। तुझे वासना करना, न करना, यह तेरी स्वतन्त्र चीज़ है। वेद का उदय आया, इसलिए तुझे वासना करनी पड़े? भगवान इनकार करते हैं। बात तो सच्ची हो, वह इसे जाननी पड़ेगी या नहीं? हम क्या करें भाई! हमारे ऐसा वेद का उदय आता है न, तो भोग की वासना होती है। भगवान कहते हैं कि मूढ़ है। किसने तुझे कहा? ऐसा तू कहाँ से सीखा? कहाँ से ऐसा सीखा? कर्म को तो हम जानते हैं। कर्म तो वह जानता भी नहीं। कर्म की स्थिति, वर्णन और अनुभाग कैसे हैं, वह तो हमको भगवान ने कहा है। वह हम कहते हैं कि कर्म के उदय काल में तू विकार न कर तो बन्ध नहीं होता। कर्म के उदय काल में तुझे विकार करना ही पड़े, ऐसा हम नहीं कहते। समझ में आया?

ओहोहो! जैन में यह एक भारी गड़बड़! और फिर प्ररूपणा करे लोगों को बेचारे सुननेवालों को भान नहीं होता। चारित्रमोह के उदय से ही बड़े रामचन्द्रजी जैसे भी छह-छह महीने तक लक्ष्मण को कन्धे पर रखना पड़ा। भाई! चारित्रमोह का उदय है। और वह चारित्रमोह बन्द पड़ा, इसलिए शान्त हो गये। भगवान इनकार करते हैं। चारित्रमोह का उदय असंयम का उदय होने पर भी, जीव राग-द्वेष करे तो उसे निमित्त बन्ध में कहा जाता है। राग-द्वेष न करे तो उदय-उदय खिर जाये, उसके कारण से। रावजीभाई! बात तो ऐसी है। समझ में आया? क्या कहा? देखो!

रागादिकभावों का अभाव होने से... आत्मा में राग और द्वेष को, राग शब्द से उसमें मिथ्यात्व लेना। मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का जीव अभाव करने से द्रव्यमिथ्यात्व उदय हो, सद्भाव हो। द्रव्य-असंयम का सद्भाव चारित्रमोह का उदय हो, जड़कषाय का उदय हो और द्रव्ययोग नामकर्म का उदय हो, वैसे सद्भाव में भी जीव बँधते नहीं। क्योंकि संसारियों को सदा ही कर्मोदय का विद्यमानपना होता है। फिर कर्म का उदय,

वह विकार करावे तो कभी मुक्त होने का प्रसंग आवे नहीं। इसलिए यह बात सच्ची नहीं है। लॉजिक से-न्याय से तो आचार्य बात करते हैं।

आचार्य महाराज को करुणाबुद्धि से विकल्प आया है। शास्त्र, शास्त्र से रच गये जड़ से। वह तो जड़ की पर्याय है। वह कहीं आचार्य ने की नहीं। यह तो परमाणु की यह पर्याय है। परमाणु की पर्याय से यह शास्त्र रच गये हैं। आत्मा ने रचे नहीं। आत्मा उसका रचनेवाला है ही नहीं। तीन काल में जड़ की पर्याय का रचनेवाला हो सकता नहीं। यह अन्तिम श्लोक में आता है। हमने यह शास्त्र नहीं रचे। शब्दों से शास्त्र रच गये हैं। अन्तिम शब्दों में आता है। समझ में आया? जड़ की पर्याय आत्मा करे? भाषा की पर्याय आत्मा करे? आत्मा में रजकण पड़े हैं, उसकी खान में?

मुमुक्षु : इकट्ठे होकर करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन इकट्ठा होकर करे। कभी तीन काल में (नहीं करता)। अपने स्वचतुष्टय में प्रत्येक द्रव्य विराजमान है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में। कोई दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में दूसरा द्रव्य (नहीं है)।

मुमुक्षु : दो के मिश्रण के बड़े-बड़े कथन आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिश्रण आया है न अभी, आया है न कथन! खोटा-खोटा पण्डित के नाम धराकर! मिश्रण हो दोनों का। किसे मिश्रण भगवान! आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में पोताना समझे? अपना। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; भाव अर्थात् शक्ति त्रिकाल; काल अर्थात् वर्तमान पर्याय। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तो नास्ति है। और पर परमाणु आदि पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से उसमें नास्ति है।

यह कर्म के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कर्म में हैं, आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में कर्म है ही नहीं। रावजीभाई! आत्मा में कर्म नहीं। आत्मा में कर्म है? आत्मा तो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और परमाणु परमाणु से एक-एक परमाणु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है और आत्मा में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह अँगुली का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसमें (अँगुली में) है। इस अँगुली का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसमें है। इसका इसमें अभाव और इसका इसमें अभाव। ऐसा परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—परमाणु द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; भाव अर्थात् शक्ति-गुण; पर्याय अर्थात् अवस्था। वह परमाणु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है। आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं। भावार्थ इसका सच्चा हो वह होता है या खोटा होगा? 'सत्य शोधन' है यह। समझ में आया?

आत्मा में कर्म नहीं। हाय... हाय! चिल्लाहट मचा दे! आत्मा में कर्म होगा? स्वद्रव्य में परद्रव्य होगा? परद्रव्य में स्वद्रव्य होगा? और स्वद्रव्य में परद्रव्य होगा? अपने-अपने द्रव्य में सब है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कब कहलाता है? उसके उदय काल के समय जड़ में उदय आया और तू विकार तेरे उल्टे पुरुषार्थ से कर तो उसे निमित्त कहा जाता है। न करे तो निमित्त खिर जाता है। तेरे अधिकार की बात है। नहीं कि चारित्रमोह का उदय आवे, इसलिए हमारे वासना करनी पड़े। अनन्तानुबन्धी आदि क्रोध का उदय आवे, इसलिए हमारे क्रोध आवे ही। भगवान इनकार करते हैं। उसके उदय के सद्भाव में भी यदि तू विकार न करे तो उसका सद्भाव खिर जाता है। बन्ध का कारण होता नहीं। समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था।

इसलिए रागादिभावों को... अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव जीव करे, उसे **अन्तरंग बन्धहेतुपना होने के कारण...** अन्तरंग क्यों? कि बाहर में उदय जो आया द्रव्यमिथ्यात्व का, द्रव्यचारित्रमोह का, वह बाह्य निमित्त कहने में आया। नये कर्म को। परन्तु उसे भी यह राग-द्वेष और मिथ्यात्व करे तो इसे अन्तरंग कारण कहने में आया। देखो! कर्म को बाह्यकारण कहने में आया। नया बन्ध हुआ उसे।

बन्धहेतुपना होने के कारण निश्चय से बन्धहेतुपना है... निश्चय श्ब्द से, निश्चय से बन्धहेतु शब्द से, नये बन्ध को यह तो बाह्यनिमित्त है। जीव के राग-द्वेष, मोह परिणाम भी। तथापि निश्चय से बन्धहेतु क्यों कहा? इसमें नीचे स्पष्टीकरण किया है। नीचे देखो! फुटनोट। **उदयगत द्रव्यमिथ्यात्वादि प्रत्ययों की भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं...** अर्थात् क्या कहा? उदयगत जो जड़कर्म का

उदय दर्शनमोह का, चारित्रमोह का, उन प्रत्ययों की भाँति ये नये को बाह्यनिमित्त पुराना है। इसकी **भाँति रागादिभाव नवीन कर्मबन्ध में मात्र बहिरंग निमित्त नहीं हैं किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं...** अर्थात् खास यह कारण है, ऐसा कहना है। अन्तरंग, नहीं तो यह भी बाह्य है। नये बन्ध का मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव पुराना वह बाह्य थे परन्तु उस पुराने कर्म का बाह्यनिमित्तपना क्यों कहा कि उसकी कोई विशेषता नहीं। वह जड़कर्म का उदय होने पर भी जीव विकार न करे तो नये बन्ध का यह बाह्यनिमित्त भी नहीं है। क्योंकि अन्तरंग कारण हुआ नहीं इसलिए।

फिर से। पुराने कर्म द्रव्यमिथ्यात्व द्रव्यचारित्रमोह का उदय होने पर भी। यदि उदय हो और जीव यदि राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव करे तो वे नये कर्म को बाह्यनिमित्त कहलाते हैं। क्योंकि मूल कारण अज्ञान और मिथ्यात्व और राग-द्वेष निमित्त कारण है। इसके बिना पुराने कर्म को बाह्यनिमित्त भी कहने में नहीं आता। बाह्यनिमित्त को साधारण बात की, नये कर्म को वास्तव में बन्धन में जीव यदि मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव करे तो वह वास्तविक कारण बन्धन में कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

किन्तु वे नवीन कर्मबन्ध में 'अन्तरंग निमित्त' हैं... कौन? वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव। **इसलिए उन्हें 'निश्चय से बन्धहेतु' कहे हैं।** नहीं तो निश्चय से बन्धहेतु नहीं। निश्चय से बन्धहेतु तो जीव अपने परिणाम को करे, वह निश्चय से बन्धहेतु। नये बन्ध को तो वह बाह्यहेतु है। नये आठ कर्म को मोह, राग-द्वेष के परिणाम बाह्यहेतु हैं। परन्तु उनका बाह्यहेतु पुराने कर्म को बाह्यहेतु गिनकर क्योंकि वह विद्यमान होने पर भी जीव यदि मोह-राग-द्वेष न करे तो बन्ध का कारण नहीं, इसलिए मोह और राग-द्वेष को वास्तविक अन्तरंग कारण बन्ध में कहने में आया है। यह तो शब्द-शब्द में न्याय से उसमें तोलकर आना चाहिए। एक भी (शब्द) का अन्तर पड़े तो पूरे तत्त्व का सब फेर पड़ जाता है। सात तत्त्व रहते नहीं।

अजीव के कारण आस्रव हो तो आस्रव और अजीव दोनों एक होने से सात तत्त्व भिन्न नहीं रहते। कर्म का उदय जड़ है, उसके कारण यहाँ आस्रव हो तो सात तत्त्व नहीं रहते। यहाँ सात तत्त्व को पृथक् करके नौ पदार्थ की व्याख्या करनी है। पुण्य और पाप,

आस्रव, संवर, बन्ध और मोक्ष-जीव-अजीव दोनों द्रव्य हैं। सात उनकी पर्याय है। जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं। सात इनकी पर्यायें हैं। पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। सात पर्याय जीव में और सात पर्याय जड़ में। ऐसा वापस दोनों में।

इस प्रकार यहाँ भावबन्ध और द्रव्यबन्ध, भावबन्ध जीव की पर्याय है, द्रव्यबन्ध जड़ की पर्याय है। समझ में आया? द्रव्यबन्ध अर्थात् पर्याय है। कर्म की पर्याय है, वह कहीं द्रव्य नहीं। कर्म का उदय वह पर्याय है। उसके द्रव्य-गुण तो कायम हैं। उदय आना, कर्म का पाक आना वह तो पर्याय है। उस जड़ की पर्याय को द्रव्यहेतु कहा है। जीव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष को भावबन्ध का हेतु कहा है। नये बन्ध में भावबन्ध कहा है। वह जीव की विकारी पर्याय है। वह अजीव की विकारी पर्याय है। उसे द्रव्यहेतु कहा, इसे भावहेतु कहा। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! अभी तो यहाँ सात तत्त्व की लगायी है। नौ पदार्थ किसे कहना। ऊपर है न? नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन। ऊपर। नौ पदार्थ के पृथक्पनेपूर्वक मोक्षमार्ग का प्रपंच अर्थात् विस्तार का वर्णन। समझमें आया? है पण्डितजी ऊपर? नौ पदार्थ का अभी वर्णन है। (गाथा) ५४ से अपने मोक्षमार्ग का अधिकार चल गया है, वाँचन हो गया है। यह ५३ तक नहीं वाँचन हुआ था, इसलिए ५३ चलता है।

यह तो नौ पदार्थ क्या है? भिन्न। एक पदार्थ दूसरे के कारण हो तो नौ पदार्थ साबित नहीं होते। इसलिए यह सिद्धान्त कहा है कि कर्म का उदय अजीवतत्त्व है। वह अजीवतत्त्व की पर्याय है। और आस्रव, वह जीव की विकारीपर्याय है। इसलिए यदि कर्म के उदय के कारण आस्रव हो तो वह अजीव और आस्रव दोनों एक तत्त्व (हों तो) नौ नहीं रहते। भाई! हमें कर्म के उदय के कारण पुण्य का भाव होता है। कर्म मन्द पड़े तो हमको पुण्य का भाव होता है। कर्म अजीव यहाँ पुण्य-परिणाम जीव की विकारी पर्याय दोनों एक हो जायें, ऐसा नहीं है। राग की मन्दता तू कर तो पुण्य होता है। राग की तीव्रता तू कर तो पाप होता है। राग बिना का मेरा चैतन्य भिन्न है, ऐसा सम्यग्दर्शन कर तो संवर, निर्जरा होती है। समझ में आया?

मूल जैनदर्शन की नौ की मूल पद्धति क्या है, इसकी भी खबर नहीं होती और

इसे अब धर्म करना है! चलो भाई! हमारे धर्म करना है, परन्तु बापू! भाई नौ क्या है? नौ में द्रव्य कितने, नौ में पर्याय कितनी, उस पर्याय में जीव की पर्याय कितनी, जड़ की पर्याय कितनी, ऐसा भेद जाने बिना एक-दूसरे में खिचड़ा करे तो उसे नौ पदार्थ की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

इस प्रकार बन्धपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। लो! १४९ तक में बन्ध पदार्थ की व्याख्या की। बन्ध पदार्थ के दो प्रकार वर्णन किये। द्रव्यबन्ध, भावबन्ध। द्रव्यबन्ध जड़ के नये परमाणु पड़े, वह और पुराने बन्ध पड़े हुए हैं, उनका उदय आने पर भी जीव भावबन्ध के विकारी परिणाम न करे तो उसे बन्ध नहीं होता। समझ में आया?

अब मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है। मोक्ष, वह पर्याय है। वह द्रव्य-गुण नहीं। समझ में आया? जैसे पुण्य भी विकारीपर्याय है, पाप विकारीपर्याय है, आस्रव विकारीपर्याय है, भावबन्ध विकारीपर्याय है। संवर-निर्जरा, वह अविकारी अपूर्ण पर्याय है। मोक्ष, वह पूर्ण अविकारीपर्याय है। मोक्ष, वह गुण नहीं, द्रव्य नहीं। द्रव्य त्रिकाली है, गुण त्रिकाली है। मोक्ष नयी पर्याय होती है। वह सादि-अनन्त अवस्था है, परन्तु वह पर्याय है। केवलज्ञान पर्याय है, केवलज्ञान वह गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली है। यह इसे न जाने तो यह अभी अनादि की गड़बड़ उठी है। यह कर्म के कारण विकार होता है और मैं विकार करूँ तो मैं कर्म बाँधता हूँ। दोनों झूठ बात! कर्म के कारण विकार हो तो अजीव के कारण आस्रव हो, दोनों तत्त्व की एकताबुद्धि मिथ्यात्व है। और मैंने आस्रव किया, इसलिए मैंने कर्म बाँधे। कर्म की पर्याय तू बाँधे, वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय तेरे अधिकार की बात है कि तू बाँधे? रावजीभाई! प्रत्येक शब्द में न्याय है, हों! समझने जैसी बात है। बहुत घोटाला है। यह तो एक-एक गाथा ऐसी है! पंचास्तिकाय में १७३ गाथा है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में विस्तार नौ पदार्थ का। पंचास्तिकाय में नौ पदार्थ का विस्तार है न? अजीव की पर्याय सात, अजीवद्रव्य। जीव की पर्याय सात, जीवद्रव्य। उनकी व्याख्या किस प्रकार पर्याय कैसे है भिन्न-भिन्न, उसका यह स्वरूप है। उसे ऐसे न जानकर एक-दूसरे को मिश्रण करके माने तो उसे सात तत्त्व की भिन्नता की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। उसे सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता। पण्डितजी!

बराबर आये हो न, गाथा भी ऐसी ठीक आयी है, हों! दूर से आये हो न दूर से, पहले-वहले आये हो। भाई भी पहले कभी नहीं आये? पहले यहाँ तक, आये नहीं? ...समझ में आया? क्या कहा?

इसलिए रागादिभावों को... राग शब्द से मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब राग कहलाता है। कर्मबन्धन होता है कर्म की पर्याय के कारण से, आत्मा उसे नहीं करता। क्योंकि जड़ की पर्याय है। परन्तु उसमें निमित्त होता है योग और कषाय। तो योग है, वह कम्पन प्रदेश का है। उसकी कुछ महत्ता नहीं है। परन्तु वह तो मात्र कर्म का आना प्रकृति का और प्रदेश का। उसमें योग का निमित्त अर्थात् मूल वह चीज़ गिनने में आयी नहीं। परन्तु कर्म में स्थिति और अनुभाग पड़े, वह कषाय का निमित्त है। उस कषाय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब मिलकर कषाय कहने में आता है। मिथ्यात्व भी कषाय है, अव्रत भी कषाय है, प्रमाद भी कषाय है और कषाय भी कषाय है।

पाँच बन्ध के कारण हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। यह योग एक नामकर्म में जाता है। चार कषाय में जाते हैं। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद और कषाय। इस कषाय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष सब आ गये हैं। समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : कषाय में रागादि आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व। रागादि नहीं, मिथ्यात्व। राग-द्वेष तो आवे ही। इस कषाय में मिथ्यात्व आ गया। यह जड़ की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो भाव की बात है। जड़ में जड़ आ गया। वह और अलग। यह बात नहीं। यहाँ तो कषाय बन्ध का कारण कहा न? यह तो जीव के भाव की बात चलती है। कषाय बन्ध का कारण।

मुमुक्षु : कौन सी कषाय?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी कषाय? अभी तो इस कषाय की बात चलती है वहाँ उस जड़ की बात याद आ जाये। लोगों को वह प्रकृति ही अन्दर पड़ी है। वह कषाय तो जड़ है। उसके बन्धन में जीव का निमित्त कहना... कि जीव कषाय करे तो कर्म के जड़ में स्थिति-अनुभाग में निमित्त कहलाये। वह कषाय अर्थात् क्या? मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव को कषाय कहते हैं।

कषाय का अर्थ ही मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव। अकेला राग-द्वेष कषाय, ऐसा नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष मिलकर कषाय कहने में आती है। जो स्थिति, अनुभाग में निमित्त पड़ती है, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष कषाय है, वह निमित्त है। और प्रदेश तथा प्रकृति में निमित्त योग कम्पन है। कम्पन को तो साधारण बाह्यकारण ऐसा कहकर उसकी कुछ महत्ता नहीं। महात्ता तो अज्ञानी के मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी कषाय। वह स्थिति और अनुभाग में निमित्त। स्थिति और अनुभाग तो कर्म में कर्म के कारण से पड़ता है, आत्मा के कारण से नहीं। परन्तु उसकी पर्याय भिन्न और इसकी पर्याय भिन्न। इसने कषाय मिथ्यात्व सेवन किया, इसलिए वहाँ स्थिति और अनुभाग पड़ना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह तो जड़ की पर्याय स्वतन्त्र है। उस जड़ में अनुभाग और स्थिति की पर्याय वहाँ हो, तब उसे कषाय का निमित्त है। कौन सी कषाय? जीव की। कौन से भाव का? मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूपी कषाय का। समझ में आया?

यह परिणाम विकारी परिणाम जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष, उसे यहाँ कषाय, अनुभाग और स्थिति में निमित्त कहने में आता है। आहाहा! वह मिथ्यात्व मानो भाव ही उड़ गया। एक कषाय रह गया। परन्तु वह मिथ्यात्व स्वयं कषाय है। कष अर्थात् संसार आय अर्थात् बढ़ानेवाला। वह मिथ्यात्व स्वयं संसार है। वही कषाय है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग में आता है, मोक्षमार्गप्रकाशक (में आता है)। मोक्षमार्गप्रकाशक। मिथ्यात्व, वह मूल कषाय है। है न.... वह तो है न! मिथ्यात्व और राग-द्वेष कषाय है। स्थिति, रस में वह निमित्त है। इसलिए कषाय कहने से क्रोध, मान, माया, लोभ अकेले, ऐसा नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह कषाय है। रावजीभाई! विकारी भाव सब मिथ्यादृष्टि, राग-द्वेष, प्रमाद, कषाय, वह सब कषाय में जाता है। अरूपी जीव का विकारी भावबन्ध भाव, अरूपी। जड़ में स्थिति और रस पड़े वह रूपी। मिट्टी की पर्याय। वह उसके कारण से, इसके कारण से नहीं। दोनों भिन्न हैं। सबके कारण से सबमें। किसी के कारण से किसी में नहीं। कोई द्रव्य किसी के आधीन नहीं है। सभी पदार्थ स्वतन्त्र है। कहो, समझ में आया?

गाथा - १५०-१५१

अथ मोक्षपदार्थव्याख्यानम् ।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।१५०।।
कम्मसाभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।।१५१।।

हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिनः आस्रवनिरोधः।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणस्तु निरोधः।।१५०।।
कर्मणामभावेन च सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
प्राप्नोतीन्द्रियरहितमव्याबाधं सुखमनन्तम्।।१५१।।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमसंवररूपेण भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ।

आस्रवहेतुर्हि जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावः । तदभावो भवति ज्ञानिनः । तदभावे भवत्यास्रवभावाभावः । आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः । कर्माभावेन भवति सार्वज्ञं सर्वदर्शित्वमव्याबाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति । स एष जीवन्मुक्तिनामा भावमोक्षः । कथमिति चेत् । भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृत्तचैतन्यस्य क्रमप्रवर्तमानज्ञप्ति-क्रियारूपः । स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्यकर्मास्रवहेतुः । स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुबृत्तिरूपेण प्रहीयते । ततोऽस्य आस्रवभावो निरुध्यते । ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्यवीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्त-र्मुहूर्तमणिवाह्य युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानत्वमवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद्भावकर्म विनश्यति । ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापाराव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते । इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ।। १५०-१५१)

अब मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है।

मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।।१५०।।
कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।।१५१।।

अन्वयार्थ :- [हेत्वभावे] (मोहरागद्वेषरूप) हेतु का अभाव होने से; [ज्ञानिनः] ज्ञानी को [नियमात्] नियम से [आस्त्रवनिरोध जायते] आस्त्रव का निरोध होता है [तु] और; [आस्त्रवभावेन विना] आस्त्रवभाव के अभाव में [कर्मणः निरोधः जायते] कर्म का निरोध होता है। [च] और [कर्मणाम् अभावेन] कर्मों का अभाव होने से वह [सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च] सर्वज्ञ तथा सर्वलोकदर्शी होता हुआ [इन्द्रियरहितम्] इन्द्रिय रहित, [अव्याबाधम्] अव्याबाध, [अनन्तम् सुखम् प्राप्नोति] अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

टीका :- यह, [१]द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।

आस्त्रव का हेतु वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है। ज्ञानी को उसका अभाव होता है। उसका अभाव होने से आस्त्रवभाव का अभाव होता है। आस्त्रवभाव का अभाव होने से कर्म का अभाव होता है। कर्म का अभाव होने से सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता और अव्याबाध, [२]इन्द्रियव्यापारातीत, अनन्त सुख होता है। यह [३]जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। 'किस प्रकार ?' ऐसा प्रश्न किया जाए तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है: —

यहाँ जो 'भाव' [४]विवक्षित है, वह कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है। वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) वास्तव में संसारी को अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति के कारण अशुद्ध है, द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है, इसलिए उसे आस्त्रवभाव का निरोध होता है। इसलिए जिसे आस्त्रवभाव

---

१. द्रव्यकर्ममोक्ष=द्रव्यकर्म का सर्वथा छूट जाना; द्रव्यमोक्ष। (यहाँ भावमोक्ष का स्वरूप द्रव्यमोक्ष के निमित्तभूत परम संवररूप से दर्शाया है।)

२. इन्द्रियव्यापारातीत=इन्द्रियव्यापार रहित।

३. जीवन्मुक्ति = जीवित रहते हुए मुक्ति; देह होने पर भी मुक्ति।

४. विवक्षित = जिसका कथन करना है।

का निरोध हुआ है ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा अत्यन्त निर्विकारपना होने से, जिसे अनादि काल से अनन्त चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मूँद गया है ऐसा वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत करके युगपद ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय होने से कथंचित् [१]कूटस्थ ज्ञान को प्राप्त करता है और इस प्रकार वे ज्ञप्तिक्रिया के रूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से भावकर्म का विनाश होता है। इसलिए कर्म का अभाव होने पर वह वास्तव में भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रियव्यापारातीत—अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।

इस प्रकार यह (जो यहाँ कहा है), [२]भावकर्ममोक्ष का [३] प्रकार तथा द्रव्यकर्ममोक्ष का हेतुभूत परम संवर का प्रकार है॥१५०-१५१॥

गाथा - १५०-१५१ पर प्रवचन

अब मोक्षपदार्थ। अन्तिम पदार्थ रह गया। लो! आठ पदार्थ की बात हो गयी। अब मोक्ष की अन्तिम व्याख्या।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।१५०।।
कम्मसाभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।।१५१।।

---

१. कूटस्थ= सर्व काल एकरूप रहनेवाला; अचल। [ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का नाश होने पर ज्ञान कहीं सर्वथा अपरिणामी नहीं हो जाता; परन्तु वह अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित नहीं होता—सर्वदा तीनों काल के समस्त ज्ञेयों को जानता रहता है, इसलिए उसे कथंचित् कूटस्थ कहा है।]

२. भावकर्ममोक्ष= भावकर्म का सर्वथा छूट जाना; भावमोक्ष। ज्ञप्तिक्रिया में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होना, वह भावमोक्ष है अथवा सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपने की और अनन्तानन्दमयपने की प्रगटता, वह भावमोक्ष है।

३. प्रकार=स्वरूप; रीति।

मोहादि हेतु अभाव से ज्ञानी निरास्रव नियम से।
भावास्रवों के नाश से ही कर्म का आस्रव रुके।।१५०।।
कर्म आस्रवरोध से सर्वत्र समदर्शी बने।
इन्द्रिसुख से रहित अव्याबाध सुख को प्राप्त हों।।१५१।।

देखो! बन्धतत्त्व, आस्रवतत्त्व की व्याख्या कर दी। अब मोक्षतत्त्व और मोक्ष कैसे हो, उसका भी यहाँ स्वरूप साथ में कह दिया। इसकी इस ओर टीका है। टीका।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... क्या कहते हैं? दोनों साथ-साथ लेते हैं न? वह जड़कर्म जो छूट जाये, उसका नाम द्रव्यकर्ममोक्ष कहा जाता है। क्या कहा? आठ कर्म जो छूट जाये, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहलाते हैं। उनकी पर्याय का छूटने का काल और छूट गया, उसे द्रव्यमोक्ष कहा जाता है जड़। आठ या चार द्रव्यकर्म का, जिसका वहाँ छूटा, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहालाता है, निमित्त जड़। उसका निमित्त **परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।**

वह छूटते हैं—द्रव्यमोक्ष, तब जीव स्वयं आत्मा के शुद्ध आनन्द की दृष्टि का अनुभव और शुद्धचैतन्य की रमणता, ऐसा जो परम-संवररूप निर्मलपर्याय, वह परिणमा, वह परम-संवररूप भावमोक्ष, वह आत्मा की पर्याय। परम-संवररूप से मोक्ष की पर्याय आत्मा की पर्याय। जड़ की पर्याय आठ कर्म का छूटना, वह जड़ की पर्याय, उसे द्रव्यमोक्ष कहा जाता है, यह भावमोक्ष कहलाता है। भावमोक्ष द्रव्यमोक्ष को निमित्त कहलाता है। द्रव्यमोक्ष भी भावमोक्ष को निमित्त (कहलाता है)। (दोनों) पृथक्-पृथक् किसी के कारण से कोई है नहीं।

फिर से, **यह...** ऐसा शब्द आचार्य ने प्रयोग किया है न? एतत् है न अन्तिम, '**भावमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्**' ऐसा संस्कृत में है अन्तिम शब्द। पहली लाईन है संस्कृत में। **यह...** अन्तिम संस्कृत शब्द है अन्तिम। इस गाथा में क्या कहना है, कहते हैं। कि द्रव्यकर्म जो छूटे, छूटना कहो या मोक्ष कहो। द्रव्यकर्म का जड़ का छूटना, उसका हेतु निमित्त कौन? कि परम-संवररूप से भावमोक्ष। आत्मा के बिल्कुल अयोग परिणाम होना अत्यन्त शुद्ध। भावस्वरूप शुद्ध संवर, वह द्रव्यकर्म में निमित्त। समझ में आया?

द्रव्य छूटने में निमित्त। द्रव्यकर्म उसके कारण से छूटा। भावसंवर पूर्ण शुद्ध सम्यग्दर्शन का पहला संवर हुआ। स्वभाव की दृष्टि करके विकार को पृथक् अनुभव करके वह सम्यग्दर्शन हुआ। उसके साथ सम्यक् स्वसंवेदन हुआ, उसके साथ स्वरूप के आचरणरूप चारित्र हुआ। वह आचरण होते... होते.... होते.... कम्पन था, वह कम्पन भी रुक गया। अयोग परिणमन हो गया।

वह अयोग परम-संवररूपी भावमोक्ष की दशा कहने में आती है। समझ में आया? वहाँ उज्जैन में कुछ एक-दो दिन में ऐसा नहीं चलता। अमुक-अमुक बातें चले। पण्डितजी! कोई दिन रहना और पहले दिन नहीं? एक व्याख्यान में तो वर्षा आयी। व्याख्यान बन्द रहा। इस बार। फिर और दो हुए। उसमें कहीं ऐसा लगावे तो वे वहाँ समझे क्या? समझना, सूक्ष्म बात होवे तो अमुक जहाँ हो वहाँ समझना। वहाँ कोई व्याख्यान में अमुक बात आवे। दृष्टान्त, तर्क कोई मुश्किल से वह। अब हजारों लोग हों वहाँ ऐसा द्रव्यमोक्ष और ऐसा भावमोक्ष। वह कहे क्या कहते हैं यह? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान वीतराग परमात्मा का मूल नवतत्त्व का पृथक् स्वरूप कैसे है, उसकी व्याख्या चलती है। वहाँ तो साधारण कहा जाता है। आत्मा आत्मा के भान को सम्यग्दर्शन, ज्ञान को करे तो कर्मबन्धन नहीं होता। मिथ्यात्व और राग-द्वेष को करे तो कर्मबन्धन होता है। अब यह बन्धन और यह अमुक, ऐसा सब वह करे! समझ में आया? यहाँ तो पर्याय से पर्याय का स्वतन्त्र विवेक भिन्न बतलाना है। जड़ की और चैतन्य की एक-एक समय की पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न हैं। किसी के कारण कोई है ही नहीं। ऐसा बतलाना है। द्रव्यमोक्ष, वह जड़ की पर्याय है। आठ कर्म का छूटना, वह जड़ की पर्याय है। स्वतन्त्र उसके छूटने के काल में छूटती है। आत्मा ने भावसंवर किया, इसलिए उसे छूटना पड़ा, ऐसा नहीं है। इसलिए उसे भावमोक्ष को तो हेतु कहा है। उपादान तो उसका ही पर्याय छूटने के काल में छूटी है। उसे निमित्त कौन? कि परम-संवर अयोगदशा का परिणमन।

पहला मिथ्यात्वरहित परिणमन हुआ, पश्चात् अव्रतरहित हुआ, पश्चात् प्रमादरहित हुआ, पश्चात् कषायरहित हुआ, इतन संवर बढ़ता गया। फिर योगरहित हुआ—

अयोग। परमसंवर हो गया। समझ में आया? यह तो अन्तिम मोक्ष की बात है न? संवर, निर्जरा की व्याख्या तो अन्दर आ गयी है। यह तो परम-संवररूप से, भाई! ऐसा कहा। ओहोहो! आचार्य भी टीका की एक-एक बात को, संवर की व्याख्या कर गये हैं, निर्जरा की व्याख्या कर गये हैं, आस्रव की (हो गयी है)। तब कहे, मोक्ष क्या? **परम-संवररूप से भावमोक्ष...** आस्रव के बिल्कुल अभावरूपी निरोध और पूर्ण संवर की परिणति की पर्याय अस्तित्वपने प्राप्त, उसे भावमोक्ष कहा जाता है। समझ में आया? **भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।** उसका क्या स्वरूप है, वह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४९, गाथा-१५०-१५१, आसोज कृष्ण ०४, रविवार, दिनांक -२५-१०-१९६४

पंचास्तिकाय, गाथा १५०-१५१। मोक्षपदार्थ की व्याख्या। मोक्षपदार्थ नौ पदार्थ में मोक्ष किसे कहना। द्रव्यमोक्ष किसे कहना और भावमोक्ष किसे कहना? यह दो पर्यायों का वर्णन है। समझ में आया?

जीव और अजीव दो द्रव्य है, उनकी सात पर्यायें हैं। पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष पर्याय है। पर्याय है। जो जड़ कर्म है, उसमें भी सात प्रकार की पर्याय जड़ की है। ऐसा कहकर यहाँ नौ पदार्थ वर्णन किये गये हैं। उसमें भी यह एक मोक्षपदार्थ का व्याख्यान है। मोक्ष एक आत्मा की निर्मल शुद्ध पर्याय है।

भावमोक्ष, यह आत्मा की शुद्ध (पर्याय है)। अनन्त ज्ञान यह तेरहवें गुणस्थान की बात है, जड़ कर्म का (अघाति का) नाश बाद में कहेंगे। भावमोक्ष, वह आत्मा की शुद्ध परिपूर्ण पर्याय है। समझ में आया? वह जड़कर्म के नाश का जड़ का भाव होता है, उसमें यह भावमोक्ष निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? जड़ की पर्याय का मोक्ष आत्मा करता नहीं। जड़कर्म की पर्याय चार घातिकर्म का नाश आत्मा करता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ की पर्याय है। रावजीभाई! जड़ की पर्याय आत्मा कर सके? व्यय कर सकता नहीं, उत्पाद कर सकता नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। परन्तु जड़ घातिकर्म का व्यय उसके कारण से जिसमें द्रव्यमोक्ष होता है, उसमें जीव का भावमोक्ष निमित्तरूप कहने में आता है। समझ में आया?

द्रव्यमोक्ष, वह जड़ की पर्याय कर्मरूप थी, उसका छूट जाना, इसका नाम द्रव्यमोक्ष और परमाणु की पर्याय है। उसे आत्मा नहीं करता। परन्तु उसे निमित्तभूत होता है। कौन? जीव का परम-संवररूप भावमोक्ष की पर्याय, वह टले और यह टालने के कारण में इसका निमित्त कहलाता है। टलता है, उसके कारण से। समझ में आया? किसी की पर्याय किसी के आधीन है ही नहीं। द्रव्य की पर्याय जीव के आधीन या जीव की पर्याय कर्म के पर्याय के आधीन, ऐसा नहीं है। ऐसा है नहीं। इसलिए यहाँ भावमोक्ष....

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... द्रव्यकर्म अर्थात् जड़ चार घातिकर्म,... इसकी टीका है न? यह द्रव्यकर्म, यहाँ तो सिद्धान्त है। सिद्धान्त में तो एक-एक शब्द में भाव भरे होते हैं। ऐसी कोई यह वार्ता नहीं। समझ में आया? यह द्रव्यकर्म जो जड़ है, उसकी पर्याय का व्यय होता है। घातिकर्मरूप जो यह चार कर्म की पर्याय है, उसका व्यय हो, वह द्रव्यकर्ममोक्ष कहलाता है। उसके हेतुभूत उसका निमित्त। निमित्त अर्थात् कि जो हो, उसे निमित्त कहा जाता है। निमित्त से यहाँ होता तो उसे निमित्त नहीं कहा जाता। समझ में आया?

घातिकर्म चार, उसका उत्पादरूप पर्याय जो कर्मरूप जड़ में है, उस कर्म की पर्याय का उसे व्यय का काल है, नाश का। घातिपर्याय के उत्पाद का जो भाव, उसके नाश का काल है। अर्थात् कि अकर्मरूप परिणमना। कर्मरूप पर्याय घाति की है, वह अकर्मरूप पर्याय हो, उसका नाम घातिकर्म का मोक्ष हुआ अथवा द्रव्यमोक्ष हुआ, ऐसा कहने में आता है। उसे हेतुभूत उसका निमित्त, उसका कर्ता नहीं। जड़कर्म की पर्याय घाति का नाश व्यय का, उसके काल में जीव का परम-संवररूप शुद्ध पर्याय निमित्त कहने में आती है। समझ में आया इसमें?

अब यह **परम-संवररूप से भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है।** वहाँ पहले भावमोक्ष के स्वरूप का कथन है। अब भावमोक्ष किसे कहना, यह बात जरा सूक्ष्म पड़ेगी, यह बाद में लेंगे। पहले साधारण बात लेते हैं। देखो! **आस्रव का हेतु...** नये कर्म रजकण आवे, उसका निमित्त। आस्रव अर्थात् नये रजकण आवें, उसके कारण से। वह आस्रव जड़, उसका हेतु अर्थात् निमित्त **वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है।** समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वरूप को स्वयं भूलकर, अपने स्वरूप को स्वयं भूलकर मिथ्यात्वभाव करे और राग-द्वेषभाव करे, वह जीव का भाव जीव की पर्याय में उसके अस्तित्व में है। वह आस्रव का हेतु था। नये रजकण घातिकर्म के आवें, उसका वह निमित्त हेतु था। वह आस्रव का हेतु नये रजकण तो उसके कारण से आने की योग्यता से आते थे। उसका हेतु—निमित्त जीव का मोह-राग-द्वेषरूपभाव। मोह शब्द से मिथ्यात्व

और राग-द्वेष शब्द से चारित्र दोष। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के विकारी अरूपी जीव की पर्याय के दोषरूपीभाव वह जड़कर्म के आने के काल की उसकी योग्यता से आते थे, उसमें यह हेतु मोह और राग-द्वेष के परिणाम निमित्त थे। वह ज्ञानी को उनका अभाव होता है, यह बात पहले सिद्ध करते हैं।

ज्ञानी को अर्थात् आत्मा अखण्ड ज्ञान चैतन्य द्रव्यस्वभाव पूर्ण। ज्ञानी की दृष्टि संयोग से हट जाती है। पुण्य-पाप के विकल्प के अस्तित्व में से हट जाती है। वर्तमान अल्पज्ञ, अल्प दृष्टि, अल्प वीर्य के विकासवाला भाव, उससे दृष्टि हट जाती है। दृष्टि पूर्ण ज्ञायक पर जाती है। उस पूर्ण ज्ञायक पर दृष्टि जाने से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। मिथ्यात्व के भाव का व्यय होता है। समझ में आया?

यह अभाव पहला मिथ्यात्व का कहा, दूसरा राग-द्वेष का। ज्ञानी को स्वरूप की दृष्टि के भाव से मिथ्यात्व का नाश हुआ-व्यय और सामने दर्शनमोह का नाश हुआ, उसके कारण से—कर्म के कारण से। यहाँ नाश किया, इसलिए वहाँ नाश होना पड़ा, ऐसा नहीं है। वह कर्म ही उसे उस समय दर्शनमोह के नाश के पाक का फल था, उसके कारण से द्रव्यदर्शनमोह परमाणु नाश हुए। यहाँ जीव ने मिथ्यात्व को नाश किया, अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करूँ, ऐसा नहीं। परन्तु ज्ञायक चैतन्य परिपूर्ण स्वभाव है, उसकी दृष्टि करने से मिथ्यात्व का उत्पत्ति भाव नहीं होता। उसने मिथ्यात्व का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

तो कहते हैं, कि आस्त्रव का हेतु घातिकर्म के रजकण जो आते हैं, उनका निमित्त जीव का... **वास्तव में...** ऐसा कहा है न? वास्तव में निमित्त **जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है।** आत्मा का आत्मा की पर्याय में उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अरूपी विकार उदयभाव है। वह जीव की पर्याय का भाव, उदयभाव, वह नये कर्म आने का हेतु था। नये कर्म आने का निमित्त था। वह ज्ञानी को इसका अभाव होता है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञानी को पहले दर्शनशुद्धि होने पर चैतन्य स्वसंवेदनज्ञान जानने पर आत्मा पर से, विकल्प से, राग से निराला, ऐसा परम आत्म के परमस्वभाव के माहात्म्य की महिमा में दृष्टि जाने से स्वभाव में दृष्टि स्थिर होती है, तब उसे मिथ्यात्व की पर्याय का

व्यय होता है अर्थात् कि उत्पाद नहीं होता। उसके प्रमाण में दर्शनमोह का नाश उसे दर्शनमोह के कारण से होता है। ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है।

यहाँ दूसरी बात ज्ञानी को राग-द्वेष का नाश होता है। अर्थात् कि जो स्वरूप चैतन्यमूर्ति ज्ञायक स्वद्रव्य, ऐसी दृष्टि हुई थी, उसमें विशेष लीन होने पर, राग-द्वेष का भाव उत्पन्न नहीं होता, उसे राग-द्वेष का नाश होता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? अर्थात् **ज्ञानी को उसका...** उसका अर्थात् मोह-राग-द्वेषरूप भाव का **अभाव होता है।** किस प्रकार अभाव होता है, वह यह विधि कही। समझ में आया?

उसका अभाव होने से... आत्मा में सम्यग्दर्शन और वीतरागपरिणति होने पर मोह और राग-द्वेष का अभाव होने से आस्रव के नये कर्म का आना रुक जाता है। नये कर्म का आना रुक जाने से कर्म का अभाव होता है। जीव में कर्म रहता नहीं। कर्म का अभाव होने से, कर्म का अभाव होने से-यह निमित्त से बात की है, हों! सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना आत्मा में आत्मा की पर्याय में आत्मा के पुरुषार्थ से होता है। कर्म का अभाव होने से, यह तो निमित्त लिया, भाई! अब वहाँ से उठाते थे, देखो! कर्म का अभाव हुआ इसलिए। अब यह तो यहाँ निमित्त-निमित्त की बात करते हैं। उसकी शैली है। है न समयसार की गाथा। है न इसमें लिखा है। समयसार गाथा १९१। समझ में आया? संवर की गाथा में अन्त में आता है। दो गाथाएँ आती हैं।

परन्तु यहाँ तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध बताते हैं। वे कहते हैं कि कर्म का अभाव हो तो केवलज्ञान होता है, ऐसा तुम क्यों नहीं लेते। परन्तु केवलज्ञान हो तो कर्म का अभाव होता है। यह ऐसा ही है। परन्तु वासतव में तो ऐसा भी नहीं। केवलज्ञान आत्मा, आत्मा अपने स्वभाव के अवलम्बन से उत्पन्न करे, तब घातिकर्म का नाश उसके होने के काल में उसका कार्यकाल है, इसलिए नाश होता है। इसने केवलज्ञान किया, इसलिए घातिकर्म का नाश होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा होवे तो केवलज्ञान कर्ता और घातिकर्म का नाश वह कार्य होता है। ऐसा नहीं हो सकता। रावजीभाई! समझ में आया? पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। ऐसा का ऐसा लोग पढ़ जाते हैं और वापस यह किये और यह किया। प्रभु! अरे! यह तो महासिद्धान्त है। वस्तु के वास्तविक स्वरूप को सिद्ध करने के लिये यह सिद्धान्त है।

आत्मा अपने पुरुषार्थ से, कहा न पहले? कि आस्रव का अभाव स्वयं किया। यहाँ कहा न? ज्ञानी को उसका अभाव होता है, वह स्वयं के कारण से हुआ पहले। वह राग-द्वेष और मोह। **उसका अभाव होने से आस्रवभाव का अभाव होता है।** नहीं आया। नहीं आया अर्थात्? आनेवाले थे और नहीं आये, ऐसा नहीं है। वह अभाव होने पर आस्रव का अभाव इसलिए तब उसे रजकण को आने के योग्य थे नहीं। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! यह शब्द-शब्द में अन्तर है।

पहले तो ऐसा कहा कि **आस्रव का हेतु वास्तव में जीव का मोहरागद्वेषरूप भाव है। ज्ञानी को उसका अभाव होता है।** पहले यहाँ से लिया है। तब **उसका अभाव होने से...** अब यह निमित्त कहा। **आस्रवभाव का अभाव होता है।** अर्थात् कि रजकणों का आना होता नहीं। आना होता नहीं अर्थात् आने के योग्य थे ही नहीं। रजकण आनेवाले थे और इसने राग-द्वेष का अभाव किया, इसलिए उन्हें आने से रोक दिया, ऐसा नहीं है। रावजीभाई! बहुत समझने की (बात है)। यहाँ पूरी पर्याय की स्वतन्त्रता बतलाते हैं। एक दूसरे का निमित्त-नैमित्तिकपना बतलाते हुए, कर्ता-कार्यपना नहीं। निमित्त-नैमित्तिक बतलाते हुए कर्ता-कार्य नहीं। नहीं तो आत्मा ने मोह, राग-द्वेष का नाश किया, इसलिए कर्म आने से रुक गये। आते थे, रुक गये। तो यहाँ राग-द्वेष-मोह का अभाव वह कर्ता हुआ और कर्म का आना अटकाना, वह उसका कार्य हुआ। ऐसा है नहीं। ओहोहो!

यहाँ तो कहते हैं। आत्मा ने नये आवरण का हेतु राग-द्वेष और मोह था, वह निमित्त था। वह आते थे उसके कारण से। यहाँ आत्मा ने स्वयं ज्ञानस्वभाव का भान करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया। स्वरूप में स्थिरता करके चारित्र की वीतरागता प्रगट की। ऐसा मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से आस्रव अर्थात् नये रजकण आने के नहीं थे, उनका अभाव हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह आस्रवभाव का अभाव होने पर उन आने का अभाव होने से अब कर्म नहीं हुए, ऐसा। वे कर्म अब अन्दर नहीं हैं। वह रजकण आये नहीं, उसके कारण से अर्थात् कर्मरूप रहे नहीं।

वह **कर्म का अभाव होता है।** कर्म का अभाव होने से अर्थात् उसमें कर्मरूपी पर्याय रही नहीं, तब आत्मा ने स्वयं जो मोह-राग-द्वेष का नाश किया है, ऐसी दशा में

उसे सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना प्रगट होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वभाव की अन्तर्दृष्टि चिदानन्द की दृष्टि करने से, अनुभव होने पर सम्यग्दर्शन होता है, दर्शनमोह उसके कारण से टल जाता है। उसके कारण से, इसके कारण से नहीं। यह तो निमित्त है। निमित्त है, इसलिए इसके कारण से टला तो यह कर्ता और वह कार्य, ऐसा नहीं है। उसके कारण से टलने की योग्यता से टला है। राग-द्वेष की उत्पत्ति भाव जीव ने वीतराग अन्तरस्वभाव में स्थिर होने से राग-द्वेष उत्पन्न नहीं हुए, (इसलिए) उसका नाश किया, ऐसा कहा जाता है।

इसलिए चारित्रमोह के रजकण नाश किये, आनेवाले थे वे नहीं आये - ऐसा कहने में आता है। उस क्षण में कर्मरूपी दशा रही नहीं। आस्रव न आवे, इसलिए कर्मरूपी दशा रही नहीं। कर्म का अभाव होने पर आत्मा ने अपने स्वभाव-सन्मुख की उग्र एकाग्रता से सर्वज्ञ और सर्वदर्शीपना प्रगट किया है। समझ में आया? **सर्वज्ञपना...** भगवान आत्मा के चैतन्यपद में जो सर्वज्ञशक्ति थी, आत्मा के अन्दर ध्रुवपद में सर्वज्ञशक्ति थी। ध्रुव में सर्वज्ञशक्ति थी। उसे एकाग्रता से व्यक्तरूप से सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई। समझ में आया?

इसी प्रकार **सर्वदर्शीपना,....** भगवान आत्मा में सर्वदर्शीशक्ति ध्रुवरूप से, गुणरूप से थी तथा मोह और राग-द्वेष का नाश होने पर, उसमें एकाग्र होने पर वह सर्वदर्शीपना शक्ति में था, वह व्यक्तरूप से प्रगट हुआ है। समझ में आया? पण्डितजी! यह पंचास्तिकाय, समयसार सब शास्त्र ऐसे हैं, बहुत ही गूढ़ हैं। ऐसा अपनी कल्पना से पढ़ जाये और अर्थ करे, इसका क्या ऐसा समझे, यह बात बहुत गूढ़ है। रावजीभाई! लगता है या नहीं? यह तुम्हारे जैसों को तो बहुत ही ध्यान रखकर यह सब समझना पड़ेगा। समझ में आया इसमें? बालकों को फिर इस प्रकार का तुम सीखे हो, वैसा बालकों को सिखलाओ। क्यों पण्डितजी! वहाँ व्यवस्थापक है न? कारंजा में व्यवस्थापक है। कहते हैं, अपनी पर्याय का व्यवस्थापक जीव है। पर का व्यवस्थापक कहना, वह निमित्त का कथन है। वह तो यहाँ चलता है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा ने अपने महान चैतन्यप्रभु प्रभुत्वशक्ति जो आत्मा में थी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शीत्वशक्ति थी, इन्द्रियातीत अतीन्द्रियपने का स्वभाव आत्मा में था।

उसके अवलम्बन से उसमें एकाग्र होकर उसने सर्वज्ञपना, सर्वदर्शीपना पर्याय में प्रगट किया। यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी पर्याय है। गुण नहीं। और **अव्याबाध,...** यह भी पर्याय है। पर्याय में कोई विघ्न नहीं रहा, बाधा-पीड़ा नहीं रही, ऐसी पर्याय प्रगट की। भगवान आत्मा ने अपने स्वतन्त्र आश्रय से स्वभाव के आश्रय से यह पर्याय प्रगट की।

इन्द्रियव्यापारातीत,... पहले इन्द्रिय के लक्ष्य से व्यापार था, वह छूट गया। यह इन्द्रियव्यापारातीत-इन्द्रियव्यापार रहित अर्थात् कि अतीन्द्रियव्यापार सहित अतीन्द्रियपर्याय का परिणमन हुआ। इन्द्रिय के निमित्त में अथवा भाव खण्ड-खण्ड इन्द्रिय थी। उसके लक्ष्य से व्यापार था, वह ज्ञायक के पूर्ण आश्रय से इन्द्रियव्यापार के भावइन्द्रिय के खण्ड-खण्ड का व्यापार छूट गया। **अनन्त सुख होता है।** ओहोहो!

भगवान आत्मा में एक सुख नाम की शक्ति है। गुण है, स्वभाव है। वह व्यक्तरूप से अनन्त सुख प्रगट होता है, उसे भावमोक्ष कहा जाता है। उसे जीवन्मुक्तदशा कहा जाता है। देहादि का आयुष्य होने पर भी जीवन्मुक्त हो गया। वह जीवन जीव का। कहो, लोग कहते हैं न भगवान का आदेश है।—जीवो और जीने दो। भगवान ने ऐसा कभी नहीं कहा। दूसरे को कौन जिलावे? ऐसा भगवान कहे? ऐ रावजीभाई! दूसरी की आयुष्य की पर्याय से जीवे, उसे जीने दो। परन्तु जीने दो या न (जीने) दो, इसमें दूसरे के अधिकार की बात कहाँ है? यह अंग्रेजों का कथन लेकर यहाँ पड़े हैं।

यहाँ तो जीवन्मुक्तदशा से जीव और नहीं तो जीवन्मुक्त मेरा स्वभाव है, ऐसी प्रतीति (वह) जीव। ऐसी प्रतीति से जीव। मैं एक जीवन्मुक्त परमात्मा शुद्ध परमानन्द-स्वरूप हूँ। मुझमें अल्पज्ञ और रागादि तो पर्यायदृष्टि से वस्तु में है नहीं। ऐसी वस्तु की दृष्टि करके सम्यग्दर्शन करना, वह जीवन्मुक्त होने की प्रतीति से जी रहा है। समझ में आया? और यह जब यह जीवन्मुक्तदशा हुई, तब तो खास उसका जो जीवन था, वह प्रगट हुआ। समझ में आया?

यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। वह यह जीवन्मुक्ति नाम का, पर्याय में जीवन्मुक्ति नाम का उसका जीवन्मुक्तदशा आयुष्य होने पर भी वह अन्दर मुक्त हो गया है। भाव के विकारभाव से छूट गया है और भावमोक्षदशा प्रगट हो गयी है। उसे यहाँ

जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष, ऐसा कहा। नीचे (फुटनोट में) है न? **जीवन्मुक्ति=जीवित रहते हुए मुक्ति; देह होने पर भी मुक्ति।** लो! समझ में आया?

यह तो निमित्त से कथन है। ख्याल में है। भावमुक्ति उसे फिर देह होने पर भी, भाई! भावमुक्ति कहनी है न और यहाँ देहसहित मुक्ति! निमित्त की अपेक्षा से वर्णन है। बाकी जीवन का जीव वह राग-द्वेष के क्रम-क्रम से काम करना रुक गया, वह जीव का जीवन भावमुक्ति में जीता है। पूर्ण स्वभाव की एकता हो गयी। यह कहेंगे अभी।

यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है। 'किस प्रकार?' ऐसा प्रश्न किया जाए तो... अब आचार्यदेव कैसी शैली लेते हैं? कि जिसे यह समझने की जिज्ञासा हो , उसे हम कहते हैं। बेगारीरूप से बात सुने, उसे हमारा कथन नहीं है। प्रश्न उठाया है। आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य। यह जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है, है, पर्याय है। किस प्रकार? ऐसा प्रश्न किया जाये। ऐसी तुझे यदि जिज्ञासा हो, ऐसे शिष्य को कहते हैं। तो हम जिज्ञासावन्त को, यह बात समझायी जाती है।

मुमुक्षु : आत्मा की बात बेगाररूप से सुनता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत अधिक बेगाररूप से क्या? चलो गाँव में हैं तो सुनें। कहा नहीं था वहाँ? अभी बहुत दिन पहले नहीं हुआ था? यहाँ सज्झाय होती थी, वहाँ नोखुं (पृथक्) करते थे। पचास-इक्यावन निकले। क्या इसकी दरकार? समझ में आया? यहाँ तो तुमको हो, वैसा तुरन्त जबाव आया। कितने ही ऐसा कहे, चलो अपने टाईम है तो टाईमसर सुनना। घण्टा पूरा करना है। घर में बैठै क्या है? चलो वहाँ जायें। वे सब बेगार से सुननेवालों की यहाँ बात नहीं है। जिसे उत्साह से (सुनना हो) महाराज!

यह देखो! अमृतचन्द्राचार्य ने प्रश्न (कैसा रखा है?) जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष वह क्या? ऐसी जिसे जानने की इच्छा हो। **ऐसा प्रश्न किया जाए तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है:—** संस्कृत में है। संस्कृत टीका में अन्दर है। समझ में आया? **'कथमिति चेत्'** ऐसा शब्द है। **'कथमिति चेत्'** क्या है यह प्रभु! यह जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष क्या है? क्या है? यह कैसे है? जीवन्मुक्ति नाम का भावमोमक्ष यह क्या है? यह पर्याय का क्या स्वरूप है? ऐसी यदि तुझे जिज्ञासा हो, उसे उत्तर कहा जाता है। है न? रावजीभाई! संस्कृत में है। **'कथमिति चेत्'** उसका यह अर्थ है।

यह तो अमृतचन्द्राचार्य, आहाहा! केवली का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखा है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में जो गर्भ भरा है, गर्भ। सत्व। उसे टीका द्वारा, तर्क द्वारा इसमें स्पष्टीकरण किया है। इसमें ऐसा कहते हैं। साधारण मोक्ष सुनने आया हो, ऐसा नहीं। ऐ प्रभु! जीवन्मुक्त भावमोक्ष पर्याय अर्थात् क्या? यह भावमुक्ति ऐसा जीवन्मुक्त भावमुक्ति अर्थात् क्या? भाव से मुक्त हो, यह क्या? यह और भाव क्या और मुक्त होना भाव में? यह क्या? समझ में आया?

तो निम्नानुसार स्पष्टीकरण है :- यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है... भावमोक्ष कहा न? भावमोक्ष अब जो भाव कहा, उसकी पहले व्याख्या करते हैं। यहाँ जो भावमोक्ष जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष है, यहाँ जो भाव विवक्षित, भाव हो, भावमोक्ष, उसका जो भाव। वह विवक्षित अर्थात् कहना चाहते हैं वह। देखो! भाव छूटता है किससे? कि जिसे भावमोक्ष कहते हैं। **कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव है।** देखो! यह भाव मुक्तपने को पाता है। कैसे भाव से? ज्ञप्तिक्रिया के भाव से छूटता है। ऐसी ज्ञप्तिक्रिया के अशुद्धभाव जो यह भाव है, ज्ञप्तिक्रियारूपभाव, उस भाव से छूटकर अकेला निर्मलभाव होता है, उसे भावमोक्ष कहा जाता है।

फिर से, **यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है...** कहना चाहते हैं, वह तो कर्म से आवृत्त निमित्त, चैतन्य की क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रिया, वह तो साधारण भाव की व्याख्या की। वह भाव क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्ति-जाननेरूप क्रिया। क्रम-क्रम से प्रवर्तती, ऐसा जो भाव वह वास्तव में संसाी को अशुद्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। ऐसा भाव पहला। और उस अशुद्धपने से छूटता है, वैसा भाव उसे भावमोक्ष कहते हैं। समझ में आया? देखो! विशिष्टता कैसी है! कर्म से छूटता है, ऐसा नहीं लिया। भाई! यहाँ तो अभी यह भाव अनादि कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में अपना ज्ञप्तिक्रियारूप जानने की क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम... क्रम से जानने की क्रिया का अशुद्धभाव, वह छूटता है, तब भावमोक्ष होता है। समझ में आया?

छूटता है अर्थात? जीव अपने एकाग्र होता है, तब अशुद्ध जो ज्ञप्तिक्रिया का क्रम-क्रम से होता भाव टल जाता है। ऐसे स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता होने पर क्रम-

क्रम से जो ज्ञान में जानने का अशुद्धभाव है, वह स्वभाव-सन्मुख एकाग्र होने पर वह भाव उत्पन्न नहीं होता। वह नहीं होता, उसका नाश करके यह भाव निर्मलपने को प्राप्त होता है, इसका नाम जीवन्मुक्ति नाम का भावमोक्ष कहा जाता है। समझ में आया?

चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है। वह क्रम से प्रवर्तती जानने की क्रिया क्रम से प्रवर्तती है और वही दोष है। **वास्तव में संसारी को अनादि काल से...** हों! **मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति...** अनादि काल से मोहनीयकर्म का उदय जड़, परन्तु उसे अनुसरती परिणति करनेवाला जीव। वहाँ भी निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहा। करानेवाला, ऐसा नहीं। मोहनीयकर्म का उदय वह इसे ज्ञप्तिक्रिया क्रम से करावे, ऐसा नहीं। समझ में आया? जानने की क्रिया क्रम-क्रम से होती है, वह अशुद्ध है, दोष है। वह कर्म के उदय के कारण कार्य है, ऐसा नहीं है। परन्तु अनादिकाल से मोहनीयकर्म के उदय को, बस वहाँ इतनी बात। अनुसरती परिणति, वह जीव का स्वतन्त्रभाव। निमित्त को अनुसरता क्रम-क्रम से प्रवर्तती क्रिया का ज्ञप्ति का भाव, वह जीव का किया हुआ, जीव की पर्याय में, जीव के दोष से हुआ। कर्म से नहीं। समझ में आया? पुस्तक-पुस्तक रखी है या नहीं? प्रेमचन्दजी! पुस्तक है? रखो तो खबर पड़े, नहीं तो नींद आये, ऐसा है इसमें। एक-एक शब्द में जहाँ है बात। भले गुजराती है परन्तु उसमें न समझ में आये, ऐसा निकाल डालना। धीरे-धीरे गुजराती के शब्दों में... पहले ऐसा हो कि अपने को गुजराती समझ में नहीं आती। हो गया, अटके वहाँ। फिर पुस्तक न हो सामने तो किस शब्द का क्या अर्थ है, इसलिए फिर भाव बदले बिना रहे नहीं। समझ में आया?

वास्तव में संसारी को अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय... निमित्त को **अनुसरण करती हुई परिणति...** की हुई जीव ने अशुद्ध है। जीव की पर्याय में वह अशुद्ध जीव ने की हुई है। समझ में आया? यहाँ तो समय-समय की पर्याय स्वतन्त्र सिद्ध करते हैं। मोहकर्म का उदय-पाक जड़ है, उसकी पर्याय में जड़ में। उसके कारण आत्मा में अशुद्धज्ञप्ति की क्रिया का भाव, ऐसा नहीं। परन्तु स्वभाव को अनुसरण नहीं करता और निमित्त को अनुसरकर ज्ञप्ति-जानने की क्रिया क्रम-क्रम से करने का भाव, वह जीव के अस्तित्व में अशुद्धभाव है। ओहोहो! समझ में आया?

यहाँ जो भाव कहना चाहते हैं, वह भाव कर्मावृत, फिर अन्दर उस भाव की मुक्ति कहनी है न? चैतन्य की क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रिया, क्रम-क्रम से होती जानने की क्रिया —क्रम-क्रम से होती जानने की क्रिया। स्वभाव तो अक्रम से जानने का स्वभाव होना चाहिए। उसके बदले क्रम-क्रम से जानने की क्रिया, वह संसारी को अनादिकाल से निगोद से लेकर। अनादि क्यों लिया? नित्यनिगोद से लेकर, एकेन्द्रिय से लेकर। कर्म के कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहा। कर्म के निमित्त की पर्याय को जीव अनुसरता हुआ काम करे, इसलिए उसे दोष होता है। यह इसमें इकट्ठी निगोद की बात भी है। कोई कहे कि निगोद के जीव को कर्म का जोर है, इसलिए उसकी पर्याय में मलिनता है और निगोद में रहना पड़ता है। बिल्कुल झूठ बात! समझ में आया?

आचार्यदेव पुकार करते हैं हैं कि संसारी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय, वह अनादि काल से मोहनीयकर्म का उदय पाक निमित्त जड़ की पर्याय को अनुसरता हुआ पर्याय करता है निगोद से लेकर जीव। स्वभाव को अनुसरकर नहीं करता। निमित्त को अनुसरकर करनेवालो उसका अपना दोष है। कर्म का दोष जरा भी नहीं है। निगोद में रहा नित्यनिगोद में कर्म का जोर है और मनवाला हो, तब कर्म घटें, तब आत्मा का जोर होगा, ऐसा नहीं है।

ऐसा कहते हैं न कि मन आया तो आत्मा का पुरुषार्थ काम करे। मनरहित प्राणी को तो कर्म का जोर है तो बेचारे चले जाते हैं। ऐसा है नहीं। अनादि काल के निगोद से लेकर जीव अपने स्वभाव को अस्तिरूप से अनुसरण नहीं करता, कर्म के लक्ष्य को अनुसरती अपरिणति क्रम-क्रम से जानने की क्रिया करता हुआ जीव स्वयं के कारण से अशुद्ध है। समझ में आया?

निगोद में हो या मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी साधु नौवें ग्रैवेयक में गया हो। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो भी कोई अपराध कर्म का नहीं है। कर्म का अपराध उसमें नहीं है। अपराध उसकी अपनी पर्याय का निज अपराध है। रावजीभाई! आहाहा! अरे! नौ पदार्थ जैसे है, वैसे भी जिसके जानने में स्वतन्त्ररूप से न आवे, उसे

पूरा अव्यक्त चैतन्यद्रव्य जो प्रगट नहीं, उसकी स्वतन्त्रता की प्रतीति कहाँ से होगी? समझ में आया?

नौ तत्त्व, नौ पदार्थ। नौ पदार्थ की व्याख्या चलती है। भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र। यह जीव कर्म की पर्याय का उदय स्वतन्त्र कर्म का। जीव स्वयं अपने को भूलकर क्रम-क्रम से प्रवर्तती ज्ञप्ति-जानने की क्रिया करे, वह अशुद्ध, उसे करने को जीव स्वतन्त्र है। समझ में आया? हेमभाई! वह पूछता है न? '**कथमिति चेत्**' प्रभु! तुम-आप किस भाव को मोक्ष कहते हो? कौन सा भाव और क्या छूटे और क्या कहते हो? जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष। प्रभु! यह और भावमोक्ष अर्थात् क्या? कौन सा भाव मुक्तिपने को प्राप्त हुआ? तब कहते हैं कि ऐसा पहला भाव जो क्रम से प्रवर्तता है, उसे स्वभाव के अवलम्बन से अक्रम से प्रवर्तता करता है, वह क्रम से प्रवर्तता भाव छूट जाता है। बल्लभदासभाई! लो मौके से यह सूक्ष्म आया। रविवार आवे तब ऐसा आवे। लो! समझ में आया?

भगवान परमात्मा के ज्ञान में आया। ऐसी वाणी आयी। ऐसा सन्तों ने ज्ञानसहित चारित्र में अनुभव किया। और वह जब अनुभव करके जो बात थी, उसका एक विकल्प उपकार के लिये आया। उस विकल्प के ज्ञाता हैं। उस वाणी के कारण से यह शास्त्र की वाणी की रचना हो गयी, जड़ की पर्याय से (हो गयी)। समझ में आया? उसका वाच्य क्या कहते हैं? यह तो वाचक शब्द है। शब्द है। उसका वाच्य-भाव क्या?

शिष्य ने पूछा प्रभु! जीवन्मुक्त नाम का भावमोक्ष, वह भाव क्या और उसकी मुक्ति क्या? तो कहते हैं, प्रभु! यह आत्मा अनादि काल से जो कर्म के निमित्त को अनुसरती जानने की क्रिया में खण्ड-खण्ड करता था, क्रम-क्रम से जानता था, अशुद्धपना जो जानने की क्रिया में खड़ा किया है, उसे हम मलिन भाव कहते हैं। समझ में आया? डॉक्टर! बहुत सूक्ष्म है यह, हों! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकर जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक प्रत्यक्ष ज्ञात हुए। उन भगवान के मुख से वाणी निकली वाणी के कारण से, हों! भगवान वाणी के कर्ता नहीं। दिव्यध्वनि तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय को चैतन्य कैसे करे? निमित्त कहने में आता है, परन्तु

निमित्त है तो वाणी निकली तो निमित्त रहा नहीं। तो कर्ता हो गया। कर्ता है नहीं। वाणी के कारण वाणी की पर्याय में स्व-परप्रकाशक करने की शक्ति है। भाई! आता है न? धवल में आता है। धवल में एक शब्द आता है। यह वाणी वाणी में स्व-परप्रकाशक करने की ताकत है। स्व-परप्रकाशक करने की ताकत है। नाम अपने को याद नहीं। इस ओर के पृष्ठ पर है। वाणी में स्व-परप्रकाशक करने की (कहने की) ताकत है।

भाई ने ऐसा कहा-धर्मदासक्षुल्लक ने, कि वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि शब्दों में स्व-पर वार्ता कहने की ताकत है। इन शब्दों में स्व-पर को प्रकाशित करने की ताकत है। शब्दों की ताकत है, हों! आया न इसमें? अपने पहले बताया था न? हाँ, अन्तिम श्लोक में बताया था। अन्तिम श्लोक में आया था। देखो! उसमें है। अन्तिम है। २६४ पृष्ठ है न? अन्त में।

अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने... शब्दों ने। अन्तिम-अन्तिम पृष्ठ पर। हिन्दी में २६४ पृष्ठ है। यह गुजराती। २६४ है। अन्तिम दो लाईन। अमृतचन्द्राचार्य महाराज स्वयं कहते हैं। **अपनी शक्ति से...** है? **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थ स्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने,...** शब्दों ने कहा है, मैंने नहीं। मुझमें शब्द करने की ताकत नहीं है। **यह समय की व्याख्या (-अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है।** हें!

अमृतचन्द्रदेव ने कहा कि आत्मा कभी वाणी का कर्ता नहीं हो सकता। स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) **अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** भाषा टीका बनने में आत्मा का कुछ भी कर्तव्य नहीं है। आत्मा किसकी भाषा की पर्याय बनावे। आहाहा! वे चिल्लाहट मचाते हैं सब। अरे! एकान्त हो जायेगा, एकान्त हो जायेगा। अरे! सुन न अब! आत्मा विकार कर्म की पर्याय करे नहीं और कर्म की करे—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

एक ओर ऐसा मानना कि अजीव, अजीवरूप से और जीव, जीवरूप से। तो अजीव की पर्याय जीव करे तो अजीव, अजीवरूप कहाँ रहा? जीव से अजीव भिन्न।

तो परमाणु भी भिन्न और उसकी पर्याय भी भिन्न। तो जीव, अजीव की पर्याय करे कहाँ से? यह तो भाषा जड़ की पर्याय है। रावजीभाई! न्याय से तो इसे स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं? लॉजिक 'नी' धातु है न? न्याय में 'नी' ले लाना, ले जाना। जैसी वस्तु की मर्यादा है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय कहते हैं। समझ में आया? आचार्य कहते हैं कि हमको गाली नहीं देना। हमने टीका बनायी, हमको कर्ता न मानो। जहाँ-जहाँ कर्ता मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया। भेड़ की भाँति मैं... मैं... किया करता है। अभिमान... अभिमान! भाई! बापू! भाषा छूटती है, वह जड़ की पर्याय से निकलती है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा!

कहते हैं, आत्मा का भावमोक्ष किसे कहना? यह जो भाव अनादि से कर्म के निमित्त को अनुसरती ज्ञप्तिक्रिया क्रम-क्रम से पर्याय में होती है, उसे स्वभाव के अवलम्बन से उस पर्याय को टालकर जो भाव रह गया, उसे भावमुक्ति कहने में आता है। समझ में आया? इस भाव को, बल्लभदासभाई! यह जैन में जन्मे हों तो भी यह भाव और मुक्ति... जयन्तीभाई! एकेन्द्रिय की दया पालो। यह करो, अमुक करो। कौन करे? सुन न! परद्रव्य की पर्याय को कोई कर सके, दया पाल सके, यह तीन काल में नहीं है। हाय.. हाय! अररर! तो फिर यह जैन! प्रभु! सुन तो सही अब?

मुमुक्षु : दया का उपदेश करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उपदेश करे? वह तो वाणी के काल में वाणी निकलती है और उसके भाव होनेवाले उस काल में उसे होते हैं। करे कौन? किसके कारण से कौन करे? तो द्रव्य की स्वतन्त्रता पर के आधीन हो जाती है। ऐसा है नहीं। सत्येन्द्रजी! यह सत् का धारण करना पड़ेगा। बराबर है? ओहोहो! बात करते हैं भावमोक्ष की। द्रव्यमोक्ष में निमित्त। द्रव्यकर्म का छूटना उसके कारण से। उसमें यह निमित्त।

यह भावमुक्ति को आप क्या कहते हो? कहते हैं। यह भाव जो ऐसा है न जीव का। क्रम-क्रम से ज्ञान की क्रमशः प्रवृत्ति जो होती है न? वह अशुद्ध है। देखो यहाँ! वह **परिणति के कारण अशुद्ध है,...** क्रम से प्रवर्तती पर्याय। **द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है।** देखो! यह आत्मा की क्रम-क्रम से ज्ञान के जानने का, खण्ड-खण्ड जानने का जो

भाव, वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। नये आवरण आवे आस्त्रव, वह तो उसके कारण से। उसका यह ज्ञप्तिक्रिया क्रम-क्रम से प्रवर्ते ऐसा अशुद्धभाव, वह नये आने में निमित्त है। नये तो उसके कारण से आते हैं। इसने ऐसा भाव किया, इसलिए कर्म को आना पड़ा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा नहीं है।

वे कर्म के रजकण पुद्गल की पर्याय उस काल में उसी प्रकार से आने की थी, उसका वहाँ स्वतन्त्र पर्याय का धर्म है। उसे यह ज्ञप्तिक्रिया का अशुद्ध क्रम-क्रम से होता भाव निमित्त कहा जाता है। यह निमित्त-नैमित्तिक और निमित्त-उपादान का घोटाला! पार नहीं होता अभी। सर्वत्र गड़बड़ घोटाला। भगवान! निमित्त नहीं, ऐसा किसने कहा? परन्तु निमित्त से उसमें कार्य होता है, ऐसा नहीं है। यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ क्या कहते हैं? वह **परिणति के कारण अशुद्ध है,...** द्रव्यकर्म के निमित्त के कारण अशुद्ध है, ऐसा नहीं। उसके अपने उपादान में क्रम से प्रवृत्ति करने के भाव की पर्याय स्वयं उत्पन्न करता है। तब कर्म का उदय उसे निमित्त कहने में आता है। निमित्त कौन इनकार करता है? परन्तु निमित्त है, इसलिए यहाँ प्रवृत्ति होती है, ऐसा नहीं है। यह तो निमित्त कब कहा कहलाये कि उसके कारण से यहाँ होता है तो तुमने निमित्त को माना कहलाये। परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। आनन्दजी! नहीं तो निमित्त रहता नहीं। आहाहा!

एक-एक में पारस्परिक निमित्त की कितनी शैली करते हैं! यह **अशुद्धभाव, वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव) ज्ञानी को...** देखो! **मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** देखा! क्या कहते हैं? ऐसा जो क्रम से प्रवर्तता, ज्ञान का क्रम-क्रम से, खण्ड-खण्ड प्रवर्तता अशुद्धभाव, उसमें मोहनीय के निमित्त को अनुसरता हुआ उसका अपना स्वतन्त्र भाव। वह ज्ञानी का, वह जो निमित्त को अनुसरता क्रम काम करता हुआ, वह ज्ञानी द्रव्य के स्वभाव को अनुसरता हुआ जहाँ परिणति खड़ी हुई, ज्ञायकस्वभाव की शक्ति पूर्णानन्द ध्रुव, उसे अनुसरती पर्याय धर्मी को उत्पन्न हुई। **मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि**

को प्राप्त होता है... कौन? वह क्रम-क्रम से प्रवर्तती जो अशुद्धक्रिया, वह ज्ञानी को मोह-राग-द्वेषवाली परिणतिरूप से वह क्रिया घटती जाती है। हानि पाती है। क्रम-क्रम से प्रवर्तता-घटता जाता है। समझ में आया? कैसी गाथा और कहाँ रखी बात! ओहोहो!

कहाँ तक ले गये! यहाँ से उठाकर ठेठ वहाँ तक ले गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर शोध सकता है। ऐ भीखाभाई! उसकी पुष्टि तुमको मिले ऐसी है। यह तो तब गुरु का निमित्त कहने में आता है। गुरु वहाँ कर देते हैं? यह कहते हैं कि ऐसा हमें समझ में नहीं आता। यह तो समझने की योग्यता हो, तब ऐसा निमित्त होता है। परन्तु निमित्त के कारण वहाँ समझ में आया, ऐसा है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। एक अंश में कहीं भी गड़बड़ कर दे तो नौ तत्त्व की गड़बड़ खड़ी हो जाती है। गोटा समझे? भूल-गड़बड़ी हो जाती है। ओहोहो! टीका!!

भरतक्षेत्र में ऐसी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की, वैसी कोई टीका नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो तीर्थंकर जैसा काम (किया और) अमृतचन्द्राचार्य ने पंचम काल में इन तीर्थंकर कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल में। उनके हिसाब से गणधर जैसा काम अमृतचन्द्राचार्य ने टीका करके किया है। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। गजब काम! समझ में आया? अजोड़... अजोड़... अजोड़! अरे भाई! पर्याय-पर्याय की स्वतन्त्रता, गुण-गुण की स्वतन्त्रता, अशुद्धता की स्वतन्त्रता, शुद्धता की स्वतन्त्रता उसकी पुकार, उसका यह नगाड़ा बजा है। रावजीभाई!

अब जैन में रहे, पण्डित लोग जैसे भी बहुत विचारकर पढ़ते नहीं। विचारकर पढ़ते नहीं, ऐसा कहा, हों! फिर स्वयं अर्थ समझे, वैसा अर्थ दुनिया को कहे। बात तो दूसरी क्या करे? समयसार में कहा है न? विद्वानजन निश्चय को तजकर व्यवहार को जो करे, निश्चय को छोड़कर, व्यवहार को करे। निश्चयनय बिना आत्मा की मुक्ति कभी होती नहीं। यह आता है। गाथा (१५६) है। पुण्य-पाप अधिकार। 'विद्वानजन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे, परन्तु कर्मक्षय का विधान तो निश्चय नयाश्रित मुनि को-सन्त को।' गाथा है। विद्वान व्यवहार नाम धराकर निश्चय की वस्तु को-भूतार्थ को

छोड़ देते हैं और व्यवहार को पकड़ते हैं। ऐसा कहते हैं। ऐसा लिखा था। ऐसा है न? १५६ (गाथा समयसार)। देखो!

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अरे विद्वानों! तुम '**मोत्तूण**' निश्चय सत्य वस्तु के अर्थ के प्रयोजन को छोड़कर '**ववहारेण विदुसा पवट्टंति**' अकेले व्यवहार में प्रवर्तते हो और व्यवहार की बात तुम सिद्ध करते हो, परन्तु उस व्यवहार से कभी मुक्ति-फुक्ति नहीं होती। जरा भी उपयोगी नहीं है। जानने के लिये उपयोगी है। '**परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मखओ...**'

मुमुक्षु : छोड़ने के लिये उपयोगी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, छोड़ने के लिये नहीं। जानने के लिये उपयोगी है। छोड़ने के लिये नहीं। छोड़े कौन? अपने आप उत्पन्न हुआ और स्वभाव का आश्रय करने से छूट जाता है। राग के नाश का कर्ता भी आत्मा नहीं है। वस्तु के स्वभाव की दृष्टि से देखने पर राग का कर्ता तो नहीं परन्तु राग का नाशकर्ता का नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का नाशकर्ता आत्मा नहीं है। राग का नाश करने जाये तो दृष्टि पर्यायबुद्धि और मिथ्यादृष्टि होती है। अमृतलालजी!

स्वभाव की दृष्टि करने से उसमें स्थिर होने से राग की उत्पत्ति नहीं होती है, उसे रग का नाश किया, ऐसा नाम का कथन है। परमार्थ आत्मा राग का नाश करे, ऐसा स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो निमित्त से उस राग की उत्पत्ति नहीं हुई, स्वभाव का अवलम्बन लेकर, तो उसने राग का नाश किया, ऐसा व्यवहार का कथन है। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया? **ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** कौन? वह अशुद्ध क्रम से प्रवर्तता भाव। अशुद्धभाव क्रम-क्रम से ज्ञानी को प्रवृत्ति क्रम-क्रम से अनुसरती जो भाव दशा, वह मोह-राग-द्वेष के अभाव को परिणति की हानि **परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है, इसलिए उसे आस्त्रवभाव का निरोध होता**

है। पहला बोल है, उसका ही विस्तार है। बस, उसका ही विस्तार किया है। मोह-राग-द्वेष भाव हैं। ज्ञानी को उसका अभाव होता है। ज्ञानी के जीवन्मुक्ति कही, इसलिए कौन सा भाव मुक्तपने को प्राप्त होता है और कौन सा भाव पीछे से हटता है, यह बात करते हैं।

इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है... अर्थात्, धर्मी को स्वभाव के अन्तर अनुसरती परिणति प्रगट होने से, उसे नये कर्म का आना रुक जाता है। निरोध होता है अर्थात् रुक जाता है। अर्थात् कोई आते थे और बन्द हो गये, ऐसा नहीं है। वे आनेवाले नहीं थे, उसे निरोध हुआ—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है, ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा... लो! ऐसे उस ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा, यहाँ अत्यन्त निर्विकारपना होने से, लो! अत्यन्त निर्विकारी पर्याय स्वभाव को अनुसरकर होने से फिर क्या होगा, यह बात कही जायेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५०, गाथा-१५०-१५१, आसोज कृष्ण ०५, सोमवार, दिनांक -२६-१०-१९६४

वर्णन है। नौ पदार्थ में मोक्ष का अधिकार चलता है। मोक्ष किसे कहना? नौ पदार्थ हैं, उसमें जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध। इतना अधिकार तो आ गया है।

अब द्रव्यमोक्ष अर्थात् कर्म का छूटना, उसमें निमित्तरूप से, हेतुरूप से भावमोक्ष उसका हेतु है। वह भावमोक्ष किसे कहना, वह बात यहाँ बतलायी जाती है। समझ में आया? यहाँ नौ पदार्थ में मोक्षतत्त्व किसे कहना? मोक्षतत्त्व कहो, मोक्षपदार्थ कहो। सात में तत्त्व और नौ में पदार्थ। मोक्षपदार्थ किसे कहना? मोक्ष वह क्या होगा? कोई द्रव्य-वस्तु होगी? कोई गुण होगा शाश्वत? कोई दशा होगी अवस्था? वह मोक्ष क्या है?

मोक्ष, वह आत्मा की परमशुद्ध निर्मल दशा है। कहो, समझ में आया? मोक्ष अर्थात् आत्मा, उसका अन्तर पूर्ण शुद्ध स्वरूप वस्तु में है। उसकी पर्याय में मुक्तस्वरूप पूर्ण शुद्धता प्रगट होना, उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। अब इस भावमोक्ष को दो प्रकार से वर्णन करते हैं। एक भाव अशुद्धता के क्रम से छूट जाये, उसे भावमोक्ष कहा जाता है और एक अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि की प्राप्ति, उत्पाद हो, उसे भी भावमोक्ष कहा जाता है। क्या कहा? समझ में आया इसमें? क्या कहा, धरमचन्दजी!

एक उत्पादरूप मोक्षपर्याय भावमोक्ष और एक व्ययरूप भावमोक्ष। आत्मा एक समय में शुद्धचिदानन्द घन परमआनन्दघन चिदानन्दमूर्ति। उसमें अनादि काल से ज्ञान की वर्तमान ज्ञप्तिक्रिया, जानने की क्रिया क्रम-क्रम से प्रवर्तती, खण्ड-खण्ड प्रवर्तती अशुद्धरूप है। समझ में आया? उस अशुद्धरूप का नाश होना और ज्ञप्ति शुद्धक्रिया की प्राप्ति होना, समझ में आया? और उसमें पूर्ण शुद्ध की प्राप्ति। शुद्धज्ञप्तिक्रिया तो बारहवें में भी होती है, परन्तु पूर्ण शुद्ध की परिणति निर्मलानन्द ज्ञान, दर्शन, आनन्द की प्राप्ति होना, वह और अशुद्धता के अंश से वह भाव छूट जाना, ऐसी दशा को भावमोक्ष कहा जाता है। थोड़ा-थोड़ा गुजराती समझते हो या नहीं? हें? यह गुजराती चलती है न? कहो, समझ में आया इसमें?

यह आत्मा वस्तु है वस्तु, पदार्थ। आत्मा देह से भिन्न वस्तु-पदार्थ है। और आत्मा

में अनन्त गुण है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि उसका शक्तिस्वभाव अनन्त है। उसके भान बिना अनादि काल से ज्ञान की वर्तमान दशा, क्रम-क्रम से प्रवर्तती, खण्ड-खण्ड होकर प्रवर्तती है, उसमें राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव रहा है; इसलिए ज्ञान की पर्याय क्रम-क्रम से प्रवर्तती है। समझ में आया?

यह क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से मिथ्यात्वसहित और राग-द्वेषसहित ज्ञान की वर्तमान दशा का उस प्रकार से क्रम-क्रम से अशुद्धपने होना, इसका नाम संसार, इसका नाम दुःखदशा, इसका नाम भावबन्धन। कहो, समझ में आया? उस भावबन्धन से भाव छूट जाये, उसे भावमोक्ष कहते हैं। और वह भावबन्धन छूटने पर आत्मा की पूर्ण निर्मल ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय प्राप्त हो, उसे भावमोक्ष कहते हैं। समझ में आया या नहीं? यहाँ तक आया है। परन्तु वापस फिर से थोड़ा लेंगे, तब मिलान खायेगा। देखो! दूसरा पेराग्राफ।

यहाँ जो 'भाव' विवक्षित है... यहाँ जो भाव कहना चाहते हैं, कहना विचारा है। यहाँ जो भाव कहना विचारा है। **वह कर्मावृत (कर्म से आवृत हुए) चैतन्य की क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप है।** वह आत्मा वस्तु का स्वभाव शुद्ध पूर्ण होने पर भी, उसकी ज्ञान की वर्तमान दशा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष के संग से ज्ञान की वर्तमान क्रिया क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से होती है। **वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव)....** गजब भाषा कभी सम्प्रदाय में सुना न हो कि यह भावमोक्ष क्या और यह... यह क्रिया करो और यह करो और यह करो और यह करो। जाओ हो गया धर्म। धरमचन्दजी! धरमचन्द है तो वहाँ धर्म हो गया।

कहते हैं, भाई! धर्म की दशा कैसे हो। अधर्मदशा छूटे, वह धर्मदशा द्वारा कैसे टले, वह सब दशा आत्मा की है। उसका यहाँ वर्णन है। वस्तु तो त्रिकाली द्रव्य और गुण से भरपूर पूरा परिपूर्ण पदार्थ भगवान आत्मा है। परन्तु उसकी दशा में, उसकी हालत में कर्म के कारण नहीं। कर्म के निमित्त को अनुसरती अपनी ज्ञप्ति-जानने की खण्ड-खण्ड की क्रम-क्रम से प्रवर्तती ज्ञान की क्रिया, वह अशुद्ध है। जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष से मैली है।

वास्तव में संसारी को... देखो! वह पर्याय वास्तव में अनादि अज्ञानी संसारी को **अनादि काल से मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण करती हुई परिणति के कारण...** स्वभाव को अनुसरती वह क्रिया नहीं है। मोहकर्म अन्दर पाक एक जड़कर्म है। भले उसे खबर न हो। परन्तु यहाँ चैतन्य ज्ञायकमूर्ति है, उसे अनुसरकर जो धर्मक्रिया शान्ति, श्रद्धा, निर्मलता होना चाहिए। वह स्वभाव त्रिकाल को न अनुसरते हुए, वह कर्म एक जड़ मोहनीय कर्म बाँधा हुआ है, उसे अनुसरकर, **परिणति के कारण...** अत्यन्त यह तो अभी नौ तत्त्व किसे कहना, उसकी व्याख्या है। अब नौ तत्त्व की खबर न हो, उसे सम्यग्दर्शन हो कब और सम्यग्दर्शन बिना धर्म नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा का ऐसा यह वाडा में यह क्रिया करके पूजा की और भक्ति की और व्रत किये और यह किये और वह किये, वह धर्म-बर्म नहीं। धर्मचन्दजी! तो वह क्या है? राग है, वह राग। राग की क्रिया है, वह धर्म की क्रिया नहीं। आहाहा! वह ज्ञप्ति की क्रम-क्रम से प्रवर्तती वह रागवाली क्रिया है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह कर्म के उदय को अनुसरती परिणति अर्थात् पर्याय, उसके कारण वह अशुद्ध है। पर्याय अशुद्ध है, अवस्था अशुद्ध है। अभी जैन में जन्मे तथापि पर्याय नाम भी किसी ने सुना न हो। पर्याय किसे कहना? भेदविज्ञानी। भान नहीं होता। कहो, समझ में आया? जैन में जन्मे, इसलिए सब भेदविज्ञानी तो है, अब उसे चारित्र करना, ऐसा एक व्यक्ति ने-पण्डित ने लिखा था। कहो, रावजीभाई! एक पण्डित ने लिखा था। जो दिगम्बर में जन्मे, वे भेदविज्ञानी तो हैं ही। जीव-अजीव को भिन्न जानते हैं। अब चारित्र करना है। दिगम्बर में जन्मे न? पैसेवाले में जन्मे तो गर्भश्रीमन्त कहलाते हैं या नहीं? गर्भश्रीमन्त। इसी प्रकार यह दिगम्बर में जन्मे तो भेदज्ञानी तो है ही। ऐसा अज्ञानी मानता है।

यहाँ कहते हैं कि भाई! दिगम्बर में जन्म कहाँ, दिगम्बर साधु हो तो भी क्या है? यह कहते हैं। दिगम्बर नग्नमुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो परन्तु वह सब क्रिया ज्ञान की वर्तमान खण्ड-खण्ड क्रम-क्रम से प्रवर्तती राग की क्रिया है। वह धार्मिक क्रिया नहीं। आहाहा! ऐ सौगंदचन्दजी! क्या करना? चक्की का पल लेकर आटा करना या क्या करना? समझ में आया? क्या भाई, कहाँ से आये हो? सागर? गुजराती समझते

हो? थोड़ी-थोड़ी? सागर से आये हैं, सागर। यह सेठ सागर के हैं। अच्छा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भाई! आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में पूर्ण आनन्द और अन्तर शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव है। वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वभाव, उसे अनुसरकर क्रिया नहीं करता, समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त चतुष्टय शक्ति में पड़ा है। उसके अनुसरकर क्रिया धर्म की पर्याय में नहीं करता... वह कर्म का उदय आवे, उसे अनुसरकर अपने ज्ञान को, पोताना समझते हो? अपना। गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। बराबर ध्यान रखे न, तो समझे। नहीं तो हिन्दी (लोग) तो हमेशा आते हैं। हिन्दी हमेशा (बोलने में) आवे तो गुजरातीवालों को बराबर समझ में नहीं आता। ....छोटे-छोटे को भी हिन्दी समझ में नहीं आता। समझ में आया? सेठ को सीख लेना पड़ेगा। यहाँ कायम मकान रखा है इसलिए। थोड़ा-थोड़ा सीख लेना। अब तुमने गुजरात में मकान डाल दिया। डाला या नहीं? गुजराती हो गये। कहो, समझ में आया?

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना निज स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसका पूर्णरूप अन्दर में स्वभाव पड़ा है। उस पूर्णरूप को न अनुसरते हुए, वर्तमान दशा में पूर्णरूप को न अनुसरते हुए, वर्तमान दशा कर्म के निमित्त को अनुसरते हुए जो परिणति के कारण जो पर्याय राग की, द्वेष की, मिथ्यात्व की ज्ञान की क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड प्रवृत्ति में मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, उसे अशुद्ध कहा जाता है। यह पंचास्तिकाय को समझना बहुत ही कठिन बात है। लोग कहे, हमने समझ लिया, हमने पढ़ लिया। भाई! वास्तविक तत्त्व भगवान सर्वज्ञदेव, वे कैसा कहते हैं, उसे समझना महान प्रयत्न माँगता है। समझ में आया?

वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। वह अशुद्धता जो वर्तमान ज्ञान की दशा कर्म के लक्ष्य से क्रम-क्रम से प्रवर्तती ऐसी पर्याय, वह अशुद्ध है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष सहित मैली है। समझ में आया? यह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। वह नये कर्म आने के रजकणों का वह मिथ्यात्वभाव आदि राग-द्वेष, जानने की क्रम-क्रम से क्रिया जो खण्ड-

खण्ड वर्ते। वस्तु अखण्ड है, उसके आश्रय से अखण्डपना न प्रगट करते हुए, कर्म के निमित्त के आश्रय से खण्ड-खण्ड ज्ञान की पर्याय को करता हुआ, जीव मिथ्यात्व और राग-द्वेष को तथा अशुद्धता को सेवन करता है। वह द्रव्यकर्मास्त्रव का हेतु है। वह चार नये घातिकर्म आदि, उसका वह हेतु है। कहो, समझ में आया? और आठों कर्म का वह हेतु है। आहाहा!

पहली चीज़ क्या? आत्मा की पर्याय-मोक्ष किसे कहना? मोक्ष, वह पर्याय है। मोक्ष, वह गुण नहीं। मोक्ष, वह द्रव्य नहीं। सिद्धपना, वह पर्याय है। मोक्ष, वह एक अवस्था है। आत्मा का एक निर्मल, निर्विकारी वेश है। समझ में आया? भेश-वेश। मोक्ष भी एक निर्विकारी वेश है। मोक्ष आत्मा का त्रिकाली द्रव्य और गुण का कायमी स्वरूप ऐसा मोक्ष नहीं। आहाहा! संसार, वह एक विकारी वेश है। वह स्वांग है। स्वांग कहते हैं न?

यह कहते हैं, देखो! अशुद्ध है, वह स्वांग है। आत्मा की पर्याय में अशुद्ध स्वांग-वेश अशुद्ध दशा है। वह द्रव्य का अशुद्ध एक वेश-स्वांग है। वह अशुद्ध अवस्था कायम की चीज़ नहीं है। द्रव्य और गुण कायम की वह चीज़ है, अशुद्ध स्वांग वह कायम की चीज़ नहीं। और वह अशुद्धता स्वभाव के अवलम्बन से छूट जाती है और पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है, वह भी कायम की चीज़ नहीं। वह वेश है अवस्था का, आत्मा की निर्मल दशा का। समझ में आया?

स्वाँग है। निर्मल पर्याय, वह आत्मा का एक स्वाँग है। वह स्वाँग सादि-अनन्त रहता है। जब से निर्मल दशा प्रगट हुई, अनन्त काल रहती है, उसे यहाँ मोक्ष कहा जाता है। समझ में आया? तब कहते हैं कि यह क्या मोक्ष हुआ? किससे छूटा, यह उसे मोक्ष कहा। किससे छूटा, तब उसे मोक्ष कहा? छूटा किससे? कि जो आत्मा में ज्ञान की पर्याय क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से मिथ्यात्व, राग-द्वेषरूप से प्रवर्तती थी, उससे दशा छूट गयी। मुकाणी, समझ में आया? छूटी। छूट गयी। वह अशुद्ध अवस्था छूट गयी और शुद्ध अवस्था हो गयी। यह शुद्ध अवस्था हुई, उसका नाम अस्तिरूप से भावमोक्ष। अशुद्धता छूट गयी, इसका नाम नास्तिरूप से भावमोक्ष। गजब बात परन्तु! जैन में जन्मे, उसे भी जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। शशीभाई!

यह अशुद्ध स्वाँग भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति दर्शन, ज्ञान, आनन्द का कन्द, उसे नहीं अनुसरते हुए, कर्म को अनुसरकर होती ज्ञान की ज्ञप्ति-जानने की क्रिया, वह जानने की खण्ड-खण्ड क्रिया, उसका नाम मिथ्यात्व और राग-द्वेष इकट्ठा आया, नहीं तो खण्ड-खण्ड होगा नहीं। वह क्रिया अशुद्ध स्वाँग, वह नये रजकण नये आवें, उसका वह निमित्त और हेतु है। **परन्तु वह (क्रमानुसार प्रवर्तती ज्ञप्तिक्रियारूप भाव)...** वह क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से प्रवर्तती अपनी ज्ञान की अवस्था, वह **ज्ञानी को मोहरागद्वेषवाली परिणतिरूप से हानि को प्राप्त होता है...** कहो, समझ में आया ? उसे मोह, राग-द्वेष घटने से उसके कारण ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड भी घटती जाती है। अरे ! यह और किस प्रकार का धर्म है ?

यह कुन्दकुन्द आचार्य महाराज, दिगम्बर सन्त, दो हजार वर्ष पहले महामुनि दिगम्बर जंगल में बसते थे। यह उनके बनाये हुए श्लोक हैं और नौ सौ वर्ष पहले एक अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर नग्नमुनि, भगवान की परम्परा से जो मार्ग आया, कुन्दकुन्द आचार्य ने जो कहा, उसकी टीका यह अमृतचन्द्राचार्य, यह टीका उन्होंने बनायी है। निमित्त से ऐसा (कहा जाता है)। कहो, समझ में आया ? क्या दिगम्बर सन्त कहते हैं, क्या भगवान कहते हैं, नौ तत्त्व किसे कहना ? खबर नहीं होती, यह क्रिया की, लो ! यह चक्की से दलना और ऐसा करना। परन्तु वह कार्य तेरा नहीं। अब शुद्ध आहार तो सहज मिल जाये उसकी बात है। रावजीभाई !

यह तो चक्की से हम ऐसा करते हैं न, पीसते हैं न। वह क्रिया तेरी है तो तू कर सकता है ? वह तो जड़ की क्रिया है, पर की क्रिया है। आत्मा उसे कर सकता है ? उसे ऐसे हाथ फिरा सकता है ? क्योंकि वह तो जड़ है। अजीवतत्त्व है। और चक्की-बक्की घूमना, वह पर अजीवतत्त्व है। उसकी क्रिया मैं करता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। अजीव को जीव मानता है। रावजीभाई ! कठिन बात है जगत को जैनदर्शन। जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन। समझ में आया ? ऐ सोगंदचन्दजी ! एक चक्की का पड़ था और एक चक्की का पड़ खोजते थे। ऐसा एक बार सुना था, हों ! अब वह बराबर याद रह गया। ऐसा था या नहीं ? एक पड़ था और एक पड़ फिर खोजते थे। अरे ! परन्तु यह पड़, यह तो पहला अन्दर खोज ! कि इस पड़ का चक्र उल्टा कैसे घूमता है ? यह भावकर्मचक्र

उल्टा कैसे घूमता है, उसे तो देख! समझ में आया? यह भावकर्मचक्र की बात चलती है। द्रव्यकर्म जड़ में वह नहीं। पर में पर का उसके साथ यहाँ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! यह आत्मा की पर्याय में जो क्रम-क्रम से खण्ड-खण्डरूप से ज्ञान का जानना, ज्ञप्ति की क्रिया राग-द्वेष और मिथ्यात्वसहित होती है, वह ज्ञानी को, स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, ऐसे अन्तरध्येय में सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व हो, उसकी ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड वर्तती थी, उस क्रिया का नाश होता है। समझ में आया? और फिर राग-द्वेष का अभाव होने पर स्वभाव-सन्मुख की वीतरागी परिणति-अवस्था होने पर वह क्रम-क्रम से खण्ड की अवस्था हानि पाती है अर्थात् नाश हो जाती है। कहो, समझ में आया?

इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है... इसलिए ज्ञानी को-धर्मी को अपना ज्ञान, आनन्द स्वभाव की वर्तमान पर्याय उसे अनुसरती हुई होती थी, वह कर्म के निमित्त को अनुसरकर होती थी, वह ज्ञानी-धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को प्रथम चौथे गुणस्थान से, पाँचवें, छठवें आदि मुनि को भी अपना आत्मा एक समय में ज्ञान, आनन्द ध्रुव चैतन्य प्रभु की वर्तमान दशा को, उसे अनुसरकर प्रगट करते हुए उस ज्ञप्तिक्रिया के खण्ड-खण्ड का नाश हो जाता है। इसलिए नये आस्रव नहीं आते। नये रजकण आने के थे और आते नहीं, ऐसा नहीं है। परन्तु जो आने के नहीं थे, उन्हें रोका, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं रविन्द्र? वहाँ तुझे बहियों में आता है? यहाँ गप्प-गप्प चलती है वहाँ। वह सब कॉलेज में और अज्ञान पठन है पुस्तक का।

यह कहते हैं, **जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है...** देखो! भाव-भाव। नये कर्म की पर्याय, उसे आती नहीं। **इसलिए जिसे आस्रवभाव का निरोध हुआ है, ऐसे उस ज्ञानी धर्मी को...** अपने आत्मा के अन्दर में वस्तु स्वभाव-सन्मुख को अनुसरकर अन्तर स्वभाव को अनुसरकर होती ज्ञान की क्रिया, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की क्रिया के कारण से **ज्ञानी को मोह के क्षय द्वारा...** मोह का क्षय होता है। समझ में आया?

अत्यन्त निर्विकारपना होने से,... लो! यह आत्मा की पर्याय में अत्यन्त निर्विकार, जो विकारसहित ज्ञान की ज्ञप्ति की जानने की क्रिया खण्ड-खण्ड थी, वह स्वभाव को अनुसरती क्रिया करने से अत्यन्त निर्विकारी शुद्धपने की परिणति को वह पर्याय प्राप्त करती है। समझ में आया?

जिसे अनादि काल से अनन्त चैतन्य और (अनन्त) वीर्य मूँद गया है... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा का ज्ञान और आनन्द कायम स्वभाव, उसकी पर्याय में आवृत्त हो गया, पर्याय में रुक गया है। जैसे फूल की कली हो कली। वह वर्तमान जैसे यह संकोचपने है, वैसे आत्मा की पर्याय अनादि की अनन्त चैतन्य और अनन्त वीर्य, बेहद जिसका अन्तर स्वभाव, उसकी वर्तमान पर्याय में आवृत्त हो गया है, संकोच हो गया है। ज्ञान संकोचपने को, वीर्य संकोचपने को प्राप्त हुआ है। समझ में आया?

ऐसा वह ज्ञानी... मुँद गयी हुई ज्ञान और आनन्द की, इस वीर्य के कारण, भाई! समझ में आया? ज्ञान के साथ आनन्द आदि की पर्याय मुँद गयी है, संकोच हुई है। पर्याय में संकोच, वस्तु में पूरा त्रिकाल पड़ा है। पर्याय अर्थात् अवस्था में संकोच है। कली ऐसे संकोच दिखती है, वह जब ऐसे खिलती है। कमल फूल की कली। उसी प्रकार आत्मा अनादि से पर्याय में ज्ञान और वीर्य, आनन्द और दर्शन, वह संकुचित हो गयी पर्याय है, **ऐसा वह ज्ञानी (क्षीणमोह गुणस्थान में)...** स्वभाव को अनुसरकर मोह क्षय हुआ, इसलिए **शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से...** वह पहली अशुद्ध थी। पहली कही थी अनुसरण करती परिणति अशुद्ध थी। वह अब बारहवें शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से पर्याय हुई। समझ में आया?

शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया निर्मल तो चौथे से शुरु हुई। परन्तु यहाँ शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया पूर्ण हुई। समझ में आया? आत्मा अपना शुद्धस्वभाव पूर्ण, उस पर नजर करने से पर्याय में खण्ड-खण्ड मिथ्यात्वसहित उत्पन्न होता था, उसका नाश हो गया। और ज्ञान, स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन की पर्यायसहित ज्ञान की पर्याय थोड़ी अखण्ड प्रवर्तने लगी। वह शुद्धता प्रवर्तने लगी। अशुद्धता-मोह का क्षय होने से बारहवें में शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया अन्तर्मुहूर्त रही। समझ में आया?

भाषा भी अलग और भाव भी अलग प्रकार के। यह वस्त्र छोड़ दो और हो गये त्यागी। यह किया और यह... परन्तु तत्त्व के भान बिना तेरे वस्त्र छूटे, वस्त्र तो छूटे हुए ही पड़े हैं। कहाँ अन्दर घुस गये हैं? समझ में आया? हें? क्षेत्र से तो भिन्न ही पड़े हुए हैं। वस्त्र वस्त्र के क्षेत्र में और आत्मा आत्मा के क्षेत्र में है। यह अनादि की है। पर के क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र नहीं और आत्मा के क्षेत्र में पर का क्षेत्र नहीं। कहो, समझ में आया? वह तो स्वक्षेत्रज्ञ है। ऐसा एक शब्द आता है न? क्षेत्रज्ञ। आता है न जीव के नाम आते हैं। वह स्वक्षेत्रज्ञ है। स्वक्षेत्रज्ञ वह आत्मा का नाम है। समझ में आया?

यह आत्मा स्व-असंख्य प्रदेशी क्षेत्र। निर्मलानन्द प्रभु, उसका ज्ञ अर्थात् जाननेवाला आत्मा क्षेत्रज्ञ है। परक्षेत्र रहा पर में। वस्त्र का क्षेत्र और शरीर यह सब परद्रव्य है। यह तो परवस्तु है, इसके परक्षेत्र में है। आत्मा के क्षेत्र में यह है ही नहीं। इसके क्षेत्र में आत्मा का क्षेत्र नहीं। दोनों के भिन्न क्षेत्र अन्दर हैं। क्षेत्र अर्थात् साथ के साथ... आत्मा तो अपने स्वचतुष्टय के भाव में है। आत्मा का द्रव्य, गुण-पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य। क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई। असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में आत्मा है। पर्याय अर्थात् काल। वर्तमान अवस्था, भाव अर्थात् शक्ति। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में है; पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसमें है न। सुनते नहीं? यह अशुद्धता का नाश होना, वह नास्तिरूप से भावमोक्ष, भाव छूटा, ऐसा कहने में आया। और अस्तिरूप से अनन्त ज्ञान आदि की प्रगट दशा हुई, उसे भावमोक्ष अस्तिरूप से कहने में आया। समझ में आया? यह मोक्ष-मोक्ष बातें करे मोक्ष। हमारे मोक्ष चाहिए है। परन्तु कहाँ मोक्ष किसे कहना, खबर है तुझे? उसमें मानो मोक्ष होगा! उस तीर्थफण्ड में वहाँ वह क्या कहलाता है? मुक्तिशिला में जाना, वह मोक्ष होगा? मुक्तिशिला में जाना वह तोक्ष होगा, ऐसा है नहीं। मुक्तिशिला तो कहीं रह गयी नीचे और सिद्धपद तो कहीं ऊपर है। और मुक्तिशिला में वहाँ भी निगोद के जीव हैं और सिद्ध विराजते हैं, वहाँ भी निगोद के जीव हैं। जहाँ ऊपर सिद्ध विराजते हैं वहाँ, उनके पेट में (आत्म प्रदेशों में) शरीर में निगोद के जीव हैं। (क्षेत्र अपेक्षा से है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मिलती। सेठ ठीक कहते हैं। जहाँ सिद्ध का आत्मा है, वहाँ अनन्त निगोद पड़े हैं। एकक्षेत्रावगाह में कहाँ? सबका क्षेत्र भिन्न है, सबके भाव भिन्न हैं। भान नहीं होता, भान। आहाहा! थोड़ी शान्ति मिलती है या नहीं? सिद्धपद में जिसमें आत्मा अनन्त केवलज्ञानमय विराजता है। उसे वहाँ भी अन्दर निगोद है। पाँच एकेन्द्रिय सूक्ष्म हैं। उसे कहीं शान्ति मिलती होगी या नहीं? वहाँ दो-चार .... पड़े हैं। जेल में पड़े हैं। रावजीभाई!

सिद्ध है न? ५०० धनुष में निगोद महासूक्ष्म पड़े हैं पूरे लोक में, सूक्ष्म है न? पूरे लोक में सूक्ष्म भरे हुए हैं। सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म जल, सूक्ष्म अग्नि, सूक्ष्म वायु, सूक्ष्म वनस्पति। निगोद है। सूक्ष्म वनस्पति निगोद है। वे चार प्रत्येक हैं। पूरे लोक प्रमाण पड़े हैं। सिद्ध हैं वहाँ है, परन्तु इससे क्या हुआ? प्रत्येक का क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, द्रव्य भिन्न। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ज्ञानी को पर्याय मुँद गयी है। वह जहाँ स्वभाव का अनुसरण करके, वह पर्याय **(क्षीणमोह गुणस्थान में) शुद्ध ज्ञप्तिक्रियारूप से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत करके...** शुद्ध की ज्ञप्ति केवली, पहली अशुद्धि थी, वह शुद्ध हुई। जानने की क्रिया शुद्ध हुई। अटकती आती, राग-द्वेष नहीं रहे। मोह, राग, द्वेष नहीं रहे। परन्तु अभी पूर्ण शुद्ध चेतना प्रगटी नहीं।

यह अन्तर्मुहूर्त बारहवें गुणस्थान में पहले से स्वभाव को अनुसरकर जो सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, स्वभाव को अनुसरकर चारित्र प्रगट किया है। बढ़ते-बढ़ते बारहवें गुणस्थान में शुद्ध जानने की ज्ञप्तिक्रिया, जाननक्रिया शुद्ध हुई है, वह वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहती है। **युगपद ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय होने से...** लो! फिर एक समय में युगपद अर्थात् एक साथ ज्ञानावरण का नाश, दर्शनावरण का नाश, **अन्तराय का क्षय होने से कथंचित् कूटस्थ ज्ञान को प्राप्त करता है...**

यह भगवान आत्मा एक क्षण में किसी प्रकार कूटस्थ अर्थात् ऐसा का ऐसा ज्ञान सदा रहनेवाला, वह ज्ञान अब पलटनेवाला नहीं, इस अपेक्षा से वहाँ कूटस्थ कहने में

आता है। बाकी है तो ज्ञान की परिणति, केवली की परिणति। केवलज्ञान की पर्याय भी समय-समय में नयी प्रगट होती है। परन्तु ऐसी की ऐसी प्रगट होती है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है, देखो! (नीचे फुटनोट में)।

कूटस्थ= सर्व काल एक रूप रहनेवाला; अचल। [ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का नाश होने पर ज्ञान कहीं सर्वथा अपरिणामी नहीं हो जाता;...] भगवान का केवलज्ञान कूटस्थ जैसे शिखर स्थिर रहता है, वैसे नहीं। समय-समय बदलता है। केवलज्ञानी का ज्ञान भी समय-समय में बदलता है। अनन्त गुण समय-समय में बदलते हैं। उत्पाद...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बदले सदा अनन्त काल। वे पूछते थे न तुम्हारे देरियाजी! यह लप पर्याय की! पर्याय की खबर नहीं होती खबर। पर्याय किसे कहना? पर्याय तो आत्मा का धर्म है। स्वभाव है वह कब मिटे? सिद्ध में भी पर्याय है। अनादि-अनन्त है। पर्याय निगोद में से लेकर सिद्ध, अनादि अनन्त पर्याय होती है। संसारी को अशुद्ध पर्याय मिथ्यादृष्टि की, साधक को शुद्ध और अशुद्ध पर्याय, सिद्ध को पूर्ण शुद्ध पर्याय। समझ में आया?

यह देखो! **अपरिणामी नहीं हो जाता;...** उसे भी खबर नहीं। केवलज्ञान बदले? केवलज्ञान अब पलटे। अब उसे पलटने का क्या कारण रहा? ऐसा। परन्तु वह तो पलटने का पर्याय का स्वभाव है। समय-समय नयी ही हुआ करे, नयी ही हुआ करे। वह की वह पर्याय दूसरे समय नहीं रहे। केवलज्ञानी भगवान अरिहन्त को भी वह केवलज्ञान की पर्याय वह की वह दूसरे समय नहीं रहती।

'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत्' पदार्थ अनन्त गुण की पर्याय से उत्पन्न होता है, पूर्व की पर्याय से व्यय होता है, अपनी जाति को बनाये-टिकाये रहे, ऐसा प्रत्येक द्रव्य का स्वयं सिद्ध स्वत: स्वभाव है। समझ में आया? **परन्तु वह अन्य-अन्य ज्ञेयों को जाननेरूप परिवर्तित नहीं होता—सर्वदा तीनों काल के समस्त ज्ञेयों को जानता रहता है, इसलिए उसे कथंचित् कूटस्थ कहा है।** नोट है न, नीचे है फुटनोट। प्रत्येक इस गाथा के भाव तो प्रत्येक सूक्ष्म हैं। पर्याय का कथन है। उसकी वस्तु पर्याय निर्मल, मलिन कैसी है?

और वह भी निर्मल पर्याय भी कूटस्थ है, इतनी रहती है। अर्थात् कि अलग-अलग ज्ञेय को जानने के लिये परिणमन बदलता नहीं परन्तु एक साथ सब ज्ञेयों को जानने की जो पर्याय पलटी, ऐसी की ऐसी दूसरे समय में, तीसरे समय में, सादि-अनन्त। नयी... नयी... नयी... पर्याय केवलज्ञान, तथापि अनेक ज्ञेयों को जानने के लिए परिणमन नहीं पलटता, इसलिए कूटस्थ कहने में आता है। कूट अर्थात् शिखर... पानी के तरंग की भाँति उठे, ऐसा नहीं। समझ में आया? क्या?

पानी की तरंग की भाँति ऐसे ऊँचे गया, ऊँचे गया वह है तो केवलज्ञान की भाँति उसकी पर्याय परन्तु ऐसी की ऐसी है, इसलिए कूटस्थ कहने में आता है। कूट अर्थात् शिखर होता है न शिखर, वह पर्वत पर शिखर। है? उसमें तरंग नहीं उठती। पानी की तरंग उठती है, शिखर स्थिर है। ऐसा यहाँ है नहीं, ऊपर में है नहीं। है तो अपनी समय-समय की पर्याय परिणमती हुई, परन्तु इस प्रकार से ज्ञेय को जानते हुए स्वयं ज्ञान अपने पूर्णपने परिणम रहा है, अनेक ज्ञेयों को भिन्न-भिन्न अटकता जानता हुआ पलटता नहीं, इसलिए उसे कूटस्थ कहने में आया है। रावजीभाई! अभी थोड़ा अभ्यास करना चाहिए। ऐसा का ऐसा यह सब बाहर में और बाहर में जिन्दगीयाँ जाती हैं। आहा! ऐसा समय मनुष्यदेह का, उसमें वीतराग में जन्म, उसमें सत् वाणी सुनने को मिले, उसमें इस प्रकार, यह तो महा दुर्लभ! दुर्लभ... दुर्लभ... दुर्लभ है। ओहोहो! यह निगोद के जीव कभी त्रस नहीं होते, आहाहा! त्रस नहीं होते तो समकित तो कहाँ से पावें? आहाहा! नित्य निगोद है न! आहाहा! भाई! तुझे तो यह अवसर मिला है, सब अवसर आ गया है। आहाहा!

यह वस्तु एक समय में पूर्ण शुद्ध, उसकी पर्याय बाहर के लक्ष्य में अटकती है, वह संसार! उसे अन्तर ज्ञायक में अनुसरण करना, वह धर्म की पर्याय और मोक्ष का उपाय है। वह तो कहे, यह करो और यह करो और यह करो। बेचारे को कहाँ विपरीतता घुसा डाली है! निवृत्त हो नहीं। एक व्यक्ति तो कहता था, दो-दो घण्टे तो हमारे दाना धोना पड़े, वहाँ उदासीन आश्रम में। प्रत्येक को दाना दे, धोना पड़े। सब्जी धोना पड़े, दो घण्टे रूकें। तब वापस नहाना-धोना। और ऐसा धनोज-बनोज होवे, उसे साफ करें। उसमें ही हमारा समय जाता है। हम पढ़ने के लिए कब निवृत्त हों! धर्म कब था वहाँ।

विकल्प है जरा! समझ में आया? वह बेचारा कहता हो कि यह तुम कहते हो, वह बात हमारे सुनने के लिये भी समय कहाँ पढ़ने का? यह खाना और यह नहीं खाना, यह पीना और यह नहीं पीना। यह बिगड़ गया और यह छोड़ दिया.... यह छू गया। अब सुन न! तू अटका है अज्ञान में, वहाँ यह तो निर्णय कर! भीखाभाई!

एक तो बेचारी बाई। उसका पति ऐसा सब करे कि कायर हो गयी फिर। गुड़ खाओ वह। पश्चात् गन्ना उसमें से ले आवे। शेरडी समझते हो? गन्ना। वह वहाँ दूध पिलावे वह वापस वहाँ वह क्या कहलाता है? चीचोडा, उसे पिलावे, किसान के हाथ धुलावे, उसे सब ऐसा करावे, वह रस निकाले, लावे! और वापस स्त्री को कहे कि तू यहाँ रह। भाई! उसकी अपेक्षा गुड़ खाना ही छोड़ दे न? इतनी सिरपच्ची है वह! कितनी सिरपच्ची! अभी गुड़ खाना है, परन्तु ऐसी सब कर्ता... कर्ता... कर्ता की क्रिया छोड़नी नहीं। अब उसे धर्म करने का अवसर कब रहे? उसने मान लिया। हें! और तुम्हारे जैसे सेठिया मिल गये। क्यों सेठ? ओहो! त्यागी महाराज है, त्यागी महाराज है, ऐसी पुष्टि की। उसको भाई पैसा चाहिए हो तो जाओ भाई ले जाओ, भाई! मूढ़ है। सामने बड़ा नाम। भगवानदास शोभालाल बड़ा-बड़ा नाम, अब क्या करना? बुन्देलखण्ड।

परन्तु यह सब समझे बिना सब थोथा है, कहते हैं। आहाहा! और बेचारे को घर में... यहाँ दस-बारह वर्ष पहले आये तब (कहते) यह बात हमारे सुनने को मिलती नहीं। ..... हमारा तो उसमें समय जाता है, खाने में समय जाता है, पीने में समय जाता है। जंगल में दो बार कदाचित् जाने का हो। उसमें जाता है। उसमें नहाना, धोना, पैर साफ करना। सब यह करना... यह करना। उसमें मुश्किल से निवृत्त हों, ऐसा साफ करना दाना और मैथी और गेहूँ।

भाई! यह तो सहज ही जिस काल में बनने की क्रिया बनती हो, पहले सम्यग्दर्शन प्रगटे, दर्शनशुद्धि हो, फिर सहज ऐसा विकल्प हो। बनने की क्रिया हो तो बन जाये। यह तो कर्ताबुद्धि को करना है और धर्म की श्रद्धा बढ़ानी है। कर्तृत्वबुद्धि से। पहले यह करते हैं। तो यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा! अपने शुद्धस्वरूप की अन्तर की दृष्टि करने से...

देखो! अपनी पर्याय में ज्ञप्तिक्रिया शुद्ध हुई, अन्तर्मुख हुई तो केवलज्ञान हो गया। समझ में आया? यह क्रिया केवलज्ञान प्राप्त करने की है। कितने अपवास करना पड़ेंगे केवलज्ञान प्राप्त करने के लिये, ऐसा यहाँ नहीं लिखा। भगवान आत्मा, निमित्त को अनुसरकर ज्ञप्तिक्रिया खण्ड-खण्ड अकेली करता है, तो अन्तर्मुख का अनुसरण करके ज्ञप्ति के साथ अखण्डता, अशुद्धता का नाश होकर वह पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है। पूर्ण शुद्धता तो बारहवें गुणस्थान में प्रगट होती है। अन्तर्मुहूर्त रहे तो तीनों का (अशुद्धता का) नाश होता है। उसकी कल्पना है, ऐसा होगा, ऐसा होगा यह।

इस प्रकार वे ज्ञप्तिक्रिया के रूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से... जो जानने की क्रिया खण्ड-खण्डरूप में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होने से, भावकार्य खण्ड-खण्ड का जो कार्य था, उसका नाश होता है। वह भावकर्म। वह भावकर्म यहाँ कहा। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस बात! इसकी क्रिया आदि है, वह पर के लक्ष्य से खण्ड-खण्ड होती है इतना, अपनी ज्ञप्ति-जानने की क्रिया, हों! स्वज्ञेय को ज्ञान न बनाकर अकेले परसन्मुख के पक्ष के लक्ष्य में उस ज्ञान की प्रवृत्ति अकेली खण्ड-खण्ड प्रवर्तती है, वह संसार है, वह भावकर्म है।

यह उदयभाव बन्धभाव खण्ड-खण्ड होने से यह दुःखदायकभाव है। समझ में आया? देखो! ज्ञप्तिक्रिया शब्द पड़ा है या नहीं? यह क्रिया है या नहीं? यह क्रिया उसकी खण्ड-खण्ड में वर्तती दुःखदायक है। उसे आत्मा का अनुसरण करके उस क्रिया का नाश हो जाना, इसका नाम भावकर्म का विनाश कहने में आता है। क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड होती क्रिया, वह भावकर्म है। ....उसका नाम भावकर्म है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कर्म का अभाव होने पर वह वास्तव में भगवान... अब सीधी बात लेते हैं। **सर्वज्ञ...** होते हैं, **सर्वदर्शी...** होते हैं, **इन्द्रियव्यापारातीत...** होते हैं, **अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।** आहाहा! इसीलिए उस कर्म का अभाव, वह कर्म कौन? वह भावकर्म, हों! ज्ञप्तिक्रियारूप भाव। **भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा इन्द्रियव्यापारातीत—अव्याबाध—अनन्त सुखवाला सदैव रहता है।** वह पर्याय प्रगटी

अनन्त काल सिद्ध भगवान ऐसे के ऐसे ही रहते हैं। परमात्मा अरिहन्त पद प्रगट हुआ, वह इस आत्मा के अन्तरगुण को अनुसरण कर प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन भी अन्तरगुण को अनुसरकर, चारित्र भी अन्तर स्वभाव को अनुसरकर, शुक्लध्यान भी अनन्त को अनुसरकर और केवलज्ञान अनन्त स्वभाव के त्रिकाल को अनुसरकर प्रगट होता है। भावकर्म से छूटता है और भावमोक्ष आदि दशा को उत्पन्न करता है। कहो, समझ में आया?

अनन्त सुखवाला सदैव रहता है। कहते हैं, यह आकुलता का नाश हुआ, भावकर्म का। अनाकुलता के आनन्ददशा की प्रगट दशा, वह सुख। सुख यह स्त्री, पुत्र का सुख है धूल का? यह स्त्री, पुत्र, पैसा, बँगला मकान दो लाख का, पाँच लाख का, वह सुख है? (वह तो) मिट्टी के ढ़ेर हैं, धूल है। वहाँ सुख है? और वहाँ दुःख है? तेरा दुःख वहाँ है? निर्धनता और शरीर में रोग, उसमें दुःख है? बिल्कुल नहीं। तेरा आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसकी उल्टी दशा करके विकार का भाव करे, वह दुःखदशा है। लगता है इसे दुःख? यह भान बिना का दुःख दशा में है। दशा में, आत्मा की दशा में, शरीर में नहीं। शरीर में कौन कहता है? शरीर में कहाँ आत्मा था कि शरीर में हो।

मुमुक्षु : शरीर उसका नहीं तो किसका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी, धूल का। वह तो पुद्गल का शरीर है। आत्मा का शरीर है यह? मोहनभाई! भाई को अब कुछ निर्णय करा देना। यह कहे, तुम करा दो, मैंने इन्हें सौंपा है। यह दुःख शरीर में भी नहीं, शरीर के कारण भी नहीं। दुःख है, वह आत्मा की वर्तमान दशा में आनन्द को भूलकर भ्रमणा और राग-द्वेष करे, वह दुःख है। किसका दर्द होता है, धूल में भी नहीं होता, मानता है। यहाँ कुछ हो तो मुझे कुछ होता है, ऐसी कल्पना करता है। कभी अपने अस्तित्व की सत्ता की दृष्टि और लक्ष्य नहीं करता।

मुमुक्षु : एकक्षेत्रावगाह में रहा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकक्षेत्रावगाह में रहा हुआ अर्थात्? एकक्षेत्रावगाह में धर्मास्ति रहा है, अधर्मास्ति रहा है, आकाश भी रहा है। सब ही रहे हैं। यहाँ सब है। छह द्रव्य यहाँ हैं। यहाँ असंख्य प्रदेश धर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश यहाँ हैं,

आकाश (लोकाकाश) के असंख्य प्रदेश हैं, काल के अमूर्त द्रव्य हैं। अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध हैं।

मुमुक्षु : तो इसमें भूल कहाँ होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान के कारण भूल होती है।

इसे अपनी महान सत्ता चैतन्य अरूपी आनन्दघन की सत्ता का स्वीकार नहीं करने से यह राग-द्वेष और अल्पज्ञता मैं हूँ, ऐसी सत्ता का स्वीकार करने से, इसे दुःख होता है। आहाहा! समझ में आया? इस शरीर को कुछ हो गया, यह मेरी सुविधा चली गयी, यह असुविधा मुझे है। यह मान्यता इसे दुःख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह क्या, वह तो इसका बाप हुआ वापस। शरीर में ठीक है, वह वापस सुविधा हो गयी। वह का वह हुआ। वह का वह वहाँ वापस होली हुई। परन्तु यह (शरीर) कब इसके पिता का था या इसका था? यह तो मिट्टी का है। यह मिट्टी राख होकर एक बार श्मशान में खड़ी रहेगी। अभी यह राख का पिण्ड है। ऐई! शरीर पर अरुचि आयी है। क्या तैयार है? आत्मा मर जाता होगा? आत्मा मरता होगा कभी? शरीर छूटे वहाँ मर गया? जेचन्दभाई! यह तो सब भ्रमणा अन्दर दुःख में पलटा गयी है दृष्टि। यह मरना है। वहाँ मौसीबा बैठी होगी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह सब देखते में से छूटे, इसलिए अन्धेरे में जाना है, ऐसा इसका अर्थ। यह देखते हैं न मोहनभाई और लड़के, यह मामा और सब था, उसमें से छूटते हैं तो यह देखनेवाले तो मरे! हम अन्ध को ये भी अन्ध और हम साथ में फिर सब। कहो, समझ में आया इसमें?

वह बात यह है कि इस जगत की व्यवस्था में हम ऐसे रहे, उसे देखनेवाले अधिकपने देखते, यह ऐसे देखेऐसी स्थिति में से चले जायें तो वहाँ अभी दूसरी दुकान में से छूट जाना है? आत्मा के अस्तित्व की सत्ता की खबर नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

इस प्रकार यह (जो यहाँ कहा है), भावकर्ममोक्ष का प्रकार... देखो ! भावकर्म मोक्ष का प्रकार और द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत परम संवर का प्रकार है। तीन लाईनें कहीं थी, उसका योगफल करते हैं। नीचे फुटनोट है, उसका अर्थ देखो ! नीचे फुटनोट **भावकर्ममोक्ष= भावकर्म का सर्वथा छूट जाना;...** भावकर्म इतना क्रम-क्रम से, खण्ड-खण्ड राग-द्वेष छूट जाने से **भावमोक्ष। ज्ञप्तिक्रिया में क्रमप्रवृत्ति का अभाव होना, वह भावमोक्ष है...** नास्ति से बात की। अथवा वह सर्वज्ञ-सर्वदर्शीपने की और अनन्त आनन्दमयपने की प्रगटता, वह भावमोक्ष है। भावमोक्ष के दो प्रकार। भाव अपनी निर्मल पर्याय अशुद्धता से छूट जाये, वह भावमोक्ष और निर्मल पर्याय स्वयं पूर्ण हुई, उसका नाम भावमोक्ष। समझ में आया ?

एक गाथा और एक न्याय समझ में आये तो निहाल होने का रास्ता है। बात समझने की दरकार करे नहीं और वह एक का एक घोंटे। बराबर है या नहीं ? आहाहा ! जहाँ नजर निधान में डालने की है, वहाँ नजर डालता नहीं। और इस स्थूल में और इसमें और इसमें, जहाँ-तहाँ नजर डालकर ज्ञान को खण्ड-खण्ड करता है। वह इसकी दुःखदशा है, वह आत्मा को अनुसरकर दुःखदशा टल सकती है। बाकी दूसरा कोई उपाय है नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - १५२

दंसणणाणसम्मग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्यस साधुस्स।।१५२।।

दर्शनज्ञानसमग्रं ध्यानं नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्।
जायते निर्जराहेतुः स्वभावसहितस्य साधोः।।१५२।।

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत् ।

एवमस्य खलु भावमुक्तस्य भगवतः केवलिनः स्वरूपतृप्तत्वाद्विश्रान्तसुखदुःखकर्मविपाककृतविक्रियस्य प्रक्षीणावरणत्वादनन्तज्ञानदर्शनसम्पूर्णशुद्धज्ञानचेतनामयत्वादतीन्द्रियत्वात् चान्यद्रव्यसंयोगवियुक्तं शुद्धस्वरूपेऽविचलितचैतन्यवृत्तिरूपत्वात्कथञ्चिद्ध्यानव्यपदेशर्हमात्मनः स्वरूपं पूर्वसञ्चितकर्मणां शक्तिशातनं पतनं वा विलोक्य निर्जराहेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ।। १५२ ।।

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।।१५२।।

अन्वयार्थ :- [स्वभावसहितस्य साधोः] स्वभावसहित साधु को (-स्वभावपरिणत केवलीभगवान को); [दर्शनज्ञानसमग्रं] दर्शनज्ञान से सम्पूर्ण और [नो अन्यद्रव्यसंयुक्तम्] अन्य द्रव्य से असंयुक्त ऐसा [ध्यानं] ध्यान [निर्जरा हेतुः जायते] निर्जरा का हेतु होता है।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन है।

इस प्रकार वास्तव में यह (-पूर्वोक्त) भावमुक्त (-भावमोक्षवाले) भगवान केवली को—कि जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण [१]कर्मविपाककृत सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है, उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनन्त ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्य द्रव्य

---

१. केवलीभगवान निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न सुख से तृप्त हैं, इसलिए कर्म का विपाक जिसमें निमित्तभूत होता है ऐसी सांसारिक सुख-दुःखरूप (-हर्षविसादरूप) विक्रिया उन्हें विराम को प्राप्त हुई हैं।

के संयोग रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है, ऐसा आत्मा का स्वरूप (-आत्मा की निज दशा) पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का [१]शातन अथवा उनका [२]पतन देखकर निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।

भावार्थ :- केवलीभगवान के आत्मा की दशा ज्ञानदर्शनावरण के क्षयवाली होने के कारण, शुद्धज्ञानचेतनामय होने के कारण तथा इन्द्रियव्यापारादि बहिर्द्रव्य के आलम्बनरहित होने के कारण अन्य द्रव्य के संसर्गरहित है और शुद्धस्वरूप में निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप होने के कारण किसी प्रकार 'ध्यान' नाम के योग्य है। उनकी ऐसी आत्मदशा का निर्जरा के निमित्तरूप से वर्णन किया जाता है, क्योंकि उन्हें पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्तिहीन होती जाती है तथा वे कर्म खिरते जाते हैं॥१५२॥

प्रवचन-५१, गाथा-१५२-१५३, आसोज कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक -२७-१०-१९६४

भावकर्म का मोक्ष। भावकर्म मोक्ष, यह उसका अधिकार चला। आत्मा में जानने की क्रिया क्रम-क्रम से खण्ड-खण्ड हो, वह भावकर्म है। अशुद्ध है, बन्ध का कारण है। उससे मोक्ष हो, इसका नाम भावमोक्ष कहने में आता है अथवा **द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम संवर...** अब यहाँ अधिकार निर्जरा का आयेगा। आगे की गाथा में निर्जरा अधिकार आयेगा। यह द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत, जड़कर्म के छूटने के निमित्तभूत परम संवर का प्रकार अयोगदशा तक का यहाँ वर्णन किया। अब परम निर्जरा बताते हैं। १५२ और १५३ गाथा में पूरा करेंगे। फिर मोक्षमार्ग शुरु। यह अपने चल गया है।

दंसणणाणसम्मग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्यस साधुस्स।।१५२।।

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।।१५२।।

---

१. शातन= पतला होना; हीन होना; क्षीण होना।
२. पतन=नाश; गलन; खिर जाना।

साधु अर्थात् भगवान केवली। यहाँ भगवान केवली को साधु कहने में आया है।

टीका :- यह, द्रव्यकर्ममोक्ष के हेतुभूत... जो पूर्व के कर्म बँधे हुए हैं। केवली को चार अघाति अभी पड़े हैं न? केवलज्ञानी परमात्मा को चार घातिकर्म नाश हुए और अघाति के चार अभी बाकी रहे। उनके छूटने के निमित्तभूत ऐसी **परम निर्जरा के कारणभूत...** परम निर्जरा के कारणभूत **ध्यान का कथन है।** जिसकी परम निर्जरा अर्थात् अधिक कर्म एक साथ छूट जाये, ऐसी परम निर्जरा का यहाँ स्वरूप ऐसा ध्यान, उसका कथन है। **इस प्रकार...** ऊपर कहा था वह १५० और १५१।

इस प्रकार वास्तव में यह (-पूर्वोक्त) भावमुक्त (-भावमोक्षवाले) भगवान केवली को... भावमोक्षवाले भगवान केवली को अपने स्वरूप में अत्यन्त रागरहित दशा, क्रम रहित जानने की क्रिया का कार्य नाश हो गया। और पूर्ण भावमुक्ति हो गयी। पर्याय में अशुद्धता का बिल्कुल नाश हुआ। यह ज्ञप्तिक्रिया की अशुद्धता का। और पूर्ण सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पर्याय प्रगट हुई। **ऐसे भगवान केवली को—कि जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण...** देखो! स्वरूपतृप्तपना-अपने स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव वर्तता है। जो आनन्द अन्तर शक्ति में था, वह पूर्ण एकाग्र होकर जो पर्याय प्रगट हुई। पूर्ण आनन्द... आनन्द... आनन्द। देखो! यह स्वरूपतृप्ति। स्वरूपतृप्ति हो गयी। **स्वरूपतृप्तपने के कारण...** भगवान केवली को स्वरूप की तृप्ति के आनन्द के कारण, कर्मविपाककृत सुख-दु:खरूप विक्रिया रुक गयी है।

नीचे फुटनोट है। **केवलीभगवान निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न...** आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख। निर्विकार—परमानन्दस्वरूप स्वआत्मा से उत्पन्न सुख से तृप्त है। लो! केवलीभगवान परम आनन्द से तृप्त है। तृप्ति हो गयी है। यहाँ लोग नहीं कहते? लड्डू खाये, कुछ पीवे क्या कहलाता है? मोसम्बी। प्यास की कुछ तृप्ति हुई अब? छाछ-मोसम्बी पीवे, अब तृप्ति तेरी तृषा की पूरी हुई या नहीं? ऐसा कहे। धूल भी तृप्ति नहीं। उसमें राग और कल्पना मिली। आत्मानन्द जो अन्तर में पूर्णानन्द पड़ा है, उसका पहला अन्तर में परिणमन करके आनन्द के अंश की प्रगट दशा में प्रतीति हो गयी कि पूरा आत्मा आनन्दमूर्ति है। समझ में आया? उसमें परिणमन किया, परिणमन।

पहला तो सम्यग्दर्शन के काल में वह आत्मा रागवाला और विकारवाला और संयोगवाला जो अनादि से मनाया हुआ था, वह मान्यता स्वरूप के परिणमन गमन में शुद्ध चैतन्यस्वरूप परम स्वभाव अकेला आननद आनन्दस्वरूप ही पूरा तत्त्व है। ऐसा प्रतीति में आने पर आनन्द के अंश की भी वेदन दशा होने पर, यह पूरा आत्मा स्वरूपतृप्त भरा हुआ है, ऐसा प्रथम सम्यग्दर्शन में भान होता है।

यह चारित्रसहित परमात्मा की बात ली है। भगवान को तो चारित्र पूर्ण स्वरूप में रमणता तो हो गयी और परमानन्द की पूर्ण तृप्ति हो गयी। जैसा वस्तु में आनन्द था, वह पहले अनुभव में प्रतीति आयी थी। ऐसा पर्याय में—अवस्था में आनन्द के अन्तर में लीन होने पर शक्ति की व्यक्तता परमानन्द की तृप्ति हुई। उसके कारण से, उसके कारण से है न? स्वरूपतृप्तपने के कारण, टीका। यहाँ भी नीचे (फुटनोट में) कहा है, **निर्विकार-परमानन्दस्वरूप स्वात्मोत्पन्न सुख से तृप्त हैं, इसलिए...** ऐसा। कर्म का विपाक जिसमें निमित्तभूत होता है, ऐसी सांसारिक सुख-दुःखरूप (-हर्ष-विषादरूप) विक्रिया उन्हें विराम प्राप्त हुई है, ऐसा। सुख-दुःख के विकल्प, संकल्प-विकल्प वे विराम अर्थात् नाश हो गये हैं। समझ में आया?

स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाककृत... कर्म के विपाक से जिसमें निमित्तपना कर्म के विपाक का है, ऐसे आत्मा में होती **सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है,...** अटक गयी अर्थात्? नहीं होती। **उन्हें,...** देखो! यहाँ भाषा ऐसी ली है, हों! कर्मविपाककृत, कर्म के विपाक से हुए सुख-दुःखरूप, निमित्त से, नीचे स्पष्टीकरण किया है। **स्वरूपतृप्तिपने के कारण,...** निमित्तपने के झुकाव का सुख-दुःख कल्पना का भाव, वह नाश हो गया है। अकेला आनन्द... आनन्द... आनन्द स्वरूप तृप्त... तृप्त... तृप्त।

उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,... आवरण का प्र—विशेष, आवरण सब क्षीण हो गया। यह यहाँ अभी केवली की बात चलती है, हों! तेरहवें (गुणस्थान) की बात चलती है। **उन्हें—आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,...** घाति के नाशपने के कारण। पहले लिया कि **स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाककृत सुखदुःखरूप विक्रिया अटक गई है,...** अब **आवरण के प्रक्षीणपने के कारण,...** निमित्त। **अनन्त ज्ञानदर्शन से**

सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण... आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, वह निमित्त कहा। आत्मा में अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान-दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध कहा। शुद्ध ज्ञानचेतना में भी सम्पूर्ण विशेष लगाया है। क्या कहा यह ?

पहले, चौथे गुणस्थान से शुद्धचेतना होती है। समझ में आया ? ज्ञान ज्ञान को जाने, वेदे, ऐसा अंश चौथे गुणस्थान में भी शुद्ध ज्ञानचेतना होती है। पाँचवें में होती है, छठवें में होती है, बारहवें में। सिद्ध को सम्पूर्ण ज्ञानचेतना, क्योंकि पहले कह गये हैं न कि तेरहवें गुणस्थान में ज्ञानचेतना है। पहले शुरुआत में कह गये हैं। कर्मचेतना, वह त्रस जीव को होती है। राग-द्वेष का वेदन करना, ऐसी कर्ताबुद्धि का वेदन कर्मचेतना त्रस जीव को होता है। कर्मफलचेतना एकेन्द्रिय को होती है। कर्मफलचेतना समझ में आता है ? क्या ? हर्ष-शोक का वेदन। हर्ष-शोक का वेदन मुख्यरूप से कर्म के फल का वेदन वह एकेन्द्रिय जीव को कर्मफल आनन्द का फल तो है नहीं। कर्म की चेतना का वीर्य मन्द है, इसलिए करना, ऐसी बुद्धि गौण है। मुख्यरूप से एकेन्द्रिय जीव को निगोद में अनादि के अनन्त... अनन्त... अनन्त... पड़े हैं, उन्हें तो अकेला विकार के परिणाम का भोगना, ऐसी कर्म-विकार के कर्मचेतना का अकेला वेदन है। त्रस जीव को मुख्यरूप से कर्मचेतना, गौणरूप से कर्मफल है। वीर्य की स्निग्धशक्ति अधिक है, इसलिए उसे कर्मचेतना मुख्यरूप से गिनी है। भगवान को ज्ञानचेतना गिनी है। कितने ही कहते हैं कि ज्ञानचेतना वहाँ ही होती है। नीचे नहीं होती। वहाँ ज्ञानचेतना तेरहवें गुणस्थान में गिनी है, पहले। उसका यहाँ टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है। देखो! समझ में आया ?

अनन्त ज्ञान-दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध ज्ञानचेतनामय हो गयी है दशा। केवली को सम्पूर्ण ज्ञान का चेतना, रमना, आनन्द पूर्ण हो गया है। **अनन्त ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण...** आहाहा! **शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण...** वह तो सम्पूर्ण और शुद्ध इन दो शब्दों पर जरा वजन है। समझ में आया ? केवली परमात्मा को सम्पूर्ण और शुद्ध ज्ञानचेतना पूर्ण हो गयी है। चौथे गुणस्थान में शुद्ध ज्ञानचेतना आंशिक है। समझ में आया ? भले रागादि और हर्ष-शोक का वेदन है। परन्तु वह सुखबुद्धि की रुचि से नहीं है, इसलिए उसे मुख्यरूप से न गिनकर ज्ञानी को ज्ञान का ही वेदन चैतन्यप्रभु अन्तर स्वरूप आनन्द शुद्ध

आनन्द, उसके ही परिणमन का वेदन मुख्यरूप से गिनने में आया है। साथ में राग-द्वेष और हर्ष-शोक का वेदन है। केवली को कुछ जरा भी नहीं। हर्ष-शोक का वेदन नहीं, पहले कह गये। सुख-दु:ख की विक्रिया नहीं। ओहोहो!

पूर्ण आत्मा। जैसी शक्ति में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, दर्शन, वीर्य था, वह पूर्ण जो अनन्त ज्ञान, दर्शन प्रगट हुआ, वीर्य भी साथ में प्रगट हुआ, उसे सम्पूर्ण **शुद्धज्ञान-चेतनामयपने के कारण...** एक बात। उसकी आत्मदशा ऐसी है, ऐसा कहते हैं। ऐसी दशा से उसे पूर्व के अघाति कर्म **शातन** और **पतन** दो शब्द प्रयोग किये हैं न? ऐसी दशा के कारण उसे उस प्रकार का ध्यान वर्तता है, ऐसा। इसलिए पूर्व के कर्म का शातन—टलना और पतन—सर्वथा नाश होना। समझ में आया? भाषा देखो! शातन और पतन। यह शब्द पड़े हैं। शातन और पतन। कितना साहित्य है इसमें? हें? आचार्य शब्द-साहित्य में भी कितने प्रवीण हैं! कर नहीं सकते, हों! समझ में आया? जमुभाई शब्द रखते हैं न कितनी ही बार, इससे याद आया। वे बहुत रखते हैं। हें, खबर है? ववा साथ में ववा, भभा साथ में भभा। दो तीन भाषा आती है यह भाषा अलंकार कहलाता है।

यहाँ कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा की पर्याय **अतीन्द्रियपने के कारण...** अकेली अतीन्द्रियदशा। इन्द्रिय जड़, मिट्टी, भले छिद्र रह गये देह के इन्द्रिय खण्ड-खण्ड मिटकर अतीन्द्रिय हो गया। **जो अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** उसका स्वरूप है। भगवान आत्मा परमानन्दमूर्ति अन्य द्रव्य के संयोगरहित जिसकी दशा है। इस प्रकार पूरे आत्मा की व्याख्या करते हैं। और आत्मा की पूरी पर्याय हो तब ऐसा होता है। समझ में आया? **अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** यह आत्मदशा का स्वरूप है। **और शुद्ध स्वरूप में...** यह नास्ति से बात की है। **अन्य द्रव्य के संयोग रहित है...** यह नास्ति बात की है। अस्ति - **और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण...** ओहो! अन्तर आत्मा के ध्रुवधाम में लीन होकर जो पर्याय प्रगट की, ऐसी शुद्ध स्वरूप में अविचलित-चलित नहीं। अविचलित—विचलित नहीं, चैतन्यपरिणति, चैतन्यवृत्ति, चैतन्यधारा ऐसी अविचलित होने के कारण **जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है,...** इस कारण से उसे ध्यान कहा जाता है।

भगवान को ध्यान। उन्हें ध्यान करना नहीं, ऐसा नहीं परन्तु इस कारण से उसे

ध्यान कहा जाता है। कहो, समझ में आया? शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यधारा परिणतिरूप, वृत्ति-परिणति पर्याय **होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है,...** कहो, समझ में आया? **ऐसा आत्मा का स्वरूप (-आत्मा की निज दशा)...** अवस्था **पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन...** अर्थात् कि पूर्व के अघातिकर्म जो पड़े हैं, उनका शातन होता है। **पतला होना; हीन होना; क्षीण होना।** अथवा उनका **पतन-**नाश, गल जाना, खिर जाना। ऐसा **अवलोक कर,...** ऐसी दशा के काल में कर्म का शातन-पतन देखकर **निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।** वह ध्यान निर्जरा के हेतु है, ऐसा वर्णन किया जाता है। समझ में आया?

यह 'ध्यान' नाम के योग्य है, ऐसा आत्मा का स्वरूप... ऐसा। ध्यान नाम के योग्य होना, ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, ऐसा। वह पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन, कौन? ऐसा जो ध्यान, ऐसी जो आत्मा की दशा। समझ में आया? यह कर्मों का पतला पड़ना और कर्मों का टलना **अवलोक कर...** उसे ध्यान **निर्जरा के हेतुरूप के वर्णन किया जाता है।** कहो, समझ में आया इसमें कुछ? ऐसे ध्यान नहीं कि मैं ध्यान करूँ। नीचे तो अन्दर ऐसा विकल्प आवे कि मैं स्थिर होऊँ। परन्तु वह ध्यान अन्तर की एकाग्रता-पूर्णता नहीं तो एकाग्रता करना चाहते हैं। यहाँ तो पूर्णता हो गयी है। अनन्त दर्शन-ज्ञान शुद्धचेतनामय परिपूर्ण... परिपूर्ण तृप्त-तृप्त वर्तते हैं।

इस कारण से, इस हेतु से उसे इस अपेक्षा से ध्यान कहने में आया, ऐसी ध्यान की दशा वह पूर्व के कर्म को पतला और खिरना देखकर उस दशा में उस ध्यान को निर्जरा का कारण और निमित्त कहने में आता है। कहो, समझ में आया इसमें? देखो! कितना तोल-तोलकर और कितने शब्द और कैसी... शब्दों के कर्ता नहीं, हों! परन्तु भाव में निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है न? वह भाव कैसा है, वैसी ही भाषा की पर्याय भाषा प्रकाशती है पदार्थ को भाषा प्रकाशती है पदार्थ को।

भावार्थ :- केवलीभगवान के आत्मा की दशा... यह कहा न आत्मा का स्वरूप? ध्यान नाम को योग्य ऐसी आत्मा की दशा, ऐसा। इस कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य ऐसी जो आत्मा की दशा। ऐसी **केवलीभगवान के आत्मा की**

दशा ज्ञानदर्शनावरण के क्षयवाली होने के कारण,... उसे ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय का क्षय हुआ है। शुद्ध ज्ञानचेतनामय होने के कारण, समुच्चय शब्द रखा, वह सम्पूर्ण निकाल डाला। **शुद्धज्ञानचेतनामय होने के कारण तथा इन्द्रियव्यापारादि बहिर्द्रव्य के आलम्बन रहित होने के कारण...** कौन सी दशा? अन्तर दशा। इन्द्रिय व्यापारादि रहित बहिर्द्रव्य के अवलम्बनरहित होने के कारण **अन्य द्रव्य के संसर्ग रहित है...** समझ में आया?

और शुद्धस्वरूप में निश्चल चैतन्यपरिणतिरूप होने के कारण... और शुद्धस्वरूप में निश्चल-चलित नहीं, ऐसी परिणति / वृत्ति थी न? उसका अर्थ परिणति पर्यायरूप होने के कारण **किसी प्रकार 'ध्यान' नाम के योग्य है।** इस अपेक्षा से कर्म खिरते हैं, पतले (पड़ते हैं), इस अपेक्षा से ध्यान के योग्य निर्जरा को अवलोककर यह ध्यान है, ऐसा कहने में आता है। ध्यान का भोग निर्जरा है न? वहाँ निर्जरा होती है, ऐसा जानकर इसे ध्यान कहने में आया है। ओहोहो! भगवान को ध्यान! वे वेदान्तवाले तो शोर मचा जाये। केवली हो गये? यह भान होने के बाद भी राग रहे और अनुभव करे? अनुभव करे आत्मा? आत्मा, आत्मा का अनुभव करे? द्वैत नाश हो गया। अब सुन न!

अद्वैत माननेवाले को यह तो बात ऐसी लगे! यह क्या कहते हैं यह सब? .... आत्मा को सुख होगा? परन्तु इसे खबर नहीं, उसे परिणमन है। अनन्त गुण का धनी और अनन्त उसका परिणमन है। वह परिणमन की पर्याय में शुद्ध चैतन्य की धारा के कारण उसे भी ध्यान कहने में आता है। समझ में आया? **उनकी ऐसी आत्मदशा का निर्जरा के निमित्तरूप से वर्णन किया जाता है, क्योंकि उन्हें पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्ति...** केवली को पूर्व में बँधे हुए चार अघातिकर्म बाकी हैं। उनकी **शक्ति हीन होती जाती है-शातन। तथा वे कर्म खिरते जाते हैं-पतन। गलन; खिर जाना।** ऐसा गिनकर उसे ध्यान कहा है। भाव में ठेठ मोक्ष की पर्याय तक बात ले गये हैं। फिर मोक्षमार्ग का अधिकार-नवतत्त्व का वर्णन करना है न?

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह करके फिर मोक्ष के मार्ग का वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया? १५२ गाथा हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर कितना कहे ? इसमें केवली का ही कथन कितना है ?

मुमुक्षु : शब्दार्थ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शब्दार्थ में भाव आया न स्पष्ट। क्या यह किसे... वहाँ आ गया उसमें सब आ गया। कहा न ? परन्तु इसमें क्या कहा ?

मोक्षदशारूपी आत्मा की पवित्रता परिपूर्ण स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई। समझ में आया ? वह कल गाथा नहीं रखी थी पंचास्ति की ? १०३-१०४, वहाँ गमण शब्द पड़ा है न ? अनुगमन नहीं ? इसमें है। यह तो अनुगमन शब्द पड़ा है न ? '**तदणुमगणुज्जदो**' है न शब्द ? '**मुणिऊण एतददं तदणुमगणुज्जदो**' ऐसा '**तदणुमगणुज्जदो**' उसे अनुसरने का उद्यम करता हुआ। इसमें से जरा यह केवली ने केवलज्ञान कैसे प्रगट किया, उसमें से यह याद आया। अनुगमन उद्धत है, ऐसा। देखो ! 'अनुगमन और उद्धत' तीन शब्द हैं।

यह पहला धर्मात्मा अपने स्वरूप को, शुद्ध चैतन्य ध्रुव को अनुसरकर, उसका लक्ष्य करके, उसका आश्रय करके उसमें गमन किया। गमन करने का 'अनुगमन और उद्धत' हुआ, परिणमन किया। समझ में आया ? टीका में यह शब्द है प्राय: जयसेनाचार्य में है न ? यह क्या है ? कितनी गाथा है यह ? १०४। देखो ! शब्द है न गमन उद्धत ऐसा शब्द है न ? जयसेन आचार्य ने किया है। गमन उद्धत ऐसा। गमन का अर्थ। '**तानमयत्वेन परिणमनोवत**' गमन करना, परिणमना। परिणमने में उद्धत। क्या कहा समझ में आया ? उसके बाद पहला शब्द यह पड़ा है।

अणु शब्द पड़ा है न ? **(तमणुं) तं शुद्धजीवास्तिकाय लक्षणमर्यं अनुलक्षणीय समाश्रित्य (गमणुज्जुदो)** अकेला आत्मा ज्ञायकभाव शुद्ध आनन्दकन्द ध्रुव का अनुसरण करता हुआ। उसका '**अनुलक्षणीय कृत समाश्रित्य**' उसका लक्ष्य करके उसे ध्येय करके गमन अर्थात् परिणमन में उद्यत होता हुआ। कहो, समझ में आया ? तब तो ध्यान की एकाग्रता है, उस जाति की एकाग्रता है। यहाँ तो पूर्ण हो गया। वहाँ होने पर उसे वह कर्म टलते हैं और गलते हैं अथवा घटते हैं, इस कारण से उसे ध्यान कहने में आया है।

यह तो ध्यान का विषय अकेला चैतन्य भगवान पूर्ण शुद्ध जीवास्तिकाय, ऐसा लिया

है न! देखो न! यह तो अस्तिकाय है न, इसलिए ऐसा शब्द लिया है। शुद्ध जीवास्तिकाय लक्षण अर्थम्। ऐसा जो पदार्थ '**अनुलक्षणीय कृत**' उसका अनुलक्ष करके उसका '**समाश्रित्य**' उसका आश्रय करके '**गमन उद्धत तनमयत्येन परिणमन**' यह गमन का अर्थ किया। इसमें ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव, उसमें एकाकार दृष्टि से, यह पहले सम्यग्दर्शन की दशा है। कहो, समझ में आया? उद्यत, हों! वापस उसमें। वहाँ पुरुषार्थ है। फिर शुद्धात्मा उपादेय '**इति रुचिरूप निश्चय सम्यक्त्व प्रतिबंधक दर्शनमोहा भावातदनन्तर निहितमोहो नष्ट दर्शनमोह!**' समझ में आया?

यहाँ यह दशा हुई, वहाँ दर्शनमोह का नाश हुआ। पश्चात् यहाँ स्थिरता हुई, इसलिए राग-द्वेष का नाश हुआ। फिर उसमें से निकाले तो... स्थिरतावाले का समूह है, उसमें भी निकालना हो तो निकालनेवाला दिक्कत निकाले तब क्या? है तो शब्द पहले से क्रम पड़ा है। '**दुःखमोक्षकारणस्य कमं कथमति**' अमृतचन्द्राचार्य में क्रम आख्यातम् है न? क्रम... क्रम... क्रम से। परन्तु यह पहला क्रम इसके साथ इतना। समझ में आया? कि शुद्ध ज्ञायक चैतन्य परिपूर्ण परमभाव पूरी वस्तु एक समय की दशा वर्तती है, वह तो ऊपर-ऊपर है। परन्तु उसका दल अन्तर्मुख पूरा। वस्तु है वस्तु पूरी वस्तु। उस वस्तु को अनुलक्ष करके जो गमन अन्दर उद्यत होकर परिणमन करना। कहो, समझ में आया इसमें? भीखाभाई!

यह आत्मा वस्तु है या नहीं? तो वस्तु ऐसे द्रव्य है या नहीं ध्रुव? उसके ऊपर-ऊपर पर्याय वर्तती है। ऊपर अर्थात् एक क्षण की पर्याय पूरे द्रव्य में ऊपर-ऊपर... ऊपर अर्थात्? कहीं ऐसे पूरे में ऐसे ऊपर नहीं। पूरे सर्व में ऊपर-ऊपर पर्याय है।

मुमुक्षु : ऊपर के भाग में फल और अन्दर में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। पूरा आत्मदल ऐसी पूरी चैतन्यमूर्ति। परमानन्द का दरबार पूरा समाज अनन्त गुण का पिण्ड ऐसी वस्तु, उसे लक्ष्य करके, अनु अर्थात् लक्ष्य करके, गमन अर्थात् उद्यत-पुरुषार्थ से अन्दर परिणमन एकाकार तन्मय होकर परिणमन हो, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन का ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया? यह तो यहाँ ध्यान है न, इसलिए और वहाँ उस स्वरूप में एकाग्रता जो आंशिक प्रगट

हुई, वह ध्यान। परिणमन और सम्यग्दर्शन, विशेष में ध्रुव में एकाकार होकर, विशेष लीनता हुई, उसे चारित्ररूप ध्यान कहने में आता है। कहो, समझ में आया ?

और वह विशेष लीनता होकर अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि भगवान को प्रगट हुए। अब उसका जो चार अघाति बाकी रहे हैं, उसकी निर्मलदशा में अत्यन्त पूर्णानन्द की पर्याय शुद्ध चैतन्य ज्ञानमय तृप्तपने की दशा, उसके स्थान में पूर्व के चार अघातिकर्म हैं। हानि और नाश, ऐसा होता जाता है। उसके कारण यहाँ भगवान को ध्यान है, ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : विहार करते-करते भी ध्यान होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विहार कब करते थे वे ? वह सब अपने में और अपने में हैं। वे कहाँ विहार किसे करना और किसे जाना ? क्षेत्रान्तर द्रव्य हो परन्तु पर्याय तो अपने आनन्द में ही है।

मुमुक्षु : ज्ञान सूर्य ऐसा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञान सूर्य बड़ा, ऐसा है। बड़ा सूर्य ऐसे चमक-चमक केवलज्ञान को प्रगट करे, ऐसा चमकता सूर्य। समझ में आया ? यह वह लाईट नहीं कहते ? क्या कहलाती है बड़ी वह ? सर्चलाईट, अपने नहीं वहाँ ? बाहुबलीजी में। दो। ऊपर रखते हैं न दो ऐसी ? बाहुबलीजी ऐसे सत्तावन फीट के। वह अनन्त सर्चलाईट का सूर्य है अन्दर। यह तो परनिमित्त है। क्या कहलाता है इसका नाम ? परन्तु उसका कुछ प्रमाण होता है न ? हजार और, ऐसी कुछ होती है। यह तुम्हारे सब अंग्रेजी के नाम होते हैं। हजार, पावर पाँच सेर (वाट)। ऐसा का ऐसा प्रकाश के प्रकाश का प्रवाह चला ही जाता है।

आत्मा उससे भी अनन्त-अनन्त बेहद शक्ति का पूरा सूर्य है। उसमें से किरण प्रवाह पर्याय में निकलती है। समझ में आया ? क्षयोपशम की किरणें तो अनादि की हैं। उस क्षयोपशम की किरण को, धर्म नहीं कहा जाता। अनादि का क्षयोपशम है। उस क्षयोपशम को अन्तर में लक्ष्य करके परिणमन में अन्तरोन्मुख करे, तब उसे सम्यग्ज्ञान का सूर्य, सम्यग्दर्शन का सूर्य उगा। केवलज्ञान सूर्य बाकी है। समझ में आया ?

भावमुक्त हुए। परन्तु पहले से मुक्त होते-होते हुए हैं या नहीं? समझ में आया? गजब बात! निरालम्बी बातें और धर्म को लोगों को बाहर से खोजना है। विवाद, तकरार, विवाद। भाई! यह तेरा महापरमात्मधाम महा चैतन्यस्वरूप ऐसा भगवान, उसमें लीन होने से सम्यग्दर्शन पर्याय-किरण होती है, सम्यग्ज्ञान, मति-श्रुत की किरण, स्थिर होते हुए चारित्र की वीतरागता की किरणें। वीतरागता की किरणें। उस प्रकाश में वीतरागभाव बढ़े। ऐसा करते हुए शुद्ध विशेष स्थिर हो, तब केवलज्ञान की किरण प्रस्फुटित हो। उसमें है, उसमें से प्रस्फुटित होती है। कहीं बाहर से आवे, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया?

ऐसा भगवान ऐसे केवलज्ञान, केवलदर्शन शुद्ध चैतन्यमय तृप्त... तृप्त... तृप्त। परमात्मा अरिहन्त जो हुए, उसे निर्मल चेतना अविचलित चेतनास्वरूप की दशा देखकर उस काल में **पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्ति का...** देखो! भाषा क्या है? कर्मों की शक्ति का। समझ में आया? स्थिति का नाश होता जाये। **शक्ति का...** समुच्चय शब्द प्रयोग किया है न? वास्तव में तो केवली को भी उसमें पाप के परमाणु की स्थिति-रस तो नाश पाता है। पुण्य की स्थिति नाश पाती जाती है। पुण्य का अनुभाग नाश नहीं पाता। सामान्य शक्ति शब्द। समझ में आया? कितना पृष्ठ जयसेनाचार्य में? ५२।

'**स्थितिविनाशं**' ऐसा है, देखो! '**तत्पूर्वसंचितकर्मणा ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च द्रष्ट्वा**' कहीं अनुभाग घटता नहीं। पुण्य का तो अनुभाग बढ़ता है। इसलिए शब्द प्रयोग किया है। समझे? रावजीभाई! केवली को कर्म पुण्य और पाप के रस और स्थिति, पाप की दोनों घटती है। पुण्य की स्थिति घट जाये-नाश हो जाये। पुण्य का रस नहीं घटता। पुण्य का रस बढ़ जाता है। अन्त में पूरा हो, तब दोनों पृथक् हो जाते हैं। यह भी पृथक् और वह भी पृथक्। यहाँ पूरा हो तो वहाँ भी रस पूरा हुआ। दोनों पृथक् पड़ जाते हैं। यहाँ स्थिति कहा है। है न? '**ध्यानकार्यभूतं स्थितिविनाशं गलनं च द्रष्ट्वा निर्जरारूपध्यानस्य कार्यकारणमुपचर्योपचारेण ध्यानं भण्यत इत्यभिप्रायः**' लम्बी बात है। कहो, समझ में आया?

किसे क्या है? केवली को क्या है? यह तृप्त-तृप्त आनन्द, वह तो झरना बढ़े, ऐसा स्वभाव है। भगवान को क्या है उसमें? जड़ में बढ़े उसमें। आनन्द के रस का

अनुभव है, वह है और कितनी ही अघाति प्रकृति का क्षय होता जाता है। इतनी–इतनी थोड़ी शुद्धता भी बढ़ती जाती है, उस जाति के वे प्रतिजीवी गुण, पूर्ण हो गये, हो रहा। ऐसा प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है। ऐसे पूरे भगवान पूर्ण स्थित हैं सब। महाभगवान... महाभगवान वे कहते हैं न? क्या कुछ कहते हैं। समझ में आया? यह केवली भगवान की दशा, उसे यहाँ ध्यान कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्वनि उसके कारण छूटती है। वहाँ कहाँ वे छोड़ते हैं? वह तो भाषा उसके कारण छूटने का काल हो, तब छूटती है। भगवान कहाँ बोलते हैं? अरे! जगत से बहुत उल्टी बातें। भगवान तो आत्मा है, उसकी खान में भाषा के रजकण पड़े हैं? यह ध्वनि तो जड़ की उठती है।

मुमुक्षु : उनकी वाणी निकलती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त सम्बन्ध ऐसा कहलाता है न? निमित्त का ज्ञान कराते हैं। उस वाणी के काल में निमित्त किसका था? कि केवली का। बस, इतनी बात! कहो, समझ में आया? यह १५२ गाथा हुई। अब यह इसका साधनपना कहकर यह पूर्ण साधन.... उसमें हो, इतना आवे न? कितना आवे? अब १५३ (गाथा)।

गाथा - १५३

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकमाणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

यः संवरेण युक्तो निर्जरन्नथ सर्वकर्माणि।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भवं तेन स मोक्षः।।१५३।।

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत् ।

अथ खलु भगवतः केवलिनो भावमोक्षे सति प्रसिद्धपरमसंवरस्योत्तरकर्मसन्ततौ निरुद्धायां परमनिर्जराकारणध्यानप्रसिद्धौ सत्यां पूर्वकर्मसन्ततौ कदाचित्सवभावेनैव कदाचित्समुद्धात-विधानेनायुःकर्मसमभूतस्थित्यामायुःकर्मानुसारेणैव निर्जीर्यमाणायामपुनर्भवाय तद्भवत्यागसमये वेदनीयायुर्नामगोत्ररूपाणां जीवेन सहात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां द्रव्यमोक्षः।।१५३।।

– इति मोक्ष पदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

समाप्तं च मोक्षमार्गावयवरूपसम्यग्दर्शनज्ञानविषयभूतनवपदार्थव्याख्यानम्।।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।

अन्वयार्थ :- [यः संवरेण युक्तः] जो संवर से युक्त है ऐसा (-केवलज्ञान प्राप्त) जीव [निर्जरन् अर्थ सर्वकर्माणि] सर्व कर्मों की निर्जरा करता हुआ [व्यपगतवेद्यायुष्कः] वेदनीय और आयु रहित होकर [भवं मञ्चति] भव को छोड़ता है; [तेन] इसलिए (इस प्रकार सर्व कर्मपुद्गलों का वियोग होने के कारण) [सः मोक्षः] वह मोक्ष है।

टीका :- यह, द्रव्यमोक्ष के स्वरूप का कथन है।

वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण [१]उत्तर कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण [२]पूर्व कर्मसन्तति—कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही

१. उत्तर कर्मसन्तति=बाद का कर्मप्रवाह; भावी कर्मपरम्परा।
२. पूर्व=पहले की।

आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् [1]समुद्घातविधान से आयुकर्म के जितनी होती है वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई, [2]अपुनर्भव के लिए वह भव छूटने के समय होनवाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग), वह द्रव्यमोक्ष है॥१५३॥

इस प्रकार मोक्षपदार्थ व्याख्यान समाप्त हुआ। और मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नव पदार्थों का व्याख्यान भी समाप्त हुआ।

गाथा - १५३ पर प्रवचन

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकमाणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त है।।१५३।।

नौ पदार्थ की व्याख्या में अन्तिम गाथा। नौ पदार्थ है न ऊपर। नौ पदार्थपूर्वक, वह मोक्षमार्गप्रपंचक-विस्तार। १५४ गाथा से अपने ठेठ तक आया। आहाहा! ओम... ओम... यह, द्रव्यमोक्ष के स्वरूप का कथन है। अघाति चार कर्म के नाश का कथन है। समझ में आया? भगवान को भी अभी चार अघातिकर्म बाकी हैं। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं, उन्हें चार घातिकर्म गये हैं और चार अघातिकर्म बाकी हैं। उन चार अघाति के टलने की व्याख्या वर्णन की जाती है।

वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर,... आहाहा! उनके आनन्द

---

१. केवली भगवान को वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति कभी स्वभाव से ही (अर्थात् केवलीसमुद्घातरूप निमित्त हुए बिना ही) आयुकर्म के जितनी होती है और कभी उन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है।

२. अपुनर्भव=फिर से भव नहीं होना। (केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है; इसलिए उनके आत्मा से कर्मपुद्गलों का सदा के लिए सर्वथा वियोग होता है।)

के कपाट पड़े हैं, उन्हें खोलकर पर्याय में आनन्द आया है। कल जरा वह रह गया था, हों! खींचकर ऐसा शब्द वहाँ पड़ा था, वह और अभी याद आया। खींचकर, ऐसा शब्द कहीं पड़ा है। वह अभी याद आया। वह शब्द कहीं है। समझ में आया? ध्यान खींचकर अर्थात् ध्यान में पड़े—एकदम अन्दर!

पूरा भगवान ऐसा बड़ा परमात्मा विराजता है न? समझ में आया? महा उत्तम पदार्थ उत्तम उसे कहा जाता है। दूसरे किसी को उत्तम नहीं कहा जाता। उत्तम आत्मा को उत्तम बात लागू पड़े, इससे बड़ा कहा। उत्तम आत्मा को, छहों द्रव्य नहीं? दूसरे अन्ध को खबर क्या है कि हम हैं या नहीं? यह उत्तम एक पदार्थ जगत में दीपक जो यह न हो तो यह छह हैं या यह हैं या ऐसे हैं - ऐसा जाने कौन? समझ में आया? इस रजकण को खबर कब थी इस मिट्टी को, कि यह शरीर कहलाता है और इसे वाणी कहा जाता है और इसे कान कहा जाता है। वे नाम पाड़-पाड़कर खबर कब थी इसे? है कुछ? इसके स्वरूप की इसे खबर नहीं तो चेतन स्वरूप की इसे कहाँ से खबर होगी? यह तो जड़ है।

यह (आत्मा) जाननेवाला है। अपने को जाने और पर को जाने, वही उत्तम पदार्थ महान प्रभु है। समझ में आया? प्रभु तो वास्तविक वह। यह तो महान प्रभु! **वास्तव में भगवान केवली को, भावमोक्ष होने पर,...** देह के पीछे अन्दर पर्याय देह है भले भगवान को? अन्दर से भावमोक्ष हो गया है। पूर्ण ज्ञानदशा की। यह पूरा सूर्य अन्दर से जलहलता है ऐसे। असंख्य प्रदेश में अनन्त सूर्य ऐसे प्रगट हुए हैं। शरीर तो अभी बाहर पड़ा है। **परम संवर सिद्ध होने के कारण...** देखो! संवरपूर्वक निर्जरा लेनी है। पहले संवरपूर्वक निर्जरा होती है, नहीं तो निर्जरा सच्ची होती नहीं।

यहाँ तो परम संवर लेना है। उसमें परम संवर और निर्जरा को परम दोनों शब्द कहेंगे। समझ में आया? **परम संवर सिद्ध होने के कारण...** किसलिए परम संवर सिद्ध हुआ? कि **भावमोक्ष होने पर,...** ऐसा। भावमोक्ष पूर्ण निर्मलदशा भगवान को प्रगट हुई, उस कारण से **परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर...** बाद का कर्मप्रवाह भावी कर्मपरम्परा रुक गयी। **कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा के कारणभूत...** देखो! भाषा। परम संवर और परम निर्जरा!

आहाहा! निर्जरा थी नीचे चौथे, पाँचवें, छठवें में। यहाँ तेरहवें में परम निर्जरा हुई पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण, खिरने का **कर्मसन्तति निरोध को प्राप्त होकर...** यह नास्ति से बात की। वह अस्ति से की। भावमोक्ष सिद्ध होने के **परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान...** सिद्ध होने के लिये, परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान, स्थिरता सिद्ध होने के कारण।

पूर्व कर्मसन्तति—कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयुकर्म के जितनी होती है... भगवान को कोई केवली को, समझ में आया? वेदनीय आदि की स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आर्य कर्म के जितनी हो। जितनी आयुष्य की स्थिति हो, उतनी वेदनीय किसी के सहज होती है। वेदनीय है न? वेदनीय वास्तविक उसे भव गिना है। वेदनीय की स्थिति, उसके साथ नाम, गोत्र है। वेदनीय की अवस्था किसी को आयुष्य की अवस्था जितनी केवली को होती है। स्वभाव से ही। क्या कहा यह? इसे किये बिना उस समय भगवान को केवलज्ञान हुआ–प्राप्त हुए, इसलिए वेदनीय और आयुष्य की स्थिति किसी को स्वभाव से समान होती है और किसी को समान नहीं होती। देखो! ओहो!

शुक्लध्यान का एक ही प्रयत्न पूर्ण पुरुषार्थ से इतनी अप्रतिहत गति, केवल (ज्ञान) लिया होने पर भी कर्म में वेदनीय और आयुष्य की स्थिति में किसी केवली को अन्तर रह जाता है। समझ में आया? **पूर्व कर्मसन्तति...** कि जिसकी स्थिति। ओहो! इन कर्म के प्रकार में भी ऐसा कोई प्रकार रह गया। यहाँ तो ध्यान की धारा थी। शुक्लध्यान एक धारा थी, उसे केवल (ज्ञान) हुआ तो सबको इस धारा से ही होता है।

धर्मध्यान, उग्र धर्मध्यान, शुक्लध्यान—पाया, दूसरा पाया। वह होने पर भी केवलज्ञान की दशा, आनन्ददशा पूर्ण, परन्तु कर्म का बाकी रहने में किसी को अन्तर। ओहोहो! विविधता देखो! समझ में आया? यह कर्म की ऐसी योग्यतावाले रजकण कि उसकी स्थिति किसी की वेदनीय विशेष हो, आयुष्य की थोड़ी हो। किसी को दोनों की समान हो। कदाचित् स्वभाव से आयुकर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयुकर्म के जितनी होती है। ओहोहो! केवलीपना! क्या स्थिति वर्णन करते हैं। समझ में आया?

यह केवलज्ञान, केवल आनन्द, पूर्ण वीर्य, पूर्ण दृष्टा, पूर्ण स्वच्छता सब आया।

ऐसी दशा होने पर भी आयुष्य की स्थिति प्रमाण किसी को नाम, गोत्र, वेदनीय होते हैं और किसी को आयुष्य की स्थिति से अधिक भी होते हैं। किसकी? वेदनीयादि। तो वह समुद्घात विधान हुआ। देखो नीचे (फुटनोट) **केवली भगवान को वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की स्थिति कभी स्वभाव से ही (अर्थात् केवलीसमुद्घातरूप निमित्त हुए बिना ही) आयुकर्म के जितनी होती है...** समझ में आया?

यह चार कर्म भगवान को बाकी हैं न? उसमें किसी को आयुष्य की स्थिति प्रमाण नाम, गोत्र और वेदनीय की स्थिति होती है। चार की समान होती है, ऐसा कहते हैं। समुद्घात किये बिना, ऐसा कहते हैं। **और कभी उन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है।** प्रदेश... सहज, हों! कर्ता-बर्ता कहाँ था? आयुष्य की स्थिति प्रमाण वेदनीय की कुछ अधिक हो उससे... पूरे लोक में हो जाये जरा दो समय... इसलिए वह स्थिति दोनों की समान हो जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका स्वभाव है। कर्म की कहाँ यहाँ बात है? ओहोहो! आहाहा!

यह परमाणु की ऐसी ही अवस्थावाले रजकण वहाँ रह गये कि आयुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक थी। तो यह समुद्घात हुआ तो समान (स्थिति) हो गयी। समान होने की योग्यता उनमें थी, हों! यहाँ समुद्घात हुआ इसलिए नहीं। ऐसा। आहाहा! लहरें तो यहाँ पर्याय में, इसकी पर्याय इसके कारण हो, यह कर्ता का कार्य, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ही सिद्ध होता है, कर्ता-कर्म रहित। यहाँ समुद्घात हुआ, इसलिए वहाँ उसके परमाणु की स्थिति घटना पड़ी, ऐसा नहीं है। घटने के योग्य ही थे, उसके कारण से घटे हैं। विवाद निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का, निमित्त सम्बन्ध परन्तु निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का अर्थ क्या? उसके कारण यहाँ नहीं और इसके कारण यहाँ नहीं, तब निमित्त-निमित्त सम्बन्ध कहा जाता है। एक वस्तु है, निमित्त वस्तु है, पदार्थ है। अनन्त पदार्थ है उपचरित कारण है, कोई यथार्थ कारण है। कहो, समझ में आया?

भगवान के भी केवली के भी कर्म में अन्तर। आहाहा! उनके उदयभाव में भी

अन्तर। आता है न? बनारसीदास.... है न यह कहा न? देखो न! केवलज्ञान हुआ, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, क्षायिक आनन्द, यह दशा तो कर्म में अन्तर कैसे? कर्म में उस प्रकार के रजकणों की अवस्था योग्यता किसी को वेदनीय और आयुष्य की स्थिति अधिक हो। समुद्घात हो जाये, दोनों स्थिति समान हो जाये। समझ में आया? तत्त्व को वास्तविक समझाने के लिये यहाँ बात ली है। उसकी स्थिति वहाँ है, अब उसे खिरना है न? इस प्रकार पहला समुद्घात समय की स्थिति घट जाती है। वह घटने के योग्य ही उसकी योग्यता ही होती है, हों! आहाहा! समुद्घातविधान से, ऐसा शब्द पड़ा है न? समुद्घात की विधि द्वारा।

आयुकर्म से अधिक होने पर भी वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवलीसमुद्घात निमित्त बनता है। वापस स्पष्टीकरण किया है। लो! यह निमित्त है। इससे यह होता है, यह निमित्त कहने में आता नहीं। उन परमाणु की स्थिति उस प्रकार से घटने की योग्यतावाले क्रमबद्ध में वे परमाणु ऐसे ही थे। आहाहा! समझ में आया?

यह आयुकर्म के जितनी समुद्घात के निमित्त से होती है। **वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई,...** फिर जैसे आयुष्य निर्जरित होता जाता है, तत्प्रमाण में वे वेदनीय, नाम, गोत्र भी उसके साथ उसके प्रमाण में खिरते जाते हैं। आयुकर्म के अनुसार ही **वह—आयुकर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई, अपुनर्भव के लिए...** आहाहा! अपुनर्भव=फिर से भव न होना। भगवान को अब फिर से भव (नहीं होता)। केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है। किसलिए?

जगत के जीव को तो भव का त्याग नये भव के लिये होता है। भगवान को भव का त्याग नये भव के अभाव में होता है। समझ में आया? **अपुनर्भव=फिर से भव नहीं होना। (केवली भगवान को फिर से भव हुए बिना ही उस भव का त्याग होता है; इसलिए उनके आत्मा से कर्मपुद्गलों का सदा के लिए सर्वथा वियोग होता है।)**

संसारी प्राणी को तो एक भव गया, वहाँ दूसरा भव, एक भव गया, वहाँ दूसरा भव। एक कर्म गया, वहाँ दूसरे कर्म। भगवान को भव जाने के पश्चात् दूसरा भव नहीं। कर्म जाने के पश्चात् दूसरे कर्म नहीं। समझ में आया? इस प्रकार उन्हें कर्म का वियोग होता है।

अपुनर्भव के लिए वह भव छूटने के समय... अन्तिम देह-भव छूटने के काल

में भगवान को **होनेवाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का...** इस भव के छूटने के समय, देखो! भगवान दीपावली को मोक्ष पधारे हैं न? देखो! यहाँ आठ दिन पहले आया उस समय। **वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का...** चार जगह किये न समान हैं। भगवान को चार अघाति थे, उसकी यहाँ निर्जरा की बात करते हैं। द्रव्यकर्म की बात थी न? **जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) वह द्रव्यमोक्ष है।** अत्यन्त वियोग, वह द्रव्यमोक्ष। छूट गया।

दूसरे को तो थोड़े कर्म खिरें, और बँधे, फिर खिरें और बँधें, एक भव जाये, दूसरा भव आवे। पंचेन्द्रियपना जाये और दूसरा पंचेन्द्रियपना आवे, देवगति जाये, मनुष्यगति हो, मनुष्यगति जाये, मनुष्यगति हो। यह तो गयी, वह गयी। ओहोहो! सादि-अनन्त, अनन्त-अननत समाधि सुख में। अपने आनन्द में वह मोक्षदशा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से प्रगट होती है। इसलिए वह मोक्ष-नौ (पदार्थ) को वर्णन किया और मोक्षमार्ग बाद में वर्णन किया जाता है। **कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग), वह द्रव्यमोक्ष है।**

इस प्रकार मोक्षपदार्थ व्याख्यान समाप्त हुआ। नौ पदार्थ में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। नौ की व्याख्या, दो द्रव्य और सात पर्याय की व्याख्या बराबर पूरी की। **और मोक्षमार्ग के अवयवरूप...** लो! मोक्षमार्ग का अवयव—मोक्षमार्ग तीन—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। उनके अंशरूप अवयवरूप। जैसे यह शरीर अवयवी है, हाथ-पैर उसके अवयव हैं। मोक्षमार्ग पूरा अवयवी है। उसका एक-एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अवयव है।

मोक्षमार्ग के अवयवरूप सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषयभूत.... लो! इसका विषयभूत नौ पदार्थ का व्याख्यान भी, मोक्षपदार्थ का व्याख्यान समाप्त हुआ। उसी प्रकार यह भी समाप्त हुआ। .... मोक्षमार्ग के अवयव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के विषयभूत नौ पदार्थ का व्याख्यान भी समाप्त हुआ। लो! मोक्ष अधिकारमार्ग तो अपने चला। कल तो अष्टमी है। सज्झाय चलेगी। परसों से क्या लेना? परमात्मप्रकाश थोड़ा लेना है या क्या लेना, यह विचार चलता था। परमात्मप्रकाश थोड़े दिन लेंगे। अभी नहीं लिया। वहाँ तो आयेगा वह। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५४

अथ मोक्षमार्गप्रपञ्चसूचिका चूलिका ।

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं।।१५४।।

जीवस्वभावं ज्ञानमप्रतिहतदर्शनमनन्यमयम्।
चारित्रं व तयोर्नियतमस्तित्वमनिन्दितं भणितम्।।१५४।।

मोक्षमार्गस्वरूपाख्यानमेतत् ।

जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग:। जीवस्वभावो हि ज्ञानदर्शने अनन्यमयत्वात्। अनन्यमयत्वं च तयोर्विशेषसामान्यचैतन्यस्वभावजीवनिर्वृत्तत्वात्। अथ तयोजीर्ववस्वरूपभूतयोर्ज्ञानदर्शनयोर्यन्नियतमवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपवृत्तिमयमस्तित्वं रागादिपरिणत्यभावादनिन्दितं तच्चरितं; तदेव मोक्षमार्ग इति। द्विविधं हि किल संसारिषु चरितं–स्वचरितं परचरितं च; स्वसमयपरसमयावित्यर्थ:। तत्र स्वभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं स्वचरितं, परभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं परचरितम्। तत्र यत्स्वभावावस्थितास्तिस्वरूपं परभावावस्थितास्तित्वव्यावृत्तत्वेनात्यन्तमनिन्दितं तदत्र साक्षान्मोक्षमार्गत्वेनावधारणीयमिति।। १५४ ।।

अब [1]मोक्षामार्गप्रपंचसूचक [2]चूलिका है।

चेतन स्वभाव अनन्यमय निर्बाध दर्शन–ज्ञान है।
दृग ज्ञानस्थित अस्तित्व ही चारित्र जिनवर ने कहा।।१५४।।

अन्वयार्थ :- [जीवस्वभावं] जीव का स्वभाव [ज्ञानम्] ज्ञान और [अप्रतिहतदर्शनम्] अप्रतिहत दर्शन है— [अनन्यमयम्] जो कि (जीव से) अनन्यमय हैं। [तयो:] उन ज्ञानदर्शन में [नियतम्] नियत [अस्तित्वम्] अस्तित्व [अनिन्दितं] जो कि अनिन्दित हैं—[चारित्रं च भणितम्] उसे (जिनेन्द्रों ने) चारित्र कहा है।

---

१. मोक्षमार्गप्रपंचसूचक= मोक्षमार्ग का विस्तार बतलानेवाली; मोक्षमार्ग का विस्तार से कथन करनेवाली; मोक्षमार्ग का विस्तृत कथन करनेवाली।

२. चूलिका = शास्त्र में जिसका कथन न हुआ हो, उसका व्याख्यान करना अथवा जिसका कथन हो चुका हो, उसका विशेष व्याख्यान करना अथवा दोनों का यथायोग्य व्याख्यान करना।

टीका :- यह, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है।

जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन है, क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय हैं। ज्ञानदर्शन का (जीव से) अनन्यमयपना होने का कारण यह है कि [1]विशेषचैतन्य और सामान्यचैतन्य जिसका स्वभाव है, ऐसे जीव से वे निष्पन्न हैं (अर्थात् जीव द्वारा ज्ञानदर्शन रचे गये हैं)। अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञानदर्शन में [2]नियत—अवस्थित ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप [3]वृत्तिमय अस्तित्व—जो कि रागादिपरिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है—वह चारित्र है; वही मोक्षमार्ग है।

संसारियों में चारित्र वास्तव में दो प्रकार का है :- (१) स्वचारित्र और (२) परचारित्र; (१) स्वसमय और (२) परसमय ऐसा अर्थ है। वहाँ, स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वस्वरूप (चारित्र), वह स्वचारित्र है और परभाव में अवस्थित अस्तित्वस्वरूप (चारित्र), वह परचारित्र है। उसमें से (अर्थात् दो प्रकार के चारित्र में से), स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वरूप चारित्र—जो कि परभाव में अवस्थित अस्तित्व से भिन्न होने के कारण अत्यन्त अनिन्दित है वह—यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारणा।

[यही चारित्र 'परमार्थ' शब्द से वाच्य ऐसे मोक्ष का कारण है, अन्य नहीं—ऐसा न जानकर, मोक्ष से भिन्न ऐसे असार संसार के कारणभूत मिथ्यात्वरागादि में लीन वर्तते हुए अपना अनन्त काल गया; ऐसा जानकर उसी जीवस्वभावनियत चारित्र की—जो कि मोक्ष के कारणभूत है उसकी—निरन्तर भावना करना योग्य है। इस प्रकार सूत्रतात्पर्य है।]॥१५४॥

प्रवचन-६४, गाथा-१५४, वैशाख शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक -१४-०५-१९७०

यह पंचास्तिकाय। १५४ गाथा। **मोक्षामार्गप्रपंचसूचक चूलिका है।** इसका अर्थ—मोक्षमार्ग का विस्तार बतलानेवाली यह चूलिका है। चूलिका अर्थात् पहले कहा हुआ

---

१. विशेषचैतन्य वह ज्ञान है और सामान्य चैतन्य वह दर्शन है।

२. नियत=अवस्थित; स्थित; स्थिर; दृढ़रूप स्थित।

३. वृत्ति=वर्तना; होना। [उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्ति वह अस्तित्व है।]

कहना, कहे हुए का विशेष स्पष्ट करके कहना, इसका नाम चूलिका। **मोक्षमार्गप्रपंच** अर्थात् विस्तार, **सूचक** अर्थात् कहनेवाली **चूलिका।** १५४ गाथा।

टीका :- यह, मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है। मोक्षमार्ग कैसे होता है, उसकी बात यहाँ है। बन्धन से छूटने का उपाय। **जीवस्वभाव में,...** भगवान आत्मा वह स्वभाववान है। वस्तु से स्वभाववान है और ज्ञानदर्शन उसका स्वभाव है। समझ में आया? **जीवस्वभाव में,...** जीव स्वभाववान है। और स्वभाव में, इतना लिया, फिर स्वभाव क्या है, यह बाद में स्पष्टीकरण करेंगे।

जीव अस्ति-वस्तु। उसका स्वभाव में—स्वभाव में नियत, स्थिर, निश्चय से स्थिर रहना, इसका नाम चारित्र है। यह देह की क्रिया, नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वभाववान पदार्थ वह स्वभाववाला है, वह स्वभाव क्या?—यह बाद में कहेंगे। उस स्वभाव में नियत, निश्चय, लीनता, रमणता, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया? तो जहाँ चारित्र है, वहाँ जीवस्वभाव ज्ञान-दर्शन है, ऐसा अनुभव तो प्रतीति सम्यग्दर्शन में आ गया है। समझ में आया?

जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है। इसका अर्थ यह हुआ कि जीव स्वभाववान है, उसका स्वभाव पहला अनुभव में स्वज्ञेय को पकड़कर उसका ज्ञान और उसमें प्रतीति सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है। इसके बिना चारित्र नहीं होता। समझ में आया? और उसमें नियत, फिर जो जाना हुआ, जीवस्वभाव ज्ञान है, दर्शन है, ऐसा पकड़कर, अनुभव करके जाना, राग और विकल्प से पृथक् होकर। ऐसे स्वभाव में नियत, निश्चित, स्थिर, दृढ़ रहना, इसका नाम चारित्र। देखो! यह चारित्र की व्याख्या। यह लोग बाहर से कपड़े छोड़ दो, नग्न हो जाओ, वह चारित्र, २८ मूलगुण के विकल्प पाले, वह चारित्र। भगवान उसे चारित्र नहीं कहते। रागादि विकल्प तो अचारित्र है। समझ में आया?

अपना निजस्वरूप, स्वभाव। स्वरूप कहो या स्वरूपस्वभाव। उसमें नियत, निश्चय, लीन होना, निश्चित होना, डाँवाडोल कल्लोल-विकल्प से हटकर अन्तर में

स्वभाव में लीन होना, उसका नाम चारित्र है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से चारित्र माने तो उसे चारित्र की अथवा संवरतत्त्व की खबर नहीं है। और वह चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। यह पहले आया था। २७६ गाथा चलती थी। संवर मोक्षमार्ग है। वहाँ यह आया था। २७६ गाथा, संवर मोक्षमार्ग है। और अन्तिम गाथा में यह आया था कि परमवीतराग के वैराग्य की आज्ञा, वह मोक्षमार्ग है। वह मार्ग है। मार्ग है, वैराग्य से हटना—पर से हटना। परमवैराग्य, ऐसा लिया था। यह आज्ञा।

राग से, निमित्त से, एक समय की पर्याय से हटकर स्वभाव में वैराग्य करना। अस्तित्व तो वस्तु की दृष्टि में है। परन्तु अब राग और विकल्प से हटकर, पुण्य-पाप का भी वैराग्य करना, इसका अर्थ—पुण्य-पाप, महाव्रत आदि का जो विकल्प है, उससे हटना। वह भगवान की परमवैराग्य की आज्ञा है। वह वैराग्य है। समझ में आया? यह स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दिया और वैराग्य कहे, वह वैराग्य नहीं, वेरागी है। वैराग्य तो उसे कहते हैं... सूक्ष्म उपदेश आता है न, पुण्य-पाप अधिकार में।

(समयसार) पुण्य-पाप अधिकार, वैराग्य सम्पन्नो। अर्थात् शुभ जो विकल्प राग है, वह भी वैराग्य है। उससे भी हटकर अपने स्वभाव में स्थिर होना, वह वैराग्य है। इस वैराग्य बिना वैराग्य कहने में आता नहीं। समझ में आया? यह सब दीक्षित होते हैं न, यह सब वैराग्य नहीं। यह सब मोहगर्भित राग है। उसमें मिथ्यात्वभाव है। वीरचन्दभाई! तुम्हारे दीक्षित-बिक्षित में तुम्हारे झवेरचन्दभाई वहाँ पड़े होंगे न? उनका लड़का ले तो सामने प्रमुख हो तो पड़े ही न, हें? यह तो एक दृष्टान्त एक बात है। सेठिया व्यक्ति को सामने आगे प्रमुख को बैठावे। चलो झवेरचन्दभाई! न छोड़े तो यह कहे कि अब मैं छोड़ देता हूँ। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभाव वह तो फिर स्पष्टीकरण करेंगे। यहाँ तो इतना **जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है।** बस इतना। फिर कहते हैं कि अब जीवस्वभाव किसे कहते हैं? **जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन है,...** जानना-देखना ऐसा उसका अविनाशी त्रिकाली स्वभाव है। जैसी वस्तु अविनाशी है, स्वभाववान-स्वभाववान तो उसका स्वभाव जानन-देखन, वह स्वभाव भी उसका अविनाशी स्वभाव

है। पुण्य-पाप के विकल्प या वह कुछ उसका स्वभाव नहीं। महाव्रत आदि का विकल्प भी जीव का स्वभाव नहीं। वह तो विभाव है। कहते हैं, **जीवस्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शन है,...** जानना-देखना स्वभाव वास्तव में है। अभी व्याख्या आती है।

क्योंकि वे (जीव से) अनन्यमय हैं। क्योंकि भगवान आत्मा जो स्वभाववान, उसका जानन-देखन स्वभाव, वह स्वभाव और स्वभाववान अनन्यमय है। अन्य-अन्य नहीं, अभिन्न है। वस्तु भगवान आत्मा और जानन-देखन स्वभाव अनन्यमय अर्थात् अभिन्न है। स्वभाव और स्वभाववान, वे एक अभिन्न हैं। प्रसन्नभाई! यह प्रसन्नभाई ने आज स्पष्टीकरण माँगा है। ऐई! सेठी! इसे रुचि है। मस्तिष्कवाला है, पकड़ सकता है। समझ में आया?

वस्तु क्या है, यह पहले ख्याल में आये बिना सम्यग्दर्शन कहाँ से आया? ज्ञान और चारित्र आवे कहाँ से? बाहर से मानने से आ जाता है?

मुमुक्षु : रूढ़ी प्रमाण आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूढ़ी प्रमाण अर्थात् अज्ञान आया रूढ़ी प्रमाण। समझ में आया? अब अज्ञान में एकाकार होवे तो मूढ़ का-मिथ्यात्व का पोषण होता है। यहाँ तो भगवान आत्मा स्वभाववान। स्वभाववान, तो स्वभाव क्या? स्वभाव जानन-देखन, ज्ञाता-दृष्टा कायम-कायमी स्वभाव। क्यों? कि वह अनन्यमय है। स्वभाववान और स्वभाव अभिन्न है। भिन्न है नहीं। समझ में आया?

और **ज्ञानदर्शन का (जीव से) अनन्यमयपना होने के कारण...** क्या कहते हैं? देखो! भगवान आत्मा स्वभाववान और उसका ज्ञान और दर्शन अस्तिरूप से सत्तारूप से स्वभाव, वह स्वभाव और स्वभाववान अभिन्न, अनन्य, अन्य-अन्यरूप से नहीं परन्तु अभिन्नरूप से दो हैं, क्योंकि **अनन्यमयपना होने के कारण...** जानन-देखन स्वभाव और आत्मा अभिन्न होने के कारण **यह है कि विशेषचैतन्य और सामान्यचैतन्य जिसका स्वभाव है,** उस स्वभाव में दो है। एक विशेष चैतन्य—ज्ञान, सामान्य चैतन्य—दर्शन। विशेष चैतन्य—ज्ञान, सामान्य चैतन्य—दर्शन, यह जिसका स्वभाव है। समझ में आया?

ऐसे जीव से वे निष्पन्न हैं... ऐसे जीव से अनन्यमय है। क्योंकि वह स्वभाव

सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान अनन्यमय होने के कारण वह जीव से निष्पन्न है, जीव से प्राप्त है, जीव में ही है। निष्पन्न अर्थात् जीव में है। प्राप्त है। अनादि का प्राप्त है, नया नहीं। **जीव से वे निष्पन्न हैं...** अर्थात् जीव से प्राप्त है। जीव को प्राप्त करना हो तो जीव के स्वभाव प्राप्त में आ जायेगा, ऐसा कहते हैं। जानन-देखन जीव से प्राप्त है। जीव की दृष्टि जब हुई तो जानन-देखने की प्राप्ति भी साथ में आ गयी। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें! यह मोक्ष के मार्ग की व्याख्या चलती है। आहाहा! यह खबर नहीं और हो जाओ दीक्षित और ले लो पंच महाव्रत आदि। प्रकाशदासजी! यह तो बहुत ही सुना है न इन्होंने तो।

यह तो वस्तु की स्थिति है। इसमें कोई व्यक्तिगत (बात नहीं), बेचारे उसे खबर नहीं तो क्या है? अनादि से ऐसे ही भ्रमणा के कूप में पड़े हैं। वस्तु भगवान कहते हैं, वह तो ठीक, परन्तु वस्तु कैसी है? जिसमें रमने का है और जिसका कल्याण करना है। जिसका, कल्याण तो आत्मा का न? तो कल्याण करनेवाला है कैसा? सेठी! कल्याण करना है, कल्याण करना है परन्तु कल्याण करनेवाला जीव न? आत्मा न? तो आत्मा है कैसा? यह कुछ खबर नहीं और कल्याण करना है। क्या करना है तुझे? प्रसन्नभाई! समझ में आया? आहाहा! कितनी बात यह दिगम्बर सन्तों ने... कितनी स्पष्ट! ऐसे दो और दो=चार जैसी... उन लोगों में तो पंच महाव्रत, वह निर्जरा का कारण है, ऐसा लिखा है, लो! श्वेताम्बर में, हों! ठाणांग में पाँचवें स्थानक में। बेचारे उलझकर मर जाये वापस। पंच निर्जर ठाणा... ऐसा पाठ है। अहिंस, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह निर्जरा, अररर! निर्जरा के स्थान यह शास्त्र! यहाँ कहते हैं कि पंच महाव्रत के विकल्प बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का कारण है ही नहीं। क्योंकि जीव का स्वभाव नहीं है। समझ में आया?

अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में... अर्थात् जीव द्वारा ज्ञान-दर्शन साथ में है, देखो! नये कहाँ रचते हैं? भगवान आत्मा द्वारा ही ज्ञान-दर्शन स्वभाव की प्राप्ति है। **अब जीव के स्वरूपभूत...** ओहोहो! कितना सिद्ध करते हैं! **ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में...** जीव भगवान आत्मा, उसके स्वरूपभूत जैसे वस्तु अविनाशी त्रिकाल है, वैसा उसका स्वरूप ज्ञानदर्शन स्वरूपभूत वह भी अनादि-अनन्त साथ में हैं। समझ में आया?

अब जीव के स्वरूपभूत ऐसे उन ज्ञान-दर्शन में... देखो! जीव के स्वरूपभूत ऐसे ज्ञान-दर्शन स्वभाव में **नियत—अवस्थित; स्थित; स्थिर; दृढ़रूप स्थित। ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व...** आहाहा! चारित्रगुण भी साथ में है अन्दर में, हों! जैसे ज्ञान-दर्शन है न, उसका अस्तित्व कहा, परन्तु चारित्र का अस्तित्व लेते हैं न। चारित्र के अस्तित्व में ध्रुव भी साथ में लिया। भाई! देखो! अन्दर गाथा में। सीधा बोल अन्दर डाल दिया।

जैसे ज्ञान-दर्शन स्वभाव है, वैसे उसमें चारित्र की ध्रुवता भी उसका ही स्वभाव है। चारित्र कौन सा? मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं। चारित्र त्रिकाल गुण। समझ में आया? आहाहा! अभी तो इसे समझना-मस्तिष्क में प्रविष्ट होना कठिन। अब वहाँ इसे हो जाये सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन, चारित्र हो गया।

कहते हैं कि भगवान आत्मा जीव का स्वभाव जो ज्ञान-दर्शन है, उसका अस्तित्व जैसा है, और उस अस्तित्व के कारण उसमें उत्पाद-व्यय है। वैसे चारित्रगुण का भी उसमें अस्तित्व है। जैसे ज्ञान-दर्शन में स्थिर हुआ तो अन्दर चारित्रगुण है, उसमें स्थिर हुआ। समझ में आया? **नियत—अवस्थित ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व...** देखो! (नीचे फुटनोट में) **वृत्ति=वर्तना; होना। [उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्ति वह अस्तित्व है।]** अर्थात् स्वरूप जो जानना-देखना है, उसमें लीन होना, तो लीन होना वह उत्पाद पर्याय हुई, पूर्व की पर्याय का व्यय हुआ और ज्ञान-दर्शन की ध्रुवता है, साथ में चारित्र की ध्रुवता भी अन्दर पड़ी है। समझ में आया? गजब, बापू! ऐसा मोक्षमार्ग! धन्नालालजी! यह सेठियाओं को किस प्रकार यह बैठेगा? वहाँ जाकर यह सब तुम्हारे निर्णय करना पड़ेगा, हों! सत्य की वहाँ प्रभावना में इसे वहाँ निमित्त होना पड़ेगा। वहाँ सामने है या नहीं? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! मार्ग तो यह है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... आहाहा! जीव और उसका स्वभाव, उसमें लीनता। तो लीनता में तीन बोल। उत्पाद, व्यय और ध्रुव—अस्तित्व। लीनता में तीन बोल। लीनता जो हुई, वह उत्पाद हुआ और पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ और अन्दर ध्रुवपना चारित्र है, उसका अस्तित्व है। ज्ञान-दर्शन जैसे हैं, वैसे ही चारित्र भी गुणरूप है, वह ध्रुव है। नये

उत्पन्न हुए चारित्र की पर्याय उत्पन्न, पूर्व की पर्याय व्यय, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह अस्तित्व। तीन मिलकर होना, उसका नाम आत्मा और उसका नाम चारित्र कहा जाता है। अरे! बहुत सूक्ष्म बातें! भाषा तो सादी आती है। नेमीचन्दजी! ध्यान तो बराबर रखते हैं। भाषा तो सादी। भाव भले कठिन हो। हाँ, परन्तु उसे ख्याल में तो आ जाये न क्या चीज़ है? समझ में आया? आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ क्या है? ऐसा कहते हैं, भाई! तेरा स्वरूप जो जानना-देखना, उसमें स्थिरता-रमणता-लीनता होना।

तो कहते हैं कि **अवस्थित ऐसा जो उत्पादव्ययध्रौव्य...** तो लीनता हुई तो उत्पाद हुआ। पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ। लीनता हुई तो चारित्रगुण भी ध्रुवपने है। जैसे ज्ञान-दर्शन ध्रुवपने है तो स्थिरता की शक्ति भी अन्दर ध्रुवपने है। तीनों मिलकर अस्तित्व हुआ। **उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वृत्तिमय अस्तित्व...** अर्थात् होनापना है।

अब विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। आहा! **जो कि रागादिपरिणाम के अभाव के कारण...** भगवान आत्मा! अपने ज्ञान-दर्शन शाश्वत असली कायम स्वभाव में स्थिर रमणता करता है तो वह वीतरागी पर्याय होगी। वह अरागी पर्याय हुई, वह चारित्र। और कैसे हैं?—**जो कि रागादिपरिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है...** मलिनता नहीं, ऐसा। वह मलिनता रही नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प भी मलिनता-मैल है। समझ में आया? आहाहा! **अनिन्दित, रागादिपरिणाम के अभाव के कारण...** वह पंच महाव्रत का विकल्प भी राग है, मैल है, समल है। तो इस स्वरूप में ज्ञान-दर्शनस्वभाव में जो लीन होना, वह तो रागादिपरिणाम से रहितपने निर्मल है। **अनिन्दित है...** निर्मल है। समझ में आया? आहाहा! उसका नाम चारित्र है। प्रकाशदासजी! देखो! यह चारित्र की व्याख्या। आहाहा!

कभी भी सुना भी न हो चारित्र क्या? यह छोड़ दो, यह छोड़ दो। स्त्री, पुत्र छोड़ दो। अब छूटे ही पड़े हैं, कहाँ छोड़ दे। बाहर ही पड़े हैं। कहाँ तेरे आत्मा में घुस गये हैं? परद्रव्य का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? परद्रव्य कभी ग्रहण किये हैं तो परद्रव्य छोड़े? उसमें ऐसा कोई गुण भी नहीं कि परद्रव्य ग्रहण करे और छोड़े, ऐसा कोई गुण भी नहीं है। परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का अभाव, ऐसा उसमें गुण है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा जीव और शाश्वत् स्वभाव जानन-देखन, सत्व। सत् का सत्व। सत् जो आत्मा है, उसका सत्व। सत् है, वह द्रव्य है। सत्व, वह गुण कहो या स्वभाव कहो। सत् का सत्व, द्रव्य का भाव, गुणी का गुण, स्वभाववान का स्वभाव। समझ में आया? इस प्रकार भगवान आत्मा अपने गुण, गुणी अर्थात् भगवान गुणी-अपना द्रव्य। तो गुण जो ज्ञान-दर्शन कायमी स्वभाव सत्य भूत, भावभूत, उसमें लीन होना। आहाहा! समझ में आया?

वह नयी पर्याय हुई। यह तो त्रिकाली हुआ। जीव अविनाशी स्वभाववान वह त्रिकाली और ज्ञान-दर्शन स्वभाव स्वभाववान के द्रव्य का भाव, वह त्रिकाली। अब उसमें लीनता हुई, वह उत्पाद-व्यय पर्याय हुई। समझ में आया? इसलिए उसमें उत्पाद-व्यय डाले हैं। आहाहा! शरीर बाह्य की तो यहाँ बात भी नहीं। शरीर की यह क्रिया और यह क्रिया धूल। वह तो जड़ की क्रिया है और पंच महाव्रत के विकल्प पंच महाव्रत ग्रहण तो करना पड़ते हैं या नहीं.... पर का हेतु। पंच महाव्रत कोई रास्ता तो है या नहीं? रास्ता तो है या नहीं?—ऐसा पूछा था। हें! पूछते में तो पूछे न चाहे जो पूछे। प्रश्न तो हो सकता है न?

मुमुक्षु : समझने के लिये चाहे जो पूछे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, हो, पूछ सकते हैं, उसमें क्या? विरोध हो तो भी पूछा जाये। पूछने में क्या? रास्ता कहीं है या नहीं? पंच महाव्रत रास्ता है या नहीं? रास्ते की तो बात चलती है। रास्ता कहो या मार्ग कहो। समझ में आया? तो पंच महाव्रत का विकल्प मार्ग नहीं, रास्ता नहीं, मार्ग नहीं। मार्ग की तो व्याख्या चलती है। मार्ग कहो या रास्ता कहो। समझ में आया? आहाहा!

अरे! निज घर की चीज़ क्या है और उसमें लीनता कैसे होती है, उसके भाव का ख्याल नहीं और ख्याल बिना प्रतीति होती नहीं, ज्ञान होता नहीं और लीनता होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, उत्पादव्ययध्रौव्यमय—उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, वहाँ शब्द पड़ा है न? तत्त्वार्थसूत्र में। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् अर्थात् कि भगवान आत्मा द्रव्य सत् है, गुण सत् है, पर्याय सत् हुई। तो पर्याय सत् हुई, वह ध्रुव के आश्रय

से हुई। ध्रुव साथ में ले लिया। चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई, पहले की पर्याय का व्यय हुआ और गुण ज्ञान-दर्शन और चारित्र ध्रुवपने पड़े हैं। तीनों मिलकर अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया?

चारित्र की यह स्थिति उत्पन्न हुई, वह तीनों मिलकर चारित्र का अस्तित्व है। ध्रुव और उत्पाद-व्यय तीनों मिलकर अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध करते हैं। उस गुण को राग के अभाव की अपेक्षा नहीं, परन्तु उसमें राग का अभाव है सही। समझ में आया? (रागादि) **परिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है...** अर्थात् निर्मल है। अर्थात् छोड़नेयोग्य नहीं। विकल्प आदि है, वह तो छोड़नेयोग्य आते हैं। निन्दा योग्य है। आहाहा! त्रिकाली गुण है और यह मोक्षमार्ग, वह उसकी पर्याय है। ये तीनों पर्याय है। मोक्षमार्ग, वह पर्याय है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, यह तीनों पर्याय है। तीनों पर्याय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह त्रिकाली गुण में। यह तो मोक्षमार्ग की बात चलती है। मोक्षमार्ग, वह पर्याय है। परन्तु अन्तर में जो ज्ञान-दर्शन और चारित्रगुण है, वह त्रिकाली है। गुण बिना पर्याय कहाँ से होगी? समझ में आया?

आत्मा वस्तु है, उसमें ज्ञानदर्शन और स्थिरता नाम की शक्ति का गुण त्रिकाल पड़ा है। वह स्थिरता नाम की शक्ति जो है, वह गुण है। और जो चारित्र दशा प्रगट हुई, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आये। द्रव्य आत्मा और गुण ज्ञान, दर्शन और चारित्र की शक्ति गुणरूप, वह गुण और उसमें लीनता हुई, वह पर्याय है। तो उत्पाद, व्यय और ध्रुव को साथ में लेकर तीनों को अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध कर दिया। आहाहा! भारी सूक्ष्म। गुण बिना पर्याय आयी कहाँ से, ऐसा सिद्ध किया है। चारित्रगुण शक्तिरूप न हो तो व्यक्तता पर्याय में स्थिरता आयी कहाँ से? गुण का ही चारित्र परिणमन है। चारित्र गुण जो त्रिकाली है, उसका यह परिणमन है। आनन्दगुण जो त्रिकाली है, उसमें यह वर्तमान प्रगट आनन्द का स्वाद आता है, वह पर्याय है। मोक्षमार्ग ही पर्याय है। अरे! मोक्ष भी पर्याय है। मोक्ष गुण नहीं। सिद्ध गुण नहीं। वैसे सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग वह गुण नहीं; पर्याय है। तथा सम्यग्ज्ञान मोक्ष का मार्ग, वह

गुण नहीं; पर्याय है। तथा सम्यक्‌चारित्र वह गुण नहीं, मोक्ष के मार्ग की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

सिद्ध में भी केवलज्ञान की पर्याय एक समय रहती है। दूसरे समय में दूसरी होती है। इसी प्रकार चारित्र की रमणता सिद्ध में है, वह भी एक समय में रमणता है, दूसरे समय में दूसरी होती है। आहाहा! बड़ा विवाद हुआ था। सिद्ध में चारित्र है या नहीं? एक कहे कि नहीं और एक कहे कि है। वे बचाव करने में, भाई है, है। स्वरूप की स्थिरता का चारित्र तो सिद्ध में भी है। सिद्ध कहाँ जाये? आहाहा! वह तो यह भेद पाँच सामवाय के हैं, वे भेद नहीं। परन्तु स्वरूप आचरणरूपी स्थिरता पूर्ण, वह तो सिद्ध भगवान में परिपूर्ण हो गयी। पूर्ण वस्तु पूर्ण गुण ऐसी अवस्था पूर्ण निर्मल स्थिर हो गयी। ऐसी स्थिरता के परिणाम सिद्ध में भी है। समझ में आया? यह तो मोक्षमार्ग के कारण की व्याख्या चलती है। मोक्ष तो उसका कार्य है, फल है। परन्तु उसका कारण क्या, यह चलता है। कारण कहो, मार्ग कहो, उपाय कहो, रास्ता कहो, पन्थ कहो। समझ में आया? कहते हैं, **रागादिपरिणाम के अभाव के कारण अनिन्दित है—वह चारित्र है;...** देखो! आहाहा! कैसी व्याख्या! स्पष्ट दो और दो=चार जैसा, उसमें कुछ मल-मैल नहीं है और कोई सन्देह की बात नहीं है। यह चारित्र है, भगवान! वह चारित्र, मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहते हैं यह? कौन कहते हैं? ऐ धन्नालालजी!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन न हो तब तक?

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक न हो तो मिथ्यात्व है और अज्ञान माने। उसमें क्या है? राग और क्रिया को धर्म माने समचारित्र माने तो मिथ्यात्व है। जब तक न हो तब तक। और स्वरूप में रमणता न हो और सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो। आंशिक रमणता हो तो चौथा (गुणस्थान) प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन में आंशिक तो अनन्त गुण प्रगट होते हैं। कोई गुण का अंश प्रगट न हो, ऐसा सम्यग्दर्शन में नहीं होता। क्योंकि सम्यग्दर्शन पूरे द्रव्य को पकड़ता है और पूरे द्रव्य को ध्येय करके पकड़ा तो जितने द्रव्य में अनन्ताअनन्त...

अनन्ताअनन्त गुण की खान है, उतने सब गुण के अंश व्यक्त हो जाते हैं। जितने गुण है, उनके सब गुण व्यक्त, प्रगट हो जाते हैं। आंशिक पूर्ण अंश। सर्वज्ञ को पूर्ण सब। सर्वज्ञ को अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। चौथे गुणस्थान में अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त सब गुण का हो जाता है। यह कहा न? 'सर्वगुणांश समकित', हाँ, परन्तु यह शास्त्र भाषा दूसरी है। जो गुण है, उन सबका अंश प्रगट हुआ, ज्ञानादि का। समझ में आया?

तो चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दर्शन में पूरे द्रव्यस्वभाव का जहाँ प्रतीति और ज्ञान हुआ, प्रतीति हुई तो सम्यग्दर्शन की पर्याय जैसे श्रद्धागुण में से प्रगट हुई, वैसे आनन्दगुण में से आनन्द का अंश भी प्रगट हुआ। वैसे चारित्रगुण जो त्रिकाल है, उसमें स्वरूप की स्थिरता का अंश भी प्रगट हुआ। ऐसे अनन्त गुण में से अंश प्रगट व्यक्त हुआ, उसका नाम उसकी प्रतीति का नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, ... ऐसा कहते हैं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, जाओ समकित हो गया। धूल भी नहीं। महँगा कर दिया या सस्ता कर दिया। जो है, वह है। समझ में आया? अपनी कल्पना से माने, इसलिए कहीं वस्तु बदल जाती है? सस्ता मिले। क्या सस्ता? एक बार शाकभाजी का दृष्टान्त नहीं दिया था! शाकभाजी। यह ऐसा ही है। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन की पर्याय सम्यक्‌श्रद्धा नाम का गुण त्रिकाली में है। उस गुण को धरनेवाला गुणी स्वभाववान है। स्वभाववान की दृष्टि होने से स्वभाव जितनी संख्या में है, सबका अंश प्रगट हो जाता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है। नहीं तो वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। आहाहा! कठिन बात! रतनचन्दजी!

वस्तु है, उसमें अनन्तानन्त गुण हैं। एक बार कहा था न? सिद्ध से भी अनन्तगुणे जीव हैं, जीव से अनन्तगुणे परमाणु हैं, परमाणु से अनन्तगुणे काल समय है, उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश, उससे अनन्तगुणे एक जीव में गुण है। यह तो संक्षिप्त बात है। सिद्ध की संख्या है, उससे अनन्तगुणे संसारी प्राणी हैं। संसारी प्राणी से परमाणु की संख्या अनन्तगुणी है। उससे तीन काल के समय अनन्तगुणे हैं और उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं। उससे भी एक जीव में अनन्तगुणे गुण हैं। इसमें कितनी संख्या में!

नेमीचन्दजी! घर में पाँच, पच्चीस, पचास लाख हो तो बस! ओहोहो! हो गया। धूल भी नहीं। सुन न! सेठी! पाँच, पचास लाख मिले और सेठिया हो गया। अब यह गिनती नहीं। यहाँ तो अमाप गुण की संख्या तुझमें है। सुन तो सही! समझ में आया?

उसे द्रव्य कहते हैं, उसे द्रव्य कहा जाता है। आहाहा! 'द्रवति इति द्रव्यम्' तो जहाँ अन्दर द्रव्यदृष्टि हुई तो द्रव्य परिणमता है। अनन्त गुण की पर्याय व्यक्तरूप से परिणमती है, यह उसकी प्रतीति, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यह वंशमोर (फिर से कहने का) कहते हैं। नाटक में करते हैं न! फिर से कहो, ऐसा कहते हैं। आत्मा में जितने गुण संख्या से हैं संख्या से। काल है, वह तो बराबर अनादि-अनन्त है, वह दूसरी बात। एक, दो, तीन ऐसी संख्या। संख्या से अनन्त गुण है, उन सबकी व्यक्तता। ज्ञान की एक समय की पर्याय स्व को पकड़ने की योग्यतावाली, श्रद्धा की एक समय की पर्याय सब प्रतीति करने... यह सब गुण की एक समय की व्यक्त पर्याय स्वज्ञेय पूर्ण को बनाया, द्रव्य को। दृष्टि में द्रव्य को लिया तो द्रव्य में जितने गुण हैं, उन सब गुण की पर्याय एक समय में व्यक्त होती है। और सर्व गुण का अंश जो प्रगट हुआ, उसकी प्रतीति हुई कि यह आत्मा ऐसा है। आनन्द आया तो यह आत्मा आनन्दमय है, शान्ति आयी तो यह आत्मा शान्तिमय है। शान्ति अर्थात् स्वरूप स्थिरता। समझ में आया?

ऐसी अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय में शान्ति, आनन्द आये तो पूरा आत्मा आनन्द और ज्ञानमय-आनन्दमय है, ऐसी प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? अरे गजब बातें! यह महँगा। परन्तु महँगा हो तो ऐसा होता है। नीलमणि कहीं निम्बोली से मिलती है? सेठिया यह पूछो सेठ को। यह देते नहीं मुफ्त में। दो, पाँच सेर निम्बोली लेकर लाओ एक नीलमणि। आहाहा! गोदीका है न गोदीका। नीलमणि के टुकड़े जाँचते हैं ऐसे। जरा घिसाते हैं न! पूरणचन्द गोदीका (के यहाँ) एक मुसलमान है, वह घिसता है तो महीने के तीन हजार रुपये तो उसे देते हैं। एक महीने के तीन हजार। यह पूरणचन्द गोदीका है न, तीन वर्ष पहले गये थे न? ग्यारह दिन के सोलह लाख रुपये खर्च किये। सोलह लाख। पूरणचन्द गोदीका है न, बहुत नरम व्यक्ति है। उनका मकान संगमरमर का, संगमरमर का। तो एक मुसलमान कारीगर आया। पैंतीस-चालीस वर्ष की उम्र है। तो उसे एक महीने के तीन हजार रुपये घिसने के मिलते हैं।

परन्तु घिसने के लिये कहता था कि यदि बराबर घिसे तो पच्चीस हजार के लाख पैदा हों। एक टुकड़ा निकल जाये तो लाख के पच्चीस हजार हो जाये। वहाँ कोई पाँच सौ, हजार की आमदनी नहीं होती, वहाँ तो लाख और दो लाख की बात....

हमारे एक कहते थे। हमारे दो हजार ऐसा कुछ नहीं होता। मिले तो पाँच-पाँच, दस लाख। जाये तो दो, पाँच लाख। अन्त में योगफल तो बढ़ता ही है न! समझ में आया? परन्तु उस नीलमणि की कीमत जिसे हो, उसे खबर। निम्बोली लेकर जाये, लाओ नीलमणि लाओ। पाँच हजार निम्बोली दे, निम्बोली समझते हो न? नीम की। पाँच हजान दे और कहे कि लाओ भाई तुम्हारे, तुम्हारे है न! कितनी कीमत है नीलमणि की? पचास हजार की, लाख की, दस लाख निम्बोली। परन्तु लाख निम्बोली में नहीं मिलती। वह चीज़ ऐसी नहीं है। जवाहरात की कीमत में जवाहरात के प्रमाण में कीमत देनी पड़ती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी प्रतीति में अनन्त पुरुषार्थ और स्व की जागृति होनी चाहिए। उसमें कहीं बाहर से मिलती नहीं। आहाहा! क्या करे? दुनिया को सत्य मार्ग सुनने को मिला नहीं। जो कुछ गड़बड़... गड़बड़ धर्म चलाया। यह जहाँ मार्ग आया निश्चय सत्य, वहाँ ऐ... एकान्त है, एकान्त है। अरे भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरे लाभ की बात है, नाथ! परन्तु इसे खबर नहीं न! आहाहा! सत्य को असत्य ठहरावे और असत्य को सत्य ठहरावे। उन्माद (शब्द) आता है न तत्त्वार्थसूत्र में? पहले अध्याय का (एक) सूत्र। उन्मादवत्—गहल पागल की भाँति लोग मानते हैं।

कहते हैं, जो उन्माद आया, ऐई! तेरा। पागल... पागल। पागल कहता था न! वह पर का कर्ता माने, वह पागल जैसा है, वह कहे, पागल जैसा नहीं परन्तु पागल ही है। पागल है पागल। गजब भाई! बात तो सच्ची है। भगवान आत्मा जैसा है, वैसा प्रतीति में न लेकर विपरीत प्रतीति में लेता है, पर का मैं कर्ता हूँ और पर से मुझमें कुछ होता है, दृष्टि पागल जैसी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा!

समाधिशतक में तो समकित सहित में भी राग होता है तो भी पागल कहा है।

पागल है। क्या करे? सम्यग्दर्शन में राग विकल्प है न। पंच महाव्रत का विकल्प है, उसे भी पागलपना गिना है। समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी (ने कहा है)। समझ में आया? दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है, ऐसा श्रीमद् ने कहा है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल हो गया। विपरीत होता गया, ऐसे शब्द पड़े हैं। उसमें भी झगड़ा! दिगम्बर के सन्तों की वाणी ऐसी है कि क्या कहते हैं, यह रहस्य समझ में आता है। श्वेताम्बर की शिथिलता-विपरीतता के कारण सब विपरीत हो गया। समझ में आया? यह वस्तु की स्थिति है, हों! व्यक्तिगत तो अपने किसी का कुछ... सम्प्रदाय की बात (नहीं है)। यह तो वस्तु का स्वभाव है।

भगवान परमात्मा सर्वज्ञदेव और सन्त कुन्दकुन्दाचार्य आदि। मूल मार्ग के प्रणेता। मूल मार्ग को प्राप्त और प्रणेता। समझ में आया? मूल मार्ग को प्राप्त और प्रणेता कहते हैं न! प्रवचनसार में कहते हैं न! इस मार्ग के प्रणेता हम खड़े हैं। यह मार्ग कैसा है, वह हमारे अनुभव में है। जिस मार्ग में विकल्प आवे, वह मार्ग नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनिन्दित है—वह चारित्र है; वही मोक्षमार्ग है।** वही मोक्षमार्ग, ऐसा लिया है। बीच में जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। देखो! यहाँ तो व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहा है। मोक्षमार्ग की कथन / प्ररूपणा दो प्रकार से होती है। मोक्षमार्ग के कथन होते हैं, मार्ग दो नहीं। मार्ग तो एक ही निश्चय मोक्षमार्ग एक ही मार्ग है। समझ में आया?

संसारियों में.... अब फिर संसार की दशा का वर्णन। सिद्ध की तो यहाँ बात करने की है नहीं। मोक्षमार्ग की बात करनी है न! **संसारियों में चारित्र वास्तव में दो प्रकार का है...** संसारी प्राणी में चारित्र की दशा दो प्रकार की है। **स्वचारित्र और परचारित्र;...** देखो! टीका में स्पष्टीकरण। **एक स्वचारित्र—स्वचारित्र, वह स्वसमय और परसमय ऐसा अर्थ है।** भाषा देखो! स्वचारित्र का अर्थ—स्वसमय और परचारित्र का अर्थ—परसमय। समझ में आया? स्वचारित्र का अर्थ स्वसमय। अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव, उसमें एकाग्रता वीतरागी पर्याय, वह स्वचारित्र, उसका नाम स्वसमय। अपनी पर्याय है, अपनी वीतरागी पर्याय है। और राग है, वह परचारित्र है। और परचारित्र है, वह परसमय है, अनात्मा है। आहाहा! अनात्मा है, परसमय है। आत्मा नहीं। समझ में आया?

पंच महाव्रत का विकल्प, वह आत्मा नहीं, अनात्मा है। अरे! यह तो मोक्षमार्ग में महाव्रत-महाव्रत घुस गया। व्यवहार भी कहाँ था उसे, निश्चय बिना, भान नहीं होता और मान ले कि यह... मुंडाया और लोंच करावे, स्त्री छोड़कर, दुकान छोड़कर। क्या छोड़ा? धर्म छोड़ा है। अपने शुद्ध स्वभाव का आश्रय छोड़ा। पर का आश्रय माना, वह तो मिथ्यात्व भाव है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु की स्थिति है। भाई! किसी व्यक्तिगत के लिये बात नहीं है। मार्ग ऐसा है। उसकी दृष्टि में विपरीतता है तो उसका नुकसान तो उसे ही है। और उसकी विपरीत दृष्टि का फल निगोद आदि की दशा है। ऐसी विपरीत दृष्टि का तिरस्कार तो क्यों करे? द्वेष तो क्यों करे? आहाहा! इस दुःख की दशा में प्रवेश करने का प्रयत्न करता है, उसके (ऊपर) तो दया होनी चाहिए। समझ में आया? द्वेष तो किसी व्यक्ति के प्रति होना नहीं चाहिए। वह भी भगवान आत्मा है। भान नहीं, वह भगवान भूल गया। भगवान भूला की गली में चढ़ गया। आहाहा!

देखो, भगवान अमृतचन्द्राचार्य, सन्त वनवासी मुनि जंगल में रहते थे। उस जंगल में यह टीका बनी है। यह भी कहा न भाई! पंचास्तिकाय में अन्त में। हमारा मन यह टीका करने में चंचल होता था, इसलिए टीका हुई है। है न अन्त में? अन्त में है न अन्त में। है दूसरे में, इसमें नहीं। प्रवचनसार में। यह तो हमारा कर्तव्य नहीं, उसमें तो इतना ही है। दूसरे में है उसमें। हाँ, हमारा मन वहाँ चंचल होता था, यह वहाँ शब्द है, व्याख्या। हाँ, यह। इसमें लिखा है, इसमें है। (१७३ गाथा, टीका का दूसरा पेरेग्राफ, छठवीं लाईन-२६७ पृष्ठ) **परमागम के प्रति अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा है।** ओहोहो! समझ में आया? २६७ पृष्ठ, बीच में। परमागम के प्रति अनुराग के वेग से उसे प्रेम-विकल्प आया। जिसका मन अति चलित होता था। विकल्प उठता था तो चलित होता था कि टीका बनाऊँ... टीका बनाऊँ। विकल्प से चलित होता था। २६७ पृष्ठ है। दो, छह और सात। ऊपर से पाँचवीं लाईन। **परमागम के प्रति अनुराग के वेग से...** सिद्धान्त के प्रेम से, प्रेम अर्थात् राग से, **जिसका मन अति चलित होता था,...** मेरा मन चलित होता था। **ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा है।** समझ में आया? मैं

कहनेवाला नहीं। वह विकल्प आया था तो हो गया। समझ में आया? अन्त में यह कहा। **मैं स्वरूपगुप्त अमृतचन्द्राचार्यसूरि का इसमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है।** उसका करनेवाला मैं किंचित् भी नहीं हूँ। आहाहा!

संसारियों में चारित्र वास्तव में दो प्रकार का है :- स्वचारित्र और परचारित्र;... स्वचारित्र अर्थात् स्वरूप में लीनता, वह स्वचारित्र और परचारित्र राग का विकल्प जो है, वह परचारित्र। स्वचारित्र को स्वसमय अर्थात् आत्मा कहने में आता है। परचारित्र को परसमय अनात्मा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? **वहाँ, स्वभाव में अवस्थित...** अब स्पष्टीकरण करते हैं। स्वसमय अथवा स्वचारित्र किसे कहते हैं? **स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वस्वरूप (चारित्र), वह स्वचारित्र है...** देखो! स्वभाव ज्ञान-दर्शन भगवान आत्मा का स्वभाव, उसमें अवस्थित लीन, उसमें दृढ़पना होना, इसका नाम अस्तित्व स्वरूप स्वचारित्र है।

भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभाव में लीन, दृढ़-स्थिर हो जाये, इसका नाम स्वचारित्र, इसका नाम स्वसमय। यह आत्मा की पर्याय। समझ में आया? **और परभाव में अवस्थित...** महाव्रत आदि का जो विकल्प उठता है, उसमें रहना, वह परभाव में अवस्थित अस्तित्वस्वरूप चारित्र, वह परचारित्र है। इतना भी है न, ऐसा कहते हैं। परभाव भी है। वह परचारित्र है। हें? चारित्र-परचारित्र अर्थात् विभाव के वे नाम आये न, नाम? भाई कहे, ऐसा कि नाम तो है न? विकारी पर्याय है न? विकारी पर्याय परचारित्र है। स्वचारित्र नहीं। लाभदायक नहीं, नुकसानदायक है, बन्धदायक है, अनात्मा है। यह तो मोक्षमार्ग की व्याख्या चलती है न! तो स्वचारित्र स्वरूप में जो रमणता हुई, वह मोक्षमार्ग है। परचारित्र मोक्षमार्ग है नहीं। परचारित्र नाम तो आया न? ऐसा कहते हैं। नाम तो आवे न? कहे। आहाहा!

परभाव में अवस्थित अस्तित्वस्वरूप (चारित्र)... परन्तु है ऐसा। **वह परचारित्र है।** उत्पाद-व्यय है न? राग की उत्पत्ति होती है न? राग की उत्पत्ति है, पहले राग का नाश होता है और ध्रुवता तो चारित्र है परन्तु उस ओर का आश्रय है नहीं। तो अकेले राग की उत्पत्ति-व्यय, उत्पत्ति-व्यय होता है। उसकी अस्ति है। परचारित्र की भी संसारियों में अस्ति है।

उसमें से (अर्थात् दो प्रकार के चारित्र में से), स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वरूप चारित्र... स्वभाव में स्थिर होना। आहाहा! लोग चारित्र ऐसा कहते हैं कि चारित्र क्यों अंगीकार नहीं करते? परन्तु चारित्र कहीं बाहर से आता है या अन्दर से आता है? आहा! चारित्र अंगीकार अन्दर स्वरूप में लीनता का होना, वह चारित्र है। आहाहा! वस्त्र कहाँ थे, उनकी तो नास्ति है। आत्मा में वस्त्र की नास्ति है। आत्मा में शरीर की नास्ति है। आत्मा में तो राग की नास्ति है। किसे निकाले? गजब काम!

कहते हैं, **स्वभाव में अवस्थित अस्तित्वरूप चारित्र...** भगवान आत्मा में ज्ञान-दर्शन में लीनता-वीतरागी पर्याय जो हो, वह स्वचारित्र का अस्तित्व है। **जो कि परभाव में अवस्थित अस्तित्व से भिन्न होने के कारण...** देखो! स्पष्टीकरण किया। कि जो परभाव में अवस्थित जो राग है, उसके अस्तित्व से यह स्वचारित्र भिन्न है। राग में रहने से राग से रहित भिन्न स्वचारित्र है। पंच महाव्रत के विकल्प से स्वचारित्र भिन्न है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक समय की एक पर्याय के दो भाग। एक स्वरूप में रमणता, वह स्वचारित्र और जितना पर्याय में राग उठा, वह परचारित्र। और उस परचारित्र से भिन्न, वह स्वचारित्र। कितना स्पष्ट करते हैं। देखो! समझ में आया?

पंच महाव्रत का विकल्प हो, वह परचारित्र है। वह राग के अस्तित्व में है। राग के अस्तित्व से पर भिन्न है भगवान स्वचारित्र। आहा! उसमें आनन्द का उफान आता है। स्वचारित्र में तो अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है। जैसे समुद्र के किनारे पानी का ज्वार आता है न ज्वार? ज्वार आता है, उसी प्रकार स्वचारित्र में भगवान आनन्द से भरचक भरा है, उसमें लीन होने से आनन्द का ज्वार आता है। अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, उसका नाम स्वचारित्र है। आहाहा! समझ में आया? अभी व्याख्या चारित्र किसे कहते हैं, इसकी समझ नहीं। वस्त्र बदले और हो गया चारित्र। चारित्र लिया। गुरु ऐसा कहे चारित्र लो। लो चारित्र... भाई! सेठ को कहो। अपने व्यापार छोड़ सकते नहीं। उसकी अपेक्षा। हें? अपनी अपेक्षा अच्छे। तुम जहर हो तो वह अधिक जहर, ऐसा कह। परन्तु वह बाहर में मानता है कि अपनी अपेक्षा यह बेचारे व्यापार-धन्धा छोड़े, लोंच करे,.... नंगे पैर चले। इतना तो कुछ करते हैं न? हाँ, उसमें मिथ्यात्व का पोषण है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

राग का कर्ता होकर राग की क्रिया में एकाकार होकर उसे राग (को) चारित्र मानता है तो क्षण-क्षण में मिथ्यात्व का पोषक, मिथ्यात्व की पुष्टि क्षण-क्षण में होती है और मानता है कि हम चारित्रवन्त हैं। ऐसे भाव निगोद में डुबोनेवाले हैं। आहाहा! देखो न, यहाँ थोड़ी गर्मी लगे, वहाँ तो लोग चिल्लाहट मचाते हैं। हें? अब इसकी अपेक्षा तो अनन्तगुणी गर्मी पहले नरक में है। वहाँ अनन्त बार गया। परन्तु याद नहीं करता। भूल गया। यहाँ तो जरा सी गर्मी। पानी माँगे रखो। भीना पानी। गीले पोता। मटकी में भी लीला-लीला, लीला को क्या कहते हैं—भीना। गीला-गीला कहते हैं न? गीला कपड़ा। गीला कपड़ा मटकी के ऊपर रखो। हवा लगे तो ठण्डा पानी रहे। टोपी ओढ़े, उसके बदले गीला कपड़ा ओढ़े। शोभालालजी! आहा! अरे भगवान! अरे, कितनी गर्मी प्रभु वहाँ रहे। आहाहा! भूल गया। हें? भूल गया, इसलिए कहीं वस्तु चली जाये? आहाहा! और वह भी उस समय द्वेष किया। द्वेष का वेदन। द्वेष का वेदन, इसका नाम दु:ख। संयोग का तो वेदन है नहीं। गर्मी का वेदन किसी को है नहीं। गर्मी तो जड़ है, जड़ की पर्याय है। .... कहाँ से आया? कषाय का वेदन करता था। ऐसा वेदन तो पहले नरक की दस हजार वर्ष की स्थिति में है। और नवें ग्रैवेयक में गया देव, वहाँ भी कषाय अग्नि में पड़ा था। मिथ्यादृष्टि है न!

चारित्र—जो कि परभाव में अवस्थित अस्तित्व से... राग में स्थिर होना, ऐसा होना **भिन्न होने के कारण अत्यन्त अनिन्दित है वह—यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारणा।** अत्यन्त निर्मल है। उसमें बिल्कुल शुद्ध और आनन्द है। स्वचारित्र में तो अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन का वेदन है। उसका नाम चारित्र और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! हें? द्रव्यलिंगी को अज्ञान होता है। परचारित्र होता है, राग। राग से न जाये शुभभाव से। शुभभाव से न जाये? ऊपर-ऊपर गये नहीं। ऊपर गये तो क्या? नौवें ग्रैवेयक में तो क्या? अरे सिद्ध भगवान हैं, वहाँ भी निगोद है, तो क्या हुआ? जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं न, वहाँ पेट में निगोद है। ऊँचे गया तो क्या है? भाव कहीं ऊँचे नहीं हैं। वे तो हल्के हैं। मिथ्यात्व में है। समझ में आया?

नौवें ग्रैवेयक में गया तो इसका क्या अर्थ? स्वर्ग में गया। स्वर्ग में गया तो क्या?

धूल के प्रतिकूल संयोग में गया। अनुकूल संयोग में वहाँ गया। मान्यता है न? अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु है ही नहीं। अज्ञानी मानता है कि अनुकूल संयोग है। समझ में आया? यहाँ तो परभाव में अवस्थित होने के कारण स्वचारित्र अत्यन्त भिन्न है। अज्ञानी को तो स्वचारित्र होता नहीं। यह तो ज्ञानी की बात चलती है। ज्ञानी को भी परचारित्र होता है, विकल्प होता है। परन्तु स्वचारित्र उससे अत्यन्त भिन्न है। स्वचारित्र और परचारित्र दोनों एक नहीं होते। मुनि को भी। कुन्दकुन्दाचार्य आदि को भी पंच महाव्रत का विकल्प आया, परन्तु वह विकल्प और निर्विकल्प चारित्र दोनों एक नहीं होते। अत्यन्त भिन्न रहते हैं। इसका नाम चारित्र कहते हैं।

यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारणा। देखो! जो स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन में लीनता के आनन्द का वेदन, वैसे साक्षात् मोक्षमार्ग का निर्णय करना। वह मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप से अवधारण करना, ऐसा कहा न? तत्पश्चात् परम्परा मोक्षमार्ग दूसरा होगा या नहीं? यहाँ तो साक्षात् मोक्षमार्ग कहा। व्यवहार को परम्परा मोक्षमार्ग आरोप दिया जाता है। क्योंकि उसे छोड़कर स्वरूप की स्थिरता करेगा तो उसे आरोप देते हैं। साक्षात् यथार्थ स्वरूप दृष्टिपूर्वक अन्दर में लीनता की वीतरागी पर्याय भाव, वही साक्षात् मोक्षमार्ग अवधारण करना, ऐसा निर्णय करना। इसका निर्णय करना, इसका निश्चय करना कि यही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका पूर्ण हुई। एक गाथा की। थोड़ा अन्दर जयसेनाचार्य की टीका में से कोष्ठक में जो लिया है न, जयसेनाचार्य की टीका में थोड़ा है। उसका स्पष्टीकरण बाद में आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६५, गाथा-१५४-१५५ वैशाख शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक -१५-०५-१९७०

यह पंचास्तिकाय १५४ गाथा। अन्तिम शब्द आये। देखो! **यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारणा।** क्या कहा? है न। अन्तिम लाईन। आत्मा में शुद्धचैतन्य ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो त्रिकाल है, उसमें लीन होना, रमणता करना, रमण करना, वही एक निश्चय सत्य चारित्र है। और वही मोक्ष का मार्ग अवधारण करना, निश्चित करना। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग है नहीं। समझ में आया? **यहाँ साक्षात् मोक्षमार्गरूप अवधारणा।** अब कोष्ठक में जयसेनाचार्य का थोड़ा लिया है।

यही चारित्र... यही चारित्र अर्थात् भगवान ज्ञान और दर्शनस्वभाव आत्मा का है, उसमें रमणता, लीनता, एकाग्रता, **यही चारित्र 'परमार्थ' शब्द से वाच्य...** है। यह परमार्थचारित्र वह है। यह व्रतादि की क्रिया जो कहते हैं वह तो, यह गाथा याद आयी ५६८ पंचाध्यायी की। व्रतादि के परिणाम तो अनर्थकारी है। ऐई! ऐसा पंचाध्यायी में लिखा है। अनर्थकारी है। राग है न, विकल्प है न! है न (पंचाध्यायी) लाओ न, लाओ। मक्खनलालजी ने लिखा है। पाठ है तो क्या करे? ५६८ यह रही। देखो! यह आया था। देखो! **'अनिष्टफलवत्वात्स्यादनिष्टार्था व्रतक्रिया दुष्टकार्यानुरूपस्य हेतोर्दुष्टोपदेशवत्'** अभी उपदेश का निर्णय नहीं हुआ क्या? नहीं होता। यह तो उपदेशवत् शब्द पड़ा है न। इसके दो अर्थ किये।

जितनी भी व्रत क्रिया है... पंचाध्यायी है। सुना है पंचाध्यायी? नाम तो सुना है या नहीं? राजमलजी की पंचाध्यायी बहुत ही अच्छी है। एक अपने कलश टीका है और उन्होंने बनायी है। अमृतचन्द्राचार्य का कलश है, उसकी टीका की है। यह उन्होंने पूरा ग्रन्थ बनाया। पंचाध्यायी बहुत ही सरस, बहुत ही सरस! हें! पंचाध्यायी है न पंचाध्यायी। दूसरा भाग ५६८ गाथा। जितनी भी व्रत क्रिया है, क्योंकि व्रत है, वह विकल्प है—राग है, वह सब अनिष्टार्थ है। वह अनिष्ट अर्थ को प्राप्त करनेवाली है। राग है न वह। वह नहीं तो राग है न? वह राग है। वह राग है, वह अनिष्ट अर्थ है। ....स्वभाव-सन्मुख है, वह चारित्र है। व्रतादि की क्रिया, वह चारित्र नहीं।

देखो! अभी तो पूरे समाज के बहुभाग में यही मानते हैं। अहिंसा, सत्य, अचौर्य,

ब्रह्मचर्य (अपरिग्रह), पंच महाव्रत। तो यहाँ कहते हैं कि वह विकल्प है और राग है, वह अनिष्टार्थ है। क्योंकि अनिष्ट फलवाली है। व्रत पालो-व्रत पालो। यह सब सेठिया को तुमको जवाबदारी लेनी पड़ेगी। हें? बराबर बापू! ठीक कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब घर बर चलने दे नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : चलने दे नहीं, सेठिया को भी खबर नहीं होती, क्या करे। जो बाहर में कहते हों वह माने। कैसा प्रशंसनीय! जो सुना हो वह माने। क्या करे? यह भगवान आत्मा सम्यग्दृष्टि को तो व्रत की क्रिया की अभिलाषा होती ही नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह तो राग है। शोभालालजी! जरा सूक्ष्म बात है। यहाँ तो अभी धूप नहीं आती। धूप ऐसी नहीं, हों! अब कम पड़ गयी। तीन-चार दिन पहले थी। दस, दस। उसे अपने कम कहा जाता है।

जितनी भी व्रतादि की क्रिया '**अनिष्टफलवत्वात्स्यादनिष्टार्था व्रतक्रिया दुष्टकार्यानुरूपस्य हेतोर्दुष्टोपदेशवत्**' जिस प्रकार दुष्ट पुरुष का उपदेश दुष्ट कार्य पैदा करनेवाला है, तत्प्रमाण दुष्ट कार्य को उत्पन्न करनेवाली है। गजब बात है न! और यह कहे पंच महाव्रत लो! पंच महाव्रत क्रिया लो। ऐई! प्रकाशदासजी! यह विकल्प है, वृत्ति उठती है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, वह राग है, वह अनर्थकारक है, वर्तमान दुःखदायक है और परम्परा उसका फल भी अनिष्ट है। आहाहा! सब राग है। एक तो राग है न, राग है न? शुभ-अशुभराग दोनों एक हैं।

मुमुक्षु : तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध होता है न? साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, किसे, वह तो अपराध है। उससे नहीं होता। यह तो जरा दूसरा शुभ आस्रव हो तो भी अपराध है। यह तो कहा था। तीर्थंकरगोत्र का, आहारक शरीर बँधता है सम्यग्दर्शन के बाद। मुनि को ही आहारकशरीर बँधता है। समकितसहित तो क्या है? प्रश्न किया है? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। अपराधः अपराध है। गुनाह है। तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह गुनाह है, गुनेहगार, गुनाह है। अपराध है, राग है। आहाहा! हाँ, कहा था न! यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय है न, हें? हाँ यह, २२० गाथा है। २२०। देखो! यह आया। यही निकला, देखो!

'रत्नत्रयमिह हेतुनिर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य आस्त्रवति यतु पुण्यं शुभोपयोगोऽ-सयमपराध' इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म, भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप की अन्तर में रमणता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का कारण होता है, अन्य गति का नहीं। मोक्ष का मार्ग जो निश्चय स्वभाव है। शुद्ध चैतन्यस्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय, स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान और स्वरूप की लीनता वीतरागी स्वरूपाचरण स्थिरता, वही एक मोक्ष का मार्ग है। अन्य कोई नहीं, अथवा उसकी अन्य गति नहीं, उसका कोई अन्य फल है नहीं। और जो रत्नत्रय के पुण्य का आस्रव होता है, पुण्य का आस्रव, वह इस शुभोपयोग का अपराध है। शुभोपयोग का अपराध है। अपराध है। सेठी! आहाहा!

इस दुनिया को वीतरागमार्ग क्या है, (यह खबर नहीं)। वीतरागमार्ग, वह वीतरागभाव से उत्पन्न होता है या राग से उत्पन्न होता है? तो उसे कहाँ से वीतराग कहलाये। समझ में आया? अपराध। ऐसा कहते हैं। लम्बी बात है। अमृतचन्द्राचार्य की गाथा, हों! यहाँ भी कहा, देखो! व्रत, क्रिया स्वतन्त्र नहीं। देखो! क्रिया कर्म के फल से होती है। कर्म का फल है। क्रिया को स्वतन्त्र बतलाने का असिद्ध है। क्योंकि कर्मोदयरूप हेतु बिना क्रिया का होना असम्भव है। मक्खनलालजी ने लिखा है। पाठ है तो क्या करे? पाठ में है न।

अथाऽसिद्धं स्वतंत्रत्वं क्रियायाः कर्मणः फलात्।
श्रेती कर्मोदयाद्धेतोस्तस्याश्चाऽसंभवयो यतः ॥५६९॥

इसका अर्थ किया है। घर का कुछ नहीं किया। वापस वे मानते नहीं। नहीं, यह व्रत है वह साधन है, उससे धर्म होगा। व्रत पालते-पालते शुभभाव से अन्दर में शुद्धता प्राप्त होगी। दृष्टि की बड़ी विपरीतता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शुद्ध का अंश नहीं। अज्ञानी अनादि से मानता है। यहाँ तो पंचाध्यायी में कहते हैं, देखो! अरे! यह तो घर का कथन है? मोक्ष अधिकार में कहा है।

जितने व्रतादि के विकल्प हैं, वे सब जहर के कुम्भ हैं। विष कुम्भ हैं। आया न, देखो! यह ठण्डा व्यक्ति है, वृद्ध व्यक्ति है न? ऐसा है या नहीं शास्त्र में? कहो, समझ में आया? इसे निर्णय तो करो, सत्य क्या है और असत्य क्या है? निर्णय ठिकाने बिना ऐसा का ऐसा चलता जाता है। आहाहा! दान, पूजा सब, सब शुभभाव। कौन अटकता है। दान देता है कौन? क्रिया का भाव आता है। जड़ के पैसे जाने के हों तो जाते हैं और आने के हों तो आते हैं। वह आत्मा का अधिकार है? लक्ष्मी देना, वह आत्मा का अधिकार है? सेठी!

मुमुक्षु : यदि उससे धर्म हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं होता। हम तो कहते हैं, पुण्य भी नहीं होता। वह तो जड़ की पर्याय है। पुण्य तो राग की मन्दता करे तो पुण्य है। यह लक्ष्मी दी तो पुण्य है, ऐसा कौन कहता है? ऐसा तो कभी है नहीं। वह तो अजीव है। लक्ष्मी अजीव है। और अजीव मेरा है और मैं देता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। पैसे कहाँ इसके बाप के थे। बाप के तो ठीक परन्तु इसके भी कहाँ थे। पैसे तो जड़ के थे। लक्ष्मी अजीव होकर रही है। झबेरचन्दभाई! हमारे सेठ हैं, वहाँ कलकत्ता। सब ऐसे के ऐसे समझे बिना के गाड़ी हाँक रखते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि लक्ष्मी अजीव होकर रही है। तो अजीव होकर रही, उसका जीव स्वामी होकर मैं देता हूँ, यह भाव अजीव का स्वामी मिथ्यादृष्टि है। ऐई! धन्नालालजी!

मुमुक्षु : यह मेरे नहीं, ऐसा करके तो देना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मेरे नहीं तो देना कैसे? ले कौन और दे कौन? जड़ की अवस्था दे कौन और ले कौन? आहाहा! अन्दर बड़ी भ्रमणा पड़ी है। मैं पाँच हजार, पच्चीस हजार देता हूँ। तू कौन? देने की क्रिया क्या? वह क्रिया किसकी है कि तू देता है? आहाहा! देखो न! यहाँ तो कितने स्पष्टीकरण कर दिये हैं। क्रिया उदय की है। बिल्कुल उदय भाव की अभिलाषा ज्ञानी को होती नहीं, सम्यग्दृष्टि को होती नहीं। उदय भाव की अभिलाषा है? ज्ञानी को तो अपने शुद्ध स्वभाव की अभिलाषा अर्थात् एकाग्रता करता है। उसे राग आता है परन्तु वह अनर्थकारी है, ऐसा जानता है। ....यह वैशाख में

दीक्षा होती है न तुम्हारे? कल या तो भावनगर में एक होनेवाली है। यहाँ लाठी में दो होनेवाली है... सब। यह साधु होकर फिर जय महाराज!

मुमुक्षु : धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग चरणवन्दन करे फिर हो। यह सेठिया चरणवन्दन करे। जय महाराज! धूल में भी धर्म नहीं। मिथ्यात्व लगता है। ऐसे कुलिंग और व्रत विकल्प में धर्म माननेवाले मिथ्यादृष्टि मूढ़ है-अज्ञानी है। उन्हें साधु मानना और साधु मानकर आहार देना, वह भी मिथ्यात्व का पोषण है। ऐसी बात है। आहाहा!

क्या कहते हैं, देखो! यहाँ तो ५६८ गाथा में वह उपदेश है न, यह शब्द है न, दोनों के अर्थ में अन्तर है। इसमें अर्थ किया और उसमें यह अभी हमारे पण्डितजी को निर्णय नहीं होता। किसका अर्थ सच्चा है। अभी निर्णय हो, तब कहे न! इसके बिना कहे। दिया है सही मैंने। बड़ा नाम है, पहिचानते हो? बड़े पण्डित हैं। बहुत ही मस्तिष्क है। हमारे पूरे मण्डल में उनके जितना क्षयोपशमवाला मस्तिष्क किसी को नहीं है। शान्त है, शान्त हैं न! बहुत ही क्षयोपशम। उनके दो भाई। बड़े भाई। उनके लड़के की लड़की है, उसे जातिस्मरण है। अपने देखी थी न वहाँ भावनगर। यहाँ है या नहीं? यहाँ आयी है? नहीं आयी। वह राजुल। उनके लड़के की लड़की है। जातिस्मरण हुआ है न! वहाँ बतायी थी। उसे देखा है न! भाई!

यहाँ कहते हैं कि जितनी भी व्रत क्रिया है, वह सब अनिष्टार्थ है। क्योंकि अनिष्ट फलवाली है। ऐसे पाठ हैं न दो? फल अनिष्ट है। आहाहा! भारी गजब बात! प्रकाशदासजी! वे कहें, भाई! व्रत ले लो, महाव्रत ले लो। भाई! तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। अररर! हें? धर्म का रूप है। उसमें धर्म कहाँ है? यह तो हम कहते हैं। अनिष्ट राग। राग है न? विकल्प है, मैं ऐसी अहिंसा करूँ, सत्य बोलूँ, ब्रह्मचर्य पालन करूँ, वह तो राग-विकल्प है, वृत्ति आग है। वह अनिष्टदायक है और अनिष्ट उसका फल है। इस प्रकार दुष्ट पुरुष का उपदेश दुष्ट कार्य को पैदा करता है, उसके जैसा होता है। दुष्ट पुरुष उल्टी मान्यता चलावे तो जगत को उल्टी श्रद्धा होती है। समझ में आया?

कांक्षा अधिकार में लिया है। सम्यग्दृष्टि को कांक्षा-इच्छा है नहीं। यह शिष्य ने

प्रश्न किया है। महाराज! पापभाव आदि तो भले इच्छा बिना हो जाये, परन्तु शुभ का करना है तो उसमें तो अभिलाषा आती है या नहीं? शुभभाव इच्छा और अभिलाषा बिना होता है? तो सम्यग्दृष्टि को भी व्रत तो आते हैं। तो व्रत की अभिलाषा है या नहीं? तो कहते हैं नहीं। समझ में आया? भाई! क्या नाम तुम्हारा? हिम्मतभाई! कहाँ गये तुम्हारे? मनसुखभाई गये? ठीक। ऐसा मार्ग ऐसा है। यह सब वहाँ मलाड में प्रमुख हैं। अब जरा आते हैं। मनसुखभाई ने बदलाया है, वह यथार्थ बदलाया है। वह कहीं मुफ्त का नहीं बदलाया। सम्प्रदाय में वस्तु पूरी फेर है। समझ में आया?

अभी तो मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है। राग की एकता मानता है। राग से भिन्न आत्मा का सम्यग्दर्शन तो है नहीं। मिथ्यादृष्टि के व्रत के परिणाम हैं, वह तो अनर्थ का कारण है। और मानता है कि हमारे धर्म हुआ और धर्म किया। अजीव, आस्रव को धर्म-संवर माना, तो एक तत्त्व को दूसरा तत्त्व माना। मिथ्यात्व का पोषण है।

मुमुक्षु : जो व्रत नहीं करते, उन्हें तो अच्छा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! व्रत का विकल्प था, वह तो राग है। नहीं कौन करता? करता है कौन? राग जिसे अभी अव्रत का भाव है, वह तो अशुभभाव है। वह अशुभराग है। और यह राग शुभ है तो शुभराग है, परन्तु दोनों अनर्थकारी है। अन्तर स्वरूप में दृष्टि करके लीन होना, वह यथार्थ चारित्र और यथार्थ मोक्ष का मार्ग है। ऐसा कहते हैं न।

मुमुक्षु : चौबीस घण्टे वीतरागता तो रहती नहीं साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दृष्टि में है नहीं। दृष्टि में है नहीं। पहली बात दृष्टि की है न! दृष्टि में चौबीस घण्टे राग का आदर नहीं होना चाहिए। समझ में आया? यहाँ पहले निर्णय करने की बात करते हैं न? अवधारणा। देखो! अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं। **'मार्गत्वेनावधारंणीय मिति।'** साक्षात् भगवान आत्मा। अरे! मनुष्यदेह मिला। यह ऐसा का ऐसा समय चला जाता है। फिर यह गर्मी लगी और सर्दी लगी और धूल लगी करते-करते अवतार चला जाता है। उसमें यह वास्तविक तत्त्व का यदि यथार्थ निर्णय नहीं किया (तो) जन्म अफल... अफल है। उसमें कुछ आया नहीं। दुनिया में मान

मिला और दुनिया अच्छा कहे, आहाहा! गजब त्यागी और भारी धर्मात्मा! उसमें कुछ दम नहीं है। भूल जाता है। अभी भी भूलता है। कौन मानता है?

अरे भगवान! तेरी चीज़ क्या है, ऐसा पहला निर्णय करना, अवधारण करना कि भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन उपयोग स्वभाववान है। उस स्वभावभान में लीनता, वह चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग है। व्रतादि क्रिया का तो राग है, वह तो बन्ध का मार्ग है। जहर के रास्ते में है, अमृत के रास्ते में नहीं। आहाहा! भारी गजब!

यह चारित्र 'परमार्थ' शब्द से वाच्य है। देखो! परमार्थ कहने में तो यहाँ चारित्र को परमार्थ चारित्र कहा है। **ऐसे मोक्ष का कारण है, अन्य नहीं—ऐसा न जानकर,...** देखो! जयसेनाचार्य कहते हैं। **ऐसा न जानकर, मोक्ष से भिन्न ऐसे असार संसार के कारणभूत...** देखो! मोक्ष से भिन्न असार संसार के कारणभूत मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के विकल्प आदि। असार संसार के कारणभूत। मिथ्यात्व और पुण्य-परिणाम भी संसार का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

बाहर के ठाठ—बाठ देखकर मानो हम कुछ ऊँचे हो गये, बाहर आ गये। अरे प्रभु! यह तो बाहर की हीन दशा है। जड़ की है। उससे भगवान भिन्न। चैतन्य का निर्णय नहीं किया और असार रागादि से लाभ माना (तो) तेरे मिथ्यात्व की पुष्टि हो गयी और संसार में (परिभ्रमण होगा)। देखो! पीछे आचार्य कहते हैं, हों! असार संसार के कारणभूत। यह रागादि असार है। सार नहीं। संसार के कारणभूत **मिथ्यात्वरागादि में लीन वर्तते हुए अपना अनन्त काल गया;...** है उसमें भाई! यह आचार्य का है, हों! यह टीका है न, वह अमृतचन्द्राचार्य की है। और एक आचार्य दूसरे हुए न जयसेनाचार्य, उनकी टीका है। मूल में है। यह जयसेनाचार्य की टीका। मूल टीका है। इसमें अपने एक प्रकाशित होती है। (एक सौ) चौपन, लो! **'इदमेव चारित्र परमार्थशब्दवाच्यस्य'** इसका अर्थ है भाई इतना। **'मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानतां मोक्षादभिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु'** आचार्य महाराज जयसेनाचार्य कहते हैं। **'मोक्षादभिन्नस्यासारसंसारस्य'** मिथ्याश्रद्धा और रागादि पुण्यादि के परिणाम **'असार संसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरागादिषु निरतानाम'** लीन होने से **'अस्माकमेवानंतकालो गतः'** हमारा अनन्त काल भटकने में

गया। इस श्लोक की टीका है। १५४ यह श्लोक चलता है न, उसकी टीका जयसेनाचार्य की टीका है। दो टीका है न! यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका तो अपने चलती है। परन्तु यह जयसेनाचार्य की टीका है। दो टीकाएँ हैं। '**निरतानामस्भाकमेवानंतकालोगत**' अरे रे! अनन्त काल गया। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप को भूलकर मिथ्याराग राग से धर्म होगा। ऐसा मिथ्यात्व और वह राग संसार का कारण जो असार, असार संसार—उस असार संसार का कारण है। उसमें लीन होकर '**अस्माकमेवानंतकालो गतः**' देखो! हमारा अनन्त काल गया। अपना अनन्त काल गया। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक अनन्त बार राग को धर्म मानकर और राग मेरा धर्म है, ऐसा मिथ्यात्व में लीन होकर अनन्त काल गया।

ऐसा जानकर.... टीका में, **उसी जीवस्वभावनियत चारित्र की...** देखो! श्रद्धा तो करो श्रद्धा! उसी जीवस्वभाव। भगवान आत्मा जीव, उसका स्वभाव। जीव स्वभाववान, उसका स्वभाव। जानन-देखन स्वभाव। वह जानन-देखन स्वभाव नियत—उसमें निश्चय से लीन होना, (वह) चारित्र की **जो कि मोक्ष के कारणभूत है उसकी—निरन्तर भावना करना योग्य है।** लो!

निरन्तर उसकी भावना करना। स्वभाव में लीनता करना, वह एकाग्रता करने की भावना। व्रत आदि का विकल्प है, वह दुःखरूप है, ऐसा जानना। **इस प्रकार सूत्रतात्पर्य है।** लो! यह शास्त्र की १५४ गाथा का यह तात्पर्य है। अब १५५। देखो! यह गड़बड़ करते हैं, १५५ में। यह गाथा है। अक्रम सब इसमें से निकालते हैं, इस गाथा में से। अक्रमबद्ध निकालते हैं। हम क्रमबद्ध कहते हैं न, क्रमबद्ध के सामने इसमें से अक्रमबद्ध निकालते हैं। यहाँ अक्रमबद्ध का अधिकार भी नहीं है। यहाँ तो दूसरा अधिकार है। यहाँ तो विकार और अविकार की बात है।

गाथा - १५५

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।

जीवः स्वभावनियतः अनियतगुणपर्यायोऽथ परसमयः।
यदि कुरुते स्वकं समयं प्रभ्रस्यति कर्मबन्धात्।।१५५।।

स्वसमयपरसमयोपादानव्युदासपुरस्सरकर्मक्षयद्वारेण जीवस्वभावनियतचरितस्य मोक्षमार्गत्वद्योतनमेतत् ।

संसारिणो हि जीवस्य ज्ञानदर्शनावस्थितत्वात् स्वभावनियतस्याप्यनादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वेनोपरक्तोपयोगस्य सतः समुपात्तभाववैश्वरूप्यत्वादनियतगुणपर्यायत्वं परसमयः परचरितमिति यावत् । तस्यैवानादिमोहनीयोदयानुवृत्तिपरत्वमपास्यात्यन्तशुद्धोपयोगस्य सतः समुपात्तभावैक्यरूप्यत्वान्नियतगुणपर्यायत्वं स्वसमयः स्वचरितमिति यावत् । अथ खलु यदि कथञ्चनोद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिर्जीवः परसमयं व्युदस्य स्वसमयमुपादत्ते तदा तर्कबन्धादवश्यं भ्रश्यति । यतो हि जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग इति ।। १५५ ।।

स्व समय स्वयं से नियत है पर भाव अनियत पर समय।
चेतन रहे जब स्वयं में तब कर्मबंधन पर विजय।।१५५।।

अन्वयार्थ :- [जीवः] जीव, [स्वभावनियतः] (द्रव्य-अपेक्षा से) स्वभाव नियत होने पर भी, [अनियतगुणपर्यायः अथ परसमयः] यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो तो परसमय है। [यदि] यदि वह [स्वकं समयं कुरुते] (नियत गुणपर्याय से परिणमित होकर) स्वसमय को करता है तो [कर्मबन्धात्] कर्मबन्ध से [प्रभ्रस्यति] छूटता है।

टीका :- स्वसमय के ग्रहण और परसमय के त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है— ऐसे प्रतिपादन द्वारा यहाँ (इस गाथा में) 'जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है' ऐसा दर्शाया है।

संसारी जीव, (द्रव्य-अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण स्वभाव में नियत (-निश्चलरूप से स्थित) होने पर भी, जब अनादि मोहनीय के उदय का

अनुसरण करके परिणति करने के कारण [१]उपरक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है, तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होन के कारण, उसे जो [२]अनियतगुणपर्यायपना होता है, वह परसमय अर्थात् परचारित्र है; वही (जीव) जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब (स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण, उसे जो [३]नियतगुणपर्यायपना होता है, वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है।

अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर स्वसमय को ग्रहण करता है तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है; इसलिए वास्तव में (ऐसा निश्चित होता है कि) जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है॥१५५॥

गाथा - १५५ पर प्रवचन

देखो! गाथा १५५।

जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।

पहले अन्वयार्थ लेते हैं। शब्दार्थ है न। **जीव, (द्रव्य-अपेक्षा से) स्वभाव नियत होने पर भी,...** परन्तु, क्या कहते हैं? वस्तु भगवान आत्मा में ज्ञान और दर्शन तो कायम रहे हुए ही हैं। वस्तु जो आत्मा है, उसमें ज्ञान-दर्शनस्वभाव तो कायम है। ऐसा होने पर भी **यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो...** देखो! अनियत अर्थात् विभावपर्यायवाला हो, यहाँ तो अनियत का अर्थ विभाव (पर्याय) लेना है। वे लोग लेते हैं तो अनियत अर्थात्

---

१. उपरक्त=उपरागयुक्त। [किसी पदार्थ में होनेवाला। अन्य उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् अन्य उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति-मलिनता-अशुद्धि), वह उपराग है।]

२. अनियत = अनिश्चित; अनेकरूप; विविध प्रकार के।

३. नियत=निश्चत; एकरूप, अमुक एक ही प्रकार के।

अक्रमबद्ध है। अरे! कहाँ का कहाँ निकालते हैं। वे रतनचन्दजी लिखते हैं। दूसरे कौन? लालबहादुर लिखते हैं। बहुत लिखते हैं। अरे प्रभु! अभी तो शब्दार्थ में भूल करते हैं। भावार्थ तो बाद में है। अर्थ में क्रमबद्ध नहीं। देखो! नियत भी है और अनियत भी है, ऐसा।

मुमुक्षु : नियत का अर्थ विभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; नियत का अर्थ स्वभाव। अपना जो स्वभाव है, उसे नियत चारित्र कहा और राग को अनियत कहा। स्वभाव नहीं परन्तु विभाव है। यहाँ ऐसी बात है। यहाँ अनियत कहा तो अक्रमबद्ध है, ऐसी बात यहाँ है ही नहीं। अरे! कौन कोई पूछे परन्तु किसे? जो चलता हो वह चलता है। गुण की पर्याय, गुण की पर्याय, गुण नहीं। गुण की पर्याय। विभाव तो पर्याय में होता है न? गुण की पर्याय। **यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो...** गुण की पर्याय। चारित्रगुण की विपरीत पर्याय-विकारी पर्याय, उसे अनियत गुणपर्याय कहने में आता है। यहाँ तो स्पष्ट बात है, उसमें कोई सन्देह-बन्देह का स्थान है ही नहीं।

देखो! शब्दार्थ है न? द्रव्य-अपेक्षा से स्वभावनियत, स्वभावनियत होने पर भी, स्वभाव तो नियत त्रिकाल एकरूप है। (होने) **पर भी यदि अनियत गुणपर्यायवाला हो तो परसमय है।** विभाव पर्यायरूप से परिणमे तो परसमय है। **यदि वह (नियत गुणपर्याय से परिणमित होकर)...** देखो! जैसा त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव है, उस रूप परिणमे, शुद्धरूप परिणमे तो **स्वसमय को करता है तो कर्मबन्ध से छूटता है।** लो! आहाहा! लोगों को यह वह नियत और अनियत आता है न, ४७ नय में। वहाँ भी दूसरा कुछ है। यह नियत और अनियत का वहाँ कहाँ है?

मुमुक्षु : यह एकान्त बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एकान्त बोलते हैं, इसलिए अक्रमबद्ध भी है। तो अनेकान्त हो जाता है। परन्तु यह यहाँ है ही नहीं। पर्याय तो क्रमबद्ध है और गुण अक्रम है, यह उसका अर्थ है, इसका नाम अनेकान्त है। प्रत्येक पर्याय द्रव्य में क्रमधारावाही होती है। और गुण अक्रम है। एक समय में अनन्त रहते हैं। इसका नाम अक्रम और क्रम है।

पर्याय क्रम भी है और अक्रम भी है, ऐसा तीन काल में है ही नहीं। वस्तु तो गड़बड़ हो गयी। समझ में आया? परन्तु ऐसी दरकार कहाँ है? दरकार नहीं। ओहो!

स्वसमय को करता है तो कर्मबन्ध से छूटता है। लो!

अब इसकी **टीका :- स्वसमय के ग्रहण और परसमय के त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है—ऐसे प्रतिपादन द्वारा यहाँ (इस गाथा में) 'जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है' ऐसा दर्शाया है।** देखो!

भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शनस्वभाव जो त्रिकाली है, उसे ग्रहण करे, एकाग्र हो, वह स्वसमय। उसका ग्रहण, परसमय का त्याग और राग-पुण्य आदि व्रत विकल्प है, उसका त्यागपूर्वक जो कर्मक्षय—राग के त्यागपूर्वक और स्वभाव के ग्रहणपूर्वक कर्मक्षय होता है। राग की क्रिया सहित कर्मक्षय होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

स्वसमय के ग्रहण भगवान आत्मा ज्ञानदर्शन स्वभाव का ग्रहण अर्थात् एकाग्रता और परसमय का त्याग और विकल्प जो व्रतादि का राग है, उसके त्यागपूर्वक कर्मक्षय होता है। राग से-व्रत से भी कर्मक्षय होता है और स्वभाव की स्थिरता चारित्र से भी कर्मक्षय होता है, ऐसा नहीं। धूल भी नहीं होता, बन्ध होता है। धन्नालालजी! व्रत में थोड़ा कर्मक्षय होता है और स्थिरता में बहुत कर्मक्षय होता है। हें? यह तो व्रत तो बन्ध का कारण है। वह तो विकल्प है। आहा! चिदानन्द भगवान ज्ञानमूर्ति में उत्थान होना, वृत्ति उठती है कि ऐसा करूँ, वैसा करूँ, व्रत पालन करूँ, सब राग है, विकल्प है। वह तो बन्ध का कारण है। उस बन्ध के कारण का अभाव और स्वभाव के कारण की प्राप्ति वह कर्म के क्षय का कारण है। अरे! परन्तु गजब!

मुमुक्षु : दोनों एक साथ होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय है न, परन्तु आगे-पीछे कहाँ? स्वभाव की अस्ति और विभाव की नास्ति। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य भगवान ज्ञान-दर्शन-आनन्द की एकाग्रता की अस्ति और राग की नास्ति, विकल्प की नास्ति, वह कर्म के क्षय का कारण है।

मुमुक्षु : राग की नास्ति तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बताया न? भगवान आत्मा स्वभाव स्वरूप है। स्वभाववान है या नहीं? या स्वभाव बिना की चीज़ है? तो स्वभाव तो यहाँ सिद्ध किया।

जानन-देखन, जानन-देखन, ज्ञाता-दृष्टा उसका असली अविनाशी कायम स्वभाव। स्वभाववान जैसे त्रिकाल है, वैसे उसका ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव भी अविनाशी त्रिकाल है। उस अविनाशी में एकाग्रता होना और राग का नाश करना अथवा राग का अभाव करना। राग के अभावरूप परिणमना, स्वभाव की अस्तिरूप परिणमना, वह कर्म के क्षय का कारण है।

मुमुक्षु : उसमें कुछ करने का तो आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का आया न यह। यह क्या करने का? कूदना है कुछ? बात-बात में रही। बात कहाँ यहाँ आती है। बात आत्मा कहाँ करता है? बात तो जड़ है। आहाहा!

यह तो एक समय कहते थे। आगरा में एक पण्डित थे। व्याख्यान हुआ था। बहुत ही हजारों लोग थे। खड़े होकर बोले। नाम क्या था कुछ? बाबूराम! (वे बोले) बहुत ही आनन्द की बात! करने-धरने का कुछ नहीं। ऐसा बोले थे। अरे पण्डितजी! क्या करने-धरने का है? करने का-धरने का है क्या? राग करना है? पर को छोड़ना है? पर को ग्रहण करना है? क्या है? एक बाबूरामजी पण्डित आगरा के थे लम्बे... व्याख्यान हुआ। वहाँ पाटनी के नजदीक। पाटनी है न, नेमीचन्दजी पाटनी। उनके मकान के नजदीक। पहले दिन व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन तो वहाँ हुआ दूसरी ओर पद्मचन्दजी के घर के पास तेरस का, चैत्र शुक्ल तेरस का। वे कहे, आहा! महाआनन्द की बात। करने-धरने का कुछ नहीं। क्या है? मसकरी। अरे भगवान! क्या करे? क्या पर की क्रिया-जड़ की क्रिया करनी है? जड़ को छोड़ना, वह आत्मा की क्रिया है? और राग को करना, वह आत्मा की क्रिया है? राग को छोड़ना, वह आत्मा कर सकता है? आहाहा! भारी सूक्ष्म बात!

यहाँ तो कहते हैं कि स्वसमय का ग्रहण। भगवान आत्मा... अरे प्रभु! ऐसा समय मिला। ऐसी आँखें मिंच जायेंगी, कहीं चला जायेगा। कोई कहीं मदद नहीं

करेगा। इसलिए वस्तु का स्वरूप है, उसका सच्चा निर्णय किये बिना जन्म-मरण का उद्धार नहीं होगा। यह सब लाल-पीले फू (होकर) फट जायेंगे। आहाहा! मरते श्वास नहीं लिया जाये। आहाहा! सब डॉक्टर कहेंगे अब देखो थोड़ी देर। ऐसा। देखो अर्थात् अभी निपट जायेगा। अभी दोनों ओर इंजैक्शन लगाना है। ऐसा डॉक्टर कहे न! बहुत इंजैक्शन लगाये हों, फिर बहू कहे। अभी अब रहने दो। थोड़ी देर देखो क्या होता है? देखो, इसलिए क्या अभी निकट जायेगा। हाय... हाय! देह और आत्मा भिन्न। उसे कहाँ कुछ खबर नहीं। आहाहा! यह तो मिट्टी का पिण्ड है और भगवान चैतन्यस्वरूप है। दोनों चीज़ भिन्न है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि क्या इस जड़ की क्रिया का ग्रहण करना और छोड़ना आत्मा में है? वह कहीं करने का-धरने का है। यहाँ तो राग का करना और राग का धारना, वह भी मिथ्यात्वभाव है, विकल्प है। यहाँ तो स्वसमय का ग्रहण, परसमय का त्याग। उस राग का अभाव, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : त्याग है सही!

पूज्य गुरुदेवश्री : त्याग आया नहीं? राग का त्याग, स्वभाव का ग्रहण। वस्त्र-बस्त्र क्या? वे तो छूट जायेंगे। जब वीतरागता प्रगट होगी, (तब) वस्त्र वस्त्र के कारण से छूट जायेंगे। अपना छोड़ने का विकल्प है, इसलिए छूट जायेंगे, ऐसा नहीं है। गजब बात! मार्ग! उसे उस समय वह पर्याय वैसी होनेवाली थी। जब आत्मा वीतरागदशा धारण करे, तब शरीर की नग्नदशा जड़ की सहज ही हो जाती है। कर्ता बिना। जड़ को आत्मा क्या करे?

मुमुक्षु : आचार्य के पास जाने की आवश्यकता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाये? जाता कौन है? विकल्प आता है। शरीर की क्रिया होती है। जीव की जैसी होनेवाली है वह। उसमें क्या आया?

आचार्य कहते हैं, तुम्हारे में चारित्र है, उसे हम कहते हैं कि कर्मक्षय का कारण स्वभाव में एकाग्र होना और राग का अभाव करना, वह चारित्र है, ऐसा आचार्य यहाँ सुनाते हैं।

मुमुक्षु : यह उपदेश आचार्य का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आचार्य का है। तो किसका है? समझ में आया? अरे!

ऐसे प्रतिपादन द्वारा, देखो! यहाँ क्या कहते हैं? ऐसे कथन द्वारा। यहाँ (इस गाथा में) **जीवस्वभाव में नियत चारित्र...** भगवान आत्मा में अन्तर ज्ञानानन्दस्वभाव में नियत अर्थात् निश्चय लीनता, वह **चारित्र वह मोक्षमार्ग है' ऐसा दर्शाया है।** ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य बताते हैं। ऐसा मार्ग है। भगवान! निर्णय तो कर, निर्णय तो कर। आहाहा!

संसारी जीव, (द्रव्य-अपेक्षा से)... अर्थात् वस्तु के स्वभाव—अपेक्षा से, **ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण...** क्या कहते हैं? संसारी अनन्त प्राणी अनादि से **ज्ञानदर्शन में अवस्थित,...** वह तो ज्ञानदर्शन में स्थिर ही है। क्योंकि ज्ञानदर्शन स्वभाव है, वह स्वभाव में ही है। अनादि आत्मा स्वभाववान ज्ञानदर्शन स्वभाव में ही है। यहाँ पर्याय की बात नहीं। गुण। आत्मा जो है, उससे ज्ञानदर्शन द्रव्य से भी अभिन्न है, क्षेत्र से अभिन्न है, काल से अभिन्न है और भाव से अभिन्न है। पारिणामिकस्वभावभाव। आहाहा! पारिणामिक-भावरूप द्रव्य उसके पारिणामिकभावरूप ज्ञान-दर्शन आदि गुण उसमें त्रिकाल है। ओहोहो!

कहते हैं, जीव संसारी को द्रव्य अपेक्षा अर्थात् वस्तु अपेक्षा से देखो तो प्रत्येक प्राणी अभव्य या भव्य, **ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण...** कहो, समझ में आया? यह जानना-देखना स्वभाव में ही रहा है। आत्मा अनादि से सबका जीव। जो गुणी गुण में ही रहा है। गुण में से निकलकर राग में आया नहीं। द्रव्यदृष्टि से राग में आया ही नहीं। **स्वभाव में नियत होने पर भी,...** वह तो ज्ञान-दर्शन जानना-देखना, जैसे शक्कर में सफेदाई और मिठास उसमें ही शक्कर रही हुई है। उसमें ही है। उसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में नियतरूप से निश्चयरूप से रहा हुआ ही है, ऐसा होने पर भी, अब पर्याय में भूल है। समझ में आया?

द्रव्य भगवान आत्मा और गुण ज्ञान-दर्शन स्वभाव, इन दो की बात की। यह स्वभाव में ही है, तथापि अनादि काल के अज्ञान के कारण **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके...** देखो! भगवान आत्मा जानन-देखन स्वभाव का अनुसरण न

करके, अनुकरण न करके, उस ओर के स्वभाव के सन्मुख न होकर मोहनीयकर्म के उदय का अनुसरण किया। कर्म का उदय आया, उस ओर का अनुकरण किया, अनुसरण किया। (तो) राग-द्वेष उत्पन्न हुए। समझ में आया?

वस्तु आत्मा और उसका स्वभाव ज्ञान और दर्शन त्रिकाल। ऐसा नियतपने होने पर भी अपने स्वभाव सन्मुख का अनुसरण न करके, दूसरी चीज़ अपने से भिन्न कर्म है, यहाँ अनुसरण नहीं किया तो कर्म के उदय का अनुसरण किया, ऐसा कहा जाता है। भले उसे खबर न हो कि कर्म है या नहीं। परन्तु इस ओर का अनुसरण नहीं किया। ज्ञान-दर्शन स्वभाव का अनुसरण करना, वह स्वभावपर्याय है। वह वीतरागीपर्याय मोक्ष का मार्ग है, ऐसा अनुसरण न करके पर्याय में कर्म के निमित्त की ओर का अनुसरण करके, **मोहनीय के उदय को अनुसरकर...** उदयप्रमाण राग करता है, ऐसा भी यहाँ नहीं। उदय की ओर उसका ही अनुसरण करता है। आहाहा! यहाँ उसका स्वभाव सन्मुख अनुसरण नहीं। यदि स्वभाव सन्मुख अनुसरण हो तो उसका संसार रहे नहीं।

अनादि काल का भगवान चैतन्य रत्नाकर भगवान रहा हुआ है। ज्ञानदर्शन आदि अनन्त गुण का स्वभाव से नियत अभिन्न गुण में स्थिर है, तथापि उस गुण का-गुणी का अनुसरण न करके अनादि से अपना अनुसरण नहीं किया तो कर्म के उदय का अनुसरण किया। उसने अनुसरण कराया, ऐसा नहीं। भूलकर किया न! यहाँ अनुसरण नहीं किया और वहाँ किया। कर्ता होकर किया। यह किया न! किसी ने कराया। उसने—कर्ता गुण ने कराया। यह भाषा कैसी है?

अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके... उदय प्रमाण इसे विकार होता है, यह बात तो ली ही नहीं। ऐसा है नहीं। यह बात तो अपने ६२ गाथा में आ गयी। यह तो १५५, ६२ गाथा आ गयी है। कर्म के निमित्त की अपेक्षा रखे बिना जीव अपना विकार षट्कारकरूप से करने में स्वतन्त्र कर्तारूप से है। पर की कोई अपेक्षा है नहीं। ऐसी वस्तु की स्थिति को क्या करे? जैन में कर्म ऐसे घुस गये हैं न! कर्म से हैरान हुआ, कर्म से हैरान हुआ, कर्म आवे तो विकार होता है। अत्यन्त मिथ्यादृष्टि, दो द्रव्य की एकताबुद्धि है। समझ में आया? और फिर जैन कर्मवादी ऐसा मानते हैं। कर्मवादी। अपने ईश्वरवादी नहीं। अपने कर्म ईश्वर। कर्म करावे। कर्म तो जड़ है। जड़ तुझे कुछ

कराता है? वह तो उसकी जड़ की पर्याय जड़ में रहती है। देखो! उदय। मोहनीय का उदय। वह तो जड़ की पर्याय हुई। अनुसरण करके। यह आत्मा ने उस ओर का झुकाव किया। यह अपने उल्टे पुरुषार्थ से किया है। समझ में आया?

अनादि मोहनीय के उदय को जब, जब शब्द है न? जब तक, ऐसा करता है, तब तक परचारित्र और अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणति करने के कारण...** देखो! भाषा। यह अनुसरण करके परिणति करने के कारण, अनुसरण कर्ता होकर किया और परिणति विकारी बनायी। वह अपनी मान्यता की पकड़ छोड़ना और इस मान्यता प्रमाण अपनी दृष्टि से फिर शास्त्र के अर्थ करे। देखो! मोहकर्म के उदय का अनुसरण। परन्तु अनुसरण क्या किया? अनुसरण करके। आत्मा ने अनुसरण किया। कर्म ने-उदय ने अनुसरण कराया नहीं। आहाहा!

अभी तो पर्याय की स्वतन्त्रता विकार करने में स्वतन्त्र कर्तापने है, यह तो ६२ गाथा में आ गया है। इतनी भी स्वीकृति नहीं, उसे तो जड़ और चेतन की दो की एकता की मान्यता है। उसे तो राग से भिन्न भगवान आत्मा। अब कोई ऐसा कहे कि यदि राग कर्ता मानो तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। राग कर्ता है, ऐसा न माने तो राग का कर्ता कर्म को मानना पड़ता है। तो उसे उपादान को यहाँ बाधा आयेगी। क्या कहा? इस प्रकार बहुत चर्चा सामने उल्टा आया है न विपरीत। क्योंकि उन लोगों को राग का कर्ता यदि जीव माने तब तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा शास्त्र में कहा है। तो न हो राग का कर्ता। (तो कर्ता) कर्म को मानना पड़ेगा। कर्म को माने तो कर्म से आत्मा में राग नहीं होता, इसका उन्हें विवाद उठेगा। ऐई! धन्नालालजी! अरे भगवान! उल्टे तर्क मारते हैं न।

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में राग का कर्ता जीव ही है। मिथ्यात्व आदि कर्ता पर की अपेक्षा बिना जीव ही है। परन्तु जब करे तब तक कर्ता है। और स्वभाव की दृष्टि हुई, तब कर्ता नहीं। ऐसी बात है यहाँ। समझ में आया? गजब बात, भाई! कहाँ अन्तर है, इसकी भी खबर नहीं। वह आता है न, क्या कहलाता है? चूहे ने छछुंदर निगला। सर्प ने छछुंदर निगला। ...... पीछे सर्प बैठा था। मैंने देखा था, हों! बारह वर्ष हो गये। ...वह छछुंदर निगल गया है। अब निकाले अन्ध हो। जलावे मर जाये। परन्तु सर्प ने बराबर छछुंदर निगला था। देखा था। यह हॉल है न, यह उजमबा हॉल है वहाँ, हों! उस हॉल में, उसमें नहीं।

इसी प्रकार यह सोनगढ़वाले को विकार को यदि कर्ता माने तो मिथ्यादृष्टि हो और विकार को कर्ता न माने तो कर्म को कर्ता मानना पड़ेगा। तो कर्म से विकार होता है, उसका इन्हें विवाद उठेगा। अरे भगवान! शोभालालजी! यहाँ क्या (कहते) हैं, सुन तो सही! जब तक विकार करता है, पर्यायबुद्धि पर का अनुसरण करता है तो पर की अपेक्षा बिना जीव ही करता है। उसमें तो किंचित् मात्र अन्तर नहीं। समझ में आया? परन्तु जब राग से भी आत्मा भिन्न है, ऐसे स्वभाव की दृष्टि हुई तो राग होता है, वह उसका ज्ञेय हो गया। धर्मी को राग ज्ञेय हो गया। कर्ता का कर्म रहा नहीं। समझ में आया? यह तो क्या है? यह तो राग है। परन्तु पर्याय में करता है, वहाँ तक तो अपनी पर्याय का कर्ता पर की अपेक्षा नहीं, यह तो पहले सिद्ध किया। आहाहा! जरा अटपटी बात व्यापारियों को भारी मुश्किल पड़े। मस्तिष्क को अन्दर फैलाना पड़े। वकीलों को... न सुने तो दो और दो = चार जैसी सीधी बात।

पहले (गाथा) ६२ में तो कहा और यहाँ अब कहते हैं कि आत्मा अनादि से अपना निज स्वभाव उपादान ध्रुव। ज्ञानदर्शन में नियत होने पर भी अपनी पर्याय में स्व का अनुसरण न करके, कर्म के उदय का अनुसरण करनेवाला, यह तो शब्द है। **अनुसरण करके परिणति करने के कारण...** देखो! आहाहा! अपनी पर्याय में जीव अनादि से मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणति करता है। **उपरक्त उपयोगवाला होता है,...** देखो! **(-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है,...** देखो! अशुद्ध उपयोग सिद्ध करना है न? उपरक्त, देखो! अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर, एक-एक शब्द का अर्थ समझना चाहिए। ऐसे का ऐसे ऐसे, चले जाओ... चले जाओ! क्या चले? शब्द का अर्थ सुने तो सही! मोहनीय के उदय का, वह जड़ की पर्याय हुई। इस ओर अनुसरण न करके, पर की ओर का अनुसरण करके परिणति करने के कारण, मिथ्यात्व और राग-द्वेष की अवस्था करने के कारण, उपरक्त उपयोगवाला-मलिन उपयोगवाला अर्थात् अशुद्ध उपयोगवाला हो गया है। अशुद्ध चाहे तो शुभ या अशुभ दोनों अशुद्ध उपयोग है। समझ में आया? नीचे अर्थ है। देखो!

उपरक्त=उपरागयुक्त। किसी पदार्थ में होनेवाला, अन्य उपाधि के अनुरूप— अन्य उपाधि निमित्त और उसे यहाँ अनुरूप। निमित्त अनुकूल और यह नैमित्तिक

अनुरूप। विकार अर्थात् अन्य उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति-मलिनता-अशुद्धि उपराग है, मैल है। यह शुभ और अशुभभाव मैल है। समझ में आया? और अपना मानकर करता है तो मिथ्यात्व साथ में है। वह भी मैल है। गजब! द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान घट गया। उसमें यह सब विवाद।

अशुद्ध उपयोगवाले पर का अनुसरण करके, अशुद्ध परिणति करके, करने के कारण, ऐसा वापस कहा न? अशुद्ध परिणति पर्याय करने के कारण, अशुद्ध उपयोगवाला होता है। **तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होने के कारण,...** क्या कहते हैं? इस कारण से भावों का विश्वरूपपना, अनेक विकार। शुभ और अशुभ का विकल्प असंख्य प्रकार के हैं। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि शुभ; हिंसा, झूठ, चोरी, आदि अशुभ। यह असंख्य प्रकार के शुभ और असंख्य प्रकार के अशुभ इन भावों का विश्वरूपपना, विश्व अर्थात् अनेकरूपपना, विश्व अर्थात् समस्तरूपपना। पुण्य-पाप के जितने भेद हैं उतनेपने ग्रहण किये। अनेकपना ग्रहण किया। एकरूप वस्तु होने पर भी कर्म के निमित्त का अनुसरण करके पुण्य और पाप अनेकपने का भाव ग्रहण किया। अनेकपने में उत्पन्न हुआ। अशुद्ध उपयोग में रमणता की। समझ में आया?

ग्रहण किया होने के कारण, उसे जो... देखो! **अनियतगुणपर्यायपना होता है,...** देखो, भाषा देखो! बहुत से इसमें से निकालते हैं कि अक्रमबद्ध अनियतपर्याय है। धन्नालालजी! गजट में बहुत आया है। जैन गजट में। क्या कहा? भगवान आत्मा में ज्ञानदर्शन स्वभाव का पूरा समुद्र भरा है। जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञान पर्याय प्राप्त हो। जिसमें अनन्त-अनन्त केवलदर्शन पर्याय प्राप्त हो, ऐसा सागर भरा है। ऐसे ज्ञानदर्शन स्वभाववाले नियत, अनादि काल के कर्म के उदय की ओर का अनुसरण करके, अशुद्ध परिणति करके जिसने विश्वरूपपना ग्रहण किया है। जिसने विकार का अनेकपना ग्रहण किया है। ऐसा कहा। समझ में आया? .... समझ में आया?

स्वभाव नियत है और उसकी निर्मल पर्याय भी नियत कहने में आती है। विभाव अनियत। अनियत अर्थात् निश्चय स्वभाव नहीं, विभाव है। इसलिए अनियत है। ऐसे क्रमबद्ध-अक्रमबद्ध की बात यहाँ है ही नहीं। कहाँ का कहाँ.......

अनियत गुणपर्यायपना होता है। देखो! अनियत=अनिश्चित। है न नीचे? अनेकरूप, विविध प्रकार के। पुण्य-पाप के प्रकार। अनेक प्रकार के पुण्य-पाप के प्रकार। वे परसमय अर्थात् परचारित्र है। देखो! यह शुभ-अशुभ परिणामरूप से परिणत हुआ, वह परचारित्र है। परसमय है। ....उस ओर का झुकाव अनादि से नहीं होने से परसन्मुख का झुकाव अनादि से होने से, अपने झुकाव के कारण, अशुद्धपरिणति के कारण जिसने विकार का अनेकपना किया है। समझ में आया?

अनियतगुणपर्यायपना होता है। अचोक्कस, अनेकरूप, विविध प्रकार के विकारी पर्यायपना होता है। वह परसमय परचारित्र है। दूसरी बात। विभाव में रमना, वह परचारित्र है। समझ में आया? वह बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत का विकल्प भी परचारित्र है, बन्ध का कारण है। उसने कर्म के निमित्त को अनुसरण किया, वह विकल्प जड़ की क्रिया है। लोगों को खबर नहीं। अनेकान्त मार्ग है। एकान्त होता है। शुद्ध हो, वह चारित्र उसका है। शुद्ध हो, वह उसका चारित्र-स्वरूप में रमणता हो, वह चारित्र। आया न पहले। राग आदि उसका चारित्र नहीं। रागादि आते हैं परन्तु वह उसका चारित्र नहीं। परचारित्र, विभाव, अधर्म। स्पष्ट करते हैं तो चिल्लाहट मचा जाते हैं। समुच्य रखे तो तब तक विभाव है, ऐसा है। विभाव धर्म का स्वरूप नहीं है। वह तो अधर्म का स्वरूप हुआ। आत्मावलोकन में तो बहुत ही डाला है। दीपचन्दजी (ने)। दीपचन्दजी हुए न—चिद्विलास के, अनुभवप्रकाश के कर्ता (उन्होंने) आत्मावलोकन में डाला है। श्रावक को धर्म-अधर्म दोनों होते हैं। स्वरूप सन्मुख की दृष्टि और एकाग्रता, वह धर्म और जितना राग रहता है, वह अधर्म। ऐसा स्पष्ट लिखा है। आत्मावलोकन। बात बराबर है। यह समय शब्द कहाँ, व्यवहार से धर्म पुण्य धर्म कहते हैं परन्तु निश्चय से तो अधर्म ही है। आहाहा! नहीं। व्यवहार तो अन्यथा कहता है-व्यवहारनय। समझ में आया?

ओहो! यह परचारित्र उसका नाम कहा। पहला स्पष्टीकरण। अनादि से भगवान आत्मा अपने को भूलकर... 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' कर्म ने हैरान कराया नहीं। अरे, कठिन बात! हैरान करने का भाव है न। करता है न यह क्या, यह तो कहते हैं। कर्म का अनुसरण करके विकाररूप परिणमता है। वह हैरान का भाव है।

दु:ख का भाव है। परन्तु क्या करे, खबर नहीं। मैं क्या करता हूँ और क्या होता है, इसकी खबर नहीं। बस व्रत की क्रिया, वह हमारे धर्म की क्रिया है। हमारे धर्म की क्रिया है, उससे आगे बढ़कर हमारे केवलज्ञान हो जायेगा। धूल भी नहीं होगा। धूल अर्थात् अच्छा पुण्य भी नहीं बँधेगा। समझ में आया? उसे हेय भी नहीं मानकर उपादेय मानता है तो मिथ्यादृष्टि में पुण्य भी सच्चा नहीं बँधता। आहा! हतपुण्य जिसे कहते हैं। कठिन बात! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने बात कही। प्रतिभाजन कहा न। प्रतिभाजन द्वारा यहाँ कहा, ऐसा पहले आया न! ऐसे प्रतिपादन द्वारा भगवान ने कहा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव इन्द्र और गणधरों के समक्ष में ऐसी ध्वनि आयी। वही कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ शास्त्र द्वारा प्रसिद्ध प्रगट करते हैं। मार्ग ऐसा है, भाई! समझ में आया?

आत्मा के स्वभाव का शरण न लेकर निमित्त का अनुसरण किया, अनुसरण किया तो नैमित्तिक में विकारी परिणति अनेकरूप उत्पन्न हुई, उसे ग्रहण किया, वह परचारित्र है। समझ में आया? परचारित्र है, अधर्म है, परसमय है, अनात्मा है, आस्रव है, भावबन्ध है। स्पष्टीकरण करना पड़े न! स्पष्ट करना पड़े न! कलकत्ता एक पण्डित थे न! कौन? गुजर गये न? नाम क्या? विमलदासजी.... पुण्य को तुम धर्म न कहो, तब तक तो ठीक परन्तु अधर्म नहीं कहना। जमनलालजी! नीचे थे। ७२ वर्ष की उम्र थे, तब आये थे। सुना बहुत परन्तु यह कठिन पड़ता है। अरे! भाषा में क्या है तुम्हारे?

राग को यहाँ परसमय कहा। परसमय कहा, विकार कहा, अनित्य गुणपर्याय कहा। अनिश्चित अर्थात् स्वभाव की पर्याय नहीं। विभाव की पर्याय है। अधर्म की है। धर्म की पर्याय नहीं तो अधर्म की है। उसमें क्या है? चाहे तो शुभ-अशुभ दोनों परन्तु भारी कठिन पड़े जगत को। और परसमय कहा। स्वसमय नहीं, वह तो अनात्मा है। आस्रव का परिणमन, वह आत्मा है? व्रतादि का विकल्प तो आस्रव है, भावबन्ध है। भावबन्ध का परिणमन, वह आत्मा है? समझ में आया?

यह जीव अब अनुकूल करता है। एक बार परचारित्र कहा। अब स्व। वही जीव। स्व का कहकर बात लम्बाई है अब, लो! यह पीछे आ गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६६, गाथा-१५५-१५६, वैशाख शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक -१६-०५-१९७०

ध्रुवपने हो। पर्याय की स्थिरता की बात नहीं। समझ में आया? द्रव्य जो वस्तु है, पदार्थ। उसका जो अविनाशी ज्ञानदर्शन त्रिकाली ध्रुव स्वभाव है, उसमें ही आत्मा रहा है। अपने स्वभाव में आत्मा स्वभाववान रहा है। कहो, समझ में आया? यह तो सादी भाषा है। ऐसा होने पर भी, जब अनादि मोहनीय कर्म के उदय को अनुसरण करके,

भगवान आत्मा अपना स्वभाव जानन-देखन अन्तर स्वभाव सामान्य और विशेष चेतना, सामान्य अर्थात् दर्शन और विशेष अर्थात् ज्ञान। ऐसे शाश्वत् चेतना में रहने पर भी अपने स्वभाव की सन्मुखता न करने से **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करके...** कर्म के उदय की ओर झुकाव होने से, कर्म के उदय की ओर का झुकाव करने से, उसका अनुसरण करके परिणति करने के कारण, राग और द्वेष विभाव परिणति दु:खरूप अवस्था करने के कारण **उपरक्त उपयोगवाला होता है,...** मलिन अशुद्ध व्यापार परिणामवाला होता है। कहो, सेठी!

मुमुक्षु : अनादि मोहनीय कर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोहनीय कर्म के निमित्त का अनुसरण करनेवाला। मोहनीय तो अनादि है और पड़ा है न? वह तो स्थिति की अपेक्षा से है। परन्तु परम्परा तो अनादि है न, वह तो स्थिति की बात है। अनादि से करता है न! वह नया क्या है? ऐसा बताते हैं।

अनादि कर्म है। यहाँ अनादि आत्मा है। आत्मा तो अनादि है परन्तु उसका ज्ञान-दर्शन अनादि है। यह सिद्ध करना है। दो। आत्मा अविनाशी है और उसका ज्ञान-दर्शन स्वभाव अनादि-अनन्त अनादि है, दो। तीसरा यहाँ अनादि कर्म के साथ सम्बन्धरूप है तो पर्याय उस ओर अनादि से झुकती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था अर्थात् दशा, वह मोहनीय कर्म के उदय को अनुसरकर, अनादि से उस ओर झुकती होने से स्वभावसन्मुख का झुकाव नहीं करने से उसके पुरुषार्थ की विपरीतता होने से यह बात सिद्ध करनी है। परिणति करने के कारण उपरक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है। मलिन उपयोग राग और द्वेष,

पुण्य और पाप। एकेन्द्रिय में भी पुण्य और पाप क्षण-क्षण में होते हैं। सब जीव की यहाँ बात है न! दान वहाँ क्या काम आवे? एकेन्द्रिय निगोद, नित्य निगोद के जीव को भी क्षण में शुभभाव, क्षण में अशुभभाव ऐसा निरन्तर चला करता है। जीव है न तो दो धारा कर्म की शुभ और अशुभ, शुभ और अशुभभाव। शुभ हो तो सातावेदनीय बँधती है, अशुभ हो तो असाता। ऐसा नित्य निगोद में भी भव्य-अभव्य जीव भी, संसारी जीव में वे भी आये। समझ में आया? वह भी अपना निजस्वभाव, उसके सन्मुख न होकर अनादि से अपने स्वभाव से विमुख होकर और कर्म की सन्मुख होकर, कर्म से सन्मुख होकर उपयोग उपरक्त / मैलवाला होता है। मैलवाला भाव उपयोग, अशुद्ध उपयोग है। अनादि से एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि जैन दिगम्बर साधु गया। समझ में आया? तो कहते हैं कि अशुद्ध उपयोगवाला है। पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु वह अनादि अशुद्ध उपयोगवाला है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव का अनुसरण है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! उपरोक्त सभी स्वयं भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया होने के कारण, जीव ने अपने से कर्म के निमित्त की ओर का झुकाव करने से अपनी वर्तमान पर्याय / दशा में विश्व अर्थात् अनेकरूपता पुण्य और पाप की अनेकरूपता जिसने ग्रहण की है। आहाहा!

देखो! शब्द स्पष्ट पड़े हैं। घर की बहियाँ तो पढ़ता है, बहियाँ पढ़ता या नहीं? तो यह पढ़ना तो पड़ेगा या नहीं? क्या है? समझ में आया? ओहो! अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा, है तो शुद्ध चिद्घन आनन्दघन और सामान्य दर्शन-विशेष चैतन्य का पिण्ड आत्मा है। परन्तु उस ओर का झुकाव न होने से अनादि से कर्म की ओर का झुकाव-अनुसरण करने से अपनी परिणति, अपनी परिणति अर्थात् दशा विकारवाली, मिथ्यात्ववाली, राग-द्वेषवाली होने से अशुद्ध उपयोग का कर्ता होता है। समझ में आया? कर्म नहीं कराते, ऐसा सिद्ध करना है। और अपनी पर्याय में मलिन परिणाम-परिणति से करता है। इस कारण **भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया होने के कारण,...** भाषा देखो! ओहोहो!

भगवान आत्मा अपना ज्ञान-दर्शन कायमी असली ध्रुव अविनाशी स्वभाव होने पर भी उस ओर झुकाव हो, तब तो वीतरागी पर्याय की एकता प्रगट हो। तो शुद्ध उपयोग

प्रगट हो। समझ में आया? क्योंकि आत्मा वीतरागस्वभावी है। वस्तु का स्वभाव ज्ञान-दर्शन स्वभाव में स्थित है, इसका अर्थ यह कि वीतरागभाव में ही वह है। समझ में आया?

भगवान आत्मा स्वभाववान स्वभाव में स्थित है, नियत। इसका अर्थ वस्तु जो आत्मा है, वह अपना ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो वीतराग स्वभाव है, उसमें राग या विकल्प का अभाव है। ऐसे स्वभाव में स्थित होने पर भी, द्रव्य और गुण वीतरागभाव से है। उस ओर का झुकाव अनादि से नहीं तो कर्म की ओर के झुकाव का अनुसरण करके, अशुद्ध उपयोग का परिणमन असंख्य प्रकार के शुभभाव और असंख्य प्रकार के अशुभभावरूप परिणमता है। यह भाषा तो सादी है, सीधी है। ख्याल में न आवे, ऐसी कोई कठिन नहीं है।

मुमुक्षु : भाव गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव गम्भीर हो तो भाव तो जैसे हों, वैसे होते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अनादि से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि, परन्तु पर्याय अनादि अशुद्ध नहीं होती तो अशुद्धता नयी होती है? अनादि से अशुद्धता है। शुद्ध तो त्रिकाली है। पर्याय में अशुद्धता अनादि से परिणम रही है। चाहे तो वह महाव्रतरूप से परिणमो, चाहे तो अव्रतरूप से परिणमो, परन्तु सब अशुद्ध उपयोग ही है। आहाहा! शुभरूप से हो या अशुभरूप से हो, उस कर्म के उदय को अनुसरण करनेवाली अशुद्ध परिणति में अनादि से रहा है। शोभालालजी! आहाहा! हाँ, न्याय से भी दो और दो = चार जैसी बात है। उसमें क्या? जरा थोड़ा सा मस्तिष्क में इसे न्याय तो बैठाना पड़ेगा या नहीं? क्यों धन्नालालजी! आहाहा!

देखो न! ओहोहो! कथन पद्धति! कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य ने केवलज्ञानी के पेट (अभिप्राय) खोल दिया है। इसे ख्याल में आ जाये। समझे तो ख्याल में आवे। यह ऐसा कहते हैं और ऐसा ही होता है। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसे स्वयं अपने भावों का, शुभ और अशुभ विकल्प जो राग अशुद्ध मलिन है, वह विश्वरूप अर्थात् अनेकरूपपना ग्रहण किया है। स्वभाव में नहीं था तो विकार को ग्रहण किया, पकड़

लिया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **तब भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया होने के कारण, उसे जो अनियतगुणपर्यायपना होता है,...** उसे विभाव पर्यायवाले विभाव गुण की पर्यायवाले होते हैं। नीचे है, देखो!

अनियत अर्थात् अनिश्चित, अनेकरूप, विविध प्रकार के। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ अनेक प्रकार के विकल्प-विकारभाववाले होता है। वह अनादि से ऐसा करता है। **वह परसमय अर्थात् परचारित्र है;...** वह पर का आचरण किया, उसने विकार का आचरण किया, वह परचारित्र कहने में आता है। वह मिथ्यात्वभाव है और बन्ध का कारण है। कहो, सेठी! कर्ता आया। यही कहते हैं न, वह कर्ता आया, कहते हैं। परन्तु कर्ता आया, वह स्वतन्त्ररूप से कर्ता आया, यह सिद्ध करना है।

अपना स्वभाव महाप्रभु चेतन। चैतन्य जो ज्ञान-दर्शन का स्वभाव, चेतन ऐसा आत्मा उसका चैतन्य—ज्ञान और दर्शन ऐसा स्वभाव परिपूर्ण रहा हुआ है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ऐसा होने पर भी वर्तमान पर्याय में, अवस्था में, हालत में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध का अनुसरण करने से विकारी पर्यायरूप परिणम रहा है। इस कारण उसे विश्व का अनेक विकाररूपभाव उसने पकड़ लिया है, ग्रहण किया है। स्वभाव को छोड़ दिया। समझ में आया? कहो, धन्नालालजी! यह तो सीधी बात है। आहाहा!

ग्रहण किया होने के कारण, उसे जो अनियतगुणपर्यायपना... अनेक विविध प्रकार के विकार के, विभाव के, दोष के, अशुद्धता के गुणपर्यायवाले **होता है, वह परसमय है...** वह अनात्मा है, **परचारित्र है;...** विभावभाव का आचरण है, दु:खदायक है, वह परिभ्रमण का कारण है।

मुमुक्षु : अनादि का परचारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि परचारित्र है। आहाहा! समझ में आया या नहीं? बहुत ही सादी भाषा तो है। अब इसे कुछ दरकार (नहीं)! यह वस्तु... वस्तु है, प्रभु! पर्याय में—अवस्था में भूल है। वस्तु तो भूलवाली है नहीं। वस्तु तो वस्तु है। और ज्ञान-दर्शन वीतराग स्वभाव से। वास्तव में तो वीतरागस्वभाव में स्वभाववान रहा हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : संसारी जीव....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी जीव की ही बात चलती हैं न! सिद्ध की कहाँ बात है? संसारी जीव वस्तु अपेक्षा से अनादि से वीतरागस्वभाव में रहता होने पर भी, शक्ति हों! पर्याय नहीं। पर्याय में, वर्तमान दशा में कर्म के निमित्त का झुकाव होने से विकार की परिणति में अशुद्धपना होता है। और विश्वरूपपना, अशुद्धपना है तो अनेकपना अशुद्ध है। अशुद्धता एक प्रकार की नहीं, बहुत प्रकार की-असंख्य प्रकार की है। उसे ग्रहण किया है, इस कारण वह परचारित्र कहने में आया है। पर का आचरण किया, विभाव का आचरण किया, दुःख का आचरण किया। समझ में आया? कहो, शोभालालजी! यह बीड़ी-बीड़ी का आचरण नहीं किया। दुःख का आचरण किया है, ऐसा कहते हैं। बीड़ी-बीड़ी तो जड़ है, पर है। परन्तु परसन्मुख के झुकाव से मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन विविध प्रकार के हैं, उन्हें इसने ग्रहण किया है। वह परचारित्र कहने में आता है। दुःख दशा में परिणम रहा है, ऐसा कहते हैं।

वही (जीव) जब... अब कहते हैं। देखो! जब वही जीव। **वही जीव...** ऐसा अनादि से करता आया होने पर भी **जब अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** लो!

मुमुक्षु : कर्म का क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का कर्म के घर में गया। उसकी कहाँ बात है। कर्म के ओर की झुकाव की जो उसकी परिणति-दशा थी, उस कर्म के झुकाव को छोड़ दिया। वहाँ स्वयं कर्ता होकर झुकाव करता था, उसे छोड़ दिया। मैं तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द हूँ। समझ में आया?

वही (जीव) जब (अनादि से...) ऐसा कहा न, वही जीवन अनादि से, आहाहा! संसरणम् संसार—विकार पुण्य-पाप के भाव अनादि से ग्रहण किये हैं। उससे वह परचारित्र अथवा दुःखरूप दशारूप परिणम रहा है; इसलिए परचारित्र कहने में आया है। वह परसमय है। अपना स्वभाव नहीं, इसलिए परसमय है। आहाहा! समझ में आया? अरे! दिगम्बर जैन साधु नौवें ग्रैवेयक में गया, मुनिव्रत धार... आता है या नहीं?

'मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो', अनन्त बार ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ। वह भी परपरिणति में रहकर। समझ में आया? कर्म के निमित्त का अनुसरण करनेवाली परिणति थी। स्वभाव का अनुसरण करनेवाली परिणति नहीं थी। पंच महाव्रत पालता था। अट्ठाईस मूलगुण पालता था। परन्तु वह तो राग-परपरिणति, परसमय, परआचरण, परचारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

वही (जीव) जब... अपने स्वभाव-सन्मुख होता है। अपने पुरुषार्थ से उल्टी गति करता था, वही जीव जब उल्टी गति को छोड़कर, **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** कर्म गये तो परिणति छोड़ता है, ऐसा नहीं है। अपनी परिणति परसन्मुख थी, (उस ओर का) झुकाव छोड़ दिया। स्वभाव-सन्मुख झुकाव हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म की इतनी कृपा हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें कर्म की कहाँ कृपा हुई? कर्म की ओर का झुकाव था, वह झुकाव स्वयं से ही छोड़ दिया। कर्म तो जड़ है। उसके कारण से रहे हुए हैं। उसमें आत्मा को क्या है?

कर्म थोड़े दूर हों तो अपने स्वभाव-सन्मुख होता है, ऐसा नहीं है। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' आता है या नहीं? यह चन्द्रप्रभ की भक्ति में आता है। चन्द्रप्रभ भगवान की भक्ति है न, चन्द्रप्रभ। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' लोहे में अग्नि प्रविष्ट हुई ऐसा कहा है। परन्तु लोहे ने अग्नि को प्रवेश कराया ऐसा है नहीं। क्या कहा? अग्नि सहे घनघात लोह की संगति-अग्नि ने लोहे की संगति की। लोहे ने अग्नि का संग कराया, ऐसा नहीं है। यह सब भक्ति में आता है। हाँ! वह पूजा-भक्ति में आता है न? अग्नि सहे घनघात, घनघात। ऊपर घन के घात पड़ते हैं, क्योंकि अग्नि ने लोहे का संग किया है। दूर अकेली अग्नि हो तो कोई घन मारे?

इसी प्रकार चैतन्यरूपी अग्नि कर्मरूपी निमित्त जड़, उसका संग किया। उसका संग किया तो राग-द्वेष और अज्ञान उत्पन्न हुए। और चार गति के घनघात और दुःख अनुभव करता है। यह सब पैसेवाले दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक बार आप ऐसा कहते हो कि कोई पैसावाला है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है न, हम यह पैसेवाले। पाँच-पचास लाख है। धूल लाख है। कहाँ गये मलूकचन्दभाई! वे वहाँ बैठे हैं हवा में मलूकचन्दभाई। क्या मानते हैं या नहीं? ऐई, मलूकचन्दभाई! तुम्हारे दोनों लड़के। एक वह वहाँ दो करोड़ लेकर बैठा है। एक यहाँ तीन करोड़ लेकर बैठा है। ममता... ममता। धूल में भी नहीं। धूल में कहाँ तेरे थे? कंकड़!

यहाँ तो कहते हैं कि कर्म का उदय होता है जड़ में। उसका अनुसरण करता है आत्मा। आत्मा को अनुसरण कर्म का उदय कराता है, ऐसा नहीं है। गजब बात, भाई! समझ में आया? कहते हैं। जब यह अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरकर करनेवाली परिणति को, अर्थात् उदय की ओर का झुकाव था, उसे स्वभाव-सन्मुख झुकाव कर दिया। लो! इसका नाम धर्म। आहाहा!

अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति... ऐसा कहा न? पर्याय। जो पर्याय कर्म का अनुसरण करती थी, उस पर्याय को छोड़कर। **अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है,...** लो! यहाँ तो देखो! भाई! पहले से लिया। चौथे गुणस्थान से शुद्ध उपयोग लिया और वे लोग चिल्लाहट मचाते हैं। शुद्ध उपयोग नहीं। अरे भगवान! क्या करता है, भाई! यह शुभ उपयोग और शुभ और अशुभरूप तो अनादि से तूने ग्रहण किया है। अब शुभ और अशुभ का ग्रहण छोड़कर स्वसन्मुख हुआ, तो कहते हैं कि **अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे की बात है। इसलिए तो यहाँ कहते हैं। पण्डितजी! इसलिए तो यहाँ बात छंछेड़ी है।

यह कहते हैं, देखो! **अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** पर के निमित्त की ओर का मिथ्यात्व भाव है, उसे छोड़कर। क्या है? देखो न! शास्त्र के अक्षर तो दिखेंगे न! हें? ऐसा है। अनादि मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली वर्तमान परिणति। परिणति अर्थात् अवस्था। मिथ्यात्व को छोड़कर

अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है। ज्ञान-दर्शन का भण्डार भगवान। ज्ञान-दर्शन का स्वभाव वीतरागभाव से भरपूर है, उसके सन्मुख हुआ तो अत्यन्त शुद्ध उपयोग हुआ। आहाहा! देखो न, कितनी सरस बात! ऐसी बात कुन्दकुन्दाचार्य (करते हैं)। अद्भुत बात! अद्भुत वस्तु! पहलेवाला ऐसा करे और चौथे से फिर ऐसा होता है। यह सब बात। वह कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं होता। शुभ-अशुभ होता है तो वह तो अनादि का है। वह उसमें क्या आया? और ऐसा कहे, चौथे गुणस्थान में अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव नहीं होता, ऐसा कहते हैं। अरे रे! ऐसे वाड बेल को खाये। ऐसा है। यह सम्यग्दर्शन होता है, कहते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। यह पहले क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन के स्वभाव का भण्डार-समुद्र भरा है। उस ओर का झुकाव ऐसा पहले न कहकर, परसन्मुख के झुकाव को छोड़कर, ऐसा कहा। क्योंकि था न, इसलिए। नहीं तो वास्तव में तो स्वभाव-सन्मुख झुकाव होता है, तब परसन्मुख की परिणति छूटती है। परन्तु वह परपरिणति करता था, इसलिए परपरिणति को छोड़कर, ऐसा अर्थ में लिया है। आहाहा! समझ में आया?

देखो! **मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति करना छोड़कर...** भगवान आत्मा अपने में आनन्द और वीतरागस्वभाव से भरपूर पदार्थ है। वह अनादि से पर का अनुसरण और अनुकरण करके विकारी भाव मिथ्यात्व, राग-द्वेष के परचारित्र करता था, वह स्वभाव सन्मुख हुआ (तो) परपरिणति छोड़ दी। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : शुरुआत यहाँ से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत यहाँ से होती है। भगवान! ऐसी बात है। आहाहा! पूरा भगवान परमात्मारूप रहा हुआ है। सब भगवान हैं। यह पर्याय परसन्मुख झुकती थी। वह पर्याय स्वसन्मुख झुकी तो भगवान का पता मिल गया। अत्यन्त शुद्ध उपयोग कहा। हाँ, यहाँ मुझे हल्के से लेना था। शुद्ध उपयोग-कहा शुद्ध उपयोग। अत्यन्त अर्थात् उसका अभाव हो गया—शुभाशुभ परिणति के विकार का मिथ्यात्व भाव था, (उसका) व्यय हो गया। सम्यग्दर्शन में वह भाव अंश भी रहा नहीं। शुभाशुभ विकल्प का भाव भी सम्यग्दर्शन के ध्येय में और सम्यग्दर्शन में रहा नहीं। समझ में आया?

आहाहा! कहाँ गये वे? वे राग का भजन करनेवाले कौन हैं? भंवरलालजी! ....समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तेरी चीज़ में तो परम आनन्द और परम शान्ति और परम वीतरागता पड़ी है। भगवान! आहाहा! वह तेरे अनुसरण की चीज़ थी। परन्तु उस चीज़ को अनादि से छोड़कर, उसे छोड़कर। कर्म के निमित्त के ओर की झुकाव की परिणति को तूने ग्रहण किया था। अब कहते हैं कि उस परिणति को छोड़कर, वह अनादि से स्वभाव को छोड़ता था। समझ में आया? ग्रहण किया न, अशुद्धता का ग्रहण किया। स्वभाव को छोड़कर। वस्तु भगवान आत्मा नित्य आनन्द और वीतरागस्वभाव से भरपूर है। सारे आत्मायें, शरीर में स्त्री हों, पुरुष हों, नपुंसक हों, कीड़ी-कुंजर हों, उसे छोड़ दो। आत्मा है तो अन्दर वस्तु है, भगवान! समझे? संसारी जीव लिये हैं न! आहाहा! तो यह छोड़ने का संज्ञी पंचेन्द्रियपने, मनुष्यपने, तिर्यंचपने आदि होता है। दूसरे में नहीं होता। एकेन्द्रिय में नहीं होता। समझ में आया?

पर का अनुसरण करनेवाली विकारी दशा, जो दुःखरूप दशा जो परचारित्र है, परसमय है, उसे छोड़ने की सिद्धि संज्ञी पंचेन्द्रिय, मनुष्य आदि, नारकी, देव आदि में है। संज्ञी में होता है। असंज्ञी में नहीं। समझ में आया?

तो ऐसा कहते हैं कि अरे भगवान! तू संज्ञी हुआ, क्षयोपशम हुआ, अब तो तेरी ताकत पर की ओर का झुकाव छोड़, स्वभाव-सन्मुख झुकाव कर, वह तेरी चीज़ है। तेरी चीज़ को प्राप्त हो। जो नहीं थी, उसे प्राप्त की, ग्रहण किया, ऐसा कहा न? पुण्य-पाप को ग्रहण किया। जो तेरी चीज़ नहीं, उसे तूने पकड़ लिया। तो तेरी चीज़ है, उसे पकड़ ले न! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अनादि की परिणति जो परसन्मुख की थी, उसे छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है। संस्कृत में भी ऐसा है, हों! दिगम्बर सन्तों ने तो अमृत बहाया है। आहाहा! पहली श्रद्धा में तो निर्णय करे, समझ में पहले निर्णय करे कि स्वभाव-सन्मुख होता है, तब धर्म होता है। विभाव-सन्मुख में तो विकार की-परचारित्र की दशा, दुःखरूप दशा, परिभ्रमण दशा है। समझ में आया? चाहे तो शुभराग करो, चाहे तो अशुभ, दोनों

परचारित्र है। आहाहा! समझ में आया? प्रकाशदासजी! ऐसा है, देखो! भाई! आहाहा! (ऐसी) बात सुनने को मिलती नहीं। परम सत्य हो तो भी क्या करे, इसे खबर नहीं।

और एक बार एक को (किसी को) यहाँ की पुस्तक मिली। तो उसने यहाँ का पढ़कर ऐसा कहा, और साधु नाम धरावे अब, भाई! हम तो व्यवहार में पड़े हैं। क्या करें। ले! तुझे तेरा करना है कि, व्यवहार तो अनादि का है। यह बात तो अनादि की है। अनादि की है। यह तो कहते हैं। यहाँ की पुस्तक दी। जुगराजजी मारवाड़ी हैं न! मुम्बई में नहीं? एक जुगराजजी हैं। पाली के पास एक गाँव है वावड़ी। गृहस्थ है, मारवाड़ी है। जुगराजजी! अपने नहीं आते हैं? उनकी वहाँ मुम्बई में मार्केट है। कपड़ा मार्केट- महावीर मार्केट, हें? कहाँ? हाँ, महावीर मार्केट। यहाँ अपने बहुत ही आते हैं। स्थानकवासी हैं। पक्के दिगम्बर हो गये हैं। बहुत ही आसामी पचास-साठ लाख रुपये। बहुत ही पक्का है, बहुत ही। स्थानकवासी मारवाड़ी है। बड़ा गृहस्थ है, बहुत पैसे- पचास-साठ लाख कहते हैं, चाहे वह पचास लाख के ऊपर होंगे। यहाँ बहुत रहते थे। पाली गये थे न, पाली नहीं मारवाड़ में? पाली। वहाँ हमारे साथ आये थे। स्थानकवासी। बगडी... बगडी अर्थात् छोटा गाँव। तो उन्होंने यहाँ से पुस्तक लेकर, कोई वेशधारी को दिया। तो उसने पढ़ा। पढ़कर कहे हम तो व्यवहार में पड़े हैं, क्या करें? ले! व्यवहार में पड़े क्या? ऐसा कि यह क्रिया करना और व्रत करना, और अमुक करना, धूल करना। हम पड़े हैं और यह तो ऐसा कहते हैं कि वह धर्म नहीं है। वेश ले लिया और फिर व्रत के नाम ले लिये, फिर उससे हटना, वह भारी कठिन! भारी कठिन! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **परिणति करना छोड़कर अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है,...** पहले से ऐसा लिया है। देखो! ऐसा नहीं कहा कि पहले परिणति को छोड़कर शुभ उपयोगवाला हुआ है। परन्तु शुभ उपयोग तो अनादि की परिणति कहा। अरे! उसकी शुद्धता स्वभाव में पड़ी है, उसका शुद्ध उपयोग हो, वही पहला धर्म है। आहाहा! क्या कहे?

सम्यग्दर्शन भी शुद्ध है, सम्यग्ज्ञान भी शुद्ध है और रागरहित परिणति आचरण भी शुद्ध है। तीनों शुद्ध उपयोगरूप होते हैं। आहाहा! अरे! यह वाद-विवाद का विषय नहीं भगवान! यह तो हित करना है, उसकी बात है। न करना हो तो वह तो अनादि से

झगड़ा करता है अपने वाद-विवाद में। नहीं, ऐसा होता है और ऐसा होता है, हो। ऐसा हो भाई! हुआ करे।

भगवान तो ऐसा कहते हैं। सन्त जगत के समक्ष ऐसे पुकार करते हैं। भगवान! तुमने तुम्हारे सन्मुख अनादि से नहीं देखा। तुम्हारे से विमुख होकर तुम ही तुम्हारे से विमुख शत्रु हुए और विकारी आचरण की परिणति में तुम पड़े हो, वह दुःखदायक दशा है। परसमय दशा है। यह परिणति की पर्यायबुद्धि जो राग मेरा है और पुण्य से मुझे लाभ होता है, यह दृष्टि / बुद्धि है, उसे छोड़ दे। छोड़कर तेरे अत्यन्त शुद्ध उपयोग में आ जा। बस! इसका नाम धर्म है। है या नहीं वहाँ अन्दर में? देखो! शास्त्र के पहले है। यह सोनगढ़ का नहीं, कितने ही कहते हैं सोनगढ़ याद करते हैं। भगवान! यह शास्त्र तो कुन्दकुन्दाचार्य के हैं और इनकी टीका अमृतचन्द्राचार्य की है। नौ सौ वर्ष पहले लिखी है। अर्थ करते हैं यहाँ। लोक में अर्थ करने में बहुत ही अन्तर है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहे, अबुद्धिपूर्वक और बुद्धिपूर्वक सब विचार की रुचि छोड़, परिणति छोड़ दे। ऐसा नहीं कि बुद्धिपूर्वक छोड़ और अबुद्धिपूर्वक रहता है। आहाहा! देखो तो सही! शैली! आहाहा! भगवान आत्मा... होवे वह तो प्रश्न नहीं, दृष्टि में से तो अबुद्धिपूर्वक सब छूट गया है। छूट गया है। वस्तु... वस्तु... वस्तु! (उपयोग) बदला। उपयोग शुभाशुभ परिणति से रहित हुआ, उसका नाम स्वचारित्र है। वह आत्मा की रमणता चारित्र वह है। आहाहा! अरे! अभी श्रद्धा में भी खबर नहीं। समझण में भी सत्य यह है या असत्य यह है, ऐसा ख्याल भी नहीं। उसे मान ले कि हमारे धर्म होता है। धर्म करते हैं। स्वतन्त्र! भाई! जीवन चला जाता है। समय-समय में आयुष्य चला जाता है। स्थिति पूरी होगी। देह छोड़कर आत्मा चला जाएगा।

कहते हैं, एक बार तुम्हारी अस्ति में—अस्ति मेरी आनन्द और ज्ञान के धाम में मेरी अस्ति है। उस ओर का झुकाव करके, राग की और पुण्य की एकताबुद्धि पर के अनुसार है, उसे छोड़ दे। **अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब (स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया...** उसमें स्वयं भावों का अनेकरूपपना ग्रहण किया था। उसमें अज्ञान का स्वयं भावों का विश्वरूपपना ग्रहण किया था। पुण्य और पाप की अनेकता

को ग्रहण किया था। स्वभाव सन्मुख हुआ तो **(स्वयं) भाव का एकरूपपना ग्रहण किया होने के कारण,...** आहाहा! शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव में एकाकार होकर, उसमें तो एकरूपी वीतरागता ही उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। उस शुभ में और अशुभ में तो अनेक प्रकार की विचित्रता उत्पन्न होती थी। समझ में आया? यह कहा न कि एकरूप त्रिकाली स्वभाव है, तो एकरूपता अन्तर जहाँ सन्मुख हुआ, तो वीतराग पर्याय एकरूप ही उत्पन्न होती है। इसमें भिन्न-भिन्न पर्याय है नहीं। भिन्न-भिन्न जो शुभ-अशुभपरिणाम हैं, वे तो हट गये। और स्वभावसन्मुख में,... उसमें स्वयं विश्वरूपता का ग्रहण था। यहाँ स्वयं एकरूपता ग्रहण की।

वस्तु जो अभेद है, गुण में गुणी रहा है, ऐसी अभेदता अनादि से है। उस गुण में गुणी रहा है, आनन्द में गुणी रहा है, शान्ति में आत्मा रहा है। वीतरागभाव में रहा है। ज्ञान सामान्य चेतना में आत्मा रहा है। विशेष चेतना में आत्मा रहा है। उस ओर का झुकाव होने से एकरूपता-वीतरागता प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : एकरूपता या वीतरागता एक ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बात है। वीतरागता में भंग कहाँ है? आहाहा! थोड़ा समझना परन्तु सत्य हो, वैसा समझना।

मुमुक्षु : महाराज! ऐसा है और हम तो कषायों में बैठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ बैठे हो? बैठे हो तो आत्मा में अन्दर। आनन्द में आत्मा रहा है, ऐसा कहते हैं।

पर का अनुरण किया, इसलिए कषाय में रहा है। पर का अनुसरण किया इसलिए कषायों में रहा है। हित करना हो तो अब पर का अनुसरण छोड़—ऐसा कहते हैं। तेरा माल अन्दर पड़ा है, उसे सम्हाल! समझ में आया? आहाहा! आनन्द और ज्ञान-भान। 'जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्तगुण, केवली बोले एम; प्रगट अनुभव आपनो निर्मल करो सो प्रेम। चैतन्य प्रभु तेरी सम्पदा रे तेरे धाम में।' परन्तु यह बात कहाँ बैठे! कभी वस्तु क्या है, अनुमान-ख्याल में भी लिया नहीं कि यह महापदार्थ है। आत्मा अर्थात् साक्षात् शक्तिरूप परमात्मा। आत्मा अर्थात् स्वभावरूप से परमात्मा। आहाहा! 'अप्पा सो परमप्पा'

शोभालालजी! यह आता है अपने तारणस्वामी में बहुत ही आता है। 'अप्पा सो परमप्पा'। परन्तु भाषा समझे नहीं लोग। परन्तु यह अर्थ करनेवाले कोई नहीं मिले न! ठिकाने बिना के हों। यह सेठिया मानो बीड़ी में रुक गये। वे और दूसरे किसी में। 'अप्पा सो परमप्पा'। यह तो पहले की बात है न, तो भी इतने भाग्यशाली (कि यहाँ) आ गये। यहाँ आकर रुक गये। सुनने का क्या? क्या चीज़ है। ओहोहो!

यह तो भगवान परिपूर्ण प्रभु परम आत्मा-परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप उत्कृष्ट स्वरूप सामान्य त्रिकाल ध्रुवस्वरूप, उसमें स्वभाव में आत्मा है। उस ओर का झुकाव अशुद्ध परिणति को छोड़कर, अर्थात् अशुद्ध परिणति का व्यय होना और स्वभाव-सन्मुख होकर वीतरागी एकरूप पर्याय का उत्पन्न होना। फिर से। स्पष्ट होना चाहिए न, ऐसी कहीं गड़बड़ चले?

भगवान आत्मा जो अपनी वस्तु और उसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द जो कायमी स्वभाव, वह ध्रुव। अब कर्म का अनुसरण करनेवाली परिणति / अवस्था जो थी, उसे छोड़ दिया। छोड़ दिया का अर्थ :- जो स्वभाव सन्मुख हुआ, उसकी एकतारूप हुआ तो वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई और राग के साथ की एकताबुद्धि का नाश हो गया। उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीन सिद्ध हुए। समझ में आया? आहा!

फिर से। जो भगवान आत्मा वस्तु है, पहले द्रव्य अपेक्षा से लिया न? द्रव्यदृष्टि, द्रव्य अपेक्षा से वस्तु के स्वभाव अपेक्षा से शरीर, वाणी, मन एक ओर रखो। पुण्य-पाप के विकल्प भी एक ओर। वस्तु का स्वभाव है - भगवान आत्मा का स्व... भाव अपना भाव, निजभाव ज्ञान-दर्शन और आनन्द आदि निजभाव, उसमें आत्मा है। तो वह परमात्मस्वरूप ही है। उसने अपने स्वभाव का अनुसरण अनादि से छोड़ा है। तो वह अनादि से छोड़ा है तो वीतराग पर्याय उत्पन्न होनी चाहिए, उसका नाश कर दिया और अज्ञान पर्याय उत्पन्न हुई, वह परचारित्र है; और परपरिणति को छोड़कर-व्यय करके स्वभाव सन्मुख की दशा ध्रुव है, उस पर दृष्टि करके जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पन्न हुई। अशुद्ध परिणति का व्यय हुआ, ध्रुवपना कायम है। अरे! समझ में आया?

शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब... ऐसा कहा है न भाई वापस! अत्यन्त शुद्ध

उपयोग एकाकार ज्ञायक में जम गया। ज्ञायक ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तीन का भेद छोड़कर। अब एक चैतन्य में जम गया, तो अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है, तब स्वयंभाव का एकरूप का ग्रहण किया। यहाँ प्रत्येक में अज्ञानपना विकार भी उसने ग्रहण किया था। कर्म ने ग्रहण नहीं किया था। यह एकपना भी अपने पुरुषार्थ से ग्रहण किया। समझ में आया? आहाहा!

इसमें व्यवहार पहला करे और फिर निश्चय आवे, यह सब यहाँ तो उड़ा दिया। वह व्यवहार तो अशुद्ध परिणति है। अशुद्ध परिणति का लक्ष्य छोड़कर अर्थात् व्यय करके, ऐसा इसका अर्थ है। लक्ष्य छोड़कर, इसका अर्थ व्यय करके। व्यय करके, इसका अर्थ लक्ष्य छोड़कर। समझ में आया? त्रिकाली ध्रुव भगवान चिदानन्द प्रभु अस्ति सत्तावन्त पदार्थ है। उस ओर का झुकाव करके एकपना का ग्रहण किया। वीतरागी पर्याय प्राप्त हुई तो एकपना हुआ। अनेकपने की अशुद्ध परिणति का व्यय हुआ है। आहाहा! वह यह चौथे गुणस्थान से लेकर बात है। आहाहा! क्या हो!

मुमुक्षु : मूल बात महाराज! सब बात चारित्र की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारित्र है। परन्तु आंशिक चारित्र है न! समकित में स्वरूपाचरण है न, स्वरूपाचरण है। आंशिक बराबर चारित्र है वहाँ आगे।

जितने गुण हैं, उन सबकी चौथे गुणस्थान में व्यक्त पर्याय हो गयी है। नहीं तो द्रव्यदृष्टि कहाँ से होगी। द्रव्य जो है, उसमें जितने गुण हैं, उस ओर की एकाग्रता हुई तो जितने गुण हैं, उन सबका एक अंश व्यक्त प्रगट परिणमन अनुभव में आ गया। आनन्द का अंश, स्थिरता का अंश, स्वच्छता का अंश, प्रभुता का अंश, कर्ता का अंश, कर्म का अंश। सबकी शक्ति अनन्त है न! 'सर्व गुणांश समकित।' जितने गुण हैं, उनकी आंशिक प्रगट अवस्था हो गयी। पूर्ण हो, तब तो सर्वज्ञ हो जाये। समझ में आया?

स्वरूपाचरण है, स्वरूप में विश्राम लिया। ऐई! चौथे में स्वरूप में विश्राम लिया। आहाहा! अशुद्ध परिणति तो परचारित्र था। अब चारित्र कहते हैं। यहाँ से शुरु हुआ है। समझ में आया? सब गुणों की प्रगट पर्याय एक अंश हो जाती है।

मुमुक्षु : तो ज्ञान?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान आ गया न, ज्ञान का अंश प्रगट हुआ न! स्व को पकड़ने के लिये ज्ञान का अंश भी प्रगट हुआ, श्रद्धा का अंश प्रगट हुआ, आनन्द का अंश प्रगट हुआ, वीतराग का अंश हुआ, स्वच्छता का अंश, प्रभुता का अंश, अनन्त गुण का अंश प्रगट पर्याय में होता है। इसका नाम एकरूपता ग्रहण की, ऐसा कहा जाता है। कठिन, भाई!

यह तो बालक हो, स्त्री हो आठ वर्ष की, वह भी सम्यग्दर्शन प्रगट करती है। स्त्री भी पंचम गुणस्थान प्राप्त कर सकती है। देह स्त्री का हो, आत्मा भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : (चारित्र के सन्दर्भ में) बहुत ही झगड़े करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत ही झगड़े करते हैं। खबर है न, लेख में बहुत ही आता है। स्वरूपाचरण है नहीं, स्वरूपाचरण है नहीं। स्वरूपाचरण चौथे में माने वे आचार्य को मानते नहीं। मिथ्यादृष्टि है। ऐसा लिखते हैं। क्या करे? मक्खनलालजी को उसमें विरोध हो गया। मक्खनलालजी कहे, स्वरूपाचरण है। रतनचन्दजी कहे, नहीं है। यह विवाद उनमें और उनमें। उनके मण्डल में विवाद उठा।

मुमुक्षु : उसमें से तो दोनों अलग हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था। मण्डली में भी विवाद है। गोपालदास कहते हैं। क्या गोपालदास को? बरैया। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के (रचयिता)। स्वरूपाचरण है। चौथे में होता है। यह कहे नहीं। रतनचन्दजी कहे नहीं। बदल डालो। फिर एक व्यक्ति ऐसा कहता है निकाल डालो। यह और दूसरे ने कहा। ऐसे के ऐसे। कुछ निकालकर डाल दिया जाता है?

ऐसे ही संयत के शब्द उठे थे न? संयत के नहीं? बहुत ही चर्चा हुई थी। जुवारीमलजी! संयत का शब्द उठा था नहीं? संयत निकाल डालो। हाँ, संयत शब्द। निकाल डालो। नहीं निकाला जाता। वह भगवान का कथन है, वह यथार्थ है। नहीं निकाला जाता।

मुमुक्षु : तो भी निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकाल डाला। नहीं निकाला जाता। संयत वहाँ द्रव्यचारित्र

है। अज्ञानी को संयत है। मूल संयतपना है नहीं। आहाहा! क्या हो? तत्त्व का अभ्यास रहा नहीं और ऊपर जो कहनेवाले मिले तर्क से तो वह मान ले।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जैसे पर की दृष्टि छोड़कर गुलाँट खाता है। स्व की दृष्टि करता है, तो उसमें अत्यन्त शुद्ध उपयोग होता है और उसमें एकपने का ग्रहण होता है। अर्थात् वीतरागपर्याय की प्राप्ति होती है। उसमें राग की अनेकता का नाश होता है। वीतराग की एकपने प्राप्ति चौथे से आंशिक, पाँचवें से (और) मुनि को विशेष। मुनिदशा को विशेष—यहाँ मुख्यता मुनि की है न? मुनि कहनेवाले हैं न छठवें गुणस्थान में, सातवें गुणस्थान में। ओहोहो! चारित्र अलौकिक बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले असंयत कहा। वस्तु के संवर स्थिरता जो पाँचवें-छठवें में है, इस अपेक्षा से। परन्तु स्वरूपाचरण तो वहाँ बराबर है। अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ तो हुआ क्या? अनन्तानुबन्धी तो चारित्र का दोष था। उसका अभाव हुआ तो कुछ चारित्र का अंश आया या नहीं? उसे संयत कहने में आवे, ऐसा चारित्र नहीं है। हें? हाँ.... परन्तु विवाद का विषय नहीं। भगवान! जैसी दृष्टि हुई, वहाँ तत्त्व शुद्ध अखण्ड अभेद है। तो उसके साथ थोड़ी एकाग्रता हुए बिना हुई? तो एकाग्रता हुई, वह स्वरूपाचरण है। आहाहा! परन्तु.... क्या मूलतत्त्व की बात ही फेरफार हो गयी। बस क्रियाकाण्ड। यह करो और यह छोड़ो और यह लिया और उसमें मुनिपना तथा यह श्रावक को... वह बेचारा देखो न! आहाहा!

कारणों से **उसे जो नियतगुणपर्यायपना होता है,...** देखो! अब इसमें विवाद करते हैं कि नियत अर्थात् क्रमबद्ध और अनियत अर्थात् अक्रमबद्ध। यहाँ क्रमबद्ध-अक्रमबद्ध की व्याख्या ही नहीं है। यह रतनचन्दजी, क्या कहलाते हैं? लालबहादुर। सब अर्थ में विरोध निकालते हैं। यहाँ तो नियत-अनियत का अर्थ। स्वभाव से विरुद्ध विभाव को अनियत कहा है और स्वभाव से अनुकूल जो स्वभाव उत्पन्न हो, उसे नियत कहा है। बस। यहाँ यह बात है। समझ में आया? पत्रों में बहुत ही विरोध आता है। यह गाथा लेकर। यहाँ का विरोध करने के लिये (लिखते हैं)। यहाँ का विरोध नहीं, स्वयं अपना विरोध करते हैं।

यहाँ तो एकान्तवाद! जुवारीमल्ल कहते हैं, एकान्तवाद है। अरे भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरे घर में एकान्तपने घुसे बिना और राग से हटे बिना तुझे शान्ति नहीं मिलेगी। सम्यग्दर्शन नहीं होगा। एकान्त है, सम्यक् एकान्त है। आहाहा! अन्तर में सम्यक् एकान्त को झुके बिना पर्याय का अनेकपने का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। आहाहा!

कहते हैं कि एकपना वस्तु एकरूप स्वभाव है, उसमें एकाग्र होने से एकरूप पर्याय अरागी वीतरागी निर्दोष शुद्ध उपयोग की पर्याय प्रगट होती है। जो नियतगुणपर्यायपना होता है। देखो! नियत=निश्चित, एकरूप, अमुक, एक ही प्रकार का। एक ही प्रकार की वीतरागी पर्याय हुई। आहाहा! यह इसका नाम धर्म, इसका नाम स्वसमय और इसका नाम स्वचारित्र। मुख्य बात मुनिपने की है। **जो नियतगुणपर्यायपना होता है, वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है।** वह अपने निजस्वरूप का चारित्र उसे कहा जाता है। आहाहा! अभी इसका ख्याल भी नहीं, स्वचारित्र कौन, परचारित्र कौन।

मुमुक्षु : अनादि काल से इसने जमाया है, उसे निकालने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निकालने के योग्य है, वह परचारित्र है और स्वचारित्र यहाँ इतना निर्णय करना भी इसे ठीक नहीं पड़ता। हाय... हाय! व्यवहार चला जायेगा तो? परन्तु व्यवहार चला जाये क्या, नाश होगा। सुन न! आहाहा!

शुभभाव की परिणति, वह व्यवहार परिणति है, परचारित्र की परिणति है। शुभभाव में चारित्र का अंश बिल्कुल नहीं है। आहाहा! इतनी स्पष्ट बात! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। स्वसमय-स्वचारित्र है, लो! उसका नाम स्वचारित्र है। अपने में रमना, शुद्ध स्वभाव में लीन वीतरागी पर्याय होना, उसका नाम स्वचारित्र है। पंच महाव्रत आदि के विकल्प, वह स्वचारित्र है नहीं। यहाँ तो पंच महाव्रत के अतिरिक्त चारित्र ही नहीं है। वह चारित्र है बस, जाओ। स्वचारित्र तो कहीं पड़ा रहा। परचारित्र, वह स्वचारित्र (ऐसा अज्ञानी मान लेता है)। परिणति बदले। परसन्मुख की हो वह स्वसन्मुख हो, तब धर्म होता है, यह बात है। आहाहा!

अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार... अब वास्तव में यदि कोई भी पुरुषार्थ से **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** आहाहा! **जीव परसमय को छोड़कर स्वसमय को**

ग्रहण करता है... अब इसका फल बताते हैं। अनादि से कर्म के निमित्त का अनुसरण करके जो अशुद्ध परिणति हुई, वह परचारित्र हुआ, वह बन्ध का कारण है, यह बताते हैं। और भगवान आत्मा **किसी भी प्रकार से....** किसी भी प्रकार महापुरुषार्थ करके स्वभाव सन्मुख होकर पहली श्रेणी में रागादि पर की परिणति की ओर का लक्ष्य, आश्रय छोड़कर भगवान स्वभाव पर आश्रय करके **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** स्वरूप तो था, वह पर्याय में प्रगट हुआ। मैं ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसा सम्यग्ज्ञान प्रगट करके **जीव परसमय को छोड़कर...** देखो! राग की परिणति-अवस्था को छोड़कर **स्वसमय को ग्रहण करता है...**

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव में लीनता प्रगट करता है, वह स्वसमय ग्रहण करता है। ग्रहण, ग्रहण पुरुषार्थ लेता है। **तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है;...** वह स्वचारित्र है, वही मोक्ष का कारण है। ५४ में (१५४ में) पहले से लिया था न! जीवस्वभाव में नियत चारित्र वह मोक्षमार्ग है। यह उसका स्पष्ट किया। १५४ गाथा में पहला शब्द था। जीवस्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है। वह यह निर्णय कर दिया। ऐसा स्वभाव वीतरागी पर्याय जो स्वसमय कहते हैं, स्वचारित्र कहते हैं, वह कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है। कर्मबन्ध छूटने का यही मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है। समझ में आया?

इसलिए वास्तव में (ऐसा निश्चित होता है कि)... इस कारण से वास्तव में ऐसा निर्णय होता है कि **जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है।** योगफल लिया। यह १५४ में पहले कहा था। जीवस्वभाव में—भगवान आत्मा, उसका जो स्व-भाव ज्ञान और दर्शन त्रिकाली, उसमें जो नियत चारित्र—निश्चय लीन होना, स्वभाव में एकाग्र होना, वह मोक्षमार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग है नहीं। इसमें व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग दो मार्ग कहे ही नहीं। यह एकमात्र है। समझ में आया? फिर व्यवहार कहेंगे आगे **धम्मादि'** जानने के लिये कहेंगे आगे **'धम्मादि सद्दहण'** परन्तु वह तो जानने के लिये दूसरी चीज़ है। विकल्प वह किस प्रकार का होता है, यह जानने के लिये व्यवहार कहते हैं। परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो यह एक ही है। समझ में आया?

गाथा - १५६

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

यः परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावम्।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः।।१५६।।

परचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यो हि मोहनीयोदयानुवृत्तिवशाद्रज्यमानोपयोगः सन् परद्रव्ये शुभमशुभं वा भावमादधाति, स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरित्रचर इत्युपगीयते, यतो हि स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं, परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति ।।१५६।।

जो राग से परद्रव्य में करते शुभाशुभभाव हैं।
परचरित में लवलीन वे स्व-चरित्र से परिभ्रष्ट है।।१५६।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [रागेण] राग से (-रंजित अर्थात् मलिन उपयोग से), [परद्रव्ये] परद्रव्य में [शुभ अशुभम् भावम्] शुभ या अशुभभाव [यदि करोति] करता है, [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरित्रभ्रष्टः] स्वचारित्रभ्रष्ट ऐसा [परचरितचरः भवति] परचारित्र का आचरण करनेवाला है।

टीका :- यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।

जो (जीव) वास्तव में मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति के वश (अर्थात् मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणमित होने के कारण) रंजित-उपयोगवाला (उपरक्त-उपयोगवाला) वर्तता हुआ, परद्रव्य में शुभ या अशुभभाव को धारण करता है, वह (जीव) स्वचारित्र से भ्रष्ट ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है; क्योंकि वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है और परद्रव्य में [१]सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है॥१५६॥

---

१. सोपराग=उपरागयुक्त; उपरक्त; मलिन; विकारी; अशुद्ध। [उपयोग में होनेवाला, कर्मोदयरूप उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् कर्मोदयरूप उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति) वह उपराग है।]

गाथा – १५६ पर प्रवचन

अब १५६।

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

आहाहा! ऐसे स्वरूप चारित्र से भ्रष्ट है और अकेले राग में आचरण करता है, वह परचारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम आत्मा के स्वरूप की स्थिरता को छोड़कर, यह पंच महाव्रत के परिणाम हैं, तो स्वचारित्र से भ्रष्ट है और परचारित्र है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो खुल्ला करे नहीं तो इसके बिना समझ में किस प्रकार आवे? महाव्रत, वह परचारित्र है, ऐसा स्पष्ट किये बिना इसे ख्याल में कैसे आयेगा? ऐसा का ऐसा अनादि से हाँका, जगत हाँकता है। आहाहा! **यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।** परचारित्र अर्थात् राग में आचरण करनेवाले। स्वभाव की शुद्धि का आचरण छोड़कर अकेले विकल्प का आचरण करनेवाले। **प्रवर्तनेवाले के,...** यहाँ प्रवर्तन स्वयं पुरुषार्थ से करता है, हों! उसके स्वरूप का कथन है। लो! इसका विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६७, गाथा-१५५-१५६, वैशाख शुक्ल ११, रविवार, दिनांक -१७-०५-१९७०

१५५ गाथा की अन्तिम लाईनें। १५५ की अन्तिम तीन लाईनें। **अब, वास्तव में यदि किसी भी प्रकार सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** देखो! पहले सम्यग्दर्शन और ज्ञान लिया। पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान लिया। किसी भी प्रकार से पुरुषार्थ करके अपने ज्ञानस्वभाव चैतन्यबिम्ब सूर्य। राग से पृथक् है ऐसे स्वभाव को श्रद्धा-ज्ञान में प्रगट करके, यह करने की क्रिया। हें? पहले यह। क्या कहते हैं?

किसी भी प्रकार... अपने ज्ञानस्वरूप चैतन्यसूर्य। स्वसम्यग्ज्ञान स्वभाव की दृष्टि करके पर्याय में सम्यग्ज्ञान प्रगट करके, ऐसा लिया है। तो सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ तो सम्यग्दर्शन भी साथ में है। चैतन्य ज्ञायकभाव परमब्रह्म आनन्दमूर्ति प्रभु का किसी भी प्रकार से सम्यग्ज्ञान प्रगट करके, स्वज्ञेय को अन्तर प्रगट करके दृष्टि में लेना तो वह अपनी पर्याय में, ज्ञान में स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट होता है। उसमें आया कि पूरा आत्मा आनन्द और ज्ञानमय है। ऐसी प्रतीति और ऐसा ज्ञान प्रगट करके। यह शुरुआत-पहली बात है। समझ में आया?

जीव परसमय को छोड़कर... फिर चारित्र की बात आयी। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब ज्ञान का नूर प्रकाश का पूर, उसकी अन्तर्दृष्टि करके, बहिर का झुकाव छोड़कर अन्तर स्वभाव-सन्मुख से पुरुषार्थ से **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके...** देखो! चारित्र अधिकार में आता है न? चरणानुयोग (सूचक चूलिका) प्रवचनसार। माता-पिता के निकट आज्ञा माँगता है। मुझे सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट हुई है। माता! अब हठ छोड़ दे, मुझे आज्ञा दे। प्रवचनसार चरणानुयोग में आता है। आहाहा! छोड़ दे। हमारे सम्यग्ज्ञान चैतन्यमूर्ति जो अनादि से पुण्य और पाप के मिथ्यात्वरूपभाव प्रगट थे, उसका मैंने नाश कर दिया और अपनी चैतन्यज्योति ज्ञानस्वभाव जो शक्ति और सत्व और स्वभावरूप थे, वे हमें पर्याय में प्रगट हुए।

मैं ज्ञान हूँ, आनन्द हूँ। मैं तो वह चीज़ हूँ। मुझमें कभी भी व्यवहार के विकल्प का तन्मयपना वस्तु के स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? पूरा संसार मन

से विकल्प से लेकर, मेरे ज्ञानस्वभाव में तन्मय, तद्रूप, एकरूप है ही नहीं। आहाहा! ऐसा अपना निज स्वभाव अन्तर्मुख होकर सम्यग्ज्ञान प्रगट करके, देखो! चारित्र की दशा में पहले यह करके कहा। सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट नहीं है, उसे चारित्र नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : चौथे काल की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे काल की बात है? पूछो नेमीचन्दजी को। यह पंचम काल के लिये बनाया है या चौथे काल के लिये बनाया है? यह कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के साधु थे और पंचम काल के (श्रोता के) लिये बनाया है। कोई कहे भाई! यह बात तो चौथे काल की है। कोई ऐसा कहता था। अरे भगवान! काल-फाल आत्मा में कैसा? वह तो चैतन्यज्योति स्वयं जलहल ज्योति भगवान चैतन्य के नूर का पूर भरा हुआ पड़ा है। क्या करे?

अन्तर्मुख होकर स्वभाव को पर्याय में प्रगट करना, वही पहली शुरुआत की चीज़ पहली है। समझ में आया? देखो, क्या करना? ऐई! गोविन्दभाई! यह एक बार पूछते थे। रात्रि (चर्चा) में एक बार पूछते थे न? यह करना। आहाहा!

श्रीमद् में आता है न, 'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपजा बोध जो।' 'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपजा बोध जो।' अपूर्व अवसर में आता है। सेठिया आये नहीं। यह धूप है न, उसे—मीठालाल को यह अपूर्व अवसर प्रिय है। 'दर्शनमोह व्यतीत हुआ उपजा बोध जो। देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो।' देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो। यह इसका नाम सम्यग्ज्ञान। देह शब्द से शरीर, विकल्प—राग, वह सब देह। आहाहा! उससे भगवान आत्मा चैतन्य का नूर प्रकाश का पूर है। चैतन्य के प्रकाश का पूर है। उस पर दृष्टि करने से सम्यग्ज्ञान ज्योति शक्तिरूप है, वह पर्याय में / अवस्था में प्रगट होती है। पहले करनेयोग्य चीज़ यह है। कहो, पण्डितजी! आहाहा! फिर परसमय को छोड़कर, फिर शुभ और अशुभ विकल्प जो राग है, वह परसमय है। अनात्मा है। वह आत्मा की चीज़ नहीं। समझ में आया? आहाहा!

जीव परसमय को छोड़कर... शुभ-अशुभ विकल्प जो विभावभाव है, वह

परसमय है। उसे छोड़कर, यह नास्ति से बात की है। परन्तु सम्यग्ज्ञान अन्तर में स्वभाव सन्मुख होकर प्रगट हुआ, वैसे उस ज्ञानस्वभाव में उग्ररूप से स्थिर हुआ तो शुभाशुभ परिणाम परसमय छूट गया। समझ में आया? कथन पद्धति तो शास्त्र भाषा जो होती है, वह होती है न! परसमय को छोड़कर, इसका अर्थ कि जिसे स्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान, ऐसा अनुभव-ज्ञान में आया है, वह स्वभाव सन्मुख होकर स्थिरता, दृढ़ता, लीनता करता है तो वह शुभ-अशुभ परसमय है, वह उत्पन्न नहीं होते। उसे छोड़कर, ऐसा कहने में आया है।

मुमुक्षु : परसमय छूट जाता है, ऐसा लिखना था?

पूज्य गुरुदेवश्री : छूट जाता है, ऐसा ही लिखा है। लिखने की भाषा कैसे करे? व्यवहार भाषा ही ऐसी है। व्यभिचारिणी भाषा। चैतन्य की बात करना, जड़ से कहना। आहाहा! यह (भाषा) जड़, भगवान चैतन्य। जड़ को कुछ खबर ही नहीं कि कौन चैतन्य है। यह वाणी द्वारा कथन की पद्धति तो जो हो, उस प्रकार से आती है। ऐसी बात है।

कहते हैं, भाई! भगवान-प्रभु! तेरा स्वभाव तो अकेला ज्ञान और आनन्द है न! उसे अन्तर्मुख होकर जैसा है, वैसा पर्याय में-अवस्था में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्रगट करके, फिर—पश्चात् चारित्र आता है, ऐसा कहते हैं। यह तो कहे, ले लो चारित्र। परन्तु कैसा चारित्र? और फिर भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ तो भी तुरन्त ही चारित्र आवे, ऐसा कहाँ है? समझ में आया? ऋषभदेव भगवान, लो! ८३ लाख पूर्व, चारित्र नहीं आया। इतनी पुरुषार्थ की तैयारी नहीं थी। ८३ लाख पूर्व। ८३ लाख पूर्व किसे कहते हैं? एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष। एक पूर्व में इतने। ८३ लाख पूर्व। एक हजार पूर्व और लाख पूर्व, ऐसा नहीं। ८३ लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। चौथे गुणस्थान में रहे या भले पंचम गुणस्थान में रहे, भले आठ वर्ष में लेते हों। चारित्र नहीं आया। तो क्या चारित्र नहीं आया तो समकिती नहीं? तो समकित हो तो तुरन्त चारित्र आ जाए, ऐसा भी है? हें?

मुमुक्षु : देशव्रतचारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : देशव्रतचारित्र आठ वर्ष में लेते हैं। आठवें वर्ष में। परन्तु मुनिपने का चारित्र नहीं हो जाता। लाखों-करोड़ों-अरबों वर्ष चले गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : शान्ति-कुन्थु-अरनाथ चक्रवर्ती, कामदेव थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो! छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं तो क्या? क्षायिक समकिती थे। मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान थे। तो भी लाखों वर्ष बाद चारित्र। परन्तु यहाँ समझण में तो वह चीज़ बताते हैं न! सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ तो चारित्र जो स्वरूप का उग्र आचरण है, वह तुरन्त ही आयेगा, ऐसा नहीं है। उसमें आया न भाई! अत्यन्तु शुद्ध उपयोग की, वहाँ चारित्र लिया न! मुनि की बात ली है। अत्यन्त शुद्ध उपयोग कल आया था। समकिती में अत्यन्त शुद्ध उपयोग नहीं है। उस ओर वह लाईन है। अत्यन्त शुद्ध-उपयोगवाला होता है। है धन्नालालजी? कहाँ? वह अत्यन्त शुद्ध-उपयोग मुनि की दशा की बात है।

अन्दर इतनी शुद्ध-उपयोग की रमणता हुई कि शुभ विकल्प का अंश जिसमें नहीं। इतनी रमणता का भाव मुनिपने का चारित्र कहने में आता है। ऐसी बात है। आहाहा! मुनिपना अर्थात् परमेश्वर पद, बापू!

मुमुक्षु : तीर्थंकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होते हैं या क्षयोपशम भी होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : होकर भी, होते हैं। न किसी को क्षायिक न हो। सबको नहीं परन्तु किसी को नहीं भी, बहुतों को होता है। सबको क्षायिक होता नहीं। क्योंकि तीसरे नरक में से (जो) तीर्थंकर निकलते हैं, उन्हें क्षायिक नहीं होता। क्षयोपशम लेकर आते हैं। फिर इस भव में क्षायिक होता है, परन्तु बहुत तो क्षायिक ही है।

यह शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ये सब क्षायिक समकिती हैं। ऋषभदेवभगवान क्षायिक समकिती हैं। समझ में आया? यह तो एक न्याय बाकी रह गया न! समकिती तीसरे नरक में जाता है, तीर्थंकरगोत्र बँधा हो। समकिती है, अनुभव है। क्षायिक समकित पहले अभी नहीं आया परन्तु क्षयोपशम है। फिर तीर्थंकरगोत्र बँधा है। नरक का आयुष्य पहले बँध गया। तीसरे नरक में जाता है। भगवान कहते हैं, तीसरे नरक में जाता है, वहाँ तो अन्दर मिथ्यात्वी होकर पहले रहता है। फिर समकित आ जाता है।

मुमुक्षु : जाने के बाद (समकित) होता है या लेकर जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित लेकर जाता है। परन्तु तीर्थंकर तो यहाँ से बनता है। हाँ, बन गया। समकिती है परन्तु वहाँ मिथ्यात्व हो गया। गये तो मिथ्यात्व हो गया। हाँ, हाँ, छूट गया। तीसरे नरक में समकित सहित नहीं जा सकते, यह ऐसी स्थिति है।

यहाँ तो दूसरा कहना है। क्षयोपशम समकित लेकर निकलता है। श्रेणिक राजा क्षायिक समकित लेकर पहले नरक में गये, तो वे आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। तो क्षायिक समकित तो तीन ज्ञान लेकर निकलेंगे। प्रथम तीर्थंकर होंगे। परन्तु तीसरे नरक का जो नारकी है, तो क्षयोपशम समकित लेकर निकलेगा। वह भी तीर्थंकर होगा, तो वहाँ फिर क्षायिक होता है। तो स्वयं उसे कोई श्रुतकेवली या केवली की आवश्यकता नहीं। वह तो अपने में जब मुनिपना और चारित्र आया तो स्वयं श्रुतकेवली हो गये। तब उन्हें क्षायिक समकित होता है। कोई तीर्थंकर क्षयोपशम लेकर भी आते हैं। सब क्षायिक लेकर (नहीं) आते हैं, परन्तु अपने दृष्टान्त तो यह लिया न! शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, ऋषभदेव वे क्षायिक समकित लेकर आये और अरबों वर्ष चारित्र नहीं आया। अरबों वर्ष! कितने अरब! सत्तर लाख (करोड़) वर्ष! छप्पन हजार करोड़ वर्ष का तो एक पूर्व। ऐसे-ऐसे ८३ लाख पूर्व। ऋषभदेव भगवान को। फिर आयी नीलांजना। नीलांजना देवी नृत्य करती थी और देह छूट गयी। (ऋषभदेव भगवान को) ख्याल आ गया, ओहो! एकदम जातिस्मरण हुआ। ओहोहो! तीन ज्ञान तो थे। जातिस्मरण ख्याल में आया और प्रत्यक्ष भव को देखा, ओहो! एकदम वैराग्य हो गया। चारित्र आया। फिर एक लाख पूर्व बाकी रहा था और चारित्र लिया। इसलिए कोई कहे, समकित हो तो चारित्र ले तो समकित रहता है, ऐसा नहीं है। लोगों को सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी कीमत नहीं है और यह ले लो, यह ले लो। परन्तु क्या ले? कोई चीज़ बाहर से आती है?

यहाँ तो कहते हैं, **सम्यग्ज्ञानज्योति प्रगट करके जीव परसमय को छोड़कर...** यह राग का विकल्प जो है, वह परसमय है, विभाव है, अनात्मा है। **छोड़कर स्वसमय को ग्रहण करता है...** देखो! अन्दर स्वसमय भगवान आत्मा को ग्रहण करके, पर्याय में,

हों! पर्याय में शुद्धता का ग्रहण हुआ। अशुद्धता का नाश करके शुद्धता का ग्रहण हुआ, इसका नाम चारित्र स्वसमय कहा जाता है। आहाहा! प्रत्येक व्याख्या में अन्तर करे और फिर अपनी दृष्टि से भगवान के ऊपर खतौनी करे। भगवान ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं। **कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है;...** देखो! इस प्रकार **स्वसमय को ग्रहण करता है तो कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है;...**

भगवान आत्मा! अनुभव सम्यग्दर्शन प्रगट होने के बाद राग के विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प शान्ति को प्रगट करता है, ग्रहण करता है तो निर्विकल्प शान्ति द्वारा कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है। वह कर्मबन्धन से छूटने का उपाय, यह चारित्र है। समझ में आया? कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है। वह स्वसमय में रमणता, वही कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। कोई अपवास-बपवास किये और ऐसा कर डाला, इसलिए कर्मबन्ध छूटता है, ऐसा नहीं है। प्रकाशदासजी! है? देखो इसमें! आहाहा! नहीं, सच्चा है। यह तो कहते हैं वहाँ यहाँ का सुनते हैं। कितने ही आत्मधर्म पढ़ते हैं। यह अपने में महाराज थे। स्थानकवासी ऐसा कहे, हमारे महात्मा थे। वह आत्मधर्म पढ़े न! (दूसरे) महाराज एकान्त में आत्मधर्म बहुत ही पढ़ते हैं। बाहर में सम्प्रदाय में डर लगे। हाँ, भाई! यह तो काठियावाड़ में हमारे में बड़े महाराज थे। काठियावाड़ में हमें तो कोहिनूर कहते थे। स्थानकवासी साधु में काठियावाड़ी कोहिनूर। लोग वहाँ बात करते थे। साधु कहते हैं न वे। कबीरदास का है। उसके साथ हम बहुत रहते थे। अभी तीन महीने वहाँ रहे न। कहे न लोग बातें करते थे। (आत्मधर्म) पढ़ते हैं। परन्तु इस बात में अन्दर आना कठिन पड़ता है। सम्प्रदाय छोड़ना (कठिन पड़ता है)। आहाहा! यह पकड़ रखा है न? उसने पकड़ा है न! सम्प्रदाय कहाँ पकड़ता है!

हमें इतने वर्ष हुए। चालीस-पचास वर्ष। क्या करना? मार्ग तो दूसरा है। व्यवहार को-विकल्प को छोड़े तो स्थिरता आती है। तब सम्यग्दर्शन के बाद चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। यथार्थ देव-गुरु-शास्त्र की भी खबर नहीं। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में कहते हैं न, भाई! उस क्रम में। पहले सच्चे देव-गुरु-

शास्त्र की श्रद्धा करना, यह क्रम है। पश्चात् नौ तत्त्व की श्रद्धा करना, पश्चात् स्व-पर की श्रद्धा करना, पश्चात् स्व की श्रद्धा करना—ऐसा क्रम है। ऐसे क्रम को छोड़कर ऐसे एकदम देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा बिना चारित्र हो जाये और समकित होता है, यह तो मति की चतुराई की मूर्खता है। ऐसा लिखा है, हों! हें? लिखा है। यह लिखा है कितने में? नौ में। नौवें अध्याय में है। समझ में आया? हाँ, यह। नौवें में है, हों! अन्दर कहीं है अवश्य। दुनिया को प्रसन्न करने का है। हं.... देखो। ३२९वें पृष्ठ पर है।

कहते हैं, इतना विशेष है, पहले तो देवादि का श्रद्धान होता है। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र की श्रद्धा। यह है तो व्यवहार-विकल्प, परन्तु यह श्रद्धा होती है। पश्चात् तत्त्व का विचार होता है। पहले तो सच्चे देव कौन, गुरु कौन, शास्त्र कौन, यह खबर नहीं और सीधे सम्यग्दर्शन हो जाये तत्त्व में ऐसा होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अनुक्रम ऐसा है। और फिर तत्त्व का विचार होता है और फिर स्व-पर का चिन्तवन करते हैं और फिर केवल आत्मा का चिन्तवन करते हैं। ऐसे अनुक्रम से साधन करे तो परम्परा सच्चे मोक्षमार्ग को पाकर कोई जीव सिद्धपद को पाता है।

इस अनुक्रम का उल्लंघन करे, उसे देवादि की मान्यता का कुछ ठिकाना नहीं, बुद्धि की तीव्रता से ही तत्त्व-तत्त्व के विचार आदि में प्रवर्तता है, इसलिए अपने को ज्ञानी मानता है। और तत्त्व विचार में भी उपयोग नहीं लगाता, तथापि अपने को स्व-पर का भेदविज्ञानी विचारता है। यह स्व-पर का भी निर्णय नहीं करता, तथापि अपने को आत्मज्ञानी माने, यह सब चतुराई की बातें हैं। मानादि कषायों के साधन हैं। समझ में आया? समझ में आया? पहले सच्चे देव-गुरु कौन, इसका निर्णय करना चाहिए। अनादि का भान नहीं है इसलिए।

मुमुक्षु : यह तो हमको उलझन...

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझन क्या है? पहले सच्चे अरिहन्तदेव किसे कहते हैं, गुरु निर्ग्रन्थ मुनि चारित्रवन्त किसे कहते हैं।

मुमुक्षु : पीछी कमण्डल रखे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछी कमण्डल... कहो, समझ में आया?

और भगवान के कहे हुए शास्त्र अनेकान्त! वह शास्त्र किसे कहते हैं, इसे पहले पहिचानकर श्रद्धा अनुक्रम में पहले आती है। ऐसे के ऐसे एकदम स्व की श्रद्धा हो जाये, अनादि की है तो नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया न? पहले देवादि का श्रद्धान होता है। यह तो गुजराती है। देवादि श्रद्धान था, ऐसा है न, यहाँ गुजराती है न। हिन्दी में है। पश्चात् तत्त्व का विचार होता है। अरिहन्त भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ एक समय में तीन काल, तीन लोक को प्रिय। गुरु निर्ग्रन्थ छठवें-सातवें गुणस्थान में विराजमान अकषाय परिणाम उग्र। एक विकल्प थोड़ा होता है। इस प्रकार गुरु की सहायता, उनकी पहिचान चाहिए। और शास्त्र। पश्चात् स्व-पर का चिन्तवन करे। पहले देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे। पश्चात् तत्त्व का चिन्तवन। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष। पश्चात् स्व-पर का, और पश्चात् केवल आत्मा का चिन्तवन। इस अनुक्रम से यदि साधन करे तो परम्परा सच्चे मोक्षमार्ग को पावे। और कोई जीव सिद्धपद को पावे। इस अनुक्रम का उल्लंघन करे, देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता का भी ठिकाना नहीं। उसे नौ तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं, स्व-पर का नहीं, स्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया?

कहा न, यह तो सब चतुराई की बातें हैं। भान नहीं होता। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा (नहीं होती) और सीधे सम्यग्दर्शन हो जाये! समझ में आया? यह तो मानादि कषायों के साधन हैं। मान को पोषण करने के साधन हैं। ऐसी बात है, भाई! आहा! देखो! टोडरमलजी ने तो बहुत ही बार लिया है। मोक्षमार्ग में तो, ओहोहो! स्पष्ट बात एक ही एक कलाई (हाथ) पकड़कर। यह मार्ग ऐसा है। ऐसा पकड़ाया है। हजारों शास्त्रों का निचोड़ करके उसमें सार लिखा है।

कहते हैं, ओहो! यहाँ तो पहले सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट करके आया तो उसमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा पहले आती है। फिर नौ तत्त्व की बात-भेदवाली श्रद्धा आती है। फिर स्व-पर का विचार और फिर स्व। अकेला आत्मा अखण्डानन्द प्रभु अभेद चीज़ है, ऐसी दृष्टि करके सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन पहले प्रगट करना। आहाहा! समझ में आया? फिर परसमय को छोड़कर, फिर अभी सम्यक् हुआ तो भी परसमय

तो है। सम्यग्दृष्टि को भी सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है तो भी अभी राग का परिणमन है, वह परसमय है। समझ में आया? क्षायिक समकित हुआ। तीन ज्ञान हुए चौथे में, तो भी अशुभराग आदि, शुभराग का परिणमन है। वह परसमय है। अचारित्र है। परचारित्र है। ऐसा समकिती को भी होता है। उसे छोड़कर... समझ में आया?

स्त्री, पुत्र छोड़कर और कुटुम्ब छोड़कर, ऐसा नहीं लिया। वे तो छूटे ही पड़े हैं। तुझमें जो राग... सम्यक् हुआ, भान हुआ, चिद्घन आत्मा विकल्प से-राग से त्रिकाल में तन्मय नहीं। विभाव और स्वभाव दोनों कभी भी एकमेक हुए ही नहीं। समझ में आया? ऐसा सम्यग्ज्ञान अन्तर में से प्रगट करके, तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ। फिर परचारित्र जो रागादि का परिणमन है, उसे छोड़कर स्वरूप में लीनता करके स्वसमय को ग्रहण करता है। वह स्वसमय पर्याय है। त्रिकाल को ग्रहण करता है, वह तो यहाँ लिया है सम्यग्ज्ञान। परन्तु स्वरूप की स्थिरता ग्रहण करता है। वीतराग पर्याय ग्रहण करता है। अरागी दशा ग्रहण करता है, इसका नाम चारित्र है। समझ में आया?

लोग अभी चारित्र की बहुत ही गड़बड़ कर देते हैं। बस, यह वस्त्र छोड़े तो साधु हो गये। यह कहे नग्न हो गये तो साधु हो गये। एक भाई आज रास्ते में एक शब्द कहते थे। अन्तरमग्न, वह बाहर से नग्न। एक भाई बाहर निकले, तब कहते थे। अन्तरमग्न हो, वह बाहर से नग्न होता है, तब तो बराबर है। परन्तु अन्तरमग्न है नहीं और बाहर से नग्न है, उसमें कुछ नहीं है। अपने में कुछ था। यहाँ व्याख्यान चलता था, तब कहते थे न? अन्तरमग्न स्वरूप में। पहले तो सम्यग्दर्शन में अन्तरमग्न है, पश्चात् अन्तरमग्न स्वरूप में शुद्ध-उपयोग।

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा लिया है। मुनिपना ले तो क्या होता है? शुद्ध उपयोग ग्रहण करता है, ऐसा लिया है। पंच महाव्रत ग्रहण करता है, ऐसा नहीं लिया। सुना है? मोक्षमार्गप्रकाशक में। पहले वह शुद्धउपयोग ग्रहण करता है, ऐसा लेते हैं। देखो! सातवाँ ही ऐसा होता है न, देखो! आचार्य, उपाध्याय, साधु (का सामान्य स्वरूप) देखो। विरागी होकर समस्त शुद्धोपयोग मुनिधर्म अंगीकार करके। शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके। देखो! भाषा टोडरमलजी की भाषा देखो! ऐसा नहीं कि

अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत ग्रहण करके। यह तो बाद में आते हैं। परन्तु ग्रहण करते हैं, शुद्धोपयोग मुनिधर्म। मुनिधर्म शुद्धोपयोग ग्रहण करना, वह है। आहाहा! देखो न! कितने शब्द लिये हैं। अरिहन्त में भी यह लिया है। देखो!

जो गृहस्थपना छोड़कर, मुनिधर्म अंगीकार करके;-तो मुनिधर्म कैसा? कि यहाँ शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म। यहाँ स्पष्टीकरण कर दिया। निज स्वभाव साधन द्वारा, अपने ज्ञायकस्वभाव के वीतरागी साधन द्वारा चार घाति कर्मों का क्षय किया, वह अरिहन्त है। और यह सिद्ध में भी यह लिया—गृहस्थ अवस्था छोड़कर, मुनिधर्म साधन द्वारा;—मुनिधर्म कौन सा? आचार्य, उपाध्याय, साधु के स्वरूप में स्पष्टीकरण किया। विरागी होकर, राग को छोड़कर, समस्त परिग्रह निमित्तरूप से छूटकर, शुद्ध उपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार किया, इसका नाम आचार्य, उपाध्याय और साधु है। टोडरमलजी ने यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। ऐई, हेमचन्दजी! पृष्ठ तीसरा। है तीसरा पृष्ठ। परन्तु यह टोडरमलजी का है। यह कहाँ हमारे घर का है? यह कथन अभी का है? पण्डित ने भी शास्त्र प्रमाण लिखा है। यह तो प्रवचनसार का अधिकार नहीं? पहली पाँच गाथा में, यह अधिकार यहाँ लिया है। प्रवचनसार का पहला अधिकार, वही यह अधिकार है। उन्होंने घर की बात नहीं ली है। समझ में आया? लो! प्रवचनसार में है, और कहे टोडरमलजी ने लिया है। देखो! यहाँ है। देखो!

ऐसी व्याख्या है। देखो! आहाहा! हें? पहली चारित्र की, परम शुद्ध-उपयोग है। कहाँ है? पहली पाँच गाथाएँ हैं न! एकाध (गाथा में) ऐसा प्रतिज्ञा का अर्थ है। यह आया। तीसरी गाथा में, देखो! जिन्होंने परम शुद्धोपयोग भूमिका को प्राप्त किया है, वह शब्द भी! टोडरमलजी एक भी बात अपने घर की नहीं करते। कुन्दकुन्दाचार्य-अमृतचन्द्राचार्य के शास्त्र में जो पड़ा है, वह बात करते हैं। उसमें शुद्धोपयोगरूपी मुनि धर्म अंगीकार करते हैं, यह लिखा है। वह कहाँ से लिखा है, देखो यहाँ। प्रवचनसार तीसरी गाथा का अर्थ है। देखो! विशुद्ध सत्तावाले होने से ताप से उतीर्ण हुए (अन्तिम ताप देकर अग्नि में से बाहर निकले हुए) उत्तम स्वर्ण समान शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव को प्राप्त हैं, ऐसे शेष अतीत तीर्थंकरों को और सर्व सिद्धों को ज्ञानाचार, दर्शनाचार,

चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार सहित होने से जिन्होंने आचार्य, उपाध्याय, साधु ने परम शुद्ध उपयोग भूमिका को प्राप्त किया है। परम शुद्ध उपयोग भूमिका को प्राप्त किया है, ऐसे श्रमणों को कि जो आचार्यत्व, उपाध्यायत्व और साधुत्वरूप विशेषों से विशिष्ट (भेदवाले हैं) उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ। समझ में आया? यह तो प्रवचनसार, कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं। मुनिपना आचार्य, उपाध्याय, साधु उसे कहते हैं। शुभ उपयोग राग है, वह तो मुनिपना है ही नहीं। वह राग तो अचारित्र है। आहाहा! शान्तिभाई! लो! ऐसा मुनिपना वहाँ अंगीकार करते होंगे वहाँ? ....

जिन्होंने—आचार्य, उपाध्याय, साधु ने। कुन्दकुन्दाचार्य नमस्कार करते हैं। किसे? जिन्होंने परम शुद्ध उपयोग भूमिका, आहाहा! यह पंचम काल के साधु की बात है या चौथे काल के साधु की बात है? पंचम काल की बात है। अभी शुद्ध उपयोग होता नहीं, ऐसा वे लोग कहते हैं। आठवें में। ठीक है। सातवें तक है तो आठवें में शुद्धोपयोग नहीं। यहाँ तो पहले परम शुद्ध उपयोग भूमिका प्राप्त करता है। तो आचार्य, उपाध्याय, साधुपना प्राप्त होता है। नहीं तो आचार्य, उपाध्याय, साधुपना प्राप्त नहीं होता। देखो! ऐसे श्रमणों को जो आचार्यत्व, उपाध्यायत्व, साधुत्व विशेषों से खास भेदवाले उन्हें प्रणाम करता हूँ। लो! बहुत सरस बात है। एक-एक शब्द उसमें घर की बात कहाँ की है? यह बात यहाँ करते हैं, देखो!

परसमय को छोड़कर... यह विकल्प जो राग है, उसे छोड़कर। **स्वसमय को,....** जिसने आनन्दमूर्ति भगवान में लीनता ग्रहण की है। लीनता ग्रहण की है। शुद्ध उपयोग जिन्होंने प्राप्त किया है। तो **कर्मबन्ध से अवश्य छूटता है;...** समझ में आया? **इसलिए वास्तव में (ऐसा निश्चित होता है कि) जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है।** लो! आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य। अक्षर-अक्षर परम सत्य झरता है। आहाहा! जीवस्वभाव में नियत चारित्र जो शुद्ध उपयोग। अन्दर लीनता हो गयी, वह चारित्र मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। यहाँ तो (दूसरे लोग) कहते हैं कि अभी शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। मुनि को भी नहीं होता। शुद्ध उपयोग तो आठवें में होता है। ऐसा पत्रों में बहुत ही

आता है। आहाहा! अरे भगवान! तू क्या करता है भाई? ऐसा बचाव करके भाई! तुझे नुकसान है, भाई! तेरे परिणाम में विपरीत श्रद्धा से बहुत नुकसान है। बहुत नुकसान है। इस नुकसान की इसे खबर नहीं। समझ में आया? दुनिया प्रसन्न हो, ऐसी बात है। बापू! तुझे नुकसान है, भाई! आहाहा!

जैसी स्थिति है, उससे विपरीत मान्यता करता है और चलाता है, वह सत्य में नहीं चलती। उस असत्य में बड़ा नुकसान! आहाहा! क्या हो? इस प्राणी के परिणाम में ऐसी स्थिति थी। तिरस्कार भी कैसे करे? बहुत दु:खी प्राणी है बेचारा! आहाहा! दु:ख की स्थिति अंगीकार करने के लिए तैयार है। उस पर तो करुणा होनी चाहिए। किसी प्राणी पर द्वेष नहीं। वस्तु का स्वरूप बताना, वह दूसरी बात है। व्यक्ति के प्रति विरोध विचार मत के विचार आदि भेद हों, परन्तु इसे किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं। सब भगवान है। पर्याय में भूल है, तो वह भूल उसे नुकसानकारक है। भाई! क्या करे? समझ में आया?

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनिपद में आचार्यपद में थे। वे कहते हैं। जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। अब इससे उल्टा। १५६ (गाथा)। देखो! इतना चला।

जो परदव्वम्हि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

टीका :- यह, परचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है। परचारित्र किसे कहते हैं और उसमें प्रवर्तन करनेवाले कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या है।

जो (जीव) वास्तव में मोहनीय के उदय का अनुसरण करनेवाली परिणति के वश... मोहनीयकर्म का उदय, अभी उस ओर झुकाव है। समझ में आया? **मोहनीय के उदय का अनुसरण करके परिणमित होने के कारण...** अब वश, इसकी व्याख्या की। नहीं तो परिणति तो है। और वश क्या होना? समझे? परिणति तो है परन्तु वश क्या होना, इसका स्पष्टीकरण किया। कर्म के उदय के वश हो गया। परन्तु परिणति को वश कहना, उसका पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। मोहनीय के उदय को अनुसरकर

परिणमित होने के कारण, ऐसा। रागादि विकल्प में परिणमित हुआ है। **रंजित-उपयोगवाला...** है। वह तो राग से रंगा हुआ उपयोग है। आहाहा! समझ में आया?

रंजित-(उपरक्त-उपयोगवाला)... मलिन उपयोगवाला है। भले समकिती हो। आहाहा! समझ में आया? परन्तु राग से रंगा हुआ उपयोग है, ऐसा **वर्तता हुआ,....** उसमें रहता हुआ, **परद्रव्य में शुभ या अशुभभाव को धारण करता है,...** परद्रव्य का लक्ष्य करके शुभ-अशुभभाव को प्रगट करता है और धारण करता है। समझ में आया? आहाहा! इतना स्त्री, कुटुम्ब आदि का लक्ष्य होता है तो अशुभराग होता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य होता है तो शुभभाव होता है। परन्तु वे दोनों अचारित्र हैं, परचारित्र हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **रंजित-उपयोगवाला (उपरक्त-उपयोगवाला) वर्तता हुआ,...** अपने पुरुषार्थ से राग में उल्टा वर्तता हुआ, ऐसा कहते हैं। कोई कर्म ने राग में वर्ताया है, ऐसा है नहीं। शुभ और अशुभराग में सम्यग्दर्शन होने पर भी जब तक वर्तता है, तब तक वह परचारित्र है। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य में शुभ या अशुभ भाव को धारण करता है, वह स्वचारित्र से भ्रष्ट, अपने स्वरूप से-स्थिरता से भ्रष्ट है। आहाहा! चाहे तो शुभभाव में आवे तो भी स्वचारित्र से भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-श्रद्धा का भाव, वह विकल्प भी स्वचारित्र से भ्रष्ट का भाव है। गजब बात! समझ में आया?

भाव विकार है न? परलक्ष्यी परद्रव्य का आश्रय करे, मोक्षपाहुड़ में तो ऐसा कहा है, '**परदव्वादो दुग्गई स्वदव्वादो सुग्गई**' दो इतने शब्द लिये हैं। अष्टपाहुड़ में-मोक्षपाहुड़ में। '**स्वदव्वादो सुग्गई।**' स्वद्रव्य भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप का आश्रय करके जो वीतरागता हुई, वह सुगति है। '**परदव्वादो दुग्गई।**' चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है, उनका आश्रय करने से राग-दुर्गति उत्पन्न होती है। दुर्गति अर्थात् स्वभाव की गति नहीं परन्तु विकार की गति उत्पन्न होती है। समझ में आया? संक्षिप्त शब्द है। अष्टपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़ में (गाथा १६)।

कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब काम किया है। एक-एक बात स्पष्ट! निःसन्देह यह बात है। मानो, न मानो (स्वतन्त्र है)। दूसरी कोई चीज़ घुसती नहीं। वहाँ तो यह कहा।

समझ में आया? **'परदव्वादो दुग्गई!'** आहाहा! बाद में फिर पण्डित जयचन्दजी ने थोड़ा व्यवहार का स्पष्टीकरण किया है। परन्तु वह तो परद्रव्य पर लक्ष्य जाता है, वही राग का कारण है। चाहे तो तीन लोक के नाथ हों, चाहे तो सम्मेदशिखर हो या जिनवाणी हो। वह परद्रव्य है। परद्रव्य पर लक्ष्य जाने से शुभराग ही उत्पन्न होता है। राग है, वह अपनी स्वगति नहीं। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य में शुभ या अशुभभाव को धारण करता है, वह (जीव) स्वचारित्र से भ्रष्ट ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है;... वह परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? समकिती को भी परचारित्र है न? राग है, उतना परचारित्र है। आहाहा! अभी संवर, निर्जरा किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? चारित्र कहो या संवर कहो। किसे कहते हैं, यह खबर नहीं और श्रद्धा बिना, सम्यग्दर्शन बिना ले लो व्रत, ले लो तप। बिना एक के शून्य है। ऐई दीपचन्दजी!

मुमुक्षु : यह दूसरे नम्बर के।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरे नम्बर के। ये भी नग्न दिगम्बर साधु होनेवाले थे। यह दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। इनके पिताजी का पत्र आया है। यहाँ आ गये हैं। दिल्ली, दिल्ली न? साधु। बापू! साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। आहाहा! मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ कहने का रहा नहीं कोई। समझ में आया? यह तो हम सम्प्रदाय में कहते थे। यह पद यह श्लोक। मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से होय। अभी तो मनुष्यपना क्या है। यह देह नहीं। सज्जनता का मनुष्यपना किसे कहते हैं? समझ में आया?

राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान करे तो मनुष्यपना है। उसे कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने तो १६ वर्ष में एक पाठ लिया है। १६ वर्ष में मोक्षमाला बनायी न? मोक्षमाला, १०८ पाठ बनाकर, १०८ मोती हैं न माला के! १६ वर्ष में १०८ पाठ बनाकर मोक्षमाला नाम दिया। (संवत्) १९२४ में जन्म हुआ और (संवत्) १९४० में बनाया। १९२४ में जन्म। उन्होंने एक पाठ लिखा, कि मनुष्यपना किसे कहना। समझ में आया?

तो कहे, यह पाँच इन्द्रियाँ है, यह है वह मनुष्यपना? तो कहते हैं बन्दर को भी पाँच इन्द्रियाँ हैं और उसे पूँछ इतनी लम्बी विशेष है, तो उसे बड़ा मनुष्य कहना? एक पूँछ भी विशेष है। नेमीचन्दभाई! ऐसी बात है। आहाहा! ऐई राजमलजी! सोलह वर्ष में (मोक्षमाला) बनाते थे। बहुत ही क्षयोपशम था। पूर्व का बहुत ही लेकर आये थे। ऐसा पुरुष कोई उस समय तो नहीं था। सोलह वर्ष में बनाया। तो एक पाठ में ऐसा लिखा। मनुष्यपना कहे तो किसे कहे? यह पाँच इन्द्रियाँ, वह मनुष्यपना? बन्दर को यह मिला है और दो हाथ-तीन हाथ की पूँछ मिली है। तो बड़ा मनुष्य कहना चाहिए। महा मनुष्य। बनुष्य ऐसा नहीं। मनुष्य उसे कहते है (जो) स्व-पर का विवेक करे, वह मनुष्य। 'मन्यते इति मनुष्यः' राग और आत्मा का भिन्नपना करे, वह मनुष्य है, दूसरा कोई मनुष्य है नहीं। 'मनुष्य स्वरूपेण मृगा चरंति'। आहाहा! मृगा चरंति मनुष्य स्वरूपेण। यह आता है न? श्लोक आता है। उन्हें क्षयोपशम तो १६ वर्ष में ले ली (मोक्षमाला)।

स्व-पर का भेद करे, विवेक करे वह मनुष्य। मन्यते इति मनुष्यः ज्ञायते इति मनुष्यः, स्व-पर का यथार्थ ज्ञान करे, उसे मनुष्य कहा जाता है। तो मनुष्य होना मुश्किल है तो साधु कहाँ से हो? आहाहा! धन्य अवतार! साधु हुआ तो मोक्ष हो गया। सिद्ध हो गया, सिद्ध। प्रवचनसार में लिया है न, प्रवचनसार उन पंच (रत्न) गाथा में। साधु की उत्कृष्ट दशा जहाँ है, उसे मोक्षतत्त्व कहते हैं। मोक्षतत्त्व कहते हैं, ऐसा प्रवचनसार में लिया है। अन्तिम पाँच गाथा में।

यहाँ कहते हैं, ओहो! भगवान आत्मा अपने स्वरूप में से च्युत होकर जितना शुभराग में भी परिणमन करे, वह स्वचारित्र से भ्रष्ट है। आहाहा! वीतराग मार्ग तो देखो! वीतराग कहते हैं कि हमारी भक्ति का राग तेरा स्वचारित्र से भ्रष्टपना है। समझ में आया? परद्रव्य में... **स्वचारित्र से भ्रष्ट ऐसा परचारित्र का आचरण करनेवाला कहा जाता है; क्योंकि वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति वह स्वचारित्र है...** देखो! आहाहा! वापस भाषा यहाँ आयी, लो! प्रवचनसार में था, वह यहाँ आया।

वास्तव में, स्वद्रव्य में भगवान आत्मा चैतन्य और ज्ञान का सरोवर, तालाब, समुद्र—ऐसा स्वद्रव्य। उसमें शुद्ध उपयोगरूप परिणति, वह पर्याय है, पर्याय। शुद्ध

उपयोगरूप परिणति वह स्वचारित्र है। आहाहा! समझ में आया? यह चारित्र की व्याख्या! चारित्र तो वाचक शब्द है। परन्तु वाच्य चारित्र कैसा है, वह कहते हैं। चारित्र, वह तो यहाँ तीन शब्द है। परन्तु उसका वाच्य क्या? भाव। तो कैसा भाव है? कि स्वद्रव्य में शुद्ध उपयोगरूप परिणति। भाषा तो देखो! वह अशुद्धरूप परिणति। शुभराग आदि की अशुद्धरूप परिणति, वह परचारित्र है। और भगवान आत्मा में... एक-एक तत्त्व का निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? संवर किसे कहते हैं, निर्जरा किसे कहते हैं, मोक्ष किसे कहते हैं, साधु पद किसे कहते हैं? किसी तत्त्व की खबर नहीं और सम्यग्दर्शन हो जाये?

मुमुक्षु : मुनिपना हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! मुनिपना हो जाए? अभी सम्यग्दर्शन हुआ नहीं और मुनिपना हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा निर्णय तो साधु कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका निर्णय? भव्य पहला ऐसा निर्णय करता है। उसकी बात है। साधु को क्या? साधु तो समकित दृष्टि हो गये। चारित्र हो गया। उसे तो चारित्र हुआ है। उसे निर्णय क्या करने का है?

मुमुक्षु : सम्यग्ज्ञान ज्योति क्यों कहते हैं? क्या कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले सम्यग्ज्ञान प्रगट हो गया, साधु को क्या निर्णय करने का? यह तो देखो न! उसे तो स्वद्रव्य में शुद्ध उपयोग परिणति हो गयी। वह तो चैतन्य भगवान के धाम में अन्दर रमता है, इसका नाम स्वचारित्र और स्वसमय कहने में आता है।

देखो! शुद्ध उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है। देखो! भाषा ली है। क्योंकि अभी शुद्ध उपयोग है नहीं। अभी मुनि हैं, वे सब शुभ उपयोगवाले हैं। आहाहा! गजब बात करते हैं न! अरे! तू यह क्या करता है? भाई! बापू! ऐसी बात वर्तमान में चलती है, हों! मार्ग में अन्तर नहीं चलता, भाई! मार्ग का स्वरूप ऐसा है, भाई! आहाहा! दुनिया को खबर नहीं होती। साधारण लोग बेचारे! एक तो कमाने और भोग में पड़े हों।

थोड़ा समय मिले और सुनने जाये, उसमें जो कोई सिर पर कहे, उसे मानकर बैठ जाये। इसे कुछ विचार मनन होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् कहते हैं, अरे! दुनिया के जीव का काल एक तो रोग में, भोग में, खाने में-पीने में, नींद में जाये। थोड़ा भाग रहे, वह सुनने जाये, कुगुरु लूट लेता है। यह श्रीमद् राजचन्द्र (कहते हैं)। वहाँ लूट ले कि ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। अरे भगवान! क्या कहता है भाई! मार्ग क्या है, इसकी खबर नहीं। दुनिया को बतावे। थोड़ा काल रहा हो घण्टे, दो घण्टे मुश्किल से सुनने का समय मिले। अधिक समय कहाँ है। मिले तो ऐसी विपरीतता घुसावे! कुगुरु लूट ले, ऐसा पाठ लिया है, हों! श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में थे। आहाहा! ज्ञान के बदले तप बतावे। तप में ज्ञान बतावे। तप करे, वह ज्ञान है। श्रद्धा-ज्ञान का तो ठिकाना नहीं और तप को आचरण बतावे। लोगों का जीवन लूट लेते हैं। आहाहा!

और ज्ञानार्णव में तो यहाँ तक कहा है। शुभचन्द्राचार्य मुनि। शुभचन्द्राचार्य दिगम्बर आचार्य। कुगुरु अकेले दुर्गति में नहीं जाते। गला पकड़कर कहे—जजमान को कहे कि तुम भी हमारे साथ चलो। ज्ञानार्णव है। शुभचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि का है। हमने तो सब देखा है न? सब चीज़ देखी है। उसमें ऐसा लिखा है कि कुगुरु उल्टी श्रद्धा करानेवाले स्वयं तो दुर्गति में जाते हैं, परन्तु जजमान को साथ में ले जाते हैं। जजमान अर्थात् उसे माननेवाले। चलो अभी। तुम अकेले नहीं रहो। हमारे साथ चलना है। आहाहा! भगवान मोक्ष में ले जाते हैं। यह (कुगुरु) दुर्गति में साथ में ले जाते हैं। चलो भाई! हमारे साथ। तुम भी निगोद गति में चलो। आहाहा! आचार्य ने भी करुणा से बहुत ही बात की है। शुभचन्द्राचार्य (कृत) ज्ञानार्णव में है। समझ में आया?

कहते हैं, **वास्तव में स्वद्रव्य में...** वास्तव में तो भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का धाम, ऐसे स्वद्रव्य में, **शुद्ध-उपयोगरूप परिणति...** अवस्था। शुद्ध = शुभ और अशुभ परिणामरहित। शुद्ध उपयोगरूपी पर्याय **वह स्वचारित्र है।** वह बन्ध से छूटनेवाला है, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

द्रव्यलिंगी किसे कहते हैं, भाई? परमात्मप्रकाश! सवेरे प्रश्न किया था न!

भाई—इन हुकमचन्दजी का लड़का। क्रियाकाण्ड में धर्म मानते हो। हुकमचन्दजी का लड़का। परमात्मप्रकाश नाम है। सवेरे में प्रश्न किया था। महाराज! द्रव्यलिंगी किसे कहते हैं? साथ में आया था। जंगल में जाते हैं न, साथ में आवे। द्रव्यलिंगी किसे कहते हैं कि आत्मा का भान-सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं और बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मानता है। नग्नपना रखता है, वे सब द्रव्यलिंगी कहे जाते हैं। परन्तु वे बराबर, द्रव्यलिंग अर्थात् पंच महाव्रत आदि चुस्त पालते हों तो, हों! अट्ठाईस मूलगुण चुस्त, आहार-पानी उसके लिये बनाया हो तो न ले तो उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। नहीं तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। उसके लिए आहार, पानी, चौका बनावे सवेरे-शाम ले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। भावलिंगी तो है ही नहीं। आहाहा!

ऐसा मार्ग वीतराग का सर्वज्ञ का मार्ग ऐसा है। एक ही बात है। मार्ग ऐसा है। देखो! वास्तव में भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु। अकेला ज्ञान का सागर चैतन्य रत्नाकर, वह पुण्य के विकल्प के परिणमन से रहित अपने स्वभाव की पर्याय शुद्ध उपयोगरूप परिणति अर्थात् दशा, उसका नाम भगवान चारित्र स्वसमय कहते हैं। **और परद्रव्य में सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है।** संक्षिप्त बात ली है। आहाहा! और परद्रव्य का लक्ष्य करके...। परद्रव्य में सोपराग, इसका अर्थ परद्रव्य में कुछ करते नहीं, परन्तु परद्रव्य का लक्ष्य करके **सोपराग=उपरागयुक्त; उपरक्त; मलिन; विकारी; अशुद्ध। [उपयोग में होनेवाला, कर्मोदयरूप उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् कर्मोदयरूप उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है ऐसी औपाधिक विकृति) वह उपराग है।]**

क्या कहते हैं? कर्म का निमित्त है और उसके अनुरूप विकार करता है, उस विकार को यहाँ उपराग कहा जाता है। मलिन दशा। शुभराग भी उपराग मैली/ मलिन दशा है। आहाहा! जैसे जल में काई है, वह मैल है; उसी प्रकार भगवान आत्मा में शुभराग, वह मैल है। आहाहा! अशुभराग की तो बात क्या करना? कहते हैं। **सोपराग—उपराग, मलिन परिणाम, उपयोगरूप परिणति,...** शुभरागरूपी परिणति, वह सोपराग अवस्था, **वह परचारित्र है।** वह स्वचारित्र है नहीं। ऐसी व्याख्या भी अन्यत्र नहीं मिलती। दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात! (कहीं है नहीं)। समझ में आया?

वे तो पंच महाव्रत निर्जरा का स्थान है। जाओ, वह बेचारा मर जाये उसी और उसी में। ठाणं में पाँचवें ठाणे पाठ है श्वेताम्बर में। पंच निर्जरा ठाणा। अहिंसा, सत्य, अचौर्य निर्जरा के स्थानक।

मुमुक्षु : निश्चय या व्यवहार?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुछ नहीं। वास्तव में तो व्यवहार भी नहीं। कहाँ थी वहाँ उसे कुछ निर्जरा? परन्तु ऐसा पाठ ठाणं में भगवान ने कहा, इसलिए लोग कुछ शंका नहीं कर सकते। भगवान के कहे हुए शास्त्र हैं। भगवान के कहे हुए ऐसे होते नहीं। यह छठवें गुणस्थानवाले मुनि कहते हैं कि राग में परिणति है, वह परचारित्र है। तो वीतराग क्या ऐसा कहे कि राग में हो, वह चारित्र है। ऐसा कभी नहीं कहते। जिनवाणी वीतरागभाव की पोषक है। राग की पोषक, वह जिनवाणी नहीं। वह वीतराग की वाणी नहीं। समझ में आया? अन्तरीक्ष में कहा था। पण्डितजी-फूलचन्दजी थे। बारह-तेरह हजार लोग आये थे। फाल्गुन शुक्ल दूज थी। जिनवाणी वीतरागभाव की पोषक है। जो भाव राग का पोषक हो, वह जिनवाणी—वीतराग की वाणी नहीं है। राग होता है, इसका ज्ञान करावे परन्तु राग से लाभ है, ऐसा कभी जिनवाणी में तीन काल में नहीं होता। समझ में आया?

अभी जिनवाणी की परीक्षा नहीं होती, देव की परीक्षा नहीं होती, गुरु की परीक्षा नहीं होती। आहाहा! भाई! यह तो मनुष्य का जीवन है, बापू! आहाहा! एक-एक इन्द्रिय में मनुष्यपने की अनन्त करोड़ मणिरत्न दे तो मिले नहीं। हें? ऐसा अमूल्य चेतन है। यह उसमें यदि सच्ची बात की समझण, सच्ची श्रद्धा न की तो मनुष्यपना आया, न आया (बराबर है)। चींटी और कौवे को मनुष्यपना नहीं मिला। यह मिला है। उसमें अन्तर क्या? कुछ लाभ नहीं लिया। सच्ची समझण! ऐसी डोरी सूत सुई में नहीं पिरोयी तो वह सुई हाथ नहीं आयेगी। सुई में डोरा पिरोया होगा तो हाथ आयेगी कि यह चिड़िया ले गयी है, उसकी माला में साथ में।

इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा (जिसके पास) होता है, वह चार गति में नहीं जाता। समझ में आया? भले परचारित्र हो। परन्तु सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है तो चौरासी

के अवतार में नहीं जाता। अल्प एक-दो भव में चारित्र प्रगट करके मुक्ति होगी। समझ में आया? ओहो! **सोपराग-उपयोगरूप परिणति,...** गजब बात की है! दो ही संक्षिप्त शब्द। **वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है...** पर्याय, हों! शुद्ध उपयोगरूप परिणति-पर्याय। परद्रव्य में सोपराग यहाँ भी वास्तव में ले लेना। वास्तव में परद्रव्य की ओर के लक्ष्यवाली शुभराग की परिणति, वह परचारित्र है। है? १५६। अन्तिम। अन्तर है? इस पंचास्तिकाय में अन्तर है? वास्तव में-खरेखर। परन्तु शब्द में अन्तर है। यह हिन्दी है और वह दूसरी है? हें? यह? हिन्दी है। तो यहाँ इस ओर है। हें? दो आवृत्ति में पृष्ठ में अन्तर है। यहाँ तो दो लाईनें हैं।

वास्तव में, परद्रव्य में, ऐसा लेना। पहले ऐसा आया न। **वास्तव में स्वद्रव्य में शुद्ध-उपयोगरूप परिणति, वह स्वचारित्र है और वास्तव में परद्रव्य में सोपराग-उपयोगरूप परिणति, वह परचारित्र है।** कहो, समझ में आया? चाहे तो मिथ्यादृष्टि करे या चाहे तो समकिती करे, राग का परिणमन हो, वह परचारित्र है। वह स्वचारित्र है नहीं। (अब) १५७। हें? अभी स्पष्ट करते हैं। **'जिणा परुवेंति'** ऐसा कहकर स्पष्टीकरण करेंगे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, परन्तु वीतराग ऐसा कहते हैं, ऐसा कहेंगे।

गाथा - १५७

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।।१५७।।

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिनाः प्ररूपयन्ति।।१५७।।

परचरितप्रवृत्तेर्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिषेधनमेतत् ।

इह किल शुभोपरक्तो भावः पुण्यास्रवः, अशुभोपरक्तः पापस्रव इति । तत्र पुण्यं पापं वा येन भावेनास्रवति यस्य जीवस्य यदि स भावो भवति स जीवस्तदा तेन परचरित इति प्ररूप्यते । ततः परचरितप्रवृत्तिर्बन्धमार्ग एव, न मोक्षमार्ग इति ।। १५७ ।।

पुण्य एवं पाप आस्रव आतम करे जिस भाव से।
वह भाव है परचरित ऐसा कहा है जिनदेव ने।।१५७।।

अन्वयार्थ :- [येन भावेन] जिस भाव से, [आत्मनः] आत्मा को [पुण्यं पापं वा] पुण्य अथवा पाप [अथ आस्रवति] आस्रवित होते हैं, [तेन] उस भाव द्वारा [सः] वह (जीव) [परचरित्रः भवति] परचारित्र है—[इति] ऐसा [जिनाः] जिन [प्ररूपयन्ति] प्ररूपित करते हैं।

टीका :- यहाँ, परचारित्रवृत्ति बन्धहेतुभूत होने से उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है (अर्थात् परचारित्र में प्रवर्तन बन्ध का हेतु होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा इस गाथा में दर्शाया गया है)।

यहाँ वास्तव में शुभोपरक्त भाव (-शुभरूप विकारी भाव), वह पुण्यास्रव है और अशुभोपरक्त भाव (-अशुभरूप विकारी भाव) पापस्रव है। वहाँ, पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्रवित होते हैं, वह भाव जब जिस जीव को हो, तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है—ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा) प्ररूपित किया जाता है। इसलिए (ऐसा निश्चित होता है कि) परचारित्र में प्रवृत्ति, सो बन्धमार्ग ही है; मोक्षमार्ग नहीं है॥१५७॥

गाथा - १५७ पर प्रवचन

आसवदि जेण पुण्यं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।।१५७।।

जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ समवसरण में ऐसा कहते थे। कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! देखो!

टीका :- यहाँ, परचारित्रवृत्ति बन्धहेतुभूत होने से... यह शुभराग या अशुभराग की पर्याय बन्ध का कारण है। **बन्धहेतुभूत होने से उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है...** यह मोक्षमार्ग है ही नहीं। कहो, समझ में आया?

चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प हो, पंच महाव्रत का विकल्प हो, शास्त्र पढ़ने का विकल्प हो, वे सब बन्ध के कारण हैं। समझ में आया? आहाहा! **परचारित्रप्रवृत्ति...** राग में प्रवृत्ति **बन्धहेतुभूत होने से उसे मोक्षमार्गपने का निषेध...** देखो! बन्ध का कारण हो, वह मोक्ष का कारण कैसे होगा? समझ में आया? तो व्यवहार मोक्षमार्ग बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। यह सवेरे आता है न, व्यवहार हेय। हेय है, छोड़नेयोग्य है, बन्ध का मार्ग है, व्यवहार मोक्षमार्ग निमित्त से कहा है, परन्तु है बन्ध का मार्ग। उसे मोक्षमार्ग का निषेध किया गया है। वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। **(अर्थात् परचारित्र में प्रवर्तन बन्ध का हेतु होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा इस गाथा में दर्शाया गया है)**। इस गाथा में उसका स्पष्टीकरण आयेगा। टीका सहित विस्तार। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६८, गाथा-१५७-१५८, वैशाख शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक -१८-०५-१९७०

पंचास्तिकायसंग्रह, १५७ गाथा।

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण।
सो तेण परचरित्तो हवदि त्ति जिणा परूवेंति।।१५७।।

जिनेन्द्रदेव कहते हैं, यह बात सिद्ध करते हैं।

टीका :- यहाँ, परचारित्रवृत्ति... परचारित्रप्रवृत्ति की व्याख्या शुभ और अशुभ राग कहते हैं। नीचे कहेंगे। शुभपरिणाम हो या अशुभ, वे सब परचारित्रप्रवृत्ति। **बन्धहेतुभूत होने से...** वह बन्धहेतु है। **उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है...** परन्तु यह स्पष्टीकरण करके, इसका अर्थ ही यह है कि पंच महाव्रत के परिणाम, वे शुभपरिणाम, शुभप्रवृत्ति रागवाली और अशुभपरिणाम, वह उसका विस्तार। परन्तु इसका अर्थ ही यह। यहाँ आता है न, देखो! स्पष्टीकरण क्या करते हैं! देखो!

परचारित्रप्रवृत्ति... अन्तर में स्वभाव-सन्मुख न होने से राग का विकारभाव शुभ या अशुभ। महाव्रत का या अव्रत का, दोनों शुभाशुभभाव परचारित्रप्रवृत्ति है और वह **बन्धहेतुभूत होने से...** बन्ध का कारण होने से **उसे मोक्षमार्गपने का निषेध किया गया है...** व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा, वह निमित्त से कथन कहा। वस्तु है (नहीं) अर्थात् परचारित्र में प्रवर्तन अर्थात् भगवान आत्मा अपने ज्ञान और दर्शन स्वभाव में लीन होने का चारित्र छोड़कर, परचारित्र अर्थात् शुभरूपराग और अशुभराग में प्रवर्तन करने से वह मोक्षमार्ग नहीं। ऐसा इस गाथा में दर्शाया है।

ऐसी ऊपर-ऊपर से बात कितने ही लोग करते हैं, परन्तु अन्दर में अभी उन्हें जँचता नहीं। यह सब ऊपर से अग्नि का और सब कहते हैं न लोग, भाषा ऐसी लगे लोगों कि यह धर्म अत्यन्त.... भाषा ऐसी मीठी! प्रोफेसर। ऐ शोभालालजी! समझे न? इसके विरुद्ध बहुत आया है, उस जैन गजट में। उसकी शैली ऐसी है मीठी भाषा। दस-दस हजार लोग इकट्ठे हों। पुण्य के कारण भाषा आती है। अत्यन्त विरुद्ध। अभी तक कोई धर्मी जीव हुआ ही नहीं, ऐसा स्पष्ट कहता है। अनन्त काल में। स्पष्ट बात। तो भी

लोगों को उसकी बात मीठी लगती है। लो! कैसी शैली है! कोई विचार करते नहीं। अभी तक कोई सर्वज्ञ तो नहीं, सर्वज्ञ तो हो सकता ही नहीं, केवली तो हो सकता ही नहीं, परन्तु धर्मी जितने नाम धरानेवाले आचार्य हुए, उन सबने हमको ठगाई की है। ऐसा स्पष्ट कहता है। उसकी बात भी लोगों को अच्छी लगती है। यह कौन जाने है क्या जगत! हें? ...ऐसे जगत को ऐसी भाषा और ऐसा प्रोफेसर! लोगों को उसकी भाषा ऐसी है कि लोग अंजाई जाते हैं। बाकी एकदम विरुद्ध है अत्यन्त। शोभालालजी!

मुमुक्षु : वह भी पुण्य लेकर आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य लेकर आता है। उसका दिखाव ऐसा है। ऐसे दाढ़ी, और ऐसे बाहर से ब्रह्मचारी है काया से। काया से भी ऐसे तो उसका अभिप्राय अत्यन्त झूठा है। स्त्री का संग करना, चुम्बन करना, अमुक करना। कुकर्म ऐसी बातें। ऐसी बातें कहीं सज्जन को शोभा देती है? सज्जन को भी शोभा नहीं देती। उसकी वाणी और ऐसी बात। और भोगानन्द में आनन्द ब्रह्मानन्द है। ब्रह्मानन्द की शुरुआत वहाँ से हुई है। अब ऐसी बातें करे तो भी लोगों को कैसे है कुछ खबर पड़ती नहीं। कहो, धन्नालालजी! आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जो कहते हैं, वह मार्ग तीन काल में कहीं अन्यत्र नहीं है। यहाँ तो परमात्मा-जिनेन्द्र स्वयं कहते हैं। उन्हें माने कहाँ! सर्वज्ञ होते नहीं। आचार्य सच्चे हुए नहीं, ऐसा कहता है। स्पष्ट सभा में कहता है। अभी तक के आचार्यों ने धर्मशास्त्र बनाकर अपने को ठगा है। तब अभी तक अनन्त काल में कोई धर्मी हुआ ही नहीं? सब ठगाई करनेवाले हैं? कोई सुननेवाला कोई प्रश्न करता है कुछ? यह सब अन्ध-अन्ध जगत में चलता है।

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर हैं। हैं, एक समय में तीन काल-तीन लोक जाननेवाले अनन्त सर्वज्ञ हुए हैं। और उनका अनुसरण करके आत्मा का ध्यान, शान्ति करके मोक्ष का मार्ग अंगीकार किया। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य आदि अनन्त सन्त हुए हैं। आगे नहीं प्रवचनसार में, आया है न? मोक्षमार्ग अवधारण किया है और कृतकृत्य करते हैं। ऐसा प्रवचनसार में अन्त में है। कुछ नहीं। पढ़ा है न उसने सब। आहाहा! तुम्हारे में जन्मा है न वह। शोभालालजी! वह तारणस्वामी में जन्मा, बहुत ही विरोध आया है,

इस जैन गजट में। अरे! वह तो तारणस्वामी तो जैन... जैन... जैन। हम भी जैन हैं... जैन हैं। जैन से विरोध कोई कहे, वह चार गति में निगोद में जायेगा।

मुमुक्षु : वह तो निगोद ही याद करता है। दूसरी बात ही करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद ही याद करता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यहाँ वास्तव में देखो अब शब्द। **शुभोपरक्त भाव...** ऐसा शब्द पड़ा है। शुभ उपरक्त अर्थात् शुभ मलिन भाव **(शुभ विकारी भाव)...** ऐसा स्पष्ट शब्द लिया है। संस्कृत अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। आहाहा! जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का जो विकल्प है, वह शुभरूप विकारी भाव है। यहाँ प्रश्न आया है। देखो। '**अप्पबोध**' है तो आत्मा में होनेवाला, ऐसा कहते हैं। वह कहीं जड़ में हुए नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वभाव में सम्यग्दृष्टि को भी जहाँ तक स्थिरता नहीं। वस्तु का अनुभव / भान होने पर भी जब तक शुभराग शुभ विकारीभाव में परिणमन है, वह परचारित्र प्रवृत्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह उपदेश देना परचारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश तो वाणी का है, परन्तु विकल्प परचारित्र है। आहाहा! क्या करे? पण्डितजी! उपदेश कौन दे? वाणी तो वाणी जड़ की है। परन्तु अन्दर विकल्प उठता है, वह शुभरूप शुभराग मलिन है। आहाहा! धन्नालालजी! उपदेश में विकल्प उठता है। उपदेश निर्विकल्प नहीं है। शुभराग विकल्प है। वह शुभभाव विकारीभाव है। **वह पुण्यास्त्रव है।** उससे पुण्य का आस्त्रव होता है। साता आदि के परमाणु आते हैं। उससे आत्मा की संवर-निर्जरा बिल्कुल नहीं होती। आहाहा! भारी गजब!

लोग कहे, हम उपदेश करते हैं, दूसरों को लाभ होता है, अपने को निर्जरा होती है। निर्जरा होती है। तुलसी तेरापंथी तो और ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं कि हम दूसरों को न मारें, जीव की हिंसा न करो, ऐसा नहीं कहना। परन्तु उपदेश देना। वह मारता हो तो उसे बचाना नहीं परन्तु उपदेश देना। उपदेश देने से अपने को निर्जरा होती है। यहाँ तो कहते हैं धूल में भी निर्जरा नहीं होती। आहाहा!

उपदेश तो वाणी जड़ की है। वह जड़ बोले कौन? बोले, वह दूसरा आत्मा से दूसरा जड़, वह बोले। गजब काम! हाँ, उसमें विकल्प उठता है। वह विकल्प शुभराग, शुभ विकार है। आहाहा! सुनने में भी जो राग है, वह शुभराग विकार है, ऐसी बात है। देखो! वास्तव में अर्थात् खरेखर **यहाँ वास्तव में शुभोपरक्त** अर्थात् उपरक्त अर्थात् मैल। नीचे स्पष्टीकरण है।

सोपराग=उपरागयुक्त; उपरक्त; मलिन; विकारी; अशुद्ध।[उपयोग में होनेवाला, कर्मोदयरूप उपाधि के अनुरूप विकार (अर्थात् कर्मोदयरूप उपाधि जिसमें निमित्तभूत होती है, ऐसी औपाधिक विकृति) वह उपराग है।] मलिन राग, मैला राग। आहाहा! कितनी स्पष्टता है। भगवान तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसमें रमना, वह चारित्र—स्वचारित्र है। और जितना पंच महाव्रत आदि का विकल्प उठता है, उपदेश का विकल्प उठता है, शास्त्र लिखने का विकल्प उठता है। समझ में आया? वह विकारी भाव है। **(-शुभरूप विकारी भाव) वह पुण्यास्त्रव है...** उससे पुण्य का आस्त्रव होता है।

और अशुभोपरक्त भाव (-अशुभरूप विकारी भाव) पापस्त्रव है। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, काम-क्रोध आदि भाव, वह अशुभ विकारी भाव है। पहले दया, दान, व्रत, भक्ति, सुनना, सुनाना वह विकल्प शुभ आस्त्रवभाव है—पुण्यास्त्रव है। यह अशुभ पापास्त्रव है। **वहाँ, पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्त्रवित होते हैं,...** जिस भाव से नये पुण्य और पाप आते हैं। पुण्य तो अघाति कर्म है। पाप भी घाति और अघाति दोनों हैं। दोनों आते हैं। शुभभाव से अघाति का पुण्य भी आता है और घाति का पाप भी आता है। आहाहा! हें? घाति का पाप भी शुभभाव से आता है। आहाहा!

पाप जिस भाव से आस्त्रवित होते हैं, वह भाव जब जिस जीव को हो... लो! यह पुण्य अथवा पाप जिस भाव से आस्त्रवित होते हैं, जिस भाव से नये पुण्य-पाप के रजकण आते हैं। **वह भाव जब जिस जीव को... जब जिस जीव को हो, तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है...** आहाहा! जीव ही परचारित्र है। कल कहा था न? आहाहा! गजब बात है यह! वीतरागमार्ग लोगों को अन्दर स्पष्ट चैतन्यमूर्ति भगवान वीतरागस्वभाव से भरपूर स्थित है। उसमें लीन होना, वह स्वचारित्र है। वह मोक्ष का

मार्ग है। **ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा) प्ररूपित किया जाता है।** भाषा है, देखो! **तब वह जीव उस भाव द्वारा परचारित्र है...** जीव परचारित्र है और बन्ध का मार्ग है।

ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा)... मूल पाठ में है न? '**जिणा परुवेंति**' जिनेन्द्रदेव वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा समवसरण के मध्य में भगवान ऐसा कहते थे। कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा नाम देकर, भगवान ऐसा कहते हैं, जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिनेन्द्र का मार्ग तो वीतराग भाव है। समझ में आया?

अन्तर स्वभाव भगवान की अनुभव दृष्टि और ज्ञान तथा लीनता, वह वीतरागभाव है। वह वीतरागभाव, वह मोक्ष का मार्ग है। बीच में जो यह राग आता है, व्रत का या चाहे तो दया का, दान का, प्ररूपणा का, सुनने का, वह सब शुभराग विकारयुक्त है। उससे पुण्य आता है और अशुभभाव से पाप आता है। **ऐसा (जिनेन्द्रों द्वारा)...** भाषा देखो! अनन्त जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा है। आहाहा! अनन्त जिनेन्द्र हुए हैं। उसे भान कहाँ है? अनन्त सिद्ध हुए, अनन्त जिनेन्द्र, लाखों केवली विराजते हैं। क्या खबर है? महाविदेह में परमात्मा बीस तीर्थंकर तो तीर्थंकररूप से विराजते हैं। बाकी लाखों केवली वर्तमान मनुष्यरूप से महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। पाँच महाविदेह है न! लाखों केवली विराजते हैं। आहाहा! बीस तीर्थंकर और लाखों केवली। वर्तमान मनुष्यपने में मौजूद हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे अनन्त तीर्थंकर हो गये, अनन्त केवली हो गये, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु भावलिंगी हो गये। सबका कथन यह है। जिनेन्द्रों द्वारा कथित भाव है। भाई! क्या कहे? समझ में आया? प्ररूपणा में आता है। देखो! ऐसा जिनेन्द्रों द्वारा प्ररूपित किया जाता है। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, तथापि आचार्य सन्त हैं, तो भी कहते हैं। भाई! जिनेन्द्र द्वारा, हमें शास्त्र लिखने का विकल्प आया है, वह परचारित्र है—ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? विकल्प उठते हैं, ऐसे शास्त्र का। वह शुभराग है, परचारित्र है। स्व को लाभदायक नहीं है। बन्धमार्ग है। आहाहा! किसलिए? क्या करने के लिए ऐसा भाव लाना? परन्तु भाई! आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतराग न हो, तब तक (आता है)। समझ में आया? ऐसी बात है।

इसलिए (ऐसा निश्चित होता है कि)... इस कारण से ऐसा निर्णय, निश्चय होता है कि **परचारित्र में प्रवृत्ति, सो बन्धमार्ग ही है,...** यहाँ 'ही' है। शुभभाव में प्रवृत्ति बन्धमार्ग ही है। कहते हैं कि शुभभाव में कथंचित् शुद्धता है और कथंचित् अशुद्धता है, ऐसा है नहीं। अभी पण्डित बहुत ही कहते हैं। रतनचन्दजी आदि बहुत ही लिखते हैं। अभी इसमें भी लिखा है।

मोक्षमार्ग नहीं। लो! अनेकान्त किया। यह जितना शुभविकल्प उठता है, वह जिनेन्द्रों द्वारा कथित बन्धमार्ग है; मोक्षमार्ग किंचित् नहीं। समझ में आया?

गाथा - १५८

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो।।१५८।।

यः सर्वसङ्गमुक्तः अनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन।
जानाति पश्यति नियतं सः स्वकचरितं चरति जीवः।।१५८।।

स्वचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ।

यः खलु निरुपरागोपयोगत्वात्सर्वसङ्गमुक्तः परद्रव्यव्यावृत्तोपयोगत्वादनन्यमनाः आत्मानं स्वभावेन ज्ञानदर्शनरूपेण जानाति पश्यति नियतमवस्थिततत्वेन, स खलु स्वकं चरितं चरति जीवः । यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुषे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरितमिति ।। १५८ ।।

जो सर्व संगविमुक्त एवं अनन्य आत्मस्वभाव से।
जाने तथा देखे नियत रह उसे चारित्र है कहा।।१५८।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [सर्वसङ्गमुक्तः] सर्वसंगमुक्त और [अनन्यमनाः] अनन्यमनवाला वर्तता हुआ [आत्मानं] आत्मा को [स्वभावेन] (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव द्वारा [नियतं] नियतरूप से (-स्थिरतापूर्वक) [जानाति पश्यति] जानता-देखता है, [सः जीवः] वह जीव [स्वकचरितं] स्वचारित्र [चरति] आचरता है।

टीका :- यह, स्वचारित्र में प्रवर्तन करनेवाले के स्वरूप का कथन है।

जो (जीव) वास्तव में [1]निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ, परद्रव्य से [2]व्यावृत्त उपयोगवाला होने के कारण [3]अनन्यमनवाला वर्तता

---

१. निरुपराग=उपराग रहित; निर्मल; अविकारी; शुद्ध।[निरुपराग उपयोगवाला जीव समस्त बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है तथापि निःसंग परमात्मा की भावना द्वारा उत्पन्न सुन्दर आनन्दस्यन्दी परमानन्दस्वरूप सुखसुधारस के आस्वाद से, पूर्ण कलश की भाँति, सर्व आत्मप्रदेश में भरपूर होता है।]

२. व्यावृत्त=विमुख हुआ; पृथक् हुआ; निवृत्त हुआ; निवृत्त; भिन्न।

३. अनन्यमनवाला=जिसकी परिणति अन्य के प्रति नहीं ऐसा।(मन=चित्त; परिणति; भाव)

हुआ, आत्मा को ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव द्वारा नियतरूप से अर्थात् अवस्थितरूप से जानता-देखता है; वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है; क्योंकि वास्तव में [१]दृशिज्ञप्तिस्वरूप पुरुष में (-आत्मा में) तन्मात्ररूप से वर्तना, सो स्वचारित्र है।

भावार्थ :- जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ और जिसकी परिणति पर की ओर नहीं जाती, ऐसा वर्तता हुआ, आत्मा को स्वभावभूत ज्ञानदर्शनपरिणाम द्वारा स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है; क्योंकि दृशिज्ञप्तिस्वरूप आत्मा में मात्र दृशिज्ञप्तिरूप से परिणमित होकर रहना, वह स्वचारित्र है॥१५८॥

गाथा - १५८ पर प्रवचन

अब १५८ (गाथा)। अब स्वचारित्र की बात।

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो।।१५८।।

टीका :- यह, स्वचारित्र में प्रवर्तन... भाषा देखो! भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव में प्रवर्तन, अन्तर में रमना, लीन होना, वह स्वभाव में लीन होना। वह प्रवर्तन अन्दर की प्रवृत्ति है। आहाहा! ज्ञान और दर्शन स्वभाव, उसमें प्र-विशेष, वर्तन-रमना। **यह करनेवाले के स्वरूप का कथन है।** उसका यहाँ कथन है।

जो (जीव) वास्तव में... 'यः खलु' ऐसा शब्द है न। **निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण...** जिसमें उपराग रहित निर्मल, निर्विकारी, शुद्ध, निरुपराग... नीचे अर्थ है। **निरुपराग उपयोगवाला जीव समस्त बाह्य-अभ्यन्तर संग से शून्य है...** बाह्य और अभ्यन्तर राग से भी शून्य, निमित्त संग से भी शून्य, **तथापि निःसंग परमात्मा की भावना द्वारा...** परसंग से शून्य, यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति। निःसंग परमात्मा अपने निजस्वरूप राग-विकल्प से रहित, निःसंग-संग के अभाववाली परमात्मा की भावना। अपना शुद्ध परमात्मस्वभाव की एकाग्रता द्वारा। भावना अर्थात् एकाग्रता।

---

१. दृशि=दर्शनक्रिया; सामान्य अवलोकन।

देखो! **भावना द्वारा उत्पन्न सुन्दर आनन्दस्यन्दी...** उसमें भी विवाद उठाते हैं। भावना अर्थात् चिन्तवन कल्पना है, ऐसा कहते हैं।

श्रावक को पंचम गुणस्थान में शास्त्र में ऐसा आया है कि सामायिक काल में किसी-किसी को शुद्ध उपयोग की भावना होती है। समझ में आया? ऐसा पाठ प्रवचनसार में है। उसका उल्टा अर्थ करते हैं। श्रावक समकिती आत्मज्ञानी है, वह जब सामायिक में अन्तर आनन्द में है, तब शुद्ध उपयोग की भावना होती है, ऐसा पाठ है। तो भावना का अर्थ ऐसा कहते हैं कि शुद्ध का भाव मैं करूँ, ऐसी कल्पना भाव होता है। शुद्ध उपयोग की एकाग्रता नहीं। यह वे कहते हैं। देखो! परमात्मा की भावना द्वारा, या कल्पना द्वारा? उत्पन्न सुन्दर-आनन्दस्पन्दी। आहाहा! देखो!

भावना द्वारा उत्पन्न। अन्दर परमात्मा निज आनन्दस्वरूप ध्रुव में लीनता द्वारा भावना अर्थात् लीनता-एकाग्रता द्वारा उत्पन्न सुन्दर-आनन्दस्पन्दी, सुन्दर अतीन्द्रिय आनन्द, मधुर अतीन्द्रिय आनन्द परमानन्दस्वरूप, कैसी भाषा! जयसेनाचार्य की। सुखसुधारस के आस्वाद से। आत्मा के आनन्द के सुधारस-अमृत के आस्वाद से। यह अमृत के रस के आस्वाद से। आहाहा! पूर्ण-कलश की भाँति, जैसे पूर्ण कलश भरे हैं, वैसे सर्व आत्मप्रदेश से भरपूर होता है। सर्व आत्मप्रदेश में वीतरागी आनन्द... आनन्द... आनन्द छलाछल-लबालब आता है। आहाहा! समझ में आया?

इसका नाम शुद्ध उपयोग स्वचारित्र है। (अज्ञानी) कहते हैं न कि चारित्र दुःखदायक है। यहाँ कहते हैं कि चारित्र में परम अमृत का स्वाद आता है। आहाहा! आता है न छहढाला में, नहीं? वैराग्य का हेतुभूत, वैराग्य ज्ञान का हेतुभूत, वैराग्य ज्ञान का हेतु उसे दुःखदायक गिने। अरे! तुझे चारित्र की श्रद्धा की खबर नहीं। भाई! चारित्र में बहुत दुःख है, कष्ट सहन करना पड़ता है, महापरीषह सहन करना पड़ता है, उपसर्ग सहन करना पड़ता है, जंगल में रहना पड़ता है....

अरे, सुन न! पड़े-पड़े क्या करता है? चारित्र में तो परम आनन्द का स्वाद आता है। उसका नाम चारित्र कहते हैं। देखो! क्या कहते हैं? ऐई दिलीप! यह दिलीप के पिता ने पूछा, तब इनके पुत्र ने जवाब दिया था। देखो! यह लड़का। बोले तब ऐसा बोले! पिता कहे, दिलीप! यह महाराज कहते हैं, मुनि जंगल में रहते हैं तो उन्हें सुहाता

कैसे होगा ? गोठतुं समझते हो ? पोसाता कैसे होगा ? सुहाता (कैसे होगा) ? यह जवाब देता है, अरे पापा ! मुनि को तो अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर होता है। समझ में आया ? कल तो, परसों कहता था। आनन्द आत्मा में है और खाली खाली खड्डे में लोग खोजते हैं। खाली खाबोचिया समझते हो न? पानी का खाली जीरडा। जीरडा अर्थात् खाली खड्डा। खाली खड्डा। आत्मा में आनन्द है और लोग खाली खड्डे में खोजते हैं। हमारी काठियावाड़ी भाषा बोलता है। खाली खाबोचिया। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! **निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण...** आहाहा ! जिसने अन्तर सुखामृत, सुखसुधारस के आस्वाद से, पूर्ण कलश जैसे भरा हो, वैसे आनन्द से पर्याय में तृप्त-तृप्त है। अतीन्द्रिय आनन्द से तृप्त-तृप्त है, इसका नाम चारित्र है। समझ में आया ? **ऐसा निरुपराग उपयोगवाला होने के कारण सर्वसंगमुक्त...** मुनि की बात है न ! सर्वसंगमुक्त। कोई वस्त्र के टुकड़े का संग भी नहीं। शरीर का भी अन्दर संग नहीं। **वर्तता हुआ,... सर्वसंगमुक्त वर्तता हुआ, परद्रव्य से व्यावृत्त उपयोगवाला होने के कारण...** यह रागादि विकल्प है, वह परद्रव्य है। आहाहा ! मार्ग ऐसा है, भाई ! परद्रव्य से परावृत्त-विमुख हुआ। राग से विमुख हुआ, परद्रव्य से विमुख हुआ, परद्रव्य से पृथक् हुआ, परद्रव्य से निवृत्त हुआ, परद्रव्य से निवृत्त, परद्रव्य से भिन्न। इतने अर्थ नीचे किये हैं।

यह चारित्र की व्याख्या है, स्वचारित्र। ऐ झबेरभाई ! यह सब चारित्र-बारित्र माने। वस्त्र बदलकर बैठे और चारित्र हो गया। इन सेठियों को क्या कि अपने त्याग नहीं होता और वह त्याग (किये हुए हो), इसलिए जय चारित्र, जय महाराज ! चारित्र की व्याख्या जिनेन्द्रदेव दूसरी कहते हैं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा एक समय में सर्वज्ञपद प्राप्त हैं, उन परमात्मा द्वारा कहा गया। भगवान ! यह अपने स्वरूप में इतना आनन्द अमृत का रस आता है कि परद्रव्य से तो व्यावृत्त उपयोगवाला है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, उन परद्रव्य से निवृत्त है। परद्रव्य से उपयोग को हटा लिया है। आहाहा ! भारी काम !

और **अनन्यमनवाला वर्तता हुआ,...** अब जिसकी परिणति अन्य के प्रति नहीं। राग के प्रति नहीं। आहाहा ! यह चारित्र ! देखो ! मुनिपना। चारित्र की दशा। शान्तिभाई !

आहाहा! कहते हैं, **अनन्यमनवाला...** वर्तता हुआ, मन अर्थात् चित्त, परिणति अथवा भाव। ऐसा नीचे अर्थ किया है। अनन्यमनवाला, अनन्य अर्थात् अन्य परिणति बिना। शुभराग की विकल्प की भी परिणति अर्थात् पर्याय बिना। **वर्तता हुआ, आत्मा को...** ऊपर नास्ति से बात की। **ज्ञानदर्शनरूप स्वभाव द्वारा नियतरूप से अर्थात् अवस्थितरूप से जानता-देखता है;...** देखो! आहाहा! चाहे तो उपसर्ग हो या परीषह हो बाहर में शरीर की अवस्था, परन्तु अन्तर में तो ज्ञान और दर्शन से जानने-देखने की पर्याय में प्रवर्तन है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा को ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव, ऐसा लिया न! भगवान आत्मा, उसमें जो ज्ञान विशेष चेतना, दर्शन-सामान्य चेतना—ऐसा जो स्वभाव, उसके द्वारा, उस स्वभाव द्वारा, नियतरूप से अवस्थितरूप से वहाँ स्थिर हुआ है। आहाहा! आनन्द में मग्न है। अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त सुधारस का स्वादी, अमृतरस का स्वादी, उसका नाम यहाँ स्वचारित्र और मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जानता-देखता है। अपने ज्ञान-दर्शन में स्थिर रहकर जानता-देखता है। राग और द्वेष का सम्बन्ध बिल्कुल है नहीं। अभी नौ तत्त्व में चारित्र तत्त्व कैसा है, उसकी भी खबर नहीं (तो) श्रद्धा कहाँ से सच्ची होगी? समझ में आया? और अचारित्र है, वहाँ चारित्र मान ले। उसके पास भले अचारित्र (हो) परन्तु अचारित्र को चारित्र माने तो उसकी भूल होती है। समझ में आया? जहाँ चारित्र नहीं, वहाँ बाहर की क्रिया को चारित्र मान ले। यहाँ तो कहते हैं कि उसकी अज्ञानदशा होती है। आहाहा!

जानता-देखता है। ज्ञाता-दृष्टा में रमणता करता है। सारी दुनिया चलायमान हो जाये और अन्दर वज्रपात पड़ो और अग्नि में भी शरीर डाल दे, तो भी स्वचारित्रवाला अपने ज्ञान-दर्शन में, ज्ञाता-दृष्टा में रमता है। वह चारित्र है। शरीर को घाणी में पीले। लो! आहाहा! कौन पीले? भगवान जहाँ स्वभाव में-आनन्द में रमता है, उस समय भी अनन्त आनन्द सुधारस का स्वाद है। आहाहा! दु:ख नहीं। पण्डितजी! घाणी में पीलते हैं। जगत को मरण का भय है, ज्ञानी को आनन्द की लहर है।

मुमुक्षु : जानने में तो आता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने में तो विकल्प हो तो जाने, विकल्प हो तो जाने, है तो

है। बस इतना। मुझमें नहीं है। लक्ष्य जाये। लक्ष्य जाये तो जाने कि ऐसा कुछ है। अग्नि का संयोग है बस। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा आनन्द में रहनेवाला हूँ। आहाहा! देखो! पाण्डवों। हें? पाण्डव शत्रुंजय में। यह शत्रुंजय। पाँच पाण्डव ध्यान में खड़े थे। आहाहा! धर्मराजा, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल। दुर्योधन का भानेज विरोधी आया। अग्नि में धगधगते लोहे के आभूषण पहनाये। मुनि तो आनन्द में है, कहते हैं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत भगवान आत्मा, उसमें लीनता से जैसे पर्वत में से पानी झरता है, वैसे आनन्द झरता है। आनन्द का स्वाद लेते हैं, उसका नाम स्वचारित्र है। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? यह शत्रुंजय से मोक्ष गये थे। पाँच में से दो को विकल्प हो गया। भाई को क्या हुआ होगा? यह विकल्प हुआ तो पुण्य बन्ध हो गया। सर्वार्थसिद्धि में गये। तीन मोक्ष गये। हाँ, सत्रह (तैतीस) सागर का आयुष्य, उतना संसार रह गया। इतना विकल्प उठा कि मेरे भाई को क्या होगा? इतने में तैतीस सागर रहना पड़ा। और एक मनुष्यभव भी करना पड़ा। आहाहा! हें? दो भव हो गये। तीन का मोक्ष हो गया। धर्मराजा, भीम और अर्जुन। आहाहा! अन्तर में भगवान... उपवास करते थे। आनन्द में। सुना कि भगवान नेमिनाथ मोक्ष पधारे हैं। इतना सुना और शत्रुंजय पर चढ़ गये। अहो! इतना विकल्प भी बन्ध का कारण हुआ। बस, बात यह है। तो दो भव करने पड़े। अपने मुनि थे, भाई थे धर्मात्मा। उनका क्या हुआ होगा? यह लोहे की अग्नि। इतना विकल्प उठा और दो भव करने पड़े। आहाहा! नहीं तो वह भाव तो शुभ था। पुण्यास्रव है, उससे सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। आहाहा! समझ में आया?

इतना परचारित्र हुआ। स्वचारित्र तो है। इतना परचारित्र हुआ। पुण्यास्रव हुआ। तीन गये मोक्ष और दो गये देव (सर्वार्थसिद्धि में)। देखो मार्ग! हें? साधर्मी सन्त थे। उनके प्रति प्रशस्त राग आया। ओहो! धर्मराजा, भीम, अर्जुन बड़े भाई अन्दर ध्यान में थे और अग्नि लगायी है। लोहे के आभूषण, कड़ा, मुकुट, पैर में कन्दोरा। तोडा, तोडा को क्या कहते हैं? वह पैर में। पैर में सोने का तोड़ा होता है न? सोने का टोळा। लोहे का अग्नि में। पाँचों स्वचारित्र के आनन्द में तो है ही, परन्तु उन्हें थोड़ा विकल्प उठा, साधर्मी के प्रेम से। अरे! बड़े भाई को क्या हुआ होगा? विकल्प दो भाई को (उत्पन्न हुआ)। शुभास्रव होकर दो भव हो गये। आहाहा! देखो, वीतरागमार्ग! हें?

ऐसा मुनि का मार्ग, परमात्मा के घर में ऐसा है। ऐसी बात तीन काल में कहीं होती नहीं। परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसा स्पष्टीकरण, ऐसा ख्याल अपने अतिरिक्त अन्यत्र को होता नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा में से कैसे ऐसा बाहर निकला? परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य क्यों गया? इतना परचारित्र हुआ। देह छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में गये। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानदर्शन स्वभाव द्वारा नियतरूप से अवस्थित अन्दर में रहने से जानते-देखते हैं। केवलज्ञानी जैसे लोकालोक को जानते-देखते हैं; वैसे चारित्रवन्त धर्मी जीव... प्रतिकूलता-अनुकूलता जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। सब ज्ञेय है। ज्ञेयरूप से ज्ञानी स्व और पर को जानते-देखते हैं। आहाहा! इसका नाम स्वचारित्र और मोक्ष का मार्ग है। भाई! समझ में आया? लोगों ने तो कुछ का कुछ सस्ता कर दिया। शरीर में बाहर हो वस्त्र छोड़ दे और नग्न हो जाये। थोड़ी दया आदि के परिणाम हों तो हो जाये चारित्र। आहाहा! अरे भाई! ऐसा तो अभव्य भी करता है। उसमें चारित्र कहाँ आया? समझ में आया?

आनन्दघनजी कहते हैं। 'कोई कहे ठवीअे विविध क्रिया करी, पण अनेकांत लोचन न देखे, ऐसी अनेकान्त क्रिया करे बापडा, रळवळे चौगति मांही लेखे, धार तलवारनी, सोहेली दोहेली चौदमां जिन तणी चरण सेवा, धार तलवारनी, सोहेली-दोहेली चौदमाँ जिन तणी चरण सेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा, धार पर नाचता।....' यह तो बहुत बाजीगर गया धार ऊपर नाचे पैर में लेप आदि करके। परन्तु यह धार पर नाचते देख बाजीगरा सेवना धार पर रहे न देवा।

परन्तु भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति में रहना, लीन होना वह देवों का भी काम नहीं, ऐसा कहते हैं। देवों को चारित्र नहीं होता न? समझ में आया? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के झरने जहाँ झरें, सुधामृत के स्वाद में निर्विकल्प अनुभव पीते हैं, इसका नाम चारित्र कहते हैं। संवरतत्त्व की श्रद्धा में ऐसा संवर आता है। नौ तत्त्व में संवर की श्रद्धा, ऐसे चारित्र को संवर कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी संवरतत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। निर्जरातत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। अपवास किये तो निर्जरा हो गयी। धूल भी नहीं होती। सुन तो सही!

भगवान आत्मा, यह पहले सब आ गया है नव तत्त्व की व्याख्या। फिर यह मोक्षमार्ग की व्याख्या। ओहो! मार्ग तो लोगों को दुष्कर लगे परन्तु ऐसा दुष्कर है नहीं। है तो सरल चीज़, परन्तु लोगों ने यह समझ में लिया ही नहीं न! बाकी ऐसा लगे, आहा! यह तो एकान्त है, एकान्त है। अरे भगवान! एकान्त किसे कहते हैं? स्वयं को छूटने का यह रास्ता। एकान्त है; इसलिए खोटा है। हमारा मार्ग अनेकान्त है। आहा! कहो, धीरुभाई! लो! यह चारित्र! आहाहा! चारित्र ले नहीं सकते, वह दूसरी बात है परन्तु चारित्र कैसा है, इसकी श्रद्धा तो यथार्थ होनी चाहिए न! समझ में आया? चारित्र हो नहीं सकता, वह तो अपनी पुरुषार्थ की कमी से ले नहीं सकता। परन्तु चारित्र कैसा है, उसकी प्रतीति और यथार्थ श्रद्धा तो होनी चाहिए न! श्रद्धा में ऐसा आता है। मैं तो स्वरूप में रमूँ, तब कर्म छूटेंगे। श्रद्धा ऐसी है। राग करूँ तो कर्म से छूट जाएगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अभी (समयसार) १७-१८ गाथा का वाँचन हुआ था। वहाँ खण्डवा न? दाहोद... दाहोद। दाहोद, तुम थे न वहाँ? दाहोद में अभी वाँचन हो गया। वहाँ ऐसा आया। दाहोद के लोगों को अभी तो प्रेम बहुत ही है। दाहोद क्या कहलाता है? रतलाम। यह क्या दूसरा कहलाये, मलकापुर। रतलाम, वहाँ अन्तरिक्ष। लोग बहुत ही सुनते हैं। फिर जँचे, न जँचे वह अलग बात, परन्तु सुनते थे। स्वामीजी कुछ बात कहते हैं, वह सुनो। हजारों लोग हों। क्या कहते हैं? १७वीं-१८वीं गाथा दाहोद (में) तीन व्याख्यान हुए थे, फिर वहाँ गये थे।

आहाहा! आत्मा की श्रद्धा अनुभव में ऐसी होती है कि इस आत्मा में रमना, स्थिर होना, रमणता करूँगा तब कर्म छूटेंगे। कोई पंच महाव्रत के विकल्प करूँ तो कर्म छूटेंगे, ऐसी श्रद्धा नहीं होती।

मुमुक्षु : ऐसी श्रद्धा हो तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मिथ्याश्रद्धा हुई। १७-१८ गाथा। समझ में आया?

यहाँ कहते है, **वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है;...** आहाहा! धन्य अवतार! हें? उसने चारित्रपना ग्रहण किया। आनन्द में रमता है। ओहोहो! सफल

मनुष्यदेह वहाँ। दिलीप, दिलीप कल कहता था कि इस मनुष्यपने में यदि आत्मा का कुछ नहीं करे तो ढोर जैसा है। कल ऐसा कहता था। बोलता था, बोले ऐसा! ढोर जैसा है। कल शाम को कहता था। समझ में आया? आहाहा! पशु में और उसमें कहाँ अन्तर है? कल दृष्टान्त नहीं दिया था? हाथी को चूरमा और घास दोनों दिये। दृष्टान्त दिया है न समयसार में। हाथी को चूरमा... चूरमा समझते हो? गेहूँ के लड्डू और घास दोनों मिलाकर खाता है। अविवेकी को भान नहीं है। इसी प्रकार अज्ञानी आनन्द का स्वाद न लेकर, यह शुभ और अशुभराग का स्वाद लेता है। वह पशु जैसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब सेठिया भी ऐसा कहे? बाहर में सेठिया है, वह कहाँ काम आवे? हें? वस्तु तो जैसी है, वैसी है। पण्डितजी! आहाहा!

कहते हैं, जैसे अकेले घास को खानेवाला चूरमा का विवेक नहीं करता; इसी प्रकार अज्ञानी अकेले पुण्य-आचरण को अनुभव करनेवाले आनन्द को अनुभव नहीं करता। भगवान राग से भिन्न आनन्द का अनुभव नहीं करता, वह मिथ्यादृष्टि है। हाँ, आहाहा! समझ में आया? उसे ढोर जैसा कहा। लो! पशु हाथी। चौदह बोल में अन्त में पशु कहा न! चौदह बोल में। पशु ही कहा है। यह, प्रभु! तेरी आनन्द की चीज़ तेरे भाग्य में तो आनन्द आया है। तेरे भाग में पुण्य-पाप भाग है नहीं। ऐसी तेरी चीज़ है। ऐसा छोड़कर राग के पुण्य में आचरण में तेरी प्रतीति और अनुभव है नहीं। आहाहा!

आचार्य तो जैसा है वैसा कहते हैं। उन्हें कोई चन्द-फन्दा कराना है कहीं? कि भाई! यह प्रसन्न होगा तो चन्द कर दे। चन्दा होना हो तो हो, न हो तो उन्हें क्या? आहाहा! समझ में आया? दुनिया प्रसन्न हो न प्रसन्न! सुननेवाले सेठिया दूसरे प्रसन्न हों तो पैसा खर्च करे। ऐई! शोभालालजी! पैसा तो खर्च होनेवाले हों तो खर्च होंगे। जहाँ परमाणु जानेवाले हैं, वहाँ जायेंगे ही। तुझे क्या है? आहाहा! भगवान! तुझमें तो आनन्द पड़ा है न, नाथ! आहा! उस आनन्द का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है और आनन्द का उग्ररूप से अनुभव करना, वह चारित्र है। ऐसी बात है। समझ में आया?

कितने शब्द प्रयोग किये हैं, देखो न! **सुन्दर-आनन्दस्यन्दी परमानन्दस्वरूप सुखसुधारस के आस्वाद से...** कलश जैसे भरे हैं। यह कलश है न, देखो! यह भी कलश है। उसमें आत्मा आनन्द का कलश भरा है। समझ में आया? जैसे एक कलश

में पानी हो, कलश में पानी, तो कलश का आकार और पानी का आकार समान हो परन्तु पानी का आकार है तो भिन्न। कलश हो न काशीघाट के कलश। यह भी काशीघाट के कलश हैं। देखो! काशीघाट के कलश हों, उनमें अन्दर पानी हो तो पानी का आकार कलश जैसा होता है। परन्तु आकार पानी का पानी के कारण है, कलश के कारण नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आकार है वह पानी जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं से है। उसके कारण से नहीं। उसी प्रकार आनन्दरस भगवान आत्मा शरीर के आकार अन्दर में है परन्तु शरीर के कारण से नहीं। भगवान अपने अतीन्द्रिय आनन्द के आकार से वहाँ विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? गन्ने के रस आदि से कलश भरा है, लो न! गन्ने का रस। कलश में भरा हो पाँच सेर-दो सेर, वहाँ गन्ने बहुत आते थे, भाई! कानातलाब में। नहीं? गन्ने अरे! पूरे ढ़ेर दे जाये। पाँच सौ-सात सौ मेहमान, खाओ। एक-एक किसान कितने हैं! किसी-किसी को तो लाख-लाख की आमदनी एक वर्ष की। किसान है न। किसानों ने मन्दिर बनाया है। कुण्डला से साठ मील दूर है। वहाँ गये थे न, चार दिन रहे थे। वेदी प्रतिष्ठा हुई थी। बड़े हाथी लाये थे। कृषिकार, किसान। बहुत होशियार है। देवजीभाई! यहाँ आते हैं न? आठ घर हैं। पैंसठ हजार का दिगम्बर मन्दिर बनाया है। दिगम्बर मन्दिर, हों! और कितने-कितने भाई थे, नाम था। भूल गये। इतने गन्ने! इतने गन्ने! इतना पाक! इतना पाक! गाड़ियाँ भर-भरकर खाओ-खाओ। और सींग होती है न सींग के दाने। एक-एक किसान को। एक कहता था न, हमारे यहाँ २३०० मण गेहूँ पके हैं। गेहूँ समझते हो न? २३०० मण! एक वर्ष के गेहूँ ४५००० के चार महीने में पके। बहुत किसान, पानी बहुत है न! आठ दिन रहे या चार दिन रहे? बहुत ही लोग मेहमान को तो ऐसे हर्ष से रखते हैं।

इसी प्रकार गन्ने का रस जिसमें भरा है, ऐसा कलश। उसी प्रकार आत्मा का रस इस शरीर में भरा है। यह आत्मकलश है। ऐसे आत्मा के आनन्द के स्वभाव की लीनता आनन्द में, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं, देखो! स्वचारित्र वास्तव में यह करते हैं। उस आनन्द में लीन होकर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद करते हैं, वह स्वचारित्र

आचरते हैं। शान्तिभाई! आहाहा! लोग हैरान हो-होकर मर जाते हैं बेचारे! ऐई दीपचन्दजी! इन्हें साधु होना था न नग्नमुनि साधु। भाव हो परन्तु वस्तु की स्थिति की खबर बिना। आहाहा!

वह जीव वास्तव में स्वचारित्र आचरता है;... आहा! धन्य अवतार! धन्य सफल दशा! हें? ऐसी दशा को चारित्र कहते हैं, भाई! चारित्र न हो तो चारित्र मानना, ऐसा गजब नहीं होता। समझ में आया? चारित्र दशा उसे कहते हैं। **क्योंकि वास्तव में दृशिज्ञप्तिस्वरूप पुरुष में (-आत्मा में)...** देखो! भगवान पुरुष अर्थात् आत्मा, उसमें तो जानने-देखने का स्वभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव दृष्टाभाव पड़ा है। आहाहा! **उसमें तन्मात्ररूप से वर्तना,...** तन्मात्रपने, तन्मय होकर अन्तर में ज्ञानदर्शन में वर्तना, इसका नाम चारित्र है। कितनी व्याख्या करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं हो तो ऐसी दशा मानने में कौन सा दोष लगता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व लगता है। क्या लगता है? मिथ्यात्व लगता है। विपरीत अभिप्राय नरक और निगोद का कारण है।

मुमुक्षु : कठोर सजा!

पूज्य गुरुदेश्री : कठोर सजा भगवान कहते हैं। हम कहाँ कहते हैं, हमारे घर की बात है? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा नहीं? एक वस्त्र का डोरा रखकर यदि कोई मुनि मनावे, मुनि माने, अष्टपाहुड़ में है। 'निगोदम् गच्छति' एक तिल तुष मात्र भी वस्त्र रखे, क्योंकि उसमें साधुपना है ही नहीं। वस्त्र की जहाँ ममता है, वहाँ साधुपना है ही नहीं। समझ में आया? हें? नग्न कहाँ था अन्दर में? वीतरागता की दशा प्रगट हुई हो और उसे वस्त्र छूट गया हो और नग्नपना हो जाये, उसे यहाँ चारित्र कहते हैं। बाहर से वस्त्र छूट गये हों, परन्तु अन्दर ममता तो पड़ी है। आहाहा!

यह तो बेचारे कहते हैं। शान्तिसागर आये थे न, शान्तिसागर चौबीस घण्टे रहे थे। शान्तिसागर नहीं। यह गुजर गये वे। आचार्य आये थे। (संवत्) १९९७ के वर्ष। चौबीस घण्टे रहे थे। अरे भाई! वस्त्र तो छोड़ दिये हैं, परन्तु कर्म छूटे बिना हमारे चारित्र कैसे हो? ऐसा कहते थे। आहाहा! कर्म छूटे बिना नहीं। पुरुषार्थ से अन्दर

सम्यग्दर्शन-ज्ञान किये बिना चारित्र नहीं होता, ऐसी बात है। खबर नहीं। मूल की खबर नहीं। आहा! क्या हो?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि वास्तव में दृशिज्ञप्तिस्वरूप, नीचे है। दर्शनक्रिया सामान्य अवलोकन। दृशिक्रिया है न? दृशिज्ञप्तिस्वरूप ज्ञान। भगवान आत्मा में देखना और जानना, ऐसा पुरुष ऐसा आत्मा। देखना और जानना ऐसा निजस्वभाव, ऐसा आत्मा, उसमें लीन तन्मात्र। तन्मात्र है न। **तन्मात्ररूप से वर्तना,...** लीन होकर वर्तना। ओहो! स्वरूप में लीन... लीन... लीन। आनन्द का अनुभव करके अन्तर शान्ति में वर्तना, वह स्वचारित्र है। आहाहा!

स्वचारित्र की व्याख्या सुन-सुनकर लोगों को पसीना उतरता है। अररर! ऐसा चारित्र! समझ में आया? दीपचन्दजी! यह चारित्र। कभी सुना था? नग्न हो जाओ। हो गये। आहाहा! यह भी दीक्षा होती है न लाठी में, स्थानकवासी में।

मुमुक्षु : ...पहले यह हो जाये और फिर यह हो जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता। बाद में या पहले क्या होता है? पश्चात् भी राग से और पर से पृथक् होकर अनुभव करे तो होता है। उससे होता है? पहले श्रद्धा में विपरीतता है कि यह चारित्र है और हमने चारित्र लिया है तो दृष्टि विपरीत है। मिथ्यात्व को घोंटन है। समय-समय में मिथ्यात्वभाव का पोषक है। अनन्त संसार निगोद की गति में जाने का वहाँ मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कठोर शिक्षा!

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर शिक्षा! भगवान कहते हैं, भाई! कठोर नहीं है। मैं तो स्पष्टीकरण करता हूँ। स्पष्टीकरण किया था। जब वस्त्र का एक टुकड़ा भी हो तो उसके पास ममता है और चारित्र नहीं। तो चारित्र कहो कि श्रद्धा नहीं। और आस्रव उस समय विकल्प कितना होता है, आहार आदि लेने का होता है। तो आस्रव की श्रद्धा भी नहीं और अजीव की श्रद्धा नहीं। अजीव का संयोग चारित्र हो तो वस्त्र आदि का संयोग नहीं होता। तो अजीव की श्रद्धा भी नहीं है। अजीव की नहीं, आस्रव की नहीं, संवर की नहीं और संवर के कारण से मोक्ष होता है तो ऐसे रागवाला जो चारित्र है, वस्त्र लेने का

राग, उसे मोक्ष होता है तो मोक्ष के कार्य की श्रद्धा भी नहीं है। कार्य की नहीं, कारण की नहीं, संवर की नहीं, आस्रव की नहीं, बन्ध की नहीं, जीव की नहीं, मोक्ष की भी नहीं। नौ तत्त्व की विपरीत दृष्टि है। इसलिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं 'निगोद गच्छति' ऐसी बात है। अष्टपाहुड़ में है।

मुमुक्षु : इसमें तो देवपना चला जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी देवपना कहाँ है? यह अष्टपाहुड़ है। यह तो नाटक समयसार है। नहीं। किसी समय रखते हैं और किसी समय नहीं रखते। अष्टपाहुड़ था पहले, अभी नहीं। वहाँ से लाना न, इसलिए जरा। वे जरा दो व्यक्ति नहीं, एक व्यक्ति करे न! अब ऐसा है खाता। बेचारे चिमनभाई करे, लाते हैं। वह आना हो, तब आवे न? वास्तव में तो ऐसा भी है न।

आत्मा में। आहाहा! गजब बात करते हैं! तन्मात्रपने, तन्मात्र शब्द प्रयोग किया है न। **'तन्मात्रत्वेन'** संस्कृत है। ऐई! बात आती है, सब बात बतलाते हैं। जानने में तो सब होगा या नहीं? दृष्टिज्ञप्तिस्वरूप, उसमें से श्लोक। हें? चारित्रपाहुड़ में है न?

'जह जायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम्॥ '

यह कुन्दकुन्दाचार्य, हों! देखो! मुनि है तो यथाजातरूप है। जैसे जन्मता बालक नग्नरूप होता है, वैसे नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा के धारक हैं। तो अपने हाथ में तिल का तुषमात्र ग्रहण नहीं करते। और जो फिर थोड़ा बहुत ग्रहण करे तो मुनि ग्रहण करने से निगोद में जाता है। १८वीं गाथा, सूत्रपाहुड़। पहला दर्शनपाहुड़, दूसरा सूत्रपाहुड़, तीसरा चारित्रपाहुड़, चौथा बोधपाहुड़। १८वीं गाथा। १८वीं ख्याल था परन्तु यह सूत्रपाहुड़ में। सूत्र का विरोध करते हैं न। समझ में आया?

'निगोदम् गच्छति' पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। विशेष कहते हैं न? ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा है? ककड़ी के चोर को, कहते हैं न? नहीं, ककड़ी का चोर नहीं, बड़ा नुकसान करनेवाला है। दृष्टान्त दिया था न? राग का चोर है। कहा नहीं था? भावनगर। तख्तसिंहजी दरबार थे। चोर आये। अन्दर लूट लिया। गढ़ के ऊपर से आये। तख्तसिंहजी थे। यह कृष्णकुमार गुजर गये। उनके भावसिंह थे और

तख्तसिंह। बाहर बैठे थे। और पीते हैं न उकाला, क्या कहलाता है? कावो। बूंद-बूंद। बूंद का कावो पीते हैं न, किसी को आने न दे। बाहर बैठे थे। वह चोर तो सीढ़ी पच्चीस-तीस हाथ की लम्बी करके गढ़ के ऊपर चढ़े। निसरणी से उतरकर नीचे उतर गये और गये वहाँ। और दरबार सो रहे थे, वहाँ गये। सोने की घड़ी, बहुत हजारों की ले गये। ले गया वह। वापस फिर से वहाँ आया। फिर से आया तलवार उघाड़ी तो दरबार जाग गये। दरबार जाग गये। बाई-रानी थी। आहाहा! दरबार। अरे हम सो रहे हैं, उसमें दरबार के गढ़ में आकर यह चोरी! बड़ा गुनेहगार है। मार डालो। तख्तसिंह दरबार ने हाथ पकड़ लिया। केसरबाई थी। मुसलमान, हाथ पकड़कर ले गयी।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि वीतराग की आज्ञा चोरी करके हमारे घर में घुस गया। और तुम आत्मा का नुकसान करते हो? लोगों में ऐसा मार्ग चलाता है। 'निगोद गच्छति' ऐसा वीतराग कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! देखो! अठारहवीं गाथा है। अष्टपाहुड़ (सूत्रपाहुड़)।

मुमुक्षु : ऐसे मुनि निगोद में जाये तो गृहस्थ तो कहीं आगे जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ में मिथ्यादृष्टि हो तो। उसकी बात है न यहाँ? मानता है। उल्टी मान्यता है न? गृहस्थ कहाँ कहता है कि हम मुनि हैं। हाँ, गृहस्थ समकिती हो, चक्रवर्ती हो तो भी उस भव में मोक्ष जायेगा नहीं। एकावतारी हो जायेगा। सम्यग्दर्शन है न? श्रद्धा में विपरीतता है नहीं। हमारे पास चारित्र नहीं, भाई! वीतरागचारित्र हो, ऐसा नहीं है। स्वरूपाचरण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हं.... ऐसा। बात यह है। शूली हो गयी। गुनहगार हो गया। समझ में आया? समय हो गया।

तन्मात्ररूप से वर्तना, सो स्वचारित्र है। तन्मात्र शब्द प्रयोग किया है। अमृतचन्द्राचार्य ने (किया है)। तन्मात्र। तन्मात्र। ज्ञप्तदृष्टि के तन्मात्र, उसके स्वभाव में रमना, उसका नाम स्वचारित्र है। रागादि में रमना, वह परचारित्र बन्ध का कारण है। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६९, गाथा-१५८-१५९, वैशाख शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक -१९-०५-१९७०

पंचास्तिकाय १५८ गाथा। हाँ, क्या चलता है? चारित्र मोक्ष का मार्ग है, यह चलता है। चारित्र किसे कहते हैं?

भावार्थ :- जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ... शुभ और अशुभ जो परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति के हैं, वह परचारित्र है। बन्ध का कारण है। मुनि को जितने पंच महाव्रत, २८ मूलगुण का विकल्प है, वह शुभ उपयोग है, वह अपराध है, बन्ध का कारण है। वह मोक्ष का कारण नहीं है।

जो जीव शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ... शुद्ध उपयोग से हटकर **और जिसकी परिणति पर की ओर नहीं जाती...** यह शुभ-अशुभपरिणाम की ओर जिसकी अवस्था नहीं जाती। परिणति—दशा। अपने आनन्दस्वभाव के सन्मुख होकर शुद्धपरिणति-पर्याय उत्पन्न होती है, **ऐसा वर्तता हुआ।** सूक्ष्म बात है। चारित्र कोई साधारण चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन में अनन्त पुरुषार्थ है, परन्तु चारित्र में तो उससे अनन्तगुणा पुरुषार्थ है। समझ में आया?

अपने स्वभाव की स्थिरता अपेक्षा से सरल। सहेलुं को क्या कहते हैं? सरल। राग की क्रिया से सरल है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है। जरा सूक्ष्म बात है। वहाँ तो धवल में तो कहा न? चारित्र की पहले कीमत क्यों नहीं कहते? पहले सम्यग्दर्शन। वहाँ धवल में है। सम्यग्ज्ञान की क्यों? सम्यग्ज्ञान की पहली कीमत है। उसमें है। आहाहा! कहीं है। पश्चात् चारित्र की। चारित्र का पुरुषार्थ तो अनन्त गुणा है। परन्तु चारित्र के पहले ज्ञान के पुरुषार्थ बिना चारित्र होता नहीं। समझ में आया?

अपना चैतन्यमूर्ति पर से भिन्न, विकल्प से भिन्न। स्वलक्ष्य से आचरण जो हो। ज्ञान और दर्शनस्वभाववाला आत्मा, उसके आश्रय से लक्ष्य करके, जो पहले सम्यग्दर्शन हो और उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान हो, फिर उसमें रमणता करने से सम्यक्चारित्र होता है। कहो, शान्तिभाई! खबर नहीं क्या चारित्र है? यह वस्त्र छोड़ दे, नग्न हो जाये,

चारित्र हो गया। ऐसा तो अनन्त बार किया। मुनिव्रत धार। मुनिव्रत, वह कहीं चारित्र नहीं हुआ। समझ में आया?

कहते हैं। **शुद्धोपयोगी वर्तता हुआ...** ऐसा शब्द है न! भगवान आत्मा अपने शुद्ध ज्ञायक आनन्द के अनुभव दृष्टि में शुद्ध चैतन्य ऐसा आया है। पश्चात् स्वरूप में अन्तर रमणता जो शुद्ध-उपयोग की है, उसमें वर्तता हुआ, पुरुषार्थ से वर्तता हुआ, ऐसा कहते हैं। जिसकी परिणति परसन्मुख नहीं जाती। पंच महाव्रत आदि २८ मूलगुण विकल्प उस ओर जिसकी अवस्था नहीं जाती। ऐसा वर्तता हुआ, आत्मा को... चारित्र किसे कहते हैं, इसकी श्रद्धा तो इसे करनी पड़ेगी या नहीं? समझ में आया?

नौ तत्त्व में चारित्र को—संवर किसे कहते हैं? यह बात कहते हैं। हमारे श्रद्धा है नौ तत्त्व की। कहाँ से आयी परन्तु। चारित्र ऐसा है, उसकी तो खबर नहीं तो चारित्र की श्रद्धा कहाँ से आयी? भगवान आत्मा अपने स्वभावभूत। स्वभावभूत-स्वभाववान आत्मा। **स्वभावभूत ज्ञानदर्शनपरिणाम द्वारा...** यह ज्ञान और दर्शन जो त्रिकाल स्वभाव है। उसके परिणाम द्वारा, उसकी परिणति द्वारा, उसकी लीनता द्वारा **स्थिरतापूर्वक जानता-देखता है,...** जानना-देखना तो ठीक, परन्तु राग और द्वेषरहित जानता-देखता है। आहाहा! इसका नाम चारित्र कहते हैं। वह जीव स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है। वह भगवान आत्मा! ओहो! चारित्र में तो अनन्त पुरुषार्थ है। सम्यग्दर्शन से चारित्र की कीमत तो बहुत ही है। समझ में आया?

परन्तु पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता। अभी पर से भेदज्ञान हुआ नहीं। विकल्प से-राग से पृथक् भेदज्ञान हुआ नहीं। तो भेदज्ञान बिना स्थिर कहाँ होना, इसकी तो उसे खबर नहीं। समझ में आया? चैतन्य भगवान ज्ञान और आनन्दस्वभाव, वह विकल्प से भिन्न है, राग से भिन्न है। ऐसा राग से भिन्न जो प्रतीति में आता है, फिर उसमें लीनता होती है, वह चारित्र है। **वह जीव स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है;...** देखो! आचरण स्वरूप में रमने से आनन्द की लहर करके सुख-शान्ति का वेदन करता है। अतीन्द्रिय अकषाय परिणति का वेदन करता है, वह स्वचारित्र का आचरण करनेवाला है।

क्योंकि दृशिज्ञप्तिस्वरूप आत्मा में... जानना-देखना, ऐसा त्रिकाली भगवान स्वभाव, ऐसा आत्मा। देखो! ऐसा आत्मा। **मात्र दृशिज्ञप्तिरूप से परिणमित होकर**

रहना,... जानने-देखने की अवस्थारूप होकर रहना, **वह स्वचारित्र है।** समझ में आया? यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन कैसे होता है? और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? इसकी खबर नहीं और चारित्र आ गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, और ऐसा कहते हैं, ऐसा कि दिगम्बर में जन्मे, वे सब भेदज्ञानी तो हैं ही। जयपुर में एक (पण्डित) कहते हैं। चारित्र न करे, चारित्र न करे तो करोड़ों-अरबों वर्ष न करे। सम्यग्दर्शन हुआ तो चारित्र, कहा नहीं? ऋषभदेव भगवान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आंशिक स्वरूपाचरण, तीन ज्ञान लेकर आये थे। चारित्र नहीं हुआ। पुरुषार्थ की उग्रता अनन्त है, तब चारित्र आता है। ऐसा चारित्र बाहर से ग्रहण करे तो चारित्र आ जाता है? आहाहा!

सहजात्मस्वरूप-सहजस्वभाव ऐसी अनुभव की दृष्टि होने के पश्चात्, सहज-स्वभाव में पुरुषार्थ की उग्रता की लीनता होती है, तब चारित्र होता है। ऋषभदेव भगवान पहले तीर्थंकर को भी ८३ लाख पूर्व तक चारित्र नहीं आया। हें? ८३ लाख। ८४ लाख (आयु थी), एक लाख पूर्व रहे। ८३ लाख में कितने वर्ष जाते हैं, यह तो कहा था। अरे कितने भव। ऐसे तो उसमें कितने हों! एक पूर्व में ७० लाख (करोड़ वर्ष) और छप्पन हजार करोड़ वर्ष। पूर्व की गिनती। एक पूर्व की गिनती है। ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष, इसका एक पूर्व। ऐसे ८३ लाख पूर्व। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। शीघ्र क्या हो? शीघ्र क्या? आहा! अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, उसे कहे चारित्र ले लो। ले कहाँ से? ओहोहो! पहले समझण तो करे। श्रद्धा तो करे।

सम्यग्दर्शन-स्वरूप का अन्तर में आश्रय करने से, प्रतीति-अनुभव करके, यह आत्मा शुद्ध है, ऐसी प्रतीति, ज्ञान में भान होने से होता है। उसका नाम सम्यग्दर्शन निर्विकल्प वेदन में आता है। उसके पश्चात् स्वस्वभाव सन्मुख होकर अन्तर में लीनता की रमणता करे वह स्वचारित्र है। वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? (अब) १५९ (गाथा)।

गाथा - १५९

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा।
दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः।।१५९।।

शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत् ।

यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावभावरहितात्मा सन्, स्वद्रव्यमेकमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनोऽविकल्पत्वेन चरति, न खलु स्वकं चरितं चरति । एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चयनयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम् । यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्य प्ररूपितम् । न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात्सुवर्णसुवर्णपाषाणवत् । अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ।। १५९ ।।

पर द्रव्य से जो विरत हो निजभाव में वर्तन करे।
गुणभेद से भी पार जो वह स्व–चरित को आचरे।।१५९।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो, [परद्रव्यात्मभावरहितात्मा] परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूपवाला वर्तता हुआ, [दर्शनज्ञानविकल्पम्] (निजस्वभावभूत) दर्शनज्ञानरूप भेद को [आत्मनः अविकल्पं] आत्मा से अभेदरूप [चरति] आचरता है, [सः] वह [स्वकं चरितं चरति] स्वचारित्र को आचरता है।

टीका :- यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है।

जो योगेन्द्र, समस्त [१]मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण परद्रव्य के स्वभावरूप

---

१. मोहव्यूह=मोहसमूह [जिन मुनीन्द्र ने समस्त मोहसमूह का नाश किया होने से 'अपना स्वरूप परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित है' ऐसी प्रतीति और ज्ञान जिन्हें वर्तता है, तथा तदुपरान्त जो केवल स्वद्रव्य में ही निर्विकल्परूप से अत्यन्त लीन होकर निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेदों को आत्मा से अभेदरूप आचरते हैं, वे मुनीन्द्र स्वचारित्र का आचरण करनेवाले हैं।]

भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए, स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेद को भी आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं, वे वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं।

इस प्रकार वास्तव में [२]शुद्धद्रव्य के आश्रित, [३]अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया। और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था, वह [४]स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, [५]भिन्नसाध्यसाधन-भाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि सुवर्ण और

---

२. यहाँ निश्चयनय का विषय शुद्धद्रव्य अर्थात् शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य है, अर्थात् अकेले द्रव्य की (-परनिमित्त रहित) शुद्धपर्याय है; जैसे कि, निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है।

३. जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के) हों, वह यहाँ निश्चयनय है। जैसे कि, निर्विकल्पध्यानपरिणत (-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानचारित्र परिणत) मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि वहाँ (मोक्षरूप) साध्य और (मोक्षमार्गरूप) साधन एक प्रकार के अर्थात् शुद्धात्मरूप (-शुद्धात्मपर्यायरूप) हैं।

४. जिन पर्यायों में स्व तथा पर कारण होते हैं अर्थात् उपादानकारण तथा निमित्तकारण होते हैं, वे पर्यायें स्वपरहेतुक पर्यायें हैं; जैसे कि छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक अवलम्बन सहित) वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थगत श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान (नवपदार्थगत ज्ञान) और पंचमहाव्रतादिरूप चारित्र—यह सब स्वपरहेतुक पर्यायें हैं। वे यहाँ व्यवहारनय के विषयभूत हैं।

५. जिस नय में साध्य और साधन भिन्न हों (-भिन्न प्ररूपित किए जाऐं), वह यहाँ व्यवहारनय हैं; जैसे कि, छठवें गुणस्थान में (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक आलम्बन सहित) वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान (नवपदार्थसम्बन्धी श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान और पंचमहाव्रतादिरूप चारित्र व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है क्योंकि (मोक्षरूप) साध्य स्वहेतुक पर्याय है और (तत्त्वार्थश्रद्धानादिमय मोक्षमार्गरूप) साधन स्वपरहेतुक पर्याय है।

६. जिस पाषाण में सुवर्ण हो, उसे सुवर्णपाषाण कहा जाता है। जिस प्रकार व्यवहारनय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है; उसी प्रकार व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग

[६]सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) [७]तीर्थप्रवर्तना [८]दोनों नयों के आधीन है ॥१५९॥

निश्चयमोक्षमार्ग का साधन है; अर्थात् व्यवहारनय से भावलिंगी मुनि को सविकल्प दशा में वर्तते हुए तत्त्वार्थश्रद्धान, तत्त्वार्थज्ञान और महाव्रतादिरूप चारित्र निर्विकल्प दशा में वर्तते हुए शुद्धात्म-श्रद्धानज्ञानानुष्ठान के साधन हैं।

७. तीर्थ=मार्ग (अर्थात् मोक्षमार्ग); उपाय (अर्थात् मोक्ष का उपाय); उपदेश; शासन।

८. जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है। वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ उपचरित निरूपण किया जाता है।

प्रश्न :- सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए; अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है?

उत्तर :- जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं; उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे वस्तुस्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझ की ओर ले जाते हैं और लम्बे कथन के बदले में संक्षिप्त कथन करने के लिये भी व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया जाता है। यहाँ इतना लक्ष्य में रखनेयोग्य है कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर, बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है, उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही सत्यार्थ निरूपण मानकर, वस्तुस्वरूप को मिथ्यारीति से समझ बैठे, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं हैं।

[यहाँ एक उदाहरण लिया जाता है :— साध्य-साधन सम्बन्धी सत्यार्थ निरूपण इस प्रकार है कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तती हुई आंशिक शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। अब, 'छठवें गुणस्थान में कैसी अथवा कितनी शुद्धि होती है'—इस बात को भी साथ ही समझना हो तो विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है कि 'जिस शुद्धि के सद्भाव में, उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभविकल्प हठ बिना सहजरूप से प्रवर्तमान हो, वह छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें

गाथा - १५९ पर प्रवचन

चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

आहाहा! देखो! भेद में से अभेद करके। टीका, टीका लो!

टीका :- यह, शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति के मार्ग का कथन है। टीका यह, शुद्ध स्वचारित्र। शुद्ध स्वचारित्र (अर्थात्) रागादि की क्रिया, वह अशुद्ध परचारित्र। आहाहा! समझ में आया? यह शुद्धस्वरूप-सन्मुख की रमणता की लीनता, स्वरूप में चरना। स्वभाव शुद्ध आनन्द में रमना, चरना, जमना, लीन होना, वह स्वचारित्र प्रवृत्ति है। अन्दर में वह प्रवृत्ति है। आहाहा! राग की प्रवृत्ति तो बाह्य विकल्प आया, वह तो स्थूल प्रवृत्ति है।

शुभराग, वह भी स्थूल प्रवृत्ति अशुद्ध है। देह की प्रवृत्ति तो जड़ प्रवृत्ति है। उसके साथ कोई सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! देह का ग्रहण-त्याग ही आत्मा में नहीं है। देह को तो आत्मा कभी भी स्पर्श भी नहीं करता और देह आत्मा को कभी स्पर्श नहीं करती, अज्ञानी को भी। देह आत्मा को स्पर्शती नहीं, छूती नहीं। और आत्मा अभी, अभी तो क्या, त्रिकाल। जड़, चैतन्य को स्पर्श नहीं करता। चैतन्य जड़ को स्पर्श नहीं करता। दोनों भिन्न है। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश में तो ऐसा श्लोक लिया है। देह आत्मा को कभी स्पर्शा ही नहीं। हमारी काठियावाड़ी भाषा में अड्यो नहीं। देह आत्मा को अड़ती भी नहीं। तुम्हारी

गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।' ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाये कि 'छठवें गुणस्थान में प्रवर्तमान महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है,' तो वह उपचरित निरूपण है। ऐसे उपचरित निरूपण में से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं किन्तु उनके द्वारा जिस छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि को बताना था, वह शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।']

हिन्दी में छूता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और उससे भिन्न कहो तो राग को भी स्वभाव कभी स्पर्शा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान और आनन्द, दर्शन ऐसा स्वभाव त्रिकाली ध्रुव, उसमें राग का-पंच महाव्रत का विकल्प जो शुभ है, उसे स्पर्शा भी नहीं। आहाहा! अरे! इसकी एक समय की पर्याय भी ध्रुव को स्पर्श नहीं करती। अरे भगवान! गजब बात! समझ में आया? एक समय की शुद्ध पर्याय ध्रुव को कैसे स्पर्श करे? तो एक हो जाये। पण्डितजी! बात तो ऐसी है, भगवान! लोगों को ख्याल में आती नहीं, लोग ऐसी टीका-टिप्पणी करते हैं न? हें? चारित्र को लेना नहीं? तो चारित्र को ऐसा बना देते हैं। अरे भगवान! चारित्र किस प्रकार आवे? किसी ने इतने वर्ष में चारित्र लिया? परन्तु चारित्र कहीं बाहर से आता है या अन्दर से आता है? ऐई! शोभालालजी! यह तुम्हारी टीका करते हैं। कितने वर्ष से सुनते हैं तो कभी तुमने चारित्र लिया? वह तो कहे, हम व्रत-ब्रत लेते हैं न, ऐसा कहते हैं कितने ही, हमारे में से कोई लेता है न, ऐसा और वह न ले तो। महाव्रत लो।

एक बार व्रत की बाढ़ आयी थी फिरोजाबाद में। (संवत्) २००७ के वर्ष की बात है। ऐसा समाचार पत्र में आया था। यहाँ पाटनी का तार आया था। आगरावाले नेमीचन्द पाटनी है न? नेमीचन्द मगनमल्ल, हाँ। उनका तार आया था (संवत्) २००७ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? उन्नीस वर्ष हुए। तार आया था कि यहाँ बहुत ही सभा भरी है। और लोग आलोचना करते हैं कि निमित्त से नहीं होता, ऐसा नहीं है। उपादान-निमित्त की बड़ी चर्चा हुई है। तार आया था। दो पक्ष पड़ गये हैं। फिरोजाबाद की बात है। गुणभद्र थे न, गुणभद्र। वे ब्रह्मचारी नहीं? गुणधरलाल। किस गाँव के? कुरावली? कुरावली। गुणधरलाल। वे भी वहाँ थे। उन्होंने तो ऐसा कहा, सब कहते हैं व्रत लो, व्रत लो। फिर मुझे कहे सात प्रतिमा लो। मेरे पास सात प्रतिमा तो आयी नहीं। कहीं दिखती नहीं। ऐसा बोले, वह गुणधरलाल है न कुरावली। हम एक रात कुरावली गये थे। भाई! सात प्रतिमा ले लो। लाओ ली। परन्तु कहीं आयी नहीं। मेरे पास प्रतिमा दिखती नहीं। परन्तु प्रतिमा अर्थात् क्या?

सम्यग्दर्शन अनुभव दृष्टि बिना, निर्विकल्प आनन्द के वेदन बिना स्थिरता कहाँ

से आती है ? और स्थिरता आये बिना ऐसा महाव्रत का विकल्प भी कहाँ से आवे ? समझ में आया ? भारी गड़बड़ ! एक-एक तत्त्व में विरोध ! यह फिर यहाँ विरोध निकालेंगे। हें.... मानस्तम्भ में ऐसा रखा है। अरे भगवान ! सुन तो सही ! वह तो चित्राम है। वहाँ कहाँ मूर्ति है ? बस आलोचना करनी है ! लोगों को आलोचना करनी है।

मुमुक्षु : विरोध पक्ष के वकील को कुछ दलीत तो चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दलील तो चाहिए न। बात सच्ची है। भाई ! परन्तु कुछ सज्जनता से होना चाहिए न !

एक महिला थी, हरिजन थी हरिजन। तो बनिये के साथ विवाह हो गया। बनिया। कन्या का विवाह, विवाह के साथ ही दुकान खाली कर दी। ले ली बीच में विवाह करानेवालों ने और वहाँ सेठानी हो गयी। गाँव का लकड़हारा लकड़ी बेचनेवाला आया। सेठानी ने लकड़ी ली। चार आना, आठ आना की। सेठानी को लगा कि यह तो मेरे गाँव का है, मुझे पहिचान जाएगा। मैं हरिजन की लड़की हूँ। फिर लकड़हारा कहता है। बहिन मैं कलोगे नहीं बोलूँगा। कलोगे अर्थात् समझते हो, काठियावाड़ी में क्या भाषा है ? कोई वर्तमान विरुद्ध हो, ऐसा मैं कथन नहीं करूँ। ऐसा नहीं करूँ। वह समझ गयी। न्याय विरुद्ध नहीं। मेरी लकड़ी के तुम आठ आने नहीं देते तो कहूँगा कि ऐसा नहीं चलता। मैंने आठ आने कहे हैं तो लूँगा। परन्तु मैं कलोगे अर्थात् विरुद्ध रीति से नहीं कहूँगा। महिला को ख्याल आ गया। ख्याल आया कि यह मेरे गाँव की हरिजन की स्त्री है। ख्याल आया है तो भी ऐसा नहीं कहूँगा, ऐसा। ऐसा नहीं कहूँगा। समझ में आया ?

काठियावाड़ी ऐसी भाषा है। कलोगे नहीं कहूँ। दूसरे प्रकार से नहीं कहूँ। बहिन ! शान्ति रखना। मैं तो मेरा, मैंने आठ आने कहे हैं और छह आना आते हैं तो उसके लिए मैं दलील करूँगा। दूसरी दलील नहीं करूँगा। वह समझ गयी कि यह मेरे गाँव का है और जान गया है कि मैं हरिजन हूँ और सेठ के घर में आयी हूँ। ऐसा मनुष्य सज्जन हो, उसे ऐसे अन्याय से कहना, यह बात नहीं होती। न्याय से हो, इतनी बात कहना। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! **शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति...** भाषा देखो ! शरीर की क्रिया

तो बाहर रह गयी। जड़ की क्रिया जड़ से होती है और पंच महाव्रत आदि का विकल्प भी वास्तव में तो चेतन है। अचेतन का अर्थ राग अपने को जानता नहीं और राग ज्ञान को जानता नहीं और ज्ञान द्वारा जानने में आता है, इस कारण राग को व्यवहारचारित्र को अचेतन कहा है। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध स्वचारित्रप्रवृत्ति। परन्तु अभी वस्तु क्या है? उसमें लीन होना क्या? वस्तु की दृष्टि हुई नहीं और लीन किसमें होना? राग में तो अनादि से लीन है। उसमें क्या आया? आहाहा! मार्ग का कथन है। **जो योगीन्द्र,...** देखो! जो कोई योगीन्द्र अपने आनन्दस्वरूप में जुड़ान करनेवाले योगीन्द्र-योगीन्द्र। ओहो! ज्ञान और दर्शन स्वभाव का पिण्ड प्रभु। उसमें जुड़ान... जुड़ान समझे? एकाकार करनेवाले **योगेन्द्र, समस्त मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण...** समस्त मोहव्यूह। नीचे स्पष्टीकरण किया है। **मोहसमूह [जिन मुनीन्द्र ने समस्त मोहसमूह का नाश किया होने से...** आहाहा!

समस्त मोहसमूह का नाश किया... तो इसका अर्थ तीन कषाय का नाश किया, वह यहाँ लेना है। और अपना स्वरूप **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित है...** और विकल्प जो उठता है वृत्ति, उससे वह रहित है। जो योगीन्द्र स्वभावसन्मुख सहित है और राग से रहित है। ऐसी प्रतीति और ज्ञान जिसे वर्तता है। देखो! हाँ, ऐसी प्रतीति और ज्ञान जिसे वर्तता है। मैं तो मोहसमूह से रहित, अपना स्वरूप परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित है, मेरा भगवान स्वभाव ही पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि के विकल्प हैं, उनसे मैं रहित हूँ। ऐसी जिसे दृष्टि और प्रतीति और ज्ञान जिसे वर्तता है। तथा तदुपरान्त अब लेते हैं। देखो! आहाहा!

जो मात्र स्वद्रव्य में ही निर्विकल्परूप से अत्यन्त लीन होकर... जो मात्र, भगवान आत्मा में लीन होकर निर्विकल्परूप से अत्यन्त लीन होकर, अत्यन्त लीन होकर। यहाँ मुनिपना है न चारित्र तो, स्वचारित्र का आचरण करनेवाले हैं। लो! **निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेदों को...** क्या कहते हैं? यह वस्तु जो है भगवान, वह दर्शन-ज्ञान दो भावरूप है। परन्तु दो भेद का भी लक्ष्य न करके, भेद को अभेद करके। यह ज्ञान है और यह दर्शन है, ऐसा भेद भी नहीं। देखो! भेदों को, **निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेदों को**

आत्मा से अभेदरूप आचरते हैं,... भेद का लक्ष्य छोड़कर आत्मा में ज्ञान-दर्शन में चैतन्य में एकरूप वर्तता है। **वे मुनीन्द्र स्वचारित्र का आचरण करनेवाले हैं।** आहाहा!

अभी तो चारित्र किसे कहते हैं, यह खबर नहीं और चारित्र हो गया। आहाहा! धन्य अवतार है! बापू! चारित्र अर्थात्? आहाहा! गणधर को पूज्य है। समझ में आया? भगवान भी, पूज्य है—ऐसा बताते हैं। चारित्र पूज्य है। समझ में आया? कहते हैं, **मोहव्यूह से बहिर्भूत होने के कारण परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित...** देखो! यह पुण्य-पाप के विकल्प तो परद्रव्य का स्वभाव है। अपना निजस्वभाव यहाँ ज्ञान-दर्शन स्वभाव अपना है न? अपना ज्ञान-दर्शन स्वभाव है और रागादि परद्रव्य के स्वभाव हैं। निजस्वभाव नहीं। देखो! पंच महाव्रतादि के विकल्प! आहाहा! मुनि की बात!

कहते हैं कि **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से...** देखो! भाव है न? परद्रव्य के भावों से यह शुभरागादि विकल्प है। **रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए,...** आहाहा! बात अभी समझने में भी कठिन पड़े। क्या कहते हैं? क्या है? यह तो परद्रव्य है। मिट्टी, धूल है। अजीव है। धूल भी साधन नहीं। यह साधन कैसा? आहाहा! यहाँ तो विकल्प साधन नहीं वहाँ फिर शरीर की क्रिया साधन कहाँ से आयी? वह खानियाचर्चा में प्रश्न उठा है। खानियाचर्चा में पहला प्रश्न उठा था। जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? ऐई! पण्डितजी! खानियाचर्चा पढ़ी है या नहीं? व्यवहार से कहने में आता है कि व्यवहार भी मोक्षमार्ग है। अर्थात् है नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार है।

कहते हैं, **परद्रव्य के स्वभावरूप भावों से रहित स्वरूपवाले वर्तते हुए,...** स्वरूपवाला वर्तता हुआ, आनन्द में वर्तता हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द में वर्तता हुआ। आहाहा! **स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए...** देखो! स्वद्रव्य को एक को ही। कारणपरमात्मा चैतन्य भगवान, ऐसे एक द्रव्य को ही। आहाहा! ऐई, परमात्मप्रकाश! वह परमात्मा को आचरता है, ऐसा कहते हैं। देखो! स्वद्रव्य अकेला ही परमात्मा है। कारणपरमात्मा स्वद्रव्य। **स्वद्रव्य को एक को ही...** यह स्वस्वभाव द्रव्य जो है, उसे एक को ही। दूसरे विकल्प को नहीं। आहाहा!

एक को ही,... ऐसा शब्द पड़ा है न वापस? निश्चय। **अभिमुखता से अनुसरते**

हुए... स्वभाव भगवान आत्मा की सन्मुख से वर्तते हुए। आहाहा! चैतन्यधाम, आनन्द का धाम भगवान। उसमें अभिमुख वर्तते हुए। आहाहा! चारित्र की व्याख्या कैसी की है, देखो! अमृतचन्द्राचार्य तो चारित्रवन्त हैं। चारित्रवन्त हैं। उनकी टीका करनेवाले चारित्रवन्त हैं। कुन्दकुन्दाचार्य चारित्रवन्त हैं। वे कहते हैं कि हमारा चारित्र तो ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

स्वद्रव्य को एक को ही... भाई! दूसरा भी आश्रय करे और यह भी आश्रय करे, ऐसा तो होय न अनेकान्त? यह तो मिथ्या अनेकान्त है। भगवान आत्मा! अन्तर्मुख वस्तु चिदानन्द आनन्दकन्द से भरपूर है, भगवान! परमात्मा साक्षात् द्रव्यस्वभाव एक को ही सन्मुख होकर अभिमुख होकर। अभिमुख-मुख उस ओर ले जाना। पर्याय को उस ओर ले जाना। आहाहा! पर से विमुख और स्व से सन्मुख। अरे.. अरे! विकल्प से विमुख और ज्ञायकभाव अन्दर आनन्दभाव से सन्मुख। **अनुसरते हुए...** लो! आया वह अनुसरण करता हुआ। वह कर्म के उदय को अनुसरण करता हुआ आया था न? यह आत्मा को अनुसरण करता हुआ। आहाहा! गजब टीका!

यह संगमरमर (के पत्थर पर) उत्कीर्ण होकर यहाँ आयेगा। यह टीका, हों! टीका और मूल श्लोक। भगवान की वाणी है। सब संगमरमर-संगमरमर की संस्कृत टीका, हों! संस्कृत। हिन्दी नहीं। गुजराती। मात्र कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक, पाँच (परमागम शास्त्र) के। पचास हजार अक्षर हैं, चार श्लोक के। और चार की टीका। एक अष्टपाहुड़ की नहीं। समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय (की) संस्कृत टीका। संगमरमर अब कब यह हुआ था, यह सवेरे प्रश्न उठा था। यह सब कब करेंगे? यह सब मनाते हैं। छह महीने तो यह हुए अभी। करते हैं। हम तो बैठे-बैठे देखते हैं कि यह मेहनत करते हैं। क्या खबर पड़े? सवेरे प्रश्न उठा था। किसी ने पूछा था कि भाई! यह अक्षर का कब करेंगे यह? संगमरमर का वर्तमान तैयार करते हैं अक्षर में तैयार करते हैं तो होगा न! छह महीने तो इसमें गये तुम्हारे प्लेन में अभी। हिम्मतभाई को साथ में रखा होगा या नहीं? यह उनके बड़े भाई हैं। आहाहा!

भगवान की वाणी है, सन्तों की वाणी है। समझ में आया? लोकोत्तर मार्ग

अनादि सनातन। आहाहा! यह वाणी जिनवाणी दया की वीतराग की पोषक है, इसलिए इसे संगमरमर में उत्कीर्ण करने का भाव हुआ। होगा तो उसके कारण से। कौन करता है? यह तो पूछते हैं। यह वजुभाई करते हैं। मुझे सवेरे प्रश्न उठा कि कोई पूछता था कि यह अक्षर लिखे गये या नहीं? भाई! मुझे कुछ खबर नहीं। कहे तो खबर पड़े। अपने को तो पूछते हैं अभी लो यह। छह महीने तो संगमरमर प्लीन्थ तक आया। अभी प्लीन्थ भी पूरा कहाँ हुआ है? प्लीन्थ कहलाता है न? क्या कहलाता है? तुम्हारी भाषा नहीं आती अपने को बहुत। यह तो देरी लगेगी बापू! अभी तो दो वर्ष ऊपर। आहाहा!

भगवान की वाणी है। सन्तों की (वाणी) अनादि सनातन। सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, वह मार्ग सन्तों ने कहा है। समझ में आया? इसलिए इस कारण जिनवाणी भी व्यवहार से पूज्य है। कहा न? दूसरे श्लोक में आता है। दूसरे श्लोक में। अपने अनेकान्त तत्त्व। दूसरे श्लोक में आता है-दूसरे श्लोक में, समयसार में। जिनवाणी भी व्यवहार से पूज्य है। व्यवहार से पूज्य है न? जैसे भगवान पूज्य है, वैसे जिनवाणी भी पूज्य है। ऐसा पूजने का विकल्प आता है। यह समयसार कलश टीका आती है। भाव तो आता है या नहीं? आता है। समझना कि यह विकल्प है। पुण्यबन्ध का कारण है। दोनों बातें समझना चाहिए। समझ में आया?

अनुसरते हुए निजस्वभावभूत दर्शनज्ञान भेद को भी... ओहोहो! **'वियप्पं अवियप्पं'** है न मूल पाठ में। कितना है? **'दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं'** दर्शन-ज्ञान जो आत्मा वस्तु है, दृष्टा-ज्ञाता दो स्वभाव है अविकल्प दो को दो न करके अभेद करके, **'वियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो'** ओहोहो! जब कुन्दकुन्दाचार्य को विकल्प होगा और जब यह अक्षर पड़ते होंगे, अलौकिक बात है। आहाहा! पोन्नूर हिल, मद्रास से अस्सी मील दूर टेकरी है। वंदेवास, लगभग दस हजार की आबादी वाला गाँव है, वहाँ से पाँच मिनिट है। तुम गये थे? तुम आये थे या नहीं? हम दो बार गये थे। उसके साथ हम दो बार गये थे। वहाँ सत्तर मोटर साथ में थी। एक हजार लोग थे।

कहा था यहाँ से कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। पोन्नूर हिल से गये थे। वहाँ के पण्डित भी कहते थे। वहाँ नीचे एक अन्यमति का मठ है। मठ... मठ। उसमें

से यह निकला कि यहाँ दो हजार वर्ष पहले एक मुनि थे, लब्धिधारी थे। वह शिलालेख उसमें से निकला। उसमें भी निकला। नीचे है न दो। एक गाँव है, वहाँ मन्दिर है। प्राचीन मन्दिर है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ दर्शन करने के लिये जाते थे। वह पुराना मन्दिर है। गढ़ पुराना हो गया, गढ़। हम वहाँ सर्वत्र गये थे। चारों ओर सब देखा। ओहो! पोन्नूर हिल के नीचे चार मील दूर एक मन्दिर है। नाम क्या है? उसका दो हजार वर्ष पुराना गढ़ है, यह कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ ऊपर से दर्शन करने आते थे। पश्चात् भिक्षा (आहार) के लिये जाते थे, इतना पुराना है। हमने सब देखा है। पूरे समूह के साथ गये थे। यह तो ऐसी वस्तुस्थिति। अन्यमति के मठ में भी ऐसा निकला। यहाँ एक महामुनि दो हजार वर्ष पहले रहते थे। महालब्धिधारी थे, इतना। लोग तो बहुत न समझे न! भगवान है न! भगवान के पास गये थे। ऐसा सब कहाँ समझे? यह लोगों को-अभी दिगम्बरों को जँचता नहीं। अभी कितने ही इनकार करते हैं, नहीं। भगवान के पास गये नहीं थे। यह तो अध्धर की बात है। अरे भगवान! क्या कहता है? जयसेनाचार्य की टीका में, यह पंचास्तिकाय है न? यह तो टीका नहीं होगी। इसमें तो अमृतचन्द्राचार्य की है। यह है। यह टीका है, देखो! टीका संस्कृत में है।

जयसेनाचार्य की टीका में, देखो! '**श्री कुमारनन्दी सिद्धांतदेवं विशेषे प्रसिद्ध-कथान्यायेन पूर्वविदेहगत्वा, पूर्वे विदेहगत्वा**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पूर्व विदेह में गये थे। देखो, संस्कृत है, संस्कृत, हों! टीका नौ सौ वर्ष पहले। वीतराग सर्वज्ञ श्री सीमन्धरस्वामी तीर्थंकर परमदेव दृष्टा। साक्षात् भगवान सर्वज्ञ को जाकर कुन्दकुन्दाचार्य ने दर्शन करके तत्मुख कमल भगवान का मुख कमल संस्कृत है। पंचास्तिकाय, नौ सौ वर्ष पहले की टीका है। कोई सोनगढ़ की नहीं। अपने नेमीचन्दजी को सब खबर पड़ती है न कि भाई यह वहाँ बड़े रूप से मुख्य है तो यह सबको कहेंगे न। '**तत्मुखकमल-विनिरकत**' समझ में आया?

भगवान के मुखकमल में से निकली। क्या? दिव्यवाणी। देखो! पंचास्तिकाय जयसेनाचार्य की टीका। नौ सौ वर्ष पहले की है। '**श्रमण अवधारित**' कुन्दकुन्दाचार्य ने दिव्यध्वनि सीधी श्रवण करके धारण की-अवधारण की। '**तदाशात**' अवधारण की-

पदार्थ। '**शुद्धात्मतत्त्वादि सारागृहित्वा**' शुद्ध आत्मा आदि सार ग्रहण कर। भगवान के पास महाविदेह में। देखो! '**पुनः अपि आ गये**' वहाँ से वापस यहाँ आये।

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने '**पद्मनंदी आदि अपर अभिधेय**' पाँच नाम हैं न? पाँच नाम। '**तत बहितत्व गौणमुख्यत्वेन**' देखो! '**अंततत्वने बहितत्व गौणमुख्यत्वेन**' अन्तःतत्त्व को मुख्य और बहिर्तत्त्व को गौण। '**प्रतिपति अथवा शिवकुमार महाराजा संक्षेप्तरुचि शिष्य प्रतिबोधनार्थ**' संक्षेप रुचि के धारक शिवकुमार महाराज थे। उनके लिये '**विश्वते। पंचास्तिकाय प्राभृतशास्त्रे यथाक्रम अधिकार शुद्धिपूर्वकयम तात्पर्यनम व्याख्यान कर्तृत्वे**' लो! यह संस्कृत है। नौ सौ वर्ष (पहले) की संस्कृत टीका है। समझ में आया?

तो कहते हैं, अहो! अपना निजस्वभावभूत। देखो! भगवान से तत्त्वार्थसार सुना था। वही बात यहाँ टीका में ली है। समझ में आया? दर्शन-ज्ञानभेद को भी आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं। यह दर्शन और ज्ञान, ऐसे भेद का भी लक्ष्य छोड़ दिया। एक चैतन्य सामान्य दर्शन और चैतन्य विशेष ज्ञान। एकरूप आत्मा का अभेद से आचरण किया। आहाहा! राग का तो विकल्प नहीं परन्तु ज्ञान-दर्शन दो गुणों का भेद भी नहीं। समझ में आया?

ऐसे आत्मा से अभेदरूप से आचरते हैं, वह वास्तव में स्वचारित्र को आचरते हैं। वह वास्तव में स्वचारित्र का आचरण करते हैं। दूसरे को स्वचारित्र होता नहीं। **इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित,...** देखो! सवेरे आया था, वह बात यहाँ आयी। **शुद्धद्रव्य के आश्रित,...** शुद्ध भगवान आत्मा के आश्रित, उसके अवलम्बन से अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले, देखो! अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले। इसका स्पष्टीकरण नीचे करेंगे। **निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया।** इसका स्पष्टीकरण। नीचे अंक (२) है न। **यहाँ निश्चयनय का विषय शुद्धद्रव्य...** एक बात। एक शुद्ध द्रव्य है, दूसरी बात—**शुद्धपर्यायपरिणत द्रव्य है,...** यह शुद्धपरिणति पर्यायसहित द्रव्य है, निश्चयनय दो, **अर्थात् अकेले द्रव्य की (-परनिमित्त रहित) शुद्धपर्याय है;...** यह भी यहाँ भाई! निश्चयनय लिया है। मोक्षमार्ग बतलाना है। **शुद्धपर्याय है,...** वह भी निश्चयनय

है। ज्ञान, दर्शन, ध्रुव सामान्य ज्ञान-दर्शन जो त्रिकाली है, वह तो ध्रुव है। उसके आश्रय से पर्याय-परिणति वीतरागी निर्मल पर्याय हुई। कहो, समझ में आया?

कोई लड़का दस बजे पूछता था कि धर्म किसे कहते हैं? अरे! अभी तक यह सब तुम्हारे समझाते हैं और अभी धर्म किसे कहते हैं, पूछता है? यह धर्म। ज्ञान-दर्शन स्वभाववाले भगवान आत्मा में लीनता करना, वह धर्म है। खबर नहीं पड़ती? खबर नहीं पड़ती, यही खबर पड़ी। इतनी खबर पड़ी। हें? परन्तु खबर नहीं पड़ती, इतनी तो खबर पड़ी न!

मुमुक्षु : इतना तो जानने में आया कि खबर नहीं पड़ती।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? मैं हूँ नहीं, इसमें इतना तो आया कि 'मैं हूँ नहीं', ऐसा ज्ञान तो आया। तो 'मैं हूँ' ऐसा उसमें आया। 'मैं हूँ नहीं।' इस नास्ति में अस्ति सिद्ध हो गयी। 'मैं हूँ नहीं।' अर्थात् 'यह मैं' और इसका अर्थ कि 'यह मैं हूँ।' समझ में आया?

'मैं पूर्ण नहीं', इसका अर्थ यह हुआ कि 'मैं पूर्ण हूँ।' समझ में आया? पूर्ण का अस्तित्व दृष्टि में आये बिना पूर्ण नहीं कहाँ से आया? आहाहा! लॉजिक से-न्याय से सिद्ध होता है परन्तु अब इस जाति की प्रणालिका न विचारे, न शोधे, न माने अन्दर में। पर के लक्ष्य से सब मानना। अपने निज निधान को भूल जाना। उसमें कुछ खबर पड़ती नहीं। राग की खबर पड़े, वह तो भटकने की चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि, **शुद्धपर्याय है; जैसे कि, निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है।** ऐसा कहा न उस पर्याय को। निर्विकल्प शुद्धपर्यायपरिणत। भगवान आत्मा ध्रुव शुद्धचैतन्य ज्ञान-दर्शन है। उसमें रागरहित अभेद गुण के दो भेद छोड़कर। अभेद अर्थात् निर्विकल्प। निर्विकल्प से अभेदरूप से शुद्धपर्यायपरिणत। वीतरागी अवस्थारूप होना, यह मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है। समझ में आया? यह मुनिमार्ग-मोक्षमार्ग है।

एक तो द्रव्याश्रय लिया। समझे? **स्वद्रव्य को एक को ही अभिमुखता से अनुसरते हुए...** पर्याय लेनी है न। त्रिकाली ज्ञायकभाव। एक समय की पर्याय का लक्ष्य

छोड़कर त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय करके, निर्विकल्प निर्मल अरागी वीतरागी शुद्ध अवस्था का परिणमन होना, वह मोक्ष का मार्ग मुनि हुआ। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष का मार्ग कोई बाहर नहीं रहता। उसकी पर्याय में परिणत वीतरागी दशा मोक्ष का मार्ग है। ऐसा कहते हैं। शरीर में नहीं रहता, विकल्प में नहीं रहता। मोक्ष का मार्ग द्रव्य और गुण में नहीं रहता। पर्याय है, अवस्था है। मोक्षमार्ग अवस्था है। मोक्ष भी एक अवस्था है। संसार भी एक अवस्था है। संसार भी एक अवस्था है। स्वरूप को छोड़कर रागादि को अपने मानना, एक समय की पर्याय जितना अपने को मानना, वह मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, वह संसार है। वह भी जीव की एक मलिन पर्याय है। और मोक्षमार्ग निर्विकल्प शुद्ध अपूर्ण पर्याय है, उसका नाम मोक्षमार्ग; और शुद्ध पूर्ण पर्याय हो, उसका नाम मोक्ष। आहाहा! गजब बात ही दूसरे प्रकार की मानो! हें? आहाहा!

बात ही दूसरी। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा। बहिरात्मा अर्थात् राग के विकल्पसहित अपने को मानना वह मिथ्यात्वभाव, वह बहिरभाव, मिथ्यात्वभाव बहिरात्मा। और विकल्परहित अभेद चिदानन्द का आश्रय करके परिणति करना, वह अन्तरात्मा, और पूर्ण परमात्मदशा। परमात्मदशा, वह पर्याय है। क्या परमात्मप्रकाश? परमात्मप्रकाश पर्याय है, द्रव्य नहीं। पर्याय है न? आहाहा! परमात्मा स्वयं त्रिकाली द्रव्य है। परन्तु जो परमात्मदशा का पर्याय में परिणमन हुआ-कार्यपरमात्मा, वह तो पर्याय है। ध्रुव, वह तो कारणपरमात्मा है। परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव त्रिकालभाव, वह कारणपरमात्मा और उसके आश्रय से केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह कार्यपरमात्मा।

अरे... अरे! कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा कभी सुना भी न हो। कारणपरमात्मा कोई ईश्वर होगा? कर्ता? वह ईश्वर कर्ता बर्ता नहीं। स्वयं पूर्ण ईश्वर है।

मुमुक्षु : ऐसा होने पर भी ऐसा क्यों?

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं। ऐसा है, ऐसा तो कहता है। ऐसा होने पर भी कर्म के उदय का अनुसरण करनेवाला मिथ्यात्व का परिणमन करता है। यह तो पहले आ गया। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित,... ऐसा पहले लिया न अभिन्नसाध्य-साधनभाववाला, देखो! त्रिगड़ा। **३. जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के) हों, वह यहाँ निश्चयनय है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव चैतन्यमूर्ति के आश्रय से जो (शुद्ध) निर्मल दशा हुई, वह साधन। और उसके फलरूप पूर्ण शुद्ध हुआ, वह साध्य। यह निश्चय में अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। अपनी परिणति साधन और अपनी पूर्ण परिणति साध्य। साधन और साध्य उसमें हुआ। हे? **जिस नय में साध्य और साधन अभिन्न (अर्थात् एक प्रकार के) हों, वह यहाँ निश्चयनय है। जैसे कि, निर्विकल्पध्यानपरिणत (-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानचारित्र परिणत) मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है।**

देखो! निर्विकल्प—राग से रहित, स्वभाव के साथ एकाकार होकर निर्विकल्प ध्यान अर्थात् एकाग्रता की परिणति **(-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानचारित्र परिणत) मुनि को निश्चयनय से मोक्षमार्ग है...** किसलिए? **क्योंकि वहाँ (मोक्षरूप) साध्य...** देखो! मोक्ष साध्य भी निर्मल है और साधन भी निर्मल है। समझ में आया? मोक्ष साध्य है **और (मोक्षमार्गरूप) साधन एक प्रकार के अर्थात् शुद्धात्मरूप (-शुद्धात्मपर्यायरूप) हैं।** दोनों शुद्धात्मरूप पर्याय है।

फिर से, आत्मा त्रिकाल शुद्धध्रुवस्वभाव, वह तो त्रिकाल हुआ। अब उसके आश्रय से निर्विकल्प शुद्ध ध्यान की परिणति हुई, वह मोक्षमार्ग। वह भी शुद्धपर्याय है। और उसका पूर्ण साध्य मोक्ष, वह भी शुद्धपर्याय है। मार्ग और मार्ग का फल दोनों शुद्ध, उसे निश्चय से अभिन्नसाध्यसाधन कहते हैं। आहाहा! गजब! समझ में आया? व्यवहार-साध्यसाधन बतायेंगे। इसके लिए यहाँ पहले अभिन्नसाध्यसाधन लिया है। कौन मेहनत करे? आहाहा! अन्तर में।

भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं, अभिन्नसाध्यसाधन निश्चय, उसका अर्थ क्या? कि भगवान आत्मा पवित्र धाम पूर्णानन्द प्रभु की निर्विकल्प ध्यान पर्याय वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय शुद्ध है और मोक्ष भी शुद्ध पर्याय है। दोनों शुद्ध है, इसलिए निश्चयनय में अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आये हैं। समझ में आया? हो... पर्याय निर्मल, मोक्षमार्ग

भी निर्मल और मोक्ष भी निर्मल दोनों शुद्ध है; इसलिए अभिन्नसाध्यसाधन कह दिया। कोई दूसरी चीज़ नहीं है, दोनों एक ही जाति है। शुद्धपरिणति है। दोनों शुद्धपरिणति है। यह अपूर्ण शुद्धपरिणति है, यह पूर्ण शुद्धपरिणति है। है तो शुद्धपर्याय। मोक्षमार्ग शुद्ध अवस्था है और मोक्ष भी शुद्ध अवस्था है। सिद्ध भी एक अवस्था है, वह कहाँ गुण है। गुण तो त्रिकाल है। आहाहा! गजब!

सिद्धपर्याय! हें? केवलज्ञान पर्याय! तीन वर्ष पहले मथुरा गये थे न (यह सुनकर) चिल्लाहट मचा गये थे। कोई वकील बैठे थे। क्या वकील वहाँ कहाँ से होगा? परन्तु यह पण्डित। सब पण्डित बैठे थे। कैलाशचन्दजी भी बैठे थे। कहा, केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, गुण नहीं। केवलज्ञान भी समय-समय में नया-नया होता है। दूसरे पण्डित कहे, अरे... केवलज्ञान! खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : ज्ञानगुण की आठ पर्याय, उसमें केवलज्ञान पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ज्ञानगुण तो त्रिकाल है। और ज्ञान की पाँच निर्मल पर्याय और तीन अज्ञान, आठ उसकी पर्याय है। वह तो पर्याय-अवस्था है। इतनी भी खबर नहीं होती। फिर और कैलाशचन्दजी बैठे थे। मथुरा के वे हैं न आत्मसन्देश छापनेवाले। वे कहें, बराबर कहते हैं, पर्याय है। केवलज्ञान गुण कहाँ है? केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है। भले ऐसी की ऐसी दूसरे समय हो। परन्तु दूसरे समय में दूसरी होती है। यह की यह नहीं रहती। ऐसी, परन्तु यह नहीं। ऐसी परन्तु यह नहीं। आहाहा!

अब इसमें कहाँ सीखने का था वहाँ? घर की दुकान में तो पाँच हजार का माल पड़ा हो, पाँच हजार चीज़ हों तो सबकी खबर होती है। खबर नहीं? दुकान में पाँच हजार चीज़ हों तो प्रत्येक इतने पैसे की आयी है, इतनी कीमत से विक्रय की है, इतनी बाकी है। नये भाव में इतने की आती है। एक-एक चीज़ की तीन-तीन बात की खबर होती है। हें? इलायची की पच्चीस बोरी इस भाव से आयी थी। ऐलची-ऐलची। हें? इलायची कहते हैं न? हाँ। पच्चीस बोरी इस भाव से आयी थी। उसमें से बीस बोरी बिक गयी है, पाँच बोरी बाकी रही है। और अब उसका भाव दुगुना हो गया है। एक-एक के तीन। पहले के भाव से नहीं बेचना। खबर है या नहीं? हें?

मुमुक्षु : उसमें तो सावधानी रखनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तो सावधानी बहुत ही है। अज्ञान में प्रेम है तो सावधानी बहुत ही है। इसमें क्या है? आत्मा में सावधानी-रुचि हो तो वहाँ अवश्य पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। जिसकी आवश्यकता जाने, वहाँ पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। आत्मा का हित करने की आवश्यकता जाने तो पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। धूल के लिये देखो न, यह पैसे के लिये हैरान... हैरान होता है। गाँव छोड़कर परगाँव। हें?

मुमुक्षु : पैसा मिले तो सेठिया कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया कहलाये धूल का। ऐई शोभालालजी!

यहाँ तो भाई! सेठिया तो अपने कहा नहीं था? उसमें नहीं बताया था न! यह पहले बताया था न, तब उसमें नहीं बताया था? सेठ! अठारहवाँ या कौन से पृष्ठ में है? पहले में। तेरह... तेरह। गुणीजन सम्हाले कोई सेठ होता है। नेमीचन्दजी को दिया नहीं? पहले भाग में। तेरहवें पृष्ठ पर। दिया न वीरेन्द्र। तेरहवें पृष्ठ पर पहले भाग में तेरहवें पृष्ठ पर। पहला भाग तेरहवाँ पृष्ठ है। गुणीजन है न! सोलह में सोलह। 'गुणीजन सम्हाले सो ही सेठ, अन्य को अनुचर जाणजो जी म्हारा ज्ञाना।' यह महिलायें रोती हैं न मेरे पेट। पेट बेट कब तेरा था? सुन न! लड़का मर जाये, लड़की मर जाये तो बोलते हैं न मेरा पेट। धूल भी पेट तेरा नहीं। राग भी तेरा नहीं तो पेट कहाँ से आया? मेरा ज्ञान है। समझ में आया?

देखो! अन्य तो अनुचर, अनुचर है। आहाहा! यह पैसा के रखोपीया भिखारी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल को क्या पूछे? पागल को क्या पूछे? पागल तो पागल को। शोभालालजी! सेठिया है न... गृहस्थ व्यक्ति को। उनका लड़का गुजर गया था ढाई वर्ष का। तो उन्हें रोना आवे, बहन नहीं, यह गाना बाना बनाया। ऐसा बोले। मुर्दा पड़ा था मुर्दा। ढाई वर्ष का। गृहस्थ व्यक्ति है। बहुत ही इज्जतदार है। साठ लाख रुपये चालीस वर्ष पहले नहीं लिये, उसकी इज्जत कितनी? साठ लाख को ठोकर मारी। साठ लाख। चालीस वर्ष पहले। सोलह गुणा करो तो सोलह चौके चौंसठ, (लगभग) सात

करोड़ होते हैं। हें? नौ करोड़ होंगे। सोलह छक्के छियानवें, हाँ, हाँ। सोलह छक्के छियानवें हैं न। हें? सोलह छक्के छियानवें। हाँ, सोलह छक्के छियानवें। साढ़े नौ करोड़ जितना हो गया। गिनना है न, वहाँ कहा! खाने में काम आवे और पीने में? ममता में काम आवे। बहू उस समय गाये, बहिन-लड़की है न उनकी। लड़का गुजर गया। मुर्दा पड़ा था। गाया, कण्ठ बहुत ही मीठा था न तो लोग, महिलायें जहाँ आये न, नहीं तो समूह में गाये। (परन्तु) गाने लगी।

लोग कहे, यह क्या है? उनके घर में बहुत ही अच्छे संस्कार, बहुत ही। उनके घर का वातावरण कोई अलग है। सेठ बहुत ही बढ़िया संस्कारी जीव है न! तो पूरे घर के तीस लोग सब संस्कारी। वह बर्तन माँजनेवाला है, वह भी संस्कारी। वह भी यह गाये। बस, आत्मा भिन्न है, राग भिन्न है, ऐसे गीत बनावे। वह बर्तन माँजते-माँजते गाये। बहुत संस्कारी। सरदारशहर है, उनके यहाँ। यह तो उनके मामा थे न। करोड़पति है न। दस करोड़-आठ करोड़ रुपये। तो एक बार वहाँ आये। वहाँ सम्हाल करने के लिये। दीपचन्दजी सेठ को ठीक नहीं था, तो आये। तो यहाँ से लड़की बाहर निकली, यहाँ से। गायन बोली गायन। अपने को आता नहीं गायन, समझे न? सज्जन को ऐसा, कुछ भाषा बोली। वह सेठ तो प्रसन्न हो गया। ओहोहो!

हम पैसेवाले कहलाते हैं, दस-दस करोड़वाले, हमारे लड़के-लड़की में ऐसे संस्कार नहीं, ऐसा बोला। बेटा! बहुत ही संस्कार सुने हैं। हमारे पैसेवाले को दस-दस करोड़ रुपये बहुत ही हैं। दस क्या, बीस करोड़ होंगे। कहते हैं कि हीरा-माणिक के भाव बढ़ गये थे न, अकेले हीरा-माणिक घर में पड़े हैं। हीरा-माणिक और सोना। अरे बेटा! यह भाषा अपने को आती नहीं। कुछ बोला था। हें?

मुमुक्षु : वीर पुत्रियाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वीर पुत्रियाँ सज्जन का सत्कार करती है, ऐसा गायन बनाया था। वीर पुत्रियाँ सज्जन का सत्कार करती हैं। बाहर मोटर आयी मोटर। बेटा! ऐसे संस्कार हमारे घर में नहीं। तेरे ऐसे संस्कार हैं, तू भाग्यवान है। लड़की भी ऐसा बोली, वीर पुत्रियाँ आप सज्जन का हम सत्कार करते हैं।

जगत उसमें दग्ध हो गया। वापस फिर पूछा, क्या हुआ शरीर को? वैद्य है। गृहस्थ व्यक्ति इसलिए वैद्य भी जानता है। यह वैद्य जानना, वह वस्तु है। अब तेरी इस धूल में क्या है? आहाहा! दस करोड़ हो या बीस करोड़ हो। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **अभिन्नसाध्यसाधन।** यह उसकी व्याख्या की। तिगड़ा है न तीसरा। **अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से...** अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले। तो अभिन्न साध्य अर्थात् मोक्ष और अभिन्न साधन अर्थात् मोक्ष का मार्ग। दोनों शुद्ध पर्याय है। इस कारण से अभिन्नसाध्यसाधन कहने में आया। **निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया। और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था, वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** देखो! यह विकल्प-राग है। अपने उपादान की पर्याय स्व है और उसमें निमित्त राग है। कर्म निमित्त है। **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** देखो! व्यवहार।

यह **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से...** जिसमें राग की पर्याय है, वह स्व भी आत्मा है, उसमें राग-परिणमन करनेवाला तो है न। और निमित्त कर्म है। तो स्व-पर हेतु से उत्पन्न होनेवाली विकारी पर्याय है। पंच महाव्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और ग्यारह अंग का पढ़ना, वह सब राग की पर्याय स्व-पर हेतुक है। उसमें निर्मलता है नहीं। आहाहा! उसे बाह्य साधन करके व्यवहार से भिन्न साध्यसाधन का कथन कहने में आया है। आहाहा! व्यवहारनय की अपेक्षा से प्ररूपित किया गया था। समझ में आया?

आरोप करके रागादि व्यवहार के साधन हैं। साधन तो अपना स्वरूप ही साधन है। उसका निमित्त देखकर साधन पर आरोप करके, व्यवहार आया तो वह पर्याय स्व-पर हेतुक है। आत्मा भी हेतु है और कर्म भी निमित्तरूप से है। ऐसी विकारी पर्याय भिन्न साधन और निर्मल पर्याय उससे भिन्न साध्य, ऐसे कथन आवे तो व्यवहारनय का वह कथन है। वह निश्चय का कथन नहीं। आहाहा!

इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है। इसमें विरोध है ही नहीं। व्यवहार ऐसा होता है, उसे साधनरूप से आरोपरूप से कहने में आया। **क्योंकि सुवर्ण**

और सुवर्णपाषाण की भाँति... सोना और सोने का पत्थर होता है न? **निश्चयव्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** भगवान के दो नय से कथन चलता है। व्यवहार को व्यवहाररूप से, निश्चय को निश्चयरूप से। व्यवहार है सही, परन्तु उपादेय-आदरणीय नहीं। व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं, तब तो अकेला निश्चयाभास हो जाता है। और व्यवहार से लाभ माने तो व्यवहाराभास होता है। मात्र व्यवहार विकल्प वहाँ है, वह भिन्नसाध्यसाधन कहने में आता है। राग भिन्न है। निश्चय और साध्य भिन्न है, तो उसे व्यवहारनय से साध्य-साधन कहने में आता है।

ऐसी व्यवहारनय की कथनी और निश्चय में अभिन्नसाध्यसाधन, वह निश्चय की कथनी, दो प्रकार की कथनी परमेश्वर के शास्त्र में चलती है। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहारनय है तो व्यवहार साधन है तो वास्तविक उसका साधन हुआ और उससे सिद्धपद होता है या मोक्षपद (मिलता) है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : थोड़ा सा धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा भी धर्म नहीं, अधर्म है। आहाहा! यह कठिन पड़ता है। इसका स्पष्टीकरण विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७०, गाथा-१५९, वैशाख शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक -२०-०५-१९७०

१५९ गाथा। मोक्षमार्ग विस्तार का वर्णन। पंचास्तिकाय। यह आया, देखो! **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था।** देखो! पहले अभिन्नसाध्यसाधन कहा था। अभिन्नसाध्यसाधन। उसका अर्थ क्या? थोड़ा सूक्ष्म विषय है। निश्चय-व्यवहार की सन्धि करते हैं न! अपना पूर्ण शुद्ध स्वरूप, पवित्र दशा मोक्ष। मोक्ष, वह पवित्र पूर्ण (शुद्ध) दशा, वह साध्य और उसका साधन व्यवहार साधन। यहाँ पहले निश्चय साधन। निश्चय साधन स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और निर्विकल्प चारित्र, वह मोक्ष का निश्चय साधन। वह अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। ध्यान रखे तो यह जरा पकड़ में आये, ऐसा है।

आत्मा अपना पवित्र शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव, उसकी केवलज्ञान आदि पूर्ण वीतरागी पर्याय प्राप्त हो, वह मोक्ष, वह साध्य और उसका अभिन्न साधन। अपना शुद्धस्वभाव पवित्र, उसकी दृष्टि-ज्ञान और वर्तमान रमणता निर्विकल्पदशा, वह मोक्ष का साधन। यह अभिन्न हुआ। क्योंकि निर्मल अविकारी पर्याय साधन और निर्मल अविकारी पूर्ण पर्याय साध्य। यह तो अभिन्नसाध्यसाधन हुआ। समझ में आया?

अब भिन्नसाध्यसाधन। **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है; इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।**

अब पहला शब्द। कल आया था, वह आया। जिस नय में साध्य और साधन भिन्न हों। भिन्न प्ररूपित किये जाये। वह यहाँ, व्यवहार प्ररूपित है न अन्दर शब्द उसमें आया था। व्यवहारनय की अपेक्षा से प्ररूपित करने में आया था, ऐसा शब्द आया था। भिन्न साधन कहने में आता है। वास्तव में साधन है नहीं। परन्तु यहाँ व्यवहारनय भिन्न प्ररूपित करने में आया है। जैसे कि छठवें गुणस्थान में सच्चे भावलिंगी मुनि होते हैं, उन्हें अन्तर में अनुभवदृष्टि द्रव्य के आश्रय से पूर्णानन्द प्रभु के स्वलक्षी आश्रय से

(द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के आंशिक अवलम्बनसहित) शुद्धात्मस्वरूप का पूर्ण आलम्बन नहीं है। पूर्ण आलम्बन हो, तब तो केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया? परन्तु आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव ज्ञायकभाव का आंशिक आलम्बन। ऐसे वर्तते हुए, ऐसे निश्चय में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र स्वद्रव्य के आश्रय से वर्तते हुए। मुनि की बात करते हैं। समझ में आया?

तत्त्वार्थश्रद्धान (नौ पदार्थगत श्रद्धान), तत्त्वार्थज्ञान (नौ पदार्थज्ञान) और पंच महाव्रतादिरूप चारित्र व्यवहारनय से मोक्षमार्ग है, उसमें जो विकल्प-राग उठता है, नौ पदार्थ की श्रद्धा, तत्त्वार्थ का ज्ञान, पंच महाव्रत के विकल्प व्यवहारनय (से) मोक्षमार्ग है। क्यों?—कि मोक्ष स्वहेतु पर्याय है।

मोक्ष, वह पूर्ण पवित्र दशा स्वहेतु-स्व के आश्रय से उत्पन्न हुई है। और तत्त्वार्थश्रद्धान आदि स्वपरहेतुक पर्यायें हैं। वह विकल्प है, राग है। स्व अपनी उपादान भी है और उसमें कर्म का निमित्त भी है। कहते हैं, विस्तार तो धीरे-धीरे होता है। क्या कहते हैं? कि अपना शुद्धस्वभाव पूर्ण पवित्र प्रगट, वह मोक्ष। और उसका व्यवहार साधन-व्यवहार साधन, पंच महाव्रत के, नौ तत्त्व की श्रद्धा का, शास्त्र पढ़ने का विकल्प उठता है, उस विकल्प को व्यवहार साधन कहने में-प्ररूपित करने में आया है। क्योंकि उस स्थान में ऐसा उस राग की मन्दता का व्यवहार उपस्थित होता है। व्यवहार से निश्चय होता है, यह बात यहाँ नहीं है। समझ में आया? नहीं... नहीं... नहीं... वह साधन व्यवहार से प्ररूपित किया है।

निश्चय साधन अपना शुद्ध द्रव्यस्वभाव, उसके अवलम्बन से निश्चय भगवान पूर्णानन्द प्रभु के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यक् निश्चयज्ञान और निश्चय निर्विकारी पर्याय उत्पन्न हुई, वही वास्तव में तो साधन है। मोक्ष का वही साधन है। परन्तु उस समय ऐसे नवतत्त्व की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत का विकल्प, ऐसे निमित्त देखकर, यह जो साधन है, उसमें साधन का आरोप दिया। आरोप देकर व्यवहारनय से साधन कहने में-प्ररूपित करने में आया है। भारी गड़बड़! समझ में आया?

क्यों?—कि राग है, वह स्वपरहेतुक है। मोक्ष है तो अकेले आत्मा से स्वहेतु से

उत्पन्न हुआ है। और विकल्प जो व्यवहार है, वह अपनी उपादान की पर्याय है और साथ में निमित्त है। तो स्वपरहेतुक राग है। निश्चय के साथ में है तो उस राग को व्यवहार साधन का कथन प्ररूपित कहने में आया है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया? प्रकाशजी! सूक्ष्म बात है। थोड़ी-थोड़ी पकड़ना, विचार करना। वीतरागमार्ग तो ऐसा है कि भगवान आत्मा अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध द्रव्य कारण भगवान, उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी दशा उत्पन्न हुई, वह तो वास्तव में मोक्ष का सच्च अभिन्न साधन है। परन्तु उस समय तत्त्वार्थ की श्रद्धा का विकल्प, तत्त्वार्थ के ज्ञान का विकल्प और पंच महाव्रत का विकल्प राग, वह स्व-परहेतुक पर्याय है, उसे व्यवहारनय से व्यवहारसाधन कहने में आया है। सूक्ष्म बात है। धीरे-धीरे समझना भाई!

उससे होता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं। परन्तु वहाँ ऐसे राग की विकल्प दशा ऐसी होती है, वैसा ज्ञान कराने के लिये व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा बताने के लिये उसे व्यवहार साधन—स्व-परहेतुक राग की पर्याय को व्यवहार साधन कहा है। गजग! वास्तव में साधन है नहीं। होवे तो व्यवहार कैसे कहा? है, ऐसा विकल्प आता है या नहीं? उसका यहाँ आरोप है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा न! निश्चय तो अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो अपनी पर्याय में अपने आश्रय से होते हैं। परन्तु उस समय उस प्रकार के विकल्प-राग को निमित्त मानकर, व्यवहार जानकर, उपचार से-आरोप से मोक्षमार्ग कहने में आया है। है नहीं, उसे कहना, वह व्यवहार है। पण्डितजी! भारी गड़बड़ भारी! भाई! समझ में आया? यह स्व-परहेतुक पर्याय हुई।

अब दूसरा बोल। **सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है।** इसकी व्याख्या। जिस पाषाण में स्वर्ण हो। खान में से सुवर्ण निकलता है न! सुवर्णपत्थर। तो उसे सुवर्णपाषाण कहा जाता है। जिस प्रकार व्यवहारनय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है। क्या कहते हैं? देखो! सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है। वास्तव में साधन तो सुवर्ण, सुवर्ण का साधन है। परन्तु सुवर्ण के साथ पत्थर था, उसे भी व्यवहारनय से सुवर्ण का साधन आरोप से-निमित्त देखकर कहने में-प्ररूपित किया गया है। पत्थर में से क्या कहीं सोना निकलता है? सोना तो सोने में से निकलता है, परन्तु साथ में है, उसे निमित्त का आरोप देकर सोने का व्यवहार साधन पत्थर है, ऐसा

कहा गया है। आहाहा! भारी गड़बड़! अभी तो व्यवहार साधन है और निश्चय साध्य है। व्यवहार साधन करो तो निश्चय होगा, ऐसा बात है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो मात्र अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वहाँ पूर्ण दशा नहीं तो उस भाव को मोक्ष का साधन कहा। परन्तु साथ में विकल्प उठता है - नवतत्त्व की श्रद्धा, तत्त्वार्थ का व्यवहारज्ञान और शास्त्र का ज्ञान अथवा अट्ठाईस मूलगुण—पंच महाव्रत का विकल्प। ऐसे उस गुणस्थान में, स्व के आश्रय की भूमिका में इतना राग की मन्दता का निमित्तपना आता है, उसे देखकर उसे व्यवहार साधन का आरोप कहने में आया है। गजब बात!

जिस पाषाण में सुवर्ण हो। पाषाण में सुवर्ण है? सुवर्ण तो सुवर्ण में है, परन्तु पाषाण का सम्बन्ध है न इतना देखकर सुवर्णपाषाण कहने में आता है। जिस प्रकार व्यवहारनय से सुवर्णपाषाण सुवर्ण का साधन है। सोने के पत्थर, वह सोने का साधन है, वह व्यवहार से है। उसी प्रकार व्यवहारनय से व्यवहार मोक्षमार्ग। व्यवहारनय से व्यवहार मोक्षमार्ग। निश्चयमोक्षमार्ग का साधन व्यवहारनय से व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय का साधन व्यवहार से कहने में आया है। यह कहने में आया। आया न, ऊपर आ गया। प्ररूपित करने में आया था। यह भले कहा परन्तु आ गया, प्ररूपित करने में आया था। ऐई!

दो प्रकार से निरूपण है। वस्तु दो प्रकार की नहीं है। साधन दो प्रकार के नहीं हैं। साधन का कथन दो प्रकार से है। एक निश्चय साधन, एक व्यवहार। कथन दो प्रकार से है। साधन तो स्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से जो निर्मल पर्याय हुई, वही मोक्ष का साधन है। एक ही साधन है। साधन दो नहीं। परन्तु साधन कहो, उपाय कहो, मार्ग कहो। परन्तु उस साधन के काल में पूर्ण वीतरागता हुई नहीं। मोक्षदशा हुई नहीं। तो वहाँ आगे राग की स्व-परहेतुक विकल्प की पर्याय उत्पन्न होती है। तत्त्वार्थ श्रद्धान का, तत्त्वार्थ ज्ञान का, देखो! शास्त्र का ज्ञान नहीं कहा। और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प जो है, उस भूमिका में ऐसे विकल्प की मर्यादा आती है, ऐसे निश्चय साधन के साथ ऐसा निमित्त देखकर व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग, ऐसा कहने में आया है। कहने में आया कहो या प्ररूपित किया गया है, ऐसा कहो, वह एक

ही बात है। पण्डितजी! सामने पुस्तक है या नहीं? अरे... अरे! विशेष स्पष्ट करते हैं। कहते हैं, वह विशेष अर्थात् विपरीत, ऐसा नहीं। इसका विशेष अर्थात् स्पष्ट करते हैं। पण्डितजी! है अन्दर देखो!

अर्थात् **व्यवहारनय से भावलिंगी मुनि को...** देखो! भावलिंगी। आत्मा अन्तर में शुद्ध कारणपरमात्मा ध्रुव, उसका आश्रय लेकर निर्विकारी आनन्द सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ है, ऐसे मुनि को **सविकल्पदशा में वर्तते हुए...** जब अन्दर में-स्वरूप में स्थिर नहीं होते, तब उन्हें ऐसी विकल्प की जाति आती है। जो विकल्पदशा में वर्तते हुए... राग में इतना वीर्य आया है न। **तत्त्वार्थ श्रद्धान,...** व्यवहार, **तत्त्वार्थज्ञान...** विकल्प, **महाव्रतादिरूप चारित्र...** विकल्प। यह **निर्विकल्प दशा में वर्तते हुए...** अपने द्रव्य स्वभाव के आश्रय से वीतरागी पर्याय में वर्तते हुए, **शुद्धात्म-श्रद्धानज्ञानानुष्ठान के...** इस शुद्धात्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के यह विकल्प व्यवहार साधन कहने में आये हैं। कहो, राजमलजी! इसमें भारी गड़बड़ खड़ी करते हैं। साधन है या नहीं? साधन है या नहीं? परन्तु साधन कैसा?

व्यवहारनय से व्यवहार साधन का कथन किया गया है, क्योंकि ऐसा ज्ञान कराया। ऐसी चीज़ इस समय ऐसी होती है। ऐसा ज्ञान कराने के लिये व्यवहार '**तदात्वे**' जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह बात करते हैं। समझ में आया?

देखो! भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से प्ररूपित करने में आया था, उसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं। निश्चय से अभिन्नसाध्यसाधन है और साथ में भिन्नसाधन और साध्य निर्मल पर्याय ऐसा जो कहा, इन दोनों में कोई विरोध नहीं आता। **क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है;...** निर्विकल्प पर्याय में वर्तते वीतरागी सन्तों को ऐसी विकल्प की जाति आती है। तो उसे व्यवहार कहने में आता है। इसमें कोई विरोध नहीं है।

इसीलिए पारमेश्वरी (जिनभगवान की) तीर्थप्रवर्तना, अब तीर्थप्रवर्तना की व्याख्या। **फिर दोनों नयों के आधीन है।** इसकी व्याख्या। धीरे-धीरे तो चलता है। यह कोई.... आहाहा! ऐई, प्रकाशदासजी! जिसे अपने शुद्ध चैतन्यद्रव्य का आश्रय नहीं है,

उसका जो विकल्प है, उसे तो व्यवहार साधन का आरोप भी नहीं आता। समझ में आया?

जिसे मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है, उसे व्यवहार कहने में आता है, ऐसा भी नहीं है। और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प है परन्तु स्वद्रव्य का आश्रय लिया नहीं और वीतरागी पर्याय प्रगट हुई नहीं, उस विकल्प को आरोप से भी व्यवहार कहने में नहीं आता। समझ में आया? परन्तु जिसे सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा एक समय में पूर्ण गुण का पिण्ड वस्तु, ऐसे द्रव्य के अवलम्बन से, आश्रय से, ध्येय से जो पर्याय में निर्विकल्प श्रद्धा, राग बिना की श्रद्धा, राग बिना का ज्ञान, राग बिना की चारित्रदशा, वही वास्तव में मोक्ष का साधन है। परन्तु उस साधन के काल में तत्त्वार्थ श्रद्धान आदि का जो विकल्प आता है, उसे व्यवहारनय से व्यवहारमोक्षमार्ग साधन है, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। बहुत न समझ में आये तो रात्रि (चर्चा में) प्रश्न करना। समझ में आया? अभी तो मार्ग सब, गड़बड़ हो गयी है न। बात की सूझ पड़ना कठिन हो गयी।

मुमुक्षु : यह भूल तो व्यवहार के कथन में चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु व्यवहार है, इतनी बात बताने के लिये है। व्यवहार न हो, तब तो अकेला केवलज्ञान हो जाये।

मुमुक्षु : व्यवहार को जाना हुआ प्रयोजनवान कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना हुआ प्रयोजनवान है, बस। है, उसे जानना वह व्यवहारज्ञान का (समयसार की) १२वीं गाथा में आया, यह उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

सम्यग्दर्शन में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तो निमित्त होते नहीं और उनकी श्रद्धा है, वह तो व्यवहार भी नहीं और निश्चय भी नहीं। समझ में आया? परन्तु जिसके सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, ऐसे निमित्तपने की श्रद्धा का विकल्प है, उसे व्यवहार कब कहा जाता है?—कि स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई हो तो उस विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? क्योंकि निश्चय प्रगट हुआ, वह साधन, तो राग की मन्दता का निमित्त देखकर आरोप से, व्यवहार से

साधन है, ऐसा कहने में आया है। वस्तुस्थिति यह है। उसमें थोड़ा आगे-पीछे करे तो गड़बड़ हो जायेगी। समझ में आया?

धूप है तो सेठिया नहीं आये होंगे। यह सेठिया आते नहीं। यह सेठिया आते नहीं। इसमें अभी तो नहीं, देखो। कहो, समझ में आया?

फिर से। यह बात तो बारम्बार कहे, तब मुश्किल से बैठे, ऐसी चीज़ है। खैर! वह निश्चय... निश्चय अकेली बात। और यह व्यवहारसाधन आया, वह क्या? हें? स्वर्ण का साधन पाषाण। इसका अर्थ क्या? वह पाषाण साधन का अर्थ कि सोने के और पत्थर के निमित्त सम्बन्ध में था तो उसे निकालने के लिये अग्नि साधन था। वह वास्तव में तो अग्नि साधन है और वास्तव में तो सोना ही अपना साधन है। परन्तु पत्थर है, उसमें से पृथक् करना है, इतनी अपेक्षा गिनकर पत्थर को व्यवहारसाधन कहने में आया है। इसी प्रकार व्यवहारनय के विकल्प का पत्थर है। भगवान तो शुद्ध निर्विकल्प आनन्दकन्द है। आहाहा! समझ में आया?

बात अभी तो चलती नहीं। सम्प्रदाय की दृष्टि और सम्प्रदाय की बात। अकेले व्यवहार के पोषक। यह मार्ग नहीं, भाई! यहाँ तो जन्म-मरण मिटाने की चीज़ की बात है। जिससे जन्म-मरण न मिटे, वह धर्म भी नहीं है। यहाँ तो अन्दर जन्म-मरण मिटाने के भाव हुए हैं। क्योंकि द्रव्य में जन्म-मरण है नहीं और जन्म-मरण का भाव भी है नहीं। ऐसा भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव, उसका अवलम्बन लेकर अन्दर का ध्येय पकड़कर जो सम्यग्दर्शन निश्चय निर्विकल्प, निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदन और निर्विकल्प-रागरहित स्वरूप की रमणतारूप चारित्र, वही साधन है। मोक्ष की पर्याय का वही साधन है। समझ में आया? परन्तु उसके साथ जब तक पूर्ण केवलज्ञान नहीं, वीतराग साध्य होने पर भी, साधन की दशा निर्विकल्प होने पर भी, राग की विकल्पदशा आये बिना रहती नहीं। वह नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प, वह तत्त्वार्थ के शास्त्र के ज्ञान का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण, उस विकल्प को व्यवहार से, यहाँ निश्चयसाधन होता है, उसमें व्यवहार से साधन का आरोप करके व्यवहारसाधन निश्चय साध्य—ऐसे भिन्न साध्य-साधन की कथनी की गयी है। पण्डितजी! आहाहा! धीरे-धीरे विचार करना, भाई! यह तो मार्ग अन्तर परमेश्वर का मार्ग है। समझ में आया?

यह तो कहते हैं न कि व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। देखो! व्यवहारसाधन कहा है। परन्तु किसे? कि जिसे निश्चयसाधन प्रगट हुआ है, उसे विकल्प में व्यवहारसाधन का आरोप करके कथन किया है। वहाँ यह पकड़ लिया? बण्डीजी! ऐसी बात है, भाई! बीच में राग की मन्दता का, नव तत्त्व का वास्तविक तत्त्व, हों! भगवान कहते हैं, ऐसी नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प। अज्ञानी कहते हैं, ऐसा नहीं। और नव तत्त्व का ज्ञान, तत्त्वार्थ ज्ञान कहा न! भगवान जो शास्त्र कहते हैं, उनका यथार्थ ज्ञान। परन्तु परलक्ष्यी ज्ञान है, वह विकल्प है और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प भूमिका में ऐसा ही आता है। उस भूमिका में वस्त्र लेने का, पात्र लेने का, सदोष आहार लेने का विकल्प नहीं होता। ऐसी भूमिका में ऐसा राग है, उसे जानने के लिये व्यवहार से साधन कहने में आया है। समझ में आया?

यह तो... वस्त्र-पात्र रखे और व्यवहारसाधन। धूल भी नहीं। मिथ्यात्व का साधन है। सुन न! ऐई प्रकाशदासजी! यहाँ तो बात ऐसी है। वीरेन्द्रजी! बाहर से वस्त्र-पात्र रखे और कहे व्यवहारसाधन है और व्यवहारसाधन। श्रीमद् में एक जगह आता है न, श्वेताम्बर आम्नाय प्रमाण भी है, उसका निषेध करता नहीं। ऐई! भाई! यह तो लोगों को खड़ा रखने के लिए ऐसी जरा बात आयी है परन्तु वस्तु की स्थिति ऐसी है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो परम्परा सनातन सत्य दिगम्बर मार्ग जो है, उसका लक्ष्य करके, जो दिगम्बर मार्ग है, उसका लक्ष्य करके श्रद्धा, ज्ञान और वर्तन हुआ, वह व्यवहार है। अपने आत्मा का आश्रय करके जो उत्पन्न हुआ, वह निश्चयसाधन है। उस निश्चयसाधन में वीतरागता की पूर्णता नहीं, इस कारण ऐसे राग की मन्दता का भाव भगवान ने कहा, ऐसे नवतत्त्व की श्रद्धा। देखो! इसमें छह द्रव्य आ गये। छह द्रव्य की श्रद्धा विकल्प है। जो छह द्रव्य मानते नहीं, उनके तो व्यवहार और निश्चय दोनों खोटे हैं। समझ में आया?

जो अपने... क्योंकि एक समय की पर्याय में छह द्रव्य को जानने की ताकत है। उस पर्याय में ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड भगवान आत्मा है। ऐसे द्रव्य का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, वह सच्चा साधन है। उस समय राग का मन्दभाव जो

परलक्ष्यी नवतत्त्व की श्रद्धा, छह द्रव्य हैं—ऐसी श्रद्धा, वह भी विकल्प है। परद्रव्य की श्रद्धा, वह विकल्प है। छह द्रव्य है ही नहीं—ऐसा माननेवाले के तो व्यवहार और निश्चय दोनों झूठे हैं। समझ में आया? (कोई ऐसा माने कि) एक ही आत्मा है और सर्व व्यापक है, वह तो महा मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? यह बतलाने के लिये यहाँ निश्चय स्वद्रव्य का आश्रय लिया, वहाँ जो सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति हुई, उसमें उस व्यवहार का विकल्प ऐसा होता ही है, यह बतलाने के लिये व्यवहारसाधन भिन्न, वह साधन, निश्चय साध्य, ऐसा आरोप से कथन किया गया है। समझ में आया?

अब तीर्थ। **तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है।** देखो! तीर्थप्रवर्तना दोनों नयों के आधीन है। है न? इसकी तो व्याख्या चलती है। तीर्थ अर्थात् मार्ग। तीर्थ अर्थात् मोक्ष का मार्ग, उपाय। मार्ग कहो या उपाय कहो। मोक्ष का उपाय। उपदेश अथवा उसका उपदेश अथवा शासन। तीर्थ अर्थात् शासन होता है, उपदेश भी होता है और निश्चयमोक्षमार्ग भी होता है। इस तीर्थ में जिनभगवान की आज्ञा।

जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है। समझ में आया? जिनभगवान के उपदेश में दो नय, नय दो हैं या नहीं? तो उनका विषय दो है या नहीं? आहाहा! हें? एक हो जाये। एक हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये तो नय रहते नहीं। एक नय एकान्त हो तो वहाँ नय है नहीं। निश्चय है नहीं और अकेला व्यवहार है, तो वह नय ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जिनभगवान के उपदेश में दो नयों द्वारा निरूपण होता है। वहाँ, निश्चयनय द्वारा तो सत्यार्थ निरूपण किया जाता है। नीचे (फुटनोट) निश्चयनय द्वारा तो वास्तविक तत्त्व है, उसके साधन आदि का यथार्थ निर्णय कहा जाता है। यह साधन भी यथार्थ निर्णय में निश्चयनय में कहा जाता है और व्यवहारनय द्वारा अभूतार्थ, उपचरित निरूपण किया जाता है। व्यवहार द्वारा अभूतार्थ 'है नहीं' उसे, सत्यार्थ है नहीं उसे, उपचार से 'नहीं उसे', असत्यार्थ को 'नहीं' उसको उपचरित निरूपण कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! कितना फुटनोट करके यह स्पष्ट किया है, ऐसा तो कहे। स्पष्ट किया है। यह गड़बड़ करते हैं वे। समझ में आया? हमारे पण्डितजी ने नीचे यहाँ स्पष्ट किया है। समझ में आया?

प्रश्न :- सत्यार्थ निरूपण ही करना चाहिए;... सच्चा ही कथन करना चाहिए। उपचार—असत्यार्थ कथन करने की आवश्यकता क्या? प्रश्न उठता है। अभूतार्थ-झूठे कथन करने की आवश्यकता क्या है? सत्यार्थ कथन ही करना चाहिए। **अभूतार्थ उपचरित निरूपण किसलिए किया जाता है?** अभूतार्थ अर्थात् झूठा। उपचार से कथन किसलिए किया गया है? ऐसा प्रश्न है।

उत्तर :- जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, समझ में नहीं आता हो ऐसी बात यहाँ है। **जिसे सिंह का यथार्थ स्वरूप सीधा समझ में न आता हो, उसे सिंह के स्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा अर्थात् बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा...** बिल्ली, सिंह है। जिसने सिंह नहीं देखा, उसे सिंह का वास्तविक स्वरूप जानने में नहीं आता तो बिल्ली द्वारा कहने में आता है कि देखो! ऐसा सिंह था। ऐसा सिंह होता है। यह बिल्ली, सिंह नहीं। समझ में आया?

बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं;... तो उसमें गड़बड़ है। देखो! बिल्ली के कथन द्वारा सिंह का स्वरूप जानने में तो आता है न? इतना तो व्यवहार से लाभ है या नहीं? अरे भगवान! ऐसा नहीं कहते। यह तो बिल्ली जैसा कोई सिंह है, ऐसा वहाँ लक्ष्य गया, तब जानने में आया, बिल्ली पर लक्ष्य था, तब तक जानने में आया नहीं था। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानने लगा। उसे बिल्ली द्वारा, तो बिल्ली का लक्ष्य छूटे तो, यह बिल्ली द्वारा जाने तो बिल्ली का लक्ष्य छूटे तो ऐसा सिंह है, ऐसा ज्ञान होता है। बिल्ली का लक्ष्य रखकर सिंह का ज्ञान होता है? इसी प्रकार भेद पाड़कर व्यवहार से कहने में आता है कि यह आत्मा। परन्तु यह भेद वह वस्तु नहीं है। समझ में आया?

एक बार कुवाडवा में कहा था न, भाई नहीं? विद्यालय में उतरे थे। मच्छर। लड़के को मास्टर ने मच्छर सिखलाया मच्छर। छोटा मच्छर होता है न, तो इतने मच्छर को बतलाने के लिये लम्बे पैर बनाये। लड़के को मच्छर का ख्याल आ जाये। हमने देखा था। वहाँ मच्छर इतना लम्बा था। तो मच्छर का शरीर इतना बताया और चार पैर

लम्बे किये लम्बे। दो अँगुली जितने लम्बे। तो बताया कि देखो भाई! यह मच्छर। और उसके पैर में भी बारीक-बारीक रोम होते हैं। बारीक रोम। उसे बतलाने के लिये लम्बे करके बतलाया। तो देखो, मच्छर ऐसा होता है। तो मच्छर इतना लम्बा तो नहीं था परन्तु लम्बा बनाकर मच्छर की पहिचान के लिये कहा। उसके पैर में कितने रोम हैं।

एक बार गाँव में हाथी आये। (लड़के ने कहा) मास्टर! यह मच्छर आया। यह बना था, हों! राजकोट से साढ़े चार कोस कुवाडवा है। ऐ मास्टर! यह मच्छर आया। मास्टर कहता है मच्छर कैसे? तब हमने सिखलाया नहीं था? इतना छोटा मच्छर होता है और उसके पैर इतने लम्बे होते हैं। परन्तु वह तो तुझे पैर बतलाने के लिये कहा था। परन्तु इतने लम्बे पैर वहाँ है नहीं। मच्छर तो इतना छोटा है परन्तु पैर के छोटे में छोटे अवयव को विस्तार से बतलाने के लिये लम्बा करके बतलाया। वहाँ हाथी को देखकर कहे, यह मच्छर आया! इसी प्रकार बिल्ली को बताकर कहा, ऐसा क्रूर रोमवाला सिंह होता है परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर सिंह को जाने तो उसे व्यवहार से जानता है, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में व्यवहार से जाना नहीं, निश्चय से जाना है। व्यवहार का लक्ष्य छोड़ दिया है। हें? हाँ, सिंह मान लिया।

बिल्ली के स्वरूप के निरूपण द्वारा सिंह के यथार्थ स्वरूप की समझ की ओर ले जाते हैं;... समझ की ओर ले जाते हैं। **उसी प्रकार जिसे वस्तु का यथार्थस्वरूप सीधा समझ में न आता हो,...** सीधे ज्ञायक चिदानन्द निर्विकल्प परमानन्द की मूर्ति, ऐसा ख्याल में न आता हो **उसे वस्तुस्वरूप के उपचरित निरूपण द्वारा...** देखो! उपचार के कथन द्वारा **वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझ की ओर ले जाते हैं...** वस्तु के स्वभाव सन्मुख ले जाना, उसे व्यवहार कहा जाता है। एक बात।

और लम्बे कथन के बदले में संक्षिप्त कथन करने के लिये भी व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया जाता है। निश्चय मोक्षमार्ग ऐसा होता है, जहाँ राग आवे वहाँ व्यवहार कहे, ऐसी लम्बी बात न करके विकल्प को व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आया है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? निश्चय जहाँ ऐसा हो, वहाँ ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं, ऐसी लम्बी-लम्बी बात बात न करके भी राग की मन्दता देखकर उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आया है।

यहाँ इतना लक्ष्य में रखनेयोग्य है कि—जो पुरुष बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर,... देखो! व्यवहार से जानने का कहा। देखो! यह नौ तत्त्व की श्रद्धा! यह आत्मा एकरूप है, यह बतलाने के लिये बात की थी। इसी प्रकार सिंह का स्वरूप समझे बिना अकेला बिल्ली का निरूपण सिंह का स्वरूप समझ ले। बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह उपदेश के योग्य नहीं है। आहाहा! देखो! यह पुरुषार्थसिद्धिउपाय में है। व्यवहार से कथन करते हैं और जो व्यवहार को पकड़ता है, वह तो सुनने योग्य नहीं है। क्या कहें? भेद बिना कथन करने में आता नहीं और भेद का कथन सुनकर, लो! तुमने कहा था या नहीं? भेद से जानने में आता है, व्यवहार से जानने में आता है— ऐसा पकड़ ले तो वह सुनने के भी योग्य नहीं है। आहाहा! '**तस्य देशना नास्ति**' समझ में आया?

मौन रहने में अपने निर्विकल्प आनन्द में लाभ है। ऐसा जब कहा तो सुननेवाला कहता है कि तुम मौन क्यों नहीं रहते, तुम क्यों विकल्प करते हो? भाई! सुन तो सही क्या बतलाना है, वह बात यहाँ है। समझ में आया? तुम तो बोलते हो, विकल्प तो है। और तुम निर्विकल्प में लाभ मानते हो, तुम्हारी बात-कथन दूसरा है और श्रद्धा दूसरी है, ऐसा लगता है। ऐसा नहीं है। सुन तो सही, भाई! कोई भी बात कथन में आती है तो विकल्प द्वारा ही आती है। समझे? निर्विकल्प द्वारा क्या आवे? वह तो अकेला वीतरागभाव है। विकल्प उठता है, मुनि को विकल्प उठता है, तो लो! परन्तु मुनि विकल्प के कर्ता नहीं होते। आहाहा!

दुनिया कहती है, हम दुनिया को लाभ पहुँचाते हैं। क्रान्ति करके दुनिया को ऊँची लाते हैं। धूल में भी नहीं लाते। पर को लाता है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व की है। और तुझे विकल्प आया तो विकल्प का कर्ता हुआ, वह भी मिथ्यात्वभाव है। तो तुझे भी लाभ नहीं तो निमित्तपने पर को लाभ कहाँ से होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कौन क्रान्ति करे? क्यों राजेन्द्रकुमारजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर की बात का कथन आता है। जलाया, यह तो व्यवहार से है। जगत के प्राणी की योग्यता से अन्तर में क्रान्ति होती है। पर के कारण होती नहीं। कोई पर्याय पर से कहाँ (होती है) ? स्वतन्त्र पदार्थ है। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो निमित्त को समझाने की शैली है। यह कौन था, यह बतलाने के लिये (कथन है)। परन्तु पर में निमित्त से हुआ है, ऐसा बिल्कुल नहीं होता। हें ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा बिना कौन समझे ? क्यों रमणीकभाई ! यह आत्मा हुए बिना आत्मा कौन समझे ? ऐसी बात है। यह तो निमित्त का-व्यवहार का कथन है। आया न ? पर्याय में जब योग्यता प्रगट हुई, तब निमित्त कौन था, यह बतलाने के लिये ऐसा कहने में आया। परन्तु निमित्तवाले ऐसा मानते हैं कि मैं निमित्त हुआ तो वहाँ क्रान्ति हुई है। तेरी क्रान्ति करने में तू आश्रय तेरा ले तो क्रान्ति होगी। विकल्प का आश्रय लेगा तो क्रान्ति नहीं होगी। आहाहा! गजब बातें! समझ में आया ?

निश्चय और व्यवहारनय—जगत भरमाया है। बनारसीदास में आता है। **बिल्ली के निरूपण को ही सिंह का निरूपण मानकर, बिल्ली को ही सिंह समझ ले, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं है, उसी प्रकार जो पुरुष उपचरित निरूपण को ही...** नौ तत्त्व की श्रद्धा को उपचार से मोक्षमार्ग कहा। तत्त्वार्थ ज्ञान को—शास्त्र के ज्ञान को उपचार से ज्ञान कहा। पंच महाव्रत को उपचार से चारित्र कहा, उसे **सत्यार्थ निरूपण मानकर,....** उसे सच्चा कथन मानकर; **वस्तुस्वरूप को मिथ्यारीति से समझ बैठे, वह तो उपदेश के ही योग्य नहीं हैं।** आहाहा! समझ में आया ?

व्यवहार से कथन किया, वहाँ उसे सच्चा मान ले, ऐसा कहा था या नहीं ? बिल्ली जैसा सिंह है। व्यवहार से कहा था या नहीं, व्यवहारमोक्षमार्ग है परन्तु व्यवहार किसलिए ? वह तो निश्चय का स्वआश्रय अखण्ड ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई है, वहाँ आरोप भी व्यवहार का कथन व्यवहारनय से कहने में आया कि यह मोक्षमार्ग है। है नहीं। है नहीं, उसे व्यवहार से कहा, इसका नाम उपचार कथन, आरोपित कथन, अन्यथा कथन कहा जाता है। समझ में आया ?

यहाँ एक उदाहरण लिया जाता है... हमारे पण्डितजी स्पष्टीकरण करने के लिये उदाहरण देते हैं। **साध्य-साधन सम्बन्धी...** साध्य मोक्षपर्याय, साधन निर्मल साधन और व्यवहारसाधन। सच्चा निरूपण इस प्रकार से है। दोनों में सच्चा निरूपण यह है। साध्य-साधन में **सत्यार्थ निरूपण इस प्रकार है कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तती हुई आंशिक शुद्धि...** क्या कहते हैं? मुनि छठवें गुणस्थान में हैं। अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ और चारित्र की दशा छठवें गुणस्थान के योग्य उत्पन्न हुई है। वह आंशिक शुद्धि जो वर्तती है, वह **सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** वास्तव में तो यह भी व्यवहारसाधन है। परन्तु यहाँ निश्चयसाधन कहने में आया है। निर्मल पर्याय, इसलिए; उसकी अपेक्षा से। आहाहा! कितनी भक्ति!

सप्तम गुणस्थान की जो निर्विकल्पदशा है, उसकी छठे गुणस्थान में स्वद्रव्य के आश्रय से जो निर्मलता प्रगट हुई है, वही वास्तव में सातवें गुणस्थान का साधन है। निर्मल पर्याय, निर्मल विशेष पर्याय का साधन है। छठवें गुणस्थान में वीतरागी पर्याय छठे गुणस्थानयोग्य उत्पन्न हुई है, वह साधन और सातवें में जो विशेष वीतरागता प्रगट हो, वह साध्य। तो यह साधन और साध्य, इस साधन से यह साध्य हुआ निश्चय से तो यह बात है। निश्चय से तो रागरहित दशा से सातवें गुणस्थान उत्पन्न, जहाँ उस पर्याय को निश्चय कहा जाता है, हों! अरे... अरे! गजब! वास्तव में तो सातवें गुणस्थान से निर्विकल्प दशा द्रव्य का विशेष आलम्बन लेने से होती है। परन्तु यहाँ तो पर्याय को साधन बनाना है न! गजब बात भाई! हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभावरूप भी साधन है न? यह कहते हैं, देखो!

निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। अब, 'छठवें गुणस्थान में कैसी अथवा कितनी शुद्धि होती है'... छठवें गुणस्थान में मुनि और भावलिंगी सन्त को कैसी शुद्धि और कैसी दशा होती है—**इस बात को भी साथ ही समझना हो तो विस्तार से ऐसा निरूपण किया जाता है कि 'जिस शुद्धि के सद्भाव में, उसके साथ-साथ महाव्रतादि के शुभविकल्प प्रवर्तमान हो, हठ बिना...** निर्मल वीतरागदशा द्रव्य के आश्रय से छठवें गुणस्थान में जो शुद्धि उत्पन्न हुई है, उसके साथ महाव्रत और पंच महाव्रत और अट्ठाईस

मूलगुण के विकल्प हठ बिना सहज उत्पन्न होते हैं। मैं पंच महाव्रत के विकल्प करूँ, ऐसा मुनि को होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

विकल्प करूँ, दया पालने का भाव करूँ, ऐसा भाव मुनि को होता ही नहीं। ऐसा विकल्प आता है। समझ में आया? **शुभविकल्प हठ बिना...** एक बात, नास्ति। सहजरूप से। अर्थात् उस काल के पुरुषार्थ की कमी से ऐसा शुभराग आता है। **प्रवर्तमान हो, वह छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है।** ऐसे लम्बे कथन के बदले, देखो! छठवें गुणस्थान की शुद्धि सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है, **ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाये कि 'छठवें गुणस्थान में प्रवर्तमान महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है,' तो वह उपचरित निरूपण (कथन कहने में आता) है।** समझ में आया?

फिर से। मुनि हैं, (वे) अपना शुद्ध स्वभाव ज्ञायक का आश्रय लेकर जो छठवें गुणस्थानयोग्य निर्मल वीतरागीदशा उत्पन्न हुई है, वही वास्तव में सातवें गुणस्थान की निर्विकल्पदशा का साधन है। परन्तु लम्बा-लम्बा (कथन) न करके जो निर्विकल्प साधन है, उसके साथ जो महाव्रतादि का विकल्प है, वह सातवें गुणस्थान का साधन है, ऐसा व्यवहार से, उपचार से कथन किया गया है। समझ में आया? जरा समझे न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में आता है या नहीं? तो यहाँ साधन तो उसे कहना है। छठे गुणस्थान की शुद्धि को सातवें का साधन कहना है। परन्तु उसका ऐसा न कहकर, महाव्रतादि का विकल्प है, वह सातवें का साधन है, यह व्यवहार आरोप से कथन है। समझ में आया? कठिन बात! यह बात घर में विचारना और बराबर वाँचन करना और न समझ में आये तो रात्रि (चर्चा) में पूछना। समुचित बैठे, बैठावे तो बैठे।

यहाँ तो कहना है, आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा के आश्रय से सम्यग्ज्ञान हुआ। आत्मा के आश्रय से छठवें गुणस्थान के योग्य चारित्र हुआ। आंशिक अवलम्बन है। पूर्ण अवलम्बन नहीं। पूर्ण अवलम्बन होवे तो केवली हो जाये। तो उस

आंशिक अवलम्बन के काल में, वास्तव में तो छठवें गुणस्थान की शुद्धि विकल्प की अपेक्षा से सातवें का कारण है। समझ में आया?

परन्तु विकल्प जो छठवें गुणस्थान में व्यवहारचारित्र है, उसका अभाव करके सातवें में जाता है, तो वह साधन है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। वास्तव में तो अभाव करके जाता है। परन्तु उसकी अस्ति है, वह व्यवहार साधन है, ऐसा कहने में आता है। क्या कहा अब, देखो! अस्ति बतलाने के लिये। उसका—पंच महाव्रत का विकल्प तो राग है। उसका अभाव करके सातवें में जाता है। परन्तु है, वह साधन है, ऐसा उपचार से कथन किया जाता है।

मुमुक्षु : लम्बा कथन करने के बदले...

पूज्य गुरुदेवश्री : हं... संक्षिप्त कथन करते हैं, ऐसा है। बहुत सूक्ष्म बात! यह तो यह सब इतना पेरेग्राफ प्रश्न करे तो समझ में आये ऐसा नहीं है। यह तो इसमें आता है। ऐई!

ऐसे लम्बे कथन के बदले, ऐसा कहा जाये कि 'छठवें गुणस्थान में प्रवर्तमान महाव्रतादि के शुभ विकल्प सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है,' तो वह उपचरित निरूपण है। ऐसे उपचरित निरूपण में से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं, किन्तु उनके द्वारा जिस छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि को बताना था,... विकल्प इतना ही था। छठवें गुणस्थान की निर्मल दशा में इतना ही विकल्प था। इससे छठा गुणस्थान बतलाना था। समझ में आया?

महाव्रतादि के शुभ विकल्प नहीं किन्तु उनके द्वारा जिस छठवें गुणस्थानयोग्य शुद्धि को बताना था, वह शुद्धि वास्तव में सातवें गुणस्थानयोग्य निर्विकल्प शुद्ध परिणति का साधन है। यह क्या कहा? कि छठवें गुणस्थान में शुद्धि जितनी होती है, तो वहाँ राग की मन्दता इस जाति की होती है। नौ तत्त्व की श्रद्धा, ग्यारह अंग का ज्ञान यह बतलाते हैं, शुद्धि और व्यवहार ऐसा होता है तो वहाँ निश्चय शुद्धि ऐसी है, ऐसा बतलाना यह है। यह बतलाने का न करके उससे सातवाँ हुआ, ऐसा कहा, वह व्यवहारकथन कहने में आया है। लो! हमारे मलूकचन्दभाई ने बराबर कहा। व्यापारी कहलाये न!

छठवें गुणस्थान में शुद्धि को बतलाना था। किसके द्वारा? महाव्रतादि द्वारा। क्यों? कि छठे गुणस्थान में पंच महाव्रत का विकल्प होता है। उसे वस्त्र लेने का, पात्र लेने का, उसके लिये बनाने का विकल्प नहीं आता, ऐसी विकल्प की जाति छठवें गुणस्थान में निर्मल में ऐसी जाति है तो छठवें गुणस्थान की शुद्धि में ऐसी शुद्धि आती है। यह बतलाना था। इस कारण उसे सीधा बतलाया, उस विकल्प से सातवाँ गुणस्थान हुआ। व्यवहारचारित्र से सातवाँ गुणस्थान आरोप से कथन हुआ। परन्तु सीधा बतला सकते नहीं। ऐसा सीधा नहीं बतला सकते। यहाँ तो न समझे उसके लिये है न!

सातवें गुणस्थान में जानेवाले की शुद्धि, पहले छठवें में इतनी थी। और छठवें में इतनी शुद्धि है, तत्प्रमाण राग की मन्दता इस प्रकार की ही होती है। ऐसा न हो तो शुद्धि वहाँ होती नहीं। राग की तीव्रता हो और वस्त्र लेने का भाव हो, वहाँ चारित्र में शुद्धि हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसी तरह छठे गुणस्थान की शुद्धि बतलाने के लिये उस समय पंच महाव्रत ऐसा अहिंसा, सत्य, अचौर्य आदि अपरिग्रह का विकल्प ऐसा है, उसके द्वारा बतलानी थी तो शुद्धि। समझ में आया? परन्तु उसे छोड़कर उसे सातवाँ (गुणस्थान) हुआ। ऐसा सीधा कथन किया, इसका नाम आरोपित कथन कहा जाता है। जरा सूक्ष्म पड़े, भाई! पूरा पेरेग्राफ सूक्ष्म है। आता है। यह आ सकता है। आहाहा! समझ में आया या नहीं? ऐई प्रकाशदासजी! वहाँ सब गड़बड़ है, हों! जहाँ जाते हो वहाँ। जहाँ जाओ वहाँ, ऐसा कहा न, वह दया पाले, ऐसा देखकर चले, ऐसा करे, वैसा करे। आहाहा! यह तो धूल में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। वहाँ व्यवहार भी नहीं। क्योंकि छठवें गुणस्थान की दशा के योग्य जो व्यवहार विकल्प है, वह बताते हैं कि उसमें इतनी शुद्धि प्रगट हुई है। समझे न?

यह प्रवचनसार में आया है न? कर्मशुद्धि, द्रव्यशुद्धि। वह यहाँ बात है। जब सच्ची मुनिपने की दशा प्रगट हुई हो तो उसे वस्त्र लेने का, पात्र लेने का, सदोष आहार लेने का, स्त्री के संग आदि का विकल्प नहीं होता। तो इस जाति का तत्त्वार्थश्रद्धान, नौ तत्त्व का ज्ञान, महाव्रत आदि का विकल्प होता है। यह बतलाना था कि इस शुद्धि में इतने प्रकार के विकल्प होते हैं। उस विकल्प द्वारा उसकी शुद्धि इतनी होती है, ऐसा

बतलाना था। परन्तु उसके बदले उसके कारण सातवाँ हुआ, यह बताते हैं, यह व्यवहार कथन है। समझ में आया? ऐई! बराबर है? तुम यह लिख सकते हो ऐसा?

मुमुक्षु : जान तो सकते है। भले लिख न सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : जान सके परन्तु यह छोटा भाई है और यह छोटा भाई है। कहो, समझ में आया? इसमें कहाँ छोटा-बड़ा है। आहाहा!

कितनी बात है! देखो! आचार्य ने स्वयं कही है, उसका स्पष्टीकरण है। क्योंकि वहाँ ऐसा कहा न, देखो! (१५९ की टीका) **इस प्रकार वास्तव में शुद्धद्रव्य के आश्रित, अभिन्नसाध्यसाधनभाववाले निश्चयनय के आश्रय से मोक्षमार्ग का प्ररूपण किया गया। और जो पहले (१०७वीं गाथा में) दर्शाया गया था, वह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,....** राग **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) प्ररूपित किया गया था। इसमें परस्पर विरोध आता है, ऐसा भी नहीं है,...** यह उसका स्पष्टीकरण है। **क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति...** इसमें गड़बड़ करेंगे। देखो! सुवर्णपाषाण और व्यवहार सुवर्ण है। व्यवहार पाषाण है और सुवर्ण उससे प्राप्त होता है। ऐसा कहाँ होता है? सुन तो सही! पाषाण तो पृथक् पड़ जाता है। पाषाण पृथक् पड़े, तब सोना मिलता है।

इसी प्रकार राग पृथक् पड़े, तब शुद्धनिश्चय की प्राप्ति होती है। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में ही बड़ी गड़बड़। जाति अन्ध का दोष नहीं। यह करो। अन्ध का दोष क्या कहना? अर्थ न समझे। परन्तु मिथ्यादृष्टि, इससे कठोर करे अर्थ के अनर्थ। जो कहने का आशय है, उसका आश्रय छोड़कर स्वच्छन्द से अपने दृष्टि से पोषक करे। अर्थ का अनर्थ है। कहो, शान्तिभाई! आहाहा! **क्योंकि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधनपना है;...** निश्चय साध्य है, व्यवहार साधन है। **इसलिए पारमेश्वरी (-जिनभगवान की) तीर्थप्रवर्तना...** दो नय का ज्ञान कराना है या नहीं? दो नय का ज्ञान। अकेला निश्चय है नीचे? साथ में है या नहीं? समझ में आया?

यह तो श्रीमद् में भी आता है। 'नय निश्चय एकान्त से इसमें नहीं कहा, एकान्त से व्यवहार नहीं दोनों साथ रहे।' और वहाँ के यहाँ झगड़ा करें। कोई कहता था, इसमें

तो ऐसा लिखा हुआ है। तो कहे कि नहीं, पहले भक्ति-बक्ति हो, फिर आत्मा का ज्ञान होता है।

मुमुक्षु : पहले उपदेश बोध हो, फिर सिद्धान्त बोध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश बोध, सिद्धान्त बोध। अरे परन्तु सुनने आया, उसे उपदेश बोध तो है। सुन न! आहाहा! ऐसा पक्ष का व्यामोह हो जाता है न! भगवान की भक्ति करो, भक्ति करो, भक्ति करो। इतनी भक्ति करो कि अपने को भूल जाओ। मूढ़ हो जाये? भगवान के विकल्प में ऐसे तन्मय हो जाओ कि अपने को भूल जाओ। अनादि से भूल तो गया है। क्या है तुझे?

यह भक्ति का विकल्प है, वह तो बन्ध का कारण है। परन्तु उसे व्यवहार साधन क्यों कहा? निश्चय स्वभाव का आश्रय लिया, तब ऐसा मन्द राग उसमें आता है। साधन कहा। आरोप से साधन कहा। यथार्थ में तो साधन है नहीं। यथार्थ में तो सातवें गुणस्थानयोग्य निर्मल परिणति का छठे गुणस्थानयोग्य निर्मल परिणति, वह साधन है। परन्तु इस व्यवहारसाधन को उपचार से साधन कहने में आया है। ऐसा न समझे तो गड़बड़ हो जाये। समझ में आया? ऐसी बात वीतरागमार्ग के अतिरिक्त, जिनेश्वर के अतिरिक्त और दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त ऐसी स्पष्टता कहीं दूसरे में है नहीं। समझ में आया? है ही नहीं कहीं। अन्धानुकरण है। परन्तु कठिन पड़े। बहुत वर्ष से संस्कार पड़े हों, उसमें से निकलना (बहुत कठिन पड़ता है)। समझ में आया? लो! १५९ गाथा हुई। समझ में आया? अब इसका स्पष्टीकरण। व्यवहारसमकित मोक्षमार्ग का स्पष्टीकरण यहाँ है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६०

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतम् ।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ।। १६० ।।

निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोदिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम् ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थ-श्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं, तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थ-परिच्छित्तिर्ज्ञानम्, आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्या-इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्य प्रतिपदमुपरितनशुद्ध-भूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वरस्येव शुद्धजीवस्य कथञ्चिद्भिन्न-साध्यसाधन-भावाभावात्स्वयं शुद्धस्वभावेन विपरिणममानस्यापि, निश्चय-मोक्षमार्गस्य साधनभावमापद्यत इति ।। १६० ।।

धर्मादि की श्रद्धा सुदृग पूर्वांग बोध-सुबोध है।
तप माँहि चेष्टा चरण मिल व्यवहार मुक्तिमार्ग है।।१६०।।

अन्वयार्थ :- [धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वम्] धर्मास्तिकायादि का श्रद्धान सो सम्यक्त्व, [अंगपूर्वगतम् ज्ञानम्] अंगपूर्वसम्बन्धी ज्ञान सो ज्ञान और [तपसि चेष्टा चर्या] तप में चेष्टा (-प्रवृत्ति) सो चारित्र; [इति] इस प्रकार [व्यवहारः मोक्षमार्गः] व्यवहारमोक्षमार्ग है।

टीका :- निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से, पूर्वोदिष्ट (१०७वीं गाथा में उल्लिखित) व्यवहारमोक्षमार्ग का यह निर्देश है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है। वहाँ, (छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं, ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव (-धर्मास्तिकायादि की तत्त्वार्थप्रतीतिरूप भाव) जिसका स्वभाव है ऐसा, 'श्रद्धान' नाम का भावविशेष, सो सम्यक्त्व; तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में अंगपूर्वगत पदार्थों का अवबोधन

(-जानना), सो ज्ञान; आचारादि सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा (-प्रवर्तन), सो चारित्र;—ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) अनुसरण किया जानेवाला मोक्षमार्ग, सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली प्रदीप्त अग्नि की भाँति, [1]समाहित अन्तरंगवाले जीव को (अर्थात् जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है, ऐसे जीव को) पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति (-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ—यद्यपि उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव कथंचित् भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है तथापि—निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।

भावार्थ :— जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है, उस जीव को तत्त्वार्थश्रद्धान, अंगपूर्वगत ज्ञान और मुनि-आचार में प्रवर्तनरूप [2]व्यवहारमोक्षमार्ग विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन बनता हुआ, यद्यपि निर्विकल्पशुद्धभावपरिणत जीव को परमार्थ से तो उत्तम सुवर्ण की भाँति अभिन्नसाध्यसाधनभाव के कारण स्वयमेव शुद्धभावरूप परिणमन होता है तथापि, व्यवहारनय से निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।

---

१. समाहित=एकाग्र; एकता को प्राप्त। अभेदता को प्राप्त; छिन्नभिन्नता रहित; समाधिप्राप्त; शुद्ध; प्रशान्त।

२. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में पंचमगुणस्थानवर्ती गृहस्थ को भी व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग के स्वरूप का निम्नानुसार वर्णन किया है :—'वीतरागसर्वज्ञप्रणीत जीवादिपदार्थों सम्बन्धी सम्यक् श्रद्धान तथा ज्ञान दोनों, गृहस्थ को और तपोधन को समान होते हैं; चारित्र, तपोधनों को आचारादि चरणग्रन्थों में विहित किए हुए मार्गानुसार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य पंचमहाव्रत-पंचसमिति-त्रिगुप्ति-षडावश्यकादिरूप होता है और गृहस्थों को उपासकाध्ययनग्रन्थ में विहित हुए मार्ग के अनुसार पंचम गुणस्थानयोग्य दान-शील-पूजा-उपवासादिरूप अथवा दार्शनिक-व्रतिकादि ग्यारह स्थानरूप (ग्यारह प्रतिमारूप) होता है; इस प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है।'

[अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात् उसे (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं है।]॥१६०॥

प्रवचन-७१, गाथा-१६०, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा, गुरुवार, दिनांक -२१-०५-१९७०

पंचास्तिकाय १६० गाथा। निश्चय-व्यवहार की बात है, तो व्यवहार से बात चलती है।

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चेट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

इसकी **टीका :- निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से,...** क्या कहते हैं? अपना शुद्ध आनन्द शान्त समाधिस्वरूप आत्मा अन्तर में दृष्टि करके स्वरूप की दृष्टि-ज्ञान और स्वरूप की रमणता प्राप्त हुई है, उसे निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। समझ में आया? पहली व्याख्या। निश्चयमोक्षमार्ग के साधनरूप से उसमें निमित्तरूप से व्यवहारमोक्षमार्ग का निमित्तरूप आता है। उसके पूर्वोदिष्ट (१०७वीं गाथा में उल्लेख किया गया) व्यवहारमोक्षमार्ग का यह निर्देश है। उसका यहाँ विशेष स्पष्टीकरण है। १०७ गाथा में आया है। क्या कहते हैं, देखो!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सो मोक्षमार्ग है। यह तो निश्चय। अपना आत्मा... सवेरे ११वीं गाथा में बहुत ही आया था, नहीं? वस्तु ध्रुव एकरूप अन्तर स्वभाव पूर्ण, उसकी पर्याय, उसका आश्रय लेकर, पर्याय उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन होता है। वह प्रथम निश्चय सम्यग्दर्शन कहने में आता है। समझ में आया? और स्वरूप का ज्ञान। स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान, उसे स्वसंवेदन यथार्थ सच्चा ज्ञान कहने में आता है। और स्वरूप में लीनता आनन्दस्वभाव में लीनता को चारित्र कहा जाता है। यह मोक्षमार्ग है। पहली सामान्य बात की। तीनों पर्याय है। तीनों निर्विकारी पर्याय है, अवस्था है।

अब व्यवहार कहते हैं। वहाँ निमित्त कैसा है। **वहाँ, (छह) द्रव्यरूप और (नव) पदार्थरूप जिनके भेद हैं,...** छह द्रव्य की श्रद्धा, वह भी व्यवहारश्रद्धा, विकल्पश्रद्धा

स्व-परपर्याय। आत्मा और पुद्गल जिसमें निमित्त है, ऐसी स्व-पर पर्यायवाली वह श्रद्धा है। छह द्रव्य की और नौ पदार्थ की। ऐसे **जिनके भेद हैं, ऐसे धर्मादि के तत्त्वार्थ-श्रद्धानरूप भाव...** धर्मास्ति आदि तत्त्वार्थश्रद्धानरूप भाव। यह तत्त्वार्थ तो कहा परन्तु जिसका स्वभाव ऐसा श्रद्धान। **नाम का भावविशेष सो सम्यक्त्व;...** यह व्यवहार समकित की बात चलती है। समझ में आया? देखो!

यहाँ तो वहाँ तक कहा है **'अंगपूर्वगतम्'** यहाँ तक लिया है। पूर्व का जो ज्ञान है, वह भी व्यवहार है। पाठ में है न, भाई! **'अंगपूर्वगतम्'** अंग और पूर्व सम्बन्धी ज्ञान हो, वह भी परलक्ष्यी स्व-परपर्याय स्व अर्थात् अपना उपादान और निमित्त पुद्गल, ऐसे दो के बीच उत्पन्न हुई विकल्पदशा का नाम तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। और **तत्त्वार्थश्रद्धान के सद्भाव में...** वह तत्त्वार्थश्रद्धान जो व्यवहार है, उसका सद्भाव अर्थात् अस्ति में **अंगपूर्वगत पदार्थों का अवबोधन...** लो! टीका में डाला। अंग और पूर्व का अवलोकन अर्थात् **जानना, वह ज्ञान,...** यह भी स्वपरहेतुक पर्याय है। आत्मा भी जिसमें निमित्त है और पुद्गल भी जिसमें निमित्त है। ऐसी विकल्प पर्याय को स्वपरहेतुक पर्याय व्यवहार ज्ञान, व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी व्यवहार है न? परलक्ष्यी है न? समझ में आया? ऐसा होता है परन्तु है वह बन्ध का कारण। तो यहाँ आरोप से मोक्ष का मार्ग कहने में आया है। ऐसी बात है। आहाहा!

सो ज्ञान; आचारादि सूत्रों द्वारा... देखो! भगवान ने आचारांगादि में जो कहा, आचार, आचारांगादि में भगवान ने जो व्यवहार आचार कहे, उन **सूत्रों द्वारा कहे गए अनेकविध मुनि-आचारों के समस्त समुदायरूप तप में चेष्टा...** व्रत और तप में चेष्टा अर्थात् विकल्प की प्रवृत्ति, वह व्यवहारचारित्र है। समझ में आया? ऐसा जहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वहाँ ऐसा व्यवहार का विकल्प (होता है)। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अकेले जीव के आश्रय से हुए हैं और व्यवहार है, वह जीव और पुद्गल दो के आश्रय से स्व-परहेतुक पर्याय उत्पन्न हुई है। निश्चय स्वहेतुक पर्याय उत्पन्न हुई है। हेतु कहो या कारण कहो। स्वहेतुक अपना द्रव्यस्वभाव स्वद्रव्य के

आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह स्वद्रव्य—एक जीवद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है, उस निर्मल पर्याय को निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। और जिसमें स्वपरहेतुक उपादान भी अपना है और निमित्त पुद्‌गल का है। यह तो पहले अकेले शुद्ध उपादान की बात की। यह अशुद्ध उपादान। समझ में आया?

शुद्ध उपादान भगवान आत्मा ऐसा पवित्र धाम, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से जो अनुभव में-ज्ञान में प्रतीतिरूप भाव आया, वह प्रतीति और ज्ञान, वह निश्चय है। और उसमें लीनता, वह निश्चयचारित्र है। वह वास्तविक यथार्थ मोक्ष का मार्ग है। वह है तो पर्याय, परन्तु पर्याय अकेले जीवद्रव्य के आश्रित शुद्ध उपादान के आश्रित है। और यह व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और आचरण जो है, वह स्वपरहेतुक पर्याय है। अपना आत्मा (विकल्परूप से), परन्तु उसमें अशुद्ध उपादानपना है। निमित्तरूप से पुद्‌गल है। यह पर्याय बहिरंग कारण है।

निश्चयमोक्षमार्ग में यह विकल्प बहिरंग कारण है। समझ में आया? अभ्यन्तर कारण तो भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव के अवलम्बन से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होता है, उस शुद्ध उपादान के आश्रय से स्वआश्रय से यथार्थ है। वह अभ्यन्तर कारण है। समझ में आया? बहिरंग कारण है भाव। शुद्धता की अपेक्षा से स्वपरहेतुक पर्याय होने से उसे बहिरंग कहा गया है। उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं। पण्डितजी! कहा था न कि, न समझ में आये तो रात्रि में प्रश्न करना, परन्तु रात्रि में किसी ने प्रश्न किये नहीं। यह तो बात ऐसी है। यह तो वस्तुस्थिति ख्याल में (आने पर) भावभासन होना चाहिए न! ऐसे का ऐसे मान ले और ऐसा ही कहे, उसमें क्या हुआ?

यहाँ तो जीव का जीवभाव शुद्धचैतन्यस्वभाव, उसका एक का ही आश्रय लेकर, जीवद्रव्य का ही आश्रय लेकर जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए हैं, वह शुद्ध उपादान अभ्यन्तर कारण अपने से उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? और उस भूमिका में स्वपरहेतुक पर्याय विकल्प उत्पन्न होता है, वहाँ अपना भी थोड़ा उल्टा पुरुषार्थ है और पुद्‌गल निमित्त है। ऐसा जो विकल्प है, वह नौ तत्त्व की श्रद्धा, श्रद्धा के साथ अंगपूर्वगत का ज्ञान और आचारांग आदि में कहे हुए भगवान ने कहे हुए आचरण के शुभ विकल्प-शुभ विकल्प उस बहिरंग कारण को व्यवहार मोक्षमार्ग कहकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय है तो व्यवहार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो व्यवहार, नहीं तो व्यवहार कहाँ ऐसा है? अज्ञानी को व्यवहार कहाँ है? ग्यारह अंग पूर्व के अकेले ज्ञान से, वह तो कहते हैं या नहीं? वह तो निश्चय नहीं, उसे तो व्यवहार भी नहीं है। यहाँ तो निश्चय स्वभाव आत्मा अभेद वस्तु का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए, उस भूमिका में उस काल में निमित्तरूप बहिरंग कारणरूप स्वपरहेतुक जो पर्याय का विकल्प है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। कठिन बात, भाई! यह तो गड़बड़-गड़बड़ भान नहीं होता कुछ! पंच महाव्रत पालो-पंच महाव्रत पालो, परन्तु किसके पंच महाव्रत तेरे? धूल के? सुन न! पण्डितजी!

मुमुक्षु : व्यवहार है, उसे बहिरंग कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना बहिरंग है। अन्तरंग जो निश्चय निर्विकल्प वस्तु, वह स्व है और उसमें जरा पर का आश्रय आया। है अपनी पर्याय, परन्तु पर के आश्रय से निश्चयमोक्षमार्ग की अपेक्षा से वह बहिरंग कारण है। अन्तरंग कारण नहीं। है भाव, विकल्प। आहाहा! हाँ, विकल्प है न वह व्यवहार। है सही, उसे व्यवहार से साधन भी कहा गया है। व्यवहार से व्यवहार को साधन कहते हैं। साधन है नहीं, उसे साधन कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! प्रकाशदासजी! यह बात है। वहाँ तो वे कहे कि पंच महाव्रत पालन करो, समिति-गुप्ति रखो, निर्दोष आहार लो, वह तुम्हारा मोक्षमार्ग, धूल भी नहीं। सुन तो सही! ऐ वीरेन्द्रकुमार! समझ में आया? शान्ति से सत्य क्या है, वह समझने है। ऐसी गड़बड़-फड़बड़ करे, ऐसा वैसा करे, वह यहाँ चलता नहीं।

यहाँ सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के मुख में से निश्चय और व्यवहार क्या आये हैं, उसका स्पष्टीकरण कुन्दकुन्दाचार्य करते हैं, कि भगवान आत्मा पर का लक्ष्य छोड़कर अपने लक्ष्य से, अपने आश्रय से, अकेले जीव के आश्रय से। अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वद्रव्य के आश्रय से जो श्रद्धा, ज्ञान और लीनता उत्पन्न होती है, वही यथार्थ वास्तविक अनुपचार मोक्षमार्ग है। समझ में आया? और साथ में भगवान ने कहे, ऐसे नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय, पाँच अस्तिकाय, इसमें आ गया इकट्ठा ले लेना और नौ पदार्थ। समझ में आया? छह द्रव्य। भेद है न? छह द्रव्य

और नौ पदार्थ भेद है। ऐसी भेद की श्रद्धा को, जिसमें भेद—ऐसा आया था न? छह द्रव्यरूप और नौ पदार्थ भेद है। ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धान का विकल्प, वह स्वपरहेतुक पर्याय है। अकेले स्वआश्रय की पर्याय नहीं। यह स्व-पर परन्तु उसमें स्वपरहेतुक का अर्थ स्व में आश्रय है, ऐसा नहीं। स्व का अंश उसमें है। अशुद्धता का विकल्प। वह अपना विकल्प अपने में से है। उसमें निमित्त पुद्गल है। समझ में आया?

नहीं बहिरंग की खबर, नहीं निश्चय की खबर और धर्म... धर्म हो गया। माने तो गहल-पागल मानते हैं। निम्बोली को नीलमणि माने तो कौन इनकार करता है? इससे कहीं नीम की निम्बोली नीलमणि हो जाती है? यहाँ तो भगवान ऐसा स्पष्ट कहते हैं कि आत्मा जितना स्व के आश्रय से निश्चय अर्थात् यथार्थ। स्व का आश्रय वह निश्चय। उससे जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, निर्विकल्प शान्ति आनन्द के वेदनसहित श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, वह सच्चा मोक्ष का निश्चयमार्ग। और उसके साथ विकल्प की स्वपरहेतुक पर्याय, उस बहिरंग कारण को व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। क्योंकि उसकी दिशा परसन्मुख है और निश्चय की दिशा स्वसन्मुख है। समझ में आया?

शुद्ध उपादान के साथ निमित्त ऐसा होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। लो वास्तव में! समझ में आया? अन्यमति का ज्ञान और वेदान्त आदि का ज्ञान, वह व्यवहार ज्ञान भी नहीं, ऐसा कहते हैं। दरबार! सूक्ष्म बात है। निश्चय जैसा लगे न, मानो वेदान्त है। ऐसा लगे। ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? एक-एक द्रव्य भगवान परिपूर्ण सत्व सत् का सत्व से भरा है। अपना आत्मा परिपूर्ण परमात्मा है, ऐसे निज परमात्मा के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो वह सच्चा मोक्षमार्ग है। वह मार्ग है तो पर्याय। समझ में आया?

पर्याय को करनेवाला द्रव्य है, यह भी उपचार कथन है। सुनो! क्या कहा? द्रव्य को अपनी निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता कहना, वह भी उपचार है। पर्याय का कर्ता पर्याय है, वह यथार्थ है। उसमें आता है नहीं? क्या कहलाता है? कलशटीका में, भाई! आता है न? परद्रव्य का कर्ता तो उपचार से भी नहीं है। परन्तु अपनी पर्याय का कर्ता उपचार से है। अर्थात् पर्याय और द्रव्य दोनों भिन्न चीज़ है, इस अपेक्षा से पर्याय का कर्ता द्रव्य को कहना, वह उपचार है। पर्याय पर्याय का कर्ता है, द्रव्य नहीं—यह यथार्थ अनुपचार है। पण्डितजी! ऐसा यहाँ तो और व्यवहार का कर्ता आत्मा है, ऐसा तो है नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय क्या अलग है महाराजजी!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ध्रुव से अलग है। पर्याय तो पर्याय में है, ध्रुव ध्रुव में है। दोनों एक नहीं हो जाती। एक हो जाये तो एक ही तत्त्व हो जाये, दो तत्त्व रहते नहीं। समझ में आया? यहाँ तो कहना है कि व्यवहार का कर्ता नहीं, ऐसा जरा लक्ष्य में आया था। परन्तु है सही निमित्त। निमित्त है न! तो निर्मल पर्याय निमित्त की कर्ता नहीं। समझ में आया? परन्तु है सही। उसे निमित्त कहते हैं न? कर्ता होवे तो निमित्त कहाँ आया? भाई! समझ में आया? बात रे बात! वस्तु की स्थिति का मूल स्वरूप कहते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि जो नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प, स्वपरहेतुकपर्याय, ग्यारह अंग पूर्व का ज्ञान, स्वपरहेतुकपर्याय और जो आचारांग आदि में भगवान ने कहे, ऐसे व्यवहारचारित्र, ऐसा जो अन्दर विकल्प पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण बराबर, ऐसा जो विकल्प है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है। क्योंकि शुद्ध उपादान अपने द्रव्य के आश्रय से परिणमन करनेवाला, उसके साथ ऐसा निमित्त है। निमित्त है। निमित्त का शुद्ध उपादान कर्ता नहीं। तथा वह निमित्त, शुद्ध उपादान पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा! ऐई! वजुभाई! प्रकाशजी! तुमने कल सवेरे पूछा था न? ...समयसार में से। नहीं? वह व्यवहारमोक्षमार्ग है वह। प्रश्न आया था न? व्यवहारमोक्षमार्ग है। व्यवहारमोक्षमार्ग यह। वास्तव में वह मार्ग है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो इतना स्पष्ट करते हैं। **ऐसा यह, स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित,...** भाषा देखो! व्यवहार का जो विकल्प है, अभी खबर ही नहीं निश्चय क्या और व्यवहार क्या? बिना भान के पड़े कूटे। मान ले कि हमारे कुछ धर्म होता है। समझ में आया? पर का कुछ कर दे। यहाँ तो कहते हैं, पर का तो कुछ कर नहीं सकता, परन्तु व्यवहार के विकल्प का शुद्धपर्याय कर्ता नहीं। और शुद्धपर्याय का कर्ता यथार्थ में द्रव्य भी नहीं। आहाहा! वस्तु तो देखो! शोभालालजी! मार्ग ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा! महा आनन्द का शुद्ध धाम। ऐसा द्रव्य वस्तु प्रभु! उस महाप्रभु का आश्रय लेकर पर्याय में जो निर्मलता आयी, उस निर्मलपर्याय को यहाँ सच्चा मोक्षमार्ग–धर्मपर्याय कहा जाता है। वह धर्मपर्याय कहो या निश्चयमोक्षमार्ग कहो। उसमें साथ में स्वपरहेतुक विकल्प है, वह धर्मपर्याय नहीं है। है अधर्मपर्याय। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विषय दूसरा है, है तो सही, यह तो ज्ञान कराते हैं। है नहीं क्या? है, उसकी तो बात चलती है। परन्तु है कौन? है अधर्म। जब शुद्धपरिणाम, शुद्धपरिणति शुद्ध के आश्रय से हुई तो धर्म है और यह स्वपरहेतुक पर्याय वह धर्म से विरुद्ध है। निश्चय से व्यवहार विरुद्ध है। परन्तु निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता देखकर उसे मोक्षमार्ग का आरोप दिया गया है। समझ में आया? शान्तिभाई!

अब यहाँ निश्चय का और व्यवहार का ठिकाना नहीं होता और कितने ही ऐसा कहते हैं कि हम व्यवहार तो करते हैं न! हम व्यवहार तो करते हैं न! यहाँ के यह शास्त्र बाहर गये इसलिए मानो हम व्यवहार तो करते हैं न! व्यवहार में तो हम हैं न! भले निश्चय में अभी न हों। व्यवहार भी कहाँ था तेरा? भास है, सुन न! आहाहा! व्यवहाराभास कहाँ था परन्तु। व्यवहाराभास तो निश्चयनय हो और वीतराग ने कहा हुआ व्यवहार, उसके विकल्प में हो तो उसे व्यवहाराभास कहा जाता है। यह तो वीतराग ने व्यवहार कहा, उसका भी ठिकाना कहीं मिलता नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु भारी कठिन काम! कहते हैं,...

मुमुक्षु : .... पापी माने वह धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं कहो या अधर्म कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में पापी है। है ही ऐसा। वह पापी है। व्यवहाररत्नत्रय वास्तव में निश्चय से पाप है। शोभालालजी! समयसार में आ गया है। समयसार में पुण्य-पाप के अधिकार में आ गया है। तुम अधिकार तो पाप का लेते हो और व्यवहाररत्नत्रय यहाँ कहाँ डाला? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। पुण्य-पाप के (अधिकार के) अन्त में। पाप के अधिकार में और पुण्य-पाप! व्यवहाररत्नत्रय विकल्प पाप ही है। अपने स्वरूप से पतित होता है। समझ में आया?

पाप को पाप तो सब कहते हैं परन्तु अनुभवी जन तो पुण्य को पाप कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! उसके घर में से बाहर निकलकर वृत्ति खड़ी हुई, उस जाति

से तो जाति का घात करनेवाली है। परन्तु व्यवहार से उसे निमित्त की अनुकूलता देखकर, क्योंकि ऐसा विकल्प ही उस जाति का होता है, दूसरा होता नहीं। इतना गिनने में गिनकर उसने व्यवहार का आरोप करके व्यवहारमोक्षमार्ग कहा। समझ में आया? और साधन भी व्यवहारनय से (कहा है)। है नहीं और कहा, उसका नाम व्यवहार है। बात ऐसी है। कुछ गड़बड़ करे तो पूरा तत्त्व फेरफार हो जायेगा। समझ में आया? अन्दर में आयेगा, हों! अन्दर में आयेगा धीरे-धीरे। आहाहा! व्यवहार से विशुद्धि बढ़ेगी, ऐसा भी आयेगा। वह व्यवहार का कथन है।

कहते हैं, यह स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, क्या कहा? देखो! व्यवहारमोक्षमार्ग स्वपरहेतुक स्वपर कारण की पर्याय के आश्रित है। अकेली निर्मल पर्याय आश्रित व्यवहारमोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग की खबर नहीं होती। हम तो अभी शुभभाव में हमारी अभी भूमिका इतनी, ऐसा कहते हैं न। हम अभी तो बस इतने में रहते हैं शुभभाव में। शुभभाव, परन्तु शुभभाव में रहना, वह तो मिथ्यात्व है और शुभभाव का कर्तव्य मानना, वह भी मिथ्यात्व है। विपरीत अभिप्राय का महापाप है। स्वभाव में जो चीज़ नहीं, उस चीज़ का कर्तव्य मानना, वह तो महामिथ्यात्व है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा मानना, ऐसा नहीं है। स्व के आश्रय से शुद्ध उपादान से वीतरागी मोक्षमार्ग की दशा उत्पन्न हुई, जो स्वजीव के आश्रय से है, उसे निश्चय कहा।

'स्वाश्रयो निश्चय: पराश्रयो व्यवहार:' जो पर्याय पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुई है, हुई है अपने में, अपने से; परन्तु परलक्ष्य से उत्पन्न हुई तो उसे व्यवहार कहने में आता है। क्योंकि उसे **स्वपरहेतुक पर्याय के आश्रित, भिन्नसाध्यसाधनभाववाले...** देखो! यह स्वपरहेतुक पर्याय व्यवहार से भिन्न साधन है और निश्चयपयाग्य उससे भिन्न है। तो यह निश्चय साध्य है, व्यवहार साधन है—ऐसा व्यवहारनय से कथन किया गया है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई!

भिन्नसाध्यसाधनभाववाले व्यवहारनय के आश्रय से (-व्यवहारनय की अपेक्षा से) अनुसरण किया जानेवाला... देखो! यह व्यवहार के आश्रय से अनुसरण करनेवाले पर के आश्रय से, **मोक्षमार्ग,...** बस इतनी बात! इतना। यह व्यवहारमोक्षमार्ग की व्याख्या इतनी। अब, **सुवर्णपाषाण को लगायी जानेवाली प्रदीप्त अग्नि की भाँति,**

समाहित अन्तरंगवाले जीव का... ऐसा। देखो आया। कहते हैं कि सुवर्णपाषाण को, सुवर्णपत्थर है न? उसमें अग्नि लगाने से भिन्न पड़ता है। **प्रदीप्त अग्नि की भाँति, समाहित अन्तरंगवाले जीव का...** अपना स्वभाव! स्व-आश्रय जिसने प्रगट किया है। समाहित समस्थित वीतराग समभाव में रहा हुआ है। अपना त्रिकाली वीतरागस्वभाव जो है, उसके आश्रय से वीतरागी समतामृत। समतामृत पर्याय प्रगट हुई है, ऐसे जीव को **जिसका अन्तरंग एकाग्र—समाधिप्राप्त है...** शान्ति... शान्ति... शान्ति अकषाय परिणति, अविकारी परिणाम समाधि प्राप्त है। **ऐसे जीव को...** ऐसे जीव को। यह व्यवहार है वह।

पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति (-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ—

मुमुक्षु : व्यवहार उत्पन्न करा दे...

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो न! यह व्यवहारनय का कथन है। यह विकल्प है, उसमें ऊपर-ऊपर की शुद्धि बढ़ती है स्वयं के कारण से, परन्तु निमित्त का कथन करके उससे ऊपर की शुद्धि बढ़ी है, ऐसा आरोप करके कथन बहिरंग कारण में अन्तरंग कारण वृद्धि हुई, ऐसा आरोप करके कथन किया है। समझ में आया?

पद-पद पर परम... अर्थात् भगवान आत्मा अपने आश्रय से शुद्ध समाहित वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, ऐसी दशावान को वह विकल्प जो स्परहेतुक पर्याय है, उसमें अशुभता टलती है। उस शुभ में अशुभता... है तो यहाँ आश्रय इसलिए, है तो यहाँ का आश्रय इसलिए। और ऐसे निश्चय समाहितवन्त को वह शुभविकल्प जो है, उसमें अशुभता टलती है तो इतनी शुद्धता बढ़ती है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? वहाँ कहा है न! मोक्षमार्ग नहीं? मोक्ष अधिकार। अशुभ टलता है, शुभ नहीं। मोक्षमार्ग अधिकार। टलता है तो स्वभाव का आश्रय है, इसलिए टलता है। अकेला अशुभ हो, उसे शुभ टलता नहीं। उसने तो अशुभपना अपनेरूप से माना है।

परन्तु जहाँ स्वभाव की पूर्णता का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, वहाँ वह शुभभाव शुद्धि की वृद्धि में निमित्त कहने में आया। क्योंकि शुभभाव का अवलम्बन है, उसमें अशुभ टलता है और शुद्ध का लक्ष्य और दृष्टि शुद्ध पर है, इस कारण पद पद

में शुद्धता बढ़ती है, उसमें इस व्यवहार को निमित्त कहा गया है। इस अपेक्षा से। शान्तिभाई! थोड़ा सा तो अपनी कल्पना से फिर अर्थ करते हैं। यहाँ देखो! व्यवहार से बढ़ता है। व्यवहार से निश्चय होता है। अरे परन्तु व्यवहार स्वपरहेतुक है और निश्चय स्वहेतुक है स्व के आश्रय से। आश्रय करे विशेष तो बढ़े। पर के आश्रय से बढ़े, ऐसा है नहीं। परन्तु शुभभाव में पर का आश्रय थोड़ा है। इस ओर, इस ओर, हों! और शुभभाव में स्व का आश्रय विशेष है। शुभभाव के काल में अपना-स्व का आश्रय विशेष है। अशुभ काल में स्व का आश्रय थोड़ा है। यह अपेक्षा गिनकर। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने समाहित शान्त वीतरागी पर्याय में है, उसे स्वपरहेतुक पर्याय पद-पद में शुद्धि का आरोप करके निमित्त यह है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! ऐसा सब समझना, इसकी अपेक्षा या भगवान की भक्ति करना, ईश्वर... ईश्वर भजना, जाओ। या सब कॉँग्रेस के काम करना, बड़ी पदवी मिल जाये। लो! जाओ। रामजीभाई को यह पदवी देते थे। वह है न? ढेबरभाई ने तार करके बुलाया था। हाईकोर्ट के जज को। वहाँ धूल के जज हैं। ढेबरभाई ने बुलाया था। अरे! मैं तो वहाँ जाकर नियम लूँगा। किसका पद अब! धूल का! बाहर का मान मिले, इसलिए ऐसा हो जाये कि अपने कुछ अच्छा करते हैं, इसलिए यह पद मिलता है। धूल भी अच्छा नहीं। पुण्य-बन्धन है, वह भी यथार्थ नहीं है।

यहाँ तो अपना आश्रय पवित्रता है, वहाँ पुण्यभाव का भाव कैसा है शुभभाव विकल्प स्वपरहेतुक पर्याय या शुद्धि की... है और कहा न? **पद-पद पर परम रम्य ऐसी ऊपर की शुद्ध भूमिकाओं में अभिन्न विश्रान्ति (-अभेदरूप स्थिरता)....** इसमें शुभ में राग घटता जाता है न! जैसे-जैसे आगे भूमिका में शुभ है, वैसे राग घटता जाता है। चौथे से पाँचवें में, छठवें में, उतना उसका राग घटता जाता है न? कषाय घटे उतना भी अशुद्ध नहीं, इतना राग घटता जाता है। इस ओर शुद्धि क्रम से बढ़ते हुए... ऐसा कहकर निमित्त से-व्यवहार से अभिन्न विश्रान्ति बढ़ती है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! गजब! अर्थ का अर्थ करने में भारी मुश्किल! समझ में आया?

(-अभेदरूप स्थिरता) उत्पन्न करता हुआ यद्यपि... अब वापस कहते हैं।

यद्यपि अपना आत्मा ही अपने स्व के आश्रय से ही आगे बढ़ता है। उसमें कोई पर का कारण है नहीं। आहाहा! **यद्यपि उत्तम सुवर्ण की भाँति...** अर्थात्? सोना जो है और पत्थर है। अग्नि के निमित्त से सोने में शुद्धि बढ़ती है, यह व्यवहार का कथन है। परन्तु सोने की शुद्धि स्वयं से ही बढ़ती है, यह निश्चय वस्तु है। सोना स्वयं के कारण से ही परिणमन करके शुद्धता की वृद्धि करता है। अग्नि से शुद्धि की वृद्धि, वह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया? इसी प्रकार व्यवहार से अभेद की विश्रान्ति की वृद्धि, यह व्यवहार का कथन है। आहाहा! समझ में आया?

उत्तम सुवर्ण की भाँति शुद्ध जीव... शुद्ध जीव **कथंचित्...** अर्थात् अपने पुरुषार्थ से **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण...** विकल्प का लक्ष्य छोड़कर अपने भगवान अभिन्नसाध्यसाधनभाव में जुड़ता है तो विकल्प का-निमित्त का साधन वहाँ रहता नहीं। **अभाव के कारण स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है...** देखो! यह निमित्त शुभभाव है तो शुद्धपरिणति में वृद्धि होती है, यह तो उपचार से कथन किया गया है। वास्तविक तो भगवान आत्मा उस शुभ के काल में भी अपना स्व का आश्रय है, वह विशेष-विशेष स्व का आश्रय बढ़ता है तो अभिन्न शान्ति वहाँ बढ़ती जाती है।

यह भाषा अलग प्रकार की! पर्याय पर्याय में वृद्धि है, इतना बताते हैं। किसके कारण से? अपने शुद्ध उपादान के आश्रय के कारण से। सोना अपने से ही शुद्ध होता चला जाता है। अग्नि तो उसमें निमित्तमात्र है। समझ में आया? अग्नि से सुवर्ण की शुद्धि हो तो लोहे में अग्नि लगा दे न? क्या लगावे? अकेले पत्थर किसके गिरनार के। गिरनार के पत्थर में सोना है। परन्तु सौ रुपये का खर्च हो, तब साठ रुपये का सोना निकले। यह गिरनार गये थे न। सोने के पत्थर हैं न, उसमें चकचक होती है। समझे? ऐसा पहले कहते थे। यूरोपियन आये थे और मशीन लगायी थी। एक करोड़ का खर्च हो, तब साठ लाख रुपये निकलें। हें?

मुमुक्षु : नुकसान जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान जाये तो कौन करे? फिर सोना कौन निकाले?

इसमें तो बिल्कुल सोना निकलता ही नहीं। व्यवहार में से तो अपनी शुद्धि का अंश बिल्कुल निकलता ही नहीं। वह तो पत्थर है। पत्थर का दृष्टान्त है न सुवर्णपाषाण। पत्थर में से कहाँ सोना निकलता है? सुवर्णभाग है, उसमें से सोना निकलता है। समझ में आया? भारी बातें ऐसी! व्यवहार और निश्चय के झगड़े! समझे नहीं और सिरपच्ची करे। और (ऐसा कहे) हमारा व्यवहार तो सच्चा है न? व्यवहार साधन तो है न? साधन है तो साध्य प्राप्त होगा। धूल में भी होगा नहीं। समझे?

यहाँ तो समय-समय में साध्य द्रव्य है और निर्मलपर्याय साध्य व्यवहार है। उसका वह साधन व्यवहार से विकल्प को कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सन्धि यह है। एक साथ होने पर भी कथन में क्या आता है? व्यवहार से यहाँ शुद्धपर्याय बढ़ती है, ऐसा कहने में आया। निश्चय से तो स्वयं से ही बढ़ती है। शुद्ध में पर का आश्रय-फाश्रय है नहीं। आहाहा! समय-समय में दर्शन में द्रव्य का आश्रय है और तो वह आश्रय तो कायम रहता है। सम्यग्ज्ञान, चारित्र में भी आश्रय जितना बढ़ता है, उतनी शुद्धि बढ़ती है। यह कोई व्यवहार के कारण से बढ़ती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब समझना! क्या चीज़ है और कैसे होता है, उसका ज्ञान करना भी कठिन!

भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण स्वयं... देखो! अर्थात् उस विकल्प के अभाव के कारण, स्वपरहेतुक पर्याय के अभाव के कारण। **स्वयं (अपने आप) शुद्ध स्वभाव से परिणमित होता है...** अपना आत्मा अपने से पवित्र स्वभाव के आश्रय से ही पवित्रता बढ़ती है। **तथापि...** ऐसा होने पर भी **निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।** तथापि जो व्यवहार विकल्प है, वह निश्चयमोक्षमार्ग को व्यवहार से साधनपने को प्राप्त होता है। ऐसा कथन किया जाता है। समझ में आया? कल सूक्ष्म था, यह भी वापस सूक्ष्म है। गाथा में सब स्पष्टीकरण है। टीका में भी सबका स्पष्टीकरण है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहिरंग साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिरंग साधन है। बहिरंग साधन है न? अन्तरंग साधन तो स्वरूप की शुद्धि जो द्रव्य शुद्ध है, उसके आश्रय से जो शुद्धि होती है, वह अन्तरंग साधन है। यह विकल्प व्यवहारमोक्षमार्ग बहिरंग साधन है। इस पर्याय से भिन्न जाति है। यह बात ही अत्यन्त भिन्न है।

ज्ञाता समकिती व्यवहारसाधन को परज्ञेयरूप से जानता है। है सही। समझ में आया? उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप करके जानता है। ऐसी व्यवहार की स्थिति है। व्यवहार कहने में आता है। वास्तव में हमारा वह स्वरूप नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग आत्मा का स्वरूप ही नहीं। अशुद्ध है। अशुद्ध स्वरूप है? समकिती अशुद्ध में है? व्यवहार से तो मुक्त है। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। परन्तु वहाँ उस समय कैसी पर्याय है, उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहार साधन कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? कितना इसमें याद रहे? पण्डितजी! बात तो सरल है, सादी है। परन्तु अभ्यास नहीं हो, उसे ऐसा लगे यह क्या कहते हैं यह? आठ वर्ष की बालिका सम्यग्दृष्टि हो, वह यह सब समझ जाती है। हाँ, अन्दर भाव से मेंढ़क भी समझ जाता है, हों! भाषा से नहीं। समझ में आया या नहीं? क्या कहा?

कहते हैं कि अपने स्वभाव से शुद्धि की वृद्धि अपने कारण से होती है, तथापि ऐसे स्वभाव के साधन में भी स्वपरपर्यायहेतुक व्यवहार साधनपने को प्राप्त होता है। उसे व्यवहारसाधन कहा जाता है। जेठाभाई! लो! अब ऐसा है। वह झगड़े व्यवहार और निश्चय के!

एक ओर कहते हैं कि समकिती व्यवहार से तो मुक्त है, परन्तु उसकी पर्याय में ऐसी एक पर्याय उत्पन्न होती है, उसका ज्ञान कराते हैं। ज्ञान कराते हैं। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह रखकर यहाँ ज्ञान कराते हैं। साधन-फाधन का तो ज्ञान कराते हैं। है, उतना जानते हैं बस। समझ में आया? यहाँ तो वह पंच महाव्रत और अमुक... अमुक में... पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं होता। पाँच महाव्रत किसे कहना, पाँच समिति, गुप्ति व्यवहार किसे कहना? अकेले निश्चय बिना, हों! उसका भी ठिकाना नहीं और हमारे साधन है, (ऐसा कहे)। है या नहीं? एक को पचास वर्ष की दीक्षा का

अभिनन्दन दिया। फिर उसने जवाब में कहा, यह मेरा अभिनन्दन नहीं परन्तु त्याग का अभिनन्दन है। हमने त्याग किया न, उसका है। परन्तु त्याग था कब ? अभी मिथ्यात्वभाव तो पड़ा है। समझ में आया ? पचास वर्ष की दीक्षा हुई, यह मूँड़ते हैं, उसकी बाहर की, हों! दीक्षा भी अभी कब थी ? कुलिंग है, कुश्रद्धा है। पचास वर्ष की दीक्षा का अभिनन्दन किया। जवाब ऐसा दिया कि तुम मुझे यह अभिनन्दन देते हो, वह मुझे नहीं परन्तु मेरे त्याग का (अभिनन्दन है)। किसका ? समकित के त्याग का। वह कहे कि मैंने त्याग किया उसका ऐसा। वास्तव में तो वहाँ समकित का त्याग है। आहाहा! ऐई वीरेन्द्र! ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं। ऊपर भी लिया, बीच में भी लिया और अन्त में भी लिया। ऊपर ऐसा लिया कि निश्चय स्वभाव जो अपना साधन करते हैं, उसमें व्यवहार है, वह पद-पद में शुद्धि बढ़ती है, उसे व्यवहार कहा जाता है। ऐसा कहा। यहाँ वापस बीच में लिया कि शुद्धि की वृद्धि तो अपने आश्रय से होती है। व्यवहार के आश्रय से नहीं। तो भिन्न साधन का अभाव करते-करते अपनी शुद्धि बढ़ती है। तीसरा, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग में भी विकल्प जो स्व-परहेतुक है, वह व्यवहारसाधनपने को प्राप्त होता है। लो! समझ में आया ?

व्यवहार है, उसका ज्ञान कराते हैं। ऐसा व्यवहार ऐसा ही होता है। उस भूमिका में ऐसे मुनि हो, निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो तो उसकी भूमिका में पंच महाव्रत को विकल्प होता है। वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प उसे नहीं होता। यह व्यवहार दूसरा नहीं होता, ऐसा होता है, यह बतलाने के लिये उसे व्यवहार से साधन का आरोप देकर, साधन से प्राप्त हुआ—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? गजब बात! उसमें कहे कि ऐसा करने जाओगे तो कोई धर्म नहीं करेगा। परन्तु धर्म करता कौन है ? अभी भान बिना ? ऐसा कि यह सब पंच महाव्रत लेते हैं और साधु होते हैं, वे नहीं लेंगे। वे साधु कब थे ? ऐ झबेरचन्दभाई! यह सब सेठिया होकर जहाँ-तहाँ किसी को मूँडे। सामने सेठिया कहलाये। बैठो! चलो! पड़ो इसमें! हमारे में उल्टी श्रद्धा में। निकलोगे नहीं। ऐई, गुणवन्तभाई! बापूजी को अन्दर डालते हैं या नहीं ? आहाहा!

अनादि से ऐसी बात चलती है। सत्य की खबर नहीं। आहाहा! बात की खबर

नहीं और खबर बिना बेखबरी होकर अर्थात् दोनों की खबर नहीं। निश्चय और व्यवहार, पर्याय और द्रव्य, विकल्प और निर्विकल्प कुछ खबर ही नहीं। ऐसा का ऐसा अन्ध श्रद्धा से चला है। उसमें कुछ लाभ है नहीं। जन्म-मरण चलते जाते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है,... देखो! पहले उसमें समाहित कहा था न? देखो! जिसके आत्मा के अन्तरंग में भगवान आत्मा शुद्ध स्वभाव से परिपूर्ण भरा हुआ छलाछल, उसका आश्रय लेकर पर्याय में पवित्रता का अंश पर्यायरूप परिणमित हुआ है। मोक्षमार्ग की दशा (रूप से) परिणमित हुआ है। **उस जीव को तत्त्वार्थश्रद्धान,...** विकल्प **अंगपूर्वगत ज्ञान...** परलक्ष्यी ज्ञान भले पूर्व का हो। बारह अंग को भी विकल्प कहा है न? इसमें डाला है या नहीं? इसमें भी कहीं डाला है। बारह अंग का डाला है। द्वादशांग ज्ञान, वह भी विकल्प है। द्वादशांग शब्द कहीं पड़ा है। कितने में है? १६०। हाँ, उसमें अर्थ में है। द्वादशांग के अर्थ को जानना, वह सम्यग्ज्ञानी व्यवहार से है। इसके अर्थ में है, भाई! यह है न भाई, यह हेमराज! पाठ में तो अंगपूर्व है। परन्तु उन्होंने यहाँ तक ले लिया, उसमें-कलशटीका में लिया है न? बारह अंग भी विकल्प है। परलक्ष्यी है। समझ में आया? जो कोई अपूर्वलब्धि नहीं। बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्व नहीं है। आहाहा!

अपूर्व तो आत्मा के आनन्द की अनुभूति करना, वह अपूर्व है। आहाहा! समझ में आया? कलशटीका में है न! सुना है या नहीं? कलशटीका में है। द्वादशांग का ज्ञान कोई अपूर्व नहीं है। समझ में आया? यहाँ बारह अंग शब्द पड़ा है न! कहीं आया है! किसमें आया वह? नहीं। १३वें है। इस प्रसंग में दूसरा भी संशय होता है। 'आत्मानुभूति इति शुद्धनयात्मिका' है ना? इस प्रसंग में दूसरा भी संशय होता है। कोई जानेगा कि द्वादशांग कोई अपूर्व लब्धि है। उसका समाधान:-द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है, उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। अपना पवित्र आत्मा का अनुभव करना, वही मोक्षमार्ग है। बारह अंग का ज्ञान भी मोक्षमार्ग नहीं। वह तो विकल्पात्मक भाव है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **जिसे अन्तरंग में शुद्धि का अंश परिणमित हुआ है,...** जिसे निश्चय

स्वभाव अंश परिणमित होकर प्रगट हुआ है। ज्ञानानन्द भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ऐसा अंश परिणमित अर्थात् पर्याय में वीतरागी अवस्था उत्पन्न हुई है। **उस जीव को...** उस जीव को **तत्त्वार्थश्रद्धान, अंगपूर्वगत ज्ञान और मुनि-आचार में प्रवर्तनरूप...** मुनि-आचार में प्रवर्तन। देखो! मुनि-आचार में प्रवर्तन, वह तो विकल्प है। ऐसा व्यवहार कब कहते हैं कि (जिसे) निश्चयशुद्धपरिणति हुई हो, उसको व्यवहार कहते हैं। आहाहा! वह भी भगवान का मुनि-आचार आचारांग भगवान ने कहा हुआ आचारांग में।

अज्ञानी ने कहे हुए आचारांग आदि में जो कल्पित बनाये हुए हैं, उसमें कहा हुआ है, उसकी तो यहाँ बात भी नहीं है। प्रकाशदासजी! यहाँ तो ऐसी कठिन बात है। आचारांग नाम आदि कल्पित बनाये हैं। आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग ग्यारह अंग बनाये हैं, वे कल्पित हैं। भगवान ने कहे हुए हैं, वे (ये) है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐई वीरेन्द्रकुमार! उसमें ही भगवान रहते हैं। आहाहा!

यदि तू आचारांग आदि नाम धराता है तो उसके ज्ञान को तो व्यवहार ज्ञान भी नहीं कहते। निश्चय बिना का व्यवहाराभास भी वह तो नहीं है। आहाहा! ऐई! यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ के मुख में से निकली हुई बात आचारांग आदि उसमें जो व्यवहार प्रवर्तन बताया है, जो अभव्य भी करता है। ऐई! व्यवहारमोक्षमार्ग। **विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन बनता हुआ,...** फुटनोट में स्पष्टीकरण किया है न! वह **व्यवहारमोक्षमार्ग विशेष-विशेष शुद्धि का व्यवहारसाधन...** व्यवहारसाधन-औपचारिक साधन बनता हुआ। एकड़ा है न नीचे?

इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में पंचमगुणस्थानवर्ती गृहस्थ को भी व्यवहारमोक्षमार्ग कहा है। व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चय की परिणति है, उसे भी व्यवहारमोक्षमार्ग कहा गया है। **वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग के स्वरूप का निम्नानुसार वर्णन किया है :—'वीतरागसर्वज्ञप्रणीत जीवादिपदार्थों सम्बन्धी सम्यक् श्रद्धान...** वह व्यवहार, हों! **तथा ज्ञान दोनों, गृहस्थ को और तपोधन को समान होते हैं;...** श्रद्धा। सम्यक् श्रद्धान और ज्ञान दोनों समान होते हैं।

वीतरागसर्वज्ञप्रणीत जीवादि पदार्थों सम्बन्धी सम्यक् श्रद्धान तथा ज्ञान दोनों। मुनि और श्रावक को दोनों को समान होते हैं। गृहस्थ और तपोधन को समान होते हैं। चारित्र में अन्तर है। **तपोधनों को आचारादि चरणग्रन्थों में विहित किए हुए मार्गानुसार प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य...** ऐसा। है तो यहाँ प्रमत्त में, परन्तु अप्रमत्त आता है न, इसलिए साथ में लिया है। ऐसा देखो! **प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानयोग्य पंचमहाव्रत-पंचसमिति-त्रिगुप्ति-षडावश्यकादिरूप होता है...** यह मुनि को, हों! निश्चय शुद्धपरिणति के साथ ऐसा विकल्प होता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग मुनि को भी कहने में आता है।

और गृहस्थों को उपासकाध्ययनग्रन्थ में विहित हुए हुए मार्ग के अनुसार... ऐसे उसके मार्ग के अनुसार भगवान ने कहे वे। **पंचम गुणस्थानयोग्य दान-शील-पूजा-उपवासादिरूप अथवा दार्शनिक-व्रतिकादि ग्यारह...** ग्यारह प्रतिमा है न! वह **ग्यारह स्थानरूप (ग्यारह प्रतिमारूप) होता है; इस प्रकार व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है।** लो! जिसे निश्चयमोक्षमार्ग की वीतरागी पर्याय पंचम गुणस्थान योग्य प्रगट हुई है, उसे ऐसे व्यवहारमोक्षमार्ग के विकल्प को कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परन्तु जिसे निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट न हुआ हो तो उसे व्यवहार हो तो क्या कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहाराभास भी नहीं। क्या कहना है? वहाँ दिगम्बर सम्प्रदाय की दृष्टि से व्यवहाराभासा कहो। दूसरी दृष्टिवाले हैं, उन्हें तो व्यवहाराभास भी नहीं। बात तो ऐसी है। वस्तु का स्वरूप तो जैसा है, वैसा रहेगा। किसी काल के आश्रय से बदल डालेगा तो क्या बदल जायेगा?

मुमुक्षु : पंचम काल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल अर्थात् क्या है? आत्मा पंचम काल में जड़ हो गया है? पंचम काल में जड़, चेतन हो गया है? समझ में आया? पंचम काल में लोग मुँह से खाते हैं तो क्या आँख से खाते हैं? पंचम काल है। हें?

मुमुक्षु : कायरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कायरता है तो उग्र पुरुषार्थ वीतरागता प्रगट करने का इतना

पुरुषार्थ न हो परन्तु अनुभूति प्रगट करने का पुरुषार्थ न हो, ऐसा पंचम काल में निषेध किया है? समझ में आया? पण्डितजी! ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो! कार्य बराबर करता है, ऐसा है क्या? वस्तुस्वरूप पूरा है या नहीं? पंचम काल में या चौथे काल में वस्तु में अन्तर है? उसका आश्रय करना। उग्र आश्रय करने से केवलज्ञान लेता है। इतना आश्रय न हो सके, परन्तु अपने स्वभाव का आश्रय करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति न हो सके, ऐसा कहाँ इनकार किया है? तब तो प्रमाद होने की बात है। समझ में आया? यह व्यवहारमोक्षमार्ग का लक्षण है। लो!

यद्यपि निर्विकल्पशुद्धभावपरिणत जीव को... जिस जीव ने अपने आत्मा में पवित्रता की पर्याय प्रगट की है, उसे **परमार्थ से तो उत्तम सुवर्ण की भाँति अभिन्नसाध्य-साधनभाव के कारण...** सोना, सोने से बढ़ता है। चौदहवान, पन्द्रहवान, सोलहवान अपने से होता है। इसी प्रकार आत्मा का शुद्धस्वभाव अपने से बढ़ता है। क्योंकि **स्वयमेव शुद्धभावरूप परिणमन होता है...** लो! **तथापि, व्यवहारनय से निश्चयमोक्षमार्ग के साधनपने को प्राप्त होता है।** व्यवहारमोक्षमार्ग प्राप्त कहने में आता है। कितना स्पष्ट किया है! **[अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का अन्तरंग लेशमात्र भी समाहित न होने से अर्थात् उसे (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अंश भी परिणमित न होने से उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं है।]** लो! जिसे द्रव्यार्थिकनय से अन्तरात्मा भगवान शुद्ध के आश्रय से पवित्रता प्रगट हुई नहीं, ऐसे द्रव्यलिंगी को तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। लोक १६० (गाथा) पूरी हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६१

णिच्छयणएण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।१६१।।

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिस्तैः समाहितः खलु यः आत्मा।
न करोति किञ्चिदप्यन्यन्न मुञ्चति स मोक्षमार्ग इति।।१६१।।

व्यवहारमोक्षमार्गसाध्यभावेन निश्चयमोक्षमार्गोपन्यासोऽयम् ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहित आत्मैव जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्गः। अथ खलु कथञ्चनानाद्यविद्याव्यपगमाद्व्यवहारमोक्षमार्गमनुप्रपन्नो धर्मादितत्त्वार्थाश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थाज्ञानातपश्चेष्टानां धर्मादितत्त्वार्थश्रद्धानाङ्गपूर्वगतार्थज्ञानतपश्चेष्टानाञ्च त्यागोपादानाय प्रारब्धविविक्तभावव्यापारः, कुतश्चिदुपादेयत्यागे त्याज्योपादाने च पुनः प्रवर्तितप्रतिविधानाभिप्रायो, यस्मिन्यावति काले विशिष्टभावनासौष्ठववशात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः स्वभावभूतैः सममङ्गाङ्गिभावपरिणत्या तत्समाहितो भूत्वा त्यागोपादानविकल्पशून्यत्वाद्विश्रान्तभावव्यापारः सुनिष्प्रकम्पः अयमात्मावतिष्ठते, तस्मिन् तावति काले अयमेवात्मा जीवस्वभावनियतचरितत्वान्निश्चयेन मोक्षमार्ग इत्युच्यते । अतो निश्चयव्यवहार-मोक्षमार्गयोः साध्यसाधनभावो नितरामुपपन्न इति ।। १६१ ।।

जो जीव रत्नत्रय सहित आत्म चिन्तन में रमे।
छोड़े ग्रहे नहिं अन्य कुछ शिवमार्ग निश्चय है यही।।१६१।।

अन्वयार्थ :- [यः आत्मा] जो आत्मा, [तैः त्रिभिः खलु समाहितः] इन तीन द्वारा वास्तव में समाहित होता हुआ (अर्थात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र द्वारा वास्तव में एकाग्र—अभेद होता हुआ) [अन्यत् किंचित् अपि] अन्य कुछ भी [न करोति न मुंचति] करता नहीं है या छोड़ता नहीं है, [सः] वह [निश्चयनयेन] निश्चयनय से [मोक्षमार्गः इति भणितः] 'मोक्षमार्ग' कहा गया है।

टीका :- व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से, निश्चयमोक्षमार्ग का यह कथन है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से मोक्षमार्ग है।

अब (विस्तार ऐसा है कि), यह आत्मा वास्तव में कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से) अनादि अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान के, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञान के और अतप में चेष्टा के त्याग हेतु से तथा धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धान के, अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी ज्ञान के और तप में चेष्टा के ग्रहण हेतु से (-तीनों के त्याग हेतु तथा तीनों के ग्रहण हेतु से) [१]विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ, और किसी कारण से ग्राह्य का त्याग हो जाने पर तथा त्याज्य का ग्रहण हो जाने पर उसके [२]प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ, जिस काल और जितने काल तक [३]विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ [४]अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा [५]उनसे [६]समाहित होकर, त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण (भेदात्मक) भावरूप व्यापार को विराम को प्राप्त होने से (अर्थात् भेदभावरूप-खण्डभावरूप व्यापार रुक जाने से) सुनिष्कम्परूप से रहता है, उस काल और उतने काल तक यही आत्मा जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता

---

१. विविक्त= विवेक से पृथक् किये हुए (अर्थात् हेय और उपादेय का विवेक करके व्यवहार से उपादेयरूप जाने हुए)। [जिसने अनादि अज्ञान का नाश करके शुद्धि का अंश प्रगट किया है, ऐसे व्यवहारमोक्षमार्ग (सविकल्प) जीव को निःशंकता-निःकांक्षा-निर्विचिकित्सादि भावरूप, स्वाध्यायविनयादि भावरूप और निरतिचार व्रतादि भावरूप व्यापार भूमिकानुसार होते हैं तथा किसी कारण उपोदय भावों का (-व्यवहार से ग्राह्य भावों का) त्याग हो जाने पर और त्याज्य भावों का उपादान अर्थात् ग्रहण हो जाने पर उसके प्रतिकाररूप से प्रायश्चित्तादि विधान भी होता है।]

२. प्रतिविधान=प्रतिकार करने की विधि; प्रतिकार का उपाय; इलाज।

३. विशिष्ट भावनासौष्ठव=विशेष अच्छी भावना (अर्थात् विशिष्ट शुद्ध भावना); विशिष्ट प्रकार की उत्तम भावना।

४. आत्मा, वह अंगी और स्वभावभूत सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र, वह अंग।

५. उनसे = स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से।

६. समाहित= सातवाँ गुणस्थान में।

है। इसलिए, निश्चयमोक्षमार्ग और [1]व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है।

भावार्थ :- निश्चयमोक्षमार्ग निज शुद्धात्मा की रुचि, ज्ञप्ति और निश्चल अनुभूतिरूप है। उसका साधक (अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का व्यवहारसाधन) ऐसा जो भेदरत्नत्रायत्मक व्यवहारमोक्षमार्ग, उसे जीव कथंचित् (-किसी प्रकार, निज उद्यम से) अपने संवेदन में आनेवाली अविद्या की वासना के विलय द्वारा प्राप्त होता हुआ, जब गुणस्थानरूप सोपान के क्रमानुसार निजशुद्धात्मद्रव्य को भावना से उत्पन्न नित्यानन्दलक्षणवाले सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण निजशुद्धात्माश्रित निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है, तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है। इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधकपना (व्यवहारनय से) अत्यन्त घटित होता है॥१६१॥

---

१. यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जीव व्यवहारमोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है; अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चयनय के—द्रव्यार्थिकनय के—विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं होता।

पुनश्च, 'निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है' ऐसा जो कहा गया है, वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि 'छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुभ विकल्पों को नहीं, किन्तु छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि के अंश को और सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग को वास्तव में साधन-साध्यपना है।' छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि का अंश बढ़कर जब और जितने काल तक उग्र शुद्धि के कारण शुभ विकल्पों का अभाव वर्तता है, तब और उतने काल तक सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग होता है।

प्रवचन-७२, गाथा-१६१, वैशाख शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक -२२-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, १६१ गाथा।

णिच्छयणएण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो त्ति।।१६१।।

टीका :- व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से,... क्या कहते हैं ? व्यवहार विकल्प जो व्यवहार है, वह साधन और उसका साध्य निश्चय। समझ में आया ? यह चलता है न ? भिन्नसाध्यसाधनभाव। नौ तत्त्व का श्रद्धान विकल्प, ग्यारह अंग पूर्व का ज्ञान और पंच महाव्रतादि-अट्ठाईस मूलगुण आदि विकल्प, वह व्यवहारसाधन। मोक्षमार्ग का साधन, उसका साध्य निश्चय।

व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से, निश्चयमोक्षमार्ग का यह कथन है। व्यवहारमोक्षमार्ग साधन होकर निश्चय होता है, ऐसा व्यवहार से कथन किया गया है। यह बात तो पहले बहुत हो गयी है। कर्ता कहाँ आया ? वह तो व्यवहारसाधन भिन्न साध्य-साधन को निश्चय करे। यह भिन्नसाधन जो है, नौ तत्त्व भी भगवान ने कहे हुए। छह द्रव्य, नौ तत्त्व। उनकी श्रद्धा का जो विकल्प। तत्त्वार्थश्रद्धानपूर्वक ग्यारह अंग और पूर्व का ज्ञान और आचारांगादि में कथित-जिनवर ने कथित व्यवहार, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण आदि का विकल्प। उसे व्यवहारसाधन भिन्न साधन कहकर उसका भिन्न साध्य निश्चय सातवें गुणस्थान की दशा में निश्चयमोक्षमार्ग होता है, उसमें छठे गुणस्थान का विकल्प है, उसे साधन कहकर निश्चय को साध्य कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहाँ कहते हैं ? वह तो उससे प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो साधन है, इतना। यह साधन व्यवहाररूप से है, इतना यहाँ जानने में आता है। इतनी बात है। उससे होता है, ऐसा नहीं। यह तो विकल्प है। विकल्प से होता है ? साध्य कहा न ? उसका साध्य व्यवहार से कहा या निश्चय से ? **व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से,...** साध्यरूप से व्यवहार का कथन है। ऐई ! दो मोक्षमार्ग है ही नहीं।

मोक्षमार्ग एक ही है। एक को व्यवहारसाधन कहकर, उसका अभाव करके सप्तम गुणस्थान में शुद्ध उपयोग भूमिका को प्राप्त होता है, उसे साध्य कहकर वह साधन और उसका साध्य, ऐसा कहने में आया है। वास्तव में ऐसा है नहीं। वास्तव में वह उपचार से कथन है। आहाहा!

प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने पहली (पाँच) गाथाओं में लिया न? मुनि शुद्धोपयोग को अंगीकार करते हैं। सीधा लिया। बात भी की थी। शुद्धोपयोग को अंगीकार... यहाँ तो भिन्नसाध्यसाधन बतलाना है। उस भूमिका में छठवें गुणस्थान में नौ तत्त्व का विकल्प कैसा होता है, पंच महाव्रतादि कैसे होते हैं, यह बतलाना है। बाकी मूल तो सीधे निश्चयमोक्षमार्ग सप्तम गुणस्थान का सीधा मुनि अंगीकार करते हैं, ऐसा है। धन्नालालजी! समझ में आया? क्योंकि पहले तो मुनि को सप्तम गुणस्थान आता है। भले वह चौथे में हो या पाँचवें में हो परन्तु ध्यान करके शुद्ध उपयोग दशा पहले प्राप्त होती है। परन्तु पश्चात् वहाँ से हटकर अपनी शुद्धि थोड़ी कम हुई तो विकल्प हुआ तो उस विकल्प की भूमिका में ऐसी योग्यता व्यवहार को अनुकूल गिनकर व्यवहारसाधन कहने में आया है। पण्डितजी! आहाहा! भारी कठिन! निश्चय और व्यवहार दोनों (में) भरमाया रे! बनारसीदासजी कहते हैं।

व्यवहारमोक्षमार्ग छठवीं भूमिका में गुणस्थान है, शुद्धपरिणति है, स्व के आश्रय से पहला शुद्ध उपयोग हुआ था, पश्चात् हटकर (च्युत होकर) नीचे आये तो शुद्धपरिणति है, वहाँ २८ मूलगुण के विकल्प और नौ तत्त्व की श्रद्धा, उसे व्यवहारसाधन कहकर, उसका अभाव करके सातवाँ होगा तो उसे साधन कहकर, सातवीं भूमिका को साध्य कहा। कहो, समझ में आया? भारी गड़बड़! अभी तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं और व्यवहारसाधन और निश्चयसाध्य! यह पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं। वीतराग कहते हैं, ऐसे व्यवहार का भी ठिकाना नहीं और यह हमारे साधन और इस साधन से निश्चय होगा, उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो, नीचे लेंगे। अज्ञान का नाश करके अपना शुद्ध उपयोग अंगीकार किया था, उससे च्युत हुआ तो छठवें गुणस्थान में ऐसा नवतत्त्व का, छह द्रव्य की श्रद्धा का,

अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत का व्यवहार, अंगपूर्व आदि ज्ञान का वांचन आदि होता है। उस विकल्प को व्यवहारसाधन कहकर सातवीं भूमिका के निश्चयमोक्षमार्ग को साध्य कहकर उसका साधन कहा। उस व्यवहारसाधन का वह साध्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी गड़बड़! अभी समझने की चीज़ तो कहाँ रही परन्तु शास्त्र के अर्थ अपनी कल्पना से करे तो वस्तुस्थिति गड़बड़ हो जाये, सब गड़बड़!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आये, जानेवाले हैं। छठवें। चौथे (गुणस्थान) की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो छठवें और सातवें (गुणस्थान) की बात है। यहाँ चौथे-पाँचवें (गुणस्थान) की बात नहीं है। यहाँ तो छठवें में व्यवहारमोक्षमार्ग है और साथ में शुद्ध परिणति भी है, उस विकल्प का अभाव करके साध्य अर्थात् आगे बढ़ता है, उस छठी भूमिका की शुद्धि है, उससे आगे बढ़ता है। वास्तव में तो स्वद्रव्य का आश्रय लेकर, उग्र आश्रय लेकर आगे बढ़ता है। परन्तु यह बात यहाँ कहनी नहीं है।

यहाँ पर्याय को साध्य बनाना है। विकल्प को साधन और पर्याय को साध्य। तो सातवीं भूमिका में निश्चय उपयोग जो शुद्ध है, वह साध्य। वह निश्चयमोक्षमार्ग। उसमें छठवीं भूमिका में आये तो नौ तत्त्व आदि का जो विकल्प है, वह साधन। वास्तव में तो अपनी शुद्धि बढ़ाकर, उसका (-विकल्प का) अभाव करके जाता है। द्रव्य का उग्र आश्रय लेकर सप्तम में जाता है। कठिन बातें, भाई! समझ में आया? वहाँ निमित्तरूप ऐसा एक व्यवहार होता है, दूसरा व्यवहार नहीं होता, इतना बतलाने के लिये वहाँ साधन कहने में आया है। आहाहा! भारी झगड़ा भाई! **व्यवहारमोक्षमार्ग के साध्यरूप से, निश्चयमोक्षमार्ग का यह कथन है।** ठीक! यह इसका अर्थ किया।

अब दूसरा। यह निश्चय की बात करते हैं। अब निश्चय प्राप्त क्या हुआ? अब **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा...** भगवान आत्मा अपना चैतन्य आनन्द शुद्ध ध्रुव स्वभाव का आश्रय लेकर **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** ऐसा यहाँ तो सिद्ध करना है। इन तीनों को जोड़नेवाला आत्मा ही मोक्षमार्ग है। समझ में आया? फिर से। हें? यहाँ तो मोक्षमार्ग जो सातवें में है, नहीं तो इन तीनों को प्राप्त हुआ आत्मा ही मोक्षमार्ग है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पर्याय को मोक्षमार्ग कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आत्मा अभेद हो गया न? शान्ति से सुनना।

यहाँ तो पर्याय पर्याय की खबर ली है। समय-समय की पर्याय निर्मल कैसी और विकल्प कैसा, उसकी खबर ली है। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं होती नहीं। बिना भान के आत्मा है और ऐसा करो और ऐसा समझो, ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? क्योंकि जिसे समझना है, इसका अर्थ यह हुआ कि नहीं समझते थे, उसमें समझे तो पर्याय बदल गयी। और पर्याय बदलने पर भी द्रव्य तो कायम रहा। अत: द्रव्य के आश्रय से पर्याय आगे बढ़ती है, तो वह पर्याय समय-समय में शुद्धि कैसी है और उसमें पूर्व पर्याय में विकल्प भी कैसा था, यह दोनों बात बताकर वस्तु को सिद्ध करते हैं। ऐसी बात! समझ में आया?

होवे नहीं किसी दिन। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त-निश्चय और व्यवहार यह, ऐसा प्रमाणज्ञान बतलाने के लिये पंचास्तिकाय में ज्ञानप्रधान कथन है न? समझ में आया? यह तो अपने समयसार में आ गया। व्यवहार निषेध करनेयोग्य है, निश्चय उसका निषेध करनेवाला है। यह तो आ गया। यह बात रखकर यहाँ कहते हैं या उसका विरोध करके कहते हैं? समझ में आया? यह बात तो ऐसी ही है। व्यवहार तो निषेध करनेयोग्य ही है, परन्तु छठवीं भूमिका में व्यवहार कैसा होता है, उसका बराबर ज्ञान कराने के लिये साधन कहने में आया है। ऐसी बात है। आहाहा! क्या हो? जगत को झगड़ा....

अभी तत्त्व की खबर नहीं और मान ले कि हम साधु हैं, हम चारित्रवन्त हैं, हम संयमी हैं। कहाँ गये दीपचन्दजी! ऐसे बैठे हैं? शरीर ठीक हो, निरोगी हो और वस्त्र बदलकर नग्न साधु हो जाये, उसमें कोई विशेष पुरुषार्थ करने का है? वह धूल भी पुरुषार्थ नहीं। पुरुषार्थ क्या है? कपड़े उतरना, वह तो उसके कारण से उतर गये। समझ में आया? या कहे कि ब्रह्मचर्य ले लो! ब्रह्मचारी हो जाओ। यह अपनी रोटी तो शुरु हो जाये। लोग पास में हैं, फिर आगे बढ़ेंगे धीरे-धीरे। परन्तु अभी वस्तु क्या है? ब्रह्मानन्द भगवान ब्रह्मानन्द भगवान आनन्दकन्द, वह ब्रह्म है। उसके आनन्द की दृष्टि हो और आनन्द प्रगट हो, तब तो ब्रह्मचर्य की शुरुआत भाव सम्यग्दर्शन से हुआ। समझ में आया?

और आगे बढ़कर, यहाँ तो चारित्र को मोक्षमार्ग बतलाना है न? चारित्र को यहाँ मोक्षमार्ग बतलाना है न! यहाँ चौथे-पाँचवें (गुणस्थान) की बात नहीं है। चारित्र, वही मोक्षमार्ग है, यह बतलाना है न? चारित्र क्या? कि जावे निश्चय स्वभाव में, **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ...** अपना आत्मा ज्ञायक चैतन्यमूर्ति का आश्रय करके सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ और चारित्र, इस द्वारा समाहित हुआ, समाधिस्थ हुआ। इस प्रकार की शान्ति की आननद की उसे प्राप्ति हुई। **ऐसा आत्मा ही,...** ऐसा आत्मा ही **जीवस्वभाव में नियत,...** देखो! जीवस्वभाव में नियत, शुरुआत में १५४ गाथा में पहला शब्द लिया था।

जीवस्वभाव में नियत, भगवान आत्मा ज्ञान और दर्शन उपयोग चैतन्यमय है, ऐसे **स्वभाव में नियत, निश्चय चारित्ररूप होने के कारण...** स्वरूप की लीनता, रमणता, इस कारण **निश्चय से मोक्षमार्ग है।** लो! इस कारण निश्चय से आत्मा ही मोक्षमार्ग है। ऐसा सिद्ध करना है। आत्मा ही मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया? व्यवहारसाधन कहा था, परन्तु वह मोक्षमार्ग यथार्थ नहीं है। उपचरित कहने में आया और साधनरूप से भी उपचरित कहने में आया है। आहाहा! क्या हो? लोगों को सम्प्रदाय की दृष्टि में झगड़े ऐसे पड़े हैं कि जन्मे वहाँ से ऐसी बात मिले, वहाँ रुक जाता है। मिथ्यात्व का पोषक! और मानो कि हम साधन करते हैं।

अब (विस्तार ऐसा है कि),... अब विस्तार करते हैं। यहाँ इस अधिकार में जिसे निश्चय करना है। समझे? यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग का कथन है। परन्तु उसमें व्यवहार कैसा होता है, यह भी साथ में बताते हैं। **यह आत्मा वास्तव में कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से)...** यह व्यवहार में तो इतना अशुभ टालने का उद्यम है न? **अनादि अविद्या के नाश द्वारा...** देखो! अज्ञान का नाश किया है, उसकी बात है। स्वभाव का आश्रय लेकर, अनादि से जो राग और स्वभाव की एकता थी, वह राग और स्वभाव की एकता टूटकर अनादि अज्ञान का जिसने नाश किया है। समझे न? **नाश द्वारा,...** है न? आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म ऐसा पड़े न? वीरजीभाई! फिर सब ऐसा कहे—कितने तो ऐसा कहे कि हम कहते हैं ऐसा ही मार्ग यह है। कितनों को

विरुद्ध लगे। नहीं... नहीं... नहीं... यह नहीं। परन्तु मार्ग की पद्धति है, वह खबर नहीं। सुना नहीं और कभी विचार में लिया नहीं।

कहते हैं। **अनादि अविद्या के नाश द्वारा...** पहला यह शब्द पड़ा है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव को पकड़कर, राग की एकता की पकड़, ऐसे अज्ञानभाव का नाश किया है। ज्ञान-दर्शनस्वभाववान, उसे पकड़कर सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति हुई, वहाँ मिथ्याज्ञान का नाश हुआ। समझ में आया? राग की एकता की जो अविद्या थी, वह राग से भिन्न होकर स्वभाव से ज्ञान-दर्शन में एकता हुई, ज्ञान-दर्शन यह है, उसमें एकता हुई (और) अनादि अज्ञान का नाश हुआ। समझ में आया?

अनादि अविद्या के नाश द्वारा... अविद्या शब्द प्रयोग किया है। अनादि अविद्या, है न? इसमें तीसरी लाईन। अनादि अविद्या। हिन्दी है न, हिन्दी? संस्कृत में तीसरी लाईन। अविद्या अर्थात् विद्यमान चीज़ से विरुद्ध भाव था। ज्ञायक चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द प्रभु वह विद्यमान है, उससे विरुद्ध राग और राग की एकता, वह स्वभाव नहीं। ऐसे ज्ञान को यहाँ अविद्या कहने में आया है। विद्या उसे कहते हैं कि जो राग से पृथक् होकर स्वभाव में एकता करता है, उसका नाम विद्या है। लो! यह विद्या की व्याख्या आयी। विद्यमान त्रिकाल भगवान आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्ज्ञान आदि हुआ, उसे यहाँ विद्या कहते हैं। कहो, समझ में आया? यह लोग विद्यालय में पढ़ना इत्यादि विद्या... विद्या करते हैं न? वह सब अविद्या है। विद्या नहीं, ऐसा कहते हैं। कुविद्या है। समझ में आया? कहाँ गये वीरेन्द्र है या नहीं? हें? तबीयत ठीक नहीं? अमेरिका से आये हैं न? पास में बैठे थे। अभी आया था। बीस मिनिट बैठा था। संध्या के समय सुनाता था।....

क्या कहते हैं? समझ में आया? **अनादि अविद्या के नाश द्वारा...** इसका अर्थ = जैसा स्वभाव है, उससे विरुद्ध मानना, इसका नाम अविद्या। और जैसा स्वभाव है, उसमें अन्तर में एकाग्र होकर अनुभव करना, इसका नाम विद्या। अनादि अविद्या के नाश द्वारा, और कहे अनादि अविद्या का नाश कैसे हो? परन्तु वह तो पर्याय है न? अज्ञान पर्याय है। व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, ऐसा लिया है।

अज्ञान का नाश करके अपने स्वभाव का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान

प्राप्त हुआ है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग होता है, उसकी बात यहाँ करते हैं। समझ में आया? व्यवहार है ही नहीं। यही कहते हैं न? जिसका अज्ञान का नाश हुआ नहीं, उसे तो व्यवहारमोक्षमार्ग उपचार से भी कहने में नहीं आता। उसमें आया था। (१६० गाथा)। **अज्ञानी द्रव्यलिंगी मुनि का लेश भी समाहित नहीं होने से अर्थात् उसे (द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के अज्ञान के कारण) शुद्धि का अंश भी परिणमित नहीं हुआ होने से उसे व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं है।** साक्षात्। समझ में आया? व्यवहार तो अन्ध है। उसे जाननेवाला निश्चय न जाने तो व्यवहार कहना किसे? समझ में आया?

व्यवहारमोक्षमार्ग को प्राप्त करता हुआ, धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान... क्या कहते हैं? देखो अब! भगवान ने कहे हुए ऐसे धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थ-अश्रद्धान, अश्रद्धान का त्याग। समझ में आया? अश्रद्धान। देखो! **अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी अज्ञान...** अंगपूर्वगत आदि पदार्थों का ज्ञान नहीं है, ऐसा अज्ञान। और **अतप में चेष्टा।** चारित्र में नहीं परन्तु अतप में। अर्थात् अचारित्र में चेष्टा। **तीन के त्याग के लिये,...** तीन कौन? तत्त्वार्थ की अश्रद्धा, अंगपूर्वगत का अज्ञान और तप में अचेष्टा। तप में चेष्टा नहीं। अचारित्र में चेष्टा के त्याग हेतु। ऐसे अशुभराग का त्याग और धर्मादिसम्बन्धी तत्त्वार्थश्रद्धान के, व्यवहार की बात सिद्ध करनी है न? आहाहा!

धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्य, उसके तत्त्वार्थश्रद्धान के ग्रहण हेतु, कुश्रद्धा का त्याग और सुश्रद्धा। व्यवहार से श्रद्धा, हों! उसका ग्रहण। **अंगपूर्वगत पदार्थोंसम्बन्धी ज्ञान...** और चारित्र में व्यवहारचेष्टा के ग्रहण के लिये। यह व्यवहारचेष्टा विकल्प की बात है। तत्त्वार्थ अश्रद्धान अंगपूर्वगत का अज्ञान और तप में चेष्टा का अभाव, इनके त्याग और धर्मादिश्रद्धान का ग्रहण, अंगादि के ज्ञान का ग्रहण और पंच महाव्रतादि विकल्प का ग्रहण, यह त्याग और ग्रहण की व्याख्या यहाँ व्यवहार में कही जाती है। आहाहा! गजब बात भाई! **(-तीनों के त्याग हेतु तथा तीनों के ग्रहण हेतु से)...** तीन व्यवहार, हों! तीन का। **विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ,...** विवेक से पृथक् किये हुए। दो में हो दो। तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को तत्त्वार्थश्रद्धान से भिन्न करते हुए, अंगपूर्वगत ज्ञान से अंगपूर्वगत अज्ञान का त्याग करते हुए। समझ में आया?

और अतप में अर्थात् व्यवहार क्रिया में-तप में चेष्टा नहीं थी, उस व्यवहार क्रिया

में चेष्टा का ग्रहण और अतप का त्याग। जरा सूक्ष्म बात है। यहाँ तो व्यवहार में भी ग्रहण–त्याग के विकल्प की बात है। निश्चय में तो ग्रहण–त्याग है नहीं। स्व के आश्रय से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र हुआ, वह तो निश्चय है परन्तु साथ में व्यवहार में कैसा होता है कि तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव का त्याग, अभाव है और उसका त्याग और तत्त्वार्थश्रद्धान का ग्रहण। अंगपूर्वगत अज्ञान का त्याग अंगपूर्वगत ज्ञान का ग्रहण। व्यवहारचारित्र का त्याग था, उस व्यवहारचारित्र का ग्रहण। समझ में आया? कौन जाने क्या होगा? ऐई! धन्नालालजी! यह पर्याय... पर्याय की खबर ली, ऐसा मार्ग सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। बिना भान के बात करे, ऐसा नहीं चलता, ऐसा कहते हैं।

अपना द्रव्यस्वभाव अखण्ड अभेद चैतन्य की दृष्टि–ज्ञान और चारित्र होने पर भी उसमें व्यवहार का–अशुभ का त्याग और शुभ का ग्रहण, ऐसा विवेक व्यवहार में आये बिना नहीं रहता। यह बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान है और उसे कुदेव, कुगुरु की श्रद्धा है, ऐसा नहीं होता। ऐसा बताते हैं। व्यवहार में भी उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा हो, ऐसा नहीं होता। उसे कुदेव–कुगुरु–कुशास्त्र की श्रद्धा का त्याग, सुदेव–सुगुरु–सुशास्त्र की श्रद्धा का ग्रहण, ऐसा व्यवहार में ऐसा विवेक विकल्प में आये बिना नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। व्यवहार की तो सीधी बात है। परन्तु लोग ऐसा मानते हैं कि व्यवहार भाई, निश्चयसम्यग्दर्शन भले हुआ परन्तु व्यवहार चाहे जैसा हो, ऐसा कि कुदेव–कुगुरु–कुशास्त्र भी हो। समझ में आया? नौ तत्त्व और छह द्रव्य से विरुद्ध श्रद्धा भी हो और निश्चय हो और उसे भी व्यवहार कहें, ऐसा नहीं। यह सिद्ध करना है। आहाहा! समझे? देवजीभाई!

पूर्ण स्वरूप विशेष ज्ञानचेतना स्वभाव, वह चारित्र। परन्तु उस मार्ग में ऐसा व्यवहार जिसे हो और उसे कुदेव, कुगुरु, एक द्रव्य है, ऐसे विकल्प की श्रद्धा हो। सर्वज्ञ भगवान को, दो द्रव्य और सात पर्याय, अहिंसा का त्याग और वह अविरुद्ध शल्य है। परन्तु अपने को विकल्प में तो एक ही द्रव्य मानते हैं और निश्चय भी होता नहीं। तुझे निश्चय समझ में आवे तो सादी भाषा की बात है। आत्मा असंख्य प्रदेशी अस्ति अनुभव होने पर भी उसकी श्रद्धा का ग्रहण हुआ। आता है। निश्चयवाले को व्यवहार में ऐसा विवेक, एक–एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं। समझ में आया?

गुणों का पुंज (समूह) को द्रव्य कहते हैं। सिखलाते हैं न? द्रव्य किसे कहना? अनन्त गुणों के पिण्ड को द्रव्य कहना है। अनन्त गुण का पिण्ड भगवान के गुण अपने में आते हैं या नहीं? अपने गुण भगवान में जाते हैं या नहीं? भगवान को देते हैं या नहीं? यह कहते हैं। भगवान कुछ देते भी नहीं और कुछ लेते भी नहीं। परन्तु अपने स्वभाव का जब भान हुआ तो उसके व्यवहार के विकल्प में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प। मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प का त्याग। और इस विकल्प का ग्रहण, ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? ओहोहो! पद्धति, वह पद्धति कुन्दकुन्दाचार्यदेव की। आहाहा! बहुत कठिन! संक्षिप्त में इतना स्पष्ट रखते हैं और बात एकदम स्पष्ट। आहाहा!

और ऐसा कहे कि पूरे जगत में आत्मा तो एक ही है, ऐसा अनुभव हमको हो गया है। अब व्यवहार में विकल्प उठता है या नहीं? हाँ, उठता है। क्या? कि यह एक आत्मा है, दूसरा है नहीं। पाँच ही द्रव्य है, छह द्रव्य है नहीं। दो ही तत्त्व जीव-अजीव है। नौ तत्त्व नहीं, ऐसा जिसे विकल्प आता है, उसका तो व्यवहार भी झूठा और उसका निश्चय भी झूठा। ऐसा व्यवहार हो, वहाँ निश्चय होता नहीं। ऐसा कहते हैं, गजब बात भाई! समझ में आया?

विविक्त भावरूप व्यापार करता हुआ,... विवेक... विवेक करता हुआ, ऐसा। **नीचे अर्थ है। विवेक से पृथक् किये हुए अर्थात् हेय...** नौ तत्त्व की श्रद्धा का अभाव था। उसका ग्रहण किया। अभाव था, उसका त्याग किया और उपादेय, नौ तत्त्व की श्रद्धा को आदरणीय किया। यहाँ व्यवहार की बात है न? व्यवहार से नौ तत्त्व की श्रद्धा उपादेय। हें? ऐई! यहाँ व्यवहार से उपादेय कहा न? यहाँ निश्चय उपादेय की कहाँ बात है? व्यवहार में दो के बीच की बात है। श्रद्धा। नौ तत्त्व की श्रद्धा का अभाव था, वहाँ नौ तत्त्व की श्रद्धा का भाव, वह उपादेय हुआ। एक उपादेय और हेय दो के बीच की अपेक्षा से उपादेय है। है तो विकल्प। समझ में आया? गजब बात भाई! आहाहा!

पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, यह देखो न! यही तो दोपहर में प्रवचनसार का विचार बहुत चला था। यह तो इतना स्पष्ट करते हैं कि आचार्य, उपाध्याय श्रमण तो शुद्ध उपयोगी

होते हैं। और कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम धर्मरूप हुए हैं। शुद्ध उपयोगरूप हुए हैं। वे कहते हैं कि पंचम काल में शुद्धोपयोग अभी होता ही नहीं। वह तो आठवें (गुणस्थान में) होता है। गजब करे! ऐसा प्रवचनसार! यह भी देखना न पहले, वह भी देखना हेमराज का। हेमराज का है न पुराना। श्रीमद् में आता है। उसमें भी उपयोग रखा। दो और तीसरा। वह पद लिखा है न? हेमराज का न? पद, पद। हाँ, उसमें भी ऐसा लिखा है। कोई पढ़ता नहीं। क्या करते हैं यह तो? और मोक्षमार्ग के अधिकार में टोडरमलजी ने पहले यह लिया। आचार्य, उपाध्याय शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके। आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो वहाँ लिये ही नहीं। आहाहा!

यहाँ चलता है वह व्यवहार ऐसा होता है। व्यवहार दोष है, वह तो विकल्प है। परन्तु दो के बीच में विवेक करने से अशुद्ध का सुख-दुःख का त्याग और सुख-दुःख का ग्रहण। कुदेव का त्याग सुदेव का ग्रहण और नौ तत्त्व की श्रद्धा का त्याग था, उसका ग्रहण किया और नौ तत्त्व की श्रद्धा का अभाव था, उसे छोड़ दिया। समझ में आया? अंगपूर्वगत ज्ञान का त्याग था, उसे ग्रहण किया। अज्ञान का त्याग किया और ज्ञान का ग्रहण किया। भगवान ने कहे हुए नौ तत्त्व का ज्ञान वह अंगपूर्वगत का ज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

और भगवान ने कहे हुए ऐसे अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प। तप में जो अचेष्टा थी, वह तप में चेष्टा हुई। अचेष्टा थी, उसका त्याग और चेष्टा हुई उसका ग्रहण। व्यवहारविकल्प का पंच महाव्रत का ग्रहण। समझ में आया?

जिसने अनादि अज्ञान का नाश करके शुद्धि का अंश प्रगट किया है, ऐसे व्यवहारमोक्षमार्ग (सविकल्प) जीव को... ऐसा। समझ में आया? अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद ध्रुव, उसके आश्रय से अज्ञान का नाश करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त किया है उसे, **ऐसे व्यवहारमोक्षमार्गी जीव को...** ऐसे जीव को जो व्यवहारविकल्प आता है, वह शुद्धि का अंश प्रगट किया है। ऐसी विकल्प अवस्था में सातवाँ गुणस्थान शुद्ध उपयोग में हो गया है। परन्तु जब छठवें गुणस्थान में आया, तब उसकी विकल्प दशा में **निःशंकता।** वीतरागमार्ग में निःशंकता व्यवहार, हों! **निःकांक्षा-**

निर्विचिकित्सादि भावरूप,... पर्याय—विकल्प। समझ में आया? **स्वाध्यायविनयादि भावरूप...** यह शास्त्र का स्वाध्याय विनयादि विकल्प भावरूप **और निरतिचाररूप व्रतादि भावरूप** भाषा देखो! निरतिचार व्रतादि का विकल्प जो छठवीं भूमिका में है। निरतिचार व्रत, ऐसा कहते हैं। देखो तो सही! ऐसा विकल्प निश्चयस्वभाव का भान है, अज्ञान का नाश किया है, उसे सविकल्प अवस्था में ऐसी विकल्पदशा होती है। अरे... अरे! कठिन बात! समझ में आया?

स्वाध्याय... देखो तो यहाँ स्वाध्याय में भी विकल्प को डाला है। स्वाध्याय बड़ा तप है, ऐसा आता है या नहीं? **विनयादि,...** यह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के विनय का विकल्प, अविनय का त्याग। विनय का आदर। विकल्प का। **और निरतिचार व्रतादि भावरूप व्यापार भूमिकानुसार होते हैं...** उसकी पर्याय में भूमिकानुसार पंचम गुणस्थान के योग्य-छठवें गुणस्थान के योग्य ऐसा व्यवहार विकल्प होता है। वह न हो और उससे विरुद्ध हो तो निश्चय भी नहीं है और व्यवहार भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तथा किसी कारण उपोदय भावों का (-व्यवहार से ग्राह्य भावों का) त्याग हो जाने पर... देखो! यह नौ तत्त्व की श्रद्धा, ग्यारह अंग का ज्ञान, पंच महाव्रत में कोई दोष लगने से **व्यवहार से ग्राह्य भावों का...** शुभ विकल्प है न? ग्राह्य हुआ। उसमें जरा त्याग होने का दोष लगा। **और त्याज्य भावों का उपादान...** अशुद्ध। कुदेव आदि का त्याग अथवा नौ तत्त्व की श्रद्धा का त्याग था, उसमें कोई विकल्प आ गया। **हो जाने पर उसके प्रतिकाररूप से प्रायश्चित्तादि विधान भी होता है।** छठवीं भूमिका में विकल्प में ऐसी दशा भी आती है। समझ में आया? समझने में कठिन इसमें! वह कहते हैं कि भाई, ईश्वर करे, हे भगवान! तिरा देना प्रभु, हों! यहाँ कहते हैं कि ऐसा है नहीं। तेरा ईश्वर मानने से भी तेरा व्यवहार कैसा हो, उसका यहाँ विवेक कराते हैं। हें? आहाहा!

तेरा ईश्वर परिपूर्ण परमात्मा साक्षात् ईश्वर है। उस ईश्वर की प्रतीति ज्ञान और रमणता हुई, तो उसकी दशा में व्यवहार का विकल्प किस प्रकार का होता है, उसका विवेक कराया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **प्रतिकाररूप से**

प्रायश्चित्तादि... उसका प्रायश्चित्त ले। ले न? तप ले, कोई प्रायश्चित में दण्ड आदि दण्ड आदि ले। होता है, बस।

कहते हैं कि ऐसे **उसके प्रतिविधान का अभिप्राय करता हुआ,...** कोई दोष लगा हो, उसका नाश करने के लिये निरतिचार करने के लिये **अभिप्राय करता हुआ,... जिस काल...** बस, इतनी बात अब। यह यहाँ पूरा हो गया। समझ में आया? ऐसी विकल्प दशा होती है। अब जिसका—विकल्प का भी अभाव करके जहाँ निर्विकल्प होता है, वहाँ व्यवहार नहीं होता।

जिस काल और जितने काल तक... अपने... समस्त शान्तिरूप से और समाधिरूप से रहता है, **जितने काल तक विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण...** विशिष्टभावनासौष्ठव, विशेष अच्छी भावना, विशेष शुद्ध भावना, विशिष्ट प्रकार की उत्तम भावना अर्थात् अन्तर शुद्ध आनन्द स्वभाव में एकाग्रता की भावना को शुद्ध भावना कहा जाता है। देखो! भावना का अर्थ भी यहाँ किया। वहाँ यह नहीं था। वीतराग भाव, वही भावना है। ... अर्थात् शुद्ध भावना कहने में आयी। आहाहा!

विशिष्ट भावनासौष्ठव के कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ... अपने आत्मा में शुद्ध उपयोग की एकाग्रता के कारण भेद बिना की श्रद्धा आदि होने से, निर्विकल्प दर्शन-ज्ञान-चारित्र में लीन होने से, क्या कहते हैं? **अंग-अंगीभाव से... स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह अंग है और आत्मा अंगी है। आत्मा वह अंगी और स्वभाव वह सम्यग्दर्शन अंग है। दोनों अभेद हो गये। देखो! आत्मा का स्वभाव सम्यग्दर्शन-(ज्ञान)-चारित्र, वह अंग है और आत्मा अंगी है। अंगी है। शरीरवाला है, अंगवाला है। कौन से अंगवाला? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंगवाला अंगी है। हाथ-पैरवाला शरीर है, वैसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंगवाला आत्मा अंगी है। आहाहा! समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य की टीका भी अलौकिक! आहाहा! कहते हैं। समझ में आये ऐसा है। एक-एक श्लोक में इतना सब स्पष्ट किया है। कहते हैं कि व्यवहार के काल में सविकल्पदशा में वह व्यवहार तो कहा, परन्तु अब निर्विकल्प दशा हो तब क्या होता

है, यह बात कहते हैं। और यह मार्ग यहाँ स्थापन करना है। इस अधिकार में इसी मार्ग का कथन है। इसकी गाथा है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भावना का कारण स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। अपना परमात्मा निजस्वभाव शुद्ध चैतन्य। उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। शुद्ध उपयोग की एकाग्रता द्वारा समाहित होने से **अंग-अंगीभाव से परिणति द्वारा...** आत्मा अंगी है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान अंग है। अभेद परिणति हो गयी। पहले यह कहा था न? कि आत्मा ही मोक्षमार्ग है। पहले कहा था। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा समाहित हुआ आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** पहले आया था न? वह यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता। तीन अंश हैं, वे अंग हैं, आत्मा अंगी है। अंग-अंगी की एकरूप परिणति द्वारा, **उनसे समाहित होकर,...** स्वभावभूत सम्यग्दर्शन को, स्वभावभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से, उनसे अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से **समाहित होकर,...** अर्थात् शान्ति में आने से, **त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण...** वह व्यवहार का त्याग-ग्रहण था। समझ में आया?

व्यवहार विकल्प में नौ तत्त्व की श्रद्धा का अभाव था, उसका त्याग किया और नौ तत्त्व की श्रद्धा को ग्रहण किया। अंगपूर्वगत का अज्ञान था, उसका त्याग किया। ज्ञान का ग्रहण किया। पंच महाव्रतादि विकल्प में चेष्टा नहीं थी, उसका त्याग किया और पंच महाव्रत की क्रिया का ग्रहण किया। ऐसे त्याग-ग्रहण व्यवहार में विकल्प में विवक्त आते हैं। परन्तु जब उनसे छूटकर अपने आत्मा में ही अनंग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अंग और अंगी आत्मा **उनसे समाहित होकर, त्यागग्रहण के विकल्प से शून्यपने के कारण...** व्यवहार का त्याग-ग्रहण का जो विकल्प था, वह छूट गया। आहाहा!

और यहाँ त्याग-ग्रहण का अर्थ क्या? त्याग-ग्रहण अर्थात् बाहर के त्याग-ग्रहण की बात यहाँ है नहीं। भाव में नौ तत्त्व की श्रद्धा का अभाव था, उसका त्याग किया। नौ तत्त्व की श्रद्धा ग्रहण की, वह त्याग-ग्रहण। यहाँ तो लोग बाहर के त्याग करो और ग्रहण करो। यह करो और पंच महाव्रत-नग्नपना ग्रहण करो और वस्त्र छोड़ दो। समझ में आया? उसे तो व्यवहार से भी उसमें नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

सविकल्प द्वारा पहले जो विकल्प नौ तत्त्व का श्रद्धा में त्याग था, उसे छोड़कर नौ तत्त्व की श्रद्धा का ग्रहण किया, यह त्याग-ग्रहण व्यवहार में है। निश्चय में तो है नहीं। समझ में आया? ऐसे **शून्यपने के कारण,...** क्या? व्यवहार का त्याग-ग्रहण का जो विकल्प था, उससे रहित हो गया। अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणमित हो गया। आत्मा, वह भाव अभेद हो गया। **(भेदात्मक) भावरूप व्यापार को विराम को प्राप्त होने से...** लो! इस विकल्प का अभाव हुआ, इस कारण भेदात्मक भाव जो विकल्प का, व्यवहार का भेदभाव था न? वह व्यापार विराम को प्राप्त होने से, विकल्प रुक गया। छठवें गुणस्थान में जो ग्रहण-त्याग का विकल्प था, वह रुक गया। आहाहा!

गुणस्थान, पर्याय और यह भेद... वह एक आत्मा माननेवाले को सब भ्रम लगता है, हें? एक ही आत्मा को और, उसके अनन्त गुण और उसकी अनन्त पर्याय को उसमें स्व के आश्रय से निर्मल पर्याय अभेदरूप से परिणमे और तब ऐसे ग्रहण-त्याग के व्यवहार विकल्प होते हैं। वे ग्रहण-त्याग के विकल्प छूटे, तब स्वभाव में एकाकार होता है। उस पर्याय में इतने भेद हैं। आहाहा!

(अर्थात् भेदभावरूप-खण्डभावरूप व्यापार रुक जाने से)... लो! व्यवहार है न विकल्प। वह तो भेदभाव था, खण्डरूप भाव था। **सुनिष्कम्परूप से रहता है,...** अकेले आनन्द में रहता है। कम्प बिना अर्थात् विकल्प का उत्थान भी जहाँ नहीं। आहाहा! उस काल **सुनिष्कम्परूप से,...** अकेला निष्कम्प नहीं। **सुनिष्कम्परूप से रहता है।** अपनी पर्याय अपने स्वभाव में निर्विकल्प पर्याय रहती है। **उस काल और उतने काल तक यही आत्मा जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप होने के कारण...** लो!

उस काल में,... (अर्थात्) सातवीं भूमिका। **उतने काल...** काल में इतना काल, जिसमें विकल्प नहीं उतना। आहाहा! **यही आत्मा...** यह आत्मा। **जीवस्वभाव में नियत चारित्ररूप...** अपनी सामान्य दर्शनचेतना और विशेष ज्ञानचेतना, दो का भेद छोड़कर अन्दर में अभेद लीन होता है। **नियत चारित्ररूप होने के कारण निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता है।** यह आत्मा निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहा जाता है। वहाँ लाये वापस। मूल जो शुरुआत में थी वह। समझ में आया? मूल तो '**अप्पा**' है न? '**णिच्छयण हि भणिदो**

तिहि ते हि सम्माहिट्ठो हु जो अप्पा ण कुणदि किंचि वि अण्णवि मुयदि' व्यवहार में। व्यवहार को छोड़ना-ग्रहण करना वहाँ है नहीं। **'सो मोकखोमग्गो ति'** उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। यहाँ मूल तो निश्चय सिद्ध करना है। वह **'ण कुणदि किंचि वि अण्णवि मुयदि'** इसकी व्याख्या करके समझाया। समझ में आया?

जीवस्वभाव में उस काल और उतने काल... उतने काल और उस काल **यही आत्मा जीवस्वभाव में...** लीन होने से **नियत...** निश्चय स्थिर होने से **निश्चय से 'मोक्षमार्ग' कहलाता है।** उसे 'मोक्षमार्ग' कहा जाता है। लो! इस आत्मा को उस काल में 'मोक्षमार्ग' कहा। लो! समझ में आया? द्रव्यसंग्रह में आता है न? आत्मा ही मोक्षमार्ग है। तीन का भाग करना, वह पर्याय है।

भगवान आत्मा इन तीन की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंग और अंगी एकरूप हो गयी आत्मा। तीनों आत्मा हैं। समझ में आया? विकल्प है, वह अनात्मा है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प तो अनात्मा है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! कितना सिद्ध करते हैं! होता है। होता है तो उसका ज्ञान कराया। न हो उसे त्याग-ग्रहण किया? थोड़ी ज्ञान में अन्दर केळवणी कसरत करनी पड़े इसमें। समझे न? पण्डितजी! व्यायामशाला में कसरत करते हैं या नहीं? इसी प्रकार ज्ञान में कसरत करनी पड़े। निश्चय क्या? व्यवहार क्या? व्यवहार में ग्रहण-त्याग का विकल्प क्या? और उससे रहित होकर निर्विकल्प क्या होता है?

मुमुक्षु : होता है तो मानने में क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता क्या है? आया नहीं? व्यवहार है। है तो ज्ञान कराया। नहीं मानना क्या? व्यवहार को व्यवहार से मानना। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा मानना नहीं। वह तो विकल्पात्मक है। यह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। निश्चयमोक्षमार्ग वीतरागी पर्याय है। यह राग पर्याय है। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। राग की पर्याय की मर्यादा कितनी, वह बताते हैं। समझ में आया?

हें? कहा न? आरोप से कथन है। मोक्षमार्ग में निश्चय है। आत्मा में ही मोक्षमार्ग हुआ न? अपनी पर्याय में अभेद हुआ न? उसे व्यवहार कहा। निश्चय से मोक्ष कहा

जाता है। इसलिए **निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को...** लो! **साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है।** हें? अत्यन्त होता है अर्थात् व्यवहारनय से बराबर प्रमाणसर घटित होता है। व्यवहारनय से, ऐसा कहते हैं। छठवें गुणस्थान में अज्ञान का नाश होकर सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय हुई है-परिणति। उसके साथ ऐसा विकल्प है, उसे साधन कहने में आया। उसे छोड़कर अभेद साधन में जहाँ रमता है तो उसे साध्य कहा। तो उस साधन में व्यवहार निमित्त है, ऐसा वहाँ घटित होता है। व्यवहारनय से यह बात सिद्ध होती है। ऐसा कहते हैं। फुटनोट में, देखो! व्यवहार साधन है। **अत्यन्त (घटित होता) है।** ऐसा लिखा है या नहीं? समझ में आया?

निश्चयमोक्षमार्ग अपने निर्विकल्प उपयोग में परिणति होना और व्यवहारमोक्षमार्ग, यह पहले छठवीं भूमिका में ग्रहण-त्याग का जो विकल्प था, उसे व्यवहार कहकर साधन कहा, उसका अभाव करके हुआ, तथापि वह है, उसे व्यवहार साधन कहा (गया है)। वास्तव में तो उसका अभाव करके हुआ है। परन्तु पूर्व में था, उसे व्यवहार से साधन कहने में आया है। ऐसा है, भाई! भारी झगड़ा! है या नहीं? देखो! शब्द-शब्द इसमें है या नहीं? शब्द-शब्द का अर्थ तो होता है। अत्यन्त घटित होता है। समझ में आया?

नीचे एकड़ा है न? **यहाँ यह ध्यान में रखनेयोग्य है कि जीव व्यवहारमोक्षमार्ग को भी अनादि अविद्या का नाश करके ही प्राप्त कर सकता है;...** अज्ञान का नाश किये बिना व्यवहार के विकल्प को व्यवहार कहने में नहीं आता। **अनादि अविद्या का नाश होने से पूर्व तो (अर्थात् निश्चयनय के—द्रव्यार्थिकनय के—विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पूर्व तो) व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं होता।** अपने द्रव्य के आश्रय बिना निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ नहीं तो पूर्व में व्यवहार है, उसे व्यवहार भी कहने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पूर्व में, (द्रव्यार्थिकनय के) विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का भान करने से पहले तो व्यवहारमोक्षमार्ग भी नहीं होता। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय के हैं, वहाँ पूर्व में, वर्तमान परिणति में ऐसा नहीं है, वहाँ रागादि पूर्व में थे, उसे साधन कहकर

सातवें साध्य हुआ, ऐसा वहाँ होता नहीं। व्यवहार कहने में भी आता नहीं अज्ञानी को। अज्ञानी के पंच महाव्रत और ग्यारह अंग के साधन भी कहने में आते नहीं। साधन-फाधन है नहीं। इसलिए निमित्त भी है नहीं। समझ में आया?

अब, **अत्यन्त घटित होता है।** इसका स्पष्टीकरण करते हैं। नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण करके सब, सब ऐसा कर दिया। हो गया अर्थ। **पुनश्च, 'निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधनपना अत्यन्त घटित होता है' ऐसा जो कहा गया है, वह व्यवहारनय द्वारा किया गया उपचरित निरूपण है। आरोपित निरूपण है।** यह कथन वास्तविक नहीं है। उसमें से ऐसा अर्थ निकालना चाहिए कि **'छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुभ विकल्पों को नहीं, किन्तु छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि के अंश को और सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग को वास्त्व में साधन-साध्यपना है।'** ऐसा, निश्चय से वह यह है। **छठवें गुणस्थान में वर्तनेवाले शुद्धि का अंश बढ़कर जब और जितने काल तक उग्र शुद्धि के कारण शुभ विकल्पों का अभाव वर्तता है...** आहाहा! **तब और उतने काल तक सातवें गुणस्थानयोग्य निश्चयमोक्षमार्ग होता है।** लो! पण्डितजी ने स्पष्टीकरण बहुत अच्छा किया है। समझ में आया? किस पण्डित ने अर्थ किया है? क्या अर्थ किया? किसने किया? ऐई! इसका अर्थ किसने किया? हिम्मतभाई! कौन हिम्मतभाई? है यहाँ? इन्होंने। पण्डितजी कहते हैं कि कौन पण्डितजी? कोई दूसरे पण्डितजी? यह पण्डितजी। लो! समझ में आया? यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७३, गाथा-१६१-१६२, वैशाख कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक -२३-०५-१९७०

पंचास्तिकाय १६१ गाथा। इसका भावार्थ:—पहले निश्चयमोक्षमार्ग क्या है, उसकी बात कहते हैं। यहाँ आओ यहाँ।

भावार्थ :- निश्चयमोक्षमार्ग... अर्थात् सच्चा मोक्षमार्ग। झूठा मोक्षमार्ग नहीं, सच्चा। सत्यार्थ को सच्चा आता है न! नहीं? छहढाला में। सत्यार्थ सो निश्चय। बस, तो उसका अर्थ क्या? असत्यार्थ वह व्यवहार। असत्य कहो या झूठा कहो भाषा... असत्य कहो या झूठा कहो। समझ में आया?

यह तो ग्यारहवीं गाथा में अभूतार्थ कहा, अभूतार्थ कहो या असत्यार्थ कहो या झूठा कहो। यह उस कलश में आता है न? जहाँ-तहाँ झूठा है। भाई पूछते थे न? यह झूठा-झूठा क्यों कहते हैं? व्यवहार असत्यार्थ कहने में क्या आया? निश्चय सत्यार्थ है। भूतार्थ-सत्यार्थ है और व्यवहार असत्यार्थ है, यह शब्द स्पष्ट। जैनशासन की मूल प्रणालिका। शब्द कठिन लगे परन्तु शब्द में क्या है? उसका भाव पढ़े तो क्या शब्द है, उसका वाच्य नजर में आता है या नहीं? समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो! **निश्चयमोक्षमार्ग...** अर्थात् सच्चा मोक्षमार्ग। **निज शुद्धात्मा की रुचि,...** निज शुद्धात्मा की रुचि। शुद्ध पवित्र भगवान ज्ञान-दर्शन, ज्ञाता-दृष्टा का स्वभावरूप वस्तु। ज्ञान-दर्शन की स्वभावरूप वस्तु, उसकी रुचि - उसके सन्मुख होकर भूतार्थ जो त्रिकाल ज्ञायक दृष्टा-ज्ञाता स्वभाव है, उसकी रुचि-दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सच्चा सम्यग्दर्शन-सत्य सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

और **निज शुद्धात्मा की ज्ञप्ति,...** निज शुद्धात्मा ज्ञान-दर्शनस्वभाव सम्पन्न वस्तु। वस्तु है, वह ज्ञान-दर्शन। यह वहाँ से चला यह निश्चयचारित्र-नियत चारित्र। वस्तु आत्मा, स्वभाववान आत्मा, स्वभाव जानना-देखना त्रिकाल। ऐसा जो स्वभाव, उस स्वभाव की रुचि, उस स्वभाव का ज्ञान, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। समझ में आया?

निज आत्मा कहा न वापस? भगवान (जिनेन्द्र) शुद्धात्मा तो है। वह नहीं। निज आत्मा। आहाहा! अपना आत्मा, वह ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभावरूप वस्तु है, उस ओर

की अभेद के सन्मुख होकर रुचि करना, वह ज्ञान-दर्शन स्वभाववान आत्मा, उसकी ज्ञप्ति अर्थात् ज्ञान करना और उस **शुद्धात्मा की निश्चय अनुभूतिरूप,...** भगवान आत्मा में चलित न हो, ऐसी स्थिरता करना, अनुभूति अर्थात् स्थिरता करना, इसका नाम चारित्र है। लो! यह सच्चा मोक्षमार्ग है। समझ में आया? यहाँ तो दो भेद करने हैं न? दो, निश्चय और व्यवहार। आगे फिर (१६४ गाथा में) चार भाग करेंगे।

निश्चयमोक्षमार्ग है, वह संवर-निर्जरारूप है। समझ में आया? अपना निज शुद्धात्मा परिपूर्ण वस्तु, उसकी रुचि, ज्ञान और निश्चय अनुभूति-स्थिरता, वह मोक्षमार्ग। उसमें दो भाग आये। मार्गरूप से एक, परन्तु संवर-निर्जरारूप से दो। समझ में आया? **उसका साधक (अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का व्यवहारसाधन) ऐसा जो भेदरत्नत्रायत्मक..** देखो! यह विकल्प है। उसे यहाँ व्यवहार साधन कहकर, उपचार से साधन कहा गया है। यथार्थ में नहीं। वह असत्यार्थ साधन है।

भेदरत्नत्रायत्मक व्यवहारमोक्षमार्ग... विकल्प है, छह द्रव्य, नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह तत्त्वार्थ श्रद्धानसहित अंगपूर्वगत का ज्ञान और इसमें पंच महाव्रत का विकल्प। यह विकल्प है, वह व्यवहार साधन असत्यार्थ है, उसे व्यवहार साधन कहा गया है। समझ में आया? और भेदरत्नत्रय जो विकल्प है, उसके आस्रव और बन्ध दो भाग है। समझ में आया? पण्डितजी! आगे १६४ में कहेंगे। नीचे अर्थ में है। १६४ है न? यह अर्थ में भाई ने (स्पष्ट) किया है, पण्डितजी ने। **वह मिश्रपर्याय...** उसमें मिश्रपर्याय है न? अपने दोपहर में चलता है न तुम्हारे? देखो! पृष्ठ २४३। १६४ गाथा के नीचे। अन्तिम दो लाईन।

उस मिश्रपर्याय का शुद्ध अंश संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत होता है और अशुद्ध अंश आस्रव-बन्ध के कारणभूत होता है। पाठ में है न? **'बंधो वा मोकख वा'** मोक्षमार्ग में बन्ध और मोक्ष दो हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा अपना स्वआश्रय लेकर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए, उसमें दो भाग हैं। संवर और निर्जरा। शुद्धि उत्पन्न हुई, पहले नहीं थी, वृद्धि हुई, उसे संवर-निर्जरा कहा गया है और उसका साधक जो व्यवहार है, **उसे जीव कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से)** है न? उसमें

भी आता है। योगीन्दुदेव के दोहे में, नहीं? व्यवहार को प्रयत्न करके जानना। एक श्लोक आता है। जाननेरूप से यत्न... हमारे पण्डितजी को सब याद है।

नौ तत्त्व, छह द्रव्य, और उसका जो जाननेरूप से यत्न है। इस ओर में है। हें? डाला है। इतना अशुभराग टालकर शुभराग के विकल्प में आना, वह तो इतना उद्यम है न? शुद्ध उद्यम स्वभाव-सन्मुख है। समझ में आया? और यह जरा शुभ में भी प्रयत्न का अंश है न? उस प्रकार का अशुद्ध का। समझ में आया? गजब बात! आहाहा! यहाँ कहते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग, यह तो भाई जिसे जन्म-मरण के दु:ख का नाश करना हो, उसकी बात है। समझ में आया? शास्त्र से वाद-विवाद करे, ऐसा है और ऐसा है, उसमें कुछ है नहीं।

भगवान आत्मा... देखो ने! थोड़ी एक जरा यहाँ प्रतिकूलता में चिल्लाहट मचाता है। ऐसी अनन्त प्रतिकूलता जिस भाव से उत्पन्न हो, उस भाव का तो इसे डर नहीं। समझ में आया? मिथ्यात्वभाव में तो अनन्त प्रतिकूलता आवे, इतनी उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? तोड़ डाले वहाँ, आठ डिग्री, आठ डिग्री, दस डिग्री, शोर मचाये... यह तो इसके ख्याल में ऐसा माना है। ...ताप होता है, ऐसा माना है। ताप तो परज्ञेय है। वह स्वज्ञेय में आता ही नहीं। मात्र ज्ञान उसे जानता है। उसे जानता है कि यह है। जानना, उसमें कोई राग (नहीं है)। राग-द्वेष करके जाने, अरे! यह! ऐसा प्रतिकूल द्वेष है।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! अल्प प्रतिकूलता भी जिसे सहन (नहीं होती), ठीक नहीं लगती। जिसके फल में अनन्त प्रतिकूलता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव कैसे करता है? समझ में आया? राग-विकल्प है, उसे यहाँ साधन कहा। परन्तु वह तो आरोप से है। यथार्थ में उसकी रुचि में साधन मान ले, प्रतिकूलता है, भगवान! समझ में आया?

कहते हैं, **उसका साधक...** ऐसा शब्द हे न? **(अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग का व्यवहारसाधन)...** ऐसा वापस स्पष्टीकरण करना पड़ा। **ऐसा जो भेदरत्नत्रयात्मक व्यवहारमोक्षमार्ग,...** छह द्रव्य और नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प राग, पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प राग और ग्यारह अंग पूर्वगत को पढ़ने का विकल्प, वह भी **कथंचित् (-किसी प्रकार से, निज उद्यम से)...** अपने, बस इतना। **अपने संवेदन में**

आती हुई अविद्या,... आत्मा और राग एक है, ऐसा वेदन, वह अविद्या-अज्ञान है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव, राग तो विभाव, दोनों की एकता का वेदन अविद्या का वेदन है। अज्ञान का वेदन है। समझ में आया? पर का वेदन नहीं। पर का तो वेदन है नहीं। यह ताप-शीत का वेदन नहीं। अपना स्वभाव अनाकुल शान्त आनन्द के साथ विकल्प शुभराग आकुलता आस्रव और बन्ध का कारण, उसका एकत्व करके, स्वभाव के साथ मिलान करके अविद्या का वेदन होता है, उसका नाश करना, यह बात यहाँ चलती है। समझ में आया?

अविद्या की वासना के विलय द्वारा... यह आत्मा ज्ञानरूप स्वभाव शुद्ध विद्या, उससे विपरीत अविद्या। समझ में आया? यह पर में सुख कल्पना, वह भी अविद्या है, ऐसा कहते हैं। यह पर में सुख है, इन्द्रियों में सुख है, शरीर में सुख है, भोग में सुख है, इन्द्राणी में सुख है, लक्ष्मी में सुख है, ऐसी जो कल्पना, वह अविद्या ज्ञान का वेदन है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शोभालालजी! यह अविद्या का वेदन है। आहाहा! उसकी वासना। उस अविद्या की वासना-गन्ध। राग विकल्प जो है, उसे अपना जानना, ऐसी जो अविद्या की गन्ध है, वासना है। आहाहा!

वासना के विलय द्वारा... वासना के विलय (नाश) **द्वारा प्राप्त होता हुआ,...** कौन? व्यवहार। उस बिना व्यवहार कहाँ से आया? अविद्या का नाश करके स्वभाव का ज्ञान-दर्शन-चारित्र का भाव हुआ, उसके साथ उसे व्यवहार साधन का जो विकल्प आया, जो बन्ध का कारण है, जो आस्रवरूप है, उसे यहाँ आरोप से साधन कहा, तो कहते हैं कि उस साधन की प्राप्ति अज्ञान का नाश करने से होती है। अज्ञान का नाश किये बिना व्यवहार साधन या निश्चयसाध्य नहीं होता। आहाहा! परन्तु कठिन काम। समझ में आया?

कहते हैं, **जब गुणस्थानरूप सोपान के क्रमानुसार...** निश्चयस्वरूप अपनी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का साधन व्यवहार विकल्प जो है, उस अज्ञान का नाश करके निश्चय और व्यवहार दोनों उत्पन्न हुए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अज्ञान के नाश बिना सम्यक् निश्चय नहीं होता और निश्चय नहीं तो व्यवहार साधन आरोप करने की चीज़ भी उसे कहने में नहीं आती। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में है। **जब गुणस्थानरूप सोपान के...** सोपान अर्थात् सीढ़ियाँ, **क्रमानुसार निजशुद्धात्मद्रव्य को भावना से उत्पन्न...** देखो! सुख आया सुख। यह आया। निज शुद्धात्मद्रव्य भगवान आत्मा, निज अर्थात् अपना शुद्ध पवित्र स्वरूप ऐसा द्रव्य, उसकी भावना से उत्पन्न। ऐसे द्रव्य में एकाग्र होने से जो पर्याय उत्पन्न हुई, **नित्यानन्दलक्षणवाले सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण निजशुद्धात्माश्रित निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है,...** लो! क्या कहते हैं?

कहते हैं कि अपना भगवान आत्मा निज शुद्धात्मद्रव्य तो उसमें तो आनन्द है। अपनी वस्तु में तो अतीन्द्रिय आनन्द भरपूर भरा है। खाली खड्डे में ढूँढ़े। है आनन्द.... खाली खड्डे में.... विकल्प में, राग में और पर में सुखबुद्धि खोजना वह खाली खड्डे में खोजने जैसी है। आहाहा! भरपूर तृप्त भाजन पड़ा है, उसमें तो दृष्टि करता नहीं। जिसमें नहीं है, वहाँ दृष्टि करके सुखी होने का मानता है, वह मूढ़ है। शोभालालजी! यह सब इन लोगों को सुखी कहते हैं न? छह-छह लाख का संगमरमर का बड़ा बँगला-मकान। वह भले आये परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि इन्हें छह लाख रुपये का रहने का बँगला है। दोनों बड़े सेठिया। यह बड़े सेठ और यह छोटे सेठ। बुन्देलखण्ड के बादशाह। .... सुखी है। धूल भी नहीं। शान्तिभाई! आहाहा!

वस्तु में सुख है या पर में सुख है? शरीर-वाणी में सुख नहीं, इस शुभ और अशुभभाव के विकल्प उठते हैं, उनमें सुख नहीं। यहाँ तो यह कहते हैं। यह व्यवहार साधन जो कहा, उसमें सुख नहीं। समझ में आया? आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग स्वयं से उत्पन्न हुआ, उसके व्यवहार साधन कहा परन्तु उसमें सुख नहीं। आहाहा! समझ में आया? **निज शुद्धात्मद्रव्य की भावना...** शब्द पड़ा है। ऐई! यह तो भावना, भावना अर्थात्? एकाग्रता करना। यह तो शुद्धात्मा की भावना। भगवान निज शुद्ध वस्तु ज्ञान, दर्शन और आनन्द का धाम, उसकी अन्तर्दृष्टि करके, एकाग्रता करके जो तृप्ति उत्पन्न हुई तो भावना तो अन्दर एकाग्रता हुई।

भावना तो अपने, भाई! भावना करो कल्पना से ऐसा आत्मा ऐसा। यह भावना

ही कहाँ है ? हमारे यह बात करते हैं। वह आते हैं न ? पूरणचन्दस्वामी। सामायिक में भी, श्रावक को सामायिक में भी कदाचित् शुद्धोपयोग की भावना होती है। ऐसा पाठ है। श्रावक को सम्यग्दृष्टि को सच्चे श्रावक को। यहाँ वाडा-वाडा की बात नहीं है। जो श्रावक सम्यग्दृष्टि है, अपना अनुभव है, उसे सामायिक काल में कदाचित् शुद्धात्मा की भावना होती है, ऐसा पाठ है। तो उस भावना का अर्थ ऐसा करते हैं कि शुद्धात्मा नहीं, उपयोग नहीं। उसकी भावना। तो उस भावना का अर्थ एकाग्रता है। पाठ क्या है ? क्या करे ? समझ में आया ?

अर्थ करने में बड़ा अन्तर ! भावना का अर्थ ही अन्तर एकाग्रता। जैसे अनादि से शुभ-अशुभराग में एकाग्रता थी, वह विकार की भावना थी।

मुमुक्षु : भावना का अर्थ एकाग्रता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता है। अब यह वह कहाँ बात ! एक अग्र। एकरूप दृष्टि करके लीन होना, इसका नाम भावना कहने में आता है। निज शुद्धात्मद्रव्य की भावना से अथवा एकाग्रता से उत्पन्न। नित्यानन्दलक्षणवाला सुखामृत। जिसका लक्षण नित्यानन्द है, ऐसा लक्षण।

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द। मीठा मधुर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अन्दर पड़ा है। समझ में आया ? यह शुभराग का स्वाद भी जहर है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? यह पंच महाव्रत का विकल्प शुभराग है। ऐई ! कहाँ गये ? प्रकाशदास ! वहाँ बैठे हैं। अच्छा। यह पंच महाव्रत का विकल्प दु:ख है, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत लो, पाँच समिति लो। अरे भगवान ! यह तो परलक्ष्यी विकल्प दु:ख है। उसमें सुख है नहीं। और वह दु:ख है, वह मोक्ष का कारण है ? आहाहा !

यह तो स्वभाव का साधन प्रगट किया है, उसे ऐसा विकल्प आता है, उसे आरोप से साधन कहा। है तो दु:खरूप आस्रव-बन्ध का कारण। फिर स्पष्टीकरण करेंगे। समझ में आया ? यह तो परसमय प्रवृत्ति है। आहाहा ! अरे ! स्वसमय प्रवृत्ति तो स्वरूप जो ज्ञान-दर्शन स्व में प्रवृत्ति-एकाग्रता, वह स्वसमय प्रवृत्ति चारित्र है। राग में प्रवृत्ति तो परसमय प्रवृत्ति है। वह दु:खरूप प्रवृत्ति है। आहाहा ! उसमें ... क्या कहा ? **नित्यानन्द-लक्षणवाले सुखामृत के...** जिसका लक्षण नित्यानन्द है। टीका। ऐसा **सुखामृत।** सुखरूपी

अमृत। उसके **रसास्वाद की...** उसके रस का आस्वाद, उसकी **तृप्तिरूप,...** उसमें आत्मा को तृप्ति होती है। आहाहा!

अभी सुनने में कठिन पड़े। यह क्या कहते हैं ? जैसे अमृत का कूंप (कुँआ) हो, कूंप, उसमें से अमृत निकाले। वैसे भगवान अमृत का कूंप है। आहाहा! समझ में आया ? आत्मद्रव्य खबर नहीं। भगवान तो यह है। अपना निज भगवान तो आत्मा है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। पर भगवान की प्रशंसा आदि में जाओगे तो विकल्प उठेगा। आता है, होता है। यह तो कहा, उसे व्यवहारसाधन का आरोप (दिया गया है)। वास्तव में है नहीं, उसे आरोप देकर प्रमाण का ज्ञान कराया है। निश्चय का और व्यवहार का प्रमाणरूप ज्ञान कराया है। समझ में आया ? आहाहा!

निजशुद्धात्मद्रव्य को भावना से उत्पन्न... चौथे गुणस्थान में एकाग्रता है या नहीं ? उससे **उत्पन्न नित्यानन्दलक्षणवाले...** आत्मख्याति, परन्तु उसमें प्रश्न नहीं ? पाँचवीं गाथा में। मुनि को तो परमशुद्धोपयोग है। यहाँ समयसार में पाँचवीं गाथा में प्रचुर स्वसंवेदन है। उसमें क्या आया ? मुनि को परमशुद्धोपयोग कहा। परमशुद्धोपयोग। और पाँचवीं गाथा में, वहाँ तीसरी गाथा में कहा। समयसार की पाँचवीं गाथा में मुनि कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), हमें प्रचुर स्वसंवेदन निजवैभव उत्पन्न हुआ है। ऐसा थोड़ा स्वसंवेदन तो चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) भी है। समझ में आया ?

(मुनि को) परमशुद्धोपयोग कहा तो थोड़ा शुद्धोपयोग चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) भी है। परमशुद्ध उपयोग नहीं। यहाँ भी ऐसा कहा है। देखो! नित्यानन्दलक्षणवाले सुखामृत के रसास्वाद के तृप्तिरूप, शान्त... शान्त... अपने आनन्द की प्रगटता अंश में आयी। नित्यानन्द तो है ही। उसकी प्रतीति और अनुभव करके एकाग्रता करके अपनी दशा में में जो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उससे तृप्त हुआ। तृप्ति हो गयी। आहाहा! कुछ आशा नहीं रही। समझ में आया ?

ऐसे आत्मा के सुखामृत एकाग्रता की भावना उत्पन्न हुई तो तृप्ति हो गयी। देखो! निश्चयमोक्षमार्ग! रावजीभाई! ऐसी बातें भी लोगों को सुनने नहीं मिलती। बाहर के ढोंग करके बेचारे... ऐसा लेख लिखे! सब गप्प-गप्प। भगवान ने पंच महाव्रत, अहिंसा,

सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, (अपरिग्रह) लिये। यह सब अहिंसा है। यह सब विकल्प! यह भगवान ने कहा अहिंसा, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य। अरे भगवान! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ने तो आत्मा की विधि यह कही। निश्चयमोक्षमार्ग यह विधि कही है। समझ में आया?

व्यवहार तो बीच में आता है। व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा! शान्तिभाई! सुना नहीं, समझ में आता नहीं और एकदम! चलो, धर्म हो गया। तस्सउतरीकरणेणं तावकाय ठाणेणं माणेणं जाणेणं। परन्तु क्या? रावजीभाई! झवेरचन्दभाई को आता होगा या नहीं? तावकाय ठाणेणं माणेणं। तावकाय ठाणेणं माणेणं अप्पाणं वोसरामी। श्रीमद् ने कहा, पूरा आत्मा वोसरा दिया। वहाँ तो शुद्धात्मा ऐसी अन्तर्दृष्टि से तृप्त होता है तो अशुद्धपरिणामरूपी आत्मा को छोड़ देता है। इसका नाम चारित्र है। रावजीभाई! सब अर्थ में अन्तर है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम ध्रुवधाम। उसमें दृष्टि लगाने से-एकाग्रता की भावना एकाग्रता है। एकाग्रता होने से जैसे राग में एकाग्रता थी, आकुलता और दु:ख का वेदन था। स्वभाव में एकाग्रता हुई तो अतीन्द्रिय आनन्द के रसास्वाद से आनन्द से तृप्ति हुई। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि ऐसे **तृप्तिरूप परम कला...** भाषा देखो! यह मोक्षमार्ग की परम कला है। आहाहा!

आचार्य को शब्द प्रयोग करते हुए भी बहुत मिलते भी नहीं, ऐसे यह शास्त्र हैं। पद्मनन्दजी लिखते हैं न, पद्मनन्दजी! कैसे पद्मनन्दजी! पद्मप्रभमलधारिदेव। नियमसार की टीका। यह तो जयसेन आचार्यदेव की है। तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण। आहाहा! कहते हैं कि जैसे दूज, तीज, चौथ और पंचवीं को (चन्द्र की) कला होती है न, उसी प्रकार भगवान आत्मा पूरा चैतन्य के प्रकाश के आनन्द के नूर का पूर प्रभु आत्मा है। उसमें एकाग्र होने से अन्दर में कला जगी। आनन्द की कला। समझ में आता है न? थोड़ा-थोड़ा समझ में आता है। ध्यान रखे न! बालक को, ध्यान रखे न। होशियार है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा बालक भी कहाँ, जवान भी कहाँ और वृद्ध भी कहाँ? उसे राग भी कहाँ है? आहाहा! राग और रजकण से भगवान भिन्न है। ऐसे भगवान आत्मा में

एकाग्र होने से आनन्द की अनुभव कला जगी। यह तो समझ में आता है न? **परम कला के अनुभव के कारण निजशुद्धात्माश्रित...** देखो! निज शुद्धात्मा के आश्रित। आहाहा! **निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है,...** लो! निश्चय-सच्चा सम्यग्दर्शन। देखो! यह सत्। कितने अधिक शब्दों में रहा है, **सुखामृत के रसास्वाद की तृप्तिरूप परम कला के अनुभव के कारण निजशुद्धात्माश्रित निश्चयदर्शनज्ञान-चारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है,...** आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन हो और आनन्द न हो तो वह सम्यग्दर्शन नहीं है। समझ में आया? ज्ञान और आनन्द को साथ में लेकर बात करते हैं। अकेला ज्ञान नहीं। अकेला ज्ञान कहाँ से आवे? वस्तु में अकेला ज्ञान है नहीं। वस्तु तो अनन्त गुण सम्पन्न ज्ञान और आनन्दसहित है। आहाहा! पहले श्रद्धा में निर्णय तो करे! समझ में निर्णय तो करे कि यही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। पूरी दुनिया बदल जाये, देव-इन्द्र बदले परन्तु यह मार्ग नहीं बदलेगा, ऐसा निर्णय करना चाहिए न? आहाहा!

निजशुद्धात्माश्रित... निजशुद्धात्माश्रित, वहाँ पर का आश्रय नहीं, वहाँ निश्चय है या नहीं? **निश्चयदर्शनज्ञानचारित्ररूप से अभेदरूप परिणमित होता है,...** भगवान आत्मा में एकरूप अवस्था होती है। राग में परिणमन होता है, वह तो भेदरूप दुःखरूप परिणमता है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द का धाम। यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई... **अभेदरूप परिणमित होता है, तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण...** देखो! उस समय भिन्न राग का साधन रहता ही नहीं। अपने आश्रय से जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अनुभव में होता है, तब उसे भिन्न साधन का विकल्प है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

चारित्र के परिणाम। अर्थात् यह ऐसा कहते हैं कि चारित्रमोह का बिल्कुल जहाँ नाश हो, वहाँ चारित्र होता है, ऐसा। अरे! मोह-क्षोभ, ऐसा आता है न? स्वरूप में चारित्र, क्षोभ का बिल्कुल नाश। ऐसा आज कहा, यह कैसे ऐसे होगा? पाठ तो ऐसा है। मोह और क्षोभ के चारित्रमोह के परिणाम से रहित। यह चारित्रमोह के परिणाम कहाँ गिने जाते हैं? कि बिल्कुल रहित हो, तब बारहवाँ गुणस्थान हो, तब उसे चारित्र कहलाये। अरे भगवान!

यह तो वहाँ राग से रहित ही है। बाकी राग वह दूसरा रह गया। समझ में आया? अन्तर में शुद्धोपयोग के परिणमन में तो मोह-क्षोभ से रहित ही परिणमन है। अभी थोड़ा राग है, इसलिए यहाँ बात-गिनने में आती भी नहीं। आहाहा! क्या करे? कुछ शास्त्र के शब्द के अर्थ तोड़-मरोड़कर करे और फिर कहे कि तुम उल्टे अर्थ करते हो, ऐसा। खोटा लगे तो रखे।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में स्व-आश्रय से शुद्धस्वभाव से रमणता हुई तो वास्तव में तो मोह और क्षोभ के परिणाम तो वहाँ है ही नहीं। मिथ्यात्व है नहीं और राग भी वहाँ है नहीं। थोड़े रहे हैं, वह पर्याय में है नहीं, ऐसा कहते हैं। सातवें गुणस्थान का चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग 'स्वरूपे चरणम् चारित्र' जो स्वसमय की प्रवृत्तिरूप... प्रवचनसार में आता है न? यह वहाँ चारित्र सातवें गुणस्थान की बात करते हैं। सातवें की बात है। छठवें में कषाय के कण आते हैं, उसे उल्लंघन करे, वह पर्याय है। कषाय का कण उल्लंघकर वापस बारहवाँ आवे, ऐसा (वे) कहते हैं। पंच महाव्रत का कषाय का कण छठवें गुणस्थान में आता है। तीन कषाय का तो अभाव है। उसमें परिणति तो शुद्ध है परन्तु उपयोग में ज्ञेय-ज्ञाता के अभेदपने में नहीं रह सकता तो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के कषाय के कण देव-गुरु-शास्त्र का सुनना और भक्ति आदि का विकल्प आता है, तो उसे उल्लंघकर स्वरूप में चारित्र में रमना। ऐसे सातवें गुणस्थान के चारित्र को वह मुनि कहते हैं कि हमको प्राप्त हुआ है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम पंचम काल के साधु साम्य धर्म को-शुद्धोपयोग को प्राप्त हुए हैं। उपयोग को साम्य कहा। आहाहा! हम मोक्षमार्ग को बतलानेवाले हैं। यह मोक्षमार्ग निश्चय है, साथ में विकल्प की जाति कैसी होती है, ऐसा हमें साक्षात् हमारी भूमिका में दिखता है। ऐसा कहकर हम मोक्षमार्ग कहेंगे। आहाहा! भगवान कहते हैं, तो कहूँगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? हमारे आत्मा का निश्चय अनुभव दर्शन-ज्ञान-चारित्र में चरणानुयोग का विकल्प कैसा होता है, यह हमारे ज्ञान में दो बात आ गयी। समझ में आया?

यह वे कहते हैं न कि भाई! हमको भगवान ऐसा कहते हैं कि पंच महाव्रत लो, अमुक लो। ऐसा नहीं। आचार्य कहते हैं कि हमको हमारे निश्चय स्वरूप में अभेद

परिणति तो है परन्तु थोड़ा विकल्प भी आया है, वह कषाय का कण है। यह निश्चय-व्यवहार का दो का हम वर्तमान भूमिका में हमारे ज्ञान प्रत्यक्ष है। समझ में आया? ऐसा मोक्षमार्ग कहेंगे। भगवान कहते हैं कि यह नहीं। हम हमारे अनुभव से कहते हैं कि मोक्षमार्ग ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें... ऐसा कहते हैं। लो! सुधर्मास्वामी ऐसा कहते हैं कि यह भगवान ने मुझे ऐसा कहा, वह मैं तुमको कहता हूँ। श्वेताम्बर में ऐसा आता है। उनका कहाँ अनुभव था! धूल में भी नहीं। समझ में आया? यहाँ तो जहाँ-तहाँ डाले, फिर डाले जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं। हमारे अनुभव से हम मोक्षमार्ग कहते हैं तो जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है, ऐसा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **तब निश्चयनय से भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण...** अपना भगवान निजस्वभाव के आश्रय से तृप्तिरूप आनन्द के अनुभव में निश्चयचारित्र में रमता है, तब भिन्न साधन का वहाँ अभाव है। पंच महाव्रतादि का विकल्प वहाँ है नहीं। **यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** लो! **भिन्न साध्य-साधन के अभाव के कारण यह आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** ऐसा वहाँ लेना है न? आहाहा! गजब बात पंचास्तिकाय की! प्रवचनसार, समयसार अलौकिक बात है। ....आत्मा को डोलायमान कर दे, ऐसा है। समझ में आया? उसे अन्दर से हिला डाले। अरे! देख तो सही! प्रभु! तेरी जाति को। आहाहा! तेरी जाति के आश्रय बिना सर्वत्र थोथा-थोथा है। समझ में आया?

अभी कहेंगे। अनुभवी हो और या अनुभवी का आश्रयवाला मुनि हो, ऐसी दो बात करते हैं। .... धूल भी नहीं। यहाँ तो कहते हैं। ...चिमनभाई ऐसा कहते हैं। पुस्तक कारण देखकर अंकित किया है। यह तो व्यवहार है। यह तो होवे तो उसे व्यवहार कहने में आता है। स्व के आश्रय से हो तो व्यवहार भगवान ने देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को समकित व्यवहार कहा जाता है। अलौकिक बात का रास्ता गूढ़ गम्भीर रास्ता। समझ में आया? यह मार्ग यथार्थ है। उसमें कोई वाद-विवाद को स्थान है नहीं।

अब सिद्ध करते हैं। **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि सुवर्ण और सुवर्णपाषाण की भाँति...** सुवर्ण, वह निश्चय और सुवर्ण पाषाण व्यवहार। वहाँ ऐसा कहना है न? **निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग को साध्य-साधकपना (व्यवहारनय से) अत्यन्त**

घटित होता है। लो! ऐसा। सुवर्ण और सुवर्णपाषाण। अग्नि लगाने से पत्थर भिन्न होता है, इतना निमित्त देखकर उसे व्यवहार कहा गया है। ऐसा वास्तव में तो राग से भिन्न करने की भेदज्ञान अग्नि प्रगट होती है। तब वह राग, इतना राग से भिन्न पड़ा न? इतनी अपेक्षा देकर उसे निमित्तरूप से-व्यवहारसाधनरूप से गिनने में आया है। आहाहा! अरेरे! ऐसा मनुष्यपना समय-समय में चला जाता है। बाहर की प्रवृत्ति और बाहर की वृत्ति के समक्ष इसके अपने निज आत्मा के कल्याण की रुचि की खबर बिना जीवन व्यर्थ लुटता है। आहाहा!

एक तो संसार में कमाना, खाना, पीना, विषय, उसमें कमाने में जाये। थोड़ा सा रहे तो कुगुरु घण्टे-दो घण्टे लूट ले। इसलिए उल्टे रास्ते राग की क्रिया करो, यह क्रिया करो। यह तो राग की क्रिया न कहे, वह तो धर्म की क्रिया करो, ऐसा कहता है और उस क्रिया से तुम्हारी मुक्ति होगी। आहाहा! लूट लिया। डाकू होकर लूट लिया। ...समझ में आया? ज्ञानावरण आदि आठ, ज्ञानार्णव तो ऐसा कुगुरु अकेला नर्क में-निगोद में नहीं जाता, अपने मेहमान को साथ में लेकर जाता है। आहाहा! उल्टी प्ररूपणा करके, उल्टी श्रद्धा करके अकेला तो निगोद में जाता है परन्तु साथ में जिसे कहता है, वह भी चलो भाई हमारे साथ। चलो हमारे साथ निगोद में। एक शरीर में बैठ जाओ। वहाँ यह करके... आहाहा! हें? निश्चयमोक्षमार्ग, वह सुवर्ण समान। अपना शुद्धात्मा अपना (शुद्ध) परिणमन करते-करते पूर्ण शुद्ध हो जाता है।

अब सुवर्णपाषाण, यह पाषाण और सुवर्ण के बीच अग्नि लगायी तो सुवर्णपाषाण को व्यवहार कहने में आया। इसी प्रकार राग से भिन्न कर-करके अपना स्वभाव ही अपना काम करता है। परन्तु बीच में यदि राग की मन्दता (अर्थात् राग घटना) घटती जाती है, उसे निमित्त साधनरूप से व्यवहार साधन कहने में आया। **अत्यन्त घटित होती है।** अर्थात् दो का विरोध नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसा व्यवहार हो और निश्चय न हो, ऐसा नहीं है। ऐसे आत्मा के आश्रय से निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र है और उसमें ऐसा व्यवहार का विकल्प है तो निश्चयचारित्र नाश होता है, ऐसा नहीं है। ऊपर की भूमिका की शुद्धि को भले बाधक हो, परन्तु वर्तमान भूमिका को बाधक नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो १६१ गाथा पूरी हुई।

गाथा - १६२

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि।।१६२।।

यश्चरति जानाति पश्यति आत्मानमात्मनानन्यमयम्।
स चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति निश्चितो भवति।।१६२।।

आत्मानश्चारित्रज्ञानदर्शनत्वद्योतनमेतत् ।

यः खल्वात्मानमात्ममयत्वादनन्यमयमात्मना चरति-स्वभावनियतास्तित्वेनानुवर्तते, आत्मना जानाति-स्वपरप्रकाशकत्वेन चेतयते, आत्मना पश्यति-याथातथ्येनावलोकयते, स खल्वात्मैव चारित्रं ज्ञानं दर्शनमिति कर्तृकर्मकरणानामभेदान्निश्चितो भवति । अतश्चारित्र-ज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्वलक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितराम्-पपन्नमिति ।। १६२ ।।

देखे जाने आचरे जो अनन्यमय निज आत्म को।
वे जीव दर्शन-ज्ञान अर चारित्र हैं निश्चयपने।।१६२।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो (आत्मा), [अनन्यमयम् आत्मानम्] अनन्यमय आत्मा को [आत्मना] आत्मा से [चरति] आचरता है, [जानाति] जानता है, [पश्यति] देखता है, [सः] वह (आत्मा ही) [चारित्रं] चारित्र है, [ज्ञानं] ज्ञान है, [दर्शनम्] दर्शन है—[इति] ऐसा [निश्चितः भवति] निश्चित है।

टीका :- यह, आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है।)।

जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को—जो कि आत्ममय होने से अनन्यमय है उसे—आत्मा से आचरता है अर्थात् [१]स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है। (-स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर अनुसरता है), (अनन्मय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है अर्थात् स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है, (अनन्यमय आत्मा

---

१. स्वभावनियत=स्वभाव में अवस्थित; (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव में दृढ़रूप से स्थित। ['स्वभावनियत अस्तित्व की' विशेष स्पष्टता के लिए १४४वीं गाथा की टीका देखो।]

को ही) आत्मा से देखता है अर्थात् यथातथरूप से अवलोकता है, वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है— ऐसा [२]कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण निश्चित है। इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग अत्यन्त घटित होता है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र-ज्ञान-दर्शन होने के कारण आत्मा ही ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में दृढ़रूप से स्थित चारित्र जिसका स्वरूप है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है।)॥१६२॥

गाथा - १६२ पर प्रवचन

जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि।।१६२।।

टीका :- यह, आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है... भगवान आत्मा का चारित्र, चारित्र पहले लिया न? चारित्र मोक्ष का कारण बतलाना है न? **आत्मा के चारित्र-ज्ञान-दर्शनपने का प्रकाशन है (अर्थात् आत्मा ही चारित्र, ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है।)** आत्मा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। विकल्प आदि वह अनात्मा है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है। कितना स्पष्ट करते हैं!

जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को—अपने को। आत्मा अपने को। **जो कि आत्ममय होने से अनन्यमय है, उसे—आत्मा से आचरता है अर्थात् स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है।(-स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर अनुसरता है),...** अपना ज्ञान-दर्शन जो आत्मस्वभाव है, वह आत्मा आत्मा के स्वभाव द्वारा अनुचरता है। वह ज्ञान-दर्शन अनन्यमय है न? आत्मा वस्तु और ज्ञान-दर्शन अनन्यमय, अन्य नहीं, अभिन्न है। ऐसा आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव में आत्मा से आचरता है। अपने

---

२. जब आत्मा, आत्मा को, आत्मा से आचरता है-जानता है-देखता है, तब कर्ता भी आत्मा, कर्म भी आत्मा और करण भी आत्मा है; इस प्रकार वहाँ कर्ता-कर्म-करण की अभिन्नता है।

से अन्दर स्थिर रहता है। **स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है। (स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर अनुसरता है),...** नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण है।

स्वभावनियत=स्वभाव में अवस्थित; (ज्ञानदर्शनरूप) स्वभाव में दृढ़रूप से स्थित। ...ज्ञान, दर्शन की पहिचान किये बिना उसमें स्थिर रहेगा कैसे? समझ में आया?

यह ज्ञान, दर्शनस्वभाव, वह अन्तर्दृष्टि में आये, तब उसमें स्थिर होता है। समझ में आया? जब तक राग पर्याय और अंश पर लक्ष्य में आवे तो स्थिर किसमें होना? आहाहा! हें? आहाहा! यह आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वभाव है, ऐसा जब दृष्टि में आया, तब उसमें स्थिर होता है। उसमें दृढ़ आचरण करता है। आहाहा! समझ में आया? गजब मोक्षमार्ग ऐसा! वह तो निश्चय... निश्चय करे, परन्तु निश्चय के साथ व्यवहार कहा था तो सही। निश्चय यथार्थ है और व्यवहार अयथार्थ, असत्यार्थ है। आता है, होता है। उसका यहाँ ज्ञान तो कराते हैं। समझ में आया?

अपनी कल्पना से मानता है, उसे धक्का लगता है। हाय... हाय..! हम जो करते हैं, उसे तो तुम शून्य कहते हो। तू करता है, उसमें शून्य भी कहाँ यथार्थ है? परन्तु सुन तो सही! वहाँ व्यवहार भी कहाँ है? आहाहा! जहाँ स्व का आश्रय नहीं, वहाँ तो व्यवहार का विकल्प भी व्यवहार कहने के योग्य नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं, भाई! जागकर देखा जहाँ अन्तरात्मा, फिर विकल्प होता है। साथ में होता है। बाद का अर्थ इसके साथ, ऐसा शब्द आता है। इसके पीछे जयसेनाचार्य की टीका में आता है। अनादि का ऐसा शुद्ध है परन्तु पश्चात्, ऐसा। पश्चात् ऐसा शब्द आता है न? पश्चात् का अर्थ उस समय भी वहाँ ही होता है, ऐसा। आहाहा!

'जागकर देखा तो जगत दीखे नहीं, नींद में अटपटे खेल दिखते हैं।' परन्तु उसका वहाँ एकान्त है। स्थिति की खबर नहीं। जागकर देखा, वहाँ तो तीन अर्थ हो गये। एक तो त्रिकाल ज्ञान-दर्शन के स्वभाव के साथ जागकर देखा, वह तो पर्याय हो गयी - अवस्था हो गयी। अवस्था और पर्याय का नाश हुआ - व्यय हो गया। नयी पर्याय की उत्पत्ति हुई और ध्रुव तो कायम रहा। ऐसी चीज़ की तो खबर नहीं और बोले... समझ में आया? जागकर देखा तो, अभी तक जागता नहीं था। अज्ञान था तो ज्ञान, क्या चीज़

थी। अपनी पर्याय में उल्टी दशा थी। वह तो पर्याय हुई, पर्याय तो मानता नहीं। अवस्था-बवस्था, वह तो एक ही रास्ता अद्वैत है। उसमें कहाँ आया? एक ही बात चलती है। जगा कहाँ और अजागृत का नाश कहाँ किया? और पलटाकर नया परिणमन किया, यह रहा कहाँ? ऐसी खोटी बात। लोगों ने ऐसी विपरीतता घुसा रही है न? ऐसी बातें करनेवाले को ठीक पड़े। यह सब अमलदार और अधिकारी बातें करते हैं न? ऐसा है और वैसा है। एक है। एक है। .... व्याख्यान के बाद एक है। एक है। शोर करते हैं। हें? ... कैसे कहलाते हैं वे? वाघाबापा! अब उनकी आज्ञा लेकर आत्मसिद्धि बोले। कैसा? सेठ... सेठ। क्या सेठ का नाम? वीरचन्दभाई! ... आत्मसिद्धि दूसरी बार बोले।

यहाँ तो कहते हैं, **स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है।** ऐसा कहा न? स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा, भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन के सत्ता अस्तित्वरूप से रहा हुआ है। उसमें परिणमकर। यह तो पर्याय हुई। रागरूप परिणमता था, वह अचारित्र था। उसमें तो राग की श्रद्धा, राग का ज्ञान, राग का आचरण था। राग बिना स्वभाव की दृष्टि करके स्वभाव में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहा। वहाँ तो परिणमकर अनुसरता है। **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है...** देखो!

अनन्यमय आत्मा को ही, अनन्यमय ज्ञान-दर्शनरूप आत्मा को ही आत्मा से जानता है। अपने को ही अपने से जानता है। भाई! निश्चय की बात सूक्ष्म पड़े। अरे! यह तो आठ वर्ष की बालिका भी समझ जाये। सम्यग्दर्शन तो मेंढ़क भी करे। ... आत्मा है, वह कहाँ अल्पज्ञ है? आत्मा है, वह तो सामान्य-विशेष, दर्शन-ज्ञान स्वभाववाला है। उसमें निश्चय से दृढ़ होकर, स्थिर रहकर अपने को जानता है। **स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है,...** देखो! अपने को और पर को स्वयं से जानता है, ऐसा कहते हैं।

स्वपरप्रकाशकरूप... पहले ऐसा लिया, कि **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है अर्थात् स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है,...** यह स्व-परप्रकाशक अपनी पर्याय है, उसे जानता है। अपनी पर्याय से स्व-परप्रकाशक को जानता है। वह पर्याय स्व-परप्रकाशक है। आहाहा! समझ में आया? हें? पर्याय जो है, वह स्व-परप्रकाशक प्रगट

हुई। अपने को जानता है। उस स्व-परप्रकाशक सहित आत्मा को जानता है। पर को जानता है, यह प्रश्न यहाँ रहा नहीं।

राग और विकल्प जो है, उसका ज्ञान करे तो ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक अपना हुआ। वह तो अपना हुआ, पर का नहीं। ऐसे स्व-परप्रकाशक ज्ञान को जानता है। आहाहा! पर को नहीं। आहाहा! ध्यान में अनन्यमय आत्मा को ही जानता है। **अर्थात् स्वपरप्रकाशकरूप चेतता है,...** अपने स्व-परप्रकाशक स्वभाव में जागृत होकर एकाग्र होता है। **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है...** लो! जानना-देखना और चारित्र, ऐसा लेना है न? ....ज्ञान-दर्शन के पश्चात् चारित्र। समझ में आया? थोड़ी बात परन्तु यथार्थ, सत्य, दृढ़ होनी चाहिए। समझ में आया? उसके ख्याल में भाव आवे, ऐसी बात। बड़ी-बड़ी बातें... बातें करते हुए भाषण दे परन्तु अन्दर कुछ हो नहीं। समझ में आया? भाषा का शृंगार करे। यहाँ तो भाव का शृंगार है।

भगवान आत्मा! जैसे शरीर शृंगारित शोभा देता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने में अपने प्रकाश से स्व-परप्रकाशक अपने को जानता है और अपने को ही देखता है। समझ में आया? **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है अर्थात् यथातथरूप से अवलोकता है,...** अपने को ही अपने स्व-परप्रकाशक द्वारा अवलोकता है। और अवलोकता-देखता है। **वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है,...** लो! वह अपने को जानता-देखता है, उसमें स्थिर हुआ, वही चारित्र है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! नये अनजाने लोगों को तो ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? ग्रीक-लेटीन जैसा (अटपटा) लगता है। है तो इसके घर का माल परन्तु कभी भी अभी चलता नहीं। अभी तो गप्प-गप्प (चलती है)। आहाहा! समझ में आया? दीक्षित हो जाओ, वस्त्र बदल डालो, महाव्रत ले लो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। दोनों विपरीत मार्ग में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा ही,... कौन सा आत्मा? अपने को स्व-परप्रकाशकरूप से जानता है और अपने को देखता है, वह आत्मा चारित्र है, ऐसा। वह आत्मा चारित्र है। चारित्र की व्याख्या अभी देखो न! सब दीक्षित चारों ओर घूमते हैं। बालब्रह्मचारी दीक्षित हुए।

घाटकोपर (में) मान दिया। अमुक को मान दिया और फिर भाषण करे। हमको मान नहीं, यह तो त्यागमार्ग को तुम मान देते हो। अभी कैसा त्यागमार्ग? धर्म का त्याग है तेरे पास। मान देनेवाले भी बिना भान के और लेनेवाले भी बिना भान के। शोभालालजी! दुनिया तो पागल है, जय-जयकार करे न उसमें क्या? पागल के, बहुत चतुर हो वह पागल उसके गुणगान करे। ओहोहो!

यह बापू! चारित्र तो खांडा की धार है। भाई! ऐसा करके (खोटा मान देते हैं)। चारित्र खांडा की धारा है। बापू! ऐसी जवान उम्र में, बीस-बीस वर्ष की उम्र में बालब्रह्मचारी चारित्र ले! आहा! अभिनन्दन का पात्र है। ऐई! प्रकाशदासजी! ऐसा कहते हैं न, भाई! आहाहा! मिथ्यात्व की दीक्षा लेकर मिथ्यात्व को घूंटते हैं। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा अपने निजस्वभाव का भान करके निजस्वभाव में लीन होता है, उसका नाम चारित्र। वह आत्मा चारित्र है। तेरे पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र नहीं है। समझ में आया?

अब इसमें, आत्मा ज्ञान-दर्शन है, ऐसे कर्ता-कर्म-करण वही है, यह विषय सिद्ध करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७४, गाथा-१६२-१६३, वैशाख कृष्ण ३, रविवार, दिनांक -२४-०५-१९७०

वही ज्ञान और दर्शन है, ऐसा यहाँ समझाया है। यह आत्मा जो है, वह ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप है। वह आत्मा ही चारित्र, आत्मा ही ज्ञान और आत्मा ही दर्शन। फिर से ले लेते हैं। **जो (आत्मा) वास्तव में आत्मा को...** अपना आत्मा अपने को शुद्ध ज्ञान और आनन्द स्वभाव, ऐसा आत्मा अपने आत्मा को, यद्यपि आत्ममय है। अपना स्वभाव और आत्मा तो अनन्यमय है। आत्मा और आत्मा का स्वभाव भिन्न नहीं है।

अनन्यमय है उसे—आत्मा से आचरता है। आत्मा अपने से अपने को अन्तरस्वरूप का आचरण करता है। आहाहा! **अर्थात् स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा अनुवर्तता है। (स्वभावनियत अस्तित्वरूप से परिणमित होकर अनुसरता है),...** १५४ में अर्थ किया है। वहाँ उत्पाद-व्यय और ध्रुव का आया था न? उत्पाद-व्यय और ध्रुव। स्वभाव जो ज्ञान और दर्शनस्वभाव है, वह ध्रुव है। उसके आश्रय से नयी वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, वह स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न (हुई है)। आत्मा ने आत्मा से उत्पन्न की। पूर्व की पर्याय का व्यय हुआ। ध्रुवस्वभाव तो है। तीनों मिलकर अस्तित्व की अस्ति कहा गया है। यह स्वभावनियत अस्तित्व द्वारा, कितनी बात करते हैं?

भगवान! यहाँ तो विकल्प और निमित्त को तो दूर रखा। समझ में आया? उसे परज्ञेय में डाल दिया। अपने ज्ञेय में नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प आदि, वह तो परज्ञेय में है। स्वज्ञेय के स्वभाव में वह है नहीं। स्वभाव अपने स्वभाव से अपने को आचरता है, उसका नाम चारित्र। विकल्प के आश्रय से, निमित्त के आश्रय से आचरता है, ऐसा नहीं। बहुत सूक्ष्म! निरावलम्बी तत्त्व भिन्न है। अपने स्वभाव से अन्तरंग में अपने को अनन्यमय अभिन्न होकर अन्तरस्वरूप में आचरण करता है, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। वह चारित्र आत्मा है। गजब व्याख्या! ....वस्त्ररहित हो जाये, वह स्वरूप में-ध्यान में लीन थे। गप्प-गप्प मारते हैं न? मूढ़ हो जाये मूढ़....

मुमुक्षु : आर्तध्यान में लीन...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार आर्तध्यान? यह उसे ऐसा कि स्वरूप में

है। अभी तो देव-गुरु-शास्त्र क्या? आत्मा किसे कहना, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

एक आत्मा अखण्ड परिपूर्ण अनन्त गुणपर्याय का पिण्ड। सर्वज्ञस्वभावी, सर्व दर्शीस्वभावी ऐसे अनन्त गुणस्वभावी वस्तु, वह चीज़ अपने को अपने में आचरण करना-रमना। वह तो अस्तित्व का लक्ष्य करके रमना। समझ में आया? आत्मा अनन्यमय अपना स्वभाव और आत्मा दोनों एक ही है। उसमें अपने से आचरण करके लीन होना, उसका नाम चारित्र है। वह चारित्र मुक्ति का कारण है। पहले उसे समझ में तो ले। और दूसरा। **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से जानता है...** दूसरी बात। ज्ञान की बात। भगवान आत्मा अनन्यमय आत्मा को आत्मा से जानता है। आत्मा, आत्मा से जानता है। आत्मा, आत्मा से जानता है। स्व-परप्रकाशकरूप से चेतता है। अपने से चेतता है, इसका नाम ज्ञान। भारी सूक्ष्म!

और **(अनन्यमय आत्मा को ही) आत्मा से देखता है...** अपना आत्मा अपने आत्मा को ही अवलोकन करता है—देखता है। आहाहा! **अर्थात् यथातथरूप से अवलोकता है, वह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है,...** ऊपर से तीनों ही। यह आत्मा ही वास्तव में चारित्र है, **ज्ञान है, दर्शन है।** समझ में आया? अर्थात उसमें राग और निमित्त का बिल्कुल अवलम्बन नहीं, ऐसा कहते हैं। अपना निजस्वभाव अपने स्वभाव से अन्तर में अस्तित्व की दृष्टि करके अपने आचरण में रमाता है, वह चारित्र, अपने को जानता है, वह ज्ञान; अपने को अवलोकता है, वह दर्शन। तीनों आत्मा हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कर्ता-कर्म-करण के अभेद के कारण निश्चित है। भगवान अपने स्वभावरूप चारित्र-दर्शन और ज्ञान के कर्ता और कर्म भी अपना स्वरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रगट हुआ वह। और करण भी अपना साधन। तो विकल्प और निमित्त का साधन है तो चारित्र-दर्शन-ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? (नीचे नोट) **जब आत्मा, आत्मा को, आत्मा से आचरता है-जानता है-देखता है, तब कर्ता भी आत्मा, कर्म (कार्य) भी आत्मा और करण (साधन) भी आत्मा है;...** देखो!

पहले भिन्न साध्य-साधन की बात की थी न पहले? यह अकेले अभिन्न साध्य-साधन की बात है। इस भूमिका में रागादि हों, उनका ज्ञान कराने के लिये भिन्न साधन और निर्विकल्प साध्य, ऐसा कहने में आया था। यहाँ उड़ा दिया। निश्चय में ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात! समझ में आया?

कर्ता अपना स्वभाव, तब कर्ता ही अपना आत्मा। किसका? अपनी वीतरागी चारित्र पर्याय का अपने से आचरण किया तो कर्ता आत्मा। यह विकल्प था और चारित्र का आचरण हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी काम! समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग जो आरोप से कहा था, वह था तो यहाँ आत्मा का आचरण हुआ, आत्मा का जानपना हुआ, आत्मा का अवलोकन हुआ, ऐसा है नहीं। कहो, धन्नालालजी! भारी कठिन बातें, भाई! आहाहा! पर की अपेक्षा बिना भगवान आत्मा... देखो! जानना-देखना और चारित्र के आचरण की पर्याय स्वयं से स्वयं कर्ता होकर चारित्र-ज्ञान-दर्शन अपना कार्य, वह आत्मा का कार्य है। और अपना साधन वह अपना आत्मा है। वह कर्ता-कर्म के कार्य का साधन आत्मा है। वह साधन व्यवहार और विकल्प, वह साधन, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह तो उसका ज्ञान व्यवहार का, परज्ञेय का ज्ञान है। परन्तु ज्ञान पर को देखने से नहीं, वह स्वयं को देखने से स्व-परप्रकाशक-ज्ञान-दर्शन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा जो कहा था, वह नहीं। वहाँ तो स्वयं अपने को आचरता है, स्वयं अपने को जानता है, अपने को देखता है। वह स्व-परप्रकाशक पर्याय अपने से जानती-देखती है। पर को जानने-देखने की यहाँ बात नहीं है। व्यवहार को जानने-देखने की यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो महाराज! ऊँची-ऊँची बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची बात ऐसी है आत्मा की। यह बात है, भाई! मार्ग तो यह है। ऊँचा कहो, नीचा कहो, मध्यम कहो, जो कहो वह, बात तो यह है। समझ में आया?

आत्मा, देखो! कार्य निश्चित है। **अभेद के कारण निश्चित है। इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग अत्यन्त घटित होता है...** स्व के आश्रय

से आचरण किया, स्व के आश्रय से जानना किया, स्व के आश्रय से देखना किया। स्व-परप्रकाशक, हों! भाषा देखो! स्व-परप्रकाशक होने पर भी स्व-परप्रकाशक अपने को जानता है। समझ में आया? पर को जानता है, ऐसा नहीं। पर शब्द आया न?

यह स्व-परप्रकाशक पर्याय अपनी अपने से आचरता है। अपने से जानता है और अपने से देखता है। पर को देखना, यह बात यहाँ है नहीं। आहाहा! देखो! अभी तो ग्राह्य होना मुश्किल, यहाँ कहते हैं। आये नहीं। सेठी! ...आहाहा! कल तो रात्रि में साताशीलिया तो कहा था। कहो, समझ में आया? यहाँ अधिकार १५४ में से लिया है। चारित्र, वह अस्तित्व से साक्षात् मोक्ष का कारण है। तो चारित्र मोक्ष का कारण, यह व्याख्या करते-करते यहाँ आये।

चारित्र क्या? अपने ज्ञान-दर्शन स्वभावस्वरूप भगवान अपने को अपने में आचरण करे, वह चारित्र है। अपने को अपने में स्व-परप्रकाशक को जाने, वह ज्ञान और अपने को अपने में अपने को अवलोकन करे, वह दर्शन। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? पर कहाँ है? अपनी पर्याय पर कहाँ है? स्व-पर पर्याय अपनी पर्याय, अपने को देखती है, अपने को जानती है, पर का कहाँ है? स्व-परस्वरूप अपनी पर्याय अपनी है। अपने से स्व-परप्रकाशक उत्पन्न हुई है, पर से नहीं। समझ में आया?

ऐसा धर्म! इसकी अपेक्षा दया पालो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, यात्रा करके मर जाओ। आहाहा! हैरान... हैरान बेचारे! अहो कष्ट, महा कष्ट, लाभ किंचित् दु:ख का लाभ। वह दु:ख कोई आत्मा का लाभ है? कष्ट कर-करके बेचारे मर जाये। कितनी ही उठ-बैठ करके भगवान की वन्दना करे। ऐई! इसने किया है न सब? हें?

मुमुक्षु : सौ खमासणा

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ खमासणा। लो!

मुमुक्षु : सौ में पूरा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ में पूरा होगा अज्ञान।

यहाँ तो कहते हैं कि पर की तो बात भी नहीं। परन्तु अपने में गुणी-गुण का भेद उठता है, उस विकल्प का भी आश्रय नहीं। वहाँ तो अकेला अपना भगवान अपने में से ही अपने को अनन्यमय होकर आचरता है। अपने को ही अनन्यमय स्व-परप्रकाशक को जानता है। तीनों में अनन्यमय रखा है न? तीनों में अनन्यमय रखा है। पाठ में पहला अनन्यमय रखा है, फिर दूसरे में रख दिया। पहले में टीका में ही है। पश्चात् दूसरे में रच दिया। लो! यही है और लागू पड़ता है न? क्या कहा? कि यह आत्मा अपने अस्तित्व में, अस्ति में जो ज्ञान-दर्शन स्वभाव रखता है। यहाँ ज्ञान-दर्शन स्वभाव लिया है न? तो इस स्वभाव से अनन्यमय आत्मा है, अभिन्न है। तो यह आत्मा ही अपने से अपने को अनन्यमय होकर आचरता है। पर के अन्यपने के आश्रय या अवलम्बन का निमित्तपना भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? है ही नहीं। है ही नहीं, फिर प्रश्न क्या? अपने में है, उसे आचरता है। अपने में है, उसे जानता है और अपने में है, उसे देखता है। आहाहा! गजब बात! पण्डितजी! गजब बात! परन्तु ऐसा करा सके? ऐसा न करे तो कौन करे?

वस्तु है न वस्तु! ज्ञान-आनन्द का कन्द प्रभु। महाप्रभु है न? महाअस्तित्व है। बड़ा महाअस्तित्व। क्योंकि साधारण अस्तित्व नहीं। जाननेवाला तो भगवान आत्मा है। कि यह अस्तित्व और इस अस्तित्व का जाननेवाला बड़ा महाअस्तित्व है। आहाहा! वह भी पर्याय अपने को जानती है, वापस ऐसा। पर को जानती है, ऐसा नहीं। आहाहा! पर का जानना और स्व का जानना, ऐसी अपनी निर्मल पर्याय। ऐसा अपने को आत्मा जानता है। आहाहा! यह पर्याय हुई। आचरता है, यह भी पर्याय है, जानता है, वह भी पर्याय है, अपने को अवलोकन करता है, वह भी पर्याय है।

कर्ता-कर्म-करण अभेद हुआ। भगवान आत्मा, वह चारित्र-ज्ञान-दर्शन का कर्ता। ज्ञान-दर्शन-चारित्र, वह अपना कर्म, अपना ही कार्य और करण अर्थात् आत्मा उसका साधन। दूसरा कोई साधन है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस विकल्प को—पंच महाव्रत का साधन कहा था, वह कर्ता नहीं, उसका कार्य नहीं, उस साधन से हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! उसमें विकल्प है ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं। विकल्प है, उसका कर्ता बने, तब तो स्वभाव का अनादर होता है। स्वभाव में

राग का कर्तृत्व है नहीं। क्यों? जब अपनी पूरी चीज़ को विकारी अस्तित्वरूप से स्वीकारे तो राग के विकार का कर्ता हो। समझ में आया?

पूरी चीज़ जो है ज्ञाता-दृष्टा, अनन्त गुण का पिण्ड स्वभाव उसे ही, जो शुद्ध है, उसे अशुद्ध स्वीकार करे तो राग का कर्ता होता है। समझ में आया? जब पूरा आत्मा ही अपना स्वभाव शुद्ध, शुद्ध पवित्र धाम, उसका जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ तो चारित्र, दर्शन और ज्ञान अपनी पर्याय में हुए, वह अपना कार्य हुआ। राग का कर्ता या राग का कार्य उसमें है नहीं। पहले तो बात समझना मुश्किल है। इस प्रकार यह मार्ग चलाया है न? अभी तो कुछ भ्रमणा खड़ी करते हैं। समझ में आया? वस्तु है या नहीं? और वस्तु में कर्ता-कर्म-करण आदि शक्तियाँ हैं या नहीं? कर्ता-कर्म-करण-सम्प्रदान-अपादान-अधिकरण छह गुण आत्मा में है। जैसे ज्ञान-दर्शन और आनन्द गुण है, वैसे कर्ता-कर्म-करण-सम्प्रदान / रखना, अपने से हो और अपने आधार से है, ऐसी तो अन्दर शक्तियाँ और गुण आत्मा में हैं। आहाहा! परिपूर्ण गुण है। समझ में आया?

ऐसा भगवान (है), आत्मा विकल्प तो आत्मा है ही नहीं। निमित्त तो अभी परवस्तु है। समझ में आया? ओहोहो! क्या बात करते हैं न? स्व-परप्रकाशक स्वयं अपने को जानता है। स्व-परप्रकाशक पर्याय स्वयं अपने को जानती है, पर को नहीं। पर आया (परन्तु) पर को नहीं। वह स्व-परप्रकाशक है? स्व-परप्रकाशकरूप से स्थिरता है। उस पररूप का अर्थ पर नहीं। अपनी पर्याय में स्व-परप्रकाशक अपने से उत्पन्न हुआ, उसे जानता है। आहाहा! कठिन काम! साधारण समाज के लिये यह होगा? अरे भगवान आत्मा है न, प्रभु! समाज अर्थात् क्या? भगवान आत्मा बाल-गोपाल शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न, विकार से-विकल्प से भिन्न। ऐसे सब आत्मायें हैं न, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर से आत्मा बिल्कुल भिन्न है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल भिन्न और अत्यन्त भिन्न, विकल्प से अत्यन्त भिन्न। विकल्प और शरीर में आत्मा की पूर्ण नास्ति तथा विकल्प और शरीर की आत्मा में पूर्ण नास्ति। आहाहा! वह रात्रि में प्रश्न हुआ नहीं? उसने कहा था। आत्मा अँगुली हिलाता

है। यह नानालालजी है न एक अभी? स्थानवासी साधु। यहाँ का पढ़ा है, हों! उसमें दिया है। मुम्बईवाले जुगराजजी हैं न? उन्हें यहाँ से हम पुस्तकें दी हैं। पढ़ी है परन्तु पढ़कर कोई ऐसा कहता था कि जुगराजजी साथ में आते हैं। जुगराजजी साथ में नहीं रहते ऊपर? जवान व्यक्ति आता है। जुगराजजी साथ में जवान व्यक्ति आता है। उसकी श्रद्धा बदल गयी, नानालाल को पुस्तक दिया। परन्तु वह कहता है, भाई! हम तो व्यवहार में रहे हुए हैं। अरे भगवान! आहा! क्या करना है तुझे? व्यवहार में हो तो व्यवहार की व्याख्या क्या? यह विकल्प करना और पर को दीक्षा देना, वह सब व्यवहार? कौन करे विकल्प? कौन किसे दीक्षा दे? आहाहा! कौन किसे समझावे? कौन किसे रखे?

भगवान आत्मा निज सम्पदा पूर्ण गुण से-अनन्त गुण से निज सम्पदा से अनन्यमय आत्मा है। उससे काम लेकर अपना चारित्र, अपना ज्ञान और अपनी (श्रद्धा)। यहाँ तो आचरण को तजकर भी स्व-पर ज्ञान की पर्याय भी अपनी कर्ता होती हुई अपने को जानती है। पर का ज्ञान वह अपना ज्ञान है, वह अपने को जानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहले लिया न? **स्व-परप्रकाशकरूप से चेतता है।** अनन्यमय से चेतता है। इस अन्य का लक्ष्य करके चेतता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! पहली चीज़ ही क्या है, यह समझने में या ज्ञान में आवे नहीं तो रुचि कहाँ से हो और आचरण कहाँ से हो? भाई! यह तो जन्म-मरण जिसे छोड़ना है, जो इसमें नहीं। जन्म-मरण नहीं और जन्म-मरण का कारण, वह भी वस्तु में नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव को आचरता है, शुद्ध स्व-परप्रकाश से अपने को जानता है, अपने शुद्धस्वरूप को अवलोकता है।

इससे (ऐसा निश्चित हुआ कि) चारित्र-ज्ञान-दर्शनरूप होने के कारण आत्मा को जीवस्वभावनियत चारित्र जिसका लक्षण है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग अत्यन्त घटित होता है... इस प्रकार सच्चा मोक्षमार्ग अत्यन्त बराबर घटित होता है। **अर्थात् आत्मा ही चारित्र-ज्ञान-दर्शन होने के कारण आत्मा ही ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में...** आत्मा ही, है न! ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में, ऐसा। यह उसका स्वभाव। जानना-देखना,

शक्ति, स्वभाव, गुण। वह अपना आत्मा जानना-देखना निजस्वभाव सत्व, ऐसे उसके ज्ञानरूप **जीवस्वभाव में दृढ़रूप से स्थित...** उसमें लीन होता है, वह **चारित्र जिसका स्वरूप है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है।** लो! आहाहा!

यह चौथे काल की बात होगी? आठवें गुणस्थान की बात होगी यह? यह तो पंचम काल के भी चारित्र हो निश्चय सातवें गुणस्थान में (तो) ऐसी दशा होती है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। आहाहा! यह तो करते-करते व्यवहार लिया और निश्चय हाथ में, यह बात नहीं यहाँ। आहाहा! ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है। यही सच्चा मोक्ष का मार्ग है। ओहो! जन्म-मरण में से निकलने का, स्व के आश्रय से चारित्र-ज्ञान-दर्शन हो, वही निकलने का उपाय है। क्योंकि जन्म-मरण और जन्म का कारण सब तो पराश्रित भाव है। समझ में आया? वाद-विवाद करे तो इसमें कुछ पार-पता नहीं लगता। (वापस लोग ऐसा कहे) यहाँ ऐसा कहा है, दूसरी जगह साधन कहा है, तीसरी जगह उसे कारण कहा है, हेतु कहा है। अरे भाई! इस बात का निषेध करके दूसरी जगह हेतु कहा हो। वह तो उस समय ऐसे विकल्प की कषाय की मन्दता व्यवहार से अनुकूलता, वहाँ देखकर स्वभाव का आरोप उसमें देकर व्यवहारमोक्षमार्ग साधन, ऐसा कहा है। इसमें बड़े झगड़े! ऐसा (लोग) कहते हैं कि व्यवहार से बिल्कुल नहीं मानते (यह तो) एकान्त है। ऐई! पण्डितजी!

भगवान! तुझे भी यह स्वीकार करना पड़ेगा। भाई! आहाहा! ऐई... चौरासी के अवतार में दुःखी.. दुःखी.. दुःखी। यह रात्रि में प्रश्न हुआ था न, नहीं? नरक में दुःख और स्वर्ग में सुख। धूल में भी सुख नहीं। वहाँ होली है। अंगारे कषाय की अग्नि से देव सुलगते हैं। आहाहा! अकषाय स्वरूप भगवान आत्मा में से विकल्प उठावे, तब संसार के स्वर्ग के सुख, ऐसा माने। वह तो दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

एक बार हमारे कहते थे, वहाँ बोटाद। रामजीभाई थे नहीं? वह नागलपुरवाला, नागलपुरवाला केशवलाल। यह हड्डियों का। अरे महाराज! एक बार इसे स्वर्ग के सुख तो भोगने दो? यह हमारे सम्प्रदाय के सब पक्के लोग। अकेला नहीं? उसके पिता थे हड्डियों के डॉक्टर। हड्डियों के वैद्य थे। हड्डी वैद्य। चलावे, वे वहाँ म्युनिसिपलटी

के मकान में। उन्हें तुम उड़ाते हो पुण्य को परन्तु शुभभाव होगा तो स्वर्ग के सुख मिलेंगे। फिर करते-करते मोक्ष होगा। अरे! कुकर्म करता है न? धूल में भी तुझे सुख नहीं, प्रभु! वह आत्मा के आनन्द को लूटनेवाला भाव है। आहाहा!

यह कहीं कहेंगे, हों! यहाँ है। अब यही आयेगा। देखो! १६३ गाथा। वास्तव में सुख का कारण। यही आता है। आहाहा! भाई! तू आनन्द के स्वभाव से भरपूर खजाना-भण्डार है। आहाहा! इसे विश्वास नहीं आता। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर पदार्थ मैं हूँ। मेरा आनन्द कहीं नहीं है। यह पंच महाव्रत के विकल्प में भी दुःख है, आनन्द नहीं। समझ में आया?

जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी दुःखरूप है। राग है न? आहाहा! दुःख से तीर्थंकरगोत्र बँधता है? बँधता है, वह तो परमाणु की प्रकृति है। यह तो निमित्त राग है, आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? मूल अपनी चीज़ की महत्वता क्या है और उसमें क्या चीज़ है, क्या शक्ति है, क्या गुण है? कभी लक्ष्य किया नहीं और स्वसन्मुख का उपाय सुना नहीं। समझ में आया?

यह सब बाहर की बातें हैं। व्यवहार आवे वहाँ (कहे) देखो! व्यवहार को साधन न माने तो एकान्तिक है।

मुमुक्षु : व्यवहार को साधन माने तो कुछ तो साधन मानना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार साधन, भाई! नहीं है, उसे साधन कहा।

देखो न! यहाँ तो कहा, **आत्मा ही ज्ञानदर्शनरूप जीवस्वभाव में दृढ़रूप से रहा हुआ चारित्र जिसका स्वरूप है, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग है।** यह ५४ में से लिया है। सच्चा मोक्षमार्ग तो यह एक ही है। समझ में आया? बिजली का करंट लगे। हें? उसको करंट लगा तो सली से चिपट गया। उसके लोहे का सरिया होता है न? लटका रहा। उस समय जरा हुआ आह। समझ में आया? .... इसी प्रकार भगवान अन्दर इतना अधिक ऊँचा है। धर्म की बड़ी शाला है-धर्मशाला है। यह तो धर्मशाला, उसमें सब धर्म रहे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया?

गाथा - १६३

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति ।
इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ।।१६३।।

सर्वस्यात्मान: संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोऽयम् ।

इह दि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यम् । आत्मनो हि दृशि-ज्ञप्ती स्वभाव: । तयोर्विषयप्रतिबन्ध: प्रातिकूल्यम् । मोक्षे खल्वात्मन: सर्वं विजानत: पश्यतश्च तदभाव: । ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति । इत्येतद्भव्य एव भावतो विजानाति, तत: स एव मोक्षमार्गार्ह: । नैतदभव्य: श्रद्धत्ते, तत: स मोक्षमार्गानर्ह एवेति । अत: कतिपये एव संसारिणो मोक्षमार्गार्हा, न सर्व एवेति ।। १६३ ।।

जाने-देखे सर्व जिससे हो सुखानुभव उसी से।
यह जानता है भव्य ही श्रद्धा करे ना अभव्य जिय।।१६३।।

अन्वयार्थ :- [येन] जिससे (आत्मा मुक्त होने पर), [सर्वं विजानाति] सर्व को जानता है और [पश्यति] देखता है, [तेन] उससे, [सः] वह, [सौख्यम् अनुभवति] सौख्य का अनुभव करता है;—[इति तद्] ऐसा [भव्यः जानाति] भव्य जीव जानता है, [अभव्यसत्त्वः न श्रद्धत्ते] अभव्य जीव श्रद्धा नहीं करता।

टीका :- यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है।

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की [1]प्रतिकूलता का अभाव है। आत्मा का 'स्वभाव' वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनों को [2]विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता

---

१. प्रतिकूलता=विरुद्धता; विपरीतता; उलटापन।
२. विषयप्रतिबन्ध=विषय में रुकावट अर्थात् मर्यादितपना। (दर्शन और ज्ञान के विषय में मर्यादितपना होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है।)

होने से उसका अभाव होता है (अर्थात् मोक्ष में स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव होता है)। इसलिए [१]उसका अभाव जिसका कारण है, ऐसे [२]अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।—इस प्रकार भव्य जीव ही [३]भाव से जानता है, इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है; अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता, इसलिए वह मोक्षमार्ग के अयोग्य ही है।

इससे (ऐसा कहा कि) कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं, सर्व नहीं ॥१६३॥

गाथा - १६३ पर प्रवचन

जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ अभवियसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

देखो! सुख पर दूसरी व्याख्या हो! अब। आहाहा!

टीका :- यह, सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के योग्य होने का निराकरण (निषेध) है। समस्त प्राणी मोक्ष के योग्य हों, ऐसा है नहीं। आहाहा! सर्व संसारी आत्मा मोक्षमार्ग के हों तो मोक्षमार्ग तो आनन्दरूप है और उसका फल मोक्ष भी आनन्दरूप है। उसके योग्य होने का निराकरण है।

वास्तव में,... वास्तव में, ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य की टीका! गजब टीका! थोड़े में कितना समावेश कर देते हैं। **वास्तव में सौख्य का कारण...** आनन्द का कारण। अपना भगवान आत्मा आनन्द-अतीन्द्रिय स्वरूप आनन्द है। उस आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। अपना जो आनन्दस्वभाव, उस आनन्दस्वभाव का कारण स्वभाव से विपरीत रागादि प्रतिकूलता का अभाव। स्वभाव से विपरीत दु:खादि

---

१. पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।
२. पारमार्थिक सुख का लक्षण अथवा स्वरूप अनाकुलता है।
३. श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में कहा है कि 'उस अनन्त सुख को भव्य जीव जानते हैं, उपादेयरूप से श्रद्धते हैं और अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं।'

भावों का अभाव। आहाहा! व्यवहारादि भाव, वे दु:खरूप हैं - ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वभाव से प्रतिकूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (स्वभाव से) प्रतिकूल है। वहाँ अटकता है, रुकता है। अटक जाता है। व्यवहार में रुक जाता है, वहाँ दु:ख है। यह लौकिक व्यवहार की बात नहीं, हों! यह व्यवहाररत्नत्रय जिसे साधन कहा था, उसमें रुके तो दु:ख है। आहाहा! समझ में आया?

वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता... विरुद्धता, विपरीतता, **उसका अभाव है।** स्वभाव आनन्दस्वरूप भगवान, उसका कारण स्वभाव से विरुद्ध रागादि विकल्प दु:खरूप का अभाव। यहाँ तो देखो भाई! व्यवहार को साधन कहा था न? उस व्यवहार का अभाव करके निश्चय, ऐसा बतलाना है, भाई! आहाहा! हाँ। जो व्यवहार निमित्तरूप साधन कहा था, वह साधन दु:खरूप है। तो वास्तव में आत्मा के आनन्द का कारण उसके स्वभाव से विरुद्ध विकल्प जो दु:खरूप है, उसका अभाव वह स्वभाव का कारण है। यह रागादि स्वभाव का कारण है नहीं। आहाहा! गजब बात है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का रसिया आत्मा है। समझ में आया? उस अतीन्द्रिय आनन्द का कारण कौन? अतीन्द्रिय आनन्द से विरुद्ध विकल्प जो दु:खरूप है, उसका अभाव उसका कारण है। समझ में आया? क्या नाम? हरदारजी! हें? हरदासजी। भाई प्रकाश को पूछा था तेरे दादा का नाम क्या है? तो कहे हरदारजी! समझ में आया? आहाहा! यह भगवान आत्मा है न? बाल-गोपाल में आत्मा रहा हुआ है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐई! दिलीप! ऐ रामजीभाई! यह तुम्हारा लड़का कहता था। मेरा जहाँ आनन्द है, वहाँ खोजे नहीं और खाली खाबोचिया (खड्डा) में खोजता है। खाली खाबोचिया समझे? खड्डा, खाली खड्डा। उसमें पानी खोजता है। उसमें रहता नहीं।

इसी प्रकार आत्मा में आनन्द है, परन्तु जहाँ विकल्प उठता है, तो खाली है। उसमें आनन्द है नहीं। वहाँ खोजता है। यहाँ से मिलेगा, धूल में से मिलेगा, लक्ष्मी में

मिलेगा, शरीर की वासना-भोग में मिलेगा। धूल भी नहीं है वहाँ। सुन तो सही! आहाहा!

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय आत्मा के आनन्द के लिये खाली-खाली कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाली खड्डा है। हमारे दिलीप को भी यह बात हुई। कहो, समझ में आया? खाली खाबोचिया अपनी काठियावाड़ी भाषा है न? देशी, घरेलू। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःख है। समझ में आया? गजब पंचास्तिकाय भी, कथन पद्धति तो देखो! ओहोहो! ऐसा कथन और ऐसा उपदेश वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं हो नहीं सकता। नग्न होकर स्वरूप में ऐसे... फिर ऐसे वस्त्र पहन लिये, धूल में भी मुनि हो गया अन्दर... हें? तुम्हारे मकनभाई भी निर्वस्त्र हो गये थे। (संवत्) १९९५ के वर्ष में। वे वस्त्र बिना के गुणगान बहुत होते हैं न? निर्वस्त्र में मुनिपना। घर से वस्त्र छुड़ाकर रात्रि में आये! मैंने कहा यह कौन? अन्धेरे में। मैंने कहा, ऐसा नहीं होता। वस्त्र... ऐसे नहीं होता। यह मकनभाई, लो! सुमनभाई! (संवत्) १९९५ में। वहाँ राजकोट चातुर्मास था न? वस्त्र त्यागना क्या? अन्दर विकल्प की वृत्ति दुःखरूप है, (उसका) ऐसे स्वभाव का आश्रय करके नाश हो जाये, उसका नाम नग्नपना है। बाहर का नग्नपना क्या है? धूल में तो सब नग्न ही है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, वास्तव में, '**स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यम्**' स्वभाव प्राप्ति का अभाव, वहाँ दुःख। उसका हेतु अभाव। उस स्वभाव से विरुद्ध भाव का अभाव। वह सुख का कारण, आहाहा! पन्थ की रीति क्या है? पन्थ की-मार्ग की स्थिति क्या है? यह खबर नहीं और धर्म हो जाये और धर्म करते हैं! यह अनादि का गँवाया है। समझ में आया? ऐसा का ऐसा संसार अनादि (से चलता आता है)। भगवान आचार्य कहते हैं। ओहो! वास्तव में आनन्द का कारण जो स्वभाव उससे प्रतिकूलता का विकल्प जो है, उसका अभाव। यहाँ तो विकल्प उठता है, उसका अभाव वह सुख का कारण है। वह विकल्प सुख का कारण-साधन कहा था न? ऐसा करके कहा परन्तु... निश्चय में उसे उड़ा दिया। समझ में आया?

यह देह की क्रिया तो मिट्टी-जड़ की है। यह तो अजीव है। वह तो है ही नहीं

परन्तु उसमें जो विकल्प उठता है, जिसे हम साधन कहते थे। व्यवहार साधन आरोपित साधन, उपचार से साधन। वह भी स्वभाव से विरुद्ध-विपरीत है। और उसका अभाव साधन है। भाव साधन कहा था, वह तो आरोप से कहा था, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो सब ऊँची कोटि की बातें, उच्च कोटि की बात है। अरे भगवान! तेरे सुख की, पहली श्रेणी सम्यग्दर्शन की बात है। आहाहा! क्या करे? कहते हैं। प्रतिकूलता का अभाव। किसकी प्रतिकूलता? स्वभाव की। प्रतिकूलता का अभाव क्या? आनन्द का कारण।

अतीन्द्रिय आनन्द का कारण अतीन्द्रिय आनन्द से विरुद्ध जो विकल्प है। व्यवहाररत्नत्रय कहा था वह। उसका अभाव, वह अतीन्द्रिय सुख का कारण है। वह राग कारण कहा था, वह उपचार से कहा था। वास्तविक कारण है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ तो रखो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रखते हैं न? कुछ तो रखते हैं न! दुःख के कारण में उसे रखते हैं। आहाहा! मुनि दिगम्बर सन्त नागा बादशाह से आघा। दुनिया की जिन्हें पड़ी नहीं। दुनिया को सन्त जँचेंगे या नहीं? ऐसे उपदेश से दुनिया को बराबर बैठेगा या नहीं? और विरोध हो जायेगा या नहीं? ....मार्ग यह है, भाई!

भगवान आत्मा अपने में जो अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव है, उस स्वभाव की प्राप्ति का कारण स्वभाव से विरुद्ध जो विकल्प है, उसका अभाव स्वभाव का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा कोई कारण है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कारण है नहीं।

आत्मा का... अब स्वभाव, देखो! यह लिया था न १५४ में, वह वापस लेंगे। ५४ में लिया था—सामान्य दर्शन और विशेष ज्ञान, यह आत्मा का स्वभाव है। दोनों होकर एक अभेदरूप आचरण करते हैं। दो भाग नहीं करते। यह पहले आया था न?

यहाँ तो आत्मा का स्वभाव पहले ऐसा कहा कि आत्मा **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** अब स्वभाव कौन? वह स्वभाव वास्तव

में दृशि-ज्ञप्ति—दर्शन-ज्ञान है। भगवान आत्मा... जैसे शक्कर का स्वभाव मिठास और सफेदाई। शक्कर का स्वभाव मिठास, मिठास ही कहते हैं न? (और) सफेदाई। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव आत्मा के आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। तो वह स्वभाव कौन? स्वभाव! जानना-देखना, वह स्वभाव। समझ में आया?

भगवान स्वभाववान, उसका स्वभाव जानना-देखना स्वभाव। अस्तित्व सत्ता। स्वरूप में जानना-देखना। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** प्रतिकूलता की व्याख्या की। **उन दोनों को...** दोनों कौन? ज्ञान और दर्शन स्वभाव। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना...** विषय में रूकावट, मर्यादितपना। दर्शन-ज्ञान के विषय में मर्यादित होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है। देखो! यह अल्प ज्ञान और अल्प देखना, यह प्रतिकूलता! आहाहा! समझ में आया?

राग को तो लिया भी नहीं। जो स्वभाव की प्रतिकूलता (अर्थात्) जानना-देखना कहीं रुक जाता है, वह स्वभाव की प्रतिकूलता। मर्यादित ज्ञान, जानना और देखना मर्यादित होता है, वह अमर्यादित जानने-देखने का विरुद्ध भाव है। आहाहा! समझ में आया? धीरे से होता है। धीरे-धीरे विचार करे तो इसे अवकाश भी रहे। हें? आहाहा! न्याय से जरा विचार करे तो ख्याल में भी आ जाये। यह तो समझने की चीज़ है। यह कोई विद्वत्ता की चीज़ नहीं। समझ में आया?

उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। विषय में रुकावट अर्थात् मर्यादितपना। (दर्शन और ज्ञान के विषय में मर्यादितपना होना, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है।) आहाहा! यहाँ तो राग को भी प्रतिकूलता में लिया नहीं। वह तो कहीं निकाल डाला। परन्तु राग को जानने-देखने की जो अल्प मर्यादित पर्याय है, वह राग को जाने, राग को जाने। समझ में आया? ऐसा मर्यादित जो अल्प ज्ञान-दर्शन है, वही विषयप्रतिबन्ध होना, वह है। अपना विषय तो पूर्ण देखना, वह है। पूर्ण जानना, पूर्ण देखना है। जिसका स्वभाव जानना-देखना, वह तो स्वभाव से पूर्ण जाने-देखे। समझ में आया?

द्रव्य, स्वभाववान और स्वभाव, दर्शन-ज्ञान, वह तो पूर्ण है न, पूर्ण। स्वभाव पूर्ण

है तो वह पूर्ण जाने-देखे, ऐसी उसकी पूर्ण पर्याय होना चाहिए। ऐसी पूर्ण पर्याय जानने-देखने की नहीं होती और राग को ही जाने तथा निमित्त को ही जाने, इतनी ही ज्ञान की मर्यादा, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है। आहाहा! गजब शैली है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार राग आता है न? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान कहा था न? राग को जानता है न? कि यह राग व्यवहार में है। परन्तु राग को जाने, वहाँ पूरा ज्ञान कहाँ है? राग है न व्यवहार। साधक को राग आता है न? तो राग को जानना, ऐसा कहा। ज्ञानी राग को जानता है। परन्तु वह राग को जानने की पर्याय मर्यादित-हीन-अल्प है।

मुमुक्षु : जिसे राग हो उसे पूरा ज्ञान नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। यह बात की है, हों! ओहोहो!

यहाँ तो भगवान आत्मा, सुख के कारणरूप स्वभाव, उसका विरुद्धभाव, उसका अभाव वह सुख का कारण है। तब कहते हैं कि स्वभाव कौन? वस्तु है स्वभाव जानना-देखना। वह वस्तु परिपूर्ण है, जानना-देखना परिपूर्ण है। तो उसका जानना-देखना परिपूर्ण पर्याय में आना चाहिए। ऐसा न होने से ज्ञान की, दर्शन की पर्याय अल्पज्ञ मर्यादित हुई है पर्याय में। वह पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति में अभावरूप उसका कारण। प्रतिकूलता, वह भाव है। उसका अभाव कारण है। आहाहा!

फिर से, फिर से। यहाँ तो कहते हैं कि सर्वज्ञस्वभाव प्रगट हो, उसमें अल्पज्ञ की पर्याय मर्यादित है, वह विघ्न अभाव है। उसका अभाव कारण होता है। जो भाव है, वह विषय में रूकावट हो गयी। अल्पज्ञान की पर्याय जानने में आती है, वह तो रुक गयी। पर्याय पूर्ण हुई नहीं, वह पर्याय तो रुक गयी। तो पर्याय रुक गयी, वह मर्यादित पर्याय है, वह जीव के ज्ञान-दर्शन के विषय में प्रतिबन्ध है। समझ में आया? आहाहा! वीरजीभाई! ऐसी बात कहाँ है? वे कहें, ईश्वर को भजो, भगवान को भजो या हमको भजो। तीर्थंकर कहते हैं,... वहाँ लोग ऐसा कहे। भगवान की भक्ति करो, भगवान... शिवपद हमको देना रे महाराज! यहाँ कहते हैं भगवान! शिवपद तो तुझमें है। हें?

मुमुक्षु : थोड़ा सा यह समझ मे आये ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसके पास शिवपद है, वहाँ तो आता नहीं। जहाँ तेरा शिवपद है, वह वहाँ तू जाता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि जानना-देखना जो इसका स्वभाव है, वह परिपूर्ण होना चाहिए। इस कारण में सुख का कारण स्वभाव, उसकी प्रतिकूलता का अभाव सुख का कारण। तो प्रतिकूलता क्या? जानने-देखने की प्रतिबन्धता रुकावट है, वह प्रतिबन्ध है। वह विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ का उपदेश अल्पज्ञता और राग का अभाव करके सर्वज्ञता और वीतरागता प्रगट करना, वह उनका उपदेश है। समझ में आया? आहाहा! राग का तो अभाव, यह तो भाई! परन्तु तू राग को जानने की मर्यादित पर्याय, उसका भी अभाव। यह वस्तु ऐसी है न!

सर्वज्ञ भगवान सर्वज्ञ और वीतराग कैसे हुए? राग का अभाव और अल्पज्ञता का अभाव करके सर्वज्ञ और वीतराग हुए। समझ में आया? **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से...** देखो! आया सर्व को, वह अल्पज्ञ थोड़ा जानना-देखना है न, वह प्रतिबन्ध है, प्रतिकूलता है। **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है...** मोक्ष में, अल्पज्ञ जानने-देखने की जो प्रतिकूलता थी, उसका अभाव होता है। मोक्ष में परिपूर्ण सुख है। उस सुख का कारण अल्पज्ञ और अल्प दर्शन का अभाव, वह सुख का कारण हुआ। अरे! यह वह किस प्रकार की बात करते हैं? समझ में आया?

दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता... (है) **होने से उसका अभाव होता है...** आहाहा! उसके यह दु:ख की बात, हों! अभव्य यह बात मानता नहीं, ऐसा कहते हैं।

क्योंकि ज्ञानस्वरूप, दर्शनस्वरूप परिपूर्ण होना चाहिए। और परिपूर्ण आनन्द प्रगट होता है, यह बात अभव्य मान नहीं सकता। आहाहा! अभव्य की भाँति मिथ्यादृष्टि भी मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को**

जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है... किसका? जो दोनों को विषय प्रतिबन्ध जो प्रतिकूलता है, उसका अभाव होता है। आहाहा! राग का तो अभाव होता है। परन्तु अल्पज्ञ पर्याय और अल्पदर्शी पर्याय का अभाव होता है, तब सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है। मोक्ष होता है। समझ में आया?

सोने में जैसे मैल होता है न, मैल, उसका तो अभाव करके सोना होता है। परन्तु सोने में जैसे पहले तेरहवान, चौदहवान, पन्द्रहवान था, उसका अभाव करके सोलहवान होता है। समझ में आया? आहाहा! गजब, यह पठन कोई अलग प्रकार का। हें? आहाहा! स्वभाव का जो भक्त हुआ, वह भगवान हुए बिना नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। स्वभाव जिसका जानना-देखना, शक्ति कहो, स्वभाव कहो, गुण कहो, सत् का सत्व कहो, द्रव्य का भाव कहो। यह जानना-देखना जो भगवान आत्मा चिद्घन है, उसमें तो पूर्ण जानना-देखना हो, उसका नाम मोक्ष है। पूर्ण जाननेवाला मोक्ष में विघ्न करनेवाला कौन? कि अल्पज्ञ मर्यादित जानना-देखना, उसका अभाव हो तो मोक्ष होता है। यह रुकावट ही मोक्ष को रोकती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तराय कर्म का क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तराय-बन्तराय उसके घर रह गया। अन्तराय कर्म भगवान के घर में आता ही नहीं। आत्मा को कर्म का अंश स्पर्श ही नहीं करता। और आत्मा कर्म के उदय को स्पर्श ही नहीं करता। यह तो अल्पज्ञ को स्पर्शता है, वह प्रतिकूलता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! पण्डितजी! यह लोगों को ऐसा तत्त्व! आहाहा! मीठा महेरामण उछलते हैं। समझ में आया? ऐसा भगवान गहरे तक। हें? आहाहा! यह समझना और यह करना। दूसरा क्या करना है?

कहते हैं, आत्मा का सुख, वह स्वभाव। सुख, अब स्वभाव ज्ञान-दर्शन। तो ज्ञान-दर्शन का परिपूर्ण जानना-देखना हो, वहाँ सुख पूर्ण है। समझ में आया? परन्तु जानने-देखने का स्वभाव अल्पज्ञ है, वहाँ पूर्ण सुख नहीं है। पूर्ण ज्ञान-दर्शन, पूर्ण तो सुख है नहीं। तो पूर्ण सुख का अभाव, सुख का अभाव क्यों वर्तता है? ज्ञान-दर्शन की पर्याय में रुकावट है, इसलिए सुख का अभाव वर्तता है। यह उसका अभाव हो तो सुख

का भाव होता है। समझ में आया? ...भाई! ऐसा मार्ग! अब ऐसा तो वहाँ कोलकाता में सुनने को भी मिले नहीं। फिर बापूजी वहाँ जो-जो दीये रखे। बाहर की होली! आहाहा! सेठिया को क्या हो? सेठिया को सामने बैठावे। पैसा देकर जाये न दुकान में जहाँ जाना हो वहाँ? लो! ....कर्ता-हर्ता तो यह है। जादवजीभाई!

यह चीज़ भगवान के घर की क्या चीज़ है, यह खबर नहीं। तेरे घर में तो पूर्ण दर्शन जानना-देखना शक्ति पूर्ण पड़ी है। उसका पर्याय में जो अपूर्ण जानना-देखना रहता है, उस सुख के स्वभाव का अभाव, उसका अभाव हो तो स्वभाव प्रगट होता है। तो आनन्द होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है,...** क्या?

जो अल्प जानने-देखने का अभाव, वह मोक्ष की पूर्ण पर्याय का कारण है और सुख स्वभाव का वह कारण है। **इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है,...** वह कहा था न? **पारमार्थिक सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** वास्तव में सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। वह प्रतिकूलता यह अल्पज्ञ और अल्पदर्शीपना, यह प्रतिकूलता। इसका अभाव वह सुख का कारण है। अर्थात् मोक्ष का कारण है।

ऐसे अनाकुल लक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है। आहाहा! गजब न्याय होता है पूर्ण, पूरा! तो यह बैठे या नहीं? पूर्ण सुख की बात करते हैं। समझ में आया? फिर स्पष्टीकरण करेंगे। यहाँ कहते हैं **अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।** यह मोक्ष को अनुभूति अनन्त आनन्द की है। यह और कहाँ? आत्मा को और अनुभव? तब तो दो हो गये। वेदान्तवाले ऐसा कहते हैं दो, अनुभव करता है, यह और क्या? अरे! सुन तो सही। समझ में आया?

आत्मा भगवान अपने मोक्ष के आनन्द में अनुभूति, परमार्थ सुख की अनुभूति। कैसा परमार्थ सुख? अनाकुलतालक्षणवाला, आकुलता का अभाव-अनाकुल। मोक्ष में अचलित अनुभूति। चलित न हो, ऐसी अनुभूति मोक्ष में सिद्ध को है। वह सुख की अनुभूति चलित नहीं, ऐसी आनन्द की अनुभूति सिद्ध को है। आहाहा! ऐई दिलीप!

सिद्ध अकेले क्या करते होंगे ? आनन्द में। इसके पिता ने पूछा था। महाराज कहते हैं कि साधु अकेले जंगल में रहते हैं... आनन्द है उन्हें तो। सिद्ध अकेले कैसे रहते हैं ? उन्हें नहीं सुहाता होगा। सिद्ध अनन्त आनन्द में है। तुम्हारे तुम्हें खलबल सुहाती है। ऐई जादवजीभाई !

यहाँ तो अल्पा और अल्पदर्शीपना भी प्रतिकूलता है। आहाहा ! कौन कर सके ? जिसका स्वभाव जानना-देखना। स्वभाव जहाँ ऐसा सामर्थ्यपूर्ण है। पर्याय में अल्पज्ञान है, तब तो सर्वज्ञ के स्वभाव से विरोधीभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! **इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** इसका स्पष्टीकरण आयेगा। यह भव्य जीव, ऐसा भव्य जीव 'ही' अनुभव के भाव से जानता है। अभव्य नहीं जानता। अरे ! सर्व संसारी प्राणी सुख के-मोक्ष के लिये योग्य हैं नहीं। इसकी विशेष बात आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-७५, गाथा-१६३-१६४, वैशाख कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक -२६-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, १६३ गाथा।

इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है,... यहाँ तक। अन्तिम दो लाईनें हैं। क्या कहा? देखो! **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** यहाँ से शुरु हुआ है। वास्तव में आत्मा का आनन्द स्वभाव, उसका कारण आत्मा का आनन्द स्वभाव, उसका कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव। स्वभाव किसे कहते हैं? दृशि और ज्ञप्ति, यह स्वभाव है। जानना-देखना, यह अपने आत्मा का स्वभाव है। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है।** दर्शन-ज्ञान के स्वभाव में मर्यादित जानना हुआ, अल्प जानना हुआ, यह विषय जानने में प्रतिबन्ध है। पूर्ण जानने में प्रतिकूलता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर की प्रतिकूलता कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की प्रतिकूलता नहीं। यहाँ तो मात्र, वास्तव में तो राग और उसका ज्ञान करता है, वह वास्तव में तो ज्ञान मर्यादित है, ऐसा कहते हैं। राग तो व्यवहार राग तो नहीं। समझ में आया? स्वभाव जानन-देखन स्वभाव, उसका पर्याय में अल्पज्ञपना, मर्यादितपना, रुकावट है, वह रागादि व्यवहार है न विकल्प, वह तो साधन नहीं, परन्तु उस समय राग का मर्यादित ज्ञान जो होता है, वह भी पूर्णज्ञानस्वभाव में वस्तु का कारण जो स्वभाव, उसमें वह विरुद्ध भाव है। समझ में आया?

अपना स्वभाव तो जानना-देखना है और उस स्वभाव में प्रतिकूलता अल्पज्ञता जानने में अल्प-मर्यादित जानना आना, वही पूर्णता होने में विरुद्ध है, विपरीत है। उसका अभाव होना, वह स्वभाव की पूर्णता और सुख का कारण है। सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म। समझ में आया? चन्दुभाई! सूक्ष्म आया सूक्ष्म।

मुमुक्षु : सूक्ष्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म नहीं, अब सूक्ष्म नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय बदल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बदल गयी।

ऐसा कहते हैं कि **वास्तव में सौख्य का कारण...** आनन्द का कारण, आत्मा का जो आनन्द है, उसका कारण **स्वभाव की प्रतिकूलता का...** विरुद्धता, विपरीतता का **अभाव है।** समझ में आया? तो आत्मा का स्वभाव तो जानन-देखन है। **उन दोनों को विषयप्रतिबन्ध...** विषय प्रतिबन्ध का अर्थ विषय वास... यह यहाँ नहीं। उसका जानने-देखने का जो विषय है, वह अल्पज्ञता, वह विषय प्रतिबन्धता। समझ में आया? जो ज्ञान-दर्शनस्वभाव है। वस्तु है और ज्ञान-दर्शनस्वभाव, वह तो परिपूर्ण है। और परिपूर्ण की पर्याय परिपूर्ण होनी चाहिए। तो सुख का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, तो अनुकूलता स्वभाव पूर्णता हो, वह स्वभाव। समझ में आया?

यह सब समझने की चीज़ है। अन्दर ऐसे का ऐसा निकाला है न अभी तक, यही कहता हूँ। आज पहले-बहले गर्मी में आये। यह अधिकार बहुत ही चल गया है। हें?

मुमुक्षु : गर्मी प्रतिकूलता है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्मी प्रतिकूलता है ही नहीं।

यहाँ तो राग जो व्यवहारसाधन कहा था, वह भी नहीं। परन्तु इतने में रोकने का, ज्ञान की मर्यादा अल्पज्ञान हुआ, वही सुख का कारण स्वभाव, उसमें जो मर्यादित प्रतिकूलता का अभाव हो तो सुख का कारण पूर्ण प्राप्त होता है। मस्तिष्क जरा फैलाना पड़े। वह तो बीड़ी में-मुफ्त में पैसे आ गये। कहीं धूल में भी नहीं। उसमें मेहनत-मेहनत कुछ उसने की नहीं। नहीं, नहीं, वह तो मुफ्त का...

मुमुक्षु : राग तो किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग किया था, राग। समझ में आया?

दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है। ज्ञान की पर्याय मर्यादित है, वही पूर्ण स्वभाव में प्रतिकूलता है। उस मर्यादित ज्ञान का अभाव होना, वह स्वभाव की प्राप्ति पूर्ण होना, वह सुख का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : वास्तव में तो राग को जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में तो वह अल्पज्ञ पर्याय है न? वह राग को और अल्पदशा को तो जानता है न? अपनी पर्याय को जाने, लो न! परन्तु वह अल्पज्ञ पर्याय और मर्यादित पर्याय है। वह मर्यादित हुई। वह मर्यादित है, उसका अभाव। उस स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव, वह सुख का कारण है। अरे! अटपटी बात है! समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की बात नहीं। यहाँ तो ज्ञान-दर्शनस्वभाव लिया। परन्तु ज्ञान-दर्शनस्वभाव का भान होने पर आनन्द का अंश तो साथ में आता है। परन्तु कहते हैं कि पूर्ण आनन्द की प्राप्ति जो स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव हो तो पूर्ण सुख का कारण होता है। तो पूर्ण सुख का कारण कब होता है कि पूर्ण ज्ञान और दर्शन हो तो पूर्ण सुख का कारण होता है और जब अल्पज्ञ और अल्पदर्शीपना—मर्यादित ज्ञान है, वह प्रतिकूलता है। पूर्ण सुख के कारण स्वभाव, उसकी प्रतिकूलता है। उसका अभाव होना वह सुख के कारण का स्वभाव प्राप्त हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

अल्पज्ञ को अल्पज्ञपना रुकावट है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान में जानना-देखना अल्पज्ञपना, वह भी वहाँ रुकावट हुई। वहाँ ज्ञान रुक गया। आहाहा! समझ में आया? नहीं, वहाँ रुकावट हो गयी। वही परिपूर्ण स्वभाव का उसमें अभाव नहीं हुआ। अभाव हो तो स्वभाव परिपूर्ण हो तो सुख का कारण स्वभाव है। कठिन बात, भाई! आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्यदेव का कथन एक-एक गाथा में बहुत गूढ़ता और बहुत गम्भीरता। समझ में आया? कहते हैं कि **दोनों को विषयप्रतिबन्ध होना, सो 'प्रतिकूलता' है। मोक्ष में वास्तव में आत्मा को सर्व को जानता और देखता होने से...** देखो! मोक्ष में तो सर्व जानना-देखना, उसका स्वभाव। सर्व जानना-देखना। अभी तो सर्व जानना-देखना बैठे नहीं। आहाहा! सर्व को जाने-देखे। लोकालोक को जैसा है, वैसा जाने और देखे। समझ में आया?

पूर्ण ज्ञान और दर्शन हुआ तो अल्पज्ञता का अभाव हुआ, रुकावट का अभाव हुआ तो पूर्ण जानना-देखना हुआ। पूर्ण जानने-देखने में सब लोकालोक जैसा है, वैसा जानता-देखता है। वह अपनी पर्याय को जानता है। यहाँ तो यह कहा न? लोकालोक

तो पर है। यह तो आया था न? उसमें नहीं आया था? **स्व-परप्रकाशकरूप से चेतता है।** पहले १६२ गाथा में आया था। समझ में आया? अपनी पर्याय में स्व-पर का ज्ञान अपना ज्ञान है। परसम्बन्धी और स्वसम्बन्धी अपनी पर्याय ज्ञान है। उसे आत्मा जानता है। समझ में आया?

आत्मा में ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है, तो ऐसी पर्याय स्व-परप्रकाशक हुई तो स्व-परप्रकाशक है तो स्व की ही पर्याय। स्व-परप्रकाशक है तो स्व की ही पर्याय, पर की नहीं। यह तो पर का ज्ञान और अपना ज्ञान सब स्व में हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह स्व-परप्रकाशक जो ज्ञान-पर्याय है, उसे आत्मा चेतता है। लो! समझ में आया? यह, उसे आत्मा देखता है और स्वरूप में स्थिर होता है, यह तीनों चारित्र-दर्शन और ज्ञात आत्मा है। आहाहा! बात आत्मा छोड़कर, वर बिना की बारात। आत्मा क्या है, उसे छोड़कर करो व्रत और करो त्याग। बाह्य त्याग की महिमा इतनी लोगों को घुस गयी है! वह तो मिथ्यात्व की महिमा है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव जानने-देखने का स्वभाव है, उस परिपूर्णता में ज्ञान की रुकावट हुई, वही उसकी प्रतिकूलता है। **इसलिए उसका अभाव जिसका कारण है,...** लो! यह रुकावट ज्ञान-दर्शन की पर्याय में, अल्पज्ञता में रुकावट हुई, **उसका अभाव जिसका कारण है, ऐसे अनाकुलतालक्षणवाले परमार्थसुख की मोक्ष में अचलित अनुभूति होती है।** मोक्ष में अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण चलित नहीं हो, ऐसी अनुभूति-अनुभव होता है। आनन्द का (अनुभव होता है)। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुखी कहाँ है? सुख तो यह दुनिया पर में-होली में सुख मानती है। पैसे में सुख है और स्त्री में सुख है और इज्जत में सुख है, धूल में सुख है। धूल अर्थात् यह विशाल मकान पाँच लाख का बनाया वह। वास्तु किया। ओहो! यह दो-चार, पच्चीस-पचास अमलदारों को बड़ों को बुलावे और यह सब ऐसे बड़े मलाजा करना। काम भी हो न किसी जगह इसलिए, आज वास्तु में पधारना। आज सब भोजन है और अमुक है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ तुरन्त स्पष्टीकरण करते हैं। उसमें मजा है, ऐसा माने वह मूढ़ है। ऐसा कहते हैं। यह तो हम वहाँ तीन वर्ष पहले शाहूजी के मकान में थे, तो ऐसे पैसेवाले को तो चालीस करोड़ रुपये न, आज रात्रि में महाराज लोग आनेवाले हैं, लोग समाते नहीं। चर्चा हुई, पश्चात् जलसा उड़ाना था। क्या? चाय-पानी या कुछ क्या? पाटी थी, हों! यह सब अमलदार और अधिकारी इकट्ठे करे और पार्टी दे और फिर कुछ... परन्तु ऐसे को भी मक्खन लगाना पड़ता है। लो! ऐसे चालीस करोड़ डाले और मक्खन चुपड़ते थे। रात्रि में लोग बुलावे न यह। धूल में भी सुख नहीं। मुफ्त में हैरान... हैरान..!

मुमुक्षु : दूसरा क्या करे? कहीं रुपये समुद्र में डाल दिये जायें?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये कहाँ इसके थे? डाले कौन और रखे कौन? उनके सम्बन्धी विकल्प-ममता, वह भी अपनी है नहीं। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! क्या करना इसमें? आहाहा!

भगवान कहते हैं कि प्रभु! तेरे स्वभाव पर नजर कर। वहाँ सुख है। वहाँ ज्ञान की पूर्णता प्राप्त की एक खान है। तेरा स्वभाव जानन-देखन है। आत्मा है वस्तु, तो जानन-देखन अखण्ड परिपूर्ण स्वभाव है। उस पर नजर कर तो तुझे ज्ञान, आनन्द और श्रद्धा प्रगट होगी और साथ में अनाकुल आनन्द लक्षणवाली शान्ति भी साथ में होगी। और पूर्ण मोक्ष है वहाँ पूर्ण आनन्द की अनुभूति होगी। आहाहा! समझ में आया? **इस प्रकार....** यहाँ तक अपने आया था।

इस प्रकार भव्य जीव ही भाव से जानता है,... शब्द है सेठ? अन्तिम दो लाईन। **इस प्रकार...** अब देखो, विशिष्टता कैसी ली है? **भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** देखो भाषा! **भाव से जानता है,...** इसका अर्थ क्या हुआ? कि अपना ज्ञान-दर्शन स्वभाव है, ऐसा अन्तर में ज्ञान किया, स्वज्ञेय का ज्ञान किया, उसकी श्रद्धा की तो साथ में अनुभूति आनन्द का अंश भी साथ में आया। तो भव्य जीव जानता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा!

यहाँ तो भव्य जीव जानता है और अभव्य जीव नहीं जानते, इतना सिद्ध करना

है। फिर मोक्षमार्ग में भी कथंचित् बन्धभाव और कथंचित् मोक्षमार्ग, यह बाद में सिद्ध करेंगे। आगे लेंगे। भव्य जीव में फिर बन्ध का कारण बताया। क्या कहते हैं ? समझ में आया ? इस प्रकार से आत्मा में आनन्द मोक्ष में पूर्ण है और उसमें विषय की प्रतिबन्धता का अभाव है, ऐसी श्रद्धा और उसका ज्ञान भव्य जीव को ही होता है। किस प्रकार ? कि भव्य जीव अपना जानन-देखन स्वभाव है, उस ओर का लक्ष्य करता है तो अपने में ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। नीचे (फुटनोट में) है। देखो! चार है न ? उसमें चौथे नम्बर का।

श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में कहा है कि 'उस अनन्त सुख को भव्य जीव जानते हैं,... यहाँ तो मोक्ष के सुख की व्याख्या है न ? मोक्ष में अनन्त सुख है। पूर्ण जानन-देखन पर्याय में अनन्त आनन्द है। **वह भव्य जीव जानते हैं,...** क्योंकि अपने में जानना-देखना जहाँ स्वभाव के साथ एकाकार हुआ तो जानने-देखने की पर्याय के साथ आनन्द की पर्याय भी प्रगट हुई। उससे अनुमान करके यह परिपूर्ण आनन्द मोक्ष में है। मोक्ष में जानना-देखना परिपूर्ण और आनन्द भी परिपूर्ण वहाँ है, ऐसी प्रतीति सम्यग्दृष्टि भव्य जीव को ही होती है। कहो, पण्डितजी! ऐसी बात।

आत्मा तो ऐसा है कि सम्यग्दर्शन में, लो! **'उस अनन्त सुख को भव्य जीव जानते हैं, उपादेयरूप से श्रद्धते हैं...** वह परम आनन्द मोक्ष की दशा में है, वही आनन्द आदरणीय है, ऐसा अपना आनन्द स्वभाव अन्तर में है, ऐसा आदर करके आनन्द की पर्याय व्यक्त अनुभव में आयी तो पूर्ण आनन्द उपादेय है। उसे भव्य जीव मानते हैं और जानते हैं। समझ में आया ?

अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं। देखो! चौथे से है। वे इनकार करते हैं न ? चौथे गुणस्थान में नहीं, शुभभाव। ऐसा वापस। अरे भगवान! तू यह क्या करता है ? चैतन्य शुभभाव तो पराश्रित राग है। उसे तो अभी बन्ध का कारण कहेंगे। समझ में आया ? स्वभाव पूरा शक्तिरूप सत्व जानन-देखन जिसका सत्व है, सत् का सत्व है। है, उसका भाव है। है आत्मा, उसका जानना-देखना पूर्ण भाव है। उस पूर्ण भाव की अन्तर्मुख होकर प्रतीति करता है। आनन्द के अंश में अनन्त गुण की पर्याय के अंश प्रगट हुए बिना नहीं रहते। पण्डितजी! गजब बात!

उसमें—जयसेनाचार्य की टीका में तो ऐसा भी है, ऐसा कि अपनी योग्यता प्रमाण विषय सुख को हेयबुद्धि से अनुभव करता है। यह इसमें नहीं लिया, उसमें टीका में लिया है। क्योंकि चौथे-पाँचवें (गुणस्थान) वाले को राग आता है। थोड़ा-सा राग आता अवश्य है न? परन्तु हेयबुद्धि से-दु:खबुद्धि से अनुभव करते हैं। विषय की वासना का विकल्प समकिती को, धर्मी को आता है। परन्तु वह उसे दु:खरूप अनुभव करता है। जैसे काला नाग दिखाई दे और जैसे डरता है, वैसे अशुभभाव से दु:ख वेदता है। आता है, परन्तु वास्तव में तो भव्य जीव की अनुभूति आनन्द की है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

ऐसा कोई कहे कि आनन्द का अनुभव है तो फिर उसे दु:ख अथवा विषय की वासना का अनुभव नहीं है न? इस कारण जयसेनाचार्यदेव को स्पष्टीकरण करना पड़ा। जयसेनाचार्य हैं न, यह इसमें नहीं डाला। कितनी गाथा है। १७३, देखो! '**स्वकीय स्वकीय गुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्धया विमयसुखअनुभवति भव्यजीवः तथापि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्न**' भावना उत्पन्न भाषा है। अपना चैतन्यस्वभाव, ऐसा ध्रुव नित्य ज्ञान-दर्शन, उसकी एकाग्रता, वह भावना। ऐसी उत्पन्न '**अतीन्द्रिय सुखमेवोपादेयं मन्यते**' अतीन्द्रिय आनन्द, वही उपादेय और आदरणीय है। विषय-वासना का विकल्प समकिती को चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) होता है, आता है। परन्तु हेयबुद्धि से है। आहाहा! वह उपादेय नहीं। समझ में आया? शोभालालजी! थोड़ा सा समझ में आता है? नहीं समझ में आता? आता है। सेठिया का पुकार जरा ठीक हो तो ठीक पड़े न? बराबर ख्याल में आवे, ऐसी चीज़ है।

मुमुक्षु : ख्याल में आवे इसलिए तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो सरल भाषा है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनस्वभाव है। तो ज्ञान-दर्शनस्वभाव लिया तो आनन्दस्वभाव क्यों नहीं लिया? प्रगट पर्याय में है नहीं, इसलिए उन्होंने ज्ञान-दर्शनस्वभाव लिया। और ज्ञान-दर्शनस्वभाव में जब भावना अर्थात् एकाग्र होता है तो आनन्द की पर्याय और सर्व अनन्त गुण की पर्याय प्रगट व्यक्तरूप से अनुभव में आती

है। क्योंकि द्रव्य जो है, वह अनन्त गुण का पिण्ड है। तो द्रव्यदृष्टि जब हुई तो जितने गुण हैं, उनकी व्यक्तता आंशिक पर्याय में आये बिना रहती नहीं। भाषा ऐसी कहने में आती है कि सम्यग्दर्शन के कारण सर्व गुण की पर्याय आंशिक प्रगट हुई, ऐसा कहने में आता है। बाकी वास्तव में तो यह सर्व गुण की पर्याय स्वयं के कारण से प्रगट हुई है। पण्डितजी! सवेरे प्रश्न था न?

सम्यग्दर्शन—स्वभाव का भान हुआ तो सम्यग्दर्शन की प्रधानता में ऐसा गिनने में गिनने में आता है कि सम्यग्दर्शन शुद्ध हुआ तो सब गुण भी साथ में आंशिक शुद्ध हुए। वह सम्यग्दर्शन की मुख्यता कहने में। बाकी तो स्वयं के कारण से सर्व गुणों की शुद्धता उस समय की पर्याय में आये बिना रहती नहीं। कठिन बात! धर्म ऐसा कठिन! एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया या त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया... ऐ झबेरचन्दभाई! इच्छामि पडिक्कामि तस्समिच्छामी दुक्कडम्, जाओ। जीवियाओ ववरोविया, यही बात चलती है। जीवियाओ, ववरोविया, भाई! तेरा जीवन तो पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्द वह तेरा जीवन है। उस जीवन को न मानना और राग-द्वेष और अल्पज्ञ को मानना, यह जीवियाओ ववरोविया-तेरे जीवत्व के प्राण का तूने नाश किया है। भारी जँचे कठिन यह! मोहनभाई को कैसा लगता है यह सब? हें? सुनने को कहाँ से मिले? यह भी कहाँ से? धर्म तो कहाँ से परन्तु... आहाहा!

यह तो सत्... सत्... सत्... सत्स्वरूप कसौटी पर चढ़ता है। हीरा कसौटी पर चढ़ता है न? वैसे सत्स्वरूप यह है, यह वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा। कहते हैं कि ज्ञानी को अपने पुरुषार्थ की दशा स्वभाव-सन्मुख हुई है, भव्य जीव। तो उसे उसकी योग्यता प्रमाण आनन्द की अनुभूति भी साथ में है। तो कहे, आनन्द की अनुभूति अकेली है? तो कहे, है। '**यद्यपि हेयबुद्धियादी विमयसुखअनुभवति**' उसमें नहीं यह। हेयबुद्धि से विषय सुख का वेदन होता है, परन्तु उपादेयबुद्धि से आनन्द का अनुभव होता है, यह उसकी मुख्यता है। यह उपादेय है। वह तो हेय है, जहर है। कमजोरी से सहन नहीं होता तो फिर आता है। समझ में आया?

कहते हैं, **भव्य जीव ही...** ऐसी भाषा ली है। अभव्य नहीं, ऐसा सिद्ध करना है।

भव्य जीव तो ऐसा ही लिया है कि अपना अनुभव हुआ, वह भव्य जीव। **भव्य जीव ही भाव से जानता है,...** देखो! मोक्ष में आत्मा में अनन्त सुख है। आत्मा की पूर्ण पर्याय जहाँ हो, वहाँ अनन्त आनन्द है। पूर्ण पर्याय जहाँ हुई, वहाँ आनन्द अनन्त है। यह भव्य जीव जानता है। क्योंकि अपने स्वभाव में अनन्त परिपूर्ण है, ऐसा स्वाद पर्याय में लिया है। तो मोक्ष में अनन्त आनन्द ऐसी प्रतीति उसकी उपादेयबुद्धि में आ गयी। समझ में आया? वार्ता हो तब तो सरल पड़े। है तो वार्ता इसके भगवान के घर की। आहाहा!

कहते हैं, भव्य जीव अपने सुख को जानता है। **उपादेयरूप से श्रद्धते हैं...** यह क्या कहा? अपना आनन्द ही आदरणीय है और पूर्ण आनन्द करनेयोग्य है, ऐसा श्रद्धा में लेता है। विषय सुख उपादेय है, ऐसी बुद्धि धर्मी को होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती संसार में हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ। ऐसे देखो तो राग है परन्तु वह राग हेयबुद्धि से-हेयबुद्धि से। मिठास नहीं-मिठास नहीं। जहर का पेय पीता हो, ऐसा दिखता है।

भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव की अनुभूति हुई। उस आनन्द को ही उपादेय मानकर, पूर्ण मोक्ष की प्राप्ति करने के प्रयत्न में भव्य जीव होता है। **और अपने-अपने गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं।** तो यह गुणस्थान-गुणस्थान कहाँ से लेना? हें? चौथे (गुणस्थान) से। आठवें से क्या ले? धूल ले? आठवाँ क्या?

और अपने-अपने गुणस्थानानुसार... चौथे गुणस्थान में गुणस्थान अनुसार आनन्द की अनुभूति है। पाँचवें में पंचम के योग्य आनन्द की उग्रता की अनुभूति है। छठवें में प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की अनुभूति है। समझ में आया? यह तो बातें, धर्म करते हैं। हमें फिर स्वर्ग का सुख मिलेगा। फिर मोक्ष में जाऊँगा। धूल में भी नहीं जायेगा। कहाँ जायेगा तू? समझ में आया? आहाहा!

गुणस्थानानुसार अनुभव करते हैं।' जयसेनाचार्य ने ऐसी भाषा ली है। देखो! कारण कि चौथे गुणस्थान में अनुभूति-आनन्द है, ऐसा पाँचवें में विशेष है। छठवें में विशेष, सातवें में विशेष, आठवें में विशेष, जाओ बारहवें में पूर्ण आनन्द। समझ में आया? तेरहवें में अनन्त आनन्द। भगवान चैतन्यमूर्ति आनन्द की खान जहाँ भावना में

एकाग्र करके... समझ में आया? अन्तर में से प्रवाह निकला। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति आदि, उसका आनन्द का अनुभव है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;... देखो! यह अपना स्वरूप जानते हैं। आनन्द को उपादेय करते हैं और गुणस्थान अनुसार आनन्द को अनुभव करते हैं। **इसलिए वही मोक्षमार्ग के योग्य है;...** वह जीव मोक्षमार्ग के योग्य है। आहाहा! **अभव्य जीव इस प्रकार श्रद्धा नहीं करता,...** लो! अभव्य जीव को इस प्रकार श्रद्धा-आनन्द का अनुभव नहीं होता। तो श्रद्धा करता नहीं। शुद्ध का आदर नहीं करता। यह अनादि से अशुद्धता का ही आदर करता है। समझ में आया?

इसलिए वह मोक्षमार्ग के अयोग्य ही है। इससे (ऐसा कहा कि) कुछ ही संसारी मोक्षमार्ग के योग्य हैं। कोई-कोई जीव मोक्षमार्ग के योग्य है। सभी जीव मोक्षमार्ग के योग्य हैं, ऐसा नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में ऐसा है। दूसरे में तो दैवी प्रकृति और आसुरी प्रकृति और अमुक प्रकृति, ऐसी बातें करे। यह तो अभव्य का स्वभाव ही ऐसा है, यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

गाथा - १६४

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।।१६४।।
दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि।
साधुभिरिदं भणितं तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा।।१६४।।

दर्शनज्ञानचारित्राणां कथञ्चिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्ष-हेतुत्वद्योतनमेतत् ।

अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानुसंव-लितानीव घृतानि कथञ्चिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बन्धकारणान्यपि भवन्ति । यदा तु समस्तपरसमय-प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपया स्वसमयप्रवृत्त्या सङ्गच्छन्ते, तदा निवृत्तकृशानुसंवलनानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणभावाभावात्साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवन्ति । ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नमिति ।। १६४ ।।

दृग-ज्ञान अर चारित्र मुक्तिपंथ मुनिजन ने कहे।
पर ये ही तीनों बंध एवं मुक्ति के भी हेतु हैं।।१६४।।

अन्वयार्थ :- [दर्शनज्ञानचारित्राणि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र, [मोक्षमार्गः] मोक्षमार्ग है। [इति] इसलिए, [सेवितव्यानि] वे सेवनयोग्य हैं—[इदम् साधुभिः भणितम्] ऐसा वह साधुओं ने कहा है; [तैः तु] परन्तु उनसे [बन्धः वा] बन्ध भी होता है और [मोक्षः वा] मोक्ष भी होता है।

टीका :- यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो, अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति (अर्थात् [१]उष्णतायुक्त घृत की भाँति), कथंचित्

---

१. घृत स्वभाव से शीतलता के कारणभूत होने पर भी, यदि वह किंचित् भी उष्णता से युक्त हो तो, उससे (कथंचित्) जलते भी हैं; उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी, यदि वे किंचित् भी परसमयप्रवृत्ति से युक्त हों तो, उनसे (कथंचित्) बन्ध भी होता है।

[1] विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं और जब वे (दर्शन-ज्ञान-चारित्र), समस्त परसमयप्रवृत्ति से निवृत्तरूप ऐसी स्वसमयप्रवृत्ति के साथ संयुक्त होते हैं तब, जिसे अग्नि के साथ मिलितपना निवृत्त हुआ है, ऐसे घृत की भाँति, विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया होने से साक्षात् मोक्ष का कारण ही है। इसलिए 'स्वसमयप्रवृत्ति' नाम का जो जीवस्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षमार्गपना घटित होता है [2] ॥१६४॥

गाथा - १६४ पर प्रवचन

अब, १६४ गाथा।

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।।१६४।।

अब मोक्षमार्ग के योग्य भव्य-अभव्य नहीं। अब मोक्षमार्ग में भी दो प्रकार करते हैं। जितनी शुद्धता मोक्षमार्ग की हुई, वह मोक्ष का कारण। उसमें भी जब परसमय की

---

१. परसमयप्रवृत्तियुक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कथंचित् मोक्षरूप कार्य से विरुद्ध कार्य का कारणपना (अर्थात् बन्धरूप कार्य का कारणपपा) व्याप्त होता है।

[शास्त्रों में कभी-कभी दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी, यदि वे परसमयप्रवृत्तियुक्त हों तो, कथंचित् बन्ध का कारण कहा जाता है; और कभी ज्ञानी को वर्तनेवाले शुभभावों को भी कथंचित् मोक्ष के परम्पराहेतु कहा जाता है। शास्त्रों में आनेवाले ऐसे भिन्न-भिन्न पद्धति के कथनों को सुलझाते हुए, यह सारभूत वास्तविकता ध्यान में रखनी चाहिए कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्धरूप मिश्रपर्याय वर्तती है, तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत नहीं होती अथवा एकान्त से आस्त्रव-बन्ध के कारणभूत नहीं होती, परन्तु उस मिश्रपर्याय का शुद्ध अंश संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत होता है और अशुद्ध अंश आस्त्रव-बन्ध के कारणभूत होता है।]

२. इस निरूपण के साथ तुलना करने के लिये श्री प्रवचनसार की ११वीं गाथा और उसकी तत्त्वप्रदीपिका टीका देखिए।

प्रवृत्ति व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? कितना स्पष्ट है। तथापि इसमें भी गड़बड़ करते हैं। विरोध करते हैं।

टीका :- यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है... समझ में आया? देखा? मोक्षमार्ग तो बताया परन्तु **यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।**

मुमुक्षु : बताया यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया यह, परन्तु वापस यह। राग से रहित होकर पूर्ण चारित्र की पर्याय प्रगट करे, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? वे लोग प्रश्न करते हैं। अभी आज सन्देश में आया था। वे लोग कहते है नहीं, चारित्र धारण किये बिना समकित होता नहीं। उन लोगों को यह विवाद है। चारित्र धारण किये बिना शुद्ध होते नहीं। फिर यह क्या कहे, चारित्र धारण किये बिना समकित होता नहीं, ऐसा तो कोई आगम में लिखा नहीं है।

तत्त्वार्थ के श्रद्धान, ज्ञान बिना समकित नहीं होता। समकित नहीं होता, ऐसा। तो उसमें चारित्र का ज्ञान आता है, परन्तु चारित्र धारण करे तो समकित होता है, ऐसा नहीं है। फिर उसमें थोड़ा लिया है। समझे? वास्तव में तो जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा। संवर में चारित्र आ गया। चारित्र का ज्ञान, जीव का ज्ञान, आस्रव का ज्ञान, इस यथार्थ ज्ञान के बिना समकित नहीं होता परन्तु चारित्र को धारण किये बिना... समझ में आया?

उन लोगों ने अब ऐसी उसे लगा दी है कि यह सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं तो अपने अब लगाओ दूसरी बात। वह भी उसका चारित्र कैसा कि यह जहर का माना हुआ। हें?

मुमुक्षु : कपड़े छोड़े तब आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कपड़े छोड़े, कौन छोड़े? कपड़े को छोड़ता हो वही मिथ्यात्वभाव है। (ऐसा माने कि) मैं अजीव को छोड़ता हूँ। क्या अजीव तुझमें घुस गया है? सेठिया

भी ऐसे होते हैं, कुछ खबर नहीं होती और पैसा-बैसा दे तो जाओ। आहाहा! त्यागी हो गये। आहाहा! अपने से पड़ता नहीं।

मुमुक्षु : सेठियाओं से तो निभता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा-बैसा देते हैं और ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो एक दृष्टान्त। यह नहीं, सब बहुत सेठिया ऐसा करते हैं न? यह तो सामने आगे बैठे हैं न, देखो यह। आहाहा! कौन निभावे, भाई!

यह आत्मा—भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान हुए बिना, तत्त्वार्थ का ज्ञान होता है। तो तत्त्वार्थ में चारित्र का ज्ञान आया। चारित्र का धारण नहीं आया। समझ में आया? संवर, वह चारित्र है न? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। यह थोड़ा नहीं लिखा इसलिए जरा लोग विरोध करते हैं इसमें। इन्होंने नहीं लिखा। चारित्र का ज्ञान अवश्य। तत्त्वार्थ के ज्ञान का अर्थ? नौ तत्त्व के ज्ञान में चारित्र कैसा है, मोक्ष कैसा है, बन्ध कैसा है - ऐसा ज्ञान है। समझ में आया? चारित्र धारण करे, परन्तु चारित्र कब धारण करे? सम्यक् बिना चारित्र आवे कहाँ से? अरे!

ज्ञान का फल विरति। तो आत्मा के ज्ञान और भान हुए पश्चात् स्थिरता आती है। उसका फल विशेष होता है तो भी ज्ञान हुआ और तुरन्त विरति-चारित्र आता है तो ज्ञान कहने में आता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! यह बहुत ही गड़बड़ करते हैं, हों! यहाँ का निकलने के बाद बहुत विशेष गड़बड़ हो गयी। नहीं तो अभी थोड़ी-थोड़ी थी।

मुमुक्षु : गड़बड़ तो इतनी ही थी परन्तु अन्दर पड़ी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर पड़ी थी।

ऋषभदेव भगवान का उपदेश निकला तो एक जीव स्वर्ग में जाने का था। कोई .... अठारह कोड़ाकोड़ी। उपदेश जहाँ निकला तो नरक में जानेवाला निकला, निगोद में जानेवाला निकला। आहाहा! मोक्ष जानेवाले निकले। उपदेश हुआ तो जैसी-जैसी योग्यता वैसा उसकी दृष्टि में आ गया। विरोध भी हो गया। अरे! यह क्या कहते हैं? भगवान जहाँ नहीं थे तो अठारह कोड़कोड़ी सागरोपम जुगलिया मात्र स्वर्ग में जाते थे।

दूसरी कोई गति नहीं थी। उपदेश जहाँ निकला तो चौबीस दण्डक और मोक्ष, पच्चीस हो गये। नरक में जानेवाले हो गये, निगोद में जानेवाले हो गये, दो इन्द्रिय में जानेवाले हो गये, स्वर्ग में जानेवाले और मोक्ष में जानेवाले हो गये। जिसकी जैसी योग्यता थी, तत्प्रमाण हो गये। उपदेश क्या करे? समझ में आया?

उपदेश पहले इतनी विरुद्धता भी नहीं थी। नरक में जाये या निगोद में जाये, ऐसी विरुद्धता यहाँ भरतक्षेत्र में नहीं थी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उसके कारण से हुआ, ऐसा यहाँ तो बतलाना है। अपनी योग्यता जैसी है, तत्प्रमाण विरुद्धता और अविरुद्धता हो गयी।

यहाँ कहते हैं, **यहाँ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथंचित् बन्धहेतुपना दर्शाया है और इस प्रकार जीवस्वभाव में नियत चारित्र का...** जीवस्वभाव! देखो! पहले से लिया था, ५४ – १५४ में। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव जिसका स्वभाव है। स्वभाव क्या और मर्यादा क्या? वस्तु और वस्तु का स्वभाव, उसकी मर्यादा क्या? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त जानना-देखना ऐसा स्वभाव। ऐसे स्वभाव में स्थिर होना। समझ में आया? जीवस्वभाव में नियत नित्य स्थिर जम जाना। यह **चारित्र का साक्षात् मोक्षहेतुपना प्रकाशित किया है।** है। यह चारित्र साक्षात् मोक्ष का हेतु है, कारण है। पश्चात्—

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो,... आया अब। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वआश्रित है। इसके साथ, **यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ...** पर के आश्रयवाली राग-व्यवहारमोक्षमार्गवाली पर्याय में विकल्प उत्पन्न होते हैं, तब मिलित हो। **अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति...** लो! अग्नि के साथ मिलित घी। **(अर्थात् उष्णतायुक्त घृत की भाँति), कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं...** नीचे स्पष्टीकरण। घी स्वभाव से शीतलता के कारणभूत, घी तो स्वभाव से शीतल है। समझ में आया? घी तो शीतल... शीतल... शीतल, ठण्डा। कारणभूत होने पर भी, यदि वह थोड़ी भी उष्णता से युक्त हो तो, परन्तु अग्नि के साथ उष्ण हो जाये, **उससे (कथंचित्) जलते भी हैं;...**

अग्नि से जलते हैं, उस घी से (जलते हैं)। गर्म-गर्म घी डाले। जैसी अग्नि जलावे, वैसे घी जलाता है। जला डालता है। एकदम गर्म डाले तो चमड़ी उखड़ जाये। घी है न? परन्तु घी उष्ण है। उष्णपना है वहाँ घीपना रहा नहीं। उष्ण हो गया। उस उष्णता से जलते भी हैं।

उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी,... लो! घी तो शीतलता का ही कारण है। **उसी प्रकार दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव से मोक्ष के कारणभूत होने पर भी, यदि वे किंचित् भी परसमयप्रवृत्ति से युक्त हों तो, उनसे (कथंचित्) बन्ध भी होता है।** आहाहा! राग का अल्प भी स्थान वहाँ आ जाये (तो वह) मोक्षमार्गी जीव को भी बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

स्पष्टीकरण किया है। **परसमयप्रवृत्तियुक्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कथंचित् मोक्षरूप कार्य से विरुद्ध कार्य का कारणपना...** है न दूसरा? **विरुद्ध कार्य का कारणपना (अर्थात् बन्धरूप कार्य का कारणपना) व्याप्त होता है। शास्त्रों में कभी-कभी दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी, यदि वे परसमयप्रवृत्तियुक्त हों तो,...** परसमय अर्थात् राग के साथ-सहित हो तो **कथंचित् बन्ध का कारण कहा जाता है; और कभी ज्ञानी को वर्तनेवाले शुभभावों को भी कथंचित् मोक्ष के परम्पराहेतु कहा जाता है।** यह परम्परा हेतु। सेठ!

इस शुभ को परम्परा हेतु भी कहते हैं और ज्ञान-दर्शन-चारित्र को बन्ध का कारण भी कहते हैं। किस अपेक्षा से कहते हैं, यह समझना चाहिए। **मोक्ष के परम्पराहेतु कहा जाता है। शास्त्रों में आनेवाले ऐसे भिन्न-भिन्न पद्धति के कथनों को सुलझाते हुए, यह सारभूत वास्तविकता ध्यान में रखनी चाहिए कि—ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्धरूप मिश्रपर्याय वर्तती है,...** देखो आया। यह मिश्रपर्याय। यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आया था न? मिश्रभाव। कहो, बन्ध के विकारपने, जो भाव कारण भी भिन्न है और मोक्ष का कारण भी भिन्न है। एक पर्याय चारित्र गुण की है।

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ और चारित्रगुण की पर्याय एक अंश निर्मल भी हुई। तो वह अंश जो निर्मलता हुई, वह संवर-निर्जरा का कारण और उसी पर्याय का दूसरा भाग अशुद्धता रही, वह आस्रव-बन्धरूप है। चारित्रगुण

की एक समय में चार अंश। अरे... अरे! वीतराग का यह रहस्य है। क्या कहते हैं? देखो! **ज्ञानी को जब शुद्धाशुद्धरूप मिश्रपर्याय वर्तती है, तब वह मिश्रपर्याय एकान्त से संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत नहीं होती...** क्योंकि जो अशुद्धता का अंश है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

जब आत्मा अपने शुद्धस्वरूप में आश्रित हुआ तो उस पर्याय का अंश तो निर्मल हुआ। और पूर्ण आश्रित नहीं है, इतनी एक समय की पर्याय का दूसरा भाग पर का लक्ष्य, आश्रयवाली है, वह अशुद्ध है। एक पर्याय का अंश पराश्रितभाव अशुद्ध है। स्वाश्रितभाव वह पर्याय का एक अंश, पर्याय एक, पर्याय दो नहीं। एक पर्याय, एक काल, चार अंश। अभी तो एक समय की पर्याय को वेदान्त मानता नहीं। पर्याय कैसी? पलटना कैसा? उसके बदले एक पर्याय में चार भाग। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु यदि ऐसा न हो तो पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसका आश्रय हुआ। तो वह दो घड़ी में पूर्ण आश्रय होता है और पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान हो जाता है? समझ में आया? तो जितना स्वभाव का आश्रय हुआ, चारित्रगुण का तो शक्तिरूप स्वभाव है, उसमें एकाग्र होकर जितनी निर्मल पर्याय हुई, वह वास्तव में संवर-निर्जरारूप मोक्ष का मार्ग है। एक पर्याय के दो भाग में एक भाग शुद्ध। शुद्ध के दो भाग—संवर और निर्जरा। समझ में आया? देखो! है?

एकान्त से आस्रव-बन्ध के कारणभूत नहीं होती,... एकान्त से संवर-निर्जरा-मोक्ष कारणभूत नहीं तथा एकान्त से आस्रव-बन्ध के कारणभूत भी नहीं होता। **परन्तु उस मिश्रपर्याय का शुद्ध अंश संवर-निर्जरा-मोक्ष के कारणभूत होता है...** संवर-निर्जरा वह मोक्ष में कारणभूत होता है। शुद्ध अंश। मोक्ष जो आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय, उसका कारण शुद्ध अंश है। जो शुद्ध अंश है, वह संवर-निर्जरा है। नौ तत्त्व की श्रद्धा की भी खबर नहीं होती! समझ में आया?

बन्ध को बन्ध तत्त्वरूप से जानना, संवर-निर्जरा को संवर तत्त्वरूप से जानना। यह भावबन्ध की बात है, हो! भगवान आत्मा के आश्रय से जो अंश शुद्ध है, जो शुद्धपर्याय हुई, चारित्रगुण तो त्रिकाल, उसकी वर्तमान पर्याय आंशिक निर्मल हुई, वह अंश जो निर्मल है, वह संवर-निर्जरारूप और संवर-निर्जरारूप होने से वह मोक्ष का

कारण है। आहाहा! और अशुद्ध अंश है, वह एक समय की पर्याय का दूसरा अंश शुद्ध है। अरे! समझ में आया?

यह आस्रव-बन्ध के कारणभूत होता है। वह अशुद्ध अंश तो आस्रव-बन्ध का कारण है। उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से आस्रव, उसमें रुका इस अपेक्षा से बन्ध। संवर उत्पन्न हुआ, वह शुद्धि और पहले की अपेक्षा से वृद्धि हुई, इसलिए निर्जरा। अरे.. अरे! कठिन बात भाई! समझ में आया? आज दोपहर में आये थे और दोपहर में ऐसा सूक्ष्म आया सूक्ष्म।

मुमुक्षु : दोपहर में तो सूक्ष्म ही होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! अन्दर। यहाँ तो पण्डितजी ने सब स्पष्टीकरण कर दिया है। वह कहे, स्पष्टीकरण करके सब खोल दिया है। हें?

मुमुक्षु : यहाँ सब स्पष्टीकरण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण होता है। अपनी आप पढ़े तो कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है। इसलिए वाँचन नहीं करना, ऐसा नहीं, हों! पढ़े तो खबर पड़े कि यहाँ मैं इतना समझा था और यह दूसरी चीज़ निकली। ऐसा ज्ञान तो होता है न? आहाहा! यह बिना भान के करो इच्छामि पडिकम्मणम् करो। तस्सउत्तरीकणणं और करो व्रत और करो उपवास। यह कहते हैं ऐसा खाना और ऐसा नहीं खाना। बस! लो प्रतिमा! फिर लो साधुपना। ग्यारह प्रतिमा है, परन्तु पन्द्रह प्रतिमा ले लेवे। वस्तु कहाँ है? वस्तु की तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : वस्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : जब लो, उससे पहले जहर पी लेना। फिर अमृत आयेगा।

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का दृढ़ करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसी वायु अभी चली है! लोगों में बाहर में महिलायें दीक्षा... दीक्षा... दीक्षा... किसकी दीक्षा? दक्षा है। अकेले दु:ख का पर्वत लेने के लिये निकला है। आहाहा! जैनशासन के वैरी में एक बढ़ा।

वीतरागभाव यदि आत्मा उसकी दृष्टि की तो खबर नहीं और व्रत के विकल्प सम्यग्दर्शन बिना के विकल्प, वह धर्म है और उसकी बराबर रक्षा करना, राग की रक्षा करना, आस्रव की रक्षा करना, बन्धभाव की रक्षा करना, यह मिथ्यात्वभाव की रक्षा है। चन्दुभाई! अरे, कठिन काम! लोगों को कठिन लगे, हों! यहाँ तो कहते हैं कि **कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं...** अर्थात्? जो अंश अपना शुद्ध स्वभाव भगवान पूर्ण दृष्टि-ज्ञान स्वभाव, उसमें जो एकाग्रतारूप भावना है, वह अंश तो मोक्ष का ही कारण है। परन्तु कथंचित् विरुद्ध जो राग भाव है, विरुद्ध कार्य के कारणपने के कारण। यह मोक्षमार्ग है तो वह (राग) बन्ध का ही कारण है। ऐसा। समझ में आया?

मिलित घृत की भाँति (अर्थात् उष्णतायुक्त घृत की भाँति),... कथंचित् घी गर्म हुआ, अग्नि का काम करता है। घी से विरुद्ध काम करता है। क्यों? स्वयं से जो मोक्षमार्ग शुद्ध उत्पन्न हुआ, उसमें जो राग भाव आया, वह मोक्षमार्ग से विरुद्ध कार्य करता है। विरुद्ध कार्य करता है अर्थात् बन्ध का काम करता है। कहो, समझ में आया? **कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण बन्धकारण भी हैं...** लो! आहाहा! स्याद्वाद लगावे। भई! सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, वह भी बन्ध का कारण है और सम्यग्दर्शन मोक्ष है, ऐसा लगाओ तो वह अनेकान्त है। पण्डितजी! यह कहा न? इसमें से तो दृष्टान्त देते हैं **'समतं'** देवलोक के आयुष्य का कारण समकित कहा है। परन्तु किस अपेक्षा से कहा है? समकित में एक शुभराग है, वह देवलोक के बन्ध का कारण है। बन्ध का कारण है। उसका तो स्पष्टीकरण किया है।

किसी जगह मोक्षमार्ग को बन्ध का हेतु कहा। किसी जगह शुभभाव को मोक्ष का परम्परा कारण कहा। दोनों की तुलना करनी चाहिए न? समझ में आया? आहाहा! ऐ गुणवन्तभाई! कहो, समझ में आया यह? भारी कठिन काम इसमें! यह तो जवान व्यक्ति है परन्तु पुराने वृद्ध लोगों को कठिन पड़े। यह सब मिलाना पड़े। गत काल के सब शून्य रखना पड़े।

मुमुक्षु : इसमें क्या बाधा? एक साथ चौकड़ी कर दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चौकड़ी देने का ख्याल आवे तो चौकड़ी दे कि तुलना

करने से यह ठीक और यह अठीक। परन्तु दोनों ठीक और अठीक की तुलना करना न आवे तो चौकड़ी कहाँ से दे?

हमारे भाई खुशालभाई ने कहा था। मैंने कहा, देखो यह सब खोटा निकला है। मैं तो यह छोड़ देनेवाला हूँ। वे कहें, धीरे-धीरे छोड़ना, हों! एकदम नहीं। ८७ में वीछिया, ८७, (संवत्) १९९१ में परिवर्तन किया न, फिर हमारे बड़े भाई थे न, (हमको) ५७ वर्ष पहले हाथी के होदे दीक्षा ली तो बड़ी धूमधाम से दी थी, भाई! कहा यह सब खोटा है। दीक्षा भी खोटी, शास्त्र भी खोटे। मैं तो इसमें रहनेवाला नहीं हूँ। तब उन्होंने कहा, धीरे-धीरे।

मुमुक्षु : खलबलाहट न हो इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : (खलबलाहट) न हो इसलिए। उनका हेतु यह (था)। उसमें एकदम लोगों में खलबलाहट हो गयी। बहुत सरल प्रकृति के, बहुत प्रिय जीव। उन लोगों को हो, इतनी उन्हें संसार की इतनी अधिक तीव्रता नहीं। बहुत सरल भद्र जीव थे। इसलिए कहे, धीरे-धीरे छोड़ना। नहीं तो अपना मकान है उमराला, रहना तुझे। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दीक्षा कहाँ थी? वह अत्यन्त खोटा ही है। एकदम झूठा।

स्थानकवासी के साधु, स्थानकवासी के शास्त्र, स्थानकवासी का धर्म सब अत्यन्त जैनदर्शन से विरुद्ध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दूसरी बात परन्तु यह तो लोगों में बाहर में तो ऐसा लगे न? एकदम खलबलाहट हो जायेगी। कहाँ तीन-तीन हजार लोगों में (प्रसिद्धि)!

मुमुक्षु : कानजी महाराज छोड़नेवाले हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धीरे-धीरे ऐसा। तीन-तीन हजार लोगों में कहाँ? हम राजकोट (संवत्) ८९ के वर्ष। डेढ़-डेढ़ घण्टे में मोटर की जमवट हो जाये और व्याख्यान घण्टे भर चले... ओहोहो! ऐसा हो। ८९ के वर्ष। ८९, कितने वर्ष हुए? ३६-३७ वर्ष

हुए। सभा में तीन-तीन हजार लोग सवेरे। ऐई! वे तो यहाँ आते थे। सम्प्रदाय के नाम से...

यहाँ तो कहते हैं, घी स्वभाव से शीतल है परन्तु यदि उष्णता हो तो घी के कार्य से विरुद्ध कार्य भी घी करता है (अर्थात् जलाता है)। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव जो मोक्षमार्ग का है, वह मोक्षमार्ग तो अपने शुद्ध स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुआ है। परन्तु उस मोक्षमार्ग में राग का आश्रय जितना रह जाये तो उस मोक्षमार्ग को व्यवहार कहते हैं, वह बन्ध का कारण है, विरुद्ध कार्य का कारण है।

मुमुक्षु : गर्म घी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गर्म घी है। आहाहा! इतनी तो स्पष्टता है। तो भी...! व्यवहारमोक्षमार्ग है और निश्चयमोक्षमार्ग है। दो मार्ग न माने वह भ्रम है। यहाँ कहे, दो मार्ग माने वह भ्रम में पड़े हैं। परन्तु स्पष्ट यहाँ कहते हैं कि परसमयप्रवृत्ति का अर्थ यह कि जितना राग आया मोक्षमार्ग में व्यवहार कहते हैं। आ गया न? '**धम्मादिसदहणं**' पहले आ गया है। आहाहा!

यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यदि अल्प भी परसमयप्रवृत्ति के साथ मिलित हो तो,... परसमय या विभाव। राग का अंश। आहाहा! चाहे तो प्रशस्त हो। अप्रशस्त की यहाँ बात नहीं है। **तो अग्नि के साथ मिलित घृत की भाँति... कथंचित् विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण...** विरुद्ध कार्य के कारणपने की व्याप्ति के कारण, ऐसा। वहाँ विरुद्ध कारण की व्याप्ति है। शुद्ध स्वभाव जो पर्याय आंशिक शुद्ध हुई, वह मोक्ष का कारण। उससे विरुद्ध में बन्ध के कारण की व्याप्ति है। आहाहा! पंचास्तिकाय में कितना स्पष्ट किया है। देखो!

और जब वे (दर्शन-ज्ञान-चारित्र), समस्त परसमयप्रवृत्ति से निवृत्तरूप... लो! यह व्यवहार का जो विकल्प है, उससे निवृत्त होकर, **समस्त परसमयप्रवृत्ति...** राग की समस्त **प्रवृत्ति से निवृत्तरूप ऐसी स्वसमयप्रवृत्ति के साथ संयुक्त होते हैं...**

भगवान आत्मा अपने स्वभाव में लिपट जाता है। राग की प्रवृत्ति से रहित होकर। समझ में आया? तब जिसे **अग्नि के साथ मिलितपना निवृत्त हुआ है,...** घी का

उष्णता का स्वाद दूर हो गया। ऐसे घी की भाँति। ऐसा अकेला ठण्डा घी हो गया। मीठा! नारायण घी आया, ऐसा कहते हैं। हें? घी को नारायण कहते हैं। फिर वह सन्निपात हो उसे भी नारायण करके घी दे तो सन्निपात बढ़े। नारायण को क्या देना? यह हमारे वे जेरामभाई थे उन्होंने ऐसा कहा था। नारायणभाई को मस्तिष्क में ठीक नहीं था न? ...घी तो नारायण है। घी तो उसे दे। घी दिया और मस्तिष्क फट गया। परन्तु नारायण क्या देना? जेरामभाई भावसार थे न? लाठी के वैद्य थे। घी तो नारायण है। परन्तु नारायण कहाँ लगाना, उसका कोई हेतु? सन्निपात तो है। यहाँ तो बके तो नारायण (घी) दे तो उसके नारायण हो जाओगे। नारायण समझे न? घी को नारायण कहते हैं। भगवान का रूप है। यह तो सबमें शीत उत्पन्न करे। यह तो उसके कारण से ठण्डा दिया तो भी मस्तिष्क फटे। अन्दर से मस्तिष्क में अन्तर है न?

यहाँ कहते हैं कि अग्नि से रहित घी हुआ। इसी प्रकार परसमय की प्रवृत्ति से रहित स्वभाव की प्रवृत्ति हुई तो वही एक मोक्ष का कारण है। समझ में आया? व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार करो, व्यवहार करो। व्यवहार से होता है। व्यवहार तो चाहिए। व्यवहार चाहिए का अर्थ क्या? वह अन्दर विरुद्धरूप कार्य आता है।

मुमुक्षु : नुकसान करने आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान करने के लिये है। चाहिए है, ऐसा उत्साह कैसे करता है वह? विरुद्ध का व्यवहार चाहिए। ऐंई! **विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया होने से...** घी में उष्णता निकल गयी तो घी के कार्य से विरुद्ध कार्य जो उष्णता में था। वैसे मोक्षमार्ग में शुद्धि थी, उसमें जो राग की प्रवृत्ति की अशुद्धि थी, वह निकल गयी, तो अकेला शुद्धि का स्थान रह गया। विरुद्ध कार्य का अभाव हो गया। **विरुद्ध कार्य का कारणभाव निवृत्त हो गया होने से साक्षात् मोक्ष का कारण ही है।** देखो!

अभी स्पष्टीकरण देंगे, हों! अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य की भक्ति का राग भी परसमयप्रवृत्ति बन्ध का कारण है। आहाहा! सेठी आये नहीं? पहले तो सेठी चिल्लाहट मचाते थे। यहाँ तो कहते हैं अरिहन्त, सिद्ध भगवान, प्रवचन की भक्ति भी राग है।

परसमय है। उष्ण घी है। उष्ण घी है, वह मुनि को भी बैठे नहीं। मुनि हो तो क्या हुआ? पूर्ण चारित्र पद से निवृत्त होकर न करे, तब तक मुक्ति कहाँ है? बीच में आया वह बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत का विकल्प, नवतत्त्व की श्रद्धा लेंगे यहाँ १७० में स्पष्ट बात है। समझ में आया?

(गाथा) १७० में लेंगे। नौ पदार्थ की श्रद्धा, तीर्थंकर की रुचि। १७० (में आयेगा)। सूत्र में भगवान ने कहे हुए शास्त्रों की रुचि। १७० (गाथा) **'दूरतर णिव्वाण'** उसे मोक्ष दूर है।

मुमुक्षु : वे कहते हैं परम्परा कारण है, इसलिए लाभ होता है। यहाँ कहते हैं, दूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं दूर है। परम्परा कारण का अर्थ करेंगे। परम्परा कारण, अभी कारण नहीं। इसे छोड़ेंगे, तब मोक्ष होगा। क्या हो? निर्मल आनन्द भगवान स्वयं से निर्मल परिणति पूर्ण करे, तब उसकी मुक्ति होती है। अपने से जब वह राग की प्रवृत्ति छूटे, तब (मुक्ति होती है)।

जब तक मुनि को भी राग की प्रवृत्ति है, तब तक उन्हें बन्ध का कारण है। एक ओर समकिती को बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। एक ओर मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! किस अपेक्षा से कहा। सम्यग्दृष्टि की अपने ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि है तो उसे पर्यायबुद्धि गयी, रागबुद्धि है नहीं। राग-बाग है नहीं। वस्तु अबन्धस्वभावी है, ऐसे परिणाम अबन्ध हो गये। बन्ध है ही नहीं। इस अपेक्षा से अकेली जब चारित्र की अपेक्षा लो, वहाँ राग का अंश भी पंच महाव्रत का रहा, वह भी बन्ध का कारण है। इसलिए स्वसमयप्रवृत्ति नाम का जो जीव स्वभाव में नियत चारित्र, उसे साक्षात् मोक्षपना घटित होता है। उसे ही मोक्षमार्ग की योग्यता उसे घटित होती है। राग का कण, वह मोक्षमार्ग में घटित नहीं होता। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६५

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसम्प्रयोगात्।
भवतीति दु:खमोक्ष: परसमयरतो भवति जीव:।।१६५।।

सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत् ।

अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिभावानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसम्प्रयोग: । अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावत् ज्ञानवानपि तत: शुद्धसम्प्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते । अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलमितान्तरङ्गवृत्तिरितरो जन इति ।। १६५ ।।

शुभभक्ति से दुखमुक्त हो जाने यदि अज्ञान से।
उस ज्ञानी को भी परसमय ही कहा है जिनदेव ने।।१६५।।

अन्वयार्थ :- [शुद्धसंप्रयोगात्] शुद्धसम्प्रयोग से (शुभ भक्तिभाव से), [दु:खमोक्ष: भवति] दु:खमोक्ष होता है। [इति] ऐसा, [यदि] यदि [अज्ञानात्] अज्ञान के कारण; [ज्ञानी] ज्ञानी [मन्यते] [1]माने, तो वह [परसमयरत: जीव:] परसमयरत जीव [भवति] है। ['अर्हंतादि के प्रति भक्ति-अनुरागवाली मन्दशुद्धि से भी क्रमश: मोक्ष होता है' इस प्रकार यदि अज्ञान के कारण (-शुद्धात्मसंवेदन के अभाव के कारण, रागांश के कारण) ज्ञानी को भी (मन्द पुरुषार्थवाला) झुकाव वर्ते, तो तब तक वह भी सूक्ष्म परसमय में रत है।]

टीका :- यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है।

सिद्धि के साधनभूत ऐसे अर्हंतादि भगवन्तों के प्रति भक्तिभाव से [2]अनुरंजित चित्तवृत्ति वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है। अब, [3]अज्ञानलव के आवेश से यदि ज्ञानवान

---

१. मानना=झुकाव करना; आशय रखना; आशा रखना; इच्छा करना; अभिप्राय करना।
२. अनुरंजित=अनुरक्त; रागवाली; सराग।
३. अज्ञानलव=किंचित् अज्ञान; अल्प अज्ञान।

भी 'उस शुद्धसम्प्रयोग से मोक्ष होता है' ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ, उसमें (शुद्धसम्प्रयोग में) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी [1]रागलव के सद्‌भाव के कारण [2]'परसमयरत' कहलाता है। तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसयमरत नहीं कहलाएगा? (अवश्य कहलाएगा ही।)[3] ॥१६५॥

प्रवचन-७६, गाथा-१६५-१६६, वैशाख कृष्ण ६, मंगलवार, दिनांक -२६-०५-१९७०

अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदि त्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

इसकी **टीका :- यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है।** क्या कहते हैं?

यह आत्मा जो है, वह अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसके स्वआश्रय से निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह स्वसमयप्रवृत्ति कहने में आती है। और उसमें जरा रागभाव हो तो उसे परसमयप्रवृत्ति कहने में आती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य, वह पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपने पवित्र

---

१. रागलव=किंचित् राग; अल्प राग।

२. परसमयरत=परसमय में रत; परसमयस्थित; परसमय की ओर झुकाववाला; परसमय में आसक्त।

३. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में इस प्रकार विवरण हैं:—कोई पुरुष निर्विकार-शुद्धात्मभावनास्वरूप परमोपेक्षासंयम में स्थित रहना चाहता है, परन्तु उसमें स्थित रहने को अशक्त वर्तता हुआ, कामक्रोधादि अशुभ परिणाम के वंचनार्थ अथवा संसारस्थिति के छेदनार्थ जब पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि भक्ति करता है, तब वह सूक्ष्म परसमयरूप से परिणत वर्तता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि है; और यदि वह पुरुष शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी, उसे (शुद्धात्मभावना को) छोड़कर 'शुभोपयोग से ही मोक्ष होता है' ऐसा एकान्त माने, तो वह स्थूल परसमयरूप परिणाम द्वारा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है।

शुद्ध स्वभाव का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभाव के आश्रय से प्रवृत्ति-परिणमन हुआ, वह तो स्वसमयप्रवृत्ति मुक्ति का खास कारण, ऐसा कहा गया है। परनतु इतने में जरा राग आ जाये, पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, वह भी बन्ध का कारण है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। आहाहा! देखो!

टीका :- यह, सूक्ष्म परसमय के स्वरूप का कथन है। मिथ्यात्व का नहीं परन्तु चारित्रदोष का कथन है। गजब सेठ!

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग की बात चलती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारमोक्षमार्ग की बात चलती है। व्यवहारमोक्षमार्ग के राग का कण है। वह कण है, वह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है, मानता है, यह सब विकल्प, राग, शुभराग है। वह बन्ध का कारण है। धर्म का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। गजब बात है। समझ में आया?

देखो! **सिद्धि के साधनभूत...** मुक्ति के साधनभूत **ऐसे अर्हंतादि के भगवन्तों...** देखो! साधन कहा। परन्तु साधन, तथापि वह राग है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! अरिहन्त भगवान हो, सिद्ध भगवान हो, आचार्य, उपाध्याय, साधु। सच्चे, हों सच्चे! **ये सिद्धि के साधनभूत...** निमित्तभूत है। वे मुक्ति में निमित्त हैं, तथापि **ऐसे अर्हंतादि के भगवन्तों के प्रति...** भाई! यहाँ तो पाँचों भगवन्त कहा है। अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान, साधु भगवान। **के प्रति भक्तिभाव से अनुरंजित चित्तवृत्ति वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है। अनुरंजित=अनुरक्त; रागवाली; सराग। वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है।** शुद्धसम्प्रयोग अर्थात् शुभयोग है। शुद्ध का अर्थ यहाँ शुभ लेना है। समझ में आया? शुद्ध का अर्थ ही यहाँ शुभ है। सम्प्रयोग हुआ न? शुद्ध के साथ जुड़ान हुआ। शुभ हुआ, ऐसा। तथापि शुद्ध का अर्थ शुभ भक्तिभाव, ऐसा। शुभ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अपना स्वरूप जो आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान का धाम। उसका अन्तर आश्रय लेने से द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने से निश्चय सत्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वही मुक्ति का कारण संवर-निर्जरा है। उसमें पाँच भगवान के प्रति

भक्ति। यह वर्तमान में बहुत ही गप्प चलती है न? सेठी! बस, मन्दिर बनाओ, भगवान की भक्ति करो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। धूल भी नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। राग है, वह शुभराग है। बहुत पूरी श्रद्धा में अन्तर!

अर्हंतादि के भगवन्तों... परन्तु कौन? साक्षात् अरिहन्त सर्वज्ञपरमेश्वर। सिद्ध भगवान, आचार्य भी कौन? सच्चे। अन्तर अनुभव से जिसने वीतरागी पर्याय प्रगट की हो वह। साधु, उपाध्याय भी वह। परमशुद्धउपयोग को प्राप्त हुए हों। पण्डितजी! समझ में आया? अरिहन्तादि भगवन्त कहे न? अरिहन्त आदि भगवन्त अर्थात् कि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। यहाँ तो पाँचों भगवन्त कहे। अपने अरिहन्त, सिद्ध तो पूर्ण स्वरूप प्राप्त हैं। परन्तु आचार्य, उपाध्याय भी उन्हें कहते हैं, अन्तर के आनन्दस्वरूप की अन्तर रमणता। प्रचुर शुद्ध उपयोग होकर, शुद्ध उपयोग, हों! पंच महाव्रत आदि विकल्प नहीं, वह नहीं। उसे तो यहाँ बन्ध का कारण कहते हैं। आहाहा!

ऐसे अर्हंतादि के भगवन्तों के प्रति... कितनी बात स्पष्ट है? **भक्तिभाव से अनुरंजित चित्तवृत्ति...** चित्त की वृत्ति पंच परमेष्ठी के प्रति भक्ति के राग से रंजित वृत्ति है। वह शुभराग है। पुण्यबन्ध का कारण है। वह परसमय है। अनात्मा है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कहो, सेठी! इसमें क्या करना? पंच परमेष्ठी की भक्ति नामस्मरण करे, पूजा भक्ति करे, उसे माने, तब तो कहे कि तो भी शुभराग है, बन्ध का कारण है। धर्म का कारण और धर्मस्वरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। वीतराग का मार्ग जगत ने सुना नहीं है। हें? राग है। **अनुरंजित चित्तवृत्ति है।** देखो!

भक्तिभाव से अनुरंजित चित्तवृत्ति वह यहाँ 'शुद्धसम्प्रयोग' है। वीतरागमार्ग, बापू! कोई अलग प्रकार का है। दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक जानने में आये। ऐसे परमात्मा यह कहते हैं। परमात्मा कहते हैं, वह यहाँ कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं। सिद्धि के साधन। भाषा तो ऐसी उन लोगों ने साधन कहा था न, व्यवहार को साधन। तो कहते हैं कि भाई, सिद्धि के साधन हमने भले व्यवहार से कहा, परन्तु है वह राग। आहाहा! समझ में आया? होता है, वह दूसरी बात है और वह धर्मस्वरूप है, यह बात

दूसरी है। धर्म नहीं, संवर-निर्जरा नहीं। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। (धर्म) जरा भी नहीं। इसलिए कहते हैं न! माने। अभी स्पष्टीकरण करेंगे।

आता है परन्तु उसे खास मोक्ष का मार्ग माने (तो) मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। समझ में आया? **अब, अज्ञानलव के आवेश से यदि ज्ञानवान भी...** उस सम्प्रयोग से मोक्ष होता है। देखो! **अज्ञानलव के...** कारण से, किंचित् अज्ञान-अल्पज्ञान। **आवेश से यदि ज्ञानवान भी 'उस शुद्धसम्प्रयोग से मोक्ष होता है' ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद प्राप्त करता हुआ, उसमें (शुद्धसम्प्रयोग में) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी रागलव के सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है।** यहाँ तो सूक्ष्म कहना है, हों!

मुनि है। छठवें गुणस्थान में आत्मा का आनन्द प्रगट हुआ है, अनुभव प्रगट हुआ है, तीन कषाय का तो अभाव है और बाह्य में नग्नदशा है, जंगल में बसते हैं, ऐसे मुनि को भी अपनी पर्याय में पंच परमेष्ठी के झुकाव की वृत्ति उठती है, (वह) राग है। तो वाणी भी उसमें आयी। वाणी की ओर का झुकाव भक्ति और शुभराग है। यहाँ तो पाँच अरिहन्त (आदि) परमेष्ठी लिये। बाद में यह लेंगे। सूत्र की रुचि भी राग है, यह बाद में आयेगा। आहाहा!

एक चैतन्य भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड। वह स्व के आश्रय से जो भाव हो, वही मुक्ति का मार्ग-धर्म है। बस। आहाहा! कहो, देवजीभाई! यहाँ तो मन्दिर बनाया मन्दिर यह, बनावे कौन? यह तो उस समय होने का था, वह हुआ, वह शुभराग होता है। भक्ति में पंच परमेष्ठी के मन्दिर, पूजा, उसकी श्रद्धा, वह भी शुभराग है। उसमें चित्तवृत्ति राग से रंजित हो जाती है। स्वभाव से च्युत हो जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह अज्ञानलव के कारण, अल्प ज्ञान अर्थात् स्वभाव की पूर्णता नहीं। उसे आवेश में ज्ञानवान भी, मोक्ष होता है ऐसे अभिप्राय द्वारा खेद पाता हुआ। **उसमें (शुद्धसम्प्रयोग में) प्रवर्ते, तो तब तक वह भी रागलव के सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है।** वहाँ तक वह परसमय अर्थात् राग में, आसक्ति में एकाग्र है। फिर करोड़ों मन्दिर बनावे और करोड़ों परमात्माओं की प्रतिमायें स्थापित करे और उस ओर की सवेरे-शाम भक्ति भगवान... भगवान... भगवान। ज्ञानी, हों! अज्ञानी तो उस राग को धर्म माने और

मुक्ति होगी, ऐसा मानता है। परन्तु ज्ञानी को ऐसा भाव आया, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! गजब की बात! वीतराग के साथ कहीं मिलान नहीं खाता।

अभी तो धमाधम... धमाधम चलती है। लो! धामधूम से धमाधम चली। कहाँ गये नटुभाई? दस से बारह लाख का मन्दिर हुआ है। बीस लाख का नहीं। दस से बारह लाख का। साढ़े चार... प्रतिमा है। लाखों रुपये खर्च करके मानते हैं कि धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं। अरे! गजब बात भाई! समझ में आया? एक श्वेताम्बर साधु का लेख आया है। इसमें ही है। इसमें ही है। यह मूर्ति को वस्त्राभूषण है, वह उचित नहीं। इसमें ही है। कल कहा न! हें? इसमें है... भगवान को वस्त्राभूषण की क्या आवश्यकता है? लेखक: श्वेताम्बर मुनिश्री कस्तूरसागरजी! अनुवादक श्री प्रभुदयालजी बेनारा। हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? होगा कोई अपने को खबर नहीं। श्वेताम्बर मुनि कस्तूरसागरजी ने लिखा है। यह क्या अलंकार और सिर पर। ऐसा। है तो बहुत लम्बा। आभूषणों से दर्शन से भोग की भावना उत्पन्न होती है। भगवान को आंगी आई, आंगी आई, ऐसी बातें करते हैं न, वह तो भोग की बात है। भगवान को तो वस्त्राभूषण तो होते भी नहीं। प्रतिमा को आभूषण, वस्त्र और आंगी यह तो सब कलंक हो गया है। क्या करे?

यहाँ तो सच्चे भगवान का प्रतिबिम्ब होता है, तो भी कहते हैं कि यहाँ तो साक्षात् भगवान लिये हैं। यह तो और स्थापना ली है। यहाँ तो साक्षात् अरिहन्त भगवान समवसरण में विराजते हैं। बहुत लिखा है बहुत, हों! भक्ति को उचित यह है कि शृंगार का मोह छोड़कर, शास्त्र... भक्ति, भगवान की भक्ति द्वारा वैराग्यरस प्राप्त करे, तो दोनों समस्या का हल हो जाये। ऐसा कि चोरी भी न हो और यह भोग की वासना उत्पन्न होती है कि ओहोहो! गजब आंगी! गजब आंगी! (यह भी न हो)। बहुत बड़ा लेख है। परन्तु सम्प्रदाय में माने, सम्प्रदाय में ही माने। जिसमें पड़े हों, उसमें से निकलना? हें? मार डाले, हें? बेचारे ने लिखा है। जूनागढ़ में वह सम्पूर्णसागर है। वह भी बहुत लिखता है। वह तो कहता है कि भाई अर्धवस्त्र के फालक के पश्चात् यह श्वेताम्बरमत निकला

है। वह तो यहाँ तक कहता है। श्वेताम्बर साधु है, हमको मिले थे। जामनगर गये थे न? अर्धवस्त्र का टुकड़ा लेने के पश्चात् बिगड़ा हुआ विकार। इस नाम का पुस्तक है। कहाँ अटकेगा? यह दिगम्बर में से श्वेताम्बर साधु निकले, तब पहले अर्धवस्त्र लिया था। अब तो एक-एक को १११ उपकरण हैं। ऐसा उसमें लिखा है। बड़े चोपानिया प्रकाशित है। सब साधु को भेजा है। उसे सम्बन्ध बाँधते नहीं। श्वेताम्बर को मानते... श्वेताम्बर लोग उसे माने... आहाहा! ऐसी बात है। जिसका पक्ष लेकर बोलना, वह मन में सुख माने। जिसका पक्ष छोड़कर बोलना, वह मन में से ताणे। नहीं, ऐसा नहीं।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग की प्रतिमा और उन जैसे अरिहन्त थे, ऐसा उनका प्रतिबिम्ब होता है। तथापि उन अरिहन्त और पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग भी चित्त का रंगा हुआ राग है। वह धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है! आवे अवश्य। आत्मा पूर्ण वीतराग न हो, उसे वह भाव आवे अवश्य, परन्तु है पुण्यबन्ध का कारण। कहो, सेठी! सेठ!

रागलव के सद्भाव के कारण 'परसमयरत' कहलाता है। तो फिर निरंकुश रागरूप क्लेश से कलंकित... आहाहा! सच्चे पंच परमेष्ठी परमेश्वर भगवान की भक्ति भी चित्त में राग रंग गया हुआ राग है। तो कहते हैं कि **फिर निरंकुश रागरूप क्लेश...** जिसमें कोई अंकुश नहीं, ऐसा अशुभराग आ जाये, वह **कलंकित ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन क्या परसयमरत नहीं कहलाएगा?** ऐसे भगवान पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग भी परसमय है। आत्मा नहीं। वह अनात्मदशा हो गयी। आहाहा! इतना राग है? हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? मार्ग की यथार्थ श्रद्धा समझना बहुत कठिन! जगत को इस प्रकार से बाहर से धमाधम में चला लिया न? उसमें धर्म मना दिया।

यहाँ तो कहते हैं, ऐसा भगवान का मार्ग जहाँ परमेश्वर स्वयं कहते हैं कि हमारे प्रति की भक्ति का तेरा प्रेम का भाव तो शुभराग है। आहाहा! कहो, शोभालालजी! जिनवाणी का भाव-यहाँ तो चैतन्य परमेष्ठी लिये हैं। चैतन्य लिये हैं। यह भगवान पाँच।

यहाँ तो पहले चैतन्य लिये हैं, ऐसा। फिर उसकी बात। चैतन्य भगवान पंच परमेष्ठी की भक्ति भी राग है, ऐसा कहते हैं। फिर उसकी बात तो बाद में कहेंगे। समझ में आया?

तब कहे कि ऐसा न करें तो? परन्तु वह आये बिना रहता नहीं। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक अशुभ से बचने के लिये ऐसा (शुभ) भाव आये बिना रहता नहीं। परन्तु है पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा! भारी कठिन काम! समझ में आया? इतना गम्भीर कथन। अब कहते हैं। भगवान का मार्ग सूक्ष्म और गम्भीर है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर साधारण जानता को तो सुनकर ऐसा हो जाये कि अररर! कायर को प्रतिकूल। **ऐसी अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन...** कहते हैं कि परमेष्ठी के प्रति का राग धर्मी जीव को भी राग की वृत्ति रंगी हुई कही जाती है तो इतर जन अज्ञानी और दूसरों का तो क्या कहना? आहाहा! समझ में आया?

अवश्य कहलाएगा ही। अन्तरंग वृत्तिवाला इतर जन परसमयरत बराबर कहलायेगा, ऐसा। भगवान आत्मा को छोड़कर, स्वभाव का सागर, भगवान आत्मा! अकेला आनन्द का सागर, उसके आश्रय आदि से आनन्द उत्पन्न होगा, वह स्वसमय अर्थात् आत्मा की दशा है। भगवान पंच परमेष्ठी के प्रति भी राग, वह परसमय कहने में आता है। तो दूसरे लोगों की बात क्या कहना? मिथ्यादृष्टि पंच परमेष्ठी में राग करता है। और अज्ञानी अशुभराग से रंग जाता है। उसकी तो बात भी क्या करना? नहीं, क्या कहे? क्या कहे? कहो, समझ में आया? नीचे स्पष्टीकरण।

रागलव=किंचित् राग; अल्प राग। परसमयरत=परसमय में रत; परसमयस्थित; परसमय की ओर झुकाववाला;... थोड़ा झुकाव। **परसमय में आसक्त। इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में इस प्रकार विवरण हैं:—कोई पुरुष निर्विकार-शुद्धात्मभावनास्वरूप परमोपेक्षासंयम में स्थित रहना चाहता है,...** अपना स्वभाव निर्विकार शुद्धात्मभावना, शुद्धात्मा में एकाग्र स्वरूप। परमोपेक्षासंयम में स्थित रहना चाहता है। **परन्तु उसमें स्थित रहने को अशक्त वर्तता हुआ,...** निर्बलता के कारण स्वरूप में स्थित नहीं रह सकता। **कामक्रोधादि अशुभ परणिाम के वंचनार्थ अथवा संसारस्थिति के छेदनार्थ...** शुभभाव में स्थिति तो घटित है।

जब पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि भक्ति करता है,... पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवन, भक्ति, विनय, बहुमान, स्तवन। अन्दर झपट लगाता है। क्या कहलाता है वह बाजा में न। बाजा में भक्ति करे न? धमाल। कहते हैं कि यहाँ तो ज्ञानी, धर्मात्मा, अनुभव हो। परन्तु **जब पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि भक्ति करता है, तब वह सूक्ष्म परसमयरूप से परिणत वर्तता हुआ...** तो सूक्ष्म राग में, पर्याय में परिणत होता हुआ **सराग सम्यग्दृष्टि है;...** वह राग कहे इस अपेक्षा, हों! है तो सच्चा सम्यग्दृष्टि परन्तु राग है, इस अपेक्षा से सराग सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। चारित्र की अपेक्षा से। जयसेनाचार्य की यह शैली है।

और यदि वह पुरुष शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी,... अन्तर शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान में रमने में समर्थ होने पर भी, भावना जो यहाँ भायी है पुरुष ने। शुद्धात्मभावना, बस उसे ही भावना कहा है। परन्तु...! अर्थ करे! शुद्ध भगवान आत्मा पवित्र पुण्य-पाप के विकल्प से रहित। **ऐसी शुद्धात्मभावना में समर्थ होने पर भी, उसे (शुद्धात्मभावना को) छोड़कर 'शुभोपयोग से ही मोक्ष होता है'...** इस धर्मक्रिया से मोक्ष होता है, ऐसा माने, **एकान्त माने, तो वह स्थूल परसमयरूप परिणाम द्वारा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है।** समझ में आया?

स्थूल परसमय। यह शुभभाव से मुक्ति माने। परम्परा मुक्ति होगी। सेठ! कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा माने तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आगे अनर्थ का कारण कहेंगे। अनर्थ का कारण कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! सराग और वीतराग दोनों भाव अत्यन्त भिन्न हैं। समझ में आया? चारित्र की व्याख्या चलती है न? चारित्र मोक्ष का कारण है। तो जो चारित्र की स्वरूप में स्थिरता हुई, वह मोक्ष का कारण। उस चारित्र की पर्याय में राग आवे और पंच परमेष्ठी की भक्ति हो जाये तो वह बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

यह जिनवाणी की भक्ति तो एक ओर रही। आज तो साक्षात् पंच परमेष्ठी। शोभालालजी! वाणी के पास जहाँ ऐसे ढोल बजाना और ऐसा करते-करते, ओहो! धुन करना न! कहते हैं कि यह तो मन्द राग हो तो पुण्य है और उसमें मान ले कि मुझे धर्म होगा, (वह) मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। वह जैन नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

क्या है मलूकचन्दभाई! कठिन है? कहते हैं कि पहले समझो, ऐसा कहते हैं। छूटे कब? अभी ऐसी समझण तो करो, कि राग अपने लाभ का कारण नहीं है। स्वभाव का आश्रय-शरण का लाभ धर्म का कारण है। आ जाता है, परन्तु उसे मानना कि बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो अभी तो महाव्रत और सबको धर्म माने। महाव्रत, वह तो विकल्प है, राग है। महाव्रत लिया, चारित्र लिया। धूल में भी चारित्र नहीं। तुझे चारित्र की तो खबर भी नहीं कि चारित्र किसे कहते हैं। देखो! आया? **ऐसा एकान्त माने, तो वह स्थूल परसमयरूप परिणाम द्वारा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है।** लो! १६५ (गाथा) हो गयी। अब १६६।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म परसमय मिथ्यादृष्टि नहीं। पुण्य माने। बस-बस। इतने में राग सम्बन्धी अस्थिरता है और स्थूल समय उससे मुक्ति मानता है तो स्थूल समय मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

गाथा - १६६

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि।।१६६।।

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः।
बध्नाति पुण्यं बहुशो न खलु स कर्मक्षयं करोति।।१६६।।

उक्तशुद्धसम्प्रयोगस्य कथञ्चिद्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासोऽयम् ।

अर्हदादिभक्तिसम्पन्नः कथञ्चिच्छुद्धसम्प्रयोगोऽपि सन् जीवो जीवद्रागलवत्वाच्छुभोपयोगतामजहत् बहुशः पुण्यं बध्नाति, न खलु सकलकर्मक्षयमारभते । ततः सर्वत्र रागकणिकाऽपि परिहरणीया परसमयप्रवृत्तिनिबन्धनत्वादिति।।१६६।।

अरहंत सिद्ध मुनिशास्त्र की अर चैत्य की भक्ति करे।
बहु पुण्य बंधता है उसे पर कर्मक्षय वह नहि करे।।१६६।।

अन्वयार्थ :- [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसम्पन्नः] अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादि की प्रतिमा), प्रवचन (-शास्त्र), मुनिगण और ज्ञान के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव [बहुशः पुण्यं बध्नाति] बहुत पुण्य बाँधता है, [न खलु सः कर्मक्षयं करोति] परन्तु वास्तव में वह कर्मों का क्षय नहीं करता।

टीका :- यहाँ, पूर्वोक्त शुद्धसम्प्रयोग को [१]कथंचित् बन्धहेतुपना होने से उसका मोक्षमार्गपना [२]निरस्त किया है (अर्थात् ज्ञानी को वर्तता हुआ, शुद्धसम्प्रयोग निश्चय से बन्धहेतुभूत होने के कारण वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ दर्शाया है)। अर्हंतादि के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव, कथंचित् [३]'शुद्धसम्प्रयोगवाला' होने पर भी, [४]रागलव

---

१. कथंचित्=किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से (अर्थात् निश्चयनय की अपेक्षा से)। [ज्ञानी को वर्तते हुए शुद्धसम्प्रयोग को कदाचित् व्यवहार से भले मोक्ष का परम्पराहेतु कहा जाए, किन्तु निश्चय से तो वह बन्धहेतु ही है क्योंकि अशुद्धिरूप अंश है।]

२. निरस्त करना=खण्डित करना; निषिद्ध करना; निकाल देना।

३. सिद्धि के निमित्तभूत ऐसे जो अर्हंतादि उनके प्रति भक्तिभाव को पहले शुद्धसम्प्रयोग कहा था। उसमें 'शुद्ध' शब्द होने पर वह 'शुभ' उपयोगरूप रागभाव है। ['शुभ' ऐसे

जीवित (विद्यमान) होने से 'शुभपयोगीपने' को न छोड़ता हुआ, बहुत पुण्य बाँधता है, परन्तु वास्तव में सकल कर्म का क्षय नहीं करता। इसलिए सर्वत्र राग को कणिका भी परिहरनेयोग्य है, क्योंकि वह परसमयप्रवृत्ति का कारण है॥१६६॥

गाथा - १६६ पर प्रवचन

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि।।१६६।।

१६६ गाथा। **यहाँ, पूर्वोक्त शुद्धसम्प्रयोग को कथंचित् बन्धहेतुपना होने से उसका मोक्षमार्गपना निरस्त किया है...** टीका है न? पाठ में सब शब्द नहीं यह तो। शब्दार्थ करना पड़ेंगे। आहाहा! पहले शब्दार्थ—अन्वयार्थ।

अर्हंत=साक्षात् परमात्मा वीतरागदेव समवसरण में विराजमान तीर्थंकर हों। **सिद्ध**=अशरीरी परमात्मा। **चैत्य=अर्हंतादि की प्रतिमा।** देखो! ऐसी प्रतिमा। प्रतिमा आयी उसमें। अरिहन्त, सिद्ध आदि की प्रतिमा पंच परमेष्ठी की प्रतिमा होती है। पंच परमेष्ठी की प्रतिमा होती है। परन्तु पंच परमेष्ठी जैसी। समझ में आया? उसमें शृंगार और सिर पर बड़े मुकुट चढ़ावे और वह जिनबिम्ब ही नहीं है। समझ में आया?

अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादि की प्रतिमा), प्रवचन (-शास्त्र),... यह शास्त्र, जिनवाणी और **मुनिगण**=साधु के झुण्ड और उनके प्रति। लो! मुनि अर्थात् अन्दर तीन आये न? **और ज्ञान के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव...** और ज्ञान-शास्त्र का ज्ञान। उसके प्रति भक्ति। **बहुत पुण्य बाँधता है,...** उसमें क्या है? अबन्ध भगवान आत्मा में बन्ध होता है। आहाहा! **बहुत पुण्य बाँधता है, परन्तु वास्तव में वह कर्मों का क्षय नहीं करता।** लो! ठी।

अर्थ में जिस प्रकार 'विशुद्ध' शब्द का कदाचित् प्रयोग होता है, उसी प्रकार यहाँ 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है]

४. रागलव= किंचित् राग; अल्प राग।

मुमुक्षु : संवर-निर्जरा नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर-निर्जरा यह नहीं। आहाहा!

अभी तो धमाधम जो कुछ दूसरा कहे तो ऐई... तुम्हारी श्रद्धा भ्रष्ट हो गयी है। ...! सुन तो सही भाई! वीतरागमार्ग में वीतराग का पोषक हो, वह मार्ग है। राग आता है, उसे जाने। परन्तु राग से मुक्ति और धर्म माने, ऐसा नहीं बनता। तो वीतरागमार्ग कहाँ से रहे? समझ में आया? वह तो राग मार्ग हो गया। (संवत्) १९८२ में एक बार यह बात की थी। हम तब सम्प्रदाय में थे न, वढवाण चातुर्मास था। वढवाण में चातुर्मास। (संवत्) १९८२, हों! कितने वर्ष हुए? ४४। तो वढवाण में वे नहीं एक भाई! मणिभाई न? मणिभाई वैद्य। वे थे, फिर जरा रात्रि में थोड़े लोग बैठे थे। उसमें बात की, देखो भाई! दोनों सम्प्रदाय में ऐसा हो गया है। दो पिता थे। उसमें एक लड़के के पिता ने दूसरे के पिता को सौ रुपये दिये थे। तो बराबर सौ रुपये लिखे थे। दोनों पिता तो गुजर गये। परन्तु जिसने सौ रुपये दिये थे, उसके लड़के ने सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ा दिये—दस हजार लिख दिये। और कहे कि तेरे पिता को मेरे पिता ने दस हजार रुपये दिये हैं, वह लाओ। वह कहे, मैं बहियों में देखूँगा। बहियों में देखा तो सौ निकले। परन्तु यह सौ स्वीकार करूँगा तो दस हजार माँगता है। बहियों में है ही नहीं। ८२ के वर्ष में वढवाण चातुर्मास था न तब! सुन्दरवोरा के उपाश्रय में था। कहा, ऐसा यह स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दोनों को हो गया है। मन्दिरमार्गी मानो सौ रुपये वृत्ति में है, वह सच्ची बात है परन्तु उसने ऊपर दो शून्य चढ़ाये। सिर पर शृंगार और आंगी और मुकुट। उसने माँगा कि मेरे पिता ने तेरे पिता को इस प्रकार सब ऐसा कहते हैं और माँगा है। मैं देखूँगा बहियों में। देखा तो शास्त्र में मूर्ति है। यदि हाँ करने जाऊँगा तो यह सब माँगेगा। शास्त्र में मूर्ति नहीं, जाओ उड़ाओ। ऐ कन्हैयालालजी! ऐसा हो गया, कहा, हों! ८२ की बात है, हों! ४४ वर्ष। २६ और अठारह। सुन्दरवोरा का उपाश्रय है न वह वढवाण में? अपने लींबड़ी में संघवी का उपाश्रय है न? इसी प्रकार वहाँ सुन्दर वोरा का उपाश्रय है। आहाहा! लोगों को सम्प्रदाय की दृष्टि में यथार्थ वस्तु क्या है, यह बैठना भारी कठिन! ऐ झबेरचन्दभाई! सुना है या नहीं? सब सेठिया कहलाते हैं।

एक व्यक्ति ने कहा सो (तो) दो शून्य चढ़ाकर तो वह कहे सौ है। परन्तु यदि

सौ स्वीकार करूँगा तो दस हजार माँगता है। है ही नहीं। शास्त्र में प्रतिमा ही नहीं है, जाओ। और वह प्रतिमा को सिर पर मुकुट और आंगी सहित माँगी सब। सेठ! कहा, ऐसी गड़बड़ हो गयी। ४४ वर्ष पहले कहा था, हों! रात्रि में सुन्दरवोरा के उपाश्रय में। मणिभाई वहाँ के थे न वढवाण के? मणिलाल सुन्दरजी। हाँ, हाँ। वाँचन करते थे। वैद्य थे। वडवा में रहते थे। हें? हाँ, मोटे थे। मैंने कहा, भाई ऐसा है, भाई! अभी बाहर कहने जायेंगे तो खलबलाहट हो जायेगी। तब इसमें (मुँहपत्ती) में थे न। मार्ग तो ऐसा है, भाई, कहा।

यहाँ तो कहते हैं कि जो वास्तविक परमात्मा और वास्तविक परमात्मा की प्रतिमा और वास्तविक प्रवचन और वास्तविक मुनि और वास्तविक सच्चे ज्ञान के प्रति भक्ति, लो! इतने बोल लिये। आहाहा! कहो, जेठुभाई! यहाँ तो पूरे उसमें अपने तो आगम और प्रतिमा का आधार। ऐई! चेतनजी! क्या हमारे कहते हैं न? आधार है, जाओ। जिनबिम्ब और जिनप्रतिमा। वहाँ जिनबिम्ब भी कहाँ है? परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जिनबिम्ब यथार्थ भगवान की प्रतिमा वीतरागी हो, तो भी उसके प्रति का भक्ति का भाव परद्रव्य का आश्रय होता है, इसलिए शुभभाव है। आहाहा! अकेला शास्त्रज्ञान है। शास्त्रज्ञान की कृत्रिम भक्ति। बहुत पुण्य बाँधता है। '**बध्नाति पुण्यं बहुसो न खलु स कर्मक्षयं करोति**' लो! इतना तो पाठ स्पष्ट है, परन्तु अब श्रद्धा की खबर नहीं होती। क्या करे? हें?

मुमुक्षु : सब पाठ स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पाठ स्पष्ट है। प्रतिमा रखी, अरिहन्त रखे, सिद्ध रखे, मुनिजन, आचार्य, उपाध्याय, साधु इसमें आये। शास्त्र और शास्त्र का ज्ञान आया। समझ में आया? यहाँ तो भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप, शुद्ध आनन्दकन्द यह उसका आश्रय लेकर, सम्यक् प्रतीति, दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अनुभव हो, वही मार्ग मोक्ष का है। बीच में राग आवे, होता है परन्तु है वह बन्ध का कारण, पुण्यबन्ध होगा। कहो, समझ में आया?

एक ओर ऐसा कहते हैं कि अविरति सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं होता। किस अपेक्षा से (कहते हैं), यह समझ में तो आना चाहिए या नहीं? सम्यग्दर्शन हुआ, अपने

शुद्ध स्वरूप का अनुभव। वह स्वरूप नहीं। बन्ध... बन्ध है ही नहीं। वस्तु बन्ध नहीं और वस्तु की दृष्टि बन्ध नहीं। फिर रागादि रहे और राग से बन्ध पड़े, यह तो परज्ञेय में जाता है। अपने ज्ञान भाव में आते नहीं, ऐसी बात है। वस्तु में पहले से है नहीं। परन्तु क्या करे? ऐ चन्दुभाई! अब तैयार हो गये हैं। तैयार हो गये हैं। टेप भी करते थे। यह तो समय की बलिहारी है न? समझ में आया? आहाहा!

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर फरमाते हैं। भाई! हमारे प्रति भक्ति का राग, वह भक्ति, वह राग है, हों! आहाहा! यह तो वीतराग कहते हैं, हों! समझ में आया? हमारे मुनि, हमारे आचार्य, उपाध्याय सच्चे, उन्हें आहार-पानी दे, उनकी भक्ति करे तो शुभराग है; धर्म नहीं। ऐसा भगवान पुकारते हैं। आहाहा! दूसरे तो कहे कि हमको पूजो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। भरो हमारे लौकिक बात है। हें? लौकिक। सच्ची समझ करना हो तो मार्ग यह है। इस मार्ग के बिना एक कदम आगे चल नहीं सकता। चौरासी के अवतार में भटक मरेगा। आहाहा! समझ में आया?

टीका :- यहाँ, पूर्वोक्त शुद्धसम्प्रयोग को कथंचित् बन्धहेतुपना होने से उसका मोक्षमार्गपना निरस्त किया है... कथंचित्=किसी प्रकार;... वापस कथंचित् का अर्थ किंचित् मोक्षमार्ग और किंचित् बन्धमार्ग, ऐसा नहीं। स्पष्ट करते हैं न? कथंचित् शब्द पड़ा है न? **किसी अपेक्षा से (अर्थात् निश्चयनय की अपेक्षा से)। [ज्ञानी को वर्तते हुए शुद्धसम्प्रयोग को...** ज्ञानी को, हों! **कदाचित् व्यवहार से भले मोक्ष का परम्पराहेतु कहा जाए, किन्तु निश्चय से तो वह बन्धहेतु ही है क्योंकि अशुद्धिरूप अंश है।]** आहाहा! वीतरागमार्ग! वीतरागस्वभाव से उत्पन्न होता है। समझ में आया?

निरस्त करना=खण्डित करना; निषिद्ध करना; निकाल देना। आगे आता है न? निरस्त किया है। **मोक्षमार्गपना निरस्त किया है...** ऐसा कहा न? (मोक्षमार्ग) है ही नहीं। आहाहा! मोक्षमार्ग ही नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग में भक्ति का प्रेम, पंच परमेष्ठी की श्रद्धा का राग, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा था। इसका अर्थ यह कि व्यवहारमोक्षमार्ग है ही नहीं। वह तो बन्ध का मार्ग है। समझ में आया?

मोक्षमार्गपना निरस्त किया है... निरस्त का अर्थ नीचे किया है। **खण्डित करना;**

निषिद्ध करना; अपने यह निषिद्ध तो दोपहर में आ गया। व्यवहार निषेध है। हाँ, निश्चय-व्यवहार नयाश्रित। 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।' आहाहा! यह प्रतिमवाले प्रतिमा को माने और जबकि वे दूसरे प्रतिमा को न माने, वे और महाव्रत के विकल्प से धर्म होता है, ऐसा माने। समझ में आया? एक तो वस्तु थी। अनादि से मूर्ति प्रतिमा जब तक शुभभाव हो तो ऐसी मूर्ति अनादि की है। समझ में आया? कहीं नयी नहीं है। आहाहा!

देखो न! द्वारिका जब सुलगी थी द्वारिका। भगवान तो देश में-सौराष्ट्र में थे। द्वारिका सुलगी। आहाहा! जिनप्रतिमायें और जिनमन्दिर (जलकर) राख (हो गये)। शोभालालजी! आहाहा! भगवान ने तो पहले से कहा था। बारह वर्ष पहले। हेतु तो उसमें ऐसा आया है। इसमें कहीं सुना है परन्तु वस्तु में ऐसा होना चाहिए। श्वेताम्बर में ऐसा हेतु आता है कि गजसुकुमार ने दीक्षा ली न, गजसुकुमार। गजसुकुमार समझते हो? गजसुकुमार नहीं? श्रीकृष्ण के भाई। हाँ, वे दीक्षित हुए तो गाँव में भगवान नेमिनाथ प्रभु बाहर विराजते थे। अन्दर में गाँव में वासुदेव और बलदेव तीनों उत्तम पुरुष। क्या कहलाते हैं वे? शलाका पुरुष और गजसुकुमार मुनि, उन्हें पघड़ी अग्नि में। आहाहा! तब प्रश्न उठा। ऐसा आता है। बलदेव को। यह क्या प्रभु? यह क्या? हमारी अस्ति, आपकी मौजूदगी, इस द्वारिका के श्मशान में यह गजसुकुमार राजकुमार आज दीक्षित और आज जलकर देह छूट गयी। द्वारिका को कौन जलायेगा प्रभु? ऐसा प्रश्न पूछा। आहाहा! यह स्थिति! ऐसा प्रश्न हुआ। बलदेव पूछते हैं।

प्रभु! यह गजसुकुमार आपकी यह मौजूदगी, हमारी मौजूदगी और यह गजसुकुमार राजकुमार को अग्निदाह दे। सिर पर रखकर जलाकर। इस द्वारिका का दाह होगा, ऐसा लगता है। प्रभु! यह द्वारिका कब जलेगी? तब कहते हैं, बलदेव! बारह वर्ष पश्चात् यह द्वारिका दाह होकर जल जायेगी। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह प्रश्न ऐसा आता है। भाई! यह क्या? साधारण बनाव यह क्या है यह? ऐई! हिम्मतभाई! यह है क्या यह? क्या हुआ यह? भगवान की उपस्थिति, वासुदेव, बलदेव। वासुदेव का छोटा भाई ऐसे हाथी के होदे लेकर दर्शन करने (जाते हैं)। दर्शन करके आते हैं और उसकी

सोनासुन्दरी सोनी की कन्या भिजवाते हैं अन्तपुर में। यह क्या ? एक दिन। आहाहा ! यह एकदम, बदलाव !

प्रभु ! यह द्वारिका नगरी की स्थिति कितनी ? बारह वर्ष की। बारह वर्ष में द्वारिका जल जाती है। शोभालालजी ! किसके हाथ से ? जरतकुमार श्रीकृष्ण का बड़ा भाई। उसके हाथ से श्रीकृष्ण का मरना और द्वीपायन के कारण द्वारिका का दाह। आहाहा ! द्वीपायन ने सुना, बाहर निकल गया बेचारा। हाय... हाय ! मेरे हाथ से यह ? बाहर निकल गया। जरतकुमार के हाथ से श्रीकृष्ण का देह छूट गया। जरतकुमार बाहर निकल गये। कुदरत में ऐसा समय आया वहाँ सबको ऐसा हो गया कि बारह वर्ष हो गये। बारह वर्ष हो गये। जो बननेवाला है, भगवान के मुख से निकला है, वह कहीं बदलता नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : क्रमबद्धपर्याय कौन टाल सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन टाल सकता है ? आहाहा ! यह बात की थी। यहाँ पण्डाल जला तब। यह तो होता है, यह नयी चीज़ नहीं है। सेठ थे वहाँ भावनगर ? समझ में आया ? यह पर्याय उस समय में निमित्त ने किया, ऐसा कहना, वह तो कौन था, यह ज्ञान करने के लिये (बात है)। बाकी तो उस समय वह पर्याय होनेवाली थी। दूसरी हो सके नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! और छह-छह महीने तक। इस ओर देखो तो श्रीकृष्ण की देह छूट गयी। कौसम्बी वन में। जरतकुमार उनका बड़ा (भाई)। आहाहा ! वह भी दुःख व्यक्त करता है, अरर ! प्रभु ! जिसके लिये मैं बारह वर्ष बाहर रहूँ और मेरे हाथ से यह हुआ ? तुम कौन आये ! जंगल में कोई मनुष्य नहीं। मेरे हाथ से हुआ ? रोता... रोता... रोता है ! आहाहा ! जरतकुमार। मुझे तो दूसरा कहना है। वहाँ छह महीने सुलगी, तब तक छह महीने बलदेव ने सिर पर रखा... देखो ! मेल कैसा है ? हें ? आहाहा ! वहाँ पूरा हुआ वहाँ, यहाँ पूरा हुआ छह महीने में और हजारों-लाखों राजकुमार, रानियाँ, हाथी, घोड़े, बैल, गुड़, तेल, घी, केरोसिन। बारह योजन की चौड़ी और नौ योजन की लम्बी वह नगरी छह महीने तक सुलगी।

होने के काल में होता है, उसमें फेरफार करने को तीर्थंकर भी समर्थ नहीं है।

यहाँ छह महीने का (द्वारिका का) जलना पूरा हुआ, यहाँ छह महीने पूरे हुए ऊपर। बलदेव ने छोड़ दिया। यहाँ पूरा हुआ, देखो न क्या होता है? भगवान तो अभी थे। फिर तो पाण्डवों ने दीक्षा ली। पाण्डवों के पास जरतकुमार गये। फिर उसे फिर से विवाह किया। यह तो सब जल गये। राज गया। थोड़ा किया, फिर शुरु किया। फिर पाण्डवों ने दीक्षा ली। दीक्षा ली, फिर यहाँ शत्रुंजय पर आते हैं। तब उन्हें भगवान के दर्शन करने के लिए यात्रा... वहाँ सुना कि मासखमण का पारणा चलता था पाँचों को। सुना, नेमिनाथभगवान गिरनार से मोक्ष पधारे। चढ़ गये ऊपर, लो! शान्ति से। उसका भानेज था। आहाहा! क्या हुआ? वहाँ शत्रुंजय पर तीन तो मोक्ष गये। श्वेताम्बर में पाँचों आते हैं। और दो को—नकुल और सहदेव को जरा विकल्प आया, देखो! मुनि को विकल्प आया। बड़े भाईयों का क्या हुआ होगा? (इतने में) दो भव हो गये। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बाँध लिया। अभी सर्वार्थसिद्धि में है, पश्चात् मोक्ष जायेंगे। आहाहा!

इतना राग! महामुनि! हें? थोड़े (काल के लिये) परन्तु मुनि का राग। मुनि महा होकर कैसे होंगे भीम, अर्जुन, धर्मराजा? समझे? वे तीन तो केवलज्ञान में अन्दर (केली करते हैं)। आहाहा! वह जला तब रामजीभाई कहे कि उनका दीक्षा का दिन था, वह कर्म जले। छोड़ न! ऐई! कितने बेचारों को... हुआ क्या? होता है क्या यह वह? अब छोड़ न (बात) होना हो, वह होता है। आहाहा! ऐई चिमनभाई! तुम नहीं थे न?

यहाँ कहते हैं कि ऐसे मुनियों के प्रति जरा भी प्रेम हो गया, राग हो गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। वह सर्वार्थसिद्धि का तैतीस सागर और वापस एक मनुष्य का भव। ऐसी राग की कलंक दशा है। यह तो शुभराग कहा न? ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री परमात्मा ने। मार्ग ऐसा है, बापू! लोगों को अन्दर बैठता नहीं।

कहते हैं, **अर्थात् ज्ञानी को वर्तता हुआ, शुद्धसम्प्रयोग निश्चय से...** ज्ञानी को, हों! **बन्धहेतुभूत होने के कारण वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ दर्शाया है।** यह एक ओर ज्ञानी को बन्ध नहीं। और एक ओर ज्ञानी को (बन्ध है), भाई! किस अपेक्षा से (कहते हैं) सुन तो सही!

दसवें गुणस्थान तक अस्थिरता का राग है। वह बन्ध पद्धति में है, ऐसा बतलाया

है। जहाँ सम्यक् भान हुआ (तो) वस्तु में राग नहीं, दृष्टि में राग नहीं। वस्तु अबन्ध है और दृष्टि अबन्ध परिणामी है। समझ में आया? आहाहा! इस अपेक्षा से इनकार किया। लो! बन्ध नहीं है। बन्ध अधिकार में आता है कि भाई! समिति-गुप्ति से चले, उसे बन्ध नहीं। यह तो बाकी प्रवृत्ति की अपेक्षा से, बाकी अभ्यन्तर से तो सम्यग्दृष्टि को बन्ध है ही नहीं। यह क्या है? यह तो पंचास्तिकाय। समझ में आया? समयसार में।

समयसार में है न? यहाँ समितिरूप प्रवृत्ति करनेवाले मुनियों के नाम लिये गये हैं। अविरत, देशविरत के नाम नहीं लिये गये हैं। क्योंकि अविरत, देशविरत की बाह्य समितिरूप प्रवृत्ति नहीं होती। इसलिए चारित्रमोहसम्बन्धी राग से किंचित् बन्ध होता है। उसमें सर्वथा बन्ध के अभाव की अपेक्षा उनका नाम नहीं लिया। वैसे तो अन्तरंग अपेक्षा से तो उन्हें भी निर्बन्ध ही जानना चाहिए। निर्बन्ध 'ही' जानना चाहिए। उस समय क्या अपेक्षा कही है! समझ में आया?

सर्वत्र शुरु की है न। उसमें क्या? पहले से यह वह तो कलशटीका में कहते हैं, भाई! यह तो ज्ञान से मोक्ष... ज्ञान से मोक्ष। तीन? यह तीन उसमें आ गये। सुन तो सही? ज्ञान, समकित और स्वरूप की स्थिरता तीनों उसमें आ गये। कलशटीका में तीन जगह है। आठवें पृष्ठ, चौथे पृष्ठ और दूसरी जगह है कहीं तीन जगह है। कलशटीका में है। समझे न? एक सम्यक् अनुभव हुआ तो उसमें तीनों आ गये। थोड़ा राग बाकी रहा, उसकी यहाँ गिनती गिनने में नहीं आयी। यहाँ सब गिना है।

महामुनि... आहाहा! यहाँ तो मोक्षमार्ग उत्पन्न है न? थोड़ा राग है, तब तक बन्ध है। दसवें गुणस्थान तक थोड़ा राग रहता है तो बन्ध है। परन्तु जहाँ अन्तर्दृष्टि का विषय बनाने का है तो रागवाला आत्मा है, वह तो है भी नहीं। रागवाला आत्मा है नहीं और राग (का) कर्ता आत्मा नहीं है। उसका क्या करना है? समझ में आया? आहाहा! कहो, शान्तिभाई! आहाहा!

परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने एकसमय में तीन काल, तीन लोक देखे, उसमें ऐसा देखा और ऐसा कहा - धर्मात्मा सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि अनुभवी पंच महाव्रतधारी चारित्रवन्त को भी पंच महाव्रत का विकल्प उठता है और पंच परमेष्ठी की

भक्ति (का विकल्प) उठता है, (वह) बन्ध का कारण है। आहाहा! किस अपेक्षा से कथन क्या है, यह समझे बिना झगड़ा करे तो कहीं (पार आवे, ऐसा नहीं है)। ऐसी बात है। समझ में आया? झगड़ालू लड़का झगड़ा ही करे। कजिया नहीं समझे? कजिया को क्या कहते हैं? झगड़ालू। झगड़ालू लड़का हो तो झगड़ा ही करे। आहाहा!

कहते हैं, **ज्ञानी को वर्तता हुआ...** धर्मात्मा, अहो! अपने निजानन्द स्वभाव में सावधान हुआ। राग की सावधानी छूट गयी है। समझ में आया? निश्चय से तो राग से व्यवहार से समकिती मुक्त है। ऐसा नहीं कहा? व्यवहार से तो मुक्त है। निश्चय में लीन है और व्यवहार से मुक्त है। यह परसन्मुख का राग कितना आता है, वह यहाँ बताया है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **ज्ञानी को वर्तता हुआ, शुद्धसम्प्रयोग अर्थात् शुभभाव, निश्चय से बन्धहेतुभूत होने के कारण वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ दर्शाया है।** यह कहीं गुप्त नहीं रखा। हरदारजी! गुप्त रखा है? यह तो पुस्तक-शास्त्र है। अर्थ ऐसा है। हुकमचन्दजी भी वहाँ जयपुर में बराबर लगाते हैं। हें?

मुमुक्षु : सब आपकी कृपा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अच्छा। उसे अच्छा मिल गया। पाँच लाख का हॉल बना तो उस प्रमाण हुकमचन्दजी पण्डित (भी) मिल गये। शासन का इतना तो भाग्य है न? योग्य मिले, वह भी पर्याय है न?

कहते हैं, **अर्हंतादि के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव,...** अरहन्तादि के प्रति-भगवान अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और ऊपर कहे वे सब। **चैत्य (-अर्हंतादि की प्रतिमा), प्रवचन (-शास्त्र), मुनिगण और ज्ञान के प्रति...** ऐसे सब लेना। **कथंचित् 'शुद्धसम्प्रयोगवाला' होने पर भी,...** तीसरा कहा है। (नीचे) **सिद्धि के निमित्तभूत ऐसे जो अर्हंतादि उनके प्रति भक्तिभाव को पहले शुद्धसम्प्रयोग कहा था। उसमें 'शुद्ध' शब्द होने पर वह 'शुभ' उपयोगरूप रागभाव है।** हमारे पण्डितजी स्पष्टीकरण करते हैं। **['शुभ' ऐसे अर्थ में जिस प्रकार 'विशुद्ध' शब्द का कदाचित् प्रयोग होता है, उसी प्रकार यहाँ 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है]** शास्त्र में शुभ के स्थान पर विशुद्ध

शब्द भी प्रयुक्त होता है। आता है या नहीं? शुभ को, यहाँ अपने समयसार में भी आया न? वह विशुद्ध २९ बोल—५० से ५५ गाथा।

शुभ को विशुद्ध भी कहते हैं। परन्तु है शुभ। कहीं शुद्ध से विशेष शुद्धि, ऐसा नहीं। तो कहते हैं कि जैसे शुभ और विशुद्ध शब्द का प्रयोग होता है, उस प्रकार से शुद्ध शब्द का प्रयोग शुभ में भी होता है। जैसे शुभ को विशुद्ध कहते हैं, वैसे शुभ को यहाँ शुद्ध कहा है, ऐसा कहते हैं। यह तो एक प्रकार है। **अर्हंतादि के प्रति...** पंच परमेष्ठी के प्रति धर्मात्मा ज्ञानी को भी-सन्तों को भी सच्चे सन्त मुनि धर्मात्मा, आहाहा! **कथंचित् 'शुद्धसम्प्रयोगवाला' होने पर भी, रागलव जीवित (विद्यमान) होने से...** लो! आहाहा! **जरा सा राग, अल्प राग...** जीवित विद्यमान है इतना राग। आहाहा!

एक ओर कहे कि ज्ञानी को राग नहीं। परन्तु वह राग राग में है न? राग है तो सही न? राग नहीं है? वीतराग हो गये हैं? वीतराग हो तो राग नहीं होता। समझ में आया? **रागलव जीवित (विद्यमान) होने से 'शुभपयोगीपने' को न छोड़ता हुआ,...** उस शुभराग को छोड़ता नहीं। देखो! ऐसी भाषा ली है कि अपने में कभी शुभराग छोड़ता नहीं। बहुत ही पुण्य बाँधता है। आहाहा! बन्धन होता है। आहा! परन्तु **वास्तव में सकल कर्म का क्षय नहीं करता।** लो! वास्तव में सब कर्म का क्षय नहीं करता। तब कहे, थोड़ा तो करता है न? परन्तु थोड़ा तो वह शुद्धि है, उसके कारण से करता है। इसके (शुभभाव के) कारण से नहीं। समझ में आया? **वास्तव में सकल कर्म का क्षय नहीं करता।** इसलिए यहाँ कहीं राग रहे, तब तक पूर्ण कर्म का क्षय होकर केवलज्ञान नहीं होता, ऐसा बताते हैं। राग से कर्म का क्षय पूर्ण नहीं होता और थोड़े कर्म का क्षय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शुद्ध स्वभाव के कारण राग की भूमिका में कर्म की निर्जरा तो है, परन्तु राग है, तब तक सर्वथा कर्म का क्षय हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! राग की स्थिति में। राग से नहीं। जहाँ राग है, वहाँ शुद्धस्वभाव की परिणति तो धर्मात्मा को है। उससे पूर्ण कर्म का क्षय नहीं होता। क्योंकि राग भाग है। परमशुद्धि यहाँ नहीं तो परमशुद्धि की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! कठिन समझ करना यह। समझ-समझ और समझ एक और एक।

वीतरागमार्ग बापू पूरा। दुनिया कुछ मानकर बैठी है! अरे रे! ऐसा समय मिला मनुष्य का देह, उसमें सच्ची बात की समझण यथार्थ नहीं करे (तो) चौरासी के अवतार में कहीं पता नहीं लगेगा। यह दुनिया कोई साथ नहीं आती। आहाहा! कि भई! हमको माननेवाले बहुत ही थे। बहुत मान, इसलिए हमारा अच्छा था। धूल भी अच्छा नहीं। सुन न अब। समझ में आया? वीरजीभाई!

इतना राग भी नुकसानकारक जहर का कण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतराग प्रभु कहे, हों! वीतराग ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति का प्रेम तुझे उठता है, वह राग है, बन्ध का कारण है। तेरे स्वभाव के सन्मुख देख, उसमें राग का अभाव होगा। हरदारजी! आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें किसी के साथ पक्षपात लगे? समझ में आया? पक्षपात कहाँ? वस्तु ऐसी है वहाँ। **इसलिए सर्वत्र राग को कणिका भी परिहरनेयोग्य है,...** आहाहा! थोड़े में बहुत। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६७

जस्स हिदएणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि।।१६७।।

यस्य हृदयेऽणुमात्रो वा परद्रव्ये विद्यते रागः।
स न विजानाति समयं स्वकस्य सर्वागमधरोऽपि।।१६७।।

स्वसमयोपलम्भाभावस्य रागैकहेतुत्वद्योतनमेतत् ।

यस्य खलु रागरेणुकणिकाऽपि जीवति हृदये न नाम स समस्तसिद्धान्तसिन्धुपारगोऽपि निरुपरागशुद्धस्वरूपं स्वसमयं चेतयते । ततः स्वसमयप्रसिद्ध्यर्थं पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्याय-मधिदधताऽर्हदादिविषयोऽपि क्रमेण रागरेणुरपसारणीय इति ।। १६७ ।।

अणुमात्र जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति राग है।
हो सर्व आगमधर भले जाने नहीं निजभक्ति को।।१६७।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जिसे [परद्रव्ये] परद्रव्य के प्रति, [अणुमात्रः वा] अणुमात्र भी (लेशमात्र भी) [रागः] राग [हृदये विद्यते] हृदय में वर्तता है [सः] वह, [सर्वागमधरः अपि] भले सर्व आगमधर हो तथापि, [स्वकस्य समयं न विज्ञानाति] स्वकीय समय को नहीं जानता (-अनुभव नहीं करता)।

टीका :- यहाँ, स्वसमय की उपलब्धि के अभाव का, राग एक हेतु है, ऐसा प्रकाशित किया है (अर्थात् स्वसमय की प्राप्ति के अभाव का राग ही एक कारण है, ऐसा यहाँ दर्शाया है)। जिसे रागरेणु की कणिका भी हृदय में जीवित है वह, भले ही समस्त सिद्धान्तसागर का पारंगत हो तथापि, [१]निरुपराग-शुद्धस्वरूप स्वसमय को वास्तव में नहीं चेतता (-अनुभव नहीं करता)। इसलिए, [२]धुनकी से चिपकी हुई रुई का न्याय लागू होने से, जीव को स्वसमय की प्रसिद्धि के अर्हंतादि-विषयक भी रागरेण (-अर्हंतादि के ओर की भी रागरज) क्रमशः दूर करनेयोग्य है॥१६७॥

---

१. निरुपराग-शुद्धस्वरूप=उपरागरहित (-निर्विकार) शुद्ध जिसका स्वरूप है ऐसा।
2. जिस प्रकार धुनकी से चिपकी हुई थोड़ी-सी भी रुई, धुनने के कार्य में विघ्न करती है, उसी प्रकार थोड़ा-सा भी राग स्वसमय की उपलब्धिरूप कार्य में विघ्न करता है।

प्रवचन-७७, गाथा-१६७-१६८, वैशाख कृष्ण ७, बुधवार, दिनांक -२७-०५-१९७०

यह पंचास्तिकाय मोक्षमार्ग का विस्तार। १६७ गाथा।

जस्स हिदएणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि।।१६७।।

टीका :- यहाँ, स्वसमय की उपलब्धि के अभाव का,... (कारण) **राग एक हेतु है,...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप आनन्द की प्राप्ति में विरुद्ध का कारण, प्राप्ति का अभाव, उसका राग एक हेतु है। सूक्ष्म राग, पंच परमेष्ठी के प्रति राग। देखो न! आचार्यों ने परद्रव्य शब्द प्रयोग किया है न? '**परदव्वम्हि विज्जदे रागो**' उस परद्रव्य के प्रति राग से लाभ माने, तब तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु राग है, वह बन्ध का कारण है। ऐसा माननेवाले को भी राग (की) उपलब्धि स्वभाव के अनुभव में विघ्न है। कहो, सेठ!

पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग। पंच महाव्रत का विकल्प तो कहीं निकाल दिया है। जिनका उपकार है, उपकार। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य आदि। कहते हैं, **स्वसमय की उपलब्धि के अभाव का,...** अनुभव के अभाव में कारण **राग एक हेतु है, ऐसा प्रकाशित किया है। जिसे रागरेणु की कणिका भी हृदय में जीवित है...** देखो! आहाहा! **जिसे रागरेणु...** =सूक्ष्म रजकण। ऐसी **कणिका भी हृदय में जीवित है वह, भले ही समस्त सिद्धान्तसागर का पारंगत हो...** थोड़ा सा राग विघ्न करता है कि स्वरूप की प्राप्ति अनुभव मुक्ति आदि नहीं होती। आहाहा!

यहाँ तो (लोग) चौथे गुणस्थान में शुभभाव है, उसमें यह शुद्धि है, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! यह तो सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र, सच्चे प्रवचन, सच्चा शास्त्र का ज्ञान, उनके प्रति का रागलव मात्र भी रहे (तो) स्वरूप की प्राप्ति का अनुभव नहीं होगा। समझ में आया? वीतरागभाव नहीं होता। आहाहा! **निरुपराग-शुद्धस्वरूप स्वसमय को वास्तव में नहीं चेतता (-अनुभव नहीं करता)।** भगवान आत्मा राग के कण की चीज़ बिना उपरागरहित है। शुद्धस्वरूप निर्विकार है। पंच परमेष्ठी के प्रति,

परद्रव्य के प्रति राग का कण। यहाँ तो स्पष्ट परद्रव्य लिया है। भले फिर वह देव हो, गुरु हो, शास्त्र हो, प्रतिमा हो, यात्रा हो, भगवान का नामस्मरण हो। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... वह भी राग है। हें?

मुमुक्षु : आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, वह दूसरी बात है परन्तु विघ्न करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। स्वरूप के अनुभव में वह दखल करता है, विघ्न है, दोष है। आहाहा! समझ में आया?

निरुपराग-शुद्धस्वरूप स्वसमय को... स्वसमय भगवान आत्मा ज्ञायक पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसके वेदन में पूर्ण वेदन आना, उसमें सूक्ष्म राग का कण भी विघ्न करनेवाला है। आहाहा! कठिन बात! पंच महाव्रत निकाल दिये। आस्रवतत्त्व आदि कहकर नौ तत्त्व में आया न? व्यवहाररत्नत्रय तो निकाल दिया। उसमें यह थोड़ा आया कि भाई! पंच परमेष्ठी के प्रति राग तो रहेगा न? जब तक राग स्वद्रव्य की सन्मुखता छोड़कर कोई भी परद्रव्य चाहे तो सिद्ध भगवान हो। समझ में आया? सिद्ध का आयेगा। सिद्ध का आयेगा १६९ (गाथा) में। सिद्ध... सिद्ध अपना स्वरूप, वहाँ लेंगे। '**सिद्धेसु कुणदि भत्ति**' समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि पंच महाव्रत जो उठते हैं, वह आस्रवतत्त्व है। मुनि को भी, हों! सच्चे मुनि। जिन्हें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले हैं और उनकी प्रतीति करके विकल्प हुआ है और उसे छोड़कर स्वरूप का अनुभव भी हुआ है। परन्तु उस अनुभव में भी जब तक राग का अंश बाकी रहे तो स्थिरता का वेदन-केवलज्ञान प्राप्त करे, ऐसी स्वरूप की प्राप्ति नहीं होगी। समझ में आया? आगे कहेंगे। प्रेरणा से यह प्रवचन बन गये हैं। प्रवचनभक्ति से। समझते हैं कि विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! और वाणी तो वाणी के कारण से बन गयी। मैंने बनायी नहीं। यह तो आगे कलश आता है। मैंने तो शास्त्र बनाये नहीं। शास्त्र को कौन बनावे? वह तो परमाणु से बनता है। समझ में आया? उपदेश कौन करे? ऐई पण्डितजी! यह वाणी आत्मा नहीं करता। आत्मा में क्या है कि व्रत पालने का उपदेश करे। आहाहा!

मुमुक्षु : भाषावर्गणा से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषावर्गणा ज्ञान को करे ? ज्ञानतत्त्व करे तो यह दुनिया में छह द्रव्य हैं, वे रहेंगे नहीं। पाँच अचेतन तो सिद्ध होंगे भी नहीं। भाषा की पर्याय में होने की शक्ति है। उपदेश में जो वर्गणा निकलती है, वह भाषा के योग्य वर्गणा है, उसमें यह पर्याय उत्पन्न होती है। आत्मा से नहीं, आत्मा कर्ता नहीं। आहा! यह तो मैं भाषण करता हूँ, मैं दुनिया को समझाता हूँ। यह तो भाषा का स्वामी हुआ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह तो वापस परवस्तु है।

आत्मा तो अरूपी और यहाँ इन रजकणों से भिन्न अन्दर रजकण पड़े हैं ? यह रजकण उससे भिन्न है ? भाषा तो भाषा के कारण से है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह सब पण्डित भाषण-भाषण करे, भजन करो, एक भजन लगाओ। हम भजन करते हैं। तुम कौन ? तुम कौन हो कि भजन करो ? आहाहा! भजन का विकल्प आया, वह भी राग है और वाणी की क्रिया, वह तो जड़ की स्वतन्त्र है। भाषा की पर्याय में अपना राग का अंश मिलाना, कर्म का उदय है तो मुझमें राग होता है, तो कर्म के अंश को राग में मिलाना, सब गड़बड़ है। जीव को अजीव मानना और अजीव को जीव मानना। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो निरुपराग भगवान आत्मा राग बिना की चीज़, वह राग के कण से प्राप्त नहीं होती। बीच में यह लिया न! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की अन्तिम गाथा। हमें भी पंच परमेष्ठी का विकल्प आता है। अन्तिम गाथा आयी न ? १७३ में आया है। इसके लिये मैंने कहा, '**मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया**' भक्ति की प्रेरणा से मैंने यह बनाया। परन्तु है तो यह विकल्प। आहाहा! जहाँ इतना विकल्प विघ्न करनेवाला है, वहाँ हमारे अनुभव में दखल है। आहाहा! यह उपदेश देने की इच्छा का भंग हो जायेगा। सभा के बीच में ऐसे समाज लगावे ऐसे। आहा! घण्टे भर धारा, दो घण्टे धारा। क्या वक्ता परन्तु वक्ता! आहाहा! ऐई! हिम्मतभाई बोले तब कैसा बोलते हैं, खबर है ? ...धारा ऐसी चले। पद्धतिसर। दूसरे को तो फे... फे... हो जाये। बोले नहीं, बोले तब ऐसा बोले। बोलते होंगे या नहीं ? आहाहा!

कहते हैं, **स्वसमय को वास्तव में नहीं चेतता (-अनुभव नहीं करता)।** भले अनुभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि का हो। चारित्र का आंशिक अनुभव हो, परन्तु जब तक राग का कण होगा, तब तक पूर्ण चारित्र का वेदन है नहीं। आहाहा! इसलिए **धुनकी से चिपकी हुई रुई...** पींजण होती है न? पींजण। पिंजारा की पींजण होती है न ? धूनकी कहते हैं न? पींजण। 'पींजण को चिपकी हुई रुई' यह तार होता है न तार। उसे थोड़ी-थोड़ी रुई होती है, तो यह न्याय लागू पड़ता है। देखो! (नीचे फुटनोट) **जिस प्रकार धुनकी से चिपकी हुई थोड़ी-सी भी रुई, धुनने के कार्य में विघ्न करती है,...** पींजने के कार्य में विघ्न करता है। डंडा मारते हैं न? डंडा कहते हैं न? क्या कहे यह? क्या कहते हैं? लकड़ी। यह साप है न? हमारे यहाँ लकड़ी कहते हैं। पींजण कहते हैं पींजण। आहाहा!

जरा सी भी रुई यदि चिपकी हुई हो (तो) पींजने के कार्य में वह विघ्न करती है। कायम हिल नहीं सकता। **उसी प्रकार थोड़ा-सा भी राग स्वसमय...** अपना आनन्द का अनुभव **की उपलब्धिरूप कार्य में विघ्न करता है।** राग विघ्न करनेवाला है। राग सहायक है, ऐसा हम नहीं कहते। देखो! आहाहा! यह साधन कहा, उसे भी उड़ाते हैं। यह तो व्यवहार से साधन कहा गया था। साधन-फाधन है नहीं। विघ्न करनेवाला है, ऐसा कहते हैं, देखो!

व्यवहारनय से अनुकूल देखकर साधन का आरोप दिया, उसे यहाँ निश्चयनय से विघ्न करनेवाला सिद्ध कर दिया। आहाहा! भगवान का स्मरण करो। प्रभु का स्मरण करो। प्रभु का स्मरण करे तो विकल्प उठता है, राग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग अपने में बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाधक है, पाप है। स्वरूप से पतित होता है। निश्चय से तो पाप कहा है, व्यवहाररत्नत्रय को! राग है न? विकल्प है न? स्वरूप वीतराग आनन्दमूर्ति। निरुपराग सच्चिदानन्दस्वभाव अमृत का सागर प्रभु, उसमें विकल्प तो जहर है। आहाहा! समझ में आया? आता है, वह दूसरी बात है। ऐ सेठ! सेठ कहते हैं, आता है न? आता है, वह दूसरी बात है। परन्तु है जहर।

मुमुक्षु : बुखार आता है परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है तो क्या है? बुखार अच्छा है? ९९ डिग्री बुखार आवे, वह अच्छा है? अधिक बढ़े तो क्षय (टीबी) हो जाये। बहुत नींद है, ९९ में शंका पड़े तो उसे यहाँ जीथरी (टी.बी. अस्पताल) आना पड़े। क्या है भाई यहाँ? हें? ऐसी प्रगति चली, ऐसी लगन से चला। सेठिया लोग भी ऐसे हाँ.. हाँ करते हैं। खबर नहीं किसी को खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह हमारे लींबड़ी में चर्चा हुई थी न? मनसुखभाई का लड़का है न वह धीरु। ऐसा कि भक्ति से तो लल्लूजी महाराज ने लाभ कहा है। धर्म होता है, निर्जरा होती है। धूल भी धर्म नहीं, सुन न!

श्रीमद् तो नहीं, परन्तु भगवान तीन लोक के नाथ कहते हैं कि अरिहन्तादि भगवन्त, अरिहन्तादि भगवन्त... आहाहा! परमेष्ठी पद में आये। उनका स्मरण, भक्ति, पूजा, नाम, यह सब राग के कण हैं। इस आत्मा में, पींजण को चिपकी हुई रुई लागू पड़ती है, वैसे जीव में राग का कण है, वह स्वरूप की स्थिरता में विघ्न करनेवाला है। आहाहा! मार्ग की खबर नहीं होती। समझ में आया? दो हजार मन्दिर बनाये। करोड़ों प्रतिमायें बनायीं। नहीं आता, ऐई! हें? साम्प्रत राजा, साम्प्रत राजा। कितने? एक करोड़ मुनि। हें? कितने आनेवाले करोड़ मुनि, धूल भी बनावे तो उसमें क्या है? कौन बनावे? आहाहा! गजब वीतरागमार्ग ऐसा! जगत को न्याय और ऐसी बात करते हैं, जगत का अकल्याण होगा। ऐसा जामनगर आया। गाँधीजी थे और अन्दर आये। क्या है? हमारे गुरु ऐसा कहते हैं कि ऐसा होगा तो महाकल्याण होगा। वहाँ लोग अधर्म में हैं, बेचारे धर्म करते हैं, उसमें पुण्य है, बन्ध का कारण है, ऐसा होगा तो छोड़ देंगे। कहा, यह एक ही मार्ग सत्य और सन्मार्ग है। बाकी सबके उन्मार्ग हैं। कहा, सुन! वह आया था, नहीं भाई रात्रि में... वह सामने होकर आया था। यह एक ही मार्ग सन्मार्ग है। बाकी सब उन्मार्ग है। अच्छा और दूसरा और सबका। वह कहे हाय.. हाय! मार्ग उन्मार्ग और सन्मार्ग की खबर नहीं और चल निकले हैं। उन्मार्ग है।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, देखो! **जीव को स्वसमय की प्रसिद्धि के अर्हंतादि-विषयक भी रागरेण (-अर्हंतादि के ओर की भी रागरज) क्रमशः दूर करनेयोग्य है**

एक बार भाई ने कहा था–अमृतचन्द्राचार्य ने। समझे? .....पहले अशुभराग छूटता है, पश्चात् शुभराग भी छोड़नेयोग्य है। ऐसा निर्णय करके छोड़ देना। ऐसा कहते हैं। क्रमशः शब्द जरा थोड़ा पड़े न? अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **अर्हंतादि-विषयक भी रागरेण...** पंच परमेष्ठी त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव। समझ में आया? सिद्ध भगवान, उपाध्याय और सन्त साधु सच्चे भावलिंगी मुनि। भावलिंगी, हों! द्रव्यलिंगी नहीं और कुलिंगी तो (नहीं ही)। आहाहा!

ऐसे भावलिंगी पंच परमेष्ठी जो हैं। **अर्हंतादिविषयक...** विषयक समझे? उन सम्बन्धी—पंच परमेष्ठी सम्बन्धी राग का लव-विकल्प उठता है, वह **अर्हंतादि के ओर की भी रागरज) क्रमशः दूर करनेयोग्य है।** छोड़नेयोग्य है। रखनेयोग्य या रक्षण करनेयोग्य नहीं है।

अब १६८ (गाथा)।

गाथा - १६८

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१६८।।

धर्तुं यस्य न शक्यम् चित्तोद्भ्रामं विना त्वात्मानम्।
रोधस्तस्य न विद्यते शुभाशुभकृतस्य कर्मणः।।१६८।।

रागलवमूलदोषपरम्पराख्यानमेतत् ।

इह खल्वर्हदादिभक्तिरपि न रागानुवृत्तिमन्तरेण भवति । रागाद्यनूवृत्तौ च सत्यां बुद्धिप्रसरणन्तरेणात्मा न तं कथञ्चनापि धारयितुं शक्यते । बुद्धिप्रसरे च सति शुभस्याशुभस्य वा कर्मणो न निरोधोऽस्ति । ततो रागकलिविलासमूल एवायमनर्थसन्तान इति ।। १६८ ।।

चित्त भ्रम से रहित हो निःशंक जो होता नहीं।
हो नहीं सकता उसे संवर अशुभ अर शुभ दुःख का।।१६८।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जो [चित्तोद्भ्रामं विना तु] (राग के सद्भाव के कारण) चित्त के भ्रमण रहित [आत्मानम्] अपने को [धर्तुम् न शक्यम्] नहीं रख सकता, [तस्य] उसे [शुभाशुभकृतस्य कर्मणः] शुभाशुभ कर्म का, [रोधः न विद्यते] निरोध नहीं है।

टीका :- यह, रागलवमूलक दोषपरम्परा का निरूपण है (अर्थात् अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की संतति का यहाँ कथन है)। यहाँ (इस लोक में) वास्तव में अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी रागपरिणति के बिना नहीं होती। रागादिपरिणति होने से, आत्मा [1]बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता; और बुद्धिप्रसार होने पर (-चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता। इसलिए इस अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।

भावार्थ :- अर्हंतादि की भक्ति भी रागरहित नहीं होती। राग से चित्त का भ्रमण

---

१. बुद्धिप्रसार=विकल्पों का विस्तार; चित्त का भ्रमण; मन का भटकना; मन की चंचलता।

होता है; चित्त के भ्रमण से कर्मबन्ध होता है। इसलिए इन अनर्थों की परम्परा का मूल कारण राग ही है[१] ॥१६८॥

गाथा - १६८ पर प्रवचन

अब १६८। यह राग अमृत का परम्परा कारण है। ऐ सेठ! परम्परा मोक्ष का कारण है तो यहाँ कहते हैं कि यह राग परम्परा अमृत का कारण है। आहाहा! गजब की बात! आहाहा!

धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१६८।।

यह एक ज्ञानी को, हों! यह तो मुनि को राग, ज्ञानी चारित्रवन्त है। सम्यग्दृष्टि ज्ञान-चारित्रवन्त है। मुनि बाहर में नग्न है, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आता है। उसके साथ भी **यह, रागलवमूलक दोषपरम्परा का निरूपण है...** यहाँ। आहाहा! ऐई पण्डितजी! वे कहें, राग परम्परा मोक्ष का कारण है। यह तो व्यवहार का अभाव करके होगा, इस अपेक्षा से आरोप से कथन है। आहाहा!

मुनि आत्मज्ञानी और आत्मदर्शी जंगल में रहनेवाले। दिगम्बर नग्नमुनि, वही द्रव्यलिंगी और भावलिंगी दोनों। भावलिंगी तीन कषाय का अभाव और द्रव्यलिंगी को नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण आदि। ऐसे मुनि को भी राग जरा भी रहे, परमेश्वर भगवान का स्मरण करते-करते देह छोड़ना। मृत्यु काल में भगवान की प्रतिमा के पास जाकर कहता है कि यह परद्रव्य की ओर का राग का अंश है, वह दोष परम्परा का कारण है।

---

१. इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेव विरचित टीका में निम्नानुसार विवरण दिया गया है:—मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है ऐसे निज आत्मा को जो जीव नहीं भाता, उस जीव को माया-मिथ्या-निदानशल्यत्रयादिक समस्तविभावरूप बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता और वह न रुकने से (अर्थात् बुद्धिप्रसार का निरोध नहीं होने से) शुभाशुभकर्म का संवर नहीं होता; इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि समस्त अनर्थपरम्पराओं का रागादिविकल्प ही मूल है।

तेरे मन में ऐसा रहे कि यह राग अभी है, बाद में लाभ देगा, ऐसा है नहीं।

मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है कि राग है, वह शुभ है परन्तु वह भविष्य में कोई धर्म पावे, संस्कार रहे तो। ऐसा आया है। ऐसा आया न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। परन्तु वह तो संस्कार अपने करे तो। ऐसा कि नहीं तो राग से तो परम्परा नुकसान का कारण है। यहाँ तो यह कहते हैं। **दोषपरम्परा का निरूपण है...** लो! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **(अर्थात् अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की संतति का यहाँ कथन है)।** आहाहा! राग का कण भी पंच महाव्रत का विकल्प पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग। समझ में आया?

सबके लिये (बात है)। यह तो उत्कृष्ट मुनि की बात है। सबके लिये नुकसान का कारण है। किसी को राग से लाभ होगा? समकिती को, ज्ञानी को, मुनि को कि मिथ्यादृष्टि तो है ही नहीं, इसलिए उसकी तो बात है ही नहीं। समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई! ऐसा कण भी उदय से होता है। वे तो कहते हैं कि उपदेश दें तो दुनिया को लाभ हो और अपने को निर्जरा होती है। मैं करता हूँ या भगवान करते हैं? अपने तो उपदेश देते हैं। वे तुलसी तेरापन्थी ऐसा कहते हैं। दूसरे को मारता हो तो न मारना, ऐसा नहीं कहना। परन्तु उपदेश देना कि भाई! पंचेन्द्रिय को मारने में पाप है, दुःख है, ऐसा है, ऐसा है। उपदेश देने से निर्जरा होती है। धूल में भी निर्जरा नहीं होती। उपदेश का स्वामी हो तो मिथ्यात्व होता है और उपदेश में जो विकल्प आया-राग, उससे आत्मा को परम्परा नुकसान का कारण है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग में ऐसा होता है। इसका अर्थ (यह कि) स्व-आश्रय कर ले। पराश्रय में जायेगा तो नुकसान होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, शोभालालजी!

भगवान की वाणी है न? भगवान की वाणी। वाणी में तो भाव भरे हैं। वहाँ प्रतिमा में भाव है? ले! अभी सब पण्डित कहते हैं। उसने पुस्तक बनायी और यह सब खोटी हाँ... हाँ... करते हैं। ... वाणी में तो भगवान के भाव भरे हैं। भगवान की प्रतिमा में क्या है? अरे! भगवान! वाणी में तो वाणी का भाव है। उसमें आत्मा का भाव है? समझ में आया? ऐसा लिखा है, पुस्तक बनायी है, यह सब सेठिया पढ़ते हों। पैसे भी देते हों। क्या होगा? कुछ दूसरे तो देते होंगे। यह नहीं देते। इनमें के सब देते हैं और

उसे अनुमोदे तो सही! बात स्पष्ट होती है, तो उसमें सब आना चाहिए न? आहाहा! लिखा है वापस। ऐसा कि मूर्ति का जो विरोध हो गया न? इसलिए वाणी में तो सब भाव भरे हैं, इसलिए वाणी पूज्य है। वाणी में भगवान के सब भाव (भरे हैं)। चैतन्य के भाव जड़ में हैं? चैतन्य का भाव जड़ में, यह तो मानना तो जीव का भाव अजीव में हो तो यह तो महामिथ्यात्व है। आहाहा!

यह अनुचित बात करते हैं। यह भगवान की वाणी तो व्यवहार से पूज्य है। इसलिए शुभ विकल्प होता है। इतनी बात। वाणी, वाणी पद्मनन्दि में व्यवहार इस अपेक्षा से पूज्य कहा है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। निश्चय से पूज्य नहीं है।

मुमुक्षु : व्यवहार को पूज्य कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनकार किया है। यह क्या कहते हैं, देखो न!

भगवान की वाणी भगवान साक्षात् त्रिलोकनाथ। दिव्यध्वनि हो तो भी कहते हैं कि वह परद्रव्य है। उस ओर का विकल्प है। सुनने का और राग आया, वह भी परम्परा दोष का कारण है। गजब बात है यह! आहाहा! धर्मात्मा गणधर को भी सुनने का जब राग आया। मार्ग तो एक ही होता है, दूसरा कहाँ है?

कहते हैं, **यह, रागलवमूलक दोषपरम्परा का निरूपण है (अर्थात् अल्प राग जिसका मूल है, ऐसी दोषों की संतति का यहाँ कथन है)। यहाँ (इस लोक में) वास्तव में अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी...** परन्तु दूसरे की भक्ति कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की भक्ति तो मिथ्यात्वभाव है, परन्तु **अर्हंतादि के ओर की भक्ति भी रागपरिणति के बिना नहीं होती।** आहाहा! इससे पहले (संवत्) १९९५ में गये है न जो गिरनार। तब थे नेमिचन्द। हेमचन्दभाई डॉक्टर के भाई। डॉक्टर कैसे कहलाये? ...कि हम तो भगवान की भक्ति राग, हमारे तो राग चाहिए ही नहीं। हम तो वीतरागभाव से भक्ति करते हैं। परन्तु भक्ति वीतरागभाव से होती नहीं। श्वेताम्बर थे। उनके मकान में उतरे थे—उनकी धर्मशाला में। (संवत्) १९९५ की बात है। पहले गये थे न? ९६, ९६ लिखा है। ९५ का चातुर्मास हो गया न? ९६।

हम तो भगवान,... भगवान की भक्ति का भाव, वह तो राग है। हम कहाँ राग

करते हैं ? हम तो वीतरागभाव से भक्ति करते हैं। परन्तु भगवान की भक्ति, वही राग है। सुन न अब ? ऐसे के ऐसे। समझ में आया ? यह कहे, हम पंच महाव्रत पालते हैं, उसमें राग कहाँ आया ? वह तो निवृत्ति है। धूल, सुन तो सही ! यह पंच महाव्रत का विकल्प है, वही राग है, बन्ध का कारण है, परम्परा दोष का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? हें ?

सच्चा धर्म। पंच महाव्रत पालन करो ! चारित्र है, भाई ! उसमें से जितना राग... वे कहते हैं न ? ऐई ! दीपचन्दजी ! कहाँ गये वे ? हाँ। ऐसा कि शुभराग में थोड़ा राग घटता है न ? इतना तो लाभ है न ? धूल में भी लाभ नहीं। दीपचन्दजी ! यह प्रश्न हुआ था न ? प्रश्न तो हो, उसमें क्या ? आहाहा ! यहाँ तो तीन लोक के नाथ की वाणी, वही कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। भगवान ऐसा कहते थे। भगवान ऐसा कहते थे कि हमारे प्रति का राग का लव ऐसे बाहर में जाये तो तुम्हारे दोष की परम्परा है। आहाहा ! यह तो वीतराग कहते हैं, हों ! समझ में आया ?

दुनिया को धर्म प्राप्त करावें (तो) उसमें से हमको कुछ थोड़ा भाग तो मिलेगा या नहीं ? धूल में भी नहीं। पर को बन्ध और पर को मोक्ष, यह तेरे अधिकार की बात है ? उसके परिणाम से मोक्ष हो और उसके परिणाम से बन्ध हो, तू दूसरे का क्या कर सकता है ? हम धर्म की बहुत ही प्रभावना करते हैं और दूसरे लाखों लोग मानते हैं, थोड़ा दो हमको लाभ। भातु (पाथेय) दो। विहार करे न ? आहाहा ! धूल भी पाथेय नहीं। भातु समझते हो न ? दूसरे गाँव में जावे तो थोड़ा पाथेय साथ में होता है न ? मैसूर-मैसूर थोड़ा साथ में ले तो भूख लगे तो खाया जाये न ? पाथेय नहीं कहते ? नाश्ता... कहते हैं न ? ...में है न ? पद्मनन्दि में आता है। ... तो सवेरे के नाश्ता को कहते हैं।

एक बार भई, हम निकले। और एक (व्यक्ति) नाश्ता लेकर जाता था। हमको देखकर उसे ऐसा मन हो गया कि कहे, अरे महाराज ! थोड़ा सा ले लो। भाई ! हम तो गाँव में जाकर आहार करनेवाले हैं। बेचारा प्रेम से... कहता था। नाश्ते में दही और रोटी। खेत में, हों ! कहीं था। हें ? दिल्ली से मथुरा जा रहे थे तब। मोटर खड़ी रही और नीचे उतरे, वह कहे, आहा ! ऐसे महाराज ! थोड़ा अपना नाश्ते ले तो,...

यहाँ तो कहते हैं कि, आहाहा ! तीर्थंकर छद्मस्थ हों, उन्हें आहार देने का भाव

है, कहते हैं कि राग है। यह गजब बात करते हैं। यह राग दोष परम्परा का कारण है। कल वे (श्वेताम्बर) कहते हैं कि परितसंसार का कारण है। श्वेताम्बर शास्त्र में ऐसा कहते हैं। उसमें सात पाठ है विपाकसूत्र में। विपाक में दस सूत्र हैं। मिथ्यादृष्टि देनेवाला था। साधु भावलिंगी थे। उसका कथन था। उसे थे कब? नये बनाये हैं। उसने आहार दिया (और) परितसंसार किया। मिथ्यादृष्टि होने पर भी संसार का नाश किया। अल्प संसार ही रहा। कहा, यह सिद्धान्त ही नहीं है, शास्त्र नहीं है। श्वेताम्बर शास्त्र की ऐसी बातें हैं। वीरेन्द्रकुमार! ऐसी बात है। ज्ञाता है। विपाकसूत्र है न? ज्ञाता के दस बोल हैं। दस अधिकार। मिथ्यादृष्टि थे, बड़े गृहस्थ थे, कायोत्सर्ग में बैठे थे, मुनि आये (तो) नीचे उतर गये। ओहो! मुनि महाराज! आहार दिया। (और) संसारपरित किया। कहा, उस मिथ्यादृष्टि को आहार दे, उसमें परितसंसार कहाँ से हो? यह वीतराग की वाणी नहीं। यह तो अज्ञानी की वाणी है। और इस वाणी को सिद्धान्त माने, शास्त्र माने, शास्त्र माननेवाले सच्चा माने कि हमारी दृष्टि बराबर है। ऐई, जेठाभाई! आहाहा!

कहते हैं, **वास्तव में (इस लोक में)...** वास्तव में अर्थात् खरेखर। खलु-खलु शब्द है न? **'खल्वर्हदाहिभक्तिरपि'** और **वास्तव में अर्हंतादि के ओर की भक्ति...** ओहोहो! आचार्य, उपाध्याय, मुनि या योगी हो और सेवा करे, वैयावृत्य करे, तो कहते हैं कि विकल्प राग का भाग है। क्रिया तो जड़ की है। आहाहा! समझ में आया? यह **रागपरिणति के बिना नहीं होती।** इस विकल्प का उत्थान प्रगट हुए बिना यह उत्पत्ति होगी नहीं। आहाहा! मन में विकल्प उठता है, तब भक्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

रागादिपरिणति होने से,... रागादि-द्वेषादि। **आत्मा बुद्धिप्रसार रहित (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी प्रकार नहीं रख सकता;...** बुद्धि का विकल्प का विस्तार न करे और चित्त का भ्रमण न हो, मन का भटकना न हो, मन की चंचलता न हो, ऐसा बन नहीं सकता। यह राग का लव आया तो विकल्प का विस्तार हुआ, चित्त का भ्रमण हुआ। मन का भटकना हुआ, मन की चंचलता हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग है, यह कभी सुना नहीं। समझ में आया?

बुद्धिप्रसार बिना का (-चित्त के भ्रमण से रहित) अपने को किसी भी प्रकार रख नहीं सकता; पंच परमेष्ठी आदि की भक्ति का विकल्प आवे और बुद्धि का विस्तार

न हो, विकल्प न हो, ऐसा नहीं हो सकता—ऐसा कहते हैं। चैतन्य भगवान अपने से बाहर निकल जाता है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य के प्रति विकल्प आया न? विस्तार हो गया, चित्त चंचल हो गया, चित्त चंचल हो गया, मुनि को भी, हों! आहाहा! **और बुद्धिप्रसार होने पर...** और बुद्धि का विस्तार, मन की चंचलता होने से, **(-चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता।** देखो!

इस शुभभाव में शुभ और अशुभकर्म दोनों का निरोध नहीं होता। शुभभाव में शुभभाव कर्म भी बँधता है और अशुभ भी बँधता है। आहाहा! शुभभाव से अशुभकर्म बँधते हैं। घातिकर्म बँधता है न? आहाहा! हें? अशुभ बँधता है। घाति चार अशुभ हैं। छठवें गुणस्थान में शुभराग है। तो वह घातिकर्म के बन्ध का कारण है और अघाति के पुण्य के बन्ध का भी कारण है। आहाहा! लोग नहीं कहते? यह तो एकान्त हो जाता है। एकान्त हो जाता है। एकान्त ही है—सम्यक् एकान्त ही ऐसा है। तब उसे अनेकान्त का सच्चा ज्ञान होता है। समझ में आया?

(-चित्त का भ्रमण होने पर), शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता। चारित्रवन्त को भी छठवें गुणस्थान में हो और राग का शुभभाव आया। है तो शुभ, परन्तु बन्धन दोनों का है। घाति और अघाति दोनों बँधते हैं। चौथे गुणस्थान में बँधते हैं या नहीं? आयुष्य का भी बन्ध होता है और दूसरे सात कर्मों का भी बन्ध होता है। आहाहा! अपनी स्थिति का वर्णन करते हैं कि हमको जब तक विकल्प है न, तब तक विघ्न है, हों! आहाहा! हमारी स्वपरिणति हमारे में रुकती नहीं। परपरिणति की चिन्ता। **इसलिए इस अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** लो! आहाहा! कहो, वीरजीभाई! अरे! ऐसा मार्ग है।

विकल्प आया, उसका भी मैं कर्ता नहीं और वाणी का कर्ता भी मैं नहीं। अनर्थ का कारण है, यह कहते हैं। आहाहा! यह गजब बात! अभी वस्तु की खबर नहीं। क्योंकि राग तो आस्रव है और भावबन्ध है। आस्रव और भावबन्ध आत्मा के लाभ का कारण है? नुकसान का कारण है। आहाहा! भावबन्ध है तो आस्रव उत्पन्न हुआ तो आस्रव, रुक (उसमें अटक) गया तो भावबन्ध है। भावबन्ध आत्मा को लाभ करता है? गजब परन्तु! अभी तो पूरा उसमें ही सबको चला है। उपदेशक हा हो.... हा हो।

पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे। हो हा... बाहर की हो तो आहाहा! गजब धर्म प्रभावना भाई की। अरे भगवान! धर्म प्रभावना अपने में होती है या बाहर में होती है? वन्दणा भगवान के दस-बारह लाख का! दस-बारह लाख का। साढ़े चार सौ प्रतिमा, पूरे गाँव में। पालीताणा... गाँव स्पष्ट इतना कहता है कि, आहाहा! कौन करे? यहाँ तो कहते हैं कि भोजन-बोजन करावे कौन? समझ में आया?

यह साढ़े चार सौ प्रतिमा स्थापित करे कौन? उस क्रिया का कर्ता कौन? वह तो जड़ है। आहाहा! गजब बात! हमारे नहीं करते? देखो! दस लाख का बड़ा परमागममन्दिर नहीं होता है? समझ में आया? रुकता नहीं, यह अलग बात है, आवे नहीं परन्तु है नुकसानकारक। यह तो कहते हैं। हमारे प्रवचनभक्ति के लिये विकल्प हमको आया है। यह तो कहेंगे। कहेंगे, परन्तु है दोष की परम्परा कारण। ऐसा हुआ इसलिए लाभ होगा, शास्त्र रचे इसलिए दुनिया में लाभ होगा, मुझे लाभ होगा। बिल्कुल नहीं। आहाहा! पण्डितजी! ऐसी वाणी। ओहोहो!

हम शास्त्र बनाते हैं, पुस्तक बनाते हैं तो कुछ भी लाभ तो हमको होगा या नहीं? एक तो बनाते हैं, यह मान्यता ही मिथ्यात्व का लाभ है। आहाहा! हें? दूसरे को उससे किंचित् भी लाभ नहीं। जब होगा, तब उसे स्वयं से लाभ होगा। जगत के प्राणी को लाभ तो स्वयं से स्वसन्मुख होगा, तब लाभ होगा। वाणी सुनने से उसे लाभ होगा, ऐसा भी नहीं। आहाहा! कठिन वीतराग की वाणी! समझ में आया? उस ७४ गाथा में कहा था न? शुभराग भी आस्रव दुःख के फलरूप है, रागादि काल में। ओहोहो! वीतराग!

शुभराग से पुण्य बँधेगा। उस पुण्य बन्धन में शुभराग निमित्त है, परन्तु पुण्य बँधा है, वह आकुलता का निमित्त है। पुण्य बन्ध में संयोग मिलेंगे। समवसरण, वाणी, तीर्थंकर की प्रतिमा, शास्त्र। समझ में आया? यह परद्रव्य है तो परद्रव्य के संयोग पर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। शुभराग दुःख के फलरूप है। गजब बात! अन्दर बात बैठना चाहिए, हों! ऐसे बोलने में रहे, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : बिना राग की भक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिना राग की भक्ति होती नहीं, ऐसा कहते हैं। भक्ति में राग के विस्तार बिना भक्ति होती नहीं। इसलिए, राग नुकसानकारक है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

आता है। अशुभ के वंचनार्थ, आया था न पहले? एक बार आया नहीं था? वहाँ अशुभ की वंचनार्थ आता है। हें? कितने पृष्ठ पर? १६०। वंचनार्थ, देखो! अशुभ परिणाम के वंचनार्थ। संसार स्थिति के छेदन के लिये पंच परमेष्ठी के प्रति गुणस्तवनादि भक्ति करते हैं, वहाँ वह सूक्ष्म परसमयरूप से परिणत वर्तता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि है। (गाथा १६५)। आता है, वह दूसरी बात है। आहाहा! आता है, इसलिए लाभदायक है—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बाहर का यह सब करना, हमारा उत्साह भंग हो जाता है। बाहर का कौन कर सकता है? एक परमाणु भी कौन बदल सकता है? समझ में आया? वंचनार्थ है न? पृष्ठ २४६। नीचे है। वह वंचनार्थ कहा था, वही राग को यहाँ नुकसानकारक कहते हैं। समझ में आया?

इस अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है। आहाहा! रागरूप क्लेश का विलास है। आनन्द के विलास को लूटनेवाला है। समझ में आया? एक व्यक्ति ने भक्ति शुभराग है, इसलिए उड़ा दिया; एक ने राग में सर्वस्व सार मोक्षधर्म है, ऐसा लिया है। दोनों मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया?

अनर्थ सन्तति का, सन्तति अर्थात् परम्परा। राग का कण भी पंच परमेष्ठी के प्रति हो, महाव्रत का राग हो, वह अनर्थ की सन्तति, सन्तति अर्थात् पुत्र का पुत्र, पुत्र का पुत्र सन्तति होती है न? इसी प्रकार राग में से राग, राग में से राग, राग में से राग ही होगा। समझ में आया? राग में से वीतरागता नहीं होगी, ऐसा सिद्ध करना है। यदि किसी कारण से वर्तमान शुभराग हुआ तो निमित्त मिलेंगे और फिर वीतरागदृष्टि होगी, ऐसा है नहीं।

कितने ही ऐसा कहते हैं कि अभी तो पुण्य करो, शुभराग करो, फिर स्वर्ग में जाओ। स्वर्ग में जाने के बाद भगवान के पास जाओ। वहाँ समकित प्राप्त करेगा।

मुमुक्षु : फिर सीमन्धर भगवान के पास जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सीमन्धर भगवान। भगवान तो अभी सीमन्धर भगवान है न? वहाँ जाओ, समकित प्राप्त करोगे, इसलिए करो पुण्य। धूल में भी भगवान के पास नहीं जायेगा। सुन तो सही! यहाँ इनकार करते हैं कि भगवान रागरहित है, उसकी दृष्टि नहीं करता, राग से लाभ मानता है तो भगवान के पास कहाँ से जायेगा। समझ में आया?

एक बात। भावशुभ, बन्धन दो; और अनर्थसन्तति प्रवाह। एक के बाद एक राग का प्रवाह सन्तति चलेगी। उसमें कोई दोष की सन्तति से गुण की पर्याय प्रगट हो, ऐसा शुभराग में है नहीं। पण्डितजी! है इसमें? आहा! **अर्हंतादि की भक्ति भी रागरहित नहीं होती।** समझे न? और वह भाव **शुभ तथा अशुभकर्म का निरोध नहीं होता।** भोक्ता नहीं। वह संवर नहीं, वह तो आस्रव है। उसके कारण से शुभ और अशुभ बँधेगा। शुभ-अशुभ आस्रव के समय। अभी एक लेख आया था। उस शान्ति का। देखो! विशुद्धि से चरणम् प्राप्त होता है। शुद्धि से नहीं। लेख है। शुद्धि तो कर्म के क्षय का फल है। परन्तु कर्म का क्षय तो विशुद्धि है। समकिती को पहले समकित प्राप्त करने से पहले, अनिवृत्तिकर्म है न, उसमें कहाँ शुद्धता है?

वह तो शुभभाव है, विशुद्धि है। विशुद्धि से निर्जरा होती है, शुद्धि से निर्जरा नहीं। समझ में आया? (ऐसा) बड़ा लेख आया है। बड़ा लेख! उसमें तो ऐसा डालते हैं। विपरीतता घुस गयी है न? शुद्धि कर्मक्षपणा का कारण नहीं, परन्तु कर्मक्षपणा का कारण विशुद्धि है। बड़ा लेख आया है। अनिवृत्ति का अर्थ... विशुद्धि से कर्म की निर्जरा होती है परन्तु वह तो शुद्ध का लक्ष्य है। समझ में आया? यह तो पर्याय का कथन है, बाकी शुद्ध का आश्रय शुद्धस्वभाव सन्मुख परिणाम, वह कर्म के नाश का कारण है। मिथ्यात्व के नाश का। समझे? बहुत खूब दृढ़ किया। विशुद्धि कर्म के क्षय का कारण है। शुद्धि नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, शुद्ध उपयोग कर्म के क्षय का कारण है; शुभ नहीं। आहाहा! हें? कारण नहीं, वह फल है। विशुद्धि से निर्जरा हो और उसके फल में शुद्धि हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं, पहले समकित दर्शन की शुद्धि होती है। पर्याय के ऊपर लक्ष्य है न? वहाँ से द्रव्य के ऊपर लक्ष्य किया, इसलिए वे परिणाम ऐसे हुए, ऐसा उसे नहीं है। उसे तो यह विशुद्ध परिणाम हुए। वीरसेनस्वामी ऐसा कहते हैं। विशुद्ध परिणाम होते हैं, उससे निर्जरा होगी। बड़ा लेख है। माहात्म्य बहुत है। दर्शन। जैनदर्शन। अजैनदर्शन। दिगम्बर।

जैनदर्शन, वह वीतराग दर्शन है, भाई! आहाहा! यहाँ का विरोध करते हैं। आध्यात्मिक अकेली शुद्धि से निर्जरा कहते हैं, ऐसा नहीं है। ऐई! शुद्धि तो कर्मक्षय का फल है। परन्तु कर्मक्षय तो विशुद्धि भाव से होता है, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे! ऐई! पढ़ा हुआ है बहुत, हों! पहली अनुकूलता थी वहाँ मलाड में।

यहाँ तो कहते हैं राग का कण मुनि को। आहाहा! उसका कहना है कि शुभभाव से निर्जरा होती है। और निर्जरा हुई, इसलिए शुद्धि हुई, यह तो फिर उसका फल है, ऐसा कहता है। समझ में आया? समकित की पर्याय तो शुद्ध है। पहले अभी शुद्धता हुई है कहाँ? शुभभाव से अनिवृत्तिकरण आदि में शुभभाव से विशुद्धभाव। शुभ अर्थात् विशुद्ध। कर्म निर्जरते-निर्जरते शुद्धि हो जायेगी। अरे! कहाँ गया है न कहाँ का कहाँ लगा दिया।

यहाँ तो कहते हैं कि अकेले चैतन्य के स्वआश्रय बिना निर्जरा कभी तीन काल में नहीं होती। संवरपूर्वक, ऐसी बात है न! समझ में आया? यहाँ तो मुनि चारित्रवन्त हैं, भावलिंगी हैं, बाहर में नग्न द्रव्यलिंग है, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प उनकी भूमिका में हैं। वह विकल्प भी **अनर्थसंतति का मूल रागरूप क्लेश का विलास ही है।** वह राग का विलास है; आनन्द का विलास नहीं। आहाहा! समझ में आया? जीव को पक्ष हो जाता है। अभिप्राय में बँध गया। वीरसेनस्वामी ऐसा कहते हैं। महासर्वज्ञ समान तीर्थंकर। वे भी विशुद्धि से कर्म की क्षपणा कहते हैं। शुद्धि से नहीं। कर्मक्षपणा से तो अरूपशुद्धि होती है, वह दूसरी बात है। प्राप्त तो शुद्धि प्राप्त हो। परन्तु शुद्धि से कर्मक्षपणा है, यह पहले कहाँ आया? ऐसा कहता है। अरे! सुन न? ऐसे के ऐसे लोग निकले। लोगों को बेचारों को... सोलापुर गये थे, वहाँ भी लोगों ने सुना, वहाँ वे साधु हैं, उनके पास वाँचन करते हैं। वहाँ है न मुम्बई में निमित्तसागरजी, उनके पास वाँचन करते हैं। महिमा करते हैं। आहाहा! शुभभाव में भी ऐसा विशुद्धि से, शुद्धि होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७८, गाथा-१६८-१७०, वैशाख कृष्ण ८, गुरुवार, दिनांक -२८-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, गाथा १६८ का भावार्थ है। अन्तिम गाथायें हैं। पंच परमेष्ठी की भक्ति का अंश राग मन्द है न? वह भी क्लेशी है, ऐसा सिद्ध करना है। जैसे तीव्र कषाय क्लेश है, वैसे मन्दराग भी क्लेश है। **अर्हंतादि की भक्ति भी...** पंच परमेष्ठी की भक्ति भी **रागरहित नहीं होती।** ऐसा तू भगवान की भक्ति कर (और कहे कि) हमारे राग नहीं। राग का स्थान कहाँ है? यह तो हमारे (संवत्) १९९५ में जूनागढ़ से नेमिचन्दजी आये हुए थे, वे कहे हम तो भगवान की भक्ति करते हैं। हमारे राग कहाँ है?

यहाँ तो कहते हैं कि भक्ति रागरहित नहीं हो सकती। पंच परमेष्ठी की ओर का भाव जो है, कषाय मन्द है, परन्तु है तो राग, क्लेश। परद्रव्य की ओर का झुकाव है न? गाथा में कहते हैं। देखो! उसकी श्रद्धा में तो ऐसा होना चाहिए चाहे तो तीव्र राग हो या मन्द कषाय हो, दोनों क्लेशरूप है। समझ में आया? **राग से चित्त का भ्रमण होता है;...** अपने स्वरूप में रह नहीं सकते। भक्ति में चित्त में चंचलता होती है। आहाहा! स्वद्रव्य की ओर रहा नहीं जा सकता। चित्त में परद्रव्य की ओर का भक्ति का विकल्प चंचलता है। क्लेश का विलास है। ऐसा कहते थे न परम्परा। अनर्थ सन्तति की परम्परा क्लेश का विलास है। ओहो! समझ में आया?

उपदेशक को भी जो विकल्प आता है तो राग-क्लेश का स्थान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : प्रभावना...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना किसकी करना? अपने स्वभाव को भूलकर, चूककर राग में एकाकार होकर उपदेश करे, वह तो मिथ्यात्व का सेवन है। चाहे तो सत्य उपदेश करता हो। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुभराग....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग है, विकल्प है। मार्ग ऐसा है, भाई! वीतरागस्वभाव आत्मा स्व का आश्रय किये बिना, जितना परद्रव्य त्रिलोकनाथ तीर्थंकर जैसों का भी

आश्रय, (वे कहते हैं) हम तेरी अपेक्षा से तो परद्रव्य हैं। ओहोहो! ऐसा कहते हैं। परद्रव्य का आश्रय, लक्ष्य करने जाता है तो राग की मन्दता है, क्लेश है। आहाहा! यह तो एकान्त है, हों! समझ में आया? वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा!

कहते हैं कि **राग से चित्त का भ्रमण होता है;...** चित्त स्थिर नहीं रहता, चंचल हो जाता है। ऐसा और ऐसा और ऐसा। भगवान ऐसा नहीं कहते। आहाहा! **चित्त के भ्रमण से कर्मबन्ध होता है।** चाहे तो चारित्रवन्त मुनि हों। आहाहा! अन्तर में आनन्द का अनुभव हो, तो भी इतना विकल्प है, वह कर्मबन्ध का कारण है। समझ में आया? यह तो शान्त मार्ग है। अन्तर में स्थिरता का मार्ग है। **इसलिए इन अनर्थों की परम्परा का मूल कारण राग ही है।** आहाहा! भक्ति रागरहित नहीं होती। राग से भ्रमण होता है और भ्रमण से कर्मबन्ध होता है, ऐसा। इसके लिये अनर्थों की परम्परा का मूलकारण राग ही है। समझ में आया? नीचे का स्पष्टीकरण किसमें है वह? एकड़ा। (१) किसमें से यह एकड़ा है, यह न? उसमें एकड़ा आता है वह न? अन्तिम एकड़ा है न?

इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेव विरचित टीका में निम्नानुसार विवरण दिया गया है। देखो! आहाहा! **मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है, ऐसे निज आत्मा...** आहाहा! भगवान आत्मा मात्र अपना स्वभाव नित्यानन्द प्रभु। जिसका स्वभाव है जिसका। ऐसे निज आत्मा को जो जीव नहीं भाता। आहाहा! आनन्द की ओर का जिसका झुकाव नहीं। **उस जीव को माया (कपट)-मिथ्या (शल्य)-निदानशल्यत्रयादिक समस्त-विभावरूप बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता...** यहाँ तो तीनों लिये हैं। आहाहा! मिथ्यात्व लेना है न?

अपना आनन्दस्वभाव जो ध्रुवस्वभाव, उसका स्वभाव भगवान निज आत्मा का है। उस ओर का झुकाव नहीं, आंशिक झुकाव नहीं। मात्र विकल्प में झुकाव है। समझ में आया? चाहे तो भक्ति का विकल्प हो, चाहे तो उपदेश का हो। धर्म प्रभावना करने में विकल्प आया कि ऐसा हो। सब विकल्प है। आहाहा! परम्परा नहीं। यहाँ तो विशेष कहते हैं। जहाँ आनन्दस्वभाव पर झुकाव नहीं, वहाँ उसका मात्र विकल्प में झुकाव है, वह तो मिथ्यादर्शन शल्य है।

मुमुक्षु : भक्ति भी छुड़ायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? भक्ति छुड़ायी नहीं, राग छुड़ाया। आहाहा!

मात्र नित्यानन्द जिसका स्वभाव है, ऐसे निज आत्मा को जो जीव नहीं भाता,... देखो! भाषा! अन्दर में ज्ञानानन्द-आनन्दस्वरूप भगवान, ऐसी अन्तर में दृष्टि नहीं और अन्तर आश्रय का अंश भी नहीं। उस जीव को तो राग माया-कपट है। राग होता है और राग में एकाग्र है और कहता है कि हमको आनन्द की ओर में लाभ होगा। उसे ठगाई कहते हैं। आहाहा! गजब बात करते हैं न? उपदेशक भी ठगाते है, ऐसा कहते हैं। ऐई! आहाहा! दूसरा तो कहे कि आत्मा का झुकाव होना चाहिए। अपने में तो झुकाव का तो अंश भी नहीं। मात्र पर की ओर के झुकाव का जोर, ऐसा कहते हैं। वजुभाई! आहाहा! मार्ग, वह मार्ग है। अपना स्वभाव आनन्द-नित्यानन्द प्रभु, उसका तो—स्व का आश्रय आंशिक भी नहीं और अकेले राग के झुकाव में जाता है तो कपटी है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। शोभालालजी!

धर्म करता हूँ और धर्म समझाता हूँ। भगवान का धर्म समझाता हूँ, ऐसा कहता है परन्तु कहते हैं कि राग में ही एकत्वबुद्धि पड़ी है। राग से जरा भी भिन्न तो है नहीं। आहाहा! गजब बात है न! माया हुई, कपट हुई। अरे! इस समय माया का सेवन करता है। समझ में आया? ऐ सुजानमलजी! क्या कहते हैं? आहाहा! मिथ्यादर्शन शल्य सेवन करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान नित्यानन्द प्रभु, उस ओर का झुकाव स्वआश्रय में बिल्कुल नहीं। और राग के भाव में बिल्कुल तत्परता, वह धर्मी नाम धराता है और माया करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा सेवन करता है और निदान शल्य, उसमें कुछ लाभ होगा, ऐसा मानता है न? राग में मुझे कुछ लाभ तो होगा न? निदानशल्य है। आहाहा! समझ में आया?

'नहीं दे तू उपदेश को, प्रथम लेय उपदेश। सबसे न्यारा अगम है, वह ज्ञानी का देश'—श्रीमद् ऐसा कहते हैं। देखो! समझ में आया? लोग तो बाहर के भभके में रंजायमान (हो) जाते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि जो कोई नित्यानन्द प्रभु का जरा भी आश्रय है नहीं, जरा भी आनन्द का वेदन नहीं और राग के झुकाव में एकाकार हो

गये तो कपटी भी है, मिथ्यात्वी भी है और निदानशल्य भी है। आहाहा! यह शल्य है न उसमें। हेतु तो वहाँ राग का अनुभव है। भोग निमित्तं कहा न? मार्ग ऐसा है। समझ में आया?

यह **निदानशल्यत्रयादिक तीन तो है।** इत्यादि-इत्यादि अन्दर में वासना अनेक प्रकार की है। **समस्तविभावरूप बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता...** ओहो! नित्यानन्द भगवान आत्मा की ओर का झुकाव नहीं, तो परसन्मुख का बुद्धि का प्रसार माया-मिथ्या-निदानशल्य आदि में रोक नहीं सकता। वे उत्पन्न ही होंगे—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, देवजीभाई! देखो, यह मार्ग! आहा! और वह नहीं रुकने से बुद्धि का प्रसार विभाव में गया है। और स्वभाव नित्यानन्द में तो बिल्कुल अन्तर्दृष्टि रुचि हुई नहीं। तो **बुद्धिप्रसार रोका नहीं जा सकता और वह न रुकने से (अर्थात् बुद्धिप्रसार का निरोध नहीं होने से) शुभाशुभकर्म का संवर नहीं होता;...** उसे शुभाशुभ कर्म का संवर होता नहीं। नहीं होता परन्तु शुभाशुभ कर्म बँधते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो मार्ग! आहाहा!

आचार्य स्वयं उपदेश में लिखते हैं तो भी उपदेश के विकल्प में आये। वह तो विकल्प से रहित नित्यानन्द है। समझ में आया? उस विकल्प का प्रसार अस्थिरता का है। मिथ्याश्रद्धा और माया का नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि समस्त अनर्थपरम्पराओं का रागादिविकल्प ही मूल है।** ओहोहो! इससे ऐसा सिद्ध हुआ, समस्त अनर्थपरम्परा। परम्परा आया। उसमें परम्परा शुभराग को मोक्ष का कारण कहा था। इस राग को अमृत का परम्परा कारण कहा। हमारे पण्डितजी इसमें स्पष्टीकरण करेंगे। उस ओर में। (एक सौ) सत्तर में आयेगा न? बहुत ही स्पष्ट किया है। पण्डितजी बोलते हैं थोड़ा, उसमें बहुत ही स्पष्ट कर दिया है। ऐई! १६८ गाथा पूरी हुई। १६९ (गाथा)।

'तम्हा' यह शब्द पहला पड़ा है। राग का मन्दभाव भी स्वभाव की एकता जब तक नहीं, वहाँ अकेली अनर्थ परम्परा का कारण है। और स्वभाव का भान है, वहाँ भी राग है, वह भी अनर्थ परम्परा का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों में अन्तर तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर कहते हैं न? अस्थिरता का है। परन्तु राग है, वह तो अनर्थ परम्परा का कारण है। और राग की एकताबुद्धि है, वह भी अनर्थ परम्परा का कारण है। वह तीव्र है और यह मन्द है, इतना अन्तर है। सम्यक् ज्ञानी को थोड़ा राग है। राग, बस राग अनर्थ का कारण है। जो राग की एकताबुद्धि है, वह तो महाअनर्थ का कारण है। यह तो प्रश्न नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : सोने की बेड़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोने की नहीं, जहर की है। यहाँ तो यह कहते हैं। अमृत भगवान आत्मा नित्यानन्द कहा न? वह तो राग उत्पन्न हुआ तो दुःख हुआ। आहाहा! जगत को सुनना कठिन पड़े।

'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।

भगवान आत्मा अकषाय आनन्दस्वरूप का आश्रय छोड़कर थोड़ा भी मन्द विकल्प होता है या एकत्वबुद्धि का, सब नुकसानकारक है।

गाथा - १६९

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि।।१६९।।

तस्मान्निवृत्तिकामो निस्सङ्गो निर्ममश्च भूत्वा पुनः।
सिद्धेषु करोति भक्तिं निर्वाणं तेन प्राप्नोति।।१६९।।

रागकलिनिःशेषीकरणस्य करणीयत्वाख्यानमेतत् ।

यतो रागाद्यनुवृत्तौ चित्तोद्भ्रान्तिः, चित्तोद्भ्रान्तौ कर्मबन्ध इत्युक्तम्, ततः खलु मोक्षार्थिना कर्मबन्धमूलचित्तोद्भ्रान्तिमूलभूता रागाद्यनुवृत्तिरेकान्तेन निःशेषीकरणीया । निःशेषितायां तस्यां प्रसिद्धनैस्सङ्ग्यनैर्मम्यः शुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपां पारमार्थिकीं सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धस्वसमयप्रवृत्तिर्भवति । तैन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति ।। १६९ ।।

निःसंग निर्मम हो मुमुक्षु सिद्ध की भक्ति करें।
सिद्धसम निज में रमन कर मुक्ति कन्या को वरें।।१६९।।

अन्वयार्थ :- [तस्मात्] इसलिए [निवृत्तिकामः] मोक्षार्थी जीव [निस्सङ्गः] निःसंग [च] और, [निर्ममः] निर्मम [भूत्वा पुनः] होकर, [सिद्धेषु भक्ति] सिद्धों की भक्ति (-शुद्धात्मद्रव्य में स्थिरतारूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति) [करोति] करता है, [तेन] इसलिए वह [निर्वाणं प्राप्नोति] निर्वाण को प्राप्त करता है।

टीका :- यह, रागरूप क्लेश का [1]निःशेष नाश करनेयोग्य होने का निरूपण है।

रागादिपरिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है और चित्त का भ्रमण होने पर कर्मबन्ध होता है ऐसा (पहले) कहा गया, इसलिए मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल ऐसा जो चित्त का भ्रमण उसके मूलभूत रागादिपरिणति का एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है। उसका निःशेष नाश किया जाने से, जिसे [2]निःसंगता और [3]निर्ममता

---

१. निःशेष=सम्पूर्ण; किंचित् शेष न रहे ऐसा।

२. निःसंग=आत्मतत्त्व से विपरीत ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहण उससे रहित परिणति, सो निःसंगता है।

प्रसिद्ध हुई है, ऐसा वह जीव शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता हुआ [४]स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला होता है। उस कारण से वह जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके सिद्धि को प्राप्त करता है॥१६९॥

गाथा - १६९ पर प्रवचन

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि।।१६९।।

'**तम्हा**' इस कारण से।

इसकी **टीका :- यह, रागरूप क्लेश का...** यह रागरूप क्लेश है, दुःख है, आकुलता है। **निःशेष नाश करनेयोग्य...** मूल में से **नाश करनेयोग्य होने का निरूपण है।** सम्पूर्ण—किंचित् शेष न रहे। आहाहा! समझ में आया? राग की एकता तो न रहे परन्तु राग की अस्थिरता न रहे। समझ में आया? ओहो! अस्थिरता भी न रहे। स्थिरता तो न रहे, तब तो महा अनर्थ कारण है। आहाहा! अस्थिरता का जो मन्द अंश है। है तो क्लेश, है तो दुःख। परन्तु उससे लाभ माने, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! जगत को...

टीका :- **यह रागरूप क्लेश...** ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य! **निःशेष नाश करनेयोग्य...** मूल में से नाश करनेयोग्य... समझ में आया? उखाड़ना, कलश में आता है न? यह तो उसमें आयेगा, नहीं? समयसार में। परद्रव्य का सम्बन्ध मूल में से उखाड़कर। यह

---

३. रागादि-उपाधिरहित चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है, ऐसे आत्मतत्त्व से विपरीत मोहोदय जिसकी उत्पत्ति में निमित्तभूत होता है, ऐसे ममकार-अहंकारादिरूप विकल्पसमूह से रहित निर्मोहपरिणति, सो निर्ममता है।

४. स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला=जिसे स्वसमय में प्रवृत्ति प्रसिद्ध है ऐसा। [जो जीव रागादिपरिणति का सम्पूर्ण नाश करके निःसंग और निर्मम हुआ है, उस परमार्थ-सिद्धभक्तिवन्त जीव ने स्वसमय में प्रवृत्ति सिद्ध की है, इसलिए स्वसमयप्रवृत्ति के कारण वही जीव कर्मबन्ध का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करता है, अन्य नहीं।]

वीतराग का मार्ग अलग है। आहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग कहो या अपने स्वभाव का मार्ग कहो। आहा! नीचे एकड़ा (१) है। सम्पूर्ण, जरा भी बाकी न रहे, ऐसा।

रागादिपरिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है... क्या कहते हैं? राग या द्वेष का अंश है, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं, ऐसा विकल्प भी द्वेष का अंश है। वह भी राग की—कषाय की परिणति है। समझ में आया? रागादि परिणति होने पर, राग और द्वेष अंश भले प्रशस्त द्वेष हो। सत्यमार्ग स्थापित करने के लिये असत्यमार्ग को उत्थापित करते हैं कि ऐसा नहीं। परन्तु है तो विकल्प, वह द्वेष का अंश है। आहाहा! समझ में आया? उसमें जोर आ जाये कि धर्म की प्रभावना करता है तो मिथ्यात्व हो गया। और भानसहित निषेध करता है तो भी प्रशस्त द्वेष का अंश है।

व्रत को स्थापन करता है तो प्रशस्त राग है और उत्थापन करता है तो द्वेष का अंश है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! अरे भगवान! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! **रागादिपरिणति होने पर चित्त का भ्रमण होता है...** वह चित्त भ्रमण करता है। स्थिर नहीं रह सकता। समझ में आया? **और चित्त का भ्रमण होने पर कर्मबन्ध होता है, ऐसा (पहले) कहा गया,...** इसलिए '**तम्हा**' ऐसा आया था न? इसलिए तो अब टीका में उसका अर्थ आया है।

इसलिए मोक्षार्थी को... ओहो! जिसे पूर्णानन्द की प्राप्ति करना है, पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, लब्धि, अनुभव करना है। **इसलिए मोक्षार्थी को कर्मबन्ध का मूल ऐसा जो चित्त का भ्रमण...** आहाहा! कर्मबन्ध का मूल, ऐसा जो चित्त का भ्रमण, उसके मूलभूत रागादि परिणति का। चित्त के भ्रमण का मूल कौन? तो कहते हैं कि राग-द्वेष की अवस्था वह चित्त की अस्थिरता का कारण है। **एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है।** लो! एकान्त आया। **एकान्त निःशेष नाश करनेयोग्य है।** समझ में आया? नाश कर न सके, वह दूसरी बात है। मान्यता में तो ऐसा अंश राग भी नाश करनेयोग्य है, ऐसी उसकी प्रतीति-दृष्टि होनी चाहिए। **उसका निःशेष नाश किया जाने से,...** उसमें बन्ध कथित कहा था न? कि जिसका भ्रमण होने से कर्मबन्ध होता है।

अब निःशेष नाश करने से क्या होता है? नाश क्या? विधि से **जिसे निःसंगता**

और निर्ममता प्रसिद्ध हुई है... ऐसा। आहाहा! समझ में आया? पर का संग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की झुकाव दशा, कहते हैं कि परसंग हुआ। निःशेष राग का नाश करने से निसंगता उत्पन्न होती है। स्वभाव जैसा राग के संगरहित है, निमित्त के संगरहित है तो निःशेष नाश करने से रागरहित निःसंगदशा उत्पन्न (होती है)। **निःसंग=आत्मतत्त्व से विपरीत ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहण...** देखो! बाहर का संयोग निमित्त, अभ्यन्तर रागादि। उनसे रहित परिणति, वह निःसंगता है। समझ में आया? तब कोई कहे कि भगवान आत्मा तीर्थंकरगोत्र बाँधे तो उस परिणाम से तो लाभ है या नहीं? उसमें क्या समाहित करना? ऐई! दो भव बढ़ गये। आहाहा! वे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। शुभभाव-पुण्य बँधे, स्वर्ग में जायेंगे, फिर मनुष्य होंगे, बहुत ही अन्तर बढ़ गया, मोक्ष की पर्याय बहुत दूर हो गयी। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा क्या महिमा? महिमा तो स्वभाव की महिमा है। समझ में आया? नित्यानन्द भगवान की महिमा है। तीर्थंकर की प्रकृति, उनका समवसरण, उसकी महिमा तो व्यवहार विकल्प का संग करता है तो महिमा दिखती है। समझ में आया? आहाहा! तीर्थंकर में और सामान्य केवलज्ञानी के आनन्द में अन्तर है? प्रकृति नहीं है। समझ में आया? समवसरण नहीं है तो क्या आत्मा का आश्रय लेकर आनन्द लेकर आनन्द प्रगट किया, उसमें अन्तर है? ...परन्तु काम क्या है?

भाई सोगानीजी ने दृष्टान्त नहीं दिया वह? बाग में फूल है, उसकी सुगन्ध कोई न सूँघे, इससे सुगन्ध की कीमत चली जाती है? समझ में आया? बाग में सुगन्धी फूल है, उसे कोई आकर सूँघे नहीं तो क्या उसकी सुगन्ध चली जाती है? और सूँघे तो उसकी सुगन्ध की विशेषता हो जाती है? हें? ऐसा ही है।

मुमुक्षु : मूक केवली।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूक केवली होते हैं, उन्हें वाणी बिल्कुल नहीं होती। इससे क्या अधूरापन है? वाणी नहीं और उपदेश देते नहीं, इसलिए हीन है, ऐसा है? वाणी देते हैं, इसलिए अधिक है, ऐसा है? किसके काम के? कोई काम के नहीं। काम के

कौन हैं ? अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसमें झूलते हैं, तब वाणी निमित्त कहने में आती है। ऐसी बात है। जगत को... यहाँ तो स्वआश्रय सिवाय जितना परआश्रय पर गया तो दु:ख... दु:ख और दु:ख तो उसमें मेल करना पड़े और तीर्थंकरगोत्र में भी। ऐई! यहाँ वह राग भी अस्थिरता का कारण है तो नुकसानकारक है या नही ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभदायक कहा, वह तो उपचार से। राग आया तो प्रकृति का बन्ध हो गया। इस भव में तो केवलज्ञान नहीं ले सकेंगे। आहाहा! और दूसरे भव में तो देव होंगे और तीसरे भव में केवलज्ञान लेंगे तो कितने भव हो गये ? आहाहा!

मुमुक्षु : विदेहक्षेत्र में उसी भव में...

पूज्य गुरुदेवश्री : हें ? दूसरे तो उसी और उसी भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष चले जायें, वह दूसरी बात है। उसकी बात यहाँ है नहीं। यह तो कोई है परन्तु तो भी उसे इतना समय लगता है न ? शुभभाव आया, प्रकृति उदय आवे, केवलज्ञान हो, तब तो देरी लगे या नहीं ? राग को तोड़े, तब वीतरागता होगी। इस शुभराग से तीर्थंकर (प्रकृति) का बन्ध पड़ गया, उससे कोई आत्मा को लाभ है नहीं। भले उस भव में है न तीन कल्याणक ? परन्तु इससे क्या हुआ ? समझ में आया ?

उसे भी उस प्रकृति का पाक आवे, उससे पहले यदि राग से रहित हो, तब उसका पाक आवे, तब उसका मोक्ष होता है। आहाहा! प्रकृति के पाक ने क्या लाभ किया ? जब तक राग का काल रहता है, तब तक केवलज्ञान होता नहीं। समझ में आया ?

नि:संगता और निर्ममता प्रसिद्ध हुई है... आहाहा! राग के सम्बन्ध से अन्दर की परम्परा का भाव होता है और राग का नाश करने से नि:संगता और निर्ममता प्रगट होती है। उसी काल में (होती है)। यह देखो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह आस्रवतत्त्व है न ? आस्रव का नाश करता है तो नि:संगता उत्पन्न होती है। आस्रव से तो बन्ध और बन्ध से तो संयोग यह बड़ी लप हो गयी। आहाहा! नि:संगता और निर्ममता।

नि:संगता=नि:संग आत्मतत्त्व से विपरीत ऐसा जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहण उससे रहित परिणति, सो नि:संगता है। वह रागादि परिणति थी तो यह अरागी परिणति

हो गयी। राग का नाश करने से अरागी परिणति और निर्मम **रागादि-उपाधिरहित चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है,...** रागादि-उपाधि। राग मन्द भी उपाधि है। आहाहा! जैनदर्शन वीतरागदर्शन। समझ में आया? **निर्ममता=रागादि-उपाधिरहित चैतन्यप्रकाश जिसका लक्षण है,...** जिसका। किसका? **आत्मतत्त्व से विपरीत मोहोदय जिसकी उत्पत्ति में निमित्तभूत होता है, ऐसे ममकार-अहंकारादिरूप विकल्पसमूह से रहित निर्मोहपरिणति, सो निर्ममता है।** आहाहा!

विकल्प रहा नहीं, वहाँ निर्ममत्वदशा उत्पन्न हुई। **ऐसा यह जीव शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति...** आवे। सिद्धभक्ति शब्द पड़ा है न? वह सिद्धभक्ति अर्थात् क्या? पर सिद्ध है? आहाहा! **शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप पारमार्थिक सिद्धभक्ति धारण करता हुआ...** देखो! समझ में आया? पंचास्तिकाय है न? १६९ गाथा, जयसेनाचार्य की टीका में। यहाँ सिद्धेसु शब्द पड़ा है न, सिद्धेसु, उसका अर्थ किया। सिद्धेसु भक्ति। तो सिद्धेसु का अर्थ **'सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु कुणदु करोतु'** ऐसा अर्थ किया है। सिद्धसदृश जो अपना भगवान आत्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कहाँ से हो? आवे कहाँ से? **'सिद्धेसुकुणदिभक्ति सिद्धगुणसदृश अनंतज्ञानात्मगुणेषु अनंत ज्ञानात्म अंतरगुणेषु'** भक्ति अर्थात् एकाग्रता। **'पारमार्थिक स्वसंवित्तिरूपां सिद्ध भक्ति'** करते हैं। शुद्धात्म-उपयोगरूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं। मुझे तो इतना शब्द लेना है। सिद्ध की व्याख्या। **'सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्म-गुणेषु कुणदु करोतु'** यह भगवान आत्मा, यह सिद्ध। पर सिद्ध के ऊपर तो पहले ही निषेध किया है। पर सिद्ध के ऊपर लक्ष्य जाता है तो विकल्प उठता है। राग है। निःसंगता, निर्ममता नहीं होती। वह सिद्ध, भगवान आत्मा ही सिद्ध है। समझ में आया?

'अनंत ज्ञानादि गुणेषु' सिद्धस्वभाव अपना भगवान आत्मा, उसमें यदि एकाग्र होता है तो निर्वाण को प्राप्त होता है। यह सिद्धभक्ति। साधु नहीं करते? आहार लेने जाये तो सिद्धभक्ति करे और अमुक भक्ति करे। हें? वह तो पर सिद्धभक्ति है। हें? भक्ति करे न? आहार लेने जाये तो ऐसे करे और ऐसे करे, फिर ऐसा कि आहार ले न! तब तक

कुछ है नहीं। सिद्धभक्ति करे, तब तक अन्तराय पड़े तो दिक्कत नहीं। आहार लेने जाये और फिर ऐसा कुछ है अवश्य। समझ में आया? सिद्धभक्ति शुरुआत की, ऐसा कुछ है। वह फिर अन्तराय पड़े तो आहार नहीं ले सकते। शुरुआत न करे तब तक। ऐसा कुछ है अवश्य। एक जगह पढ़ा हुआ है।

सिद्धभक्ति तो यह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सिद्ध ने जैसा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसा अनन्त स्वभाव। गुणेसु, ऐसा आत्मा में गुण जो है, उसमें एकाग्रता करता है, वह सिद्धभक्ति है। समझ में आया? लोगों को तो ऐसी बाहर में महिमा आवे! उपदेशक को वाणी बहुत हो और उसके कोई पुण्य भी बहुत हो और बाहर में सभा का ठाठ-बाठ जमता हो। आहाहा! भारी धर्म प्रभावना! और जो व्यक्ति राग से रहित होकर अन्दर में रहता हो। उसे बाहर में तो लोग जानते नहीं। हें? उसमें बाहर की क्रिया जड़ की होती हो और पर की ओर का लक्ष्य हुआ, वह तो राग है। उसकी महिमा लोग जानते हैं। आहाहा! जो महिमा करनेयोग्य नहीं, उसकी महिमा जानते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा राग से रहित होकर स्वभाव की एकाग्रता कौन करता है, इसकी लोगों को बाहर में तो खबर पड़ती नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि राग से रहित होकर स्वभाव में एकाग्र होता है, वह निर्वाण को प्राप्त होता है। समझ में आया? **शुद्धात्मद्रव्य में,...** देखो! भगवान आत्मा तीव्र या मन्द कषाय जो क्लेश है, उससे रहित भगवान शुद्धस्वरूप आत्मा। **शुद्धात्मद्रव्य में विश्रान्तिरूप...** विश्रान्ति-विश्रान्ति। आहाहा! राग में तो अविश्रान्ति थी, क्लेश था। संग और अहंकार क्लेश का विलास था। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा निजानन्द भगवान, उसमें विश्रान्तिरूप। **पारमार्थिक सिद्धभक्ति...** देखो!

सिद्धभक्ति, वह व्यवहारभक्ति है। सिद्ध भगवान का स्मरण आदि तो व्यवहारभक्ति राग है। पारमार्थिक **सिद्धभक्ति धारण करता हुआ...** लो! आहाहा! वास्तव में निजस्वभाव नित्यानन्द प्रभु में एकाग्र होता है तो मुक्ति को प्राप्त होता है। समझ में आया?

व्यवहार साधन किया तो निश्चय होता है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। यहाँ तो

व्यवहार साधन करता है तो अनर्थ की उत्पत्ति होती है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जिसे दूसरे स्थान में साधन अभी १७२ (गाथा) में कहेंगे। साधन है, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

छहढाला में यह कहा, जिसको—हेतु नियत को होई, उसे यहाँ अनर्थ का परम्परा कारण कहा है। कथनी कैसी! आहाहा! करते-करते... समझ में आया? **स्वसमयप्रवृत्ति की प्रसिद्धिवाला होता है।** लो! उस राग से प्रसिद्धि होकर पुण्यबन्ध होकर परम्परा संयोग और संयोग पर लक्ष्य जायेगा और अन्दर राग उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया? भगवान के पास जायेगा और वहाँ से सुनेगा। अरे! कैसी... समझ में आया?

यह भगवान के पास जाने से पारमार्थिक भक्ति होती है और तब निर्वाण होता है। आचार्य के अन्तिम श्लोक हैं न? जोरदार हैं। क्योंकि राग तो है, बन्ध तो होगा, स्वर्ग में तो जाना पड़ेगा। हें? व्यवहार से। परन्तु निषेध करते-करते जाते हैं। आहाहा! अरेरेरे! यह क्लेश है, हों! इस राग के फल में स्वर्ग मिलेगा। हम पंचम काल के साधु हैं। हमारे पुरुषार्थ की कमी रह गयी और राग रहता है। पुण्यबन्ध होगा, स्वर्ग में जायेंगे, यह इन्द्राणी की ओर के भोग कषाय के अंगारों में—जलते अंगारों में... जाना है। आहाहा! समझ में आया? कषाय की अग्नि में जलते जाना है। पुकार... पुकार करते हैं। समझ में आया?

उस कारण से वह जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके... उसमें कर्मबन्ध था। (इसमें) शुभाशुभ कर्म का कर्मबन्ध नहीं था। **जीव कर्मबन्ध का निःशेष नाश करके सिद्धि को प्राप्त करता है।** लो! अब थोड़ा विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। आहाहा!

गाथा - १७०

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।१७०।।

सपदार्थं तीर्थकरमभिगतवुद्धेः सूत्ररोचिनः।
दूरतरं निर्वाणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य।।१७०।।

अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तेः साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भाव-द्योतनमेतत् ।

यः खलु मोक्षार्थमुद्यतमनाः समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसम्भावितपरम्वैराग्य-भूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभशुक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायेन नवपदार्थैः सहार्हदादिरुचिरूपां परमसमयप्रवृत्तिं परित्यक्तुं नोत्सहते, स खलु न नाम साक्षान्मोक्षं लभते किन्तु सुरलोकादि-क्लेशप्राप्तिरूपया परम्परया तमवाप्नोति ।। १७० ।।

तत्त्वार्थ अर जिनवर प्रति जिसके हृदय में भक्ति है।
संयम तथा तप युक्त को भी दूरतर निर्वाण है।।१७०।।

अन्वयार्थ :- [संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य] संयमतपसंयुक्त होने पर भी, [सपदार्थ तीर्थंकरम्] नव पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति [अभिगतबुद्धेः] जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है और [सूत्ररोचिनः] सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है, उस जीव को, [निर्वाणं] निर्वाण [दूरतरम्] दूरतर (विशेष दूर) है।

टीका :- यहाँ, अर्हंतादि की भक्तिरूप परसमयप्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का [१]सद्भाव दर्शाया है।

जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ, अचिन्त्य

---

१. वास्तव में तो ऐसा है कि—ज्ञानी को शुद्धाशुद्धरूप मिश्र पर्याय में जो भक्ति-आदिरूप शुभ अंश वर्तता है, वह तो मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो (मन्दशुद्धिरूप) शुद्ध अंश परिणमित होता है, वह संवरनिर्जरा का तथा (उतने अंश में) मोक्ष का हेतु है। वास्तव में ऐसा होने पर भी, शुद्ध अंश में स्थिर संवर-निर्जरा-मोक्षहेतुत्व का आरोप उसके साथ के भक्ति-आदिरूप शुभ अंश में करके उन शुभभावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्षप्राप्ति

संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी [२]प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से, 'धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय से, नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता, वह जीव वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता किन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है ॥१७० ॥

गाथा - १७० पर प्रवचन

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।१७०।।

के हेतुभूत कहा गया है। यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है, ऐसा समझना। [ऐसा कथंचित् मोक्षहेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही वर्तनेवाले भक्ति-आदिरूप शुभभावों में किया जा सकता है। अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से यथार्थ मोक्षहेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभभावों में आरोप किसका किया जाये ?]

२. प्रभुशक्ति= प्रबल शक्ति; उग्रशक्ति; प्रचुर शक्ति। [जिस ज्ञानी जीव ने परम उदासीनता को प्राप्त करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की वह ज्ञानी जीव कदाचित् शुद्धात्मभावना को अनुकूल, जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले आगमों के प्रति रुचि (प्रीति) करता है; कदाचित् (जिस प्रकार कोई रामचन्द्रादि पुरुष देशान्तरस्थित सीतादि स्त्री के पास से आए हुए मनुष्यों को प्रेम से सुनता है, उनका सन्मानादि करता है और उन्हें दान देता है उसी प्रकार) निर्दोष-परमात्मा तीर्थंकरपरमदेवों के और गणधर-देव-भरत-सगर-राम-पाण्डवादि महापुरुषों के चरित्रपुराण शुभ धर्मानुराग से सुनता है तथा कदाचित् गृहस्थ-अवस्था में भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है और उन्हें दान देता है—इत्यादि शुभभाव करता है। इस प्रकार जो ज्ञानी जीव शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के क्लेश की परम्परा को पाकर फिर चरम देह से निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा विशुद्धदर्शन-ज्ञानस्वभाववाले निजशुद्धात्मा में स्थिर होकर उसे (मोक्ष को) प्राप्त करता है।]

आहाहा! तीर्थंकर रखे हैं। **संयमतपसंयुक्त होने पर भी,...** आहाहा! अपनी दशा वर्णन करते हैं न? समझ में आया? यहाँ मूल पाठ में अर्थ विशेष, विशेष अर्थ लो।

अन्वयार्थ :-संयमतपसंयुक्त होने पर भी,... शब्दार्थ है। जो साधु सम्यग्दृष्टि है, आत्मा के ध्येय में अनुभव लिया है, तदुपरान्त **संयमतपसंयुक्त होने पर भी,...** चारित्रवन्त है, संयमवन्त है। आहाहा! ऐसा मुनि होने पर भी नवपदार्थ और तीर्थंकर के प्रति जिनकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है। भगवान ने छह द्रव्य और नौ पदार्थ कहे हैं, उस ओर का झुकाव होता है, वह राग है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने नौ कहे तत्त्व और स्वयं साक्षात् तीर्थंकर, दोनों के प्रति जिनकी बुद्धि का झुकाव है। '**अभिगदबुद्धिस्स-अभिगदबुद्धिस्स**' वहाँ सन्मुख बुद्धि है। यह भगवान सच्चे हैं, तीर्थंकरदेव सच्चे हैं, इन्होंने कहे हुए नौ तत्त्व सच्चे हैं। अब यह कहते हैं, राग है। समझ में आया? लोगों को सत्य सुनने को मिला नहीं न! कहीं बेचारे... गड़बड़ की। अरेरेरे!

वीतराग का मार्ग क्या है, यह सुनने को मिलता नहीं। बाहर से बस मन्दिर बनाया, पूजा की, भगवान की भक्ति की, दान दिया, अपवास किये, धर्म हो गया। हें?

मुमुक्षु : कुछ रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ रहा नहीं। हाथ में कुछ आया नहीं। उसमें आत्मा कुछ आया नहीं। समझ में आया?

बाहर का भभका उसकी ओर कितना लगे? करोड़, दो करोड़ के दो-चार मन्दिर बनावे और करोड़, दो करोड़ पैसे (रुपये) दे। इतने सब तो दे नहीं परन्तु कदाचित् यदि दे न? थोड़ा-थोड़ा दे। पूछा था कि दस-बारह लाख एक व्यक्ति ने दिये? पूछा था। नहीं, एक लाख ग्यारह हजार दिये थे... और पैंतालीस हजार गाँव के लिये दिये।

मुमुक्षु : तम्बाकू में कमाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। तम्बाकू में नहीं। वह... घोड़े की रेस में पैसे कमाये। घोड़े की क्या कहलाती है? हाँ, रेस में कमाये। गाँव जीमाने में पैंतालीस हजार दिये थे।

दूसरा खर्च... लोगों को ऐसा हो जाये कि आहाहा! क्या परन्तु धर्म! धर्म की जहोजलाली। अब धूल भी धर्म नहीं, सुन न! आहाहा! ग्यारह लाख क्या, एक करोड़ ग्यारह लाख दे तो भी धर्म नहीं है। वह तो अजीव है। अजीव मैंने दिये, (ऐसा माने तो) वह मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : बन्द होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का बन्ध होगा। बन्ध क्या? वह बन्द नहीं होगा। ऐसा कि ऐसा सब होगा तो बन्द रह जायेगा। वह तो होने के काल में हुए बिना नहीं रहेगा। आत्मा को बन्ध... परपदार्थ क्या है?

मन्दिर होना है तो होगा ही होगा। तुझसे होता है? वह तो परमाणु जड़ पर्याय है। अजीव की परिणति का स्वकाल है, उससे होता है। आहाहा! हमने बनाया, हमने किया, (ऐसा माने वह), तीव्र मिथ्यात्व का पाप लगता है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! जैन वीतराग का मार्ग! समझ में आया? अजीव का स्वामी होता है और दूसरा उसमें कोई राग की मन्दता हुई हो तो उसमें मुझे धर्म का लाभ होगा, ऐसा माने तो वहाँ मिथ्यात्व का लाभ है। गजब बात है। आस्रव और अजीव दो। आस्रव का स्वामी हुआ और अजीव का स्वामी हुआ। चैतन्य का स्वामी नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **नव पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है...** आहाहा! तीर्थंकर ऐसा कहते हैं (कि) हमारे प्रति झुकाववाला भाव, वह राग है। हमको माननेवाले हमारे प्रति झुकाववृत्ति, वह राग है, क्लेश है। आहाहा! यह वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा। हें?

मुमुक्षु : कहाँ से सुनने को मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। ओहो! कहते हैं, नौ पदार्थ—उसमें मोक्ष आ गया, संवर-निर्जरा आ गयी। समझ में आया? उसमें देव-गुरु आ गये। मोक्ष में देव आये। संवर-निर्जरा में गुरु आये। संवर-निर्जरा, यह धर्म आया। आहा! नौ पदार्थ का झुकाव राग है। गजब बात है! स्वद्रव्य स्वभाव-सन्मुख का झुकाव नहीं और नौ पदार्थ को जानने के विकल्प में झुकाव हुआ। आहाहा! वह विकल्प का उत्थान वृत्ति हुई।

तथा तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है... आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर ऐसा कहते हैं, हमारा साक्षात् समवसरण हो और हमारे प्रति भक्ति का राग, वह दु:खदायक राग है। कषाय मन्द भी दु:खदायक है। आहाहा! कहो, जेठाभाई! यह उपधान करते हैं न? ४५ दिन के। बेचारे हैरान... हैरान! मिथ्यात्व का पोषण होता है। कुछ खबर नहीं होती! भगवान विकल्परहित चीज़ है। उसे विकल्पसहित और अजीव के कार्यसहित मानना। आहाहा! विपरीत मान्यता हुई। विपरीत मान्यता रहे और माने कि हमारे धर्म होगा। उसमें धर्म हुआ नहीं। एक ओर बैठे तो उसमें क्या हुआ? अन्दर में ध्यान करते थे। कहाँ एकता हुई, हम तो यह करते हैं, यह सबको खबर पड़ती है। समझ में आया? अकेले उपदेश देने की शक्ति न हो, बोलने की शक्ति न हो, पैसे देने की शक्ति न हो, शरीर में भी करने की शक्ति न हो।

आत्मा अन्दर आनन्द में एकाकार होता है, उसकी कीमत तो लोग करते नहीं। हें? उसकी तो खबर नहीं। ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री सीमन्धर भगवान समवसरण में। लो! भगवान के पास से आये और यह लाये। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखने से तुझे राग होगा, हों भाई! आहाहा! अन्दर में तेरे सन्मुख देख। ...आहाहा! क्या प्रकाशजी! समझ में आया या नहीं? थोड़ा-थोड़ा। यहाँ गुजराती कहाँ हुआ? हिन्दी है न? परसन्मुख का झुकाव, वह राग है। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर की भक्ति का भाव, वह भी तेरे राग है। ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि हम तीर्थंकर हैं तो हमारे प्रति झुकाव हो गया कि ये भगवान सच्चे हैं, यह राग है। आहाहा! भले मन्द हो परन्तु है तो राग की जाति न? समझ में आया? छोटा भी नाग होता है न छोटा नाग। क्या कहलाता है वह? कणो... कणो। कणो भी नाग है। तोड़ डाले, फाड़ डाले। कणिका आया था न? राग कणिका नहीं आयी? राग की कणिका। रागलव। कणिका भी नुकसानकारक है। कभी अभी सुनने में आता नहीं और प्रतीति करे नहीं। सेठ! ऐसी की ऐसी अभिमान में और अभिमान में जिन्दगी चली जाती है।

कहते हैं तीर्थंकर के प्रति जिसकी '**अभिगदबुद्धिस्स-अभिगदबुद्धिस्स**' ऐसे

सन्मुख अभि है न? सन्मुख की, ऐसा। अपना स्वसन्मुख छोड़कर तीर्थंकर के प्रति सन्मुख हो गया। और **सूत्र की रुचि...** आगम की रुचि। भगवान ने कहे, उस आगम की रुचि। वह आगम परद्रव्य है। आहाहा! सर्वज्ञ ने कहे, ऐसे समयसार, प्रवचनसार, नियमसार। समझ में आया? ...यह सब इसमें आया। सूत्र की रुचि। **सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है,...** आगम की प्रीति। आहाहा! ऐई! दीपचन्दजी!

मुमुक्षु : बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर। आज तो समयसार की पूजा की, लो! आहाहा! परन्तु है राग। भाई! और उसे कहे कि प्रशस्त राग है न? परन्तु प्रशस्त का अर्थ क्या? वह तो अशुभ की अपेक्षा से प्रशस्त कहा। बाकी तो क्लेश और दुःख है। आहाहा! समझ में आया? प्रशस्त राग है, उसका ऐसा कहना था। ऐसा विवाद करे! भगवान! तेरे साथ विवाद करता है भाई! '**अभि**' सन्मुख। बाहर सन्मुख हुआ और अन्तर सन्मुख से उसे लाभ होगा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा हो तो भी आप निषेध करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जैसा है, वैसा है न? करे कौन? राग आया, इतनी बात है। आहाहा! समझ में आया?

कितने बोल लिये? संयम, तपसहित, समकितसहित अर्थात् मुनिसहित ऐसा। और नौ पदार्थ के प्रति झुकाव। **नव पदार्थ का प्रेम...** रह जाता है। प्रेम, विकल्प है, वह राग है। **तथा तीर्थंकर के प्रति और सूत्रों के प्रति...** आगम के प्रति प्रेम। **उस जीव को निर्वाण दूरतर है।** उसे मोक्ष निकट नहीं है। जब राग छेदेगा, तब मोक्ष होगा। जब तक राग है... आहाहा! दूर अर्थात् इसका अर्थ क्या वहाँ? उससे मोक्ष नहीं, अर्थात् दूर होगा। यह राग जब टालेगा, तब मोक्ष होगा। आहाहा! हें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? व्यवहार सुनने में तो बहुत आता है भाई। आहाहा! किया है इन्होंने। नहीं, ऐसा लिया है इन्होंने? ऐसा कैसे किया... है तो ऐसा। कितने में

है ? नहीं, नहीं। इसमें। पंचास्तिकाय में है न ? यह आया... आया। पंचास्तिकाय कितने में यह है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परमेष्ठी के प्रति.... तत्त्वार्थ प्रतीति पर जिसे भक्ति है। .....रुचिरूप से जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है तथा जो संयुक्त तपसंयुक्त है तो उसे मोक्ष कुछ दूर नहीं है।* भाई ने याद अच्छा रखा। मोक्ष दूर है। यहाँ तो दूर कहते हैं। दूरतर, लो! यह तो खोटा हो गया। यह ख्याल नहीं था अभी तक, हों! पण्डितजी! उसे मोक्ष कुछ दूर नहीं। वे लोग फिर करते हैं, हें ? करो भक्ति। यह अर्थ खोटा है। हाँ, भूल है। यहाँ तो पाठ है, दूरतर है पाठ। समझ में आया ? दूरतरम। दूर भी नहीं, दूरतरम। दूरतम नहीं। आहाहा! ऐसा अर्थ किया है, यह तुमको कहाँ से याद रह गया ? हें ? ऐसा ? हाँ, हाँ। बात सच्ची है।

मोक्ष कुछ दूर नहीं। अब ऐसा लिखा गया। लोग सामने पकड़े। यहाँ तो कहे, मोक्ष दूर है। वह विशेष दूर है। दूर शब्द नहीं। दूरतर है न ? अर्थात् विशेष दूर। ऐसा। ऐई! आत्मारामजी! क्या है परन्तु दूरतर ?

मुमुक्षु : बहुत सरस बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें दूर नहीं और यहाँ दूर है। गाथा-श्लोक है न ? **'दूरतरं णिव्वाणं संजमतपसंपउत्तस्स'** मुनि है, संयमी है, चारित्रवन्त है, अणगार है, वीतरागपरिणति बहुत ही प्रगट हुई है। परन्तु थोड़ा सा भी राग रह जाये (तो) मोक्ष दूरतरम है। मोक्ष दूर होगा। आगे जायेगा। आहाहा! ठीक, यह ख्याल कराया भाई ने! हाँ, अच्छा किया। हमारा स्पष्टीकरण हमको वहाँ ख्याल नहीं था। समझ में आया ? दूरतरम है न ? दूरतर का अर्थ यह दूरतरम है। अर्थात् दूर, दूरतर और दूरतरम।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

---

* किसी अन्यत्र से प्रकाशित प्रति में किये गये अर्थ विपर्यास का वाचन कर स्पष्टीकरण गुरुदेवश्री द्वारा किया जा रहा है। —अनुवादक

प्रवचन-७९, गाथा-१७०-१७१, वैशाख कृष्ण ९, शुक्रवार, दिनांक -२९-०५-१९७०

टीका :- यहाँ, अर्हंतादि की भक्तिरूप... पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, वह **परसमय प्रवृत्ति...** वह राग में प्रवृत्ति है, वह स्वसमय आत्मा से भिन्न विभावरूप परिणति है। उसमें **साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव...** राग से तत्काल मोक्ष हो, ऐसा नहीं होता। **तथापि परम्परा से...** अर्थात् कि राग के क्रम-क्रम से, स्वर्ग में जायेगा, फिर मनुष्य होगा, निर्विकल्प समाधि प्राप्त करेगा, तब उसे मोक्ष होगा। यह परम्परा। अभी साक्षात् नहीं है। पश्चात् जब राग छोड़ेगा, तब उसे निर्विकल्प प्राप्ति होगी। मोक्षहेतुपने का सद्भाव दर्शाया है। अब नीचे नोट।

वास्तव में तो ऐसा है कि... वास्तव में तो ऐसी पद्धति और रीति है। ज्ञानी को, धर्मी जीव को अपना आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, ऐसी शुद्धता आंशिक प्रगट हुई है। द्रव्यस्वभाव के आश्रय से शुद्धि, पवित्रता, वीतरागता प्रगट हुई है। ऐसे **ज्ञानी को शुद्धाशुद्धरूप मिश्र पर्याय...** होती है। कितनी ही शुद्ध है और कितनी ही अशुद्ध है। **जो भक्ति-आदिरूप शुभ अंश वर्तता है,...** भक्ति आदि का धर्मी को भी शुभराग होता है। **मात्र देवलोकादि के क्लेश की परम्परा का ही हेतु है...** पाठ में ऐसा है कि परम्परा मोक्ष का हेतु है, उसकी सन्धि है। पहले कह गये हैं। इन्होंने कुछ घर का नहीं कहा। समझ में आया? पहले यह बात आ गयी है। आहाहा!

मात्र देवलोकादि,... आदि अर्थात्? देवलोक और मनुष्य। फिर स्वर्गादि में से निकलकर चक्रवर्ती हो, आदि। क्लेश की परम्परा। स्वर्ग में भी क्लेश है और वहाँ से निकलकर राजा चक्रवर्ती आदि हो, बलदेव आदि हो तो भी क्लेश है। उस सुख में कहीं शान्ति नहीं है, क्लेश है। शुभराग के फल में संयोग, संयोग में लक्ष्य जाने से अकेला क्लेश है। आहाहा! **क्लेश की परम्परा का 'ही' हेतु है और साथ ही साथ ज्ञानी को जो (मन्दशुद्धिरूप) शुद्ध अंश परिणमित होता है,....** वस्तु स्वभाव चैतन्यद्रव्य, उसके आश्रय से स्वआश्रय निश्चय, पराश्रय व्यवहार। अपने आश्रय से ज्ञान और आनन्द का अंश जो परिणमित हुआ है, वह तो संवर-निर्जरा का और मोक्ष का ही हेतु है। समझ में आया?

वस्तु चैतन्यद्रव्य जो है, उसके आश्रय से अन्तर्मुख होकर, वस्तु का अवलम्बन लेकर, जो पर्याय शुद्ध और वीतरागी हुई है, वह तो संवर और निर्जरा तथा मोक्ष का हेतु है। **वह संवरनिर्जरा का तथा मोक्ष का हेतु है।** समझ में आया? देखो! शुद्ध पर्याय में संवर और निर्जरा और अशुद्ध पर्याय में आस्रव और बन्ध। यह पहले आ गया है। शुद्ध अंश परिणमित हुआ है। परिणमित हुआ है। सम्यग्दृष्टि को, ज्ञानी कहा। उसे—ज्ञानी को चौथे, पाँचवें, छठवें आदि गुणस्थान में निर्विकल्प वीतरागी पर्याय जो प्रगट हुई, वह संवर-निर्जरारूप है और मोक्ष के कारणरूप है। आहाहा!

वास्तव में ऐसा होने पर भी, शुद्ध अंश में स्थित संवर-निर्जरा-मोक्षहेतुत्व का आरोप... शुद्ध अंश में स्थित संवर-निर्जरा-मोक्षहेतुत्व का आरोप **उसके साथ के भक्ति-आदिरूप शुभ अंश में करके...** यह परम्परा कहा न? इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **उन शुभभावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्षप्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है।** लो! यह अपेक्षा।

दोष की परम्परा, तथापि अभी परम्परा मोक्ष का हेतु, पहले, अनर्थ की परम्परा (गाथा) १६८ में आया। ज्ञानी का राग भी अनर्थ की सन्तति के क्लेश की वासना का विलास है। राग क्लेश का विलास। १६८। यह रखकर यहाँ बात है न? वह यहाँ स्पष्टीकरण किया है। यह तो मोक्षहेतु का आरोप, उसके साथ भक्ति आदि को अंश में करके, **उन शुभभावों को देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा सहित मोक्षप्राप्ति के हेतुभूत कहा गया है।** यह कथन आरोप से (उपचार से) किया गया है, ऐसा समझना।

ऐसा कथंचित् मोक्षहेतुत्व का आरोप भी... ऐसा कथंचित् शुभभावों में परम्परा का मोक्षहेतुत्व का कारण भी आरोप (भी) **ज्ञानी को ही वर्तनेवाले...** अज्ञानी जिसे राग की एकताबुद्धि है, उसे तो भक्ति आदि का राग परम्परा भी कहने में नहीं आता। क्योंकि उसमें आरोप चलता नहीं। समझ में आया? मोक्षहेतुत्व का आरोप भी ज्ञानी को ही भक्ति आदि में, त्याग आदि में वर्तता है। **अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से...** अज्ञानी को राग का अंश अपना है, ऐसी एकत्वबुद्धि जहाँ है, वहाँ तो शुद्ध के परिणमन का अभाव है। चाहे तो कषाय की मन्दता की क्रिया हो।

समझे न ? दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, परन्तु वह तो मिथ्यात्वसहित है। क्योंकि राग से अपने में एकत्वबुद्धि है। राग से पृथक् हुआ नहीं तो ऐसे **अज्ञानी को तो शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से यथार्थ मोक्षहेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है...** आहाहा! समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य के आश्रय से जो पवित्रता वीतरागीदशा प्रगट हुई, वही संवर और निर्जरारूप है। साथ में पंच महाव्रत का विकल्प, भक्ति-आदि का राग में आरोप दिया गया है कि वह परम्परा मोक्ष का कारण है। है तो परम्परा देवलोक के क्लेश का कारण। हें ?

मुमुक्षु : रास्ता मिल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग मिल नहीं जाता। वहाँ अटक जाते हैं। राग है, उसमें रुकते हैं, वहाँ तक उसे मोक्ष नहीं है। वह आगे जाकर जब राग छोड़ेगा, तब होगा। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो अभी मिथ्यादृष्टि है, पंच महाव्रत हैं और वह हमारा चारित्र और वह हमारी मुक्ति का कारण। चारित्र की खबर पड़े और समकित की खबर न पड़े ? यह महाव्रत और चारित्र, सब अज्ञान है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, संसार अनादि है। उसमें क्या ? बादशाह गुणस्थान है। यह तो प्रसिद्ध है। समझ में आया ? यहाँ तो अज्ञानी को, जिसकी श्रद्धा में राग की, विकल्प की मन्दता, वह मोक्ष का कारण है—ऐसा जिसने माना है, उसे तो बिल्कुल शुद्ध परिणति है नहीं। तो उसमें पूजा भक्ति आदि के भाव को व्यवहार से भी परम्परा मोक्ष का कारण है, ऐसा आरोप दिया नहीं जाता, ऐसी बात है। विद्यमान ही नहीं है। क्या ?

शुद्धि का अंशमात्र भी परिणमन में नहीं होने से यथार्थ मोक्षहेतु बिलकुल प्रगट ही नहीं हुआ है—विद्यमान ही नहीं है... प्रगट नहीं तो विद्यमान कहाँ से आया ? **तो फिर वहाँ उसके भक्ति आदिरूप शुभभावों में आरोप किसका किया जाये ?** आहाहा! समझ में आया ? इसकी टीका उस ओर।

जो जीव वास्तव में मोक्ष के हेतु से उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ,... यह उसकी शर्त। अपनी पूर्ण पवित्रता कैसे प्रगट हो ऐसे हेतु से उद्यमी चित्तवाला स्वभाव-सन्मुख वर्तता है। **अचिन्त्य संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी...** ऐसा। उसमें तो भाई कहते हैं, ऐसा है। बात सच्ची है। आज सब देखा। ऐसा कि ऐसा किया है, ऐसा किया है, ऐसा है। परन्तु यह तो ऐसा होने पर भी, ऐसा शब्द है। दो-चार पुस्तकें देंखी सबमें एक ही लेखन है। बड़ी पुस्तक देखी, उसमें देखा परन्तु एक ही लेखन है।

कहते हैं कि **जो जीव वास्तव में मोक्ष अर्थात् परम आनन्द की पूर्ण प्राप्ति के हेतु से उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ,...** अन्तर स्वभाव के सन्मुख उद्यम से वर्तता हुआ, **अचिन्त्य संयमतपभार सम्प्राप्त किया होने पर भी...** अचिंत्यसंयम और तप दोनों हैं। इतनी इन्द्रियदमन आदि संयम भी है और इच्छा निरोध आदि तप भी है। समझ में आया?

ऐसा **होने पर भी परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** ऐसा होने पर भी परमवैराग्य। देखो! पंच परमेष्ठी के प्रति राग है, उससे हटकर, परमवैराग्य के पुरुषार्थ की न्यूनता होने से, देखो! समझ में आया? **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति... प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** ऐसा नहीं कहा कि कर्म के निमित्त का थोड़ा जोर था, इसलिए प्रभुत्वशक्ति प्रगट नहीं की, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : यह तो तेरहवें और चौदहवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरहवें और चौदहवें में कहीं है नहीं। वहाँ आगे तो अपनी पर्याय से वहाँ आगे पूरा होता है। तेरहवें और चौदहवें में, परद्रव्य क्या करे? परद्रव्य का वहाँ स्पर्श भी नहीं है, जीव को वह स्पर्शता नहीं और उसे आत्मा स्पर्शता नहीं। सब भिन्न-भिन्न काम करते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण...** देखो! परमवैराग्य की व्याख्या। संयम, तप है, सम्यग्दृष्टि है, अपने स्वभाव में पूर्ण आनन्द के कारण से उद्यम वर्तता है तो भी, आहाहा! **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से, 'धुनकी को चिपकी हुई रुई'...** पींजण... पींजण। पींजण कहते

हैं न? उसके साथ रुई चिपकी हुई हो। ओहोहो! कहते हैं कि इतना भी राग का कण परमवैराग्य के अभाव के कारण राग का अभाव करने की शक्ति इतनी उत्पन्न न की होने के कारण, ऐसा कहते हैं।

नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप)... आहाहा! कहते हैं कि नौ पदार्थ के प्रति राग, परमवैराग्य का अभाव। इतना राग है तो परमवैराग्य ऐसी **प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** आहाहा! क्या शैली, देखो! इसमें तो कर्म का नाम भी कहीं लिया नहीं। कहते हैं न कि उसका—संज्वलन के राग का उदय है, ऐसा है। वह राग छोड़ नहीं सकता। ऐसा तो कहा भी नहीं। हें? आहाहा! संयम, तप और मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाले अन्तरस्वभाव आनन्दस्वरूप प्रभु उस ओर आरूढ़ होने पर भी परमवैराग्य होकर इतना राग से हटकर स्वरूप में स्थिर होने की शक्ति प्रगट की नहीं होने से, **'धुनकी को चिपकी हुई रुई' के न्याय से, नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप...** देखो! कितनी बात की! नौ पदार्थों का प्रेम विकल्प है, वह भी उसे रोकता है। उसे राग है तो परमवैराग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, संयम है, तप भी है। आहाहा!

मुमुक्षु : भक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों ही पद की भक्ति, वह राग, नौ पदार्थ का राग, नौ पदार्थ के प्रति प्रेम यह... यह... यह... ऐसा भेदरूप राग है न? उसके प्रति जिसे प्रेम है, वह **अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता,...** पंच परमेष्ठी की भक्ति का, प्रेम के राग का त्याग नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उनको ही शरण माने तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरण कहाँ है? वह तो शरण तो मानता नहीं। यह तो पहले से आया। उन्हें शरण मानता नहीं। मानता है अपनी शरण। यह तो पहले कहा न? मोक्ष के पुरुषार्थ में मानता है। परन्तु राग की वृत्ति इतना झुकाव। पंच परमेष्ठी और नौ पदार्थ के प्रति भी राग रहता है। तो परम वैराग्य प्रगट नहीं किया। इस कारण परसमयप्रवृत्ति नौ

पदार्थ और पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, वह परसमयप्रवृत्ति, विभाव परिणति, आहाहा! महामुनि छठवें गुणस्थान में होने पर भी; ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

नव पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप... नौ पदार्थ की रुचि और अरहन्तादि की रुचि, दोनों की प्रीति कही न? आहाहा! स्व की रुचि है, स्व का पुरुषार्थ भी है और स्व का संयम तथा तप भी है। ऐसी दशा होने पर भी, जब तक नौ पदार्थ और तीर्थंकर के प्रति रुचि रहती है, वह जीव साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता। आहाहा! राग रुका (विद्यमान) है इस कारण से, आहाहा! **मोक्ष को प्राप्त नहीं करता किन्तु देवलोकादि के...** मनुष्य आदि के **क्लेश...** देवलोक में से निकलकर चक्रवर्ती हो, बलदेव हो आदि क्लेश की प्राप्तिरूप। क्लेश है। आहाहा!

धर्मात्मा आराधक होकर स्वर्ग में गया हो, वहाँ भी क्लेश है। और बाकी राग-पुण्य रहा हो, अन्तिम अवतार हो, वहाँ भी जितनी सामग्री... रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है न? पुण्यवन्त प्राणी वृद्धि-समृद्धि आदि में उत्पन्न होता है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है। वह पूर्व के कारण से उत्पन्न होता है। परन्तु है क्लेश। आहाहा! समझ में आया? वहाँ भी समकिती को तो रस है नहीं। स्वर्ग में गये, वहाँ भी रस नहीं। निकलकर चक्रवर्ती पद मिला, वहाँ भी रस नहीं। आनन्दरस के समक्ष उसे रस नहीं परन्तु उसे क्लेश को भोगना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। लोग कहते हैं कि भाई! चक्रवर्ती का सुख तो मिले! बलदेव का सुख मिले। सुख को यहाँ कहते हैं कि दुःख है। कहो, समझ में आया?

अभी किसी ने कहा था न? नानालाल ने प्रश्न किया था न? नरक में दुःख है और स्वर्ग में सुख है। समझ में आया? यहाँ तो स्वर्ग में क्लेश है। सुख कहाँ आया? धूल भी नहीं। उसे अर्थ की खबर नहीं। ऐसा तो कुछ (है नहीं)। उसका ऐसा है कि भाई शुभभाव हो तो स्वर्ग में जाये और बहुत शुभ हो तो मोक्ष होता है। यह इसमें आया है। इसमें आया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में पाँचवें अध्याय में अन्त में डाला है। वे (श्वेताम्बर) लोग ऐसा मानते हैं, यह मान्यता ही ऐसी है। समझ में आया?

(संवत्) १९८४ के वर्ष में राणपुर में प्रतिक्रमण करते थे, तो ऐसा बोलते थे कि

तीर्थंकरगोत्र बाँधे, बहुत रस आवे तो तीर्थंकरगोत्र बँधे। भगवान का रस आवे तो निर्जरा हो और बहुत रस आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा कहाँ से आया? हाँ, वह। जघन्यरस आवे तो कर्म की कोल्हू (कोड़ाकोड़ी) खपे और उत्कृष्ट रस आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। कहा, यह कहाँ ऐसा गप्प मारा है? (संवत्) १९८४ की बात है, हों! खामणा में आता है। चालीस वर्ष पहले, भाई, हमारे तो बोले, यह भी सब बोलते होंगे, सुनते तो होंगे न? झबेरचन्दभाई और ये सब। वहाँ सेठिया जाकर सुने, खबर कहाँ है कुछ? ऐ झबेरचन्दभाई! हें? प्रतिक्रमण के समय। परन्तु जघन्यरस होवे तो कोड़ाकोड़ी कर्म खिपे और उत्कृष्ट आवे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। यह मेल कहाँ है? यह खामणा में आता है। यह १९८४ में कहा था। ऐ... परन्तु ऐसा कहाँ लगाया यह सब?

मुमुक्षु : यह किसी ने बना दिया, इसलिए चला?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण चला, दूसरा क्या?

मुमुक्षु : मूल पाठ में नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह तो बनाया है। ऐसा होगा? वस्तु एकदम झूठी है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अपने स्वभाव-सन्मुख शान्ति, आनन्द आदि प्रगट हुए होने पर भी जितनी पर में नौ पदार्थ और अरहन्त पंच परमेष्ठी के प्रति प्रीति रहती है, उतना स्वर्ग में जाकर क्लेश भोगना पड़ेगा। कहो, शोभालालजी! इन सेठिया को शौक नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : यहाँ भी आकुलता, वहाँ भी आकुलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है। यहाँ राग है, वह आकुलता है, वहाँ तो भोग की-अशुभ की आकुलता है। यह तो शुभ की आकुलता है। हाजिर है। बन्धन हुआ है, वह तो शुभ की आकुलता है। परन्तु उसका बन्ध पड़ा और संयोग मिले, वहाँ तो भोगने का भाव है, वह तो अशुभ की क्लेश दशा है। प्रवचनसार में लिया है न? परन्तु जहाँ क्लेश है, वहाँ शुभाशुभभाव भिन्न रहता ही है कहाँ? शुभभाव में भी क्लेश है और अशुभभाव में भी क्लेश है। तो शुभभाव (और अशुभभाव) दोनों भिन्न रहते हैं ही

कहाँ? और शुभ में तथा अशुभ में भेद माने (तो) तो घोर संसार में भटकेगा। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु देवलोकादि के... देवलोक आदि है न? मनुष्य आदि। **क्लेश की प्राप्तिरूप...** आहाहा! महाऋद्धि में जाये, वृत्ति में जाये। पुण्यबन्ध होने पर भी वहाँ क्लेश है। परसन्मुख का झुकाव है, उतना क्लेश है। फिर परम्परा प्राप्त करता है। अर्थात् वह क्लेश भोगने के पश्चात् स्वभाव की निर्विकल्पदशा प्रगट करके, राग से परम वैराग्य प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करता है। राग से तो क्लेश ही होता है, ऐसा कहते हैं। क्लेश है, उसे परम्परा मोक्ष का कारण आरोप से कहने में आया है। आहाहा!

नीचे। **प्रभुशक्ति=प्रबल शक्ति; उग्रशक्ति; प्रचुर शक्ति।** (प्रचुरशक्ति) **जिस ज्ञानी जीव ने परम उदासीनता को प्राप्त करने में समर्थ...** परम उदासीनता को प्राप्त करने में समर्थ **ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की...** यह नौ पदार्थ और पंच परमेष्ठी की भक्ति के प्रति राग, उसने परम उदासीन वैराग्य प्राप्त नहीं किया। आहाहा! समझ में आया?

वह ज्ञानी जीव कदाचित् शुद्धात्मभावना को अनुकूल,... क्या कहते हैं? कि अपने शुद्ध आत्मा की एकाग्रता है। उसमें अनुकूल निमित्त—अनुकूलरूप निमित्त **जीवादिपदार्थों का प्रतिपादन करनेवाले आगमों के प्रति रुचि (प्रीति)...** आगम की प्रीति का विकल्प उसे रहता है। समझ में आया? झोंका खाते हैं। शुद्धात्म भावना को अनुकूल। समझ में आया? अपना आत्मा पवित्र शुद्ध है, उसकी एकाग्रता है, उसे अनुकूलरूप निमित्त। नौ पदार्थ और आगम के प्रति रुचि, देखो! ओहोहो! नौ पदार्थ कहनेवाले तो सर्वज्ञ के आगम हैं। आगम के प्रति भी उनका झुकाव रह जाता है, वह भी परम उदासीनता का अभाव है। समझ में आया?

कदाचित् (जिस प्रकार कोई रामचन्द्रादि पुरुष देशान्तरस्थित सीतादि स्त्री के पास से आए हुए मनुष्यों को प्रेम से सुनता है,... लो! समझ में आया? हनुमानजी लंका में याद करने के लिये सीताजी के पास गये थे न? समाचार देने गये थे। आये (तो) रामचन्द्र पूछते हैं, क्यों भाई! सीताजी कैसे हैं? समझ में आया? हनुमानजी कहे, ठीक तो है परन्तु रावण की वाटिका में रावण ने रोका है। समझ में आया? उसने रोका है।

बाहर निकलने नहीं देता। आपके विरह से वे दुःखी हैं। उन्हें भोजन आदि... ऐसे समाचार लाये। समझ में आया? रामचन्द्रादि पुरुष आदिपुरुष है न, कोई **देशान्तरस्थित सीतादि स्त्री के...** अपनी पतिव्रता सीताजी के,... **पास से आए हुए मनुष्यों को प्रेम से सुनता है,...** देखो! **उनका सन्मानादि करता है...** आओ भाई! क्या समाचार लाये भाई! **उन्हें दान देता है; उसी प्रकार) निर्दोष-परमात्मा तीर्थंकरपरमदेवों के...** आहाहा! निर्दोष परमात्मा तीर्थंकरदेव के **और गणधरदेव...** उनके चरित्रपुराण सुनता है, ऐसा कहते हैं। समझे? उनके पास से आये हुए मनुष्यों के सन्मानादि करता है।

गणधर-देव-भरत-सगर-राम-पाण्डवादि महापुरुषों के चरित्रपुराण शुभ धर्मानुराग से सुनता है... शुभ अनुराग से सुनता है। ओहो! भगवान ऐसे हुए, गणधर ऐसे हुए, रामचन्द्रजी इत्यादि पाण्डव भरत-सगर ऐसे हुए, ऐसी कथा सम्यग्ज्ञानी भी शुभ धर्मानुराग से सुनता है। **तथा कदाचित् गृहस्थ-अवस्था में...** देखो! गृहस्थदशा में है, सम्यग्दर्शन है, आत्मभान है। **भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है...** देखो!

कोई कहता है कि अभेदरत्नत्रय छठवें गुणस्थान में नहीं होता। भाई! तो देखो यहाँ क्या कहते हैं? मुनि आहार लेने आये हैं तो भेदाभेदरत्नत्रय से परिणत हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? उसमें है या नहीं? भेदाभेदरत्नत्रय व्यवहार और निश्चयरत्नत्रयपरिणत मुनि हैं। आत्मज्ञानी, सम्यग्दृष्टि राग के ज्ञाता, राग के कर्ता नहीं। परन्तु व्यवहाररत्नत्रय विकल्प उनकी भूमिका में है और निश्चयरत्नत्रय की परिणति भी है। और आहार लेने आये, उस समय की बात है। हें?

छठवें गुणस्थान में अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय है, ऐसा यहाँ तो सिद्ध किया है। कहो, समझ में आया? दूसरी जगह प्रवचनसार आदि में अभेद को सातवें में कहा है। शुरुआत अकेले सातवें में कहा है। परन्तु यहाँ तो मुनि भावलिंगी सन्त आहार लेने के लिये आये हैं। देह के रजकण से और राग के कण से जिनकी दशा अन्तर भिन्न हो गयी है। आनन्द की दशा में झूलते हैं और साथ में थोड़ा देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का विकल्प भी है। आहार लेने आये हैं, उस समय अभेदरत्नत्रय भी है। पण्डितजी!

छठवें गुणस्थान में अभेद और भेद रत्नत्रय सिद्ध किया। कोई ऐसा कहता है कि नहीं, अकेला अभेद तो सातवें में होता है, नीचे नहीं होता।

यहाँ तो छठवीं भूमिका में (अभेदरत्नत्रय) सम्यग्दर्शन-अनुभव निर्विकल्प समाधि शान्ति और चारित्र जो अरागी वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई है, बाहर में नग्नदशा है। समझ में आया? और साथ में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है। वह भेदरत्नत्रय। आहाहा! समझ में आया? ऐसे साधु, देखो!

ऐसे तो एक विचार आया था। उसमें आया है न? परमशुद्धोपयोग को प्राप्त किया है। वहाँ इतना प्राप्त किया है। और भाई ने यहाँ लिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में (कि) शुद्धोपयोगरूप मुनिपना अंगीकार किया है। शुद्ध उपयोगरूप मुनिपना अंगीकार किया है। शुद्ध उपयोगरूप मुनिपना अंगीकार किया है। तो प्रवचनसार में यही आया है। परमशुद्धउपयोग प्राप्त किया है। वह सातवें की बात है। समझ में आया? यहाँ तो छठवें की बात करते हैं। सातवें में से नीचे आ गये और आहार लेने का विकल्प आया और अभेदरत्नत्रयपरिणति अन्तर में, अभेद अखण्ड आनन्द ऐसे स्वभाव के आश्रय से अभेद एकरूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र वीतरागी परिणति है। उसके साथ अभेद है। नौ पदार्थ की रुचि। समझ में आया? शोभालालजी!

आचार्य-उपाध्याय-साधु... देखो! आचार्य-उपाध्याय-साधु तीनों लिये हैं। आहाहा! आचार्य भी उसे कहते हैं कि जो अन्दर में अनुभव, राग से भिन्न अपने आनन्द का अनुभव और उसमें लीनता है, और दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता का अभेदरत्नत्रय प्रगट हुआ है और साथ में देव-गुरु-शास्त्र का और नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग भी बाकी रहा है। आहाहा! उसे आचार्य कहते हैं, और उसे उपाध्याय कहते हैं, उसे साधु कहते हैं। आहाहा! हें? समझ में आया?

भेदाभेदरत्नत्रयपरिणत... है। इस रूप से पर्याय में दशा प्रगट हुई है। उसमें आया था न? प्रगट नहीं हुई थी। नहीं आया था? अज्ञानी को बिल्कुल प्रगट हुई नहीं। विद्यमान ही नहीं है। यहाँ तो प्रगट हुई है। मुनि को-साधु को निर्विकल्प समाधि। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन। समझ में आया?

यह कहीं बात भी है नहीं। पंच महाव्रत पालते हैं, चारित्र पालते हैं तो मुक्ति होगी। धूल में भी नहीं। जहर है। विकल्प है तो भेद है। उसे भी व्यवहार जिसे अभेदरत्नत्रय है, उसके व्यवहार कहने में आता है। अज्ञानी को तो व्यवहार (होता ही नहीं)। वह तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। राग से, महाव्रत से धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसे को आहार दे सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे दे सकते हैं, ऐसा कहते हैं। अभी आता है। आता है।

देखो! ऐसे **आचार्य-उपाध्याय-साधु के पूजनादि करता है...** गृहस्थ ऐसे की पूजा करता है। समकिती गृहस्थ ऐसे की पूजा करता है, भक्ति करता है, स्तवन करता है, गुणगान करता है, ऐसे की। आहाहा! **और उन्हें दान देता है...** लो! उन्हें दान देता है, ऐसा शुभ विकल्प आता है। वह आहार लेने को आये हैं, यह आहार देता है। तो उसे शुभभाव होता है। **इत्यादि शुभभाव करता है।** करता है अर्थात् आता है, उसे करता है, ऐसा कहने में आता है। व्यवहारनय का कथन है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! शुभभाव करता है अर्थात् परिणमन होता है। कहा न! भेदरत्नत्रय का परिणमन है न? शुभभाव का परिणमन है, तो इतना कर्ता है। परिणमन की अपेक्षा से कर्ता। करनेयोग्य है, इस अपेक्षा से नहीं। समझ में आया? शुभभाव करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। परन्तु शुभभाव का परिणमन है, इस अपेक्षा से कर्ता कहा जाता है। 'परिणमे, वह कर्ता' इस अपेक्षा से।

इस प्रकार जो ज्ञानी जीव... गृहस्थ-गृहस्थ। **शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता...** लो! तुरन्त ही केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति नहीं होती। परन्तु **देवलोकादि के क्लेश की परम्परा को पाकर...** स्वर्ग में जायेगा, मनुष्य चक्रवर्ती आदि होगा। क्लेश की परम्परा है। कहो, समझ में आया? यह सब मकान संगमरमर के और सब। पैसा इतना बहुत दे। अंक हों वह। उसमें सुखी-बुखी (कुछ नहीं है)। धूल का क्लेश है, ऐसा कहते हैं। लोग तो तुमको बहुत ही मानते हैं। सेठिया सुखी है। भाई!

मुमुक्षु : मान्यता खोटी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी मान्यता। सेठिया सुखी है। लो! अपने जिसे अच्छी कन्या हो तो उसे दो, वहाँ सुखी होगी, ऐसा माने। समझ में आया? आहाहा! अज्ञान... अज्ञान... अज्ञान है।

कहते हैं कि यहाँ ऐसे आचार्य-उपाध्याय-साधु, आहाहा! कैसी एक व्याख्या करते हुए... पूजन, भक्ति, गुणगान, स्तवन करता है, वह शुभभाव है। दान देता है, वह भी शुभभाव है। दान देने से—शुभभाव से संसारपरित होता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। लो! कहो, समझ में आया? श्वेताम्बर शास्त्र में तो ऐसा आता है, शास्त्र में मूल पाठ में (ऐसा आता है)। मुनि को मिथ्यादृष्टि ने आहार दिया और संसारपरित किया। अत्यन्त विपरीत दृष्टि। शास्त्र के कर्ता ही मिथ्यादृष्टि हैं। ऐई! विपाक में दस अध्ययन है। यहाँ तो बहुत ही चर्चा बहुत ही हुई है। आहाहा! सम्प्रदायवालों को तो बात बहुत कठिन लगे। ऐई! पण्डितजी! मेघकुमार के भव में उस खरगोश की दया पालन की। ससला समझते हो? खरगोश। संसारपरित किया। अब छह काय की दया पालकर नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। शुभभाव तो शुभभाव है। उससे संसार का नाश होता है, एक भव का नाश होता है, यह तीन काल में नहीं है। उस शास्त्र को शास्त्र मानना और उसके कहनेवाले परमात्मा केवली थे तो केवली को भी ऐसा मानना। हें? कि केवली ने ऐसा कहा है कि राग से-दान देने से परितसंसार होता है। केवली ने ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वज्ञ प्रभु का अनादर करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव की श्रद्धा नहीं, शास्त्र की सच्ची श्रद्धा नहीं, गुरु की सच्ची श्रद्धा नहीं। सब विपरीत है। समझ में आया?

कहते हैं कि **इत्यादि शुभभाव करता है। इस प्रकार जो ज्ञानी जीव शुभराग को सर्वथा नहीं छोड़ सकता, वह साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के क्लेश की परम्परा को पाकर फिर चरमदेह से...** यह अचरमशरीरी की बात की। समझ में आया? पश्चात् चरमदेह-अन्तिम भव होगा। आहाहा! **निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा...** देखो! **निर्विकल्पसमाधिविधान द्वारा विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभाववाले निजशुद्धात्मा**

में स्थिर होकर... विशुद्धदर्शन-ज्ञान, ऐसा आत्मा का जो स्वभाव, उसमें **निजशुद्धात्मा में स्थिर होकर...** वापस ऐसा। आत्मा में स्थिर होकर **(मोक्ष को) प्राप्त करता है।** आहाहा! विधान तो निजस्वभाव में निर्विकल्प समाधि, वह विधान है। राग का विधान, वह मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा! इतनी स्पष्ट बात है। समझ में आया? तो भी ऐसी गड़बड़ करे! और कहे, नहीं, व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा माने नहीं तो एकान्त है। ऐई पण्डितजी! अब हुकमचन्दजी जैसे पण्डित भी जगे हैं। (वे भी कहते हैं) बिल्कुल खोटा है। राग से लाभ? जयपुर में दृष्टान्त-दृष्टान्त देकर बराबर सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

निर्विकल्प समाधिविधान द्वारा। वह तो विकल्प है, राग है। उस राग के क्लेश में से छूटने के लिये निर्विकल्प समाधि है, वह छूटने का उपाय है। वह राग छूटने का उपाय नहीं है। आहाहा! हें? बन्ध, राग है। आहाहा! मुनि की कितनी बात ली है। संयम, तप के धरनेवाले। महातप, संयम अन्तर सम्यग्दर्शन स्वरूप के आनन्द में अन्दर बहुत ही घुस गया है। परन्तु इतना राग बाकी रह गया। आहाहा! तो भी राग में देवलोक और मनुष्य का भव मिलेगा। उसमें क्लेश होगा। फिर निर्विकल्प समाधि विधान द्वारा राग को छेदकर मोक्ष प्राप्त करता है। लो! आहा! प्रभुशक्ति प्रगट की। प्रभुत्वशक्ति पूर्ण प्रगट की तो मोक्ष प्राप्त करता है। समझ में आया? ओहोहो!

अन्त में कितनी बात स्पष्ट कर दी है। कहो, जेठाभाई! ऐसा तो स्पष्ट है।

मुमुक्षु : तो भी नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मानते। तो भी खोटा माना कि यहाँ का खोटा और हमारा सच्चा, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! नया मार्ग निकाला है, ऐसा कहते हैं। नया मार्ग निकाला है। प्रकाशजी! भाई ऐसा कहते थे न?

मुमुक्षु : नया मार्ग नहीं, यह तो पुराना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे प्रकाशजी कहते थे न कि ऐसा लोग बोलते थे। नया मार्ग। नया नहीं, अनादि का है। वह मार्ग ही है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है कि सत्य मार्ग का विरोध हो गया हो तो पहले

सत्य निकाले तो कुछ नया नहीं है, वह तो अनादि का है। हाँ, लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में सब बात ली है। बहुत ही बात! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो हजारों बोल का निचोड़ कर दिया है। परन्तु पढ़े नहीं, विचारे नहीं और अपना आग्रह छोड़े नहीं और अपने विचार से....

मुमुक्षु : कोई माने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने नहीं। पुराना मार्ग है। नया किसे कहे? बीच में ऐसा उल्टा हो गया हो और सत्य मार्ग हो तो नया नहीं है, वह तो अनादि का है। आहाहा! अन्दर दृष्टान्त डालते हैं। कहान पन्थ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कहान पन्थ ही है। कान पकड़ावे...

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे भाईलालभाई का है या नहीं? उस समय वढवाण में भाईलाल को कहा था। कान पकड़ावे ऐसा है, इसलिए वहाँ जाना नहीं, हों! नहीं तो कान पकड़ायेंगे। आहा! मार्ग तो ऐसा है। अनादि का मार्ग है। मार्ग दूसरा होता नहीं। लो! १७० गाथा पूरी हुई। (अब) १७१ (गाथा)।

गाथा - १७१

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः परेण नियमेन।
यः करोति तपःकर्म स सुरलोकं समादत्ते।।१७१।।

अर्हदादिभक्तिमात्ररागजनितसाक्षान्मोक्षस्यान्तरायद्योतनमेतत् ।

यः खल्वर्हदादिभक्तिविधेयबुद्धिः सन् परमसंयमप्रधानमतितीव्रं तपस्तप्यते, स तावन्मात्ररागकलिकलमि तस्वान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोदमोहितान्तरङ्गं स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गरैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ।। १७१ ।।

अरहंत-सिद्ध-जिनवचन सह जिनप्रतिमाओं के भजन को।
संयम सहित तप जो करें वे जीव पाते स्वर्ग को।।१७१।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो (जीव), [अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनभक्तः] अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (—अर्हंतादि की प्रतिमा) और प्रवचन (-शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ, [परेण नियमेन] परम संयम सहित [तपःकर्म] तपकर्म (-तपरूप कार्य), [करोति] करता है, [सः] वह [सुरलोकं] देवलोक को [समादत्ते] सम्प्राप्त करता है।

टीका :- यह, मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय उसका प्रकाशन है।

जो (जीव) वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के आधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ [१]परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है, वह (जीव), मात्र उतने रागरूप क्लेश से जिसका निज अन्तःकरण कलंकित (-मलिन) है; ऐसा वर्तता हुआ, विषयविषवृक्ष के [२]आमोद से जहाँ अन्तरंग (-अन्तःकरण) मोहित होता है ऐसे स्वर्गलोक को— जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है उसे—सम्प्राप्त करके, सुचिरकाल पर्यन्त (-बहुत लम्बे काल तक) रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ अन्तर में सन्तप्त (-दुःखी, व्यथित) होता है॥१७१॥

---

१. परसंयमप्रधान = जिसमें उत्कृष्ट संयम मुख्य हो ऐसा।
२. आमोद = (१) सुगन्ध; (२) मौज।

गाथा - १७१ पर प्रवचन

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

मूल पाठ में लो थोड़ा। **जो (जीव) अर्हंतादि की भक्ति के आधीन वर्तता हुआ...** सिद्ध की भक्ति। यह चैत्य अरहन्तादि की प्रतिमा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने यहाँ सिद्ध किया है। प्रतिमा थी, अनादि की है। नयी है नहीं। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य ने दो जगह पहले अर्हंत, सिद्ध लिये थे। पहले आया था न? हें? कितने में? १६६ में। अर्हंत, सिद्ध है, देखो! वहाँ भी आया था।

कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। वहाँ से आये और प्रतिमा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। जो प्रतिमा नहीं, ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अरे! अरे! सेठ! है अन्दर में? अपने १७१ (गाथा)। लो न! दोनों में है। अर्थ में है, अर्थ में देखो! **अन्वयार्थ :- जो (जीव), अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादि की प्रतिमा)...** अर्हंतादि की प्रतिमा में पाँचों ही पद की प्रतिमा शास्त्र में है। समझ में आया? अनादि की बात है, यह नयी बात नहीं है। कहते हैं कि उसका प्रेम है तो अर्हंतादि की प्रतिमा है न? भाई! उसका प्रेम है, भक्ति है तो अर्हंतादि की प्रतिमा है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने सिद्ध किया है। आहाहा! समझ में आया? पहले १६६ में आ गया है। वहाँ चैत्य—प्रतिमा ली थी। यहाँ भी प्रतिमा ली है। समझ में आया?

(-अर्हंतादि की प्रतिमा) और प्रवचन (-शास्त्र) के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ,... तो यह वस्तु है, उसके ऊपर प्रेम है न? नहीं है, उसके ऊपर प्रेम कहाँ से आया? समझ में आया? तो कैसा **वर्तता हुआ, परम संयम सहित तपकर्म (-तपरूप कार्य), करता है,...** परम संयम हो, अतीन्द्रिय आनन्द में संयमदशा हो, तप इच्छा निरोध आदि भी हो। परन्तु **वह देवलोक को सम्प्राप्त करता है।** जब तक अर्हंत सिद्ध, सिद्ध प्रतिमा और प्रवचन—भगवान के कहे हुए शास्त्र, उनके प्रति भी जब तक झुकाव का—राग का भाग है, तब तक मोक्ष नहीं होगा। देवलोक में जायेगा। समझ में आया? तो यह उसमें सिद्ध होता है या नहीं?

अर्हंत की, सिद्ध की, साधु की, सच्चे हों! सच्चे। पंच परमेष्ठी की प्रतिमा अनादि की है। कोई इनकार करे तो अनादि सनातन सत् का विरोध करता है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बात है।

क्या कहते हैं, देखो न? मार्ग की प्रभावना के लिये पंचास्तिकाय की गाथा १७३ में है। मार्ग की प्रभावना के लिये प्रेरक होकर यह बनाया है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं फरमाते हैं। १७३ गाथा में आयेगा। उस आगम के प्रति प्रेम, प्रतिमा के प्रति प्रेम, पाँच पद के प्रति प्रेम। आहाहा! समझ में आया? और **वह देवलोक को सम्प्राप्त करता है।** उसे मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! कहो, वीरेन्द्रकुमार! देखो! यहाँ प्रतिमा सिद्ध की है। वे इनकार करते हैं न? प्रतिमा हम नहीं पूजते, तुम पूजते हो। देखने गये थे न? ....हम कहाँ पूजते हैं। पूजे या नहीं, परन्तु जगत में है या नहीं?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। चैत्य-प्रतिमा है यहाँ। समझ में आया? क्योंकि प्रवचन तो भिन्न किया है। कोई कहे कि चैत्य अर्थात् वहाँ शास्त्र होता है। लिखा है परन्तु दोनों अलग बात है। सब पूरे एक-एक शब्द को अलग किया है। ऐसा कहते हैं कि चैत्य तो जिनवाणी है। समझ में आया? देखो! १६६ में, देखो! **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य (-अर्हंतादि की प्रतिमा), प्रवचन (शास्त्र), मुनिगण और ज्ञान के प्रति भक्ति सम्पन्न जीव।** १६६ गाथा। आहाहा!

मुमुक्षु : जितनी दलील हो, वह सब रखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब... सब बात रखी। आचार्यों ने तो बहुत ही स्पष्ट कर दिया है। १६६।

अर्हंत की भक्ति, सिद्ध, चैत्य अर्थात् प्रतिमा। यदि चैत्य को वहाँ शास्त्र कहे, तो यहाँ शास्त्र तो आता है। प्रवचन में शास्त्र तो आये हैं। तेरह नाम आये हैं। प्रवचनगण, ज्ञान, भक्ति, वापस ज्ञान भी आया है। स्थानकवासी चैत्य का अर्थ ज्ञान होता है, ऐसा भी कहते हैं। तो यहाँ दूसरे अर्थ आये हैं। आहाहा! लोगों को जिसमें पड़े हों, उसमें से निकलना (कठिन पड़ता है)। समझ में आया?

प्रवचन-शास्त्र, ज्ञान, चैत्य तीनों अलग किये हैं। कोई चैत्य का अर्थ अकेला

वाणी ही करे, ऐसा नहीं है। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे (वहाँ से आकर शास्त्र की रचना की) उसे (सच्चे) शास्त्र कहते हैं। समझ में आया? इसमें नहीं। संस्कृत टीका में है। यह जयसेनाचार्य की टीका में भी है। इसमें है। इसमें तो कुछ नहीं न? फुटनोट में लिया है। टीका में है। देखो! जयसेनाचार्य की टीका में है। अपने लिया है। हिन्दी में लिया है। तीसरे पृष्ठ पर है। पाठ में संस्कृत है इसमें। जयसेनाचार्य की टीका है।

इस शास्त्र के कर्ता श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। तीसरे पृष्ठ पर है। उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, ऐलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य हैं। जयसेनाचार्यदेव शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं। अब श्री कुमारनन्दि सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि थे। उनके प्रसिद्ध कथा न्याय से पूर्व विदेह में जाकर, पूर्व के विदेहक्षेत्र में जाकर भगवान के पास गये थे। देखो! वीतराग सर्वज्ञ सीमन्धरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके उनके मुखकमल में से निकली हुई दिव्यध्वनि के श्रवण में अवधारित पदार्थ द्वारा... संस्कृत टीकाकार है यहाँ, हों!

शुद्धात्म तत्त्व आदि सारभूत अर्थ ग्रहण करके, वहाँ से लौटकर, अन्तःतत्त्व और बहिर्तत्त्व गौण-मुख्य प्रतिपादन के हेतु शिवकुमार महाराज आदि शिष्यों के प्रति बोधनार्थ रचित पंचास्तिकाय शास्त्र यथाक्रम से अधिकार शुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थे व्याख्यान किया जाता है। संस्कृत में, हों! लोगों को अपना पक्ष मानने में बड़ी क्या कहलाये? विडम्बना। विडम्बना होती है। हो साधारण बात परन्तु पक्ष छोड़ना बहुत (मुश्किल पड़ता है)। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भी आचार्यदेव १७१ में कहते हैं। यहाँ प्रवचन अलग दिया है। देखो! **अर्हंत, सिद्ध, चैत्य और प्रवचन...** इसमें अलग लिया है। प्रवचन अलग लिया है, ऐसा नहीं। कोई ऐसा कहता है कि चैत्य का अर्थ यहाँ शास्त्र होता है, ऐसा नहीं। यहाँ चैत्य का अर्थ ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। ज्ञान अलग लिया है। अर्हंत, सिद्ध, चैत्य—अर्हंतादि की प्रतिमा और प्रवचन के प्रति भक्ति सम्पन्न वर्तता है। परम संयम सहित है

और तपरूपी कार्य। जिसके समक्ष इच्छा निरोधरूपी आनन्द का कार्य है, तथापि वह देवलोक को सम्प्राप्त करेगा। देवलोक में जायेगा। अपनी स्थिति बताते हैं। हमारे भी इतना राग रहेगा और स्वर्ग की प्राप्ति होगी। आहाहा! समझ में आया?

टीका :- यह, मात्र अर्हंतादि की भक्ति जितने राग से उत्पन्न होनेवाला जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय उसका प्रकाशन है। देखो! अन्तराय, उसमें परम्परा कारण कहा और यहाँ अन्तराय कहा। समझ में आया? मात्र पंच परमेष्ठी, उनकी प्रतिमा, उनके प्रवचन, उनका ज्ञान, उनके प्रति प्रेम। जितने राग से उत्पन्न होता जो साक्षात् मोक्ष का अन्तराय, उसका प्रकाशन है। मोक्ष में अन्तराय करनेवाला इतना राग। आहाहा! समझ में आया? **जो (जीव) वास्तव में अर्हंतादि की भक्ति के आधीन बुद्धिवाला...** लो! **आधीन बुद्धिवाला वर्तता हुआ...** वहाँ बुद्धि गयी न इतनी?

परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है,... परम संयम जिसमें मुख्य हो। परम संयम जिसमें मुख्य हो। हाँ, ऐसा। **परमसंयमप्रधान अतितीव्र तप तपता है,...** जिसमें संयम उत्कृष्ट है और तप तपता है अर्थात् इच्छा निरोध है। वह तप। आहाहा! वह जीव **मात्र उतने रागरूप क्लेश से,...** पंच परमेष्ठी के विकल्प का इतना राग रहा, वह क्लेश है। वह शुभभाव रागरूपी क्लेश है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह धर्मी की बात है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्मी की बात है। अज्ञानी की बात यहाँ है ही कहाँ? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की यहाँ बात है। और वह मुनि। मुनि को भी भगवान की प्रतिमा का प्रेम है। प्रतिमा है, मन्दिर है, अर्हंत हैं, सिद्ध हैं, प्रवचन है, शास्त्र है और ज्ञान भी है। समझ में आया? उनके प्रति रागरूप क्लेश से जिसका चित्त अन्तःकरण कलंकित (मलिन) है। आहाहा! वीतरागमार्ग! समझ में आया?

अभी श्रद्धा में ठिकाना नहीं और कहे कि राग से धर्म होता है और ऐसे धर्म होता है। यहाँ तो कहते हैं कि राग कलंकित है। अन्तराय करनेवाला है। हमारे प्रति का तेरा राग कलंकित राग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरी जगह लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह लिखा नहीं। दूसरी जगह लिखा है कि राग से कुछ लाभ होगा। साधन-फाधन कुछ है नहीं। सब व्यवहार के कथन हैं। नहीं है, उसे कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। ऐसा है नहीं। ऐसा है नहीं, उसे व्यवहार कहते हैं। व्यवहार अन्यथा कथन करता है। समझ में आया?

यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। व्यवहार अन्यथा कथन करता है। है, ऐसा कथन करे, वह तो निश्चय है। कहते हैं, अरे! **जिसका निज अन्तःकरण...** राग, वह मन का भाव है न? **कलंकित (-मलिन) है, ऐसा वर्तता हुआ, विषयविषवृक्ष के आमोद से जहाँ...** आहाहा! वह स्वर्ग में कहाँ है? कहते हैं कि शुभराग से स्वर्ग में जायेगा तो स्वर्ग में है क्या? और चक्रवर्ती आदि पद मिलेगा तो उसमें है क्या? आहाहा! **विषयविषवृक्ष...** वह तो विषय के जहर का वृक्ष है। बाहर के देवलोक के पद आदि शुभराग से ऐसे विषय के जहर के वृक्ष मिलेंगे। आहाहा! **विषयविषवृक्ष के आमोद से...** देखो! आमोद अर्थात् सुगन्ध, मौज है। वहाँ विषयरूपी जहर के वृक्ष का आमोद, मौज है। स्वर्ग में और समकिती-ज्ञानी हो। उसे पंच परमेष्ठी के प्रति, अर्हंत, सिद्ध भगवान के प्रति स्मरण आदि का राग बाकी रह गया। आहाहा! यह अपनी बात करते हैं न? अन्तिम है न? देवलोक में जाना है न? आहाहा! वहाँ तो यह विषय के जहर के वृक्ष की मौज है। जहररूपी वृक्ष का आमोद-मौज है। वहाँ सुखरूपी मौज है, ऐसा है? (ऐसा) है नहीं.... आहाहा!

विषयविषवृक्ष के आमोद से... विषयरूपी जहर के वृक्ष का मजा है। उसकी वहाँ स्वर्ग में और चक्रवर्ती में सुगन्ध है, ऐसा कहते हैं। **जहाँ अन्तरंग (-अन्तःकरण) मोहित होता है...** आहाहा! यह बाहर ऊपर की इतनी सावधानी, हों! है समकिती। परन्तु बाहर के ऊपर इतनी सावधानी। है चारित्र का दोष, हों! यह मोहित अर्थात् मिथ्यात्व का दोष नहीं। समझ में आया? आत्मा के आनन्द का भान है, आनन्द का आदर है। आनन्द प्रगट हुआ है, परन्तु बीच में इतना राग का कण रह गया तो विषय के जहर के वृक्ष की मौज उसे मिलेगी। आहाहा! जैसे विष के वृक्ष के वृक्ष हों और फूल तोड़े, जहर के वृक्ष के फल तोड़े, उसी प्रकार वहाँ मौज, वह जहर के वृक्ष के फल हैं। आहाहा! गजब बात! आहाहा!

मोहित होता है ऐसे स्वर्गलोक को... मोहित होता है, **ऐसे स्वर्गलोक को...** देखो! यहाँ अकेले स्वर्गलोक की व्याख्या की है। **जो कि साक्षात् मोक्ष को अन्तरायभूत है...** यह वहाँ स्वर्ग में जाना है, वह तो मोक्ष की अन्तरायभूत बात है। आहाहा! **उसे— सम्प्राप्त करके,...** उस जहर के वृक्ष को प्राप्त करके, कि जो स्वर्ग का सुख साक्षात् मोक्ष को विघ्न करनेवाला है। आहाहा! **सुचिरकाल पर्यन्त (-बहुत लम्बे काल तक)...** बहुत ही लम्बे काल तक। आयुष्य लम्बा कितना? ओहोहो! तैंतीस... तैंतीस सागर! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष। बहुत ही लम्बा काल। रागरूपी अंगारों से दाह्यमान, रागरूपी अग्नि से सिंक जायेगा। आहाहा! शुभ भी कषायअग्नि है न? समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प आदि का राग होता अवश्य है परन्तु है तो वह अग्नि। कषायअग्नि है।

रागरूपी अंगारों से दह्यमान हुआ अन्तर में सन्तप्त (-दुःखी, व्यथित) होता है। आहाहा! इस शुभभाव में, क्लेश में तो व्यथित होगा। जहर के वृक्ष में। सुख-बुख है नहीं। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७२

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।१७२।।

तस्मान्निर्वृत्तिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किञ्चित्।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति।।१७२।।

साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम् ।

साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरो हि वीतरागत्वम् । ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दननगसङ्गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तहमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलज्ज्वलद्दुःखसौख्य-कल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भारभयमरं भवसागरमुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्र-मध्यास्य सद्यो निर्वाति ।।

अलं विस्तरेण । स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति । द्विविधं किल तात्पर्यम्-सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यञ्चेति । तत्र सूत्रतात्पर्यं प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम् । शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते । अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य, सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्ष-तत्त्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसम्बन्धिबन्धमोक्षायतन-बन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदित-निश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गस्य, साक्षान्मोक्षकारणभूत-परमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य, परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति । तदिदं वीतरागत्वं व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये, न पुनरन्यथा । व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेद-वासितबुद्धयः सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः । तथाहि-इदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदं ज्ञेयमिदमज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमयं चरितेदं चरणमिति कर्तव्या-कर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः शनैःशनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः, कदाचिद-ज्ञानान्मदप्रमादतन्त्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्यायपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्ड-दण्डनीतयः, पुनः पुनः दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चित्ताः सन्ततोद्यताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धान-ज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमान-विमलसलिलाप्लुतविहितोषपरिष्वङ्गमलिनवासस इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्न-साध्यसाधनभावाभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहितत्वरूपे विश्रान्तसकलक्रिया-काण्डाडम्बर-निस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूत्रयन्तः क्रमेण

समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति ।

अथ ये तु केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाध्यसाधनभावावलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः, प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्र-विकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूप-कर्मकाण्डोड्डु-मराचलिताः, कदाचित्किञ्चिद्रोचमानाः, कदाचित्किञ्चिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्कि-ञ्चिदाचरन्तः; दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजमानाः, कदाचिदनु-कम्पमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शमकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टितानां व्युत्थापननिरोधाय नित्यबद्धपरिकराः, उपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्प्रभावनां भावयमाना वारंवारमभिवर्धितोत्साहा; ज्ञानाचरणाय स्वाध्यायकालमवलोकयन्तो, बहुधा विनयं प्रपञ्चयन्तः, प्रविहितदुर्धरोपधानाः, सुष्ठु बहुमानमातन्वन्तो, निह्नवापत्तिं नितरां निवारयन्तोऽर्थव्यञ्जनतदुभयशुद्धौ नितान्तसावधानाः, चारित्राचरणाय हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहसमस्तविरतिरूपेषु पञ्चमहाव्रतेषु तन्निष्ठवृत्तयः, सम्यग्योगनिग्रहलक्षणासु गुप्तिषु नितान्तं गृहीतोद्योगा, ईर्याभाषेषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपासु समितिष्वत्यन्तनिवेशितप्रयत्नाः; तपआचरणायानशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग-विविक्तशय्यासनकायक्लेशेष्वभीक्ष्णमुत्सहमानाः, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यव्युत्सर्गस्वाध्याय-ध्यानपरिकराङ्कुशितस्वान्ता; वीर्याचरणाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणाः; कर्मचेतना-प्रधानत्वाद्दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तयः, सकलक्रियाकाण्डा-डम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपां ज्ञानचेतनां मनागप्यसम्भावयन्तः, प्रभूतपुण्य-भारमन्थरितचित्तवृत्तयः, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिरं संसारसागरे भ्रमन्तीति । उक्तञ्च-
''चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा । चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति।।''

येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिनः सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलित-विलोचनपुटाः किमपि स्वबुद्ध्यावलोक्य यथासुखमासते, ते खल्ववधीरितभिन्नसाध्य-साधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभराल-सचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रभूतघृतसितोपलपायसासादितसौहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनोभ्रंशविहितमोहा इव, मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबन्धभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूप-ज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमादतन्त्रा अरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति । उक्तञ्च-''णिच्छयमालंबंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता । णासंति चरणकरणं बाहरि-चरणालसा केई ।।''

ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानव-लम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानु-

वृत्तिनिवर्तिकां क्रियाकाण्डपरिणतिं माहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि सञ्चेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति, ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि सन्न्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरुपमीयमाना अपि दूरनिरस्तकर्मफलानुभूतय: कर्मानुभूतिनिरुत्सुका: केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विकानन्दनिर्भरतरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भवन्तीति।।१७२।।

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो।।१७२।।

अन्वयार्थ :- [तस्मात्] इसलिए, [निर्वृत्तिकामः] मोक्षाभिलाषी, जीव [सर्वत्र] सर्वत्र [किञ्चित् रागं] किंचित् भी राग, [मा करोतु] न करो; [तेन] ऐसा करने से [सः भव्यः] वह भव्य जीव [वीतरागः] वीतराग होकर [भवसागरं तरति] भवसागर को तरता है।

टीका :- यह, साक्षात्मोक्षमार्ग के सार-सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है (अर्थात् यहाँ साक्षात्मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।)

साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर सचमुच वीतरागता है। इसलिए वास्तव में [१]अर्हंतादिगत राग को भी, चन्दनवृक्षसंगत अग्नि की भाँति, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर, जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है, ऐसे भवसागर को पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।

— विस्तार से बस हो। जयवन्त वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।

---

१. अर्हंतादिगत राग = अर्हंतादि की ओर का राग; अर्हंतादिविषयक राग; अर्हंतादि का राग। [जिस प्रकार चन्दनवृक्ष की अग्नि भी उग्ररूप से जलाती है, उसी प्रकार अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।]

तात्पर्य द्विविध होता है : [१]सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य। उसमें, सूत्रतात्पर्य प्रत्येक सूत्र में (प्रत्येक गाथा में) प्रतिपादित किया गया है; शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है :—

सर्व [२]पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये जिसमें पंचास्तिकाय और षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव दर्शाया गया है, नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा जिसमें बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी), बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान) और बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं, निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है तथा साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है—ऐसे इस यथार्थ [३]पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है।

सो इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के [४]अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं (अर्थात् व्यवहार और निश्चय की सुसंगतता रहे इस प्रकार वीतरागपने का अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती)।

(उपरोक्त बात विशेष समझाई जाती है:—)

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय

---

१. प्रत्येक गाथासूत्र का तात्पर्य, सो सूत्रतात्पर्य है और सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य, सो शास्त्रतात्पर्य है।

२. पुरुषार्थ=पुरुष-अर्थ; पुरुष-प्रयोजन। [पुरुषार्थ के चार विभाग किए जाते हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; परन्तु सर्व पुरुष-अर्थों में मोक्ष ही सारभूत (तात्त्विक) पुरुष-अर्थ है।]

३. पारमेश्वर=परमेश्वर के; जिनभगवान के; भागवत; दैवी; पवित्र।

४. छठवें गुणस्थान में मुनियोग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना तथा महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना, वह निश्चयव्यवहार के अविरोध का (सुमेल का) उदाहरण है। पाँचवें गुणस्थान में उस गुणस्थान के योग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना तथा देशव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का यथायोग्यरूप से होना, वह भी निश्चय-व्यवहार के अविरोध का उदाहरण है।

से [१]भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर [२]सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं (अर्थात् सुगमता से मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का सेवन करते हैं)। जैसे कि—'(१) यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है, (२) यह अश्रद्धेय है, (३) यह श्रद्धा करनेवाला है और (४) यह श्रद्धान है; (१) यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है, (२) यह अज्ञेय है, (३) यह ज्ञाता है और (४) यह ज्ञान है; (१) यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है, (२) यह अनाचरणीय है, (३) यह आचरण करनेवाला है और (४) यह आचरण है;'—इस प्रकार (१) कर्तव्य (करनेयोग्य), (२) अकर्तव्य, (३) कर्ता और (४) कर्मरूप विभागों के अवलोकन द्वारा जिन्हें कोमल उत्साह उल्लसित होता है ऐसे वे (प्राथमिक जीव) धीरे-धीरे मोहमल्ल को (रागादि को) उखाड़ते जाते हैं; कदाचित् अज्ञान के कारण (-स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण) मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने पर अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं; पुनः पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार प्रायश्चित्त देते हुए वे सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं; और [३]भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा (-आत्मा से

---

१. मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को प्राथमिक भूमिका में, साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत आत्मा है और उसका साधन व्यवहारनय से (आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहनेवाले) भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं। इस प्रकार उन जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं।(निश्चयनय से साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।)

२. सुख से=सुगमता से, सहजरूप से, कठिनाई बिना।[जिन्होंने द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धानादि किए हैं, ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ-साथ श्रद्धानज्ञानचारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प (भेदरत्नत्रय) होते हैं, क्योंकि अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है, उसका तुरन्त ही सर्वथा नाश होना कठिन है]।

३. व्यवहार-श्रद्धानज्ञानचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न है; क्योंकि व्यवहारश्रद्धान का विषय नव पदार्थ हैं, व्यवहारज्ञान का विषय अंग-पूर्व हैं और व्यवहारचारित्र का विषय आचारादिसूत्रकथित मुनि-आचार हैं।

भिन्न जिसके विषय हैं ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मा में—धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले, निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले और क्षार (साबुन) लगाए जानेवाले मलिन वस्त्र की भाँति—थोड़ी-थोड़ी [1]विशुद्धि प्राप्त करके, उसी अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण, दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण (-अभाव के कारण) जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है, ऐसे भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए (अर्थात् दर्शनज्ञान-चारित्र के ऐक्यस्वरूप, निर्विकल्प परमचैतन्यशाली तथा भरपूर-आनन्दयुक्त ऐसे भगवान आत्मा में अपने को स्थिर करते हुए), क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है, इसलिए परम वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।

[अब केवलीव्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—]

परन्तु जो केवलव्यवहारावलम्बी (मात्र व्यवहार का अवलम्बन करनेवाले) हैं, वे वास्तव में [1]भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त खेद पाते

---

१. जिस प्रकार धोबी पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है, उसी प्रकार प्राक्पदवीस्थित ज्ञानी जीव भेदरत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा में संस्कार को आरोपण करके उसकी थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। परमार्थ ऐसा है कि उस भेदरत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को शुभभावों के साथ जो शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता है, वही उग्र होते-होते विशेष शुद्धि करता जाता है। इसलिए वास्तव में तो, शुद्धात्मस्वरूप का आलम्बन करना ही शुद्धि प्रगट करने का साधन है और उस आलम्बन की उग्रता करना ही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। साथ रहे हुए शुभभावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना, वह तो मात्र उपचार कथन है। शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभभावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (—शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित आलम्बन) प्रगट किया हो।

१. वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं। जहाँ साध्य और साधन भिन्न कहे जायें वहाँ

हुए, (१) पुनःपुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से, (२) बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति चित्त-विचित्र होती है, इसलिए और (३) समस्त यति-आचार के समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल में वे अचलित रहते हैं इसलिए, (१) कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं, (२) कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प करते हैं और (३) कभी कुछ आचरण करते हैं; दर्शनाचरण के लिए—वे कदाचित् प्रशमित होते हैं, कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं, कदाचित् अनुकम्पित होते हैं, कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढ़दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना को भाते हुए बारम्बार उत्साह को बढ़ाते हैं; ज्ञानाचरण के लिये—स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं, बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं, दुर्धर उपधान करते हैं, भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं, निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं, अर्थ, व्यंजन और [1]तदुभय की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं; चारित्राचरण के लिये—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह की सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं, सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है (-योग का बराबर निरोध करना, जिनका लक्षण है), ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं; ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्गरूप समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं; तपाचरण के लिये—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश में सतत् उत्साहित रहते हैं, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, व्युत्सर्ग, स्वाध्याय और ध्यानरूप [2]परिकर द्वारा निज अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं; वीर्याचरण के लिये—

'यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है किन्तु व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया है'—ऐसा समझना चाहिए। केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए अर्थात् 'वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा' ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए निरन्तर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं।

१. तदुभय=उन दोनों (अर्थात् अर्थ तथा व्यंजन दोनों)

२. परिकर=समूह; सामग्री।

कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति द्वारा [१]व्यापृत रहते हैं; ऐसा करते हुए कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण—यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है तथापि—शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए, बहुत पुण्य के भार से [२]मंथर हुई चित्तवृत्तिवाले वर्तते हुए, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं। कहा भी है कि— [३]चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कावावारा। चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥ [अर्थात् तो चरणपरिणामप्रधान हैं और स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं, वे चरणपरिणाम का सार जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसे नहीं जानते।][४]

---

१. व्यापृत=रुके; गुँथे; लगे; मशगूल; मग्न।

२. मंथर=मन्द; जड़; सुस्त।

३. इस गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार है:—चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्त-व्यापाराः। चरणकरणस्य सारं निश्चयशुद्धं न जानन्ति॥

४. श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति-टीका में व्यवहार-एकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है :—

जो कोई जीव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष केवलशुभानुष्ठानरूप व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मानते हैं, वे उसके द्वारा देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त करते हुए संसार में परिभ्रमण करते हैं; किन्तु यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग को माने और निश्चयमोक्षमार्ग का अनुष्ठान करने की शक्ति के अभाव के कारण निश्चयसाधक शुभानुष्ठान करें, तो वे सराग सम्यग्दृष्टि हैं और परम्परा मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार व्यवहार-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।

[यहाँ जो 'सराग सम्यग्दृष्टि' जीव कहे, उन जीवों को सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है परन्तु चारित्र-अपेक्षा से उन्हें मुख्यतः राग का अस्तित्व होने से 'सराग सम्यग्दृष्टि' कहा है, ऐसा समझना। और उन्हें जो शुभ अनुष्ठान है, वह मात्र उपचार से ही 'निश्चयसाधक (-निश्चय के साधनभूत)' कहा गया है, ऐसा समझना।]

[अब केवलनिश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—]

अब, जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर [१]यथासुख रहते हैं (अर्थात् स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके इच्छानुसार—जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे-रहते हैं।), वे वास्तव में [२]भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए, अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए, अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए, मत्त (उन्मत्त) जैसे, मूर्च्छित जैसे, सुषुप्त जैसे, बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (-तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (-मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे, दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे, जिसका विशिष्टचैतन्य मुँद गया है, ऐसी वनस्पति जैसे, मुनीन्द्र की कर्मचेतना को [३]पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना

---

१. यथासुख=इच्छानुसार; जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे; यथेच्छरूप से। [जिन्हें द्रव्यार्थिकनय के (निश्चयनय के) विषयभूत शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान या अनुभव नहीं है तथा उसके लिए उत्सुकता या प्रयत्न नहीं है, ऐसा होने पर भी जो निज कल्पना से अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्चिंतरूप से स्वच्छन्दपूर्वक वर्तते हैं। 'ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को प्राथमिक दशा में आंशिक शुद्धि के साथ-साथ भूमिकानुसार शुभभाव भी होते हैं'-इस बात की श्रद्धा नहीं करते, उन्हें यहाँ केवलनिश्चयावलम्बी कहा है।]

२. मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को सविकल्प प्राथमिक दशा में (छठवें गुणस्थान तक) व्यवहारनय की अपेक्षा से भूमिकानुसार भिन्नसाध्यसाधनभाव होते हैं अर्थात् भूमिकानुसार नव पदार्थों सम्बन्धी, अंगपूर्व सम्बन्धी और श्रावक-मुनि के आचार सम्बन्धी शुभभाव होते हैं।—यह बात केवलनिश्चयावलम्बी जीव नहीं मानता अर्थात् (आंशिक शुद्धि के साथ की) शुभभाववाली प्राथमिक दशा को वे नहीं श्रद्धते और स्वयं अशुभ भावों में वर्तते होने पर भी अपने में उच्च शुद्ध दशा की कल्पना करते स्वच्छन्दी रहते हैं।

३. केवलनिश्चयावलम्बी जीव पुण्यबन्ध के भय से डरकर मन्दकषायरूप शुभभाव नहीं

में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होते हुए, (मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते हुए, प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफल की चेतना के प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है, ऐसी वनस्पति की भाँति, केवल पाप को ही बाँधते हैं। कहा भी है किः—
[१] णिच्छयमालम्बंता णिच्छयदो णिच्छयं अयाणंता। णासंति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई॥ [अर्थात् निश्चय का अवलम्बन लेनेवाले परन्तु निश्चय से (वास्तव में) निश्चय को नहीं जाननेवाले कई जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए चरणपरिणाम का नाश करते हैं।][२]

करते और पापबन्ध के कारणभूत अशुभभावों का सेवन तो करते रहते हैं। इस प्रकार वे पापबन्ध ही करते हैं।

१. इस गाथा की संस्कृत छाया इस प्रकार हैः—निश्चयमालम्बन्तो निश्चयतो निश्चयमजानन्तः। नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसाः केऽपि॥

२. श्री जयेसनाचार्यदेवरचित टीका में (व्यवहार-एकान्त का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् तुरन्त ही) निश्चयएकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया हैः—

और जो केवलनिश्चयावलम्बी वर्तते हुए रागादिविकल्परहित परमसमाधिरूप शुद्ध आत्मा को उपलब्ध नहीं करते होने पर भी, मुनि को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य षड्-आवश्यकादिरूप अनुष्ठान को तथा श्रावक को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य दानपूजादिरूप अनुष्ठान को दूषण देते हैं, वे भी उभयभ्रष्ट वर्तते हुए, निश्चयव्यवहार-अनुष्ठानयोग्य अवस्थान्तर को न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं (अर्थात् केवल निश्चय-अनुष्ठानरूप शुद्ध अवस्था से भिन्न ऐसी जो निश्चय-अनुष्ठान और व्यवहारअनुष्ठानवाली मिश्र अवस्था उसे न जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं); परन्तु यदि शुद्धात्मानुष्ठानरूप मोक्षमार्ग को और उसके साधकभूत (व्यवहारसाधनरूप) व्यवहाररमोक्षमार्ग को माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ-अनुष्ठानरहित हों तथापि—यद्यपि वे शुद्धात्मभावनासापेक्ष शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं तथापि—सराग सम्यक्त्वादि द्वारा व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते हैं।—इस प्रकार निश्चय-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।

[यहाँ जिन जीवों को 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है, वे उपचार से सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं समझना। परन्तु वे वास्तव में सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा समझना। उन्हें चारित्र-अपेक्षा से मुख्यतः रागादि विद्यमान होने से सराग सम्यक्त्वाले कहकर 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है। श्री जयेसनाचार्यदेव ने स्वयं ही १५०-१५१वीं गाथा की टीका में कहा है कि—जब

[अब निश्चय-व्यवहार दोनों का [१]सुमेल रहे इस प्रकार भूमिकानुसार प्रवर्तन करनेवाले ज्ञानी जीवों को प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—]

परन्तु जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले [२]महाभाग भगवन्तों, निश्चय-व्यवहार में से किसी [३]एक का ही अवलम्बन न लेने से (-केवलनिश्चयावलम्बी या केवलव्यवहारावलम्बी न होने से) अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए, शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के [४]विरचन की अभिमुख (उन्मुख) वर्तते हुए, प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्तिका निवर्तन करेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए (-शुभ क्रियाकाण्ड-परिणति हठरहित सहजरूप से भूमिकानुसार वर्तती होने पर भी अंतरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते हुए), अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से आत्मा में संचेतते (अनुभवते) हुए नित्य उपयुक्त रहते हैं, वे (-वे महाभाग भगवन्तों), वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए (-स्वतत्त्व में स्थिरता होती जाये तद्नुसार शुभभावों को छोड़ते हुए), अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि जिन्होंने

यह जीव आगमभाषा से कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है, तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा सराग-सम्यग्दृष्टि होता है।]

१. निश्चय=व्यवहार के सुमेल की स्पष्टता के लिये पृष्ठ २५८ की द्वितीय, टिप्पणी देखें।

२. महाभाग=महापवित्र; महागुणवान; महाभाग्यशाली।

३. मोक्ष के लिये नित्य उद्यम करनेवाले महापवित्र भगवन्तों को (-मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को) निरन्तर शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप का सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से उन जीवों को उस अवलम्बन की तरतमतानुसार सविकल्प दशा में भूमिकानुसार शुद्धपरिणति तथा शुभपरिणति का यथोचित सुमेल (हठरहित) होता है, इसलिए वे जीव इस शास्त्र में (२५८वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलनिश्चयावलम्बी कहा है, ऐसे केवलनिश्चयावलम्बी नहीं हैं तथा (२५९वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलव्यवहारावलम्बी कहा है ऐसे केवलव्यवहारावलम्बी नहीं हैं।

४. विरचन=विशेषरूप से रचना; रचना।

कर्मफलानुभूति अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है ऐसे, कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए, केवल (मात्र) ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर, शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के (-निर्वाणसुख के) भोक्ता होते हैं ॥१७२ ॥

प्रवचन-८०, गाथा-१७२, वैशाख कृष्ण १०, शनिवार, दिनांक -३०-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, १७२ गाथा।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भविओ भवसायरं तरदि।।१७२।।

यदि मुक्ति का है लक्ष्य तो फिर राग किंचित् ना करो।
वीतरागी बन सदा को भवजलधि से पार हो।।१७२।।

पूरे शास्त्र का तात्पर्य कहते हैं।

टीका :- यह, साक्षात्मोक्षमार्ग के... साक्षात् मोक्षमार्ग जो वीतरागभाव, उसके **सार-सूचन द्वारा शास्त्रतात्पर्यरूप उपसंहार है...** शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है, वह यहाँ कहना है। चारों अनुयोगों में, सभी शास्त्रों में तात्पर्यरूप से होवे तो एक वीतरागता, वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग है और वस्तु स्वभाव वीतराग है और पर्याय में वीतरागता प्रगट करनी, यह शास्त्र-तात्पर्य है।

मुमुक्षु : व्यवहार कब प्रगटेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बतलायेंगे अन्दर। व्यवहार उसकी भूमिका योग्य सुसंगत मेल खाये, ऐसा होता है। परन्तु वह कहीं आदरणीय नहीं है।

मुमुक्षु : जरा भी नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं है। यहाँ कहा न ? '**सव्वत्थ कुणदु मा किंचि**' जरा भी राग सर्वत्र, सर्वक्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव में राग करना जरा भी नहीं। यह शास्त्र का वीतरागपना है। इसमें नास्ति से बात की। अस्ति से फिर दूसरे पद में (करेंगे)।

'सो तेण वीदरागो भविओ भवसागरं तरदि' वह भव्य भवसागर को तिरता है, इसलिए कहते हैं, **यहाँ साक्षात्मोक्षमार्ग का सार क्या है, उसके कथन द्वारा शास्त्र का तात्पर्य कहनेरूप उपसंहार किया है।** अब इसका स्पष्टीकरण। **साक्षात्मोक्षमार्ग में...** साक्षात् मोक्षमार्ग अर्थात् अन्दर एक परम्परा मोक्षमार्ग होगा सही! है अन्दर विकल्प और राग, कहते हैं परन्तु वह कहीं वास्तविक है नहीं। **साक्षात्मोक्षमार्ग में...** निवृत्ति का कामी है न पाठ में। देखो न! निवृत्ति का कामी, अत्यन्त निवृत्ति का कामी। विकल्प से बिल्कुल निवृत्ति का कामी। अर्थात् मोक्ष का कामी। **साक्षात्मोक्षमार्ग में अग्रसर...** साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रसर। **सचमुच वीतरागता है।** वीतरागपना, वह साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रसर होता है। राग और पर, वह मोक्षमार्ग में अग्रसर नहीं। कहो, समझ में आया?

व्यवहार रागादि कहेंगे। निश्चय और व्यवहार का विरोध जिस प्रकार से हो, अविरोध हो, ऐसा सुमेल करके दोनों को बराबर जानना। परन्तु बात यह है कि अग्रसर तो वीतरागपना है। अग्रसरपना उसका है। यह तो पीछे-पीछे राग की मन्दता, पूर्ण वीतरागता न हो, इसलिए होती है, परन्तु (यह) उसका प्रमुखपना नहीं है। जरा भी लाभ नहीं। प्रमुख सामने होकर चले, वह वीतरागपना है। कहो, समझ में आया? देखो न! पाठ में तो अकेला यही लिया है। यह तो अमृतचन्द्राचार्य ने फिर उसका स्पष्टीकरण किया है। वीतरागता हो, परन्तु वीतराग के साथ उसकी भूमिका प्रमाण राग होता है या नहीं? इतना एक निश्चय और व्यवहार का अविरोधपना बतलाया है।

कहते हैं, **साक्षात् मोक्षमार्ग में...** क्योंकि आत्मा स्वयं ही वीतरागस्वभाव है। और उसके आश्रय से प्रगट होती पर्याय, वह भी वीतरागभाव है। वास्तव में तो, कहा था न अभी! अन्तरिक्ष जाते हुए... पण्डित फूलचन्दजी के साथ बात हुई। देखो! यह वीतराग तात्पर्य शास्त्र ने कहा, परन्तु इसका अर्थ क्या? चारों अनुयोगों में स्व परिपूर्ण प्रभु का आश्रय करना और निमित्त, राग और अल्पज्ञपने का आश्रय छोड़ना, यह वीतराग तात्पर्य है। वीतरागता कैसे प्रगट हो? शास्त्र-तात्पर्य तो वीतरागता कहा। वीतरागता पर्याय में आवे किस प्रकार? मोक्षमार्ग पर्याय का वर्णन है न? यही कहते हैं कि वीतरागता आवे कब? कि पूर्ण वस्तु स्वभाव है, उसके सन्मुख होने पर और निमित्त

राग और अल्पज्ञ पर्याय से विमुख होने पर। उसकी उपेक्षा, स्वभाव की अपेक्षा। यह सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य है।

एक समय की पर्याय, विकल्प और निमित्त, तीन की उपेक्षा और एक त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा, तब वीतरागभाव प्रगट होता है। वीतरागभाव तात्पर्य कहा परन्तु वीतरागभाव प्रगटे कैसे ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसमें ऐसा नहीं आया राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ आया है ? इसमें आया नहीं राग.... यह आयेगा। टीका में कहेंगे। यह तो भूमिका प्रमाण राग घटता जाता है न ? यहाँ तो पहले तो एकदम। जो निवृत्ति (का) कामी है, उसे '**सव्वत्थ कुणदु मा किंचि**' किंचित् भी विकल्प करनेयोग्य मुक्ति के कामी को है नहीं। आहाहा! अशुभराग तो कुछ नहीं। यह तो पहले बात आ गयी। यहाँ तो अरिहन्त के ऊपर बात चलती है न ? उसमें आयेगा न! अभी आयेगा। वापस स्वयं टीका में लेंगे।

पंच परमेष्ठी जिन्हें हितकारी कहते हैं, जिन्हें व्यवहार से इष्ट कहते हैं। जिनका उपकार कभी भूलनेयोग्य नहीं है, ऐसा जिन्हें कहते हैं। यह श्लोक आया था न ? पण्डितजी बोले नहीं थे ? नियमसार में आता है। नियमसार में आता है। '**आप्तविमुक्तम**' हाँ, यह। ऐसा है। '**कृतम् उपकारम साधु न विस्मरंति**' क्योंकि मोक्ष होता है ज्ञान से, ज्ञान होता है शास्त्र से, शास्त्र उत्पन्न होते हैं आप्त पुरुष से। समझ में आया ?

मोक्ष होता है ज्ञान से अर्थात् वीतरागभाव से, यह वीतरागभाव प्रगट होता है शास्त्र से और शास्त्र प्रगट होता है आप्त पुरुष से। व्यवहार सिद्ध करना है न ? इसलिए सज्जन पुरुष उपकार को भूलते नहीं। परन्तु इसका सार यह है कि स्मरण तो वह व्यवहार से बात की, परन्तु उसे भूलकर। (अर्थात्) पर का उपकार और निमित्त था, उसे भूलकर। तात्पर्य वीतरागता कब प्रगट हो ? अन्तर द्रव्यस्वभाव वीतरागस्वभाव पूर्ण ईदम्, पूर्ण आया था न अपने। सवेरे आया था। पूर्ण एक वेदन सहित।

पूर्ण भगवान आत्मा ध्रुव एक स्वभावी वस्तु, उसकी सन्मुखता और एक समय की पर्याय राग और निमित्त जिसका उपकार उसकी विमुखता। समझ में आया ? तब

वीतरागता प्रगट हो और तब शास्त्र का तात्पर्य प्रगट हुआ कहलाये। यह बात है। समझ में आया? 'साक्षात् मोक्षमार्ग में अग्रसर वास्तव में वीतरागता है...' एक ही मोक्षमार्ग कहा, ऐसा वास्तव में तो। वीतरागभाव एक ही मोक्षमार्ग है। **इसलिए वास्तव में अर्हंतादिगत राग को भी,...** यह आया। योगफल लेंगे न? अरिहन्त पाँच परमेष्ठी के प्रति राग। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु के प्रति का राग / विकल्प उस ओर की सन्मुखता। अर्हंतादिविषयक राग। पाँच परमेष्ठी के प्रति लक्ष्य से होनेवाला राग। अर्हंतादि का राग, ऐसा।

जैसे चन्दनवृक्ष का अग्निपना उग्ररूप से जलाता है, चन्दनवृक्ष की अग्नि जली हुई चन्दन अग्नि, वह अग्नि का ही काम करती है। उसी प्रकार **अर्हंतादि का राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग-अलग यह कहे नहीं। अलग-अलग कैसे होगा? एक ही मार्ग है। सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा अनन्त गुण का एकरूप वीतराग स्वभाव का पिण्ड, उसकी सन्मुखता यह एक ही मार्ग है; दूसरा कोई मार्ग नहीं है। समझ में आया? वास्तव में... आहाहा! देखो तो! **अर्हंतादिगत राग को...** आया था न अभिगत उसमें? अर्हंतादि का। **चन्दनवृक्ष संगत अग्नि की भाँति...** चन्दन का वृक्ष तो ठण्डा है, परन्तु अग्नि उसके साथ सुलगी। आहाहा!

ऐसी अग्नि देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति। सच्चे पंच परमेष्ठी, हों! उनके प्रति का राग देवलोकादि अर्थात् देवलोक और वहाँ से निकलकर चक्रवर्ती आदि हो (तो भी) वहाँ क्लेश की प्राप्ति है। आहाहा! कहो, सेठ! तुमको सुखी कहते हैं न? लोग कहते हैं। दिलीप को पूछा था न? वह कहता था। सेठ पूछते थे कि हम सुखी हैं न? सुख कैसा? धूल में सुख है? दुःख है। क्लेश है। समझ में आया? यह तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को भी बाकी रह गया हुआ राग, उसकी बात है। अज्ञानी के राग की तो बात है ही कहाँ? आहाहा! चन्दन के वृक्ष को संगत मिली हुई अग्नि, वह जलाती है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा के वीतरागस्वभाव के अतिरिक्त वीतरागी परमात्मा

पाँचों ही हैं, वीतरागी। इस वीतरागी पर्याय के अतिरिक्त वीतरागी पर्यायवाले पाँच परमेष्ठी, आहाहा! देखो न! कहाँ-कहाँ क्या बात लेते हैं! पाँच परमेष्ठी तो वीतराग पर्यायवाले हैं न! हें? तेरह में लो तो भी वीतरागी, छठवेंवाले मुनि, आचार्य, उपाध्याय लो तो भी वीतरागी।

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष के मार्ग में तो प्रमुखता वीतरागभाव की है, वह वीतरागभाव स्व आश्रय से प्रगट होता है। इसके अतिरिक्त ऐसी वीतरागदशा जिसे प्रगट हुई है और वीतराग हुए हैं, ऐसे जीव। आहाहा! कहाँ बात करना? समझ में आया? उनके प्रति का **राग भी देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग जलन का कारण होता है।** शोभालालजी! देवलोक में दाह है, कहते हैं। दुनिया कहती है सुख है। धूल में भी नहीं, भाई! आकुलता है। और चक्रवर्ती की सम्पदा, कहते हैं कि उसका सुख दाह है। **अत्यन्त अन्तरंग जलन...** ऐसा वापस। अत्यन्त अन्तरंग दाह का कारण होता है, दुःख का कारण होता है। बलतरा को हिन्दी में क्या कहते हैं? बलतरा का अर्थ? हिन्दी में है? ज्वलन। हिन्दी में लिखा है न हिन्दी में। है किसी के पास? हिन्दी में है या नहीं? नहीं? यह है। इसमें होगा? दाह! दाह! अन्तर्दाह! इन्द्राणी और वैमानिक के सुख अन्तर ज्वलन—दाह है, कहते हैं। आहाहा!

उसे राग है न? राग है न? भले देवी... परन्तु उसे राग है न? अनुकूल सामग्री! वहाँ से नीचे उतरना नहीं होता। भगवान के पास आने का भी नहीं होता। परन्तु वह सब आहार की इच्छा और वह सब दाह है। ज्वलन है। सुलगता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : स्वाध्याय करे न....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाध्याय करे, वह राग में सुलगता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वाध्याय करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले कायम करे! वह राग का दाह है। राग की ज्वलन है। शुभराग का ज्वलन है। और अनुकूलता-सामग्री में लक्ष्य जाये तो पाप राग का दाह-ज्वलन है। आहाहा! करता भले हो, यह बात कहाँ करता है! यहाँ तो जितना शुभराग से संयोग मिला, उसके फल में अग्नि है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध के फल रूप से तो शुद्धि,

वह तो अकेला आनन्द में है। वह दूसरी बात हुई। जितना शुभराग वीतरागदेव के प्रति भी। वीतराग तात्पर्य है। वीतराग आत्मा है और वीतरागी आत्मायें पंच परमेष्ठी हो गये। आहाहा! कैसी बात है! परन्तु स्वद्रव्य के वीतरागभाव का आश्रय लेकर वीतरागता होती है। वह परद्रव्य वीतरागी है, उसका आश्रय होकर राग की अग्नि होती है। और उसके फलरूप से देवलोक में ज्वलन, दाह-दाह होती है। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह और पाँच-पचास लाख के आसामी सुखी हैं, धूल में भी नहीं। दाह है, ज्वलन है। कषाय की अग्नि से सुलगे हैं, जल रहे हैं। सेठ! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : व्यवहार में तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात् क्या परन्तु? मूर्खता भरपूर में सुखी है।

मुमुक्षु : लोग तो सुखी कहते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहा न? मूर्खाईपने में सुखी है। गहल-पागल तो यही कहे न? सुखी है, ऐसा कहे। यहाँ तो मुनि आत्मज्ञानी, संयमी, इच्छा निरोध के अमृत के अनुभव लेनेवाले। उन्हें भी वीतराग पर्याय है, इसके अतिरिक्त जीवों की वीतराग दशा प्रगटी। जीवों को प्रगटी प्रतिमा और वह तो और पहले डाल दिया। यहाँ तो कहे, पंच परमेष्ठी परमात्मा के प्रति का राग, उसके फल में दाह, देवलोक की अग्नि है। आहाहा! वह भट्टी में सिंकेगा। और यहाँ शुभराग है, वह भी भट्टी है। पंच परमेष्ठी के प्रति राग भट्टी है। राग की भट्टी है। आहाहा! समझ में आया?

स्वयं अपने प्रति प्रेम करे तो कहे, तुझे ज्वलन उठेगी, ऐसा कहते हैं। भारी गजब बात है न! ऐई! परद्रव्य है न! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा और पंच परमेष्ठी सब। सब वीतरागी... है। यह वीतरागपना तात्पर्य कहा, तथापि उन वीतरागी दशा प्रगटे हुए के प्रति विकल्प तो वर्तमान वह भट्टी, फल में भी ज्वलन और अग्नि है। आहाहा!

यह बात तो वीतरागमार्ग में होती है, हों! वे कहें, तुम्हें सुख होगा तो तुमको ऐसा होगा। अभी वह नहीं आया था? कहता है कि नरक में दु:ख है और स्वर्ग में सुख है। तो उसने कहा कि स्वर्ग में सुख नहीं होता।

मुमुक्षु : वर्तमान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान की बात चलती है। यह महेन्द्रभाई जब ऐसा कहते हैं न कि पिताजी साहेब! उस समय लक्ष्य (वहाँ) जाये तो दाह है, ऐसा कहते हैं। पिताजी साहेब! यह तुम्हारे शरीर को ठीक नहीं, इसलिए यह हलुवा खाओ! जबरदस्ती आकर थाली पर बैठावे, हाथ पकड़े, लो! हलुवा लो! पिताजी इतना लो। कहते हैं कि वह दाह है। उसके सन्मुख देखने से राग होता है और अग्नि सुलगती है, ऐसा कहते हैं। इसके लिए तो दृष्टान्त दिया। लो! आज्ञाकारी लड़का,... और स्वयं की अपेक्षा भी इज्जत जिसने बढ़ाई हो, पैसा बढ़ाये हों। वह पिता के पास आकर कहे, पिताजी! आपकी आज्ञा हो तो इतना करो। इतना थोड़ा हलुवा... मैं अच्छी चीज़ लेकर आया हूँ बादामी। वह कहता है कि यह सुनते हैं न, उसमें दाह उठती है। शोभालालजी!

मुमुक्षु : मजा आता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सेठ का दृष्टान्त देकर स्पष्टीकरण किया। प्रिय में प्रिय बाबूभाई! और उसे प्रिय में प्रिय पिताजी! कहते हैं कि इस प्रियता में अग्नि सुलगती है, ऐसा कहते हैं। सेठी! बात तो ऐसी है। हें? समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब व्यवहार का ही फल है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग का फल है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है? पिता-फिता है ही कहाँ? आत्मा को पिता कौन और आत्मा को पुत्र कौन? यह तो संसार की दुकान है...

मोक्ष का कामी है उसे यह है। उसे भी जिसे पंच परमेष्ठी के प्रति ऐसा राग हो, उसके फलरूप से वहाँ अग्नि सुलगेगी। आहाहा! कषाय की ज्वाला उसमें जैसे लट पड़े और जले-जले! आहाहा! वाह वीतराग! उसे यह कषाय की अग्नि—यह तो वहाँ लक्ष्य जायेगा तो अशुभ होगा। यहाँ तो कहते हैं कि शुभ था तब भी भट्टी थी। आहाहा! उसके फल रूप से देवलोक के और चक्रवर्ती के, बलदेव के, ऐसी सामग्री में लक्ष्य जाने पर उसे दाह उठेगी। आहाहा! समझ में आया?

श्रीकृष्ण, वासुदेव, नेमिनाथ भगवान, उनके लिये देव ने आकर (द्वारिका) बना

दी। समुद्र में द्वारिका बनायी, लो! द्वारिका तो यह उसमें बनायी, समुद्र में बनायी। लंका नहीं परन्तु एक कुछ। हें ? द्वारिका होगी। अन्दर समुद्र में बनायी, लो! स्वर्ण के गढ़ और रत्न के कंगूरे। तुम्हारे गुप्त शत्रु जगे हैं। जरासंध को कहे कहाँ है ? वे जगे हैं, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव तीन पुरुष यादवकुल में जगे हैं। आहाहा!

जब द्वारिका सुलगती है और माँ-पिता को बाहर निकालना चाहते हैं, तो भी कहते हैं कि राग की दाह है। आहाहा! और उन माता-पिता को लड़के निकालते हैं। वासुदेव और बलदेव जैसे पुत्र। तीन खण्ड के अधिपति, वे बैल की भाँति जुतकर निकालते हैं, वे माँ-बाप निकलेंगे ? आहाहा! दाह है। समझ में आया ? आहाहा! पुत्र बैल की जगह रथ कन्धे पर डालकर....

मुमुक्षु : स्वयं जुत गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं जुत गये। बलदेव-वासुदेव सिंह की पूँछ पकड़े तो ऐसे लींडा निकाले। ऐसा बल! ऐसे आँख निकाले तो सिंह को भी पेशाब छूट जाये। इतना जिनका वीर्य! वासुदेव चाबुक लेकर ऊपर बैठे, सिंह के ऊपर, हों! (तो सिंह का) लींडा निकाल डाले। इतना जोर! ऐसे पुत्र! वे द्वारिका में से निकालने के लिये रथ में जुतते हैं। कितने पुण्यशाली! कहते हैं कि उस समय दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे नजर ऐसी जाती है और यह मुझे निकाले तो! आहाहा! वह विकल्प कषाय की अग्नि है। आहाहा! मलूकचन्दभाई! यह तो ठीक, परन्तु अनुकूलता का राग था। आहाहा! ऐसे बड़े पुत्र बैल का काम करते हैं। कोई मजदूर नहीं मिलता न, आहाहा! कितने... माँ-पिता के प्रति जिन्हें प्रेम है। कहते हैं कि यह माता-पिता का प्रेम उन्हें है, वह अग्नि में सुलगते हैं और इन्हें उनके ऊपर प्रेम है, वे अग्नि में सुलगते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

चन्दनवृक्षसंगत... नीचे है न, यह आ गया न ? देवलोकादि के... देवलोक आदि अर्थात् अच्छा मनुष्यपना मिले। **क्लेश की प्राप्ति द्वारा अत्यन्त अन्तरंग...** दाह का कारण, ज्वलन है, ज्वलन। आहाहा! चमड़ी उतारकर नमक छिड़के और जैसे दाह होती है, वैसे कहते हैं कि विकल्प है, वह आनन्द (की) शान्ति में दाह का कारण है। आहाहा! समझ में आया ?

अत्यन्त अन्तर्दाह का कारण समझकर, साक्षात् मोक्ष का अभिलाषी... अकेला मोक्ष का अभिलाषी। यह राग के फलरूप से, ऐसा मिलेगा, इसलिए राग को छोड़ने का कामी। **महाजन...** वह यह महाजन। है न? यह महाजन कहलाये। जो पाँच अरिहन्तादि के प्रति का राग वह भी अग्नि-दाह वर्तमान और भविष्य में दाह का कारण, उसे छोड़ने का कामी, उसे महाजन कहा जाता है। आहाहा! शोभालालजी! आहाहा! पण्डितजी! वह महाजन है। बाकी सब पामर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

महाजन... लो! संस्कृत टीका में है, हों! **'समस्त विषयमपि' महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर,...** देखो! पाठ है न? **'सव्वत्थ कुणदु मा किंचि'** इसका यह अर्थ है। अरे, महाजन! अरे! बड़े मनुष्य! आहाहा! ऐ महापुरुष! ऐ सज्जन महापुरुष! सत्-जन। इन पंच-परमेष्ठी के राग के प्रति भी (लक्ष्य) छोड़ और वीतरागी हो जा। आहाहा! समझ में आया?

महाजन सभी की ओर से राग को छोड़कर, अत्यन्त वीतराग होकर,... यह पाठ का अर्थ है। **'सो तेण विदरागो'** कहा न? **अत्यन्त वीतराग होकर, जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** आहाहा! भवसागर की अब व्याख्या करते हैं। यह भवसागर! चौरासी का अवतार, देव का अवतार, चक्रवर्ती का अवतार, वासुदेव का अवतार, बलदेव का अवतार। आहाहा! यह तीर्थंकर को गौण रखकर इन सबके नाम एक-एक के। तीर्थंकर का अवतार हो, वह भी राग है न? आहाहा!

कहते हैं, **जिसमें उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं...** क्या कहते हैं? यह अनुकूल प्रतिकूल जो कुछ हो, उसमें प्रतिकूलता के दुःख की कल्लोल है। उबलती हुई दुःख की कल्लोल है। उसमें उबलती हुई सुख की कल्पना की कल्लोल। सुख है नहीं। हम सुखी हैं। उबलती हुई दोनों को लागू पड़ता है। दोनों को दाह है। ऐई! मलूकचन्दभाई! यह पूनमचन्द और न्याल किसी दिन सुने तो खबर पड़े। हें? निवृत्ति नहीं मिलती न? कुछ दिन एक दिन आकर चले जाये। कहो, समझ में आया इसमें?

उबलती हुई दुःख-सुख की कल्लोलें... पानी में जैसे कल्लोल उठती है न, उसे सुख-दुःख की कल्पना की कल्लोल उठती है। **उछलती है।** कहते हैं। आहाहा! ऐसा

संसार! भव का अवतार, सर्वार्थसिद्धि के भव का अवतार या चक्रवर्ती के भव का अवतार। यह भवसागर! आहाहा! दु:खु-सुख की कल्लोलें **और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त,...** है। यह संसार सागर कर्म की अग्नि से जल गया है। आहाहा! **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है,...** आहाहा!

भवसागर! उस सागर में दु:ख की कल्लोलें उठती हैं। सुख की कल्पना की कल्लोलें उठती हैं। कलबलाहट जलसमूह। अन्दर पानी का प्रपात उठे न? खलबलाहट... खलबलाहट... खलबलाहट... होती है। आहाहा! **खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से...** वहाँ तो खलबलाहट का जलसमूह भरा हुआ है, ऐसा कहते हैं। **भयंकर है, ऐसे भवसागर को...** आहाहा! समझ में आया?

देव का भव, चक्रवर्ती का भव खलबलाहट जलसमूह से भरा हुआ है। **भयंकर है, ऐसे भवसागर को...** यह है न, '**भविओ भवसायरं तरदि**' पहले इस गाथा का अर्थ पहले करते हैं, फिर इसका विस्तार करेंगे। ऐसे भव्य जीव। यह भव्य जीव का अर्थ किया महाजन। '**भविओ भवसायरं तरदि**' ऐसे महाजन। आहाहा! संसार समुद्र के कल्लोल खलबलाहट... खलबलाहट। घोंघाट, दिलीप घोंघाट कहता था न? संसार खलबलाहट है खलबलाहट। समझ में आया? खलबलाहट विकल्प की जाल सुलगती है।

शान्त सागर भगवान आत्मा उसमें से कहते हैं कि इतना भी विकल्प उठा, वह अग्नि है। उसके फलरूप से भी अग्नि उठेगी, ऐसा भवसागर है। आहाहा! ऐसे भवसागर को पार उतरकर, ऐसे कल्लोलें छेदकर स्वभाव की वीतरागता जिसने प्रगट की है, (वह) **शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,...** आमने-सामने लिया है। वह जब ऐसा भवसागर है। इनकी शैली ही सब ऐसी है। ऐसा भवसागर कहा न? **जिसमें उबलती हुई दु:ख-सुख की कल्लोलें उछलती हैं और जो कर्माग्नि द्वारा तप्त, खलबलाते हुए जलसमूह की अतिशयता से भयंकर है, ऐसे भवसागर को पार उतरकर,...** यह व्यय किया। आहाहा!

शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,... अब। यहाँ इस ओर समुद्र लिया। शुद्धस्वरूप परमामृत ऐसा जो समुद्र भगवान आत्मा। आहाहा! अकेला पवित्रस्वरूप

अमृतसमुद्र ऐसा भगवान। उसमें अवगाहन कर शीघ्र निर्वाण को पाता है... अल्प काल में मुक्ति को पाता है। आहाहा! समझ में आया? लम्बी वहेंत की लट हो, चार अंगुल-पाँच मण का पत्थर उस पर पड़ा हो, आ गया। आधा (शरीर) दबा वहाँ और आधा बाहर। वह सळबळ करे, वह (बाहर) निकलेगी? दस मण का पत्थर हो ऊपर, लम्बी एक हाथ की ईयल हो न ईयण! ईयण नहीं समझते? यह सब तुम्हारे अभिमान हो जाये। ईयण समझते हो या नहीं? लम्बी लट-जीव। इतनी लम्बी हो, उसमें कुछ-कुछ पाँच मण का पत्थर डाला। इतने में। यहाँ पड़ा इतने में। इस ओर रह गया। अब इस दबाव में से सळवळीने निकलना चाहे। कहते हैं, ककलाहट करके सिर फोड़े! इसी प्रकार राग के पत्थर में दबा हुआ सळबळाहट करके, ककलाहट करके जीव दु:खी है। समझ में आया? कहो, रावजीभाई! क्या कहै, यह सब सुखी क्या कहते हैं यह? पैसेवाले तुमको सबको सुखी कहते हैं। नहीं?

मुमुक्षु : सुखी कहते हैं, यह बात सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। है नहीं? तुम्हारे कहाँ कमाना पड़ता है, तुम्हारे पिता को मजदूरी करनी पड़ती है? हुण्डी का व्यापार और क्या कहलाये ब्याज बटाव का धन्धा।

मुमुक्षु : कर सकता ही कौन है?...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भाव तो करता है न?

मुमुक्षु : भाव करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो वह भाव अग्नि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभी तो यह एक गाथा का अर्थ इतना किया। '**तम्हा णिव्वुदिकामो**' मोक्ष का कामी। '**राग सावत्थ**' राग किसका? तो कहते हैं यह पंच परमेश्वर। पाँच परमेष्ठी जैसे भगवान के प्रति राग भी '**कुणदु मा किंचि**' जरा भी करना नहीं, भाई! आहाहा! '**सो तेण विदरागो**' भव्य महाजन जीव भवसागर ऐसी अग्निवाला सुलगता कलबलाहट वाला भवसागर तिरकर पाता क्या है? वह भवसागर तो तिरा, परन्तु अब **शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को...** अन्दर अवगाह। वह भी सामने एक बड़ा समुद्र है।

भगवान आत्मा अमृत के स्वभाव के सागर से भरपूर है। स्वभाव की.... मर्यादा क्या? अकेला अमृत, परमामृत ऐसा समुद्र। भगवान आत्मा परमामृतरूपी समुद्र प्रभु है। उसमें प्रवेश कर **शीघ्र...** एक समय में **निर्वाण को प्राप्त करता है।** आहाहा! समझ में आया? **विस्तार से बस हो। 'अलम अलमग विस्तरेण'** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। जंगल में बसनेवाले दिगम्बर सन्त महामुनि, वे अपनी बात करते हैं। अरेरे! ऐसा राग अभी! देवलोक में उबलती दाह होगी, वहाँ अवतार होगा। आहाहा! पहले से निषेध करते जाते हैं। ठीक देवलोक का अवतार मिला, ऐसा नहीं। जन्म कलंक है। देवलोक का अवतार कलंक है।

अरे! जिस भव से मोक्ष जाना, ऐसा मनुष्य का अवतार भी कलंक है। आहाहा! कलंक है। उसे बुझाने का साधन समुद्र अमृरामृत प्रभु पड़ा है। प्रवेश कर! बुझ जायेगा, शान्त हो जायेगा, भवसागर तिर जायेगा। देखो! अवगाहन यहाँ कहा। वह स्वभाव सागर परमामृत। अमृरामृत अर्थात् जो मरे नहीं ऐसा। ऐसा प्रभु! परम अमृत का सागर भगवान **अवगाहन कर...** अवगाहन करके **शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।** वह मुक्ति को प्राप्त करता है। राग के कारण मुक्ति नहीं पाता। विस्तार से बस होओ। **'अलम विस्तरेण' जयवन्त वर्ते वीतरागता...** टिका रहे यह वीतरागपना, ऐसा कहते हैं। जो स्वभाव को अवगाहन कर परमामृतसमुद्र प्रभु आत्मा में डुबकी मारकर जो वीतरागभाव प्रगट हुआ, कहते हैं। **जयवन्त वर्ते वीतरागता जो कि साक्षात्मोक्षमार्ग का सार होने से शास्त्रतात्पर्यभूत है।** लो! आहाहा! जयवन्त वर्तो वीतरागपना कि जो साक्षात् मोक्षमार्ग का सार होने से; यह वीतरागभाव स्वयं मोक्षमार्ग है, ऐसा। शास्त्र तात्पर्य है। यह सब शास्त्र का तात्पर्य और फल यह है। समझ में आया?

अब तात्पर्य द्विविध होता है :- तात्पर्य के दो प्रकार—**सूत्रतात्पर्य और शास्त्रतात्पर्य।** नीचे है। **प्रत्येक गाथासूत्र का तात्पर्य सो सूत्रतात्पर्य है...** एक-एक श्लोक में क्या कहना चाहते हैं, वहाँ कहना वह सूत्र तात्पर्य है। **और सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य सो शास्त्रतात्पर्य है।** देखो! पूरे शास्त्र अर्थात् सब शास्त्र का सार पंचास्तिकाय बारह अंग का अवयव है। समझ में आया? आगे कहेंगे, यह भागवत शास्त्र है। भागवत शास्त्र,

पारमेश्वरी शास्त्र। है न पीछे? अन्त में-अन्त में है। हें? किसे? ७३, ७३, ५४ पृष्ठ। यहाँ तो २६४ है। यहाँ ६४ है इसमें कैसे?

महाभाग्य भगवन्तों ने, एक पृष्ठ है, ठीक, इसमें? हाँ, यह परमेश्वर है। बस। पारमेश्वर शास्त्र का, परमेश्वर का शास्त्र है यह। भागवत शास्त्र है। लो! यह भागवत शास्त्र। ऐई! 'जिन' का भागवत शास्त्र जिन भगवान का शास्त्र, दैवी शास्त्र, पवित्र शास्त्र। ओहो! पंचास्ति, समयसार, प्रवचनसार कोई भी शास्त्र सब भागवतशास्त्र है। परमेश्वर के मुख से निकले हुए परमेश्वरी शास्त्र है। आहाहा! दैवी शास्त्र है। पवित्रशास्त्र नाम डाला इन्होंने। परमेश्वर ने।

कहते हैं, **सम्पूर्ण शास्त्र का तात्पर्य सो शास्त्रतात्पर्य है।** यह शास्त्र तात्पर्य, वह वीतरागता है। पूरे शास्त्र, बारह अंग, चार अनुयोग सब जो हो वह, तात्पर्य पर की उपेक्षा, स्व की अपेक्षा—यह वीतरागता शास्त्र है। समझ में आया? अस्ति से अकेला आत्मा पूर्ण, उसकी अपेक्षा—आश्रय करना, इससे वीतरागता प्रगट हो, यह सब शास्त्र का तात्पर्य है। वह यह है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' त्रिकाल भूतार्थ (का) आश्रय करना, वह शास्त्र का तात्पर्य है। दृष्टि में आश्रय उसका, चारित्र के लिये आश्रय उसका, शुक्ल ध्यान के लिये आश्रय उसका... उससे वीतरागता प्रगट होती है। **उसमें, सूत्रतात्पर्य प्रत्येक सूत्र में (प्रत्येक गाथा में) प्रतिपादित किया गया है; शास्त्रतात्पर्य अब प्रतिपादित किया जाता है।**

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत... लो! नीचे है। **पुरुषार्थ=पुरुष-अर्थ; पुरुष-प्रयोजन। (पुरुषार्थ के चार विभाग किए जाते हैं :..)** पुरुषार्थों के-पुरुषार्थों के, पुरुष के प्रयोजन के चार विभाग किये जाते हैं। पुण्य-धर्म अर्थात् पुण्य। **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; परन्तु सर्व पुरुष-अर्थों में...** पुरुषार्थों में, प्रयोजन में, **मोक्ष ही सारभूत (तात्त्विक) पुरुष-अर्थ है।** समझ में आया? धर्म अर्थात् पुण्य का पुरुषार्थ भी तात्त्विक नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का पुरुषार्थ भी तात्त्विक नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सर्व पुरुषार्थों में सारभूत ऐसे मोक्षतत्त्व का प्रतिपादन करने के हेतु से जिसमें पंचास्तिकाय का वर्णन किया और षड्द्रव्य के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा, षड्द्रव्य का

स्वरूप वर्णन किया। उसके द्वारा समस्त वस्तु का स्वभाव वर्णन किया, ऐसा। स्वभाव दर्शाया गया है। **पंचास्तिकाय और षड्द्रव्य का स्वभाव दर्शाया गया है, नव पदार्थों के विस्तृत कथन द्वारा...** जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष... **जिसमें बन्ध-मोक्ष के सम्बन्धी (स्वामी) का...** वर्णन किया। बन्ध-मोक्ष के स्वामी अर्थात् सम्बन्धवाले। बन्ध के सम्बन्धवाले और मोक्ष के सम्बन्धवाले स्वामी। संसारी बन्ध के सम्बन्धवाले, भगवान सिद्ध आदि मोक्ष के (सम्बन्धवाले), उसका वर्णन किया। **बन्ध-मोक्ष के आयतन (स्थान) वर्णन किये गये हैं।**

राग-द्वेष (आदि) बन्ध के आयतन हैं, निर्मल पर्याय मोक्ष का आयतन / स्थान है। **बन्ध-मोक्ष के विकल्प (भेद) प्रगट किए गए हैं,...** बन्ध के भेद और मोक्ष के भेद, यह सब वर्णन किया गया है। **निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का जिसमें सम्यक् निरूपण किया गया है...** लो! वीतरागता वर्णन करना है न, यह निरूपण तो किया है। निरूपण किया गया है। ऐसा है न?

निश्चय और व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का, इसमें आया। देखो अब। मोक्षमार्ग का भी जिसमें, देखो! व्यवहारमोक्षमार्ग भी आया उसमें, निरूपण किया गया है, सम्यक्। जैसा है वैसा निश्चय और जैसा है, वैसा वहाँ व्यवहार हो, कथन, निरूपण। निरूपण किया है न वहाँ भी भाई ने—मोक्षमार्गप्रकाशक में। सम्यक् निरूपण किया गया है। देखो! दो प्रकार के मोक्ष का निरूपण है, दो प्रकार का मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

दो प्रकार के मोक्षमार्ग का निरूपण, कथन, ज्ञान करने के लिये कहा है। मोक्षमार्ग दो नहीं। वे कहते हैं कि नहीं, मोक्षमार्ग दो न माने वे भ्रम में पड़े हैं। यहाँ कहते हैं कि मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। वस्तु मोक्षमार्ग एक है। एक को माने, वे भ्रम में पड़े हैं। यह कहते हैं कि दो को माने, वह भ्रम में पड़े हैं। यह बड़ा विवाद। पण्डितों-पण्डितों में विवाद। टोडरमलजी कहते हैं मोक्षमार्ग दो माने, वे भ्रम में पड़े हैं। और एक फिर रतनचन्दजी कहते हैं अभी के, कि मोक्षमार्ग दो न माने, वे भ्रम में पड़े हैं। न माने, वे भ्रम में पड़े हैं। दो मानना चाहिए, ऐसा। दो मानना चाहिए। वे कहते हैं कि दो माने, वे भ्रम में पड़े हैं। यह कहते हैं कि दो न माने, वे भ्रम में पड़े हैं, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने वर्ष तक शास्त्र पढ़े! उसमें से यह निकाला, सार निकाला। यहाँ कहते हैं, कथन दो प्रकार के हैं। सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार से है, सम्यग्दर्शन दो प्रकार से नहीं। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान का कथन दो प्रकार से है, इसी प्रकार साधन का कथन दो प्रकार से है। साधन दो प्रकार से नहीं। समझ में आया? आहाहा!

साक्षात् मोक्ष के कारणभूत... अब आया, इसका योगफल वापस। **परमवीतरागपने में जिसका समस्त हृदय स्थित है...** देखो! दो प्रकार का भले कथन किया। परन्तु साक्षात् मोक्ष के कारणभूत परमवीतरागपने में, वापस भाषा ऐसी ली, देखा? आहाहा! परमवीतरागपने में जिनका सर्वस्व हृदय रहा हुआ है। समझ में आया? जहाँ-तहाँ से वीतरागभाव को पोषण करना है। राग को पोषण किया है, वह शास्त्र में है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या इसका अर्थ हो गया। निषेध अर्थात् है ही नहीं। वीतरागभाव जिसका हृदय है, रागभाव उसका हृदय नहीं। परन्तु आता है, उसका ज्ञान कराने के लिये बीच में व्यवहार कहा है। **ऐसे यह वास्तव में...** अब आया। देखो यह शब्द! **पारमेश्वर शास्त्र...** है यह तो। पारमेश्वर शास्त्र, लो! समझ में आया? क्या शब्द पड़ा है अन्दर? '**पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य सकल पुरुषार्थ सारभूत मोक्षतत्त्व प्रतिपत्तिहेतोः**' हें! उस ओर। आहाहा!

मुमुक्षु : पारमेश्वर शास्त्र कहना...

पूज्य गुरुदेवश्री : पारमेश्वर शास्त्र है। उनका हृदय कहाँ आया, ऐसा मेरा कहना है। यह कहता हूँ। यह कहता हूँ। यह हृदय है, है।'**साक्षान्मोक्षकारणभूत परमवीतरागत्व विश्रान्तसमस्त हृदयस्य**' बस यह, यह। समस्त हृदयस्य। इस शास्त्र का पेट यह है, ऐसा कहते हैं। चारों शास्त्र के (अनुयोग में) भगवान परमेश्वर के शास्त्र में उनका पेट (अभिप्राय) वीतरागता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु स्वयं वीतरागता का तात्पर्य बतावे न, दूसरा क्या राग का बतावे? तो राग छोड़कर बैठे क्यों वे? सर्वथा निषेध करनेयोग्य। सर्वथा आदरणीय है आत्मा। कथंचित् इसमें नहीं होता। समझ में आया?

बन्धभाव सर्वथा निषेध करनेयोग्य है, व्यवहारनय। निश्चय सर्वथा आदरणीय स्वभाव है आत्मा का। कहो, समझ में आया? पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ वीतरागपना, जिनभगवान का शास्त्र, ओहोहो! पारमेश्वर का शास्त्र, भागवत शास्त्र है यह। चार अनुयोग आदि भागवत शास्त्र है। दैवी और पवित्र शास्त्र है। ऐसा **परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है।** लो!

इस पारमेश्वर शास्त्र का हृदय जो रहा हुआ है, ऐसे इस पारमेश्वर शास्त्र का परमार्थ से वीतरागपना ही हृदय इसका है। वीतरागपने का पोषक है। जिनवाणी राग की पोषक नहीं है। कहो, दीपचन्दजी! क्या है यह? स्वच्छन्दी हो जायेंगे। पंचम काल के साधु, पंचम काल के प्राणी को तो कहते हैं। ऐ सेठ! यह चौथे काल के साधु नहीं। पंचम काल के साधु, पंचम काल के जीवों को कहते हैं। परन्तु हमारे तो अभी यहाँ मोक्ष नहीं हमको यह... अरे! सुन न अब। मोक्ष नहीं, यह किसने कहा? रागरहित आत्मा है, ऐसा निर्णय और अनुभव कर, इतना तो तुझे मोक्ष हो गया। आहाहा! समझ में आया?

माना था कि मैं रागवाला हूँ, यह मान्यता छोड़ दे। तेरा मोक्ष ही है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, ऐसा वीतरागपना ही तात्पर्य है। ओहोहो! इतना-इतना वर्णन किया। नौ तत्त्व का, पंचास्ति का, परद्रव्य का, बन्ध-मोक्ष के स्वामी का, बन्ध-मोक्ष के स्थान का, परन्तु उन सबमें कहने का तात्पर्य, पेट तो वीतरागता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका अर्थ कि भेद और विकल्प और निमित्त का आश्रय छोड़; अभेद का आश्रय कर, यह इसका तात्पर्य है। आहाहा! समझ में आया?

सब वर्णन किया, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व और षट्द्रव्य, समझ में आया? बन्ध-मोक्ष के पदार्थ और स्वामी, सब चाहे जो वर्णन किये, कहते हैं। लाख बात की बात, निश्चय उर लाओ। आहाहा!

मुमुक्षु : वे कहें करोड़ बात की बात व्यवहार उर लाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सो इस वीतरागपने का... अब अधिक स्पष्ट करते हैं। **सो इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही...** यह बात अलौकिक वर्णन है।

निश्चय की जहाँ दृष्टि और ज्ञान है, वहाँ उसे उस भूमिका प्रमाण कैसे विकल्प की मर्यादा होती है व्यवहार की, यह उसका सुसंगतपना अविरोधपना है। समझ में आया?

मुनिपने की दशा प्रगट हो और वस्त्र-पात्र लेने का राग रहे और वस्त्र-पात्र का संयोग रहे, वह व्यवहार और निश्चय की सुसंगति नहीं है। अविरोध है। परन्तु मुनिपना प्रगटे उसे पंच महाव्रत का विकल्प ही होता है और उसकी राग की इतनी मन्दता होती है कि एकदम उत्कृष्ट है, इतनी मन्दता नहीं; नीचे है, इतनी तीव्रता नहीं। उस गुणस्थान में योग्य ही जो विकल्प की मर्यादा है, उसे निश्चय के साथ व्यवहार का सुसंगत मेल व्यवहार से है। समझ में आया? आहाहा!

अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है,... निश्चय स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का आश्रय और ज्ञान-वीतरागता भी भूमिका प्रमाण उसे व्यवहार का विकल्प इस जाति का होता है, इस जाति का ही होता है, तो उसे निश्चय और व्यवहार का मेल कहा जाता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार हो दूसरे प्रकार का और निश्चय हो दूसरे प्रकार का, ऐसा नहीं हो सकता। इसका विस्तार करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८१, गाथा-१७२, वैशाख कृष्ण ११, रविवार, दिनांक -३१-०५-१९७०

पंचास्तिकाय, गाथा १७२।

यह वास्तव में पारमेश्वर शास्त्र का, परमार्थ से वीतरागपना ही तात्पर्य है। यह आया न वहाँ? अब उसका पेरेग्राफ ऊपर। क्या कहा? यह भागवत शास्त्र, पारमेश्वर शास्त्र, दिव्य शास्त्र, दैवी शास्त्र, वीतरागता इसका तात्पर्य है। इसका अर्थ यह कि पूर्ण स्वभाव अपना चैतन्यस्वभाव है वीतराग, उसके सन्मुख होना और पर्याय, राग तथा निमित्त से विमुख होना, यह पूरे चार अनुयोग का वीतरागपना यह तात्पर्य है। यह वीतरागपना तब प्रगट होता है। समझ में आया?

वह इस वीतरागपने को, अब ऐसी जो दशा वीतरागदशा, स्वसन्मुख की दशा और पर से विमुख ऐसी दशा प्राप्त हो, तब उसे वीतरागभाव प्रगट होता है, तथापि **इस वीतरागपने का व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है,...** व्यवहार और निश्चय को सुसंगत ज्ञेयोंवाला हो। निश्चय कुछ हो और व्यवहार दूसरे प्रकार का हो, उसकी भूमिका में ऐसा होता नहीं। नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण है। **व्यवहार-निश्चय के अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है, परन्तु अन्यथा नहीं...** अनेकान्त किया। **व्यवहार और निश्चय की सुसंगतता रहे...** सुसंगतता अर्थात् दोनों का मेल, निश्चय हो वहाँ व्यवहावर ऐसा हो, वैसा मेल रहे तो। **इस प्रकार वीतरागपने का अनुसरण किया जाए तभी इच्छित की सिद्धि होती है,...** दूसरे प्रकार से नहीं होती। इसका स्पष्टीकरण नीचे (फुटनोट में) है।

छठवें गुणस्थान में मुनियोग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना... यह मुनि का दृष्टान्त दिया। मुनि के योग्य, तीन कषाय के अभाववाली शुद्ध वीतरागी परिणति निरन्तर स्वसन्मुख के आश्रय से होना, **तथा महाव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का...** पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण इत्यादि-इत्यादि यथायोग्यरूप से होना, उसके योग्य है, ऐसा ही जिसका विकल्प हो। इससे आगे बढ़कर मन्दराग, ऐसा नहीं; पहला तीव्र हो—ऐसा नहीं। समझ में आया?

इस गुणस्थान के योग्य अट्ठाईस मूलगुण आदि महाव्रत के विकल्प हों, उसका निश्चय भी तीन कषाय का अभाव वीतराग परिणति हो और वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प हो या अधकर्मी—उसके लिये बनाये हुए आहार लेने का विकल्प हो, वह व्यवहार उसके योग्य नहीं है। उस निश्चय के साथ व्यवहार का सुसंगतपना—मेल नहीं है। इसलिए कहते हैं कि अविरोधपना, यह निश्चय-व्यवहार के अविरोध का (सुमेल का) यह तो उदाहरण है। पण्डितजी ने उदाहरण दिया है। **पाँचवें गुणस्थान में उस गुणस्थान के योग्य शुद्धपरिणति निरन्तर होना...** श्रावक को भी स्वभाव के आश्रय से शुद्धपरिणति दो कषाय के अभाववाली निरन्तर हो, निरन्तर हो **तथा देशव्रतादिसम्बन्धी शुभभावों का...** उसे बारह व्रत के विकल्प भी उसके योग्य वैसे शुभभाव, **यथायोग्यरूप से होना,...** उसके योग्य हों, उस प्रकार के हों, **वह भी निश्चय-व्यवहार के अविरोध का उदाहरण है।** समझ में आया? पाँचवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति हो और ऐसे विकल्प तीव्र हों, कुदेव-कुगुरु को मानना, ऐसा भाव उसे व्यवहार, उसे सुसंगत नहीं है। समझ में आया? चाहे जिस देव को मानना, चाहे जिस गुरु को मानना, चाहे जिस शास्त्र को मानना, ऐसा पंचम गुणस्थान का विकल्प ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता। उसके योग्य देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प और बारह व्रत के विकल्प होते हैं। परन्तु वह निश्चय हो तो उसके साथ ऐसा व्यवहार होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे व्यवहार नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

पाँच, यथार्थ उदाहरण देंगे। **अविरोध द्वारा ही अनुसरण किया जाए तो इष्टसिद्धि होती है,...** उसे निश्चय-व्यवहार की बात को न्याय देने के लिए बात लम्बाते हैं। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** अनादि काल से राग की एकताबुद्धि अथवा राग के साथ सम्बन्ध, **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव...** शुरुआत के जीव **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** इसका स्पष्टीकरण, नियमसार में। **मोक्षमार्ग प्राप्त ज्ञानी जीवों को...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और आंशिक स्थिरता, ऐसी जो दशा द्रव्यस्वभाव के आश्रय से, समकिती को मोक्षमार्गी को हुई होती है।

इस **भूमिका में, साध्य तो परिपूर्ण शुद्धतारूप से परिणत आत्मा है...** उसे साध्य

तो परिपूर्ण शुद्धता से परिणत आत्मा। **और उसका साधन व्यवहारनय से...** उसका साधन वापस व्यवहारनय से, **(आंशिक शुद्धि के साथ-साथ रहनेवाले) भेदरत्नत्रयरूप परावलम्बी विकल्प कहे जाते हैं।** वह साधन व्यवहार कहने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार साधन कहा, वास्तव में साधन नहीं। इसलिए व्यवहार साधन कहा न? व्यवहारनय से व्यवहार साधन। वास्तव में साधन है नहीं। है नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। **इस प्रकार उन जीवों को व्यवहारनय से साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गए हैं।** व्यवहारनय से, शुद्धपरिणति साध्य है और साधन है विकल्प। साध्य है शुद्ध निर्मल अवस्था और साधन है स्व-पर प्रत्यय विकल्प, राग। उसे यह साधन व्यवहार से कहा। निश्चय से शुद्ध परिणति को साध्य कहा। इसमें सब गड़बड़ उठी है। ऐ दीपचन्दजी! देखो! यह साधन लिखा है या नहीं इसमें?

इसीलिए तो स्पष्टीकरण किया है। व्यवहारनय से, साध्य और साधन भिन्न प्रकार के कहे गये हैं। निश्चयनय से साध्य-साधन तो अभिन्न होते हैं। पूर्ण शुद्धि की परिणति, वह साध्य है और अपूर्ण शुद्धपरिणति, वह साधन है। है तो शुद्धदशा, वीतरागीदशा, स्वद्रव्य के आश्रय से दशा, वह साधन निर्मल और पूर्ण निर्मल, वह साध्य। यह निश्चय है। ऐसा निश्चय जहाँ हो, वहाँ व्यवहार ऐसे विकल्प, पूर्ण जहाँ निश्चय हुआ नहीं, वहाँ ऐसे व्यवहार होते हैं, उसे व्यवहारनय से साधन, उपचार से साधन, आरोप से साधन कहा गया है।

भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं... भाषा का यहाँ यह विवाद। निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से, सम्यग्दर्शन-ज्ञान वह तो निर्मल पर्याय, परन्तु अनादि वासित बुद्धि के कारण राग सब गया नहीं। अनादि है, इसलिए अज्ञानी है, ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं परन्तु राग अभी गया नहीं, इसलिए उसे राग की दशा में, ऐसे भाव, विकल्प आवें, जिससे सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है। नीचे फुटनोट में है। सुगमरूप से, सहजरूप से, कठिनता बिना जिसने द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धान आदि किये हैं।

शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दस्वरूप की स्वसन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और लीनता की है, ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को, **अनादि काल से भेदवासित है...** अर्थात् सीधे पहले व्यवहार आता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसमें से ऐसा निकालते हैं, देखो! पहले व्यवहार आता है और फिर निश्चय आता है। अनादि वासित है न! परन्तु वह व्यवहार भी अनादि वासित है। अनादि के राग से पृथक् पड़ा, अस्थिरता से। उसके पहले राग से भिन्न पड़ा परन्तु वह राग है, उसकी अस्थिरता, अनादि का है, वह गन्ध है, उस राग की। ज्ञानी को भी वह राग अनादि की गन्ध है। समझ में आया?

कभी राग-रहित हो गया हो और फिर राग आया है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धान, ज्ञान और लीनता की है। **ऐसे सम्यग्ज्ञानी जीवों को तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में) आंशिक शुद्धि के साथ-साथ श्रद्धानज्ञानचारित्र सम्बन्धी...** श्रद्धा सम्बन्धी, ज्ञान सम्बन्धी और चारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प होते हैं। भेदरत्नत्रय के विकल्प की जाति सम्यग्दृष्टि को स्वावलम्बी होने पर भी, पूर्ण स्वावलम्बी हुआ नहीं; इसलिए परावलम्बी ऐसे विकल्पों की जाति व्यवहार से अनुकूल है, ऐसा कहकर साधन कहा गया है। समझ में नहीं आया?

व्यवहार कहो या अनुकूल कहो या निमित्त कहो, वह विकल्प की जाति, छठवें, पाँचवें में हो, इससे विशेष राग भी न हो और अत्यन्त मन्दता उत्पन्न हो, ऐसी जाति न हो। इस प्रकार राग को वहाँ भेदसाधन कहा गया है। क्योंकि **अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति...** सम्यग्दृष्टि की भी यहाँ बात है। अनादि काल से जीवों को भेदवासना से वासित पर्यायबुद्धि है, रागबुद्धि है, निमित्त के ऊपर लक्ष्यवाली बुद्धि है। राग एकता टूटी है, परन्तु अभी परावलम्बी का अवलम्बन जो अनादि का है, उसमें का अंश अभी बाकी रहा है—ऐसा कहना है। समझ में आया?

ऐसा नहीं कि अनादि का अवलम्बन है, उसे मिथ्यात्व छूटा है और पहला व्यवहार आता है, ऐसा नहीं। क्योंकि **अनादि काल से जीवों को जो भेदवासना से वासित परिणति चली आ रही है, उसका तुरन्त ही सर्वथा नाश होना कठिन है।** लो! ऐसा कहते

हैं। राग और विकल्प से चैतन्यस्वभाव को जिसने भिन्न जाना, श्रद्धान किया, अनुभव किया है, तथापि अभी राग की विकल्प दशा अनादि वासित गन्ध है, वह रह गयी है, ऐसा कहते हैं। एकताबुद्धि रही नहीं। समझ में आया?

अनादि का जो राग का जो भाग है, वह व्यवहार भाग अनादि का रह गया है, ऐसा। अत्यन्त शुद्ध हो गया है और नया राग हुआ है, ऐसा नहीं है। पण्डितजी! यह तो व्यवहार साधन कहना है और यहाँ ऐसा अर्थ किया है वापस एक ओर। ऐसा अर्थ न करे तो वापस कुछ मेल खाये, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... वीतरागभाव तो प्रगट हुआ है। परन्तु अभी राग से बिल्कुल छूट गया है अस्थिरता में से भी, ऐसा नहीं है। यह अनादि की बात है। राग से भिन्न पड़ने पर भी, राग बाकी रहा है, वह अनादि की यह जाति है। यह कहीं नया राग हुआ है, ऐसा नहीं है। इसलिए इसका अर्थ ऐसा किया है, अनादि वासित हो, उसे पहला व्यवहार आता है। और व्यवहार से फिर निश्चय आता है, ऐसा अर्थ करते हैं, लो! भीखाभाई! खोटा है यह?

लिखा है न इस प्रकार, देखो ने! **सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है।** व्यवहार की सुख से पहली अनादि वासित बुद्धिवाले व्यवहार की पहली शुरुआत करता है। ऐई! हमारे पण्डितजी ने स्पष्ट तो (बात) की है इसमें। ऐ देवानुप्रिया! कहा न? अनादि काल से भेदवासित से बराबर है, यह बात, क्योंकि राग का भाग है, वह नया हुआ है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि को भी ज्ञानी को भी स्वभाव का अवलम्बन लेकर राग की एकता टूटने पर भी अस्थिरता का राग अनादि का है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह नया हुआ, शुद्धता पूर्ण प्रगट हुई, इसलिए नया हुआ, ऐसा नहीं। यह शुद्धता प्रगटी ही नहीं। पर्याय में शुद्धता पूर्ण अनादि से प्रगटी ही नहीं, इसलिए गाँठ अनादि की समकीति को भी राग की अस्थिरता का भाव अनादि की जाति का वह अस्थिरता का भाव है। समझ में आया? फिर सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है। इसका अर्थ यह कि उस भूमिका में ऐसे भाव होते हैं। उसे व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। उसके द्वारा

सुख से पार पाता है अथवा सुख से मार्ग की शुरुआत करता है। वह वास्तव में ऐसा नहीं है। यह तो व्यवहारनय का वचन है।

सुख से कब वहाँ था? सुख का अर्थ अपने यहाँ किया है न, **सुगमता से...** देखो न! **सुगमता से, सहजरूप से, कठिनाई बिना।** ऐसा किया है। है तो वह राग, दुःख है। सुख से, परन्तु व्याख्या ऐसी की है इन्होंने। सुख से अर्थात् राग की उस प्रकार की भूमिका में ऐसी मन्दता होती है कि जिससे उसे कष्ट न पड़े। अर्थात् कि आगे जाने में, जो आगे जीव हैं, उन्हें ऐसा राग है, इसलिए उसे ऐसी भूमिका में स्वदशा शुद्ध की नहीं रहती, ऐसा नहीं है। ऐ.. प्रवीणभाई! सब ऐसे अर्थ हैं। क्या कहा, समझ में आया? सुगमरूप से, सहजरूप से अर्थात् उसकी-स्वरूप की आश्रयदशा होने पर भी उसकी भूमिका के (योग्य) ऐसा ही राग होता है, वह वहाँ उसे मेलवाला है। अर्थात् कि उसकी भूमिका का विरोध नहीं करता। आगे जाने में सब विरोध करे परन्तु वर्तमान भूमिका का विरोध नहीं करता। वह भूमिका वर्तमान न रहे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अरे!

सुगमता से... सहजरूप से अर्थात् कि विकल्प सहजरूप से ऐसी जाति के ही आते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उस ओर के झुकाव का विकल्प यही आता है और इससे उससे अन्दर आगे जाने पर कठिन पड़ता है, ऐसा नहीं है। यह वस्तु के स्वभाव की दशा में प्राप्त है कि ऐसा राग होता है, इसलिए सुख से अर्थात् सहजरूप से ऐसे विकल्प आवें और सहजरूप से परिणति है। वह सहजरूप से आगे बढ़ता है। पर से बढ़ता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : राग से बढ़ता है न...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! पर से कहा न! बढ़ता है, वह व्यवहार है। रतिभाई! राग से बढ़ता है, यहाँ पाठ तो ऐसा है, हों! **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर सुख से तीर्थ का...** वर्तमान परिणति की **प्रारम्भ करते हैं...** ऐसा कहा है, इसका अर्थ यह है। समझ में आया? **(अर्थात् सुगमता से मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का सेवन करते हैं)।** यह शुद्धपरिणति भी है और उस जाति के उस जीव प्रमाण विकल्प

की मर्यादा, यह अब स्पष्टीकरण करते हैं। इसका सुगमरूप से कैसे होता है, उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? व्यवहार है, वह विश्राम है, फिर निश्चय में जाया जा सकता है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। विश्राम नहीं, विश्राम नहीं, परन्तु उस भूमिका के योग्य निमित्त अर्थात् व्यवहार से अनुकूलता है। उसकी पर्याय का नाश ऐसा होने पर भी होता नहीं। बस, इतनी बात है। गजब बात, भाई! शान्तिभाई! ऐसा निमित्तपना। देखो, यह गाथा।

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसा नहीं, उसमें हम क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आये ऐसा ही है। नहीं समझ में आये, ऐसा कहाँ है? व्यवहार हेय है, अभूतार्थ है। पहला यह सिद्धान्त। अभूतार्थ है और साधन कहा, अभूतार्थ है, उसे साधन कहा, वह व्यवहार से अर्थात् अभूतार्थ से, असत्यार्थ से साधन कहा है। झूठे से साधन कहा है, लो! इसका अर्थ यह। कारण कहा न, ऐसा निमित्त वहाँ होता है, ऐसा निमित्त वहाँ होता है, ऊपर की भूमिका प्रमाण राग की मन्दता इतनी नहीं होती, निचली भूमिका का तीव्र राग ऐसा नहीं होता, उसकी योग्यतावाला राग होता है, इसलिए अनुकूल कहकर व्यवहारसाधन का आरोप आता है। ऐ सेठी! इसमें जरा पढ़े तो कुछ, चक्कर क्या कहा? चक्कर खाये।

मुमुक्षु : इसमें तो स्पष्ट व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से लाभ होता है, किसने कहा, क्यों कहा, व्यवहार अर्थात् क्या? व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ, निश्चय अर्थात् भूतार्थ, यहाँ यह सिद्धान्त रखकर उसका अर्थ करना पड़ेगा या नहीं? अभूतार्थ को अर्थात् असत्यार्थ को, अर्थात् कि झूठे भाव को, सुगमरूप से साधन कहा, उसका अर्थ कि झूठे नय से उसे आरोप से कथन किया है। शशीभाई! आहाहा! अनादिकाल से, यह पहले आ गया है एक जगह... २३७ पृष्ठ पर, लिखा है। २३७ पृष्ठ आ गया है। अनादि अविद्या के नाश द्वारा, देखो! अविद्या के नाश द्वारा व्यवहारमोक्षमार्ग को पाया है, इसमें देखो! २३७ पृष्ठ, दूसरी लाईन।

यह आत्मा वास्तव में कथंचित् कोई उद्यम से अनादि अविद्या के नाश द्वारा, ऐसा है। व्यवहारमोक्षमार्ग को पाया हुआ, धर्मादि सम्बन्धी तत्त्व के अश्रद्धान में, अश्रद्धान

की श्रद्धान करे, अश्रद्धान को छोड़ता है। अंगपूर्वगत ज्ञान के अज्ञान को छोड़ता है, अतप में चेष्टा के त्याग को छोड़ता है और धर्मादि के अश्रद्धान को अंगीकार करता है। यह विकल्प अमुक जाति का छोड़ता है और अमुक जाति का ग्रहण-त्याग होता है। यह व्यवहारनय का विषय है। निश्चय में ग्रहण-त्याग है नहीं। आहाहा! बात, वह भी अब क्या हो? समझ में आया?

अनादि काल से अनन्त चैतन्य वीर्य मुरझा गया है। यह है न अन्दर। अनादि काल से वहाँ लिया, देखो! २२१ के पीछे बीच में चौथी लाईन है। जिसे अनादि काल से और अनन्त चैतन्य और वीर्य कुम्हला गया है, ऐसा वह ज्ञानी, देखो! है तो ज्ञानी, तथापि उसे कुम्हला गया है। समझ में आया? अनादि से कुम्हला हुआ है, अनादि की यह वासना है। भान हुआ है तथापि, आहाहा! २२१ और २२७ है कुछ। इसमें लिखा है तब, २२७ है? ...अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर। यह भी वह है, देखो! है न? १५५—अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर परिणति करने के कारण उपरोक्त उपयोगवाला (-अशुद्ध उपयोगवाला) होता है, तब (स्वयं) भावों का विश्वरूपपना (-अनेकरूपपना) ग्रहण किया होने के कारण उसे जो अनियतगुणपर्याय—पना होता है, वह परसमय है, इतना बस। परसमय अर्थात् अनादि का विभावभाव है, इसलिए उसे परसमय कहा जाता है। समझ में आया? सामने पुस्तक है या नहीं?

मुमुक्षु : मेल बैठाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मेल, इससे तो यह दो-तीन जगह बता दिया। उसमें अविद्या का नाश करके, बात की। वह अनादि का मोह को अनुसरता है, अभी ज्ञानी भी। अस्थिरता का भाव, इतना परसमय। स्वसमय को अनुसरता है, स्वसमय। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्पष्ट व्यवहार से बात की है, दूसरी दलील चल सके, ऐसा दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ। एक सिद्धान्त पहला। व्यवहार अर्थात् असत्यार्थ। व्यवहार अर्थात् वास्तव में निश्चय की अपेक्षा से अविद्यमान, तथापि व्यवहार की अपेक्षा से विद्यमान। यह अविद्यमान को विद्यमान व्यवहार से कहा जाता है। इसी प्रकार साधन नहीं, उसे व्यवहार से साधन कहा जाता है। गजब बात! उपादान

की बात आवे निश्चय की, वह भी सोनगढ़ की, अब भाई! भगवान के घर की है, ऐसा मान न... सोनगढ़ की बात है। बैठ जाये इसलिए। ऐसी बात तुम्हारी सोनगढ़ की यहाँ नहीं चलती, ऐसा। धन्यकुमार, रतनचन्दजी, यह तो कारंजा का है न कारंजा का। आये हैं रतनचन्दजी? नहीं आये। वहाँ आये थे। यहाँ अपने आ गये थे न, भावनगर, भावनगर आ गये। धन्यकुमार। गाँव में बराबर प्रवेश। दो हजार व्यक्ति है। दो हजार लोग। सभा भराये तो दो हजार लोग... अरे! यह तो सर्वत्र अब आवे ऐसा है। वहाँ पूरे महाराष्ट्र में घूमे होंगे परन्तु कहीं किसी ने इनकार नहीं किया। सब यह कहते हैं। मार्ग कोई... मार्ग कोई... मार्ग तो यह है, बापू!

व्यवहार हो, वहाँ साधन है। साधन दो प्रकार के होते नहीं। साधन का निरूपण दो प्रकार का है। साधन का निरूपण दो प्रकार का है। एक अभूतार्थ साधन, एक भूतार्थ साधन। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : अभूतार्थ कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभूतार्थ यही कहा न, अभूतार्थ साधन को अभूतार्थ साधन होता है, इसका अर्थ अभूतार्थ से कहा है, व्यवहारनय से कहा है। इसके लिये तो स्पष्टीकरण करना पड़ा। लो! ऐई! सेठ! तीन तो दृष्टान्त दिये। २२१, २२७ और यह २३८। तीनों के साथ में मिलता है यह चौथा बोल। यह अंक है इसलिए जरा तीन के साथ में... ऐ वजुभाई! यह तो मेरे वहाँ के सब लोग हाँ ही करते हैं, ऐसा कहते हैं, सब मूर्ख है। अरे! भगवान! क्या करता है, प्रभु! किस अपेक्षा से किस नय का किस अपेक्षा से कैसे है और यहाँ कैसे आया है, ऐसा इसे अर्थ समझना चाहिए न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभूतार्थ वस्तु नहीं? वस्तु होती है या नहीं? निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है, निमित्त-निमित्त, व्यवहार-व्यवहार वह कुछ नहीं है? व्यवहारनय का विषय नहीं? विषय है, उसका ज्ञान कराने के लिये कहा है।

मुमुक्षु : अब उसके ज्ञान में क्या कसर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकालोक को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। आत्मा स्व का

ज्ञान करता है, तब बाकी रहा हुआ राग, उसका भी ज्ञान उसे स्वत: स्व-परप्रकाशक उत्पन्न होता है। इसलिए काम है। समझ में आया? आत्मा अपने स्वरूप के साधन में आता है, इसलिए उसे स्व-पर की ज्ञान की पर्याय ही उस समय में प्रगट होती है। वह स्व-पर का ज्ञान, वह अपना ज्ञान है। पर का ज्ञान, वह पर का नहीं है। यह व्यवहार का ज्ञान, वह व्यवहार का नहीं है। ज्ञान अपना है। स्व का ज्ञान और व्यवहार का ज्ञान, यह दो होकर अपना ज्ञान है। दो होकर अपनी वह पर्याय है, उसे वह जानता है। समझ में आया? क्या हो परन्तु अब यह?

यह (समयसार) १२वीं गाथा में कहा न, व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह तो एक निश्चय की ११वीं गाथा में कहा, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' अकेला भगवान भूतार्थ, ध्रुव के आश्रय से समकित होता है और ध्रुव को हम शुद्धनय कहते हैं। नय और नय का विषय भिन्न नहीं है। तब इतना रहा। हो कोई पर्याय, राग शुद्धि का अंश बढ़े, राग का अंश घटे, ऐसी कोई दशा है या नहीं? वह दशा है। तो उस दशा का ज्ञान वहाँ स्वत: स्व का ज्ञान होने पर उस प्रकार का ज्ञान वहाँ अपने कारण से उसका लक्ष्य करता है और जानता है, ऐसा भी नहीं है।

इस प्रकार की ज्ञान की पर्याय स्व-पर प्रकाशक जो उसका स्वभाव है, उसी प्रकार का स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय खड़ी होती है, इसलिए व्यवहार जानता है, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो व्यवहार सम्बन्धी का ज्ञान अपना है अधूरा, और स्व का पूरा, यह दोनों होकर अपनी पर्याय है। चन्दुभाई! केवलज्ञानी, केवलज्ञान में केवल पर्याय है। वह लोकालोक है, इसलिए ज्ञान है? और लोकालोक का वह ज्ञान है? वह तो अपनी पर्याय का ज्ञान है। अपनी पर्याय में, अपना द्रव्य, अपने गुण और अपनी पर्याय की पूर्णता का ज्ञान है। छह द्रव्य का है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। ऐसी ही ज्ञान की पर्याय छह द्रव्य और लोकालोक होने पर भी, अपनी पर्याय में स्व-पर प्रकाशक आत्मज्ञानमय सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है। उसे पूर्ण है, साधक को अपूर्ण है बस, इतना अन्तर है। समझ में आया?

साधक को पूर्ण ज्ञान का विषय हुआ नहीं। अभी राग है, साधक है, बाधक है,

सब है न! इसलिए उसे वस्तु के स्वभाव-सन्मुख झुकने पर जो स्व का ज्ञान हुआ, अकेला नहीं हुआ उसके साथ। ऐसा कहते हैं। स्व का ज्ञान, ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व का ज्ञान होने पर स्व-पर प्रकाशक का पर्याय में सामर्थ्य प्रगट होता है। इसलिए उसे ऐसा कहा कि व्यवहार को जानता है और व्यवहार साधन है, ऐसा उपचार करके कथन किया है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहार को जानता नहीं, तथापि व्यवहार को जानता है, ऐसा कहते हैं। लो! भाई! व्यवहार को जानता है यह? लोकालोक को जानता है वहाँ। व्यवहार को जानता है? व्यवहार तो राग है। राग से तो निर्लेप, भिन्न है ज्ञान। मांगीलालजी! भगवान स्वरूप चैतन्यबिम्ब वह ज्ञान की मूर्ति, ऐसा जहाँ स्पर्श हुआ, इतनी पर्याय ही स्व-पर प्रकाशक स्वतः, अपना स्वभाव उस प्रकार का ज्ञान ही वहाँ अधूरा स्व-पर को जानता हुआ प्रगट होता है। वह चीज़ है, इसलिए प्रगट होता है; लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान प्रगट होता है या है—ऐसा है नहीं। भीखूभाई! आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ व्यवहार साधन जो कहा, वह तो व्यवहारनय से कहा, निश्चय में वह साधन नहीं और उसे जानता नहीं। वह अपनी पर्याय का सामर्थ्य इतना और ऐसा है। जिस प्रकार के विकल्प होनेवाले हैं, उसी प्रकार का ज्ञान उनके लक्ष्य बिना, वे आयेंगे, इसलिए ज्ञान करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह प्रश्न उठा है न भाई! नहीं? प्रवचनसार में न? हाँ, प्रवचनसार में। ऐसा कि ज्ञान, ज्ञान को उत्पन्न होता है और उस समय जानता है, ऐसा कैसे बने? नट अपने पैर यहाँ रखे ऊपर, ऐसा कैसे बने? खम्भे के ऊपर। प्रवचनसार में। ऐसा ज्ञान जिस समय उत्पन्न होता है, उसी समय उसे जानता है, ऐसा कैसे हो? भाई! उस समय उत्पन्न होता है और उसी समय जाने, ऐसा उसका स्वभाव है, सुन न! और वही वापस उत्पन्न हुआ, उसे जाने अर्थात् क्या कहा इसका अर्थ, लो! भाई! जिस समय का ज्ञान हुआ साधक में, उस समय उसे जानता है। अर्थात् क्या हुआ? कि वह राग है, उसे जानता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। लोकालोक को केवलज्ञान जाने, यह व्यवहार है। अपनी पर्याय पूर्ण हुई, उसे जानता है।

इसी प्रकार साधक में जो ज्ञान की पर्याय, उस प्रकार की अपूर्ण को जाने, यहाँ

सम्पूर्ण को जाने, ऐसी ही ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। उसे ऐसा कहना कि पर को जानना वह व्यवहार है। इसी प्रकार यह साधन व्यवहार है, इससे सुगमरूप से हो, वह व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार राग है, इसलिए ज्ञान नहीं होता तो और व्यवहार साधन होकर आगे साध्य बढ़े, यह बात है ही नहीं। चन्दुभाई! बात तो यह है। रतिभाई! न्याय से जरा मध्यस्थ से अन्दर यह भाव बैठना चाहिए न? बैठे तो काम आवे, ऐसे अध्धर के अध्धर से बातें करे, ऐसा है और वैसा है, परन्तु ऐसा कैसे हो वह?

भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्द का सागर वस्तु शुद्ध। अब शुद्ध का अवलम्बन हुआ, इसलिए पर्याय शुद्ध को जानने की प्रगट हुई, इतनी ही प्रगटी है? केवलज्ञान प्रगट हुआ, इसलिए द्रव्य-गुण-पर्याय अपने जाने इतना ही प्रगट हुआ है? लोकालोक है, उसे जानता हुआ अर्थात् कि उस प्रकार का ज्ञान अपना अपने से भी होकर अपने को जानता है। सेठी! यह जरा वस्तु विचार करनी पड़े, ऐसी है। हें? वजुभाई! विस्तार तो भाई ने किया है। आहाहा!

कहते हैं, पर को जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हैं, यह प्रयोजनवान है? इसी प्रकार व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है तो पर को जाने वह प्रयोजनवान है? परन्तु ऐसा ही ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? यह प्रयोजनवान है। अपनी पर्याय उस प्रकार की प्रगट हुई, उसे जानती है, दूसरा क्या? समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ व्यवहार को साधन कहा है, उस साधन को जानने का काम करता है, ऐसा कहना, वह भी अभी व्यवहार है। उसके बदले यह मदद की और यहाँ टिकता है, वस्तु में यह नहीं है।

मुमुक्षु : शब्द के कारण से भूल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द के कारण से नहीं भूलते, दृष्टि के कारण से भूल जाते हैं। क्यों पण्डितजी! आहाहा! **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन...** अब यहाँ निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन तो है या नहीं। भाई! यह भिन्नसाध्यसाधन के समय अभिन्नसाध्यसाधन है या नहीं? यह अकेला भिन्नसाध्यसाधन है?

मुमुक्षु : यह आप समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भिन्नसाध्यसाधन के समय भी अभिन्नसाध्यसाधन तो है। उसके साथ एक दूसरा बोल जोड़ देना है। अपना निर्मल स्वभाव वह साधन है और पूर्ण निर्मल साध्य, यह तो है। तदुपरान्त यहाँ दूसरी बात अब डाली है। ऐसे काल में भी वह भिन्नसाध्यसाधन कहने में आता है। और जो निश्चयसाध्यसाधन है और उसका पूर्ण साध्य है, यह व्यवहार साधन और उसकी वर्तमान पर्याय साध्य, ऐसा जो कहें तो भी वह उपचार है। और पूर्ण साध्य का यह साधन कहना, वह भी उपचार, व्यवहार है। समझ में आया? ...! इतना सब समझना पड़ेगा! भाई! बापू! तू समझण का पिण्ड है। यह तो ज्ञान का अकेला पिण्ड। बाकी कुछ गन्ध भी नहीं। यह कि जहाँ भूमिका प्रमाण में राग होता है, उसे व्यवहार से जानता है और व्यवहार से साधन कहकर उसे जानने के लिये बात की है। समझ में आया? नहीं तो कहीं मेल नहीं खाये तत्त्व के सत्त्व का।

यह तत्त्व है, उसका सत्त्व ज्ञान जो स्व-परप्रकाशक है, उसका स्व-परप्रकाशक स्वतः स्वभाव है, स्वतः स्वभाव है। पर के कारण है, ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय स्वतः स्व-परप्रकाशक है, उसे क्या कर सकता है, उसमें कहो अब। इसलिए व्यवहार है इसलिए परप्रकाशक है, ऐसा है? समझ में आया?

मुमुक्षु : अपनी हुई पर्याय स्व-परप्रकाशक...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं उत्पन्न हुई पर्याय स्वयं अपने को जानती है। उत्पन्न हो उसे जाने उस समय में, ऐसा ही उसका स्वभाव है। इसलिए तो प्रवचनसार में स्पष्टीकरण किया है कि भाई! क्या कुछ कहा था? राग को कुछ कहा था। वह की वह पर्याय उत्पन्न हो ऐसा नहीं होता। परन्तु उत्पन्न हो उसे जाने, ऐसा नहीं होता? यह तो उसका स्वभाव है। इसी तरह रागादि के काल में जो ज्ञान स्व-परप्रकाशक नया उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार को वह जानता है। समझ में आया? निश्चय स्वरूप तो यह है। वस्तु की स्थिति ऐसी है, उसमें वस्तु स्वयं पुकार करे स्व-परप्रकाशक और स्व-परप्रकाशक की व्याख्या अर्थात् क्या? समझ में आया? परवस्तु है, इसलिए परप्रकाशक है? और स्व-पर प्रगट हुआ है, वह पर यहाँ था, इसलिए यहाँ प्रगट हुआ है? समझ में आया? परन्तु फिर शान्तिभाई कहे थोड़ा स्पष्ट करो। अब इसमें, यह

आया। वस्तु तो यह है, वह इस प्रकार से है। दूसरे किसी प्रकार से मेल नहीं खाता। समझ में आया?

यह आया कि **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं...** अभिन्नसाध्यसाधन उस समय है या नहीं? है। परन्तु उस समय की भूमिका में, आगे आता है न देखो न यहाँ! ऐसे विकल्प की जाति अभूतार्थ होने पर भी वह प्रगट होती है। समझ में आया? और इसलिए उसे ऐसा ही भाव होता है, ऐसी अनुकूलता व्यवहार से गिनकर, निमित्तरूप से गिनकर वह साधन है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु देखो न, न्याय से ख्याल में बात आनी चाहिए न? या ऐसा का ऐसा माने, ऐसा का ऐसा माने, अन्ध श्रद्धा। परन्तु क्या माने? भगवान कहते हैं कि व्यवहार साधन है परन्तु क्या है यह? पण्डितजी! **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि...** अनादि काल से क्षायिक समकित हुआ, तथापि राग का भाग तो अनादि का है न? अर्थात् मिथ्यात्वी है; इसलिए अनादि का राग है—ऐसी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो पर्याय में राग का भाग अनादि का है, बस। भले राग की एकता टूटी है, तथापि राग है, वह तो अनादि का है, वह कहीं नया हुआ है? बात समझ में आती है? ऐई! दिलीप! यह बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

अनादि काल से भेदवासित बुद्धि... इतना अर्थ पहले हो गया। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि...** जितना राग है, भेद है या नहीं? या अभेद हो गया है। अनादि का भाग है वह। अनादि का है, इसलिए मिथ्यादृष्टि है, उसे ही यह राग होता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि भिन्नसाध्यसाधन को व्यवहार कहा, तब उसके साथ निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन है। समझ में आया?

पूर्ण पवित्रता वह साध्य है और शुद्धपरिणति वर्तमान, वह साधन है। अब यहाँ यह पूर्ण परिणति वह साध्य और इसे साधन कहो तो भी उपचार है। और छठवें गुणस्थान में रहा हुआ शुभराग, वह शुद्ध सातवें गुणस्थान में शुद्धपरिणति को साधन है,

और सातवीं भूमिका की शुद्धपरिणति, वह साध्य है—ऐसा कहो तो भी वह व्यवहार है। समझ में आया? वास्तव में तो यह पहले आ गया है। छठवें गुणस्थान की शुद्धि, वह सातवें की शुद्धि का कारण है। परन्तु आरोप से उस भूमिका के योग्य जो राग की मन्दता थी, वैसी ही यह सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, इससे कोई विरोध मानने का विकल्प व्यवहार में भी उसे नहीं होता। एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, इतना पर्याय का सामर्थ्य है। अब पर्याय पर लक्ष्य है। ...ऐसा प्रगट हुआ है, तो भी मिलान नहीं खाता। समझ में आया?

मुमुक्षु : एकता की बुद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता है तो जानेगा कौन कि यह व्यवहार है, यह व्यवहार का ज्ञान भी स्वयं से प्रगट होगा किस प्रकार? समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म तो आया, सूक्ष्म तो आया परन्तु अब... न्याय से बैठे ऐसी बात है। न्याय से ख्याल में आवे तो बैठे ऐसी है। न बैठे, ऐसी बात नहीं है। भोगीभाई!

मुमुक्षु : तर्क सिद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई ने कहा था, तब धीरजभाई ने। तर्क सिद्ध बात है। और वापस बाहर जाये, वहाँ बदल जाये। तर्क सिद्ध है। अभिनन्दन देने आया हूँ, कहे। तर्क सिद्ध बात है। महाराज ऐसा कहते हैं परन्तु दूसरे वापस दूसरा कहते हैं, वह कैसे खोटा हो। गड़बड़ खड़ी होती है। भाई! यह महाराज कहते हैं यह कहाँ, यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वस्तु के स्वरूप की मर्यादा और स्थिति ही ऐसी है। कहो, प्राथमिक जीव अर्थात्, साधक जीव। प्राथमिक अर्थात् अज्ञानी जीव? हें? परन्तु प्राथमिक किसे? अनादि का है और प्राथमिक किस प्रकार कहना? वह तो अनादि का अज्ञान है। प्राथमिक हुआ कब कि साधक हुआ, इसलिए प्राथमिक भूमिकावाला, ऐसा कहने में आया। समझ में आया?

अनादि काल से ठीक इसलिए दो लाईन में ही सब अटका। आहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है। दूसरे प्रकार से वस्तु किस प्रकार मेल खाये? भगवान चैतन्यबिम्ब है। अकेला-अकेला ज्ञान का सागर है। अब यह ज्ञान का स्वरूप तो स्व-परप्रकाशक है।

शक्तिरूप से है और पर्याय में प्रगटे तो स्व-परप्रकाशक है। तब साधक है, अनादि राग का नाश बिल्कुल हुआ नहीं। और पहली साधकदशा में आया है। प्रथम साधकदशा में आया है। मिथ्यात्व की दशा तो अनादि की है, उसमें आया कहाँ वहाँ? समझ में आया? प्राथमिक अर्थात् यह। प्राथमिक अर्थात् साधक जीववाला अनुभवी प्राथमिक में है। पूर्ण हुआ नहीं इसलिए।

मुमुक्षु : व्यवहार को तुमने कभी बनाया ही नहीं। व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात ही यहाँ होती नहीं। धूल भी होती नहीं। अन्ध अन्ध हैं। राग अन्ध है, अन्ध से फिर निश्चय हो। अन्ध से सूझता हो? यह तो देखता स्व-परप्रकाशक प्रगट हुआ है, उसकी भूमिका में पूर्णता नहीं, इसलिए उसे प्राथमिक भूमिका कहा जाता है। नहीं वह अज्ञान में, नहीं वह पूर्ण ज्ञान में। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! सुजानमलजी! आहाहा!

प्राथमिक जीव... धर्म की शुरुआत हुई है, ऐसे जीव **व्यवहारनय से,...** ऐई! **भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** व्यवहार को अवलम्बकर। निश्चय अवलम्बन है, उसे व्यवहार का अवलम्बन कैसा, उसे बतलाते हैं। कहा है या नहीं? **(मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में)...** देखो न, इसमें भाई ने लिखा है। **तीर्थसेवन की प्राथमिक दशा में (मोक्षमार्गसेवन की प्रारम्भिक भूमिका में)...** ऐसा लिखा है। देखो! नीचे (फुटनोट में) है? हाँ! **आंशिक शुद्धि के साथ-साथ श्रद्धानज्ञानचारित्र सम्बन्धी परावलम्बी विकल्प (भेदरत्नत्रय) होते हैं,...** ऐसा ज्ञान प्रगट होता है, इसलिए ऐसा वहाँ भाव होता है। उसे भाव के कारण से वहाँ प्रगट होता है, इसलिए ऐसा विकल्प नहीं और विकल्प ऐसा प्रगट होता है, इसलिए यहाँ ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया?

वीतराग का मार्ग परम सत्य और सुन्दर है, सत्यम, सुन्दरम क्या कहते हैं? सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्। वह सब यह चीज़ है, सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्।

मुमुक्षु : भिन्नसाध्यसाधनभाव द्वारा व्यवहार बिल्कुल असत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता है, इतना बतलाने के लिये उसे सुगम रीति से

साधन करके करते हैं, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक...** मोक्षमार्ग के जीव, प्रथम भूमिका में **व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** इससे **सुख से...** अर्थात् सहज जाति के ऐसे ही विकल्प की जाति होती है, उस भूमिका में ऊपर की जाति नहीं होती, निचली जाति के (नहीं) उस भूमिका के योग्य हों, इसलिए उसे सुख से करता है, ऐसा व्यवहारनय के साधनरूप से उपचार से कहा है। तीर्थ की शुरुआत करता है, (अर्थात् सुगमरूप से मोक्षमार्ग की प्रारम्भिक भूमिका को सेवन करता है)। अब क्या ? कैसे ? इसका स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८२, गाथा-१७२, वैशाख कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक -०१-०६-१९७०

पंचास्तिकाय। **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** यहाँ से शुरु करते हैं। व्यवहार-निश्चय का सुसंगत मेल करके आराधन करना, ऐसा यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। निश्चयनय हो, उसे अनुकूल ही वहाँ व्यवहार होता है; इसलिए उसे सुख से करता है, ऐसा कहा जाता है। निश्चय से तो व्यवहार की अपेक्षा निश्चय में है नहीं। यह आ गया है सोने में, पत्थर में। सोना स्वयं ही अपने कारण से शुद्धि होकर बढ़ता है। इसी प्रकार निश्चय से तो स्व के आश्रय से शुद्धि बढ़ती है, टिकती है और पूर्ण होती है। (उसमें) पर की अपेक्षा है नहीं, निश्चय से। व्यवहार से पर की अपेक्षा है, उसे व्यवहार से सुख से करता है, ऐसा कहने में आता है।

प्राथमिक जीव... अर्थात् यहाँ पूर्ण वीतरागता प्राप्त हुई नहीं। शुरुआत निश्चयनय और व्यवहार का विकल्प अन्दर है। ऐसे **जीव व्यवहारनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव का अवलम्बन लेकर...** क्योंकि उसमें आगे आयेगा, अकेले भिन्नसाध्यसाधन हैं, वह तो एकान्त है। यह आता है न आगे? अकेले भिन्नसाध्यसाधन है, वह तो एकान्त है, इसलिए यह भिन्नसाध्यसाधन के अभिन्नसाध्यसाधन अन्दर है।

मुमुक्षु : मेहनत करके निकालना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकालना पड़े ऐसा नहीं। है न अन्दर वस्तु है। **भिन्नसाध्य-साधनभाव का अवलम्बन लेकर...** अर्थात् ऐसा व्यवहार अन्दर होता है, जिसे अभिन्नसाध्यसाधन प्रगट हुए हैं, शुद्ध आत्मा आनन्द और ज्ञायकभाव की पूर्णता की प्राप्ति का साधन स्वभाव का प्रगट हुआ है। जिसे व्यवहार का भाव ऐसा होता है, उसे अनुकूल गिनकर, व्यवहार से अनुकूल गिनकर, व्यवहारनय से उसे अवलम्बकर, सुख से तीर्थ की शुरुआत करता है, सुख से अर्थात् सुगमरीति से, ऐसा कहा न? सहजरूप से ऐसा।

मुमुक्षु : सहज हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज ही होता है। विकल्प उस जाति का सहज ही होता है। हठ से होता नहीं, इसलिए सहज ही होता है, ऐसा। लिखा है न? लिखा है।

मुमुक्षु : पण्डितजी हाँ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु इनने लिखा है। दूसरी जगह लिखा है। यह हठरूप से नहीं परन्तु सहजरूप से, ऐसा एक जगह लिखा है। कहीं लिखा है। दिमाग में नहीं। आवे न, हठरूप से नहीं, नियमसार में बहुत आता है नियमसार में। है न बहुत जगह आवे परन्तु न्याय समझना चाहिए न? वह भूमिका अपने स्वभाव का आश्रय लेकर जो आगे परन्तु निचली भूमिका है इसलिए उसमें व्यवहार के ऐसे विकल्पों को, भिन्नसाध्यसाधन गिनकर सुख से करता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

मुमुक्षु : निश्चय से क्या? व्यवहार से यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से तो इसका साधन है ही नहीं। व्यवहार साधन की अपेक्षा निश्चय को है ही नहीं। कहो, समझ में आया? निश्चय में तो व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय है, हुआ है या बढ़ता है, ऐसा नहीं है। बिल्कुल निरपेक्ष है। परन्तु व्यवहार से यहाँ साधन को विकल्प की जाति आती है उसे, इसलिए उसे तीर्थ की शुरुआत करता है। **(अर्थात् सुगमता से मोक्षमार्ग की प्रारम्भभूमिका का सेवन करते हैं)।** वह विकार की नहीं। निर्मल परिणति है, उसे ऐसे विकल्प हैं, उसे प्रारम्भभूमिका कहा जाता है। कहो, समझ में आया? परन्तु जिसे शुद्धपरिणति ही नहीं, उसे प्रारम्भिक भूमिका कहाँ से आयी? अकेला भिन्नसाध्यसाधन का तो आगे निषेध किया है। भिन्नसाध्यसाधनवाले एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं।

मुमुक्षु : जिस प्रगटा, नहीं प्रगटा भविष्य में...

पूज्य गुरुदेवश्री : भविष्य में कहाँ प्रगटा था? यहाँ प्रगट हुआ हो, उसकी बात है। भविष्य में व्यवहार से कभी प्रगटता होगा? राग से निश्चय स्वभाव प्रगटे? राग की अपेक्षा निश्चय को है ही नहीं। स्वभाव की अपेक्षा है, उससे निर्मल वीतरागता सम्यग्दर्शन आदि पर्याय होती है।

अब न्याय देते हैं, **जैसे कि यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है,...** ऐसे विकल्प आते हैं। राग का भाग है, वहाँ ग्रहण-त्याग के विकल्प होते हैं। यह पहले आ गया था। तत्त्वअश्रद्धान का त्याग, अंगपूर्वज्ञान के अज्ञान का त्याग और अशुभभाव का त्याग और

तत्त्वार्थश्रद्धान का ग्रहण, विकल्प, ग्यारह अंग का ग्रहण और शुद्धभाव का ग्रहण। ऐसा ग्रहण-त्याग का व्यवहार में विकल्प होता है। सेठी! यह सब समझने जैसी बात है। जब तक निर्विकल्पदशा पूर्ण हुई नहीं, तब तक निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता होने पर भी उसकी पर्याय में ऐसे ग्रहण-त्याग के विकल्प होते हैं, इसलिए उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त है, ऐसा गिनकर अनुकूलता और सुगम रीति से पार करता है, ऐसा कहने में आता है। पण्डितजी!

यह सब अर्थ दूसरे बहुत करे, इसमें से निकालते हैं, लो! आहाहा! यह देखो न! लेख लिखा ही करते हैं, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध नहीं। व्यवहार नहीं, निश्चय है। निमित्त-निमित्त व्यवहार नहीं, निश्चय है। मोतीलाल... कर्म का उदय निमित्त है और विकार नैमित्तिक है, यह निश्चय है। परन्तु किस प्रकार वहाँ आया है? परमार्थ है और कल्पना... है। यह तो आ गया था, खानियाचर्चा में। दूसरी चर्चा में भी आ गया है। उनके लेख में। है, उसका अर्थ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, ऐसा। परन्तु दो हैं, वहाँ व्यवहार कहाँ से आया? निश्चय अर्थात् है। ऐसे दो हैं। विकार होता है तो कर्म का निमित्त है, बस। नहीं, ऐसा नहीं; इसलिए उसे निश्चय कहने में आया है। परन्तु दो का सम्बन्ध है, वहाँ निश्चय कहाँ से आया? स्व का आश्रय वह निश्चय और पर का आश्रय वह व्यवहार है, परन्तु अब क्या? बड़ा विवाद उठा। लेख लिखा करते हैं। आज लेख है। उसने बहुत लिखा है। आज भी लेख है।

यह आत्मा, जिसने यहाँ तो जिसे आत्मा की कल्याण की रीति प्रगट करना हो, उसकी बात है। ऐसे का ऐसा अनादि से भटकता है, उसकी बात नहीं। इसी प्रकार अनादि से भटकनेवाला व्यवहार को अकेले को अवलम्बन करता है, उसकी बात नहीं है।

मुमुक्षु : अकेले का अवलम्बन करता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि है। यह तो अनादि से किया है। इसमें क्या किया? यहाँ तो कहते हैं, आत्मा की श्रद्धा, चैतन्य, ज्ञान, आनन्द—ऐसा भान और ज्ञान है, वहाँ उसे व्यवहार के विकल्प, यह श्रद्धेय है, नौ तत्त्व वह श्रद्धा करनेयोग्य है, छह द्रव्य वह श्रद्धा करनेयोग्य है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य है, ऐसा व्यवहार का विकल्प

आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा! मुश्किल से अवसर मिला, तब ... उल्टे रास्ते जाकर, यहाँ से आया इसलिए सामने चढ़ा वापस।

नथूलालजी ने तो स्पष्ट लिखा है। प्रत्येक पर्याय स्वयं से होती है, उसमें निमित्त का काम क्या है? लिखने में अर्थ किया परन्तु वहाँ भी सब वापस बदल गये। ऐसा पाठ है, पंचाध्यायी में। शरीर की पर्याय शरीर से होती है फिर उसे निमित्त का काम क्या है? पाठ है इसलिए कहते हैं, वापस बदल जाते हैं, नहीं। निमित्त करता है। क्या करे? धूल करे। प्रत्येक समय में जिस द्रव्य की जो पर्याय उसका होना हो, वह होती है। वहाँ निमित्त होता है, होता है अर्थात् क्या? आया इसलिए कार्यकाल बदल गया। कार्यकाल बदल गया? कार्यकाल तो जिस समय का जो है, वह है। वह यहाँ कहते हैं, ज्ञानी को भी, धर्मी को भी ऐसे विकल्पों का ग्रहण-त्याग का विकल्प होता है। समझ में आया?

पूर्ण सर्वज्ञ और वीतराग न हो, तब तक आत्मा के भानवाले जीव को भी विकल्प में ऐसे ग्रहण-त्याग के भाव आये बिना नहीं रहते। नौ तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य है, छह द्रव्य माननेयोग्य हैं, देव-गुरु-शास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य हैं। समझ में आया? ऐसा विकल्प—शुभराग निश्चय की भूमिका में आये बिना रहता नहीं। इसलिए करे और टाले, ऐसा भी कहने में आता है। व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है। ऐसा व्यवहारनय से ऐसा कहा है, उसके द्वारा सुख से किया जा सकता है। समझ में आया?

व्यवहारनय का कथन है। **यह श्रद्धेय है...** ऐसा विकल्प आता है। व्यवहार का भाग पराश्रय में धर्मीजीव को भी नौ तत्त्व, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, अरिहन्तदेव, गुरु निर्ग्रन्थ, सर्वज्ञ ने कहा हुआ अहिंसा धर्म, उसके शास्त्र, वे श्रद्धा करनेयोग्य हैं। ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। इससे विरुद्ध नहीं आता, इससे उस श्रद्धा को विकल्प गिनकर शुद्ध को करता है, ऐसा कहने में आता है।

यह अश्रद्धेय है, वह विकल्प आता है धर्मी को, परन्तु कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र अश्रद्धेय है। उनके कहे गये तत्त्व भी अश्रद्धेय है। श्रद्धा करनेयोग्य नहीं। छह द्रव्य के अतिरिक्त, नौ तत्त्व के अतिरिक्त कोई एक ही आत्मा कहे, वह जड़ और चैतन्य दो ही की, उनकी पर्यायों सहित नौ आदि न कहे, वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। ऐसा विकल्प

शुभराग व्यवहार, निश्चयदृष्टिवन्त को भी आये बिना नहीं रहता। कहो, समझ में आया? आहाहा! **यह श्रद्धेय है, यह अश्रद्धेय है,...** देखो! है न विकल्प है न इतना। **यह अश्रद्धेय है,...** श्रद्धायोग्य नहीं। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...भिन्नसाध्यसाधन। ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से मानते हैं, जानते हैं। अभिन्नसाध्यसाधन है, उस भूमिका की बात है। यह तो पहले कहा न, जहाँ अविद्या का नाश हुआ है, यह दो कषाय की बात की थी, एकदेश। अनादि अज्ञान का नाश हुआ है, स्वभाव का भान है। स्वभाव शुद्धचैतन्य की दृष्टि-ज्ञान और रमणता आंशिक वर्तती है। उसे ऐसे व्यवहार के विकल्प होते हैं, इसलिए **सुख से तीर्थ का प्रारम्भ करते हैं...** ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया? निश्चय हमको है, ऐसा कहे और व्यवहार में यह न हो—एक आत्मा हो तो भी क्या और अनेक हो तो भी क्या? हमारे क्या काम है? ऐसा नहीं होता, इसलिए यह व्यवहार अनुकूल है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

यह अश्रद्धेय है,... कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, इन्होंने कहे हुए तत्त्व श्रद्धा करनेयोग्य नहीं हैं। ऐसा शुभराग आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? **यह श्रद्धा करनेवाला है...** आत्मा। भेद है न यह सब। यह श्रद्धा करनेवाला है। आत्मा श्रद्धा करनेवाला है, यह भी एक विकल्प है, भेदवाला। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को श्रद्धा करनेयोग्य नहीं, सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र श्रद्धा करनेयोग्य है, यह श्रद्धा करनेवाला आत्मा है, ऐसा। **यह श्रद्धा करनेवाला है...** देखो! यह भेद हुआ या नहीं? यह आत्मा श्रद्धा करनेवाला है, इतना भेद हुआ। समझ में आया?

और यह श्रद्धान है। व्यवहार श्रद्धान है, यह पर्याय। व्यवहार श्रद्धान है, पर्याय। यह द्रव्य श्रद्धा करनेवाला है, पर्याय श्रद्धान है। ऐसा भेद का विकल्प भूमिका के योग्य आये बिना रहता नहीं। इसलिए उस भूमिका के विकल्प को सुगमता से तीर्थ को करता है, ऐसा कहा जाता है। अथवा सहजरूप से, हठ बिना ऐसे विकल्प होते हैं, इसलिए उसे व्यवहारनय से आगे करते हैं, और बढ़ता है, ऐसा भी कहेंगे। बढ़ता है, अब कहेंगे। समझ में आया? गजब!

मुमुक्षु : जैनशासन का व्यवहार समझना भी कठिन!

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार समझना कठिन है। उसकी पर्याय है। एक समय की पर्याय है। पर्याय नहीं, वहाँ श्रद्धान है, ऐसा कहा न? पर्याय है। विकल्प की पर्याय है और निश्चय की पर्याय यह है, वह भी विकल्प-भेद करता है, विकल्प है। सम्यग्दर्शन, वह भी पर्याय है, द्रव्य नहीं, गुण नहीं। ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह भी एक विकल्प की राग की पर्याय है। और त्रिकाल ज्ञायकभाव की श्रद्धा, वह भी एक निर्मल पर्याय है। वह भी व्यवहार में जाता है। समझ में आया? सात में तो वीतरागपना प्रभु एक ही बात है। परन्तु वीतरागपने की भूमिका में ऐसा राग होता है, इतना बतलाने के लिये उसे व्यवहार जाननेयोग्य है, ऐसा कहा जाता है। और निश्चय से व्यवहार किसे कहा जाए कि वह उपादेय है। व्यवहार से व्यवहार उपादेय, ग्रहण करने के लिये कहा न?

मुमुक्षु : वह अमृत समान है ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ऐसा कहे, सब अमृत कहे व्यवहार। निश्चय का अमृत है, ऐसा आरोप करके राग को अमृत कहे, आरोप करके। है तो जहर। ऐसी बात है, भाई! भगवान आत्मा, शुद्ध कल नहीं आया था? आया था न! शुद्धस्वरूप परमामृत समुद्र है। भगवान आत्मा तो शुद्ध परमामृत समुद्र है। भगवान आत्मा **शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर,...** उसमें प्रवेश करके **निर्वाण को प्राप्त करता है।** ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : धीरे, धीरे...

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे.. धीरे अर्थात्? यह राग है, तब तक पूर्ण निवृत्ति नहीं। राग को छोड़ेगा तब पूर्ण निवृत्ति होगी। निवृत्ति कहो या मुक्ति कहो। इसलिए धीरे-धीरे, ऐसा कहा गया है, उससे होता है, ऐसा है नहीं। **यह श्रद्धेय (श्रद्धा करनेयोग्य) है, यह अश्रद्धेय है, यह श्रद्धा करनेवाला** आत्मा है। और यह श्रद्धान पर्याय है। आहाहा! ऐसे विकल्प को भी व्यवहार कहा जाता है। निश्चय में तो त्याग-ग्रहण है ही नहीं। ग्रहण-त्याग है? मोक्षमार्गप्रकाशक में आया, आता है मोक्षमार्गप्रकाशक में। निश्चय में त्याग-ग्रहण नहीं। त्याग-ग्रहण का विकल्प आवे, उसे क्या कहना? वह सब व्यवहार

है। निश्चय से तो वीतरागपना वही धर्म है। इसमें आया है या नहीं? चरणानुयोग में आता है। परन्तु उसके जितने निमित्त हों, उसे भी व्यवहारधर्म का आरोप करके व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! क्या करे? जगत को शास्त्र के अर्थों की जो रीति है, वह रीति भी करना न आवे, उसे अन्तर में राग से भिन्न करना तो आवे नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इतने सब विकल्पों का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आये बिना रहते नहीं। नहीं तो निर्विकल्प हो गया, वीतराग हो गया।

मुमुक्षु : वीतराग ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग नहीं। पर्याय में वीतराग हो तो... वस्तु वीतराग है। पर्याय में पूर्ण वीतराग कहाँ हुआ है? समझ में आया? तथापि हेय है, आदरणीय नहीं। उपादेय नहीं। व्यवहार से यहाँ उपादेय कहा जाता है, ऐसी बात है। दो उपादेय होंगे? यह वह उपादेय और यह भी उपादेय तो दो पड़े कैसे? इसकी दिशा ऐसी है। कहेंगे। भिन्न विषयवाले श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है, वह तो सब। आत्मा से भिन्न है। पर की नौ तत्त्व की श्रद्धा, देव की श्रद्धा, गुरु की (श्रद्धा), वह तो भंग विषय है, व्यवहारश्रद्धा का विषय है तो पर भिन्न है। निश्चयश्रद्धा का विषय स्व है। समझ में आया?

एक व्यक्ति अभी आया था, बस भगवान के दर्शन मुझे कराये, अब मुझे रोग है, उस रोग का कुछ रोग का दो। एक व्यक्ति ऐसा आया था। अब बहुत (आते हैं)। अभी आया था, चार-पाँच दिन पहले।

मुमुक्षु : आपको तो उपकार करना चाहिए न रोग मिटाने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : रमण ऋषि का साधु नहीं था? दूसरा उनका साधु था न। जाप करते-करते भगवान का जाप करते हुए साक्षात्कार हुआ। एक आया था अभी, मुझे भगवान का साक्षात्कार तो कराया उन्होंने, फिर मुझे आहार दे, क्या कहलाता है? प्रसादी। भगवान की प्रसादी भी दे। अब यह मुझे रोग है, उसका क्या करना? कहा, यहाँ रोग की दवा कुछ नहीं। यहाँ तो धर्म की बात है। चार-पाँच दिन पहले आया था। रोग है शरीर में, एक वाह है और ऐसा कुछ था। और यह अभी पूरा रोग है, तुझे अभी भगवान

के दर्शन करना लगते हैं, वह भी बड़ा रोग है। भगवान कहाँ दर्शन दे सकें? और भगवान ने मुझे प्रसादी दी, ऐसा कहते हैं। प्रसादी दी। भगवान प्रसादी! ऐसे के ऐसे। (तो भी) रोग गया नहीं। भ्रमणा, भ्रमणा का रोग गया नहीं। आहाहा! भाई है या नहीं? आये हैं या नहीं आज? जवेरवाले। गये? बैठे हैं न? वे आये थे। देह मुझे लगती है। कुदेव को। भगवान के पास जाओ, वहाँ मुझे ऐसा और बाहर निकलूं देह। वह कहाँ ऐसा निवृत्त था वह, बाहर निकले वहाँ लगे और अन्दर... यह क्या निवृत्त बैठा है? बस, बात यह है। मस्तिष्क में कल्पना होती है न, मानी होती है न! मैं अन्दर गया वहाँ... बाहर निकल। कल्पना... कल्पना। लोगों को सत्य को पकड़ना भारी कठिन!

कहते हैं, यहाँ तो आत्मा स्वयं परमदेव है। देवाधिदेव स्वयं, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, पूरी रमणता न हो, तब, चारित्र मोक्ष का कारण सिद्ध किया है न? वहाँ से शुरुआत हुई है न! और चारित्र पूर्ण न हो, उसमें-चारित्र में क्रम पड़ता है। श्रद्धा-ज्ञान में क्रम नहीं पड़ता। चारित्र में पूर्ण रमणता में क्रम पड़ता है। इसलिए पूर्ण रमणता न हो, वहाँ ऐसा राग का भाग आये बिना नहीं रहता। यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है। नहीं तो चारित्र मोक्ष का कारण है, यह १५४ से शुरु किया है। समझ में आया?

इतना परसमय का भाव जब तक है, तब तक चारित्र की पूर्णता नहीं। पूर्णता नहीं; इसलिए मुक्ति है नहीं। कहो, समझ में आया? **यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है,...** लो! पहले श्रद्धा के चार बोल लिये थे। अब भगवान ने कहे हुए ज्ञान, उन्होंने कहा हुआ जाननेयोग्य है। छह द्रव्य जाननेयोग्य हैं, नौ तत्त्व जाननेयोग्य हैं, समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय जाननेयोग्य है। वस्तु का द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? यह जाननेयोग्य है। ऐसा विकल्प शुभराग है। आये बिना रहता नहीं।

यह ज्ञेय (जाननेयोग्य) है, यह अज्ञेय है,... अज्ञानी ने कहे हुए तत्त्व, वे जाननेयोग्य नहीं। एक ही आत्मा कहे, जीव और जड़ दो ही कहे। समझ में आया? इत्यादि-इत्यादि उल्टी बात हो, भगवान ने कहे हुए, उससे कम, अधिक या विपरीत, वह जाननेयोग्य नहीं है। ऐसी बात है। यह जाननेयोग्य है, **यह अज्ञेय है,...** जाननेयोग्य नहीं। अप्रयोजनभूत मुफ्त की बात जाननेयोग्य नहीं। ऐसे विकल्प शुभराग आत्मा का भान है, उसे भी व्यवहार के ऐसे भाव आते हैं।

यह ज्ञाता है... भगवान आत्मा जाननेवाला है। स्वयं जाननेवाला है, इतना भेद पड़ा न? जाननेवाला है, यह भी एक विकल्प है। ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान तीन के भेद करना, यह विकल्प है। नियमसार में तो कहा न, द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार भी विकल्प है। द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है, यह त्रिकाल शक्तिवान है। यह त्रिकाल शक्ति है, वर्तमान प्रगट दशा है—यह भी तीन का भेद पड़ा, यह विकल्प है। कहो, समझ में आया?

जिसने पर्याय बिल्कुल मानी नहीं, ऐसे को जाननेयोग्य है नहीं। जिसने अकेली पर्याय मानी परन्तु द्रव्य माना नहीं, बौद्ध ने पर्याय मानी परन्तु द्रव्य नहीं माना। वेदान्त ने द्रव्य माना परन्तु पर्याय नहीं मानी। यह सब जाननेयोग्य नहीं। विरुद्ध तत्त्व है। समझ में आया? देखो न! अमृतचन्द्राचार्य कितना लेते हैं! अमेहनाकार, पाखण्डियों के प्रतीक साधनरूप आकारवाला लोकव्याप्तिवाला व्यापक है नहीं। आहाहा! कड़क भाषा प्रयोग की है। ऐसा पाखण्ड! एक द्रव्य अखण्ड परिपूर्ण द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड स्वद्रव्य और उन सबसे एक पाखण्ड मत है। समझ में आया? महाप्रभु एक ही प्रभु स्वयं भिन्न है। ऐसे अनन्त प्रभु हैं, अनन्त परमात्मा हैं। उसके बदले एक ही कहा, पाखण्ड है। गुणानुवाद सुनकर ऐसा लगे न, यह तो वेदान्त जैसा लगता है। परन्तु वेदान्त को पाखण्ड कहा है यहाँ तो। पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला लोकव्यापक जो नहीं। समझ में आया?

निश्चय की बात यहाँ आती है न इसलिए हाँ, महाराज कहते हैं, ऐसा ही रजनीश कहता है। शून्य होने का कहा न! निर्विकल्प शून्य होने का कहा न! समझ में आया? ऐसे के ऐसे बिना भान के। वे भाई नहीं कहते थे दिगम्बर लोग। यहाँ बैठे थे, वृद्ध थे। ऐसी सब बात करे, भजन करे, सबके। दौलतराम के और उनके। रजनीश ने क्या? है हों! अरे! गजब करते हैं। ऐसे के ऐसे कौन जाने क्या है? ऐसी बातें जाननेयोग्य नहीं है। ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने और सन्तों ने कहे हुए द्रव्य-गुण और पर्याय, वे जाननेयोग्य हैं। समझ में आया? इसके अतिरिक्त जाननेयोग्य है नहीं। आहाहा! **यह अज्ञेय है,...** जाननेयोग्य नहीं। **यह ज्ञाता है...** अर्थात् जाननेवाला है। **यह ज्ञान है...** पर्याय। ज्ञान की

यह पर्याय है जाननेवाली, यह भी एक भेदरूप से विकल्प, ज्ञाता है, ज्ञान है, पर्याय है, यह भी भेद का विकल्प है। ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

तीसरा। **यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,...** निश्चय शुद्ध आचरण करनेयोग्य है, ऐसा भी एक विकल्प, और व्यवहार आचरण करनेयोग्य है, यह भी एक विकल्प। पंच महाव्रत आचरणीय है, व्यवहार से। निश्चयस्वरूप की स्थिरता आचरणीय है, ऐसा भी भेद पाड़कर विकल्प विचार, वह भी व्यवहार है। समझ में आया?

यह आचरणीय (आचरण करनेयोग्य) है,... यह आचरणीय नहीं, **अनाचरणीय है।** धर्मी को विकार आदि होते हैं, विपरीत भाव आचरणयोग्य नहीं हैं, अनाचरणीय है। अनाचार है, एक आचार है। एक आचरनेयोग्य है, एक आचरनेयोग्य नहीं। क्या? ग्रहण-त्याग के विकल्प उस भूमिका को बराबर यथायोग्य आवे, उस भाव को यहाँ बतलाते हैं। समझ में आया? अकेला निश्चय-निश्चय करे और व्यवहार के विकल्प में ऐसी दशा न हो तो उसे निश्चय होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पंच महाव्रत, वे आचरणीय हैं। अट्ठाईस मूलगुण वे व्यवहार से आचरणीय हैं, ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त अशुभभाव, वस्त्र लेना और पात्र रखना, ऐसे भाव आचरणीय नहीं हैं। मुनि को आचरनेयोग्य है ही नहीं। समझ में आया? अध:कर्मी आहार आदि लेना, वह अनाचरण है। आचरणीय है नहीं। निर्दोष आहार लेना, वह आचरणीय व्यवहार से, विकल्प है न विकल्प वह। आहार लेना, वह जड़ की बात है। निर्दोष आहार लेना, वह व्यवहार से आचरणीय है। है तो वह बन्ध का कारण परन्तु यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न? उसके लिये नहीं बनाया हुआ निर्दोष आहार।

अब उसका बचाव किया है, आज लेख आया है उसमें (किया है)। उद्देशिक तो होता ही है इस काल में, वह मिटता नहीं, इसलिए उसे दोष नहीं गिनना। साधु के लिये पौष्टिक आहार न करना। पौष्टिक आहार न करना। दूसरा करना, ऐसा लेख है। और श्रावक साथ हों वे सब पौष्टिक कराते हैं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि साधु तो थोड़ा खाते हैं परन्तु स्वयं को माल मलिदा मिले, इसलिए ऐसा आहार ही, ऐसा लेख में आया है। श्रावकों के साथ साधु हो न! ऐसी बात! श्रावकों के साथ हों, वे उसको कहे ऐसा करना

आहार बादाम-पिस्ते का। वे साधु थोड़ा खाये, फिर स्वयं को भी मिले। साधु को इनकार करना कि तुम्हारे ऐसा नहीं कहना और बहिनों को सात्विक आहार बनाना महाराज के लिये। ठीक। ऐसे लेख। आहाहा! दिगम्बर धर्म में। श्वेताम्बर में तो चलता है घोटाला! उनके लिये तो पूरा आहार बनाकर, उनके लिये तो आम उतरे, सर्दी में पाक उतरे, लहर करे, और ऐसे हों उनके भगत! भीखाभाई जैसे। जय महाराज! व्याख्यान करते थे, आहाहा! यह हमारे महाराज जैसा किसी का व्याख्यान नहीं, परन्तु क्या खाते हैं और क्या करते हैं, उसका तो भान नहीं कुछ? समझ में आया? नहीं व्यवहार का ठिकाना, नहीं निश्चय का ठिकाना, एक भी नहीं, लो! मार्ग की ऐसी पद्धति है, भाई! इसलिए यहाँ व्यवहार का विवेक कराते हैं। समझ में आया?

मुनि को वस्त्र, पात्र, सन्दूक रखना, यह अनाचरण है। उसे छोड़ना और महाव्रत के आचरण करना, वह आचरण व्यवहार से आचरणीय है। ऐसा उसे विवेक का विकल्प होता है। **यह आचरण करनेवाला है...** भगवान आत्मा आचरण करनेवाला है। कोई जड़ आचरण करनेवाला नहीं। यह निर्विकल्पस्वरूप भी आचरनेवाला आत्मा है, और पंच महाव्रत के विकल्पों का आचरण करनेवाला भी है तो आत्मा व्यवहार से। समझे? यहाँ तो व्यवहार सिद्ध करना है न? समझ में आया? निश्चय में तो यह विकल्प है, उससे मुक्त है ज्ञानी।

मुमुक्षु : यह अपने को बहुत याद रहता है, यह नहीं रहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तो भी है, मुक्त है, वह चीज़ है या नहीं? केवली लोकालोक से मुक्त ही है। परन्तु लोकालोक है या नहीं? ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा अपने स्वभाव से है। व्यवहार से मुक्त है। तथापि व्यवहार, व्यवहाररूप से है या नहीं? उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। या व्यवहार है ही नहीं? समझ में आया? दीपचन्दजी!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्टीकरण....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत स्पष्टीकरण, एक महाराष्ट्र और एक दिल्ली। एक उत्तर और एक दक्षिण। दोनों साधु होनेवाले थे। दोनों अपने उपस्थित हैं यहाँ सभा में। शान्तिभाई! शान्तिभाई तो बहुत ही खानदानी व्यक्ति। भाग्यशाली कि रह गये। नहीं तो

कठिनाई पड़ती। सत् सुनना मुश्किल पड़ता। सुननेवाले हम साधु हुए नग्न हुए को सुनाये!

'सब साधन बन्धन हुए, रहा न कोई उपाय, सत् साधन समझे बिना वहाँ बन्धन क्या जाये' आहाहा! बन्धन हुए, सब साधन बन्धन हुए, श्रीमद् ने कहा। साधु को बन्धन होने के पश्चात् कहीं अपने सुना जाये। एक साधु को विचार आया कि भाई यह कानजीस्वामी कहते हैं, ऐसा बढ़िया चलता है। सुनने जाये तो क्या दिक्कत? एक आचार्य को विचार आया। अरे महाराज! नाक कट जायेगी। यह क्या कहता है परन्तु यह। इसकी बात चलती है, ३३ वर्ष से, दो-तीन वर्ष पहले की बात है। चलती है तो चलती ही है। उसमें कहीं हीनता आयी नहीं और कहीं छेद पड़ा नहीं। जो बात एकधारी कहते हैं, वह कहा करते हैं। है क्या यह? सुनने जायें तो क्या दिक्कत अपने को? महाराज! नाक कट जायेगी। अरे! आचार्य होकर सुनने जाये वहाँ? नाक कट जायेगी। ऐसा सुना है, हों! कोई कहता था।

यह आचरण करनेवाला है... आत्मा है। आहाहा! जड़ आचरण करता है? ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। विकल्प भी आत्मा में व्यवहार से आचरण करनेवाला विकल्प व्यवहार से इसकी पर्याय में है। यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है न? समझ में आया? **यह अनाचरणीय है, यह आचरण करनेवाला है...** आत्मा। **यह आचरण है;...** निर्मल वीतरागी पर्याय, वह निश्चय का आचरण है, यह विचार करना वह भी एक विकल्प है। और व्यवहार से पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण आचरण है, परन्तु विकल्प है, ऐसा।

अब दूसरा, **इस प्रकार (१) कर्तव्य (करनेयोग्य) है....** 'अवश्य करणीयं निश्चय विकार रहित पर्याय' व्यवहार से राग आदि कर्तव्य है, ऐसा कहने में आता है। शुभराग आता है न! मोक्षमार्ग में कहा है न लेने-देने की क्रिया में, तेरी ममता करेगा नहीं। परन्तु उसमें से विकल्प उठे, उसमें ममता करना कि वह मेरी पर्याय है, इतना। समझ में आया? यह तो वह पर से भिन्न करने के लिये। कर्तव्य **यह कर्तव्य (करनेयोग्य) है, अकर्तव्य है...** मुनि को, समकिती को, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, कुदेव की श्रद्धा कर्तव्य नहीं। सुदेव, सुगुरु की कर्तव्य है। व्यवहार से कर्तव्य है। समझ में आया? धर्मी हो और हनुमान को माने, सीकोतर को माने, अम्बाजी को माने।

मुमुक्षु : हनुमान तो हो गये....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार हनुमान हो गये? वे तो वीतरागी मुनि थे, वे तो वीतरागी हैं। यह तो, वे बन्दर जैसे थे और फिर ऐसा हुआ, उसे मानता है। यहाँ नहीं कहते थे कल वे कोई। सुरेन्द्रनगर में थी न स्तुति भरवाडो हमने इकट्ठा किया था। वह भरवाडा भी भजन यह रामविजय का वह था न? स्वागत। क्या कहलाता है वह? स्वागत। चालीस भरवाड इकट्ठे थे। वे बकबक करें, लम्बा चले न मोटा, अधिक लोग, फिर पूरा हो पश्चात् अम्बाजी की जय, ऐसा बोले। कल कोई कहता था। कौन कहता था? चले गये? गये। वह प्रेमचन्दभाई कहते थे, उनका दामाद। वे कहते थे, सरघस निकले, उसमें भरवाड इकट्ठे... वे भरवाड भजन करे उसका, वह पूरा हो, इसलिए कहे अम्बाजीमात की जय, ऐसा बोले। परन्तु जैन में और यह क्या? ऐई! चमनभाई! तुम्हारे गाँव में अम्बाजी है न? बनिया माने अम्बाजी को। आहाहा! ऐसे के ऐसे। जिनका व्यवहार ऐसा हो, वह तो मिथ्यादृष्टि है। सुन्दर वोरा के उपाश्रय में, उसमें आहार लेने गये, रसोई में गये वहाँ ब्राह्मण कूटता था। क्या कहलाता है वह? चूरमा करने का। मोगरी कूटते थे। उस रसोई में हम तो आहार लेने गये थे... उसका प्रमुख। भ्रमणा का पार नहीं होता। वहाँ आगे आहार का तो रसोई में होता है। हम वहाँ गये वहाँ ब्राह्मण क्या कहलाता है? ढेफा। ढेफा नहीं। मोगरी से कूटते थे। रसोई में, हों! रसोई के अन्दर। अभी आहार हुआ नहीं और इस ब्राह्मण को जिमानेवाले हैं, लड्डू होते हैं। भागे, कहा चलो। यह ८२ की बात है, ८२ की।

मुमुक्षु : वहाँ से तो साधु को लिया नहीं जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह अभी कहाँ था? वह भी नहीं था न? आहाहा! यह कर्तव्य है, ऐसा वह नहीं। धर्मात्मा को तो विकल्प व्यवहार होता है, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का आवे तो व्यवहार कर्तव्य कहलाता है। निश्चय से तो, '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से निर्विकारी आवश्यक करनेयोग्य है। नियमसार में आया है। '**णियमेय जं कज्जं**' नियम से करनेयोग्य है। एक स्वभाव का आश्रय करके निर्विकल्प आवश्यक करनेयोग्य है। सोगानी को भी यही हुआ था न आत्मधर्म पढ़कर। एक आवश्यक

करनेयोग्य है। यह आया वहाँ आत्मधर्म में, तो आहाहा! आये थे न अभी! यह नय है। एक आवश्यक अवश्य करनेयोग्य होता है।

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें एकाकार होना, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र निश्चय, वह एक ही करनेयोग्य है। ऐसा करनेयोग्य है, ऐसा विकल्प भी जो व्यवहार है, वह भी हेय है। परन्तु ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **यह अकर्तव्य है...** इसके अतिरिक्त कोई कर्तव्य नहीं है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा करके मानना, (यह कर्तव्य नहीं)। समझ में आया? हमारे सेठ ऐसा कहते कि लौकिक में मान्यता हो, इसलिए समकित को बाधा नहीं है। रोग हो तो गोरखिया को मानना। गोरखिया है न वहाँ? दामनगर हनुमान। वह दामोदर सेठ को एक बार कहता था। वाह! वाह! पीड़ा, बहुत पीड़ा। वहाँ तक कहे कि बन्दूक से उड़ाओ। ऐसी पीड़ा। माना होगा गोरखिया को,... क्या है सेठ? जैन को यह क्या गोरखिया को। सब लौकिक है, लौकिक है। भगवान को भी रोग हुआ था न? अब कहा, यह बात रहने दे न? एक ओर रखो। उसके साथ गये थे न सेठ! साधु। ऐसा करके कहते हैं। (संवत्) १९८३ की बात है। रहने दे न यह बात। भगवान को रोग हुआ न! यह तो करो। लौकिक है, उसे दिक्कत नहीं। मैंने मेरी बही में लिखा है। ऐसी श्रद्धा। कुछ भान नहीं होता, अक्ल नहीं होती। गोरखिया को मानना रोग होवे तो, पुण्य की भी श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? जैन के नाम से वापस डाले। यह साधु पढ़े हुए और दूसरी आर्यिकाओं को भी वापस सिखावे। लौकिक की छाप कहलावे। वह लौकिक आचरण, उस लौकिक की छाप कहलाये नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि वह करनेयोग्य नहीं। ऐसी मान्यता-बान्यता करनेयोग्य नहीं। धर्मी को ऐसी मान्यता का विकल्प भी नहीं हो सकता। **कर्ता है...** आत्मा, विकल्प और निर्मल परिणति का कर्ता आत्मा है। वीतरागी आश्रय परिणति का कर्ता आत्मा निश्चय से, विकल्प का कर्ता व्यवहार। दोनों उसके कर्ता हैं, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए, कोई दूसरा कर्ता है, ऐसा नहीं। ईश्वर मेरी पर्याय का कर्ता है, ईश्वर कराता है ऐसा करते हैं, ऐसा नहीं है। कर्म धूल भी कराता नहीं। कर्ता क्या कहते हैं? राग का

कर्ता मैं हूँ, निर्मल पर्याय का कर्ता मैं हूँ। कर्म कर्ता है, ऐसा तो विकल्प भी यहाँ नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कर्ता मैं हूँ, लो! यह आज आया है, कुछ पूछा था, कितने ही ऐसा कहते हैं, अकेले आत्मा से विकार होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो फिर है न सब बहुत। रतनचन्दजी देखो! यह कर्म न हो तो विकार होगा? नहीं तो स्वभाव हो जाये, अमुक हो जाये। विरोध है सब। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहते हैं। ऐसा लेख जैन जगट में दिया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, विकल्प उठे तो भी वह राग का कर्ता व्यवहार से परिणति परिणमे, इसलिए मैं हूँ। समझ में आया? उसका कर्ता कोई कर्म और दूसरा नहीं है। जिसकी वर्तमान परिणति का कर्ता मैं, तो उसका कर्ता कौन हो? समझ में आया? वर्तमान परिणति का मैं कर्ता तो परिणति का करनेवाला द्रव्य तो उस द्रव्य का कर्ता कौन होगा? समझ में आया? आहाहा! इसलिए कहते हैं, यह अकर्तव्य है, और कर्ता भी मैं, यह कर्म है, लो! कर्म अर्थात् कार्य, निर्मल परिणतिरूपी कार्य, वह कार्य है, और राग भाग, वह भी व्यवहार से कार्य है, वह कर्म। कर्तव्य, अकर्तव्य, कर्म और कर्ता, ये चार बोल इसमें पड़े हैं।

उन **कर्मरूप विभागों के अवलोकन द्वारा...** अकेला कर्म नहीं, यह सब ऊपर पड़े.... ऐसे विभागों के अवलोकन द्वारा, ऐसे भेद के ज्ञान द्वारा **अवलोकन द्वारा जिन्हें कोमल (मन्द) उत्साह उल्लसित होता है...** कहो, समझ में आया? तीक्ष्ण शब्द प्रयोग किया है न? उसमें है? इसमें सुन्दर कहा है। लिखा हुआ है। है? '**पेशलोत्साहाः**' सुन्दर उत्साह उल्लसित होता है। अशुभ टलता है न, उस जाति का सुन्दर विकल्प उत्साह उल्लसित होता है। ऐसे वे प्राथमिक जीव, पहले से लिया है न? प्राथमिक जीवों ने, अनादि काल से में, पहली लाईन में, वे प्राथमिक अर्थात् प्रथम साधक हुए जीव, धीरे-धीरे मोहमल्ल को उखेड़ते जाते हैं। स्वभाव के आश्रय से, राग का भाग ऐसा होने पर भी धीरे-धीरे मोहमल्ल को उखेड़ते जाते हैं। शुभराग की अपेक्षा से अशुभराग इतना टलता है। आता है न वह समयसार में? समयसार में आता है।

समयसार में तो बराबर लिखा है, शुभ है वह अशुभ को छोड़ता है। वह निश्चय की दृष्टि है, उसे, हों! दृष्टि के स्वभाव में तो निश्चय है ही। उसे शुभभाव धीरे-धीरे राग घटता है, ऐसा भी है न वहाँ भी। वहाँ मोक्ष अधिकार में आयेगा, अन्त में। व्यवहार, वह अमृतकुम्भ है। धीरे-धीरे राग घटता है, शुभ के आश्रय से। अरागपना तो द्रव्य के आश्रय से होता है। समझ में आया? परन्तु शुभ में भी अशुभ टलता है, इस अपेक्षा से धीरे-धीरे मोहमल्ल को उखेड़ता जाता है।

मुमुक्षु : इसमें तो व्यवहार से मोहमल्ल को उखेड़ता जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस व्यवहार से का अर्थ यह। कहा न, व्यवहार कहा न? क्या है यह पंचास्तिकाय। समयसार यह। उसमें भी आता है न, मोक्ष अधिकार (गाथा-३०६-३०७) प्रतिक्रमण की गाथा है। लो आया यह। और जो द्रव्यरूप प्रतिक्रमणादि है, वे सर्व अपराधरूपी विष के दोषों को घटाने में (क्रम-क्रम से मिटाने में) समर्थ होने से (अमृतकुम्भ है)। वह यह शब्द है, देखो! है? अपराधरूपी विष के दोषों को घटाने में, वहाँ फिर कोष्ठक में (क्रम-क्रम से मिटाने में) समर्थ होने से अमृतकुम्भ है। व्यवहार से अमृतकुम्भ कहा जाता है। शुभ में अशुभ टलता है, इस अपेक्षा से (कहा जाता है)। पाठ में अमृतचन्द्राचार्य के पाठ हैं। पूरा तो स्वयं अपने स्वभाव के आश्रय से होता है, समझ में आया? परन्तु प्रथम ही त्यागनेयोग्य है, और जो द्रव्यरूप प्रतिक्रमण है, वह अशुभ तो छोड़नेयोग्य है परन्तु शुभ जो है, वे सर्व अपराधरूपी विष के दोषों को घटाने में समर्थ होने से अमृतकुम्भ है। यह तो शुभ है और अशुभ हुआ नहीं, इस अपेक्षा से घटाने में, व्यवहार से धीमे-धीमे राग को घटाता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। वह भी अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। **ऐसे वे (प्राथमिक जीव) धीरे-धीरे...** क्रम-क्रम से, धीरे-धीरे, **मोहमल्ल को (रागादि को) उखाड़ते जाते हैं;...** अशुभराग उखड़ता जाता है। और शुभराग भी आगे बढ़ते-बढ़ते घटता जाता है। जितना शुभराग पहले ऐसा नहीं रहता, कषाय का रस घटता जाता है न? शुभ घटता जाता है। व्यवहार से घटाता है, ऐसा कहने में आता है। निश्चय से तो

स्वरूप का अनुभव दृष्टि है, उसे व्यवहार ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। जिसे निश्चय का अनुभव नहीं, उसे व्यवहार से शुभराग घटता है, ऐसा तो उसे हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया?

कदाचित् अज्ञान के कारण... अब अज्ञान अर्थात् यहाँ मिथ्यात्व नहीं लेना। क्योंकि अभेदरत्नत्रय है, साध्यसाधन उसके साथ यह भेद है। इसलिए अज्ञान लेना नहीं। **स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण...** अपना अनुभव नहीं, वेदन में-उपयोग में आया नहीं, उसके कारण **मद (कषाय) और प्रमाद के वश होने से...** जरा कषाय और प्रमाद के वश होने से **अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने पर...** उस भूमिका के योग्य राग की जितनी मन्दता चाहिए, उतना अधिकार न रहकर कुछ राग की उग्रता हो गयी हो, उसे प्रायश्चित लेते हैं, ऐसा कहा जाता है। यह सब विकल्प है, व्यवहार का। आहाहा! समझ में आया?

(—स्वसंवेदनज्ञान के अभाव के कारण)... अज्ञान के कारण का अर्थ यह लेना यहाँ। समझ में आया? वापस ऐसा ही अर्थ वे करे, ठेठ केवलज्ञान हो, तब ज्ञान होता है, नहीं तो वापस अज्ञान है। चारित्रसहित की रमणता, उसे ज्ञान कहते हैं। और ऐसे अर्थ करे। आहाहा! आते हैं न सब डाले हैं, रतनचन्दजी ने। **अज्ञान के कारण...** अर्थात् स्वरूप के अनुभव में न हो, तब उसे कोई रागादि का भाव वश हो जाने से **प्रमाद के वश होने से,...** ऐसा है, देखो! राग के वश होने से। कर्म के वश होने से - ऐसा भी यहाँ लिया नहीं। कर्म भी परद्रव्य है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

मद (कषाय) और प्रमाद के वश... कषाय और प्रमाद के वश। प्रमाद और कषाय दो है न? छठवें गुणस्थान में। **अपना आत्म-अधिकार (आत्मा में अधिकार) शिथिल हो जाने पर...** उस भूमिका के योग्य राग नहीं रहा और कुछ विशेष हो गया **अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए...** व्यवहार में उस भूमिका के योग्य राग में रहने के लिये, **वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं;...** प्रायश्चित लेते हैं। आहाहा! और ऐसा विकल्प आता है व्यवहार से। प्रायश्चित ले कि उस भूमिका के योग्य राग बढ़ गया, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? ओहोहो! यह निश्चय की बातें, उसके साथ

व्यवहार ऐसा होता है, ऐसा ज्ञान कराते हैं। **अपने को न्यायमार्ग में प्रवर्तित करने के लिए...** न्यायमार्ग, यह वह व्यवहार, हों!

वे प्रचण्ड दण्डनीति का प्रयोग करते हैं;... दण्ड करते हैं, पूरे दिन के उपवास इत्यादि-इत्यादि, एक महीने तक रूखा खाना, इत्यादि कठोर प्रायश्चित आवे, प्रवर्तते हैं। **पुनः पुनः (अपने आत्मा को) दोषानुसार...** अपने आत्मा को दोष के योग्य अनुसार ऐसा। **प्रायश्चित्त देते हुए...** स्वयं को। **वे सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं;...** देखो! यह व्यवहार की भूमिका! समझ में आया? आता है न व्यवहार। व्यवहार ऐसा ही होता है। इसलिए उसे आगे-पीछे हो जाये तो प्रायश्चित के योग्य है। समझ में आया? प्रायश्चित लेना, वह व्यवहार है। और वापस कैसे... यह सब व्यवहार हुआ है। निश्चय तो उससे विमुख होकर स्थिर हो, वह प्रायश्चित है।

आता है न, नियमसार में प्रायश्चित के अधिकार में। अपना ज्ञानस्वभाव, उसे राग से विमुख करके स्वभाव में स्थिर होते हैं, वही प्रायश्चित है। निश्चय में तो वही प्रायश्चित है। और व्यवहार में ऐसा विकल्प का उसे अपराध हो गया हो, उसके योग्य न हो तो प्रायश्चित लेता है। समझ में आया? और वे **सतत उद्यमवन्त वर्तते हैं;...** ऐसा कहा। स्वयं व्यवहार का पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आता है न, पुरुषार्थ को जानना, नहीं आता? योगसार। छह द्रव्य और नौ तत्त्व को पुरुषार्थ से जानना, प्रयत्न से जानना, हों! व्यवहार को जानो, जानने में क्या है? आता है न उस जाति का, स्वयं को जानता है। आहाहा! **और भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा...** देखो अब। यह व्यवहार जो है, उसका विषय आत्मा से भिन्न है। व्यवहाररत्नत्रय का विषय आत्मा के विषय से भिन्न है। देव-गुरु-शास्त्र, नौ तत्त्व, छह द्रव्य सब आत्मा के विषय से पर भिन्न विषय है। आहाहा! है न नीचे (फुटनोट में)।

व्यवहार-श्रद्धानज्ञानचारित्र के विषय आत्मा से भिन्न है; क्योंकि व्यवहारश्रद्धान का विषय नव पदार्थ हैं,... यह और कैलाशचन्दजी आगे तत्त्वार्थश्रद्धान का... तत्त्वार्थश्रद्धान का वहाँ धवल में आता है न अशुद्धनय, अशुद्धनय का विषय। इस तत्त्वार्थश्रद्धान को अशुद्धनय में डालते हैं, ऐसा नहीं है। यह तत्त्वार्थश्रद्धान तो सम्यग्दर्शन है। क्योंकि यह

उमास्वामी ने कहा है। वह श्रद्धा अलग है और '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह श्रद्धा अलग है। दोनों एक ही है। वह तो ज्ञान-श्रद्धान से कथन है। समझ में आया?

तत्त्वार्थश्रद्धान वह अशुद्धनय आता है न! धवल में आता है, ऐसा कि अशुद्धनय, अशुद्धतर उसमें आता है। हाँ, यह नय... तत्त्वार्थश्रद्धान वह अशुद्धनय का विषय है, ऐसा नहीं। यह तो निश्चय का विषय है। अकेले नौ तत्त्व के भेदवाला वह अशुद्धनय का विषय है। वह पर भेद है। समझ में आया? पण्डित भी गोते खाते हैं। नय तो आते नहीं, बहुतों को मैंने पूछा कि तत्त्वार्थश्रद्धान उमास्वामी ने कहा, वह कैसी श्रद्धा, तो कहे कि व्यवहार। तत्त्वार्थश्रद्धान है न? परन्तु व्यवहार नहीं, वह तो निश्चय है। व्यवहार से पर्यायभेद से कथन किया है। श्रद्धा तो सम्यक् निश्चय है। व्यवहारश्रद्धा का विषय समझे? व्यवहारमोक्षमार्ग, मोक्षशास्त्र, वह तो बन्ध का शास्त्र है। इतना अधिक फेरफार! पण्डितजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कौन सा? व्यवहार या निश्चय? तो कहे, व्यवहार। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : पुस्तक में प्रकाशित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशित है न और उसने पन्नालालजी ने। वह खोटी बात है। तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन निश्चय है। और उसका ज्ञान भी उसके बाद निश्चय सहित के श्रद्धावाले के ज्ञान का वर्णन किया है। और उसके चारित्र का वर्णन है। व्यवहार श्रद्धा तो राग है। रागवाले का ज्ञान सच्चा होगा? अकेले रागवाले का, उसका चारित्र होगा? यहाँ जो कहते हैं कि यह व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान जो कहा, वहाँ तो निश्चय है। परन्तु नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा का विषय पर है। यह उमास्वामी का कथन यह नहीं है। व्यवहार का नहीं। धन्नालालजी! हें?

मुमुक्षु : यह भेद का विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेद का विषय है। **भिन्न विषयवाले...** स्पष्ट अर्थ किया है, देखो न! व्यवहार श्रद्धा का विषय नौ पदार्थ है। भेदवाला, हों! **व्यवहारज्ञान का विषय अंग-पूर्व हैं और व्यवहारचारित्र का विषय आचारादिसूत्रकथित मुनि-आचार हैं।** भगवान ने कहे हुए यह वे। यह व्यवहार आचरण है। परन्तु इन तीनों का विषय आत्मा

से भिन्न है। आत्मा का विषय जो स्व है, निश्चय का। व्यवहार का विषय पर है। धवल आया? समझ में आया? ऐसे चारित्र द्वारा आत्मा को भिन्न बतलावे, ऐसे भेद द्वारा जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं। इस प्रकार के शुभराग के संस्कार वहाँ होते हैं। इस प्रकार ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं... इस जाति का अशुभराग नहीं और शुभराग के संस्कार वहाँ (होते हैं)। सच्चे देव यह हों, केवली वे देव हैं। गुरु वे वीतरागी निर्ग्रन्थ हैं। इत्यादि शुभराग के संस्कार वहाँ होते हैं। आरोपित होते जाते हैं न वहाँ? इसलिए वहाँ कहने में आता है कि यह शुभ है। ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मा में... अब इसके बाद बड़ी बात है। यह व्यवहार, इसका अर्थ आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८३, गाथा-१७२, वैशाख कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक -०२-०६-१९७०

और भिन्नविषयवाले श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र के द्वारा... है ? २५५ पृष्ठ है गुजराती। **ऐसे (-आत्मा से भिन्न जिसके विषय हैं ऐसे भेदरत्नत्रय द्वारा) जिसमें संस्कार आरोपित होते जाते हैं...** अर्थात् कि स्वभाव का अभेद साध्यसाधन तो है। स्वभाव शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका आश्रय लेकर निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है। वह पूर्ण साध्य ऐसी वीतरागदशा केवलज्ञान अनुभव साधन, वह दशा प्रगट हुई है। उसमें बीच में विकल्प जो रत्नत्रय के आते हैं, उसका विषय पर है, उसका विषय स्व नहीं। भेदरत्नत्रय जो विषय, भिन्न विषयवाले, इनके कारण संस्कार आरोपित होते जाते हैं। ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। शुभराग-विकल्प है, उसमें उसके कारण अशुभराग घटता है, ऐसे संस्कार हैं। निश्चय से तो स्वभाव के संस्कार स्व के आश्रय से पड़ते हैं।

ऐसे भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मा में... भिन्न साध्यसाधन के भाव द्वारा जिसका विषय देव-गुरु-शास्त्र, नौ तत्त्व हों, इन्द्रिय भिन्न है, ऐसे साधन द्वारा **आत्मा में—धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले,...** काठियावाड़ी भाषा स्पष्ट है इसमें। हें ? झींकवा में आते, झींकवुं क्या होगा ? पछाड़। पछाड़ करता है न ऐसे। धोवे तब ऐसे कपड़े को पछाड़ता है न ? उसने **धोबी द्वारा शिला की सतह पर पछाड़े जानेवाले,...** पछाड़ की जाती है। **निर्मल जल द्वारा भिगोए जानेवाले और क्षार (साबुन) लगाए जानेवाले मलिन वस्त्र की भाँति—थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** व्यवहार द्वारा ही थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करता है। समझ में आया ? निश्चय द्वारा तो दोनों का अभाव कहेंगे। ऐसा कहकर अब एकदम निश्चय में जाते हैं। **थोड़ी-थोड़ी विशुद्धि प्राप्त करके,...** इसका अर्थ किया है जरा। अमुक शैली का अर्थ किया है जरा।

जिस प्रकार धोबी पाषाणशिला, पानी और साबुन द्वारा मलिन वस्त्र की शुद्धि करता जाता है, उसी प्रकार प्राक्पदवीस्थित... प्रथम दशा में अर्थात् छठवीं भूमिका उसकी है। **ज्ञानी जीव भेदरत्नत्रय द्वारा अपने आत्मा में संस्कार को आरोपण करके...** नीचे (फुटनोट में)। इसका अर्थ। इसकी थोड़ी-थोड़ी शुद्धि करता जाता है, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। शुभभाव है, इसलिए अशुभ उपयोग घटता जाता है न!

वास्तव में तो निश्चय के आश्रय से घटता है। तथापि यहाँ शुभभाव से घटता है, ऐसा है न? मोक्ष अध्याय में। व्यवहार से घटता है, अशुभ घटता है, अभाव नहीं। अभाव तो स्वभाव के आश्रय से (होता है)। शुभ का साथ में भाव है, इतना वहाँ अशुभराग, अशुभ हो, तब स्व का आश्रय थोड़ा होता है। शुभ हो तब विशेष आश्रय होता है और अत्यन्त शुद्ध हो, तब तो अकेला आश्रय होता है। पण्डितजी! यह समझ में आया नहीं? नहीं। यह ठीक किया।

यहाँ कहते हैं कि अपने आत्मा में व्यवहार से संस्कार आरोपकर उसकी पूरी शुद्धि करता जाता है। यह व्यवहारनय कहने में आता है। **परमार्थ ऐसा है कि उस भेदरत्नत्रयवाले ज्ञानी जीव को...** अभेद तो है। परन्तु उसके साथ भेद भी शुभ विकल्प राग है। **शुभभावों के साथ जो शुद्धात्मस्वरूप का आंशिक आलम्बन वर्तता है, वही उग्र होते-होते विशेष शुद्धि करता जाता है। इसलिए वास्तव में तो, शुद्धात्मस्वरूप का आलम्बन करना ही शुद्धि प्रगट करने का साधन है और उस आलम्बन की उग्रता करना ही शुद्धि की वृद्धि करने का साधन है। साथ रहे हुए शुभभावों को शुद्धि की वृद्धि का साधन कहना, वह तो मात्र उपचार कथन है। शुद्धि की वृद्धि के उपचरितसाधनपने का आरोप भी उसी जीव के शुभभावों में आ सकता है कि जिस जीव ने शुद्धि की वृद्धि का यथार्थ साधन (—शुद्धात्मस्वरूप का यथोचित आलम्बन) प्रगट किया हो।**

शुद्धात्मस्वभाव का आश्रय लेकर ही शुद्धि का साधन प्रगट किया है, ऐसे जीव को शुभभाव में व्यवहार का आरोप दिया जा सकता है। जिसे अन्तर शुद्ध चैतन्य द्रव्य का आश्रय नहीं और अकेले शुभभाव में वर्तता है, उसे तो शुद्धि के साधन का आरोप व्यवहार से भी नहीं किया जा सकता। कहो, समझ में आया? **उसी अपने आत्मा को...** अब ऐसा। उसमें यह था। **भिन्नसाध्यसाधनभाववाले अपने आत्मा में,** था। **वही...** अब वापस।

अपने आत्मा को निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण,... राग का अभाव किया, स्वभाव में स्थिर हुआ, एकाग्र हुआ, अभेद हुआ, शान्ति-समाधि में आया। **निश्चयनय से भिन्नसाध्यसाधनभाव के अभाव के कारण, दर्शनज्ञानचारित्र**

का समाहितपना (अभेदपना)... एकरूपपना **जिसका रूप है।** वह भेदविकल्प था, वह छूट गया और आत्मा के अन्तर के अवलम्बन से अभेदरूप से रमता है। समाहित परम समाधि में रमता है। वह **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर की निवृत्ति के कारण...** लो! फिर जो विकल्प उठता है, वह क्रियाकाण्ड का राग है। वह सब क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा!

मुमुक्षु : बदल जाये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बदल गया। वहाँ रखा और यहाँ बदल गया, ऐसा कहते हैं। वहाँ भी रखा नहीं। बदल गया नहीं। उसे भिन्न रखने के लिये रखा था। यहाँ जरा कहा कि भिन्न को छोड़कर अभेद हो गया, ऐसा कहा है। समझ में आया? अपने सवेरे चलता है न साधन। निश्चय साधन तो अपना करण। राग छोड़कर स्वरूप में अभेद हो वह वास्तविक साधन है। साधन निश्चय का या आत्मा का अपने स्वभाव में साधन। भिन्न साध्यसाधन उसमें है नहीं। निश्चय से तो साधन साध्य से भिन्न नहीं हो सकता। समझ में आया? परन्तु एक व्यवहार है, उस भूमिका के योग्य। इतना ज्ञान कराने के लिये यह बात करनी है।

दर्शनज्ञानचारित्र का समाहितपना (अभेदपना) जिसका रूप है,... भेद जो रत्नत्रय के विकल्प हैं, वह क्रिया। **सकल क्रियाकाण्ड...** अब सब ले लिया। देव-गुरु-शास्त्र का विनय, भक्ति आदि सब क्रियाकाण्ड के विकल्प का आडम्बर है। भाषा ऐसी प्रयोग की है। आहाहा! निवृत्ति के कारण। ऐसे विकल्प व्यवहार के थे, जो जिसका विषय पर था। उनसे **निवृत्ति के कारण (—अभाव के कारण) जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है...** जो निस्तरंग—विकल्प के तरंग बिना का निर्विकल्प आनन्द के समाधि के भाववाला परमचैतन्यशाली है। देखो! परमचैतन्यशाली है। विकल्पों का अभाव व्यवहार का करके और अपने स्वरूप के स्थान समाधिरूप परिणमता है, वह परमचैतन्यशाली है। वह व्यवहार भाग्यशाली नहीं। यह परमचैतन्यशाली है। कहो, समझ में आया? वह व्यवहार का रत्नत्रय भाग्यशाली था, वह भी नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

अकेला भगवान आत्मा अपने ध्येय को पकड़कर स्वरूप में रमता है। अभेदपने को प्राप्त होता है। शान्ति और समाधि में रमता है, उसे निश्चय साधन कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! ऐसी बात है। आहाहा! **जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है...** ओहोहो! अतिशय आनन्द से। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प तो दुःखरूप था। असमाधि थी। यह निर्भर आनन्द है। विकल्प छूटकर आत्मा के अतिशय आनन्द में रमता है, वह निश्चयरत्नत्रय है। ऐसी बात सुनना कठिन पड़े, ऐसी है।

मुमुक्षु : शुरुआत में थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुरुआत कहाँ? शुरुआत तो आत्मा से की। शुरुआत परिणाम क्या हो, शुरुआत भी अकेले व्यवहार परिणाम होते हैं, ऐसा नहीं है। शुरुआत भी अन्तर स्वभाव के आश्रय से की है। निचली भूमिका में जरा भेदरत्नत्रय विकल्प है, बस इतना। शुरुआत भेदरत्नत्रय से की है, ऐसा नहीं। सेठी! वह जरा आया सही न, इसलिए कहे, भेदरत्नत्रय से शुरुआत की है, ऐसा नहीं है। शुरुआत तो आत्मा के शुद्ध अभेद चैतन्यमूर्ति का आश्रय लेकर शुरुआत भी निचली दशा में है, इसलिए उसे व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प पर विषयवाले प्रगट होते हैं। अब उसे छोड़कर, है तो सही निश्चय अन्दर। उसे छोड़कर **जो निस्तरंग परमचैतन्यशाली है तथा जो निर्भर आनन्द से समृद्ध है...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में अतिशय विशेष निर्भर आनन्द से समृद्धिवाला है। वह अतिशय आनन्द से समृद्धिवाला है, ऐसा आत्मा, आहाहा! मुनिदशा के विकल्पदशा जो छठवें को उल्लंघकर सातवें में आते हैं। समझ में आया?

निर्भर आनन्द से समृद्ध है ऐसे भगवान आत्मा में... देखो! विकल्प व्यवहार के थे, वह निचली भूमिका में हो, परन्तु वे तो वास्तव में साधन नहीं हैं। आरोपित साधन को संस्कार कहने में आया था। उसे छोड़कर भी जो भगवान आत्मा में अभेदरूप से रमे और आनन्द को अनुभव करते हैं। अतिशय आनन्द की समृद्धि द्वारा भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए, स्वरूप की विश्रान्ति रचते हैं। आहाहा! देखो! अन्दर आत्मा में स्थिर होते हैं, वह धर्म है। वह विश्रान्ति रचते हैं। उस राग में विश्रान्ति नहीं थी। जितना राग था, उतनी विश्रान्ति नहीं थी। हाँ, वे विश्रान्ति रचते हुए स्वरूप में-आनन्द में रमते हैं। वह वास्तव में मोक्ष का मार्ग है। भगवान आत्मा में विश्रान्ति रचते हुए, **अर्थात्**

दर्शनज्ञानचारित्र के ऐक्यस्वरूप, निर्विकल्प परमचैतन्यशाली... सबका अर्थ किया। **तथा भरपूर-आनन्दयुक्त...** वह निर्भर है न? **ऐसे भगवान आत्मा में अपने को स्थिर करते हुए...** विश्रान्ति का अर्थ स्थिर करते हुए, विश्रान्ति-स्वरूप में आनन्दधाम में रमते हैं, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

क्रमशः समरसीभाव समुत्पन्न होता जाता है... इसमें भी क्रम-क्रम से शुद्धि बढ़ती जाती होने से, समरसी समताभाव, वीतरागभाव समुत्पन्न होता जाता होने से पर्याय में, परम वीतरागभाव को प्राप्त करके, **परम अकषायभाव—वीतरागभाग को भाव को प्राप्त करके साक्षात् मोक्ष का अनुभव करते हैं।** लो! अत्यन्त रागरहित होकर वीतरागभाव होकर मोक्ष को अनुभव करते हैं। लो! ठेठ तक पहुँचाया है। एक ही प्रकार है। यह दूसरा तो बीच में आता है, उसका ज्ञान कराया है। क्योंकि ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है न? इसलिए एक दूसरा भाव है, ऐसा ही ज्ञान यहाँ उत्पन्न होता जाता है। इसलिए उसे बताया कि ऐसा साधन व्यवहार से कहा जाता है।

इसमें से अर्थ करे तो सब बहुत प्रकार के करते हैं... ऐसा है नहीं। साधन होने का नहीं था, साधन तो एक ही है। स्वभाव वीतराग स्वरूप आत्मा वही साधन है। प्रज्ञा, वह साधन है। विकल्प-फिकल्प व्यवहार, वह साधन है ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? ऐसा ही कहलाये न! तब नहीं है उसे कहना, इसका नाम व्यवहार। आहाहा! इसकी समृद्धि, उसका स्वभाव अनन्त-अनन्त ज्ञान-आनन्द के स्वभाव से भरपूर आत्मा, उसका साधन स्वभाव में ही है। उसका साधन पर है नहीं। समझ में आया? यहाँ साधन कहते है और वहाँ साधन का नकार करे तो विरुद्ध हुआ। किस अपेक्षा से कहते हैं, यह समझना चाहिए न? व्यवहार साधन अर्थात् कि नहीं है, परन्तु उसे उपचार से कहने में आया है। जैसे व्यवहार समकित व्यवहार, निश्चय समकित वह आत्मा के अनुभव की प्रतीति का नाम निश्चय समकित। परन्तु राग है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग और व्यवहार समकित, राग है वह व्यवहार समकित कहाँ है? वह तो चारित्र का दोष है। परन्तु यह निश्चय समकित के साथ में ऐसी नौ तत्त्व की श्रद्धा आदि होती है, इसलिए उसे आरोप करके समकित कहा जाता है।

वास्तव में तो व्यवहार समकित अर्थात् क्या? वह तो राग है। राग को व्यवहार समकित कहना अर्थात् क्या? चारित्रगुण की विकारी पर्याय है, उसे समकित कहना, इस प्रकार सब व्यवहार में डाला है। नहीं है, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? समझण में अन्तर हो वहाँ क्या? वस्तु... वस्तु ज्ञान चैतन्यशाली कहा न? भगवान चैतन्यशाली है, भाग्यशाली नहीं। आहाहा! भाग्यशाली तो पुण्यशाली, वह भाग्यशाली कहलाता है। व्यवहाररत्नत्रय वह भाग्य पुण्य है। आत्मा पुण्यशाली नहीं है। वह तो चैतन्यशाली है—अपना पुण्य है, इसलिए भाग्यशाली, वह भाग्यशाली है, उसकी अभी बात नहीं है। बाहर के पुण्यशाली की बात नहीं है। वह तो राग है, वह भाग्य है, राग है व्यवहाररत्नत्रय का। भाग्यशाली आत्मा नहीं। आत्मा तो चैतन्यशाली है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अकेला ज्ञानस्वभाव अविकारी वीतराग आत्मा का स्वभाव, बस उसमें आत्मा एकाकार हुआ, उस चैतन्यशाली ने वीतराग पर्याय उत्पन्न की। उस भाव द्वारा वीतरागता पूर्ण करके मुक्ति प्राप्त करता है। व्यवहार से मुक्ति पाता नहीं। यह अधिकार गाथा का कहा। गाथा, यह व्यवहार था न वह। वीतरागता थी न? वीतरागता से मुक्ति होती है। वीतरागता के साथ उसका व्यवहार अविरुद्धरूप से सुसंगत हो, उसकी यहाँ बात की। अब एकान्त व्यवहार और एकान्त निश्चय की दो बातें करेंगे।

मुमुक्षु : इसी जाति का उसे व्यवहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे होवे न, उसे हो, ऐसी परिणाम की जाति बतलाते हैं। ऐसी जाति का विकल्प आता है न! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उनका बहुमान, भक्ति, नौ तत्त्व की श्रद्धा का राग, शास्त्र का पठन-पाठन, स्वाध्याय ऐसा विकल्प है न! सब राग है न! विषय पर है। आता है न, होता है, उसका ज्ञान कराते हैं। वस्तु यह स्थिति नहीं है, धर्म का स्वरूप और मोक्ष के मार्ग का स्वरूप नहीं परन्तु बीच में आये बिना रहता नहीं। है तो यह बन्ध का स्वरूप। आहाहा! समझ में आया?

केवलीव्यवहारावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल... अकेले व्यवहार को माननेवाले, निश्चय स्वद्रव्य का आश्रय बिल्कुल नहीं, अभेदरत्नत्रय का साधन नहीं और अकेले भेदरत्नत्रय को साधन मानकर साध्य होगा, ऐसा मानता है।

समझ में आया? उसे आत्मा चिद्घन, आनन्दघनस्वरूप है, उसका आश्रय बिल्कुल नहीं है। स्वआश्रय में स्वविषय श्रद्धा, ज्ञान को बनाया ही नहीं, ऐसा जो अकेला व्यवहार साधन दया, दान, भक्ति आदि और उसका साध्य निर्मलदशा, ऐसा माननेवाले हैं, वे व्यवहार आलम्बित एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो न! इसमें यह छनावट की। साध्य है भिन्न निर्मल पर्याय, साधन है भिन्न राग। परन्तु यह राग से भिन्न साधन जो साध्य है, वह प्रगट होगा, ऐसा माननेवाले व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके कारण होगा? उसके कारण होगा? किसने कहा? क्या होगा? धूल! स्वद्रव्य का आश्रय करके जो शुद्धि प्रगटी है, वह शुद्धि ही साधन और पूर्णसाध्य निर्मल, उसके साथ व्यवहार ऐसा हो तो उसे भिन्न साधन और साध्य कहा जाता है। परन्तु जिसे अभिन्न साध्य-साधन बिल्कुल है ही नहीं, हो गया, उसे यह अकेला व्यवहार कहाँ से आया, व्यवहार से तुझे शुद्धि होगी, ऐसा कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। व्यवहार से भिन्न साध्य, राग व्यवहार है, उससे भिन्न साध्य निर्मल, वह भिन्न साध्य वह व्यवहार से कहाँ से होगा? यहाँ तो ऐसा सिद्ध करते हैं। संयोग क्या करे? धूल भी संयोग धर्म प्राप्त करायेंगे नहीं। ऐसा कहते हैं। चिमनभाई! यहाँ चले ऐसा नहीं यहाँ कोई। पोपाबाई का राज नहीं यहाँ। समझ में आया?

बाहर में रखेंगे निमित्त तो ऐसे अनन्त बार रखे, उसमें आत्मा को क्या? उसका लक्ष्य छोड़ना है, उसका आश्रय छोड़ना है, उसका अवलम्बन छोड़ना है, और स्व का अवलम्बन करना है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। इसके बिना लाख बाहर की व्यवहार की बात, उससे नहीं होता। समझ में आया? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ' आता है न छहढाला में? यह १७२ गाथा में से बहुत से निकालते हैं...! बहुत से १२वीं गाथा में से निकालते हैं, जाना हुआ प्रयोजनवान है। कहते हैं कि जिसे अभेद चैतन्य आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध ऐसा जिसने आश्रय लिया है, और वीतरागी पर्याय जिसे अपूर्ण प्रगट हुई है और वह पर्याय भिन्न साध्य जो है उससे; भिन्न अर्थात्

अलग पर्याय, है अभिन्न। उसी और उसी की जाति की, इसलिए अभिन्न। उस पर्याय में वह पर्याय नहीं। परन्तु पूर्ण पर्याय जो निर्मल होनी है, वह भी निर्मल है और उसके साधन भी निर्मल है, इसलिए उसे अभेद साधन-साध्य कहा गया है।

ऐसे जीव को व्यवहार का विकल्प होता है, उसे भिन्न साध्य-साधन का आरोप करके व्यवहार कहा जाता है। परन्तु जिसे अभिन्न साध्य-साधन का भाव प्रगट हुआ ही नहीं... समझ में आया? जिसे आत्मा चैतन्य आनन्दधाम, आनन्द की समृद्धि का सम्पदा का धाम, ऐसी अन्तरदशा की वीतरागी पर्याय आनन्द और शान्ति की स्वद्रव्य के आश्रय से जरा भी प्रगट नहीं हुई, इसलिए उसे भिन्न साधन जो राग है, उससे मुझे पूर्ण निर्मल साध्य होगा, ऐसी जिसकी मान्यता है, वह केवल व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : अभी तक क्या होता था?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मिथ्यात्व... केवल व्यवहारावलम्बी, आगे कहेंगे। वनस्पति होगा। कहेंगे न आगे। है या नहीं व्यवहार का फल? परम्परा जो देवलोक आदि परम्परा द्वारा बहुत दीर्घ संसार सागर में भ्रमता है, वहाँ परम्परा गया इसे। निगोद में जायेगा धीरे-धीरे। आहाहा! कहो, समझ में आया? पहली यह बात की किसकी? पहली बात अकेले पाठ की की थी। पहली हों! एकदम शुरुआत में। **भवसागर को पार उतरकर, शुद्धस्वरूप परमामृतसमुद्र को अवगाह कर, शीघ्र निर्वाण को प्राप्त करता है।** पहली गाथा का अर्थ किया था उसमें व्यवहार भी नहीं और कुछ नहीं। अकेले वीतरागभाव से वीतरागभाव पूर्ण प्रगट (होता है), इतनी बात साधारण। फिर बात निश्चय के साथ व्यवहार ऐसा होता है, उसकी बात की, तथापि वह भी आगे जाकर व्यवहार को छोड़कर निश्चय में अभेद होता है, तब वह वीतरागभाव को प्राप्त होता है।

यहाँ तीसरी बात लेते हैं। **केवलव्यवहारावलम्बी...** जिसे आत्मा दृष्टि में आया ही नहीं, दृष्टि में लिया ही नहीं, जिसकी दृष्टि अकेले व्यवहार पर ही पड़ी है। दया, दान, भक्ति, विनय, बात यह करके सब स्पष्टीकरण करेंगे। समझ में आया? हीराभाई! अकेले व्यवहार गर्म पानी पीना और यह करना और अपवास करना और यह करना, यात्रा करना और भक्ति करना, पूजा करना और दान करना, अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड

जो शुभराग है, उसके ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह **केवलव्यवहारावलम्बी...** उसे निश्चय का आलम्बन जरा भी है नहीं। केवल शब्द प्रयोग किया है या नहीं? केवल व्यवहारावलम्बी। लो!

मुमुक्षु : इसमें लिया नहीं। आपने लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? टीका में है न? केवल '**व्यवहारावलम्बिनस्ते खलु!**

मुमुक्षु : परन्तु जो, वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं यह परन्तु नहीं, यह भले इसकी बात नहीं। यहाँ से ही कहा है। जो केवल व्यवहारावलम्बी हैं, ऐसा है न? वहाँ है न पाठ? **अथ ये तु केवल व्यवहारावलम्बिनस्ते खलु!** यह केवल व्यवहारवाले जिन्हें द्रव्य के आश्रय का निश्चय जरा भी नहीं। अकेले व्यवहारवाले। पहले निश्चयसहित के व्यवहारवाले कहे थे। यह अकेले व्यवहारवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? **(अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है :—** जो केवल व्यवहार, केवल व्यवहार को अवलम्बन करनेवाले, बस।

वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा... देखो! वे तो भिन्न राग की मन्दता की क्रिया व्रत, तप, दया, दान, भक्ति, यात्रा और पूजा सब, इस भिन्न साधन का अवलोकन करे, इससे हमारी निर्मलता भविष्य में होगी, यह बात एकदम मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। आहाहा! सब उसकी मिथ्या हो, वह सब मिथ्या है। खोटा रुपया पूरा, सोना का लाये हों तो भी खोटा। पीतल का रुपया लेकर कहे कि सोने का है। खोटा, जड़ दे नीचे। चलेगा नहीं साहूकार की दुकान में। सोने का चलता है या नहीं? आहाहा! यह अब नहीं होता हो तो उसे खोटा सोना का। आहाहा!

कहते हैं, **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त खेद पाते हुए,...** महाव्रत पालना, भक्ति करना, दया-दान करना, देव-शास्त्र-गुरु का विनय करना। इस राग में अत्यन्त खेद है। आहाहा! ऐ सेठी! जयपुर में नहीं सेठ को। वहाँ सुना नहीं था किसी दिन, इसलिए पड़े हैं न! लड़के ने कहा, बाबूभाई ने... ऐसा वहाँ भटक मरोगे। कहे न, ऐसा तो कहे न। ...आओ और सुनो यहाँ। सेठी! बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो, एक बार सुनो तो सही। आहाहा! मार्ग ऐसा है परन्तु लोगों को अन्तर में उसकी रुचि होती नहीं। ऐसे बाहर ऐसा कहते हैं। बाहर में भ्रमे, भटक... भटक... भटक (किया करे)। कहते हैं, **भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा...** उसका ज्ञान ही वहाँ रुका है, ऐसा कहते हैं। वह **अत्यन्त खेद पाते हुए,...** वह व्यवहार क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति में खेद है, अकेला खेद है। राग है, दु:ख है। आहाहा! शान्तिभाई! वह अत्यन्त खेद पाता है वहाँ, हों!

मुमुक्षु : ऐसा भी कहाँ था वहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी कहाँ था? अज्ञान है न वहाँ। अज्ञानी की बात है न? है दु:ख, उसे मानता है सुख। बहुत अच्छा किया... **वास्तव में साध्य और साधन अभिन्न होते हैं।** वास्तव में तो निर्मल पर्याय अधूरी साधन और पूर्ण निर्मल पर्याय साध्य। जहाँ साध्य-साधन भिन्न कहने में आते हैं, वहाँ **यह सत्यार्थ निरूपण नहीं है...** यह सच्चा कथन नहीं है। **किन्तु व्यवहारनय द्वारा उपचरित निरूपण किया है....** ऐसा समझना। उपचरित अर्थात् खोटा। खोटा कहो, उपचरित कहो, असत्यार्थ कहो, अभूतार्थ कहो, वह तो असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : आप तो झूठा, ऐसा कहो, पण्डितजी ने ऐसा शब्द नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा में आना चाहिए न? मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा लिखा है,... नहीं, उसका उपचार करके व्यवहार कहने में आता है। बाकी तो अभूतार्थ है। अभूतार्थ कहा है। अभूतार्थ कहो या असत्यार्थ कहो या झूठा कहो, यह व्याख्या है। 'व्यवहारो अभूयत्थो' असत्यार्थ अर्थात् झूठा। ऐ वजुभाई! अभूयत्थो अर्थात् क्या? सब अर्थ किये हैं। अभूतार्थ, असत्यार्थ, अविद्यमान। सबके अर्थ किये हैं, ११वीं गाथा में। (समयसार की) ११वीं गाथा में व्यवहार के अर्थ किये हैं। अविद्यमान, असत्यार्थ, अभूतार्थ तीनों किये हैं। किस अपेक्षा? त्रिकाल की अपेक्षा से। समझ में आया? वास्तविक मोक्ष का मार्ग नहीं। उसे कहना वह झूठा है। आहाहा!

कहते हैं, **केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते**

हुए... यह तो व्यवहार करते हैं और इसमें से धीरे-धीरे निश्चय होगा, शुद्धता होगी। व्यवहार में शुद्धता का अंश रहा है, ऐसा कहते थे। व्यवहार करते हुए उसमें शुद्धता का अंश है। धूल भी शुद्धता का अंश नहीं। व्यवहार में शुद्धता का अंश कहाँ से होगा ? वह तो अशुद्ध है। केवल व्यवहारावलम्बी जीव, आहाहा! अभी यह सब चलता है। सम्प्रदाय की दृष्टि में जिसने यह तत्त्व का सुना नहीं, उसे ऐसा चलता है। **केवलव्यवहारावलम्बी जीव इस बात की गहराई से श्रद्धा न करते हुए अर्थात् 'वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा'...** लो! विशुद्धि शुभभाव से कर्म की निर्जरा होती है और उसमें से उसके फलरूप शुद्धि होती है। ऐसा अज्ञानी मानते हैं। समझ में आया ? आहाहा! **'वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा' ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए निरन्तर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं...**

मुमुक्षु : फायदे में खेद!

पूज्य गुरुदेवश्री : खेद। फायदा कहाँ था ? क्लेश, खेद, दु:ख अर्थात् चंचलता इतने शब्द इसे लागू किये। खेद ही है। कितने बोल लिखे हैं। अपने आत्मधर्म में एक बार आ गये हैं। असत्यार्थ के, अभूतार्थ के बहुत सब आये थे एक बार। बहुत बोल आये थे। आहाहा! लिखे थे और फिर दिये थे। **वास्तव में शुभभावरूप साधन से ही शुद्धभावरूप साध्य प्राप्त होगा' ऐसी श्रद्धा का गहराई में सेवन करते हुए निरन्तर अत्यन्त खेद प्राप्त करते हैं।** पहली और चौथी फुटनोट पहले आ गया है, उसमें देख लेना।

देखो! आता है न। वह वीरसेनस्वामी में। विशुद्धि। विशुद्धि किसे ? विशुद्धि के भाव में निर्जरा, वह तो शुद्धि का लक्ष्य हुआ है। शुद्धि का लक्ष्य हुआ है, इसलिए विशुद्धभाव के स्थान में निर्जरा होती है। विशुद्धभाव तो शुभभाव है। शुभभाव से निर्जरा होती होगी ? समझ में आया ? बड़ा लेख आया है न तुम्हारे मुम्बई से। कान्तिलाल का बड़ा लेख आया है। एकदम उल्टा। दृष्टि उल्टी। ... यहाँ था यहाँ तक, धीरे-धीरे मक्खन चुपड़ता था। फिर एकदम दृष्टि उल्टी हो गयी। एकदम दृष्टि उल्टी। आहाहा! ऐसे लेख। लोगों को बेचारों को खबर नहीं होती। देखो! विशुद्धभाव शुभ है। शुभ से निर्जरा होती है और शुद्धि तो फिर कर्मक्षय का फल है।

यहाँ कहते हैं कि शुभभाव का नाश होकर शुद्धि आत्मा के आश्रय से हो, वह शुद्धि है। शुभभाव से शुद्धि बिल्कुल नहीं होती। शुभभाव से निर्जरा भी नहीं होती। शुभभाव से तो बन्ध होता है। उदयभाव है, क्या हो? जगत को ऐसा मार डाला है न! व्यवहार का आलम्बन... ऐई! बड़ी भूल। नौ तत्त्व की भूल। आहाहा! भिन्नसाध्यसाधनभाव के अवलोकन द्वारा निरन्तर अत्यन्त खेद पाते हुए, राग की मन्दता की क्रिया करो, यह क्रिया करो, यह क्रिया करो, व्रत पालो, तपस्या करो, नियम लो और वृत्ति को काबू में रखो शुभभावरूपी, ऐसा। यही साधन है और आगे बढ़ायेगा।

कहते हैं कि अत्यन्त खेद, दुःखी है बेचारे मिथ्यादृष्टि। ऐसा कहते हैं। ऐ दीपचन्दजी! दीपचन्दजी ने प्रश्न किया था अभी। किया था या नहीं? वह तो समझने को तो सब प्रश्न होते हैं... प्रश्न किया था इन्होंने। राग ऐसे होता है। करते-करते ऐसा होता है। पहला तो यह व्यवहार अच्छा करे तो आगे हो न?

मुमुक्षु : परन्तु अच्छा व्यवहार कहना किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह पंच महाव्रत पाले, दया, दान, समिति, गुप्ति सब, व्यवहार पाले। यह तो है ही कहाँ इसके पास अभी। यह तो व्यवहार जिसे शुद्ध ऐसा हो शुभ कि अन्दर राग की मन्दता शुक्ललेश्या के भाव, तो भी उसे देखनेवाले अन्तर खेद पानेवाले हैं। उन्हें धर्म अंश भी नहीं है, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? **खेद पाते हुए, पुनः-पुनः धर्मादि के श्रद्धानरूप अध्यवासन में उनका चित्त लगता रहने से,...** देखो! भाषा।... धर्म छह द्रव्य। धर्मास्ति है और यह अधर्मास्ति है और आकाश है और यह काल है और यह पुद्गल है और यह परमाणु है तथा यह स्कन्ध है।

मुमुक्षु : भगवान ने कहे हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने कहे हैं अर्थात् क्या परन्तु? वह तो षट्द्रव्य है। षट्द्रव्य के विचार में रुकना, वह तो विकल्प है। आहाहा! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, ऐसे अध्यवसान में इस श्रद्धा के विकल्प में एकाकार है। **उनका चित्त लगता रहने से,...** चित्त वहाँ लगा करे। भगवान ने छह द्रव्य कहे हैं, भगवान ने नौ तत्त्व की श्रद्धा, परन्तु वह तो परद्रव्य के झुकाववाला तो राग है। समझ में

आया? इसे ही साधन मानता है। अपने यह छह द्रव्य की श्रद्धा करते हैं, वह बराबर, नौ तत्त्व की श्रद्धा करते हैं, इस साधन से अन्दर निश्चय साध्य होगा। निर्मल पर्याय प्रगट होगी। यह ले, इसलिए होगा धीरे-धीरे। मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है न कि ऐसे संस्कार होंगे तो उसे किसी समय अच्छे निमित्त मिलेंगे, धर्म प्राप्त करना हो तो। उसे प्राप्त करना हो तो पाता है, ऐसा है न वहाँ? यह निकाले अन्दर से। आहाहा! ऐ जेठाभाई! इसमें तुम्हारा प्रश्न कहाँ, इसमें सब लिखा हुआ है, जवाब क्या दे सब? प्रश्न निकाले थे न भाई ने। ५० प्रश्न, कितने थे? पचास। आहाहा! सब प्रकार के निकाले न? कोई इसमें से जवाब दे और मिले तो अपने बदलना मिटे। श्वेताम्बर में से यदि मिल जाये तो अपने को दिगम्बर में जाना मिटे, ऐसा था।

मुमुक्षु : जो काम करना, उसे सावधानी से करना चाहिए न!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! परन्तु सावधानी अर्थात् क्या? ...है या नहीं अपने में यह बात। है या नहीं। ५० प्रश्न निकाले थे। ऐई!

यहाँ कहते हैं केवल व्यवहारावलम्बी, निश्चय का स्वद्रव्य का आश्रय और ध्येय जरा भी नहीं। अकेले धर्मास्तिक छह द्रव्य की श्रद्धा में चित्त को रोकता है। वह छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, ऐसे अध्यवसान। देखो भाषा ऐसी प्रयोग की है। (अध्यवसान अर्थात्) एकत्वबुद्धि है। उसमें एकत्वबुद्धि है। जीव तो निकाला नहीं। **द्रव्य का आश्रय लेकर उस विकल्प को भिन्न तो किया नहीं।** समझ में आया? आहाहा! उनका चित्त, व्यवहारावलम्बी का चित्त लगा करता, वहीं का वहीं घूमा करता है, कहते हैं। बारम्बार यह राग, यह श्रद्धा की, छह द्रव्य की की। कर्मजनित आत्मा, उसके परमाणु ऐसे होते हैं और उसे यह होता है और उसका ऐसा होता है, यह सब व्यवहारावलम्बी में मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं सब। आहाहा! कठिन काम! कर्मग्रन्थ का बहुत अभ्यास, अकेला विकल्प का। समझ में आया?

बहुत श्रुत के (द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के जाल... लो! वह श्रद्धा में था। यह अब ज्ञान में। पुष्कल द्रव्यश्रुत के संस्कार। आहाहा! इस शास्त्र का पठन..... लगता है। आत्मा ज्ञायकमूर्ति का आश्रय

लिये बिना केवल शास्त्र के अभ्यास के संस्कार से उठते विचित्र विकल्पों का जाल है यह सब। आहाहा! ऐई! सुजानमलजी! शास्त्र... शास्त्र... शास्त्र। पण्डितों का संसार शास्त्र। लिखा है न! इस शास्त्र में ऐसा कहा है। शास्त्र का पढ़ना सवेरे से शाम तक पृष्ठ फिराया करे, पृष्ठ फिराया करे। वहाँ चित्त को रोके।

यहाँ तो कहते हैं कि उसे तो विकल्प का जाल **उनकी चैतन्यवृत्ति चित्त-विचित्र होती है,...** आहाहा! मलिनता होती है, ऐसा कहते हैं। शास्त्र के पठन में चित्त को रोकने से पर से अकेला वहाँ, अज्ञानी पर्याय निर्मल, उसमें मलिन होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे कथन-वीतरागी सन्त के अतिरिक्त हो नहीं सकते। समझ में आया? देखो! आहाहा! मेरा मन जाता है, परन्तु वह विकल्प है, कहते हैं। टीका करने में मेरा मन जाता है, परन्तु हमारा आशय द्रव्य का है, उस भूमिका में यह है।

यह तो अकेले विकल्प के जाल में रुकता है, अकेले शास्त्र के द्रव्यश्रुत का अभ्यास, भावश्रुत अन्दर क्या है, द्रव्य के आश्रय से कैसे होता है, यह कुछ खबर नहीं। आहाहा! यह सब रटा हुआ बोलता है इसमें। सुजानमलजी!

मुमुक्षु : बरोबर। मर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गये नहीं जीवित हुए, ऐसा है। आहाहा! कहते हैं कि केवलव्यवहारावलम्बी पुष्कल श्रुत, ओहोहो! स्वाध्याय... स्वाध्याय... स्वाध्याय। शास्त्र के पन्ने फिराया ही करे। **(द्रव्यश्रुत के) संस्कारों से उठनेवाले विचित्र (अनेक प्रकार के) विकल्पों के...** अनेक प्रकार के विकल्पों का जाल। शुभ भले हो शुभ, परन्तु वह विकल्प जाल है, पुण्यबन्धन का कारण है, उसे साधन मानकर और उसमें से साधन को निर्मल होगा, ऐसे केवलव्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टियों की यह दशा है। आहाहा! ऐसी बात तो वीतरागी सन्त के अतिरिक्त कोई कहता नहीं। आहाहा! दिगम्बर मुनि सब वीतरागी मुनि हैं। दिगम्बर सन्त वीतरागी सन्त हैं। आहाहा! उनकी कथन पद्धति अलग प्रकार की है। वस्तु स्वरूप की स्थिति। समझ में आया? वीतरागी सन्तों ने, आहाहा! अरे! भाई! स्वद्रव्य का बिल्कुल आश्रय अवलम्बन, आधार, ध्येय नहीं और अकेले व्यवहार के शास्त्र में पठन में विकल्प के जाल में रुके हैं। अत्यन्त खेद है। यह खेद है, कहते हैं। आहाहा! वह कहता है कि स्वाध्याय, वह निर्जरा है। कौन सी स्वाध्याय?

मुमुक्षु : स्वाध्याय परम तपः

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाध्याय परम तपः हं... स्वाध्याय में रुक गया, वह स्वाध्याय नहीं। स्व-अध्याय। स्वभाव का अध्याय अन्तर एकाग्र होना, वह निर्जरा का कारण है। शान्तिभाई! आहाहा! भाग्यशाली है न... नरम व्यक्ति है। नरम है। कोमल व्यक्ति है। अरे! यह बात जिसे रुचना चाहिए पहले। बराबर। बिल्कुल पर के आश्रय का विकल्प, वह सुख का कारण, साध्य का कारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... इस बात में जरा भी अन्तर नहीं। लाख शास्त्र वाँचन करे और पढ़े, वह तो परसन्मुख का झुकाव है। समझ में आया? भावश्रुतज्ञान जहाँ द्रव्य का आश्रय होकर, जो ज्ञान की पर्याय भले थोड़ी हो, जो स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई, वह श्रुतकेवली है। आहाहा! श्रुतकेवल... है। यह केवलव्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! सन्त ऐसी बात करते हैं। यह बात अन्यत्र कहीं श्वेताम्बर के पन्थ में, पक्ष में इस बात की गन्ध नहीं। क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे लिए तो आप सन्त हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है वहाँ। भगवान आत्मा वीतरागस्वभाव की मूर्ति प्रभु! उसमें राग का अवलम्बन है, उसके बदले वीतरागस्वभाव का बिल्कुल आश्रय और अवलम्बन लिये बिना अज्ञानी उस व्यवहारावलम्बन में लवलीन है। वह अत्यन्त खेद-दु:खी है। अत्यन्त खेद पाता है। क्लेश को पाता है। आहाहा! समझ में आया? पुष्कल श्रुत के संस्कार से उठते, ओहोहो! कितना है यह। उसमें बारम्बार धर्मादि श्रद्धान के अध्यवसान में रुकते हुए, यहाँ **बहुत श्रुत के संस्कारों से उठनेवाले...** द्रव्यश्रुत का बारम्बार उस ओर का झुकाव। भगवान आत्मा पर के झुकाव के विकल्परहित, उसके स्वभाव का आश्रय और संस्कार बिल्कुल नहीं। अकेले द्रव्यश्रुत के संस्कार से उठते, देखो! संस्कार से उठते विकल्प उठता है। वहाँ कहाँ निर्विकल्पता हो, ऐसा कहना है। आहाहा! वह भी **विचित्र विकल्पों के जाल...** आहाहा! **द्वारा उनकी चैतन्यवृत्ति...** उसके द्वारा उनकी चैतन्य की निर्मल परिणति। चैतन्यवृत्ति चित्र-विचित्र

होती होने से, वह विकारी होती है। आहाहा! समझ में आया? **बहुत श्रुत के संस्कारों से उठनेवाले...** उसमें बारम्बार वहाँ जाती है। **होती होने से...** दो बोल हुए।

तीसरा। वह श्रद्धा का था, ज्ञान का। अब चारित्र का। **समस्त यति-आचार के समुदायरूप तप में प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल में वे अचलित रहते हैं...** धमाल। आहाहा! लगा करता होगा... धमाल। दया ऐसे पालना, व्रत ऐसे पालना, अहिंसा ऐसे और सत् ऐसे और अचौर्य ऐसे, ब्रह्मचर्य ऐसे तथा परिग्रह रहित ऐसे। दिगम्बर नग्न दशा ऐसे रखना, समिति ऐसे रखना व्यवहार। धमाल, राग की क्रिया की धमाल है। आहाहा! समस्त यति-आचार। जितने मुनि के व्यवहार आचार हैं। व्यवहार ज्ञानाचार, व्यवहार दर्शनाचार, व्यवहार चारित्राचार, व्यवहार तपाचार, वीर्याचार। यह सब उसका समुदाय तप में प्रवर्तन ऐसी व्यवहार क्रिया में, व्यवहार चारित्र में, उस चारित्र को यहाँ तप कहा। व्यवहार मुनिपना, उसके प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड, क्रिया में-राग की क्रिया है सब। आहाहा! उसमें धमाल में वे अचलित, उसमें चलित नहीं ऐसे हैं। आहाहा!

पूरे दिन धमाल। देखो! अब यह आठ महीने शान्ति। धमाल बन्द। धमाल वह तो तुम्हारे। अमुक, अमुक, हो, हा। धर्म, धर्म। मिथ्यात्व, मिथ्यात्व। ऐई! बात तो ऐसी है भाई! ऐई! यह तो पूजा, आठ दिन की करेंगे न? महावीर की नहीं? हाँ... शान्तिस्नात्र की। बड़े प्रमाण में करे न? आहाहा! भगवान चैतन्यद्रव्य का आश्रय तो बिल्कुल नहीं और अकेला यह क्रियाकाण्ड, यह तो साधारण है। यह तो दिगम्बर मुनि की, आचार्य की बात है, हों! दिगम्बर मुनि की। यह तो उनका (श्वेताम्बर का) व्यवहार भी सब खोटा है। आहाहा! बहुत कठिन पड़े! दुःखी हो बेचारे, हों! ऐसा सुनकर।

वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, वहाँ क्या हो? जैसा श्रद्धा का स्वरूप है, वह न बतावे तो श्रद्धा टले किस प्रकार? वस्तु का स्वरूप तो ऐसा है। किसी व्यक्ति को दुःख हो, यह बात कुछ है नहीं। विरुद्ध श्रद्धा है, तत्त्व की विपरीत श्रद्धा है। उसकी बात उसे न समझावे तो विपरीत श्रद्धा छोड़े किस प्रकार? उसकी विपरीत श्रद्धा जिसे हो, वह दुःखी होता है, अरे! हमारा मार्ग खोटा सिद्ध करते हैं। संसार में ऐसी कौन सी चीज़ है कि सबको समान लगे? कल मैंने कहा नहीं था? ऐसा कौन सा उपदेश है कि सबको चैन पड़े। किसी को तो अन्दर खटकेगा ही। क्या हो? ऐसी व्याख्या करे कि मदिरा

खराब है, पीना नहीं। तो शराब के बेचनेवाले को दु:ख होगा। हमारे ग्राहक रुक जायेंगे। ऐसा पका कहाँ से ? यह वाणी कौन ? आहाहा ! समझ में आया या नहीं ? ऐई माणिकलाल ! दु:खी हो तो क्या करना ? ऐसा कहते हैं। और सच्चा-खोटा परखने की बात करे तो ठग दु:खी होता है। अरे ! यह तो सब खुला कर देते हैं। हमारा धन्धा रुक जायेगा।

यह दृष्टान्त उसमें दिये हैं, हों ! मोक्षमार्गप्रकाशक में। बहुत सरस ! मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमलजी ! आहाहा ! कितने ही उन्हें मूर्ख ठहराते हैं। अरे ! भगवान ! क्या करता है प्रभु ! तेरी जाति का क्या करता है भाई ! कोई बड़ा हो अच्छा, वह तुझे सुहाता नहीं। ऐसा कि और इस गृहस्थाश्रम में ऐसा बड़ा चतुर हुआ ? ऐसा। अरे भगवान ! गृहस्थाश्रम में समकिती होता है, इसलिए चतुर ही होता है। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में मोक्षमार्गी होता है। त्यागी हो वह उन्मार्गी होता है। आया न रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। रत्नकरण्ड श्रावकाचार न ! '**गृहस्थो मोखमग्गो**' गृहस्थ में हो परन्तु मोक्षमार्गी होता है समकिती। और अणगार भी '**मोही**' अणगार '**गृहस्थो मोखमग्गो**' आहाहा ! भाषा भी कैसी प्रयोग की है। स्वयं आचार्य हैं, हों ! तथापि कहते हैं कि विकल्प उसे होता है परन्तु उससे मुक्त है। आहाहा !

समस्त यति-आचार... जितना व्यवहार विकल्प की क्रियायें, व्यवहारनय की शास्त्र में कही। आहाहा ! उनके समुदाय से, सब क्रियाकाण्ड का समुदाय, **ऐसे तप में,...** व्यवहार तप में अर्थात् व्यवहार क्रिया में। **प्रवर्तनरूप कर्मकाण्ड की धमाल में वे अचलित रहते हैं...** लो ! ठीक। यह तीन बातें ली। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अब **कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं,...** ऐसा देखो ! क्योंकि दृष्टि अखण्डरूप से द्रव्य के ऊपर तो नहीं, इसलिए कहीं तो वहाँ करने का है। कभी छह द्रव्य की श्रद्धा की रुचि करता है। **किसी विषय की रुचि करते हैं,...** कहीं रुचि करता है। आहाहा ! कभी शब्द प्रयोग किया है। क्योंकि निरन्तर तो है नहीं। समझ में आया ?

स्वभाव का आश्रय नित्य जो है, उसका आश्रय नहीं तो नित्य तो रुचि है नहीं। कभी ऐसा कि, ओहोहो ! भगवान वाह प्रभु वाह ! तेरा मार्ग वाह ! ऐसी रुचि करे अज्ञानी। केवलव्यवहारावलम्बी, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! **कभी किसी को (किसी विषय की) रुचि करते हैं,...** आहाहा ! क्या भगवान का समवसरण ! क्या भगवान का

अतिशय! भगवान का केवलज्ञान! आहाहा! ऐसा करके कहीं रुचि करे। परन्तु वह सब विकल्प की रुचि है। आहाहा! कभी किसी के (किसी बावत के) विकल्प करता है, समझ में आया? यह ज्ञान में लेना इसे। **कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प...** यह ज्ञान में लेना इसे। ज्ञान में विकल्प करे, इसका यहाँ है, चरणानुयोग में ऐसा है, करणानुयोग में ऐसा है, धवल में ऐसा है। चरणानुयोग का समकित अलग है, दशा का समकित अलग है। चार अनुयोग के चार समकित। अररर! कुकर्म है न! ऐसे व्यवहार के अवलम्बन में पड़े हैं, (वे) केवलव्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! उसे ऐसा कि यह व्रत और तप करूँगा न, शुभभाव, उससे शुद्धि होगी। यह उसका कथन है। भिन्नसाध्यसाधन माननेवाले मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : भिन्नसाध्यसाधनवाले व्यवहार से निश्चय मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उससे निश्चय मानते हैं। उससे मुझे साध्य निर्मल दशा होगी। भिन्न राग से भिन्न साध्य निर्मल होगा। ऐसा माननेवाले का यह कथन है। व्यवहार की क्रियायें करे, तपस्या करे, अपवास करे। खूब शरीर जीर्ण कर डाले। भाई! व्यवहार में से शुद्धि होगी नहीं।

मुमुक्षु : शरीर में से तो टुकड़े हो जाना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, शरीर कहाँ? शरीर तो जड़ है। क्या निकाले? **कभी किसी के (किसी विषय के) विकल्प करते हैं...** लो! और कभी कोई आचरण करता है। कभी किसी समय ऐसे आचरण तप के, अपवास के, दो-चार-दस अपवास कर डाले। कभी, निरन्तर तो दृष्टि है नहीं द्रव्य पर। समकित तो है नहीं, ज्ञान का आश्रय तो है नहीं और कभी-कभी ऐसे विकल्प करके माने कि ऐसे साधन से हमको हमारा साध्य निर्मल होगा। हमको धर्म होगा। उस केवलव्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि की यह बात है। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८४, गाथा-१७२, ज्येष्ठ शुक्ल १, बुधवार, दिनांक -०४-०६-१९७०

पंचास्तिकाय, १७२ गाथा। क्या अधिकार चलता है यह? व्यवहारावलम्बी अर्थात् कि जिसे यह आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प और राग से भिन्न है और चैतन्य के ज्ञानानन्दस्वभाव से अभिन्न है, ऐसा अन्तर निश्चय भान हुआ नहीं। जो होना चाहिए, वह हुआ नहीं। और उस आत्मा के ज्ञान बिना, आत्मा की दृष्टि और अनुभव बिना अकेले व्यवहार क्रियाकाण्ड में, उसका कारण मानता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया? वनस्पति में जायेगा, ऐसा आगे कहेंगे। निगोद जायेगा निगोद में। आहाहा!

आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प जो राग है, उनसे भिन्न है, पृथक् है, ऐसा जिसे अन्तर में स्व के आश्रय का ज्ञान, स्व के आश्रय की प्रतीति, स्व के आश्रय की लीनता, उसका ज्ञान-दर्शन-चारित्र नहीं। मात्र व्यवहार क्रियाकाण्ड से हमारा कल्याण होगा, ऐसा मानता है। यहाँ तक आया। देखो! **दर्शनाचरण के लिए—वे...** समकित के आचरण के लिये व्यवहार के शुभराग के करनेवाले **कदाचित् प्रशमित होते हैं,...** क्योंकि निरन्तर दर्शन तो है नहीं। निरन्तर जो शुद्ध चैतन्यद्रव्य की प्रतीति और ज्ञेय का ज्ञान—स्वज्ञेय का ज्ञान, ऐसा निरन्तर तो है नहीं। इसलिए व्यवहार में कदाचित् राग की मन्दता और शुभयोग का पुरुषार्थ करे, उसमें ऐसा माने कि हमको यह उपशान्ति प्रशम हुई, शान्ति हुई, वह धर्म है। समझ में आया?

कदाचित् प्रशमित होते हैं,... राग की मन्दता बहुत, इसलिए ऐसा लगता है कि हम प्रशम में हैं। समकित का लक्षण वह प्रशम है, वह हमें है। ऐसा वह अज्ञानी मानता है। समझ में आया? परन्तु वह प्रशम है, वह राग का शुभभाव है, वह धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप का आश्रय लेकर जो निर्मलता प्रगट हो, वह धर्म और वह मुक्ति का मार्ग है। वह तो है नहीं। यह क्रियाकाण्ड करके इससे मेरा कल्याण होगा, वह मिथ्यादृष्टि जीवों की व्याख्या यह है। कदाचित् प्रशमित होता है, कदाचित् है न वहाँ? एकरूप की शान्ति तो है नहीं। आहाहा! वस्तु के स्वभाव का भान नहीं, इसलिए अनन्तानुबन्धी के अभाव की जो शान्ति है, वह तो है नहीं। यह कषाय की मन्दता करके हम प्रशम हैं। समकित का लक्षण है यह। ऐसे इस व्यवहार लक्षण को

धर्म मानता है। **कदाचित् संवेग को प्राप्त होते हैं,...** ओहो! यह संसार ऐसा है। संसार ऐसा है, ऐसे घड़ीक में संवेग। यह संवेग वैराग्य, वह भी कदाचित् राग की मन्दता के वेग में उदास हो जाता है। यह सब, यह नहीं, यह नहीं। ऐसे आत्मा अन्दर राग बिना की विकल्प की क्रियारहित है। उसकी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान नहीं, वह इस संवेग के धारक शुभयोगी, शुभयोगी शुभ के करनेवाले हैं, वह मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसा करे तो भी... राग मन्द करे, संवेग करे, आहाहा!

मुमुक्षु : स्वर्ग जाये तो लाभ हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में हो? स्वर्ग में कहाँ आत्मा था? राग और पुण्य के फल हैं धूल। आत्मा तो यहाँ आनन्दस्वरूप भगवान है। उसे—निज देव को तो पहिचानता नहीं तो परदेव में जाकर क्या करेगा देवलोक में। मिथ्यात्व को सेवन करेगा और राग को धर्म मानेगा। आहाहा! मार्ग अलौकिक है। अभी तो यह सब व्यवहार की जो यह कहते हैं, ऐसा भी नहीं है। जेठाभाई! आहाहा! निश्चय बिना का यह व्यवहार जो कहते हैं, वैसा भी व्यवहार कहाँ है? मानते हैं कि हम यह महाव्रत पालते हैं और यह करते हैं और धर्म है - हमारे धर्म है। मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? (कहते हैं) **कदाचित् अनुकम्पित होते हैं,...** आहाहा! अरे! जीवों को दुःख होता है। अनुकम्पा होती है। यह अनुकम्पा, वह शुभभाव है। वह कहीं धर्म नहीं। वह कहीं सम्यग्दर्शन का स्वरूप नहीं।

अनुकम्पा—समकित (के आठ अंग) में आता है न! पोरबन्दर में थे एक। समकित का लक्षण अनुकम्पा, शम, संवेग है। वर्षा बरसे, खड्डे में पानी भरे, मक्खियाँ पड़ी हों, कीड़े लेने जाये, बचाना। समकित का लक्षण है अनुकम्पा। ऐ सेठी! वह तो शुभभाव है। उसकी क्रिया से ऐसा करना और ऐसे बचाना, यह भाव तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम है। समझ में आया?

कहते हैं अनुकम्पा, अरेरे! एकेन्द्रिय के जीव दुःखी होते हैं, ऐसे अनुकम्पा करे। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय की, हों! परन्तु वह सब शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो उस शुभभाव से पृथक् चैतन्य आनन्द और ज्ञान का धाम, उसे स्पर्श कर जो

निर्मल दशा हो, उसका नाम मुक्ति का मार्ग और धर्म है। उसकी तो कुछ खबर नहीं। **कदाचित् आस्तिक्य को धारण करते हैं,...** आहाहा! भगवान ने कहा मार्ग सच्चा है, हों! आस्था कर आस्था, श्रद्धा। कदाचित् वापस ऐसा कहते हैं। एकरूप श्रद्धा तो अन्दर स्वरूप की श्रद्धा नहीं, इसलिए एकरूप तो नहीं। जिनेन्द्रदेव ने कहे हुए छह द्रव्य, नौ तत्त्व बहुत सच्चे, आहाहा! भगवान की पूजा करना, भगवान की यात्रा करना, बापू! यह अस्तिकाय का लक्षण है।

मुमुक्षु : वह भी वापस उपवास करते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। अपवास करता है, लंघन करता है। ...सब करते हैं, उसमें क्या? आत्मा के भान बिना, आत्मा विकल्प की क्रिया से पार है, उसकी तो कुछ खबर नहीं। और उस क्रिया में मानता है कि हम आस्तिक हैं, आस्थावाले हैं। इतना तो समकित के चार लक्षण सम्बन्धी व्यवहारलक्षण थे और उस सम्बन्धी वर्णन किया।

मुमुक्षु : बाहर में यह व्यवहार उनका...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार, यह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : यह कैसे खबर पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खबर पड़ती है। खबर नहीं पड़ती? स्वयं को खबर पड़ती है और दूसरे जीव को भी खबर पड़ती है।

मुमुक्षु : दूसरे को मैं धर्म करता हूँ, यह कैसे खबर पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ। यह धर्म जो करता है अन्दर का हो सच्चा, वह दूसरे को भी खबर पड़ती है। ऐसे लक्षण से खबर पड़ती है, ऐसा कुछ है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्यप्रभु इस शुभभाव का राग-विकल्प से पार पृथक् है। उसकी अन्तर्दृष्टि या आश्रय हुए बिना यह सब क्रियाकाण्ड अभव्य ने भी अनन्त बार किये और भव्य ने भी अनन्त बार किये हैं। यह धर्म नहीं है। आहाहा! सेठी!

मुमुक्षु : थोड़ा ढीला पड़ जाता है ढीला, ढीला।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढीला नहीं। विपरीत है, उसे समझाते हैं। एकान्त मिथ्यादृष्टि की बात है या नहीं? और **शंका, कांक्षा, विचिकित्सा और मूढ़दृष्टिता के...** समकित के—व्यवहारसमकित के आठ प्रकार। भगवान का मार्ग सच्चा, भाई! इसमें शंका करनेयोग्य नहीं है, हों! ऐसा कहते हैं परन्तु वह सब शुभभाव है। समझ में आया? शंका, क्या कहते हैं? **उसके उत्थान को रोकने के लिये...** शंका में दोष नहीं लगे, इसलिए तैयार रहते हैं। भगवान ने कहा हुआ मार्ग छह द्रव्य, नौ तत्त्व, उसमें कहीं शंका नहीं होती, इसलिए **उत्थान को रोकने के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं,...** नित्य कमर बाँधकर जैसे रहे, वैसे शुभभाव नित्य करता है। आहाहा! समझ में आया?

और **कांक्षा,...** परधर्म की कांक्षा नहीं करना, भाई! वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मार्ग नहीं है, ऐसे शुभभाव की भी कांक्षा नहीं करता। इस जाति की कांक्षा करता नहीं। दूसरे में धर्म है, वह भी एक शुभउपयोग है, शुभराग है, धर्म नहीं। ऐ हिम्मतभाई! भारी कठिन काम ऐसा!

मुमुक्षु : शुभधर्म की कांक्षा भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब शुभराग में जाता है। उसके उत्थान के लिये, ऐसा। उसे सम्हालने के लिये, अटकाने के लिये नित्य कटिबद्ध रहता है। नित्य कमर बाँधकर जैसे रहे न, समझ में आया? हमारे लिये तो कमर बाँधी है, कहते हैं। नहीं कहते? कितने ही पीछे हमको, यह मूर्ख है। कौन कमर बाँधे। पर तेरे लिये! समझ में आया? स्वयं भी पर धर्म की कांक्षा न करे, जैन के अतिरिक्त। यह भी एक तो शुभभाव है। यह कोई धर्म नहीं। इसमें वह धर्म मानता है कि यह शुभभाव मैं करता हूँ न, तो मुझे कांक्षा नहीं है, इसलिए धर्म है। वह अधर्म को धर्म मानता है। आहाहा! अरे! जन्म-मरण के अभाव का मार्ग बापू कोई अलग है। चौरासी के अवतार, आहाहा! और उनका मूल कारण तो मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व में तो अनन्त निगोद के भव करने की ताकत है। समझ में आया?

विचिकित्सा,... ग्लानि न करे। मुनि की नग्नदशा, दिगम्बरदशा देखकर ग्लानि न करे। ऐसा वह व्यवहारसमकित का भाव रखे परन्तु वह तो शुभ उपयोग है। समझ में

आया? मूढ़दृष्टि न रखे। उलझन में न आवे। अरे! वीतरागमार्ग सच्चा होगा या अन्य सच्चा होगा? क्या है यह? वेदान्त में भी महा बड़े-बड़े पुरुष होते जाते हैं। यह नहीं। समझ में आया? उलझन में नहीं आवे, ऐसा कहते हैं। यह पर में व्यवहार में उलझन में न आवे। निश्चय का भान नहीं। मूढ़ दृष्टिता के उत्थान को रोकने के लिये, इस दशा को होने से रोकना, ऐसा। **के लिये नित्य कटिबद्ध रहते हैं,...** यह तो सब शुभभाव है। इसमें कहीं आत्मा नहीं। धर्म नहीं है।

उपबृंहण,... अपना शुभभाव बढ़ाने का प्रयत्न करता है। यह उपबृंहण है। भाषा तो ऐसी है कि उसे भाते हुए उत्साह को बढ़ाता है। उपबृंहण के उत्साह को बढ़ाता है। उत्साह, उत्साह। ऐसा करो, धर्म की प्रभावना करो, ऐसा करो, पैसा खर्च करो, दान करो, मन्दिर बनाओ। समझ में आया? पुस्तक बनाओ, उसमें रुके अक्षर लिखने में बराबर। वह उत्साह बढ़ाता है। वह शुभभाव है। उसमें कहीं धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा!

स्थितिकरण,... जैनधर्म से गिरता हो और शुभभाव से स्थिर करने का भाव। परन्तु वह पर को स्थिर, वह तो शुभभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जीवद्रव्य को सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवद्रव्य को सिद्ध करे, वह तो विकल्प है, शुभभाव है। अपने में तो स्थिरता करते नहीं। दृष्टि कहाँ है, यह तो खबर नहीं। आप कहो।

मुमुक्षु : खबर नहीं पड़ती, आप क्या कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी ओर से सेठ ने कहा। लो! यह सेठी ने नहीं कहा, सेठ ने कहा। ऐसा कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव, आत्मा अक्रिय-राग की क्रियारहित है। यह विकल्प की क्रियारहित है। ऐसा अन्तर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं। स्वआश्रय की गन्ध नहीं। मात्र पराश्रय में दूसरे को धर्म से गिरते हुए रोके, उसे मदद करे, इत्यादि करे, स्थिति करे। गरीब व्यक्ति है, हम पैसे देंगे तो धर्म में रहेगा। इस प्रकार पाँच, पच्चीस हजार दे। उसे मदद करे, शिक्षा में पढ़ावे, शिक्षा करे, विद्यालय बनावे, बँधावे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं परन्तु यह तो धार्मिक जीव ऐसा। धर्म के जीव हैं, उन्हें

इस प्रकार स्थितिकरण करावे। बालक छोटे हैं। धर्मी हो न, वह भी उसे अपने मदद करें। उसे स्थिर करने के लिये, उसके धर्म में स्थिर हो, ऐसा जो भाव, वह सब शुभराग है। सेठी! ...तुमको बहुत उत्साह आता है। धर्म के जीव हैं, धर्मात्मा हैं। अपने उसे मदद करें। यह सब स्थितिकरण शुभभाव है। उसे वह धर्म मानता है। इससे मुझे निर्जरा होगी, (ऐसा मानता है)। समझ में आया?

वात्सल्य... धर्मी के प्रति प्रेम करे। धर्मात्मा के प्रति, गाय जैसे अपने बछड़े के प्रति प्रेम करती है; वैसे धर्मी के प्रति वात्सल्य भी एक शुभभाव है वह तो। अरे! गजब ऐसी बात! आहाहा! वह धर्म नहीं। धर्म तो अन्तरात्मा ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप से भरपूर भण्डार के सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान का कण प्रगट करना, वीतरागी पर्याय प्रगट करना, वह धर्म है। ऐसा क्रियाकाण्ड, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! अभी तो धमाल उसमें पड़ी है पूरी। ऊपर आया था न? धमाल में चला है। कर्मकाण्ड की धमाल। उपवास करो, उसकी शोभायात्रा निकालो, उसे कुछ दान दो, उसे ऐसा करो। पाँच-पाँच, दस-दस, पच्चीस-पच्चीस रुपये तपस्वी को दो, इससे वात्सल्य कहलाता है, धर्म का प्रेम किया कहलाता है। अभी और रुपये की वह क्या कहलाती है? भेंट। रुपया, रुपया। रुपया तो एक आने का हो गया न? उसमें क्या! नारियल बाँटे। नारियल के चौदह आने रुपया है भाई। नारियल या रुपया, वह का वह हुआ। ऐई! नारियल की प्रभावना करते थे नारियल की। नारियल चौदह आने का आता है, कहते हैं। कोई कहता था अपने लन्दनवाले। परन्तु यह नारियल बाँटे और रुपया बाँटे, परन्तु उसमें था क्या? पहले के हिसाब से एक रुपया तीन पैसे का है। परन्तु इसे ऐसा हो जाता है कि आहाहा! कैसी प्रभावना की! परन्तु धूल भी नहीं है, सुन न! ऐई! मलूकचन्दभाई! ....करते हैं न, वह बाबा जैसा आता है न अपने। ....रुपया-रुपये की प्रभावना होती है। परन्तु क्या है अब? राणपुर भी कहा था। किसी ने कहा था न?

मुमुक्षु : दो-दो रुपये रुपये की प्रभावना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ तो करे। राणपुर में रुपये रुपये की प्रभावना। दो तीन हजार लोग आवे। अरे! तीन क्या, चार हजार रुपये चाहिए। उसमें चाहिए कितने? चार हजार अर्थात् अभी की गिनती करो-बीसवाँ भाग कर डालो उसका। आहाहा! नारियल की

प्रभावना की है, नहीं अपने वहाँ? भाई ने। हरिभाई भायाणी। ९० के वर्ष में। नियम लिया था कहीं? रामजीभाई के निवास। हरिभाई भायाणी, हाँ। आया हो लड़के के पिता का पिता। दूसरे कोई नहीं। हसमुख नहीं? ....उसके पिता के पिता हरिभाई थे। रामजीभाई के खास मेहमान बने थे, इसलिए आवे। ऐ... चिल्लाहट मचायी स्थानकवासी। धर्म में ऐसा नारियल श्रीफल नहीं बाँटा जाता। अब रामजीभाई कहे... ऐसे के ऐसे वे। खबर नहीं हो। चन्दुभाई! ९० के वर्ष। ९० के अर्थात् छोटी उम्र सात, आठ वर्ष पहले। ...मेहमान आये हैं और तुम ऐसा अनादर करते हो? कहे। नारियल का कहते थे। तब तब नारियल तीन पैसे का, चार पैसे का नारियल। (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। रायचन्द गाँधी आये थे। उनके काका, बोटाद। परन्तु उसे ३६ वर्ष हो गये।

अब तो चौदह आने का नारियल हुआ, परन्तु अब क्या है धूल में? रुपया हो या पाँच-पाँच का नोट दे। मानो कि धर्म प्रभावना करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! ऐ सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो पागल है न? अब कहाँ? पागल है पागल। आहाहा! बीस हजार रुपये खर्च किये। किये तो देखो! परन्तु क्या करना है इसमें? ...राग की मन्दता हो तो करे। यह तो मान के लिये बहुत तो करते हैं। हम पैसेवाले हैं। पैसे खर्च किये, देखो! तुमको खर्च करना नहीं आता। तुम्हारे पास पैसा नहीं। यह धर्म की प्रभावना हम पैसेवाले हैं। धूल भी नहीं। सुन न अब।

मुमुक्षु : पैसेवाला मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है, ऐसा मूढ़ होकर। हम पैसेवाले हैं। पैसा खर्च करें तो धर्म रहे। धूल भी नहीं रहे, सुन न अब। वह तो राग की मन्दता की हो, मान न होता हो तो। शुभभाव बँधे। मान के लिये करे और दुनिया में प्रसिद्धि के लिये करे, उसे तो अकेला पाप ही बँधता है। मिथ्यात्व और उसके साथ चारित्रमोह का पाप। आहा! वस्तु ऐसी है।

वात्सल्य, प्रभावना... देखो! अब यह आया। प्रभावना करे, बाहर की, हों!

व्यवहार... व्यवहार। घोड़ागाड़ी डालो, हाथी जोड़ो और घोड़ा, लड़कों को घुमाते हैं न? क्या कहलाता है वह? घोड़ा चढ़ावे न लड़कों को, शृंगार करके सांबेला बड़ा। सांबेला लिया, लड़के भी नहीं निकलते? जेठाभाई! सांबेला कहे। सांबेला अर्थात् परन्तु क्या सांबेला?

मुमुक्षु : घोड़े पर बैठकर सवारी करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सांबेला का अर्थ क्या? यह तो पूछा कि सांबेला है क्या करने को? यहाँ तो कहे ऐसी **प्रभावना,...** बस। पच्चीस, पचास। अभी कहा था यहाँ। पशुपालक को छोड़ा। बस्ती अधिक इसलिए, पशुपालक नहीं सुरेन्द्रनगर। पशुपालक साधु के सामने गये हुए। गाये तो अम्बाजी की जय। गाये, फिर दो मिनिट (के बाद) अम्बाजी माताजी की जय, लो! यह जैन में भी कहाँ यह विपरीतता डाली।

मुमुक्षु : जैन में विपरीतता वह तो ऐसी विपरीत बिना का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसी विपरीतता उड़ हुए भाव की बात है, हो! आहा! ...उसकी बात तो कुछ है ही नहीं। आहाहा! **प्रभावना को भाते हुए...** भाषा देखो! प्रत्येक में बदली है। **प्रभावना को भाते हुए...** उसको अटकण होकर अटकाते हुए, बारम्बार उत्साह बढ़ाते हैं। ऐसा करना चाहिए, ऐसा करना चाहिए, ऐसा करना चाहिए। यह सब शुभभाव है। उसमें भी धर्म मानते हैं, धर्म है नहीं। कहो, सुजानमलजी!

मुमुक्षु : .... डंका बज गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : डंका बज गया। सोहनलालजी! क्या है? क्या कहते हैं? आहाहा!

और अब **ज्ञानाचरण के लिये...** ज्ञानाचरण के लिये भी तैयार। वे **स्वाध्यायकाल का अवलोकन करते हैं,...** जो बराबर अमुक काल में स्वाध्याय हो, अमुक काल में न हो। बराबर ध्यान रखते हैं। परन्तु यह सब शुभभाव है। स्वाध्याय काल को अवलोकते हैं, बहुत प्रकार से विनय को विस्तारते हैं। देव-गुरु-शास्त्र, मन्दिर की असातना न हो, प्रतिमा की असातना न हो, भगवान की असातना न हो, ऐसा विनय। ८४ असातना आती है न? बोल कुछ (आते हैं)। अपने शास्त्र छपाया था एक बार। ८४ बोल। उसकी

असातना टाले, भगवान का विनय बहुत करे। बहुत विनय। देव का, गुरु का, शास्त्र का बहुत विनय। परन्तु वह तो शुभराग है। ऐई!

बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं,... यह जाने कि, आहाहा! कितना विनय मानो—देव का, गुरु का, शास्त्र का। वह तो परद्रव्य का विनय तो शुभभाव है, कहते हैं। वह धर्म नहीं। उसमें धर्म मानता है। विनय बड़ा मोक्ष का द्वार है। आता है न? कौन सा विनय? है न तुम्हारे यहाँ, नहीं? वडवा। वडवा या अगास? वडवा में है। ... सुना है। हमने तो बहुत देखा नहीं।

मुमुक्षु : क्षमा, वह मोक्ष का भव्य दरवाजा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव्य दवाजा है। ....विनय में वापस कुछ है उसका। विनय, वह धर्म का पहला, 'विनय मूलो धम्मो' उत्तराध्ययन में आता है। पहले अध्ययन में। परन्तु वह तो व्यवहार विनय के शुभराग की बात है। विनय तो आत्मा आनन्द और पूर्ण स्वरूप है, उसका आदर करके दृष्टि करना, वह विनय है। आहाहा! उस विनय की तो खबर नहीं होती और यह विनय।

मुमुक्षु : गुरु का विनय तो करना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आता है, अलग बात है परन्तु वह वापस धर्म है, ऐसा मानता है। गुरु का विनय करना, वह तो परद्रव्य का विनय है, वह तो शुभभाव है।

मुमुक्षु : उनका विनय न करे तो अशुभभाव में चला जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव हो। उसका कौन कहता है। वह भाव स्वयं धर्म नहीं। आहाहा! कठिन बहुत!

मुमुक्षु : अशुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभभाव का डर कहाँ था? यह तो सब बातें। यह तो उसे धर्म मानता है। कहो, समझ में आया? विनय को विस्तारता है। **बहु प्रकार से विनय का विस्तार करते हैं,...** ओहोहो! इसके जैसा विनयवाला देव-गुरु-धर्म, ऐसा लगे, परन्तु वह तो शुभभाव है। **दुर्धर उपधान करते हैं,...** ऐसे उपधान-बुपधान किये हैं या नहीं?

यह दुर्धर नहीं थे। ४५ दिन करे और एक दिन खाये ठीक से। दूसरे दिन अपवास करे, ठीक से खाये, हों! कितने प्रकार के वापस उसमें हो सब ढोकला और अमुक और अमुक। पकवान बकवान। पकवान होते हैं या नहीं उसमें? उसमें तो सब होता है। आंबेल में।

मुमुक्षु : आंबेल में एक ही प्रकार का होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वहाँ तो बहुत प्रकार का होता है आंबेल में।

मुमुक्षु : वह एक ही जाति का न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। नहीं रे, अरे! ४५ प्रकार की चीज़ वहाँ होती है। एक बार जा चढ़े थे गारियाधार। गारियाधार तब आंबेल। फिर ले गये उसमें। कितने प्रकार के ढोकला और कितने प्रकार के अमुक और अमुक। वह तो न डालता हो। आहार का क्या कहलाता है? नमक। नमक वह डालता होगा। मिर्च न डाले। चरपरा डाले। घी और तेल डाले। उसमें क्या भला हुआ परन्तु अब? गरीब लोगों को तो बेचारों को तेल की बूँद भी मिलती नहीं। रोटी और छाछ खाते हैं, साधारण। हो गया तप।

कहते हैं, दुर्धर उपधान करते हैं, दुर्धर अर्थात् महीने-महीने के उपवास। शास्त्र के लिये, हों! शास्त्र में उपधान के लिये, ज्ञान का आराधन करने के लिये हमारे बारह महीने तक आंबेल है। एक... चलता नहीं। कितनी आंबेल हुई अभी? ८६वीं आंबेल है हमारे। फिर उसका उत्सव करे। अभी यह आया था। साधु कुछ किया था। ओहोहो! धूल भी नहीं वहाँ धर्म, सुन न! ८६ आंबेल करके मर जाये और सूख जाये। वर्धमान, ऐसा करके, वर्धमान अर्थात् पाप का वर्धमान किया उसने। ...परन्तु वह भी न करे यहाँ तो। वह बात भी नहीं। यहाँ तो वह क्रोध भी न करे। आंबेल और अपवास यह सब शास्त्र के लिये करे, वह सब शुभराग है। वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! यह दस-दस महीने के उपधान करे, वह सब लंघन है। अरे! अरे! अहमदाबाद जैसे में सब होता है। ऐई, विशाल शोभायात्रा निकाले। सामने दे, वे वापस पैसा। यह वर्षीतप होते हैं न सब आहिस्ता-आहिस्ता इकट्ठे हों पालीताणा में। वापस एक-एक को दे। दो सौ, दो सौ रुपये का आवे, एक-एक को तीन सौ-तीन सौ रुपये का, चार सौ-चार सौ रुपये। गरीब व्यक्ति हो तो चलो न बारह महीने के उपवास कर डालें। बारह महीने...

यहाँ तो कहते हैं ऐसा भी नहीं होता। यहाँ तो अपने आत्मा के लिये करते हैं। हम अपवास करते हैं, इसलिए धर्म का लाभ होगा। वह अपवास की क्रिया, वह शुभराग की भाव की है, धर्म-बर्म नहीं। बारह-बारह महीने के अपवास करके मर जाये तो भी धर्म नहीं, ले, (कहते हैं)। आहाहा! कठिन काम! ऐई! माणेकलालजी!

मुमुक्षु : फायदा होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : फायदा होगा न भटकने का! मिथ्यात्व का फायदा है न। आहाहा!

दुर्धर उपधान करता है। एक ही अनाज। अमुक, अमुक, रस नहीं, घी नहीं, आम का रस नहीं। रूखा आहार। शरीर जीर्ण हो जाये, करते-करते कोई मर भी जाये। परन्तु वह सब शुभभाववाले मरकर भूतड़ा-बूतड़ा होते हैं, मिथ्यात्वसहित है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं,...** शास्त्र का बहुमान करे, यह पुस्तक है, यह भगवान की वाणी है। बहुमान करे, सोने का कवर मंडावे, सोने के अक्षर से शास्त्र लिखावे। ऐ हिम्मतभाई!

कहते हैं, वह तो क्रिया तो जड़ की होनेवाली हो परन्तु इसने भाव किया हो शुभ तो वह धर्म नहीं, पुण्य है। और उसे यह धर्म मानता है। आहाहा! कठिन बात है। **भलीभाँति बहुमान को प्रसारित करते हैं,...** ऐसा वापस। ऐसा नहीं, लोगों के लिये नहीं, दिखाने के लिये (नहीं)... इसलिए भले प्रकार प्रत्येक शब्द अलग प्रकार का प्रयोग किया है। शास्त्र, पृष्ठ, पुस्तक बनिया को तो थूंक छूने दे नहीं। और हाथ भी ऐसा मैला हो तो छूने दे नहीं। ऐसा आगम का बहुत विनय करे, बहुमान करे। वह सब परद्रव्य का विनय शुभभाव है। स्वद्रव्य के आश्रय बिना सब थोथा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! यह तो सब उड़ाया।

निह्नवदोष को अत्यन्त निवारते हैं,... जिसके पास से कुछ ज्ञान मिला हो, उसे छिपावे नहीं। इनके पास से मैंने शास्त्र पढ़ा, उससे मुझे कुछ ख्याल आया, अमुक शब्द मैंने इन धर्मात्मा से सुना, तब मुझे ख्याल आया। ऐसा निन्हव को छिपावे नहीं। जिसके निकट ज्ञान निमित्तरूप से मिला हो, उसे छिपावे नहीं, ढँके नहीं, ना नहीं करे कि नहीं, नहीं उनके पास से (नहीं), मुझे अमुक से मिला था। उसकी बात भी नहीं। यह निह्नव

कहा न? जिससे ज्ञान मिला हो निमित्त (रूप) से, उसे छुपावें नहीं या ढँके नहीं। खुल्ला कर दे, मुझे इनसे मिला है। यह भी सब शुभभाव है। समझ में आया? अरे! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : दिगम्बर में तो निह्नव दोष बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निह्नव बताते हुए मिथ्यात्व। दिगम्बर मुनि थे। अरे भगवान! क्या करता है तू यह। गजब करता है। ओहोहो! मान क्या करता है! कितने काल रहना मनुष्यपने में और उसमें पहिचाननेवाले के साधन में कुछ अधिकपने रहना, खाना। मार डालते हैं।

मुमुक्षु : ....करुणा की।

पूज्य गुरुदेवश्री : करुण की, वस्तु का स्वरूप यह है। भाई! तेरी भूल इस प्रकार की होती है, हों! तू परलक्ष्यी भाव में धर्म मानता है, भाई! वह तुझे नुकसान का कारण है। तेरे लिये यह हित की बात है। शान्तिभाई! क्या था? वहाँ जाते तो क्या होता?

मुमुक्षु : मेरे भूल थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ हो, वह हो न? दूसरा क्या? यह तो उसके पास हो, वह कहे। यह करो, यह करो, आयेगा अभी, व्रत का आयेगा। निह्नव दोष को अत्यन्त निवारता है, वापस ऐसा। बिल्कुल जो शास्त्र पढ़ने से जो ज्ञान हुआ, जिस गुरु से ज्ञान हुआ, उसे ढँकता नहीं। समझ में आया? ऐसा शुभभाव आचरण करे, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है, उसे धर्म माने तो साथ में मिथ्यात्व है। आहाहा! अरे! इसे उभरने के अवसर। स्व का आश्रय करे तो उभरने का अवसर है, बाकी अवसर है नहीं।

अर्थ, व्यंजन और तदुभय की शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहते हैं;... व्याकरण, संस्कृत में कहीं अर्थ में भूल न हो। अक्षरों में भूल न पड़े। दोनों में भूल न पड़े। शब्द, उनका अर्थ और दोनों। कहीं भूल न पड़े, तदुभय, उसकी सावधानी रखे। यह दोनों अर्थ, व्यंजन और शब्द ऐसी शुद्धि में अत्यन्त सावधान रहे। बराबर... शब्द। व्यंजन, अर्थ गजब है परन्तु उसका क्या हुआ? धूल? वह तो जड़ की भाषा है, और उसमें तेरा भाव हो तो शुभ है। आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थ यथार्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ यथार्थ करते हैं परन्तु यह अर्थ करे वह शुभविकल्प है न? सेठी! यह पुराने व्यक्ति कहलाते हैं। जेतपुर के पुराने कामदार। दूसरे को बेचारे को भान नहीं होता। इन्हें भान नहीं हो तो दूसरे को कहाँ से भान होगा? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

यहाँ तो चैतन्य प्रभु, समझ में आया? 'तुझमें डोले' आज तो वह बोलता था न? 'वीर प्रभु के बोल, तेरा प्रभु तुझमें डोले।' यह राग रहित भगवान है, यह स्वयं आत्मा है, राग की क्रियारहित। समझ में आया? कहते हैं, शब्द और शब्दों के अर्थ और दोनों, इनकी शुद्धि के लिये बहुत ध्यान रखे। कहीं कानो, मात्रा, शून्य, उत्सर्ग, विसर्ग फेरफार न हो। इस प्रकार शब्दों को देखकर स्पष्ट विचारे। परन्तु यह सब शुभभाव है, धर्म नहीं। कितने ही तो वहीं रुक गये। दस-दस, बीस-बीस वर्ष तक। व्याकरण और संस्कृत पढ़-पढ़कर मर गये बेचारे। आहाहा!

यह क्या हुआ? ज्ञानाचार की बात हुई। पहले दर्शनाचार की बात थी। यह ज्ञानाचार की बात थी। देखो! यह बात वापस वहाँ (प्रवचनसार) चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में ली है, हों! हे ज्ञानाचार! तेरे प्रताप से जब तक शुद्धि न पाऊँ तब तक, तेरे प्रताप से, ऐसा कहते हैं, हों! है तो अन्दर शुद्धि का भान है, उसे अन्दर दृष्टि, ज्ञान, चारित्र हुए हैं, उसे ऐसा शुभभाव आया, उसका निमित्तपना चरणानुयोग की शैली बताकर, तेरे प्रताप से पूर्ण न पाऊँ तब तक तेरा आश्रय लेता हूँ। ऐसा कहते हैं। और उसे कहा न कि मैं जानता हूँ कि तू मेरा स्वरूप नहीं है। यह तो पर की बात बाद की बात है यह। प्रगट होता है परन्तु मैं जानता हूँ कि ज्ञानाचार के विकल्प मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं जानता हूँ। उसके कारण फिर बात की है। आहाहा! बहुत काम! बांबी फटी है अभी तो उल्टी। उसमें यह करने जाये। यह सब धमाल! दीक्ष-बीक्षा न, आहाहा! धूल की भी दीक्षा नहीं। दक्षा है अकेली। आहाहा!

मुमुक्षु : वह दीक्षा लेंगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ लेता था? दीक्षा, (दक्षा है) बापू! धन्य अवतार!

चारित्र अर्थात् अनुभव सम्यग्दर्शनपूर्वक, अन्तर की रमणता का चारित्र गणधरों को पूज्य है, इन्द्रों को पूज्य है। उसका अनादर कौन करे। यह कहाँ था चारित्र? यह तो सब दक्षा के शुभभाव का भी ठिकाना नहीं। और मानता है कि मैं दीक्षा ली है और अब हमें चारित्र हुआ। धूल भी नहीं। सुन न! मर जायेगा, निगोद में जायेगा धीरे-धीरे। यहाँ अब यह कहेंगे। वनस्पति में जायेगा। कहेंगे। समझ में आया?

निश्चय का भान नहीं और यह व्यवहार क्रियाकाण्ड में रुककर धर्म मानकर जिन्दगी गँवाता है। आहाहा!

अब आया चारित्र। पहले दर्शनाचार के व्यवहार की बात की, फिर ज्ञानाचार के व्यवहार की बात की और अब चारित्राचार। **चारित्राचरण के लिये—हिंसा, तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** उसके त्याग में, **हिंसा, आदि सर्वविरतिरूप पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** हिंसा का त्याग, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय हिंसा का त्याग, परन्तु वह तो शुभभाव है। महाव्रत, वह शुभभाव है; वह धर्म नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! **हिंसा को सर्वविरतिरूप पंच महाव्रत...** और असत्य का त्याग। बिल्कुल झूठ नहीं बोलना इसने मानी हुई बाहर की। और चोरी बिल्कुल नहीं। एक रजकण भी एक राख का भाग भी आज्ञा बिना ले नहीं।

अब्रह्म... नौ-नौ कोटि से ब्रह्मचर्य, वाणी से, मन से। इन्द्राणी डिगाने आये तो भी न डिगे, ऐसी अब्रह्म की विरति-निवृत्ति। उससे **परिग्रह की निवृत्ति...** एक लंगोटी का धागा न रखे। मुनि, एक वस्त्र का धागा नहीं। ऐसा **परिग्रह की विरतिरूप सर्वविरतिरूप...** यह वस्त्र, पात्र रखे, उन्हें तो व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। उसे तो व्यवहार भी नहीं कहते और उसे निश्चय है नहीं। वह तो दोनों से भ्रष्ट है। पण्डितजी! यह वस्त्र, पात्र रखे और साधु माने, मनावे और माननेवाले को भला जाने, यह करे, करावे और अनुमोदन करे, तीनों निगोदगामी हैं। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। उसमें भी आता है-अष्टपाहुड़ में। पण्डित जयचन्दजी कहते हैं पहले, नहीं शुरुआत में? करना, कराना, अनुमोदन तीनों का फल उसे। कोई करे, पंच महाव्रत के विकल्प करे, उसे चारित्र माने, दूसरे से मनावे, मानते हों उसे भला जाने। बहुत अच्छा यह तुम्हें मदद... समझ में आया?

अष्टपाहुड़ में है कहीं। यह तुम्हारे तीन में आ गया होगा, दर्शनपाहुड़ में। पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है और यह टोडरमलजी ने लिखा है, पाँचवें अध्याय में। करना, कराना, अनुमोदन करना। छठवें में है, हों! इसमें छठवें में है। है न मिथ्यात्वभाव है, वह हिंसादिक भाव (से) वह महान पाप है। उसके फल से निगोद... नरकादि पर्याय प्राप्त होती है। यह छठवें में। अभी एक जगह है। तीन है, तीन—करना, कराना और अनुमोदन करना, यह है कहीं, देखो! यह रहा। १८२ पृष्ठ है। अरे! एक छोटी प्रतिज्ञा भंग करे, उसे तो वे पापी कहते हैं, परन्तु ऐसी महान प्रतिज्ञा भंग करते देखने पर भी उसे गुरु मानते हैं, मुनि समान उसका सन्मान आदि करते हैं। शास्त्र में कृत, कारित, अनुमोदना का फल एक समान कहा है। इसलिए उन्हें भी वैसा ही फल मिलता है। आहाहा! यह गुजराती है।

मुनिपद लेने का क्रम तो यह है (कि) पहले तत्त्वज्ञान, सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् उदासीन परिणाम हो। उसके बदले यह कौन सी पद्धति है, ऐसा लिखते हैं। शक्ति हो... सब लम्बी बहुत बात है। परन्तु यह वह महान अन्याय है। यह तू क्या करता है? बहुत लिखा है। यह टोडरमल! हजारों बोल का शास्त्र का निचोड़ किया है। बहुत किया है। साधारण प्राणी के लिये बहुत स्पष्ट (किया है)।

कहते हैं कि पंच महाव्रत में हिंसा आदि जो पाप, उसकी सर्वविरति, इस प्रकार **पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** यह शुभराग, वह मिथ्यादृष्टि है। शुभ उपयोगी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अशुभ से तो भला है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी भला नहीं। भला कब था। चैतन्य का प्राण कहाँ मिल गया है इसे। और इसके फल में ऐसे देव के स्वांग मिले, धूल का। उसमें आत्मा को क्या? इसका स्वांग बदले। पुण्य-पाप के विकल्प से पार प्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता उसे चारित्र कहते हैं। इसके भान बिना ऐसे अकेले महाव्रत को चारित्र माने, (वह) मिथ्यादृष्टि है। पंच महाव्रत में तल्लिनवृत्तिवाला, हों! यह यहाँ कहाँ ठिकाना है उसका। समझ में आया? साधु होकर देखो न, यह तो वस्तुस्थिति ऐसी है, हों! व्यक्ति का कोई

काम नहीं। यह तो वस्तु को समझने के लिये बात है। जिसका जिसे जो परिणाम, उसका फल उसे लगता है। किसी को उसके कारण लेना-देना नहीं है। परद्रव्य को क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय और परिग्रह सर्वविरतिरूप, वापस। वह तो यहाँ नग्नपने की बात है, हों! वस्त्र, पात्र रखे और साधुपना लेता है, वह तो गृहीतमिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? अनादि का अगृहीत तो है। राग को स्वभाव के साथ एक मानता है। इस जगह जन्मने के बाद ऐसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के निकट बहुमान करके महाव्रतादि अंगीकार ले, वह तो उसका व्यवहार भी सच्चा नहीं है। यह तो व्यवहार सच्चा है, परन्तु उसमें धर्म मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है। समझ में आया? आहाहा!

इन **पंच महाव्रतों में तल्लीन वृत्तिवाले रहते हैं,...** भाषा देखो न! क्योंकि, इस ओर की तो खबर है नहीं। ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप प्रभु है, उसकी तो तल्लीनता है नहीं। इसमें लीनता हो गयी है। विकल्प में लीनता, महाव्रत में लीनता, सच्चे महाव्रत हों व्यवहार से, वे, हों! तो भी कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

यह तो वीतराग का मार्ग है। यह राग में माने तो वीतरागमार्ग रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो राग की क्रिया है। और **सम्यक् योगनिग्रह जिनका लक्षण है...** सम्यक्योग, सम्यक् योग निग्रह जिसका लक्षण। **(-योग का बराबर निरोध करना, जिनका लक्षण है) ऐसी गुप्तियों में अत्यन्त उद्योग रखते हैं,... अत्यन्त उद्योग रखते हैं,...** अशुभ में न आवे, ऐसा बराबर ध्यान रखता है। समझ में आया? ऐसी गुप्तियाँ मन, वचन और काया से अशुभभाव से गोपना और शुभभाव में आता है।

ऐसा अत्यन्त उद्योग रखता है। अत्यन्त पुरुषार्थ वहाँ ही जाता है, उसका शुभभाव में। जाओ। मिथ्यादृष्टि है। हाय.. हाय! ऐसा सब? उसे लोग जैनशासन कहते हैं। जो राग है, उसे जैनशासन कहते हैं। जैनशासन तो राग से भिन्न पड़कर ज्ञानानन्द भगवान आत्मा की श्रद्धा, अनुभव और स्थिरता की वीतरागी पर्याय, वह जैनशासन है। शुद्धोपयोग, वह जैनशासन है। यह तो शुभभाव है, राग है। इसे धर्म मानता है।

ईर्या, प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं,... देखने में बराबर देखे। किसी को दुःख न हो, एकेन्द्रिय जीव को भी, चलते हुए। यह तो सब घोड़े जैसे चलते हैं, उन्हें तो ईर्या के व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। यह तो बराबर ऐसा है, देखो! कहते हैं, समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ता है। हाँ, शुभभाव ईर्या बराबर, किसी जीव को दुःख न हो। बातें करते-करते चले और नीचे ठिकाना न हो चलने का। चींटी कुचल जाये, मकोड़ा कुचल जाये, हरितकाय कुचल जाये, इसकी तो यहाँ बात है नहीं। जंगल आरा, वनस्पति आरा, वनस्पति देखो न कितनी उगती है। वहाँ जंगल-दिशा को गये तो नीचे मकोड़ों का पार नहीं। इसे खबर नहीं होती कि यह हरितकाय है। यह बोटाद में देखा था। जंगल में वनस्पति थी, उसमें से जाते थे। अरे! परन्तु यह क्या करते हैं यह ? इतना भी व्यवहार का ठिकाना नहीं। खबर नहीं एकेन्द्रिय जीव वनस्पति है, उसके अन्दर जाया ही नहीं जाता, चला ही नहीं जाता उसके ऊपर। समझ में आया? ऐसा ध्यान रखते हैं, ऐसे जीवों को लिया है। परन्तु वह शुभरागी जीव मिथ्यादृष्टि है। शुभोपयोगी। आहाहा!

जिसे शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा की तो खबर—श्रद्धा-ज्ञान नहीं। कहो, **ईर्या, समितियों में प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं,...** देखकर चलना बराबर कहीं आड़ा-टेढ़ा नहीं। **भाषा**-विचारकर बोलना। बराबर भाषा विचारकर बोलना। भाषा बोलना वह तो विकल्प है, शुभराग है। वह कहीं धर्म नहीं। भाषासमिति व्यवहार है, वह धर्म नहीं।

ऐषणा,... इसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाये तो भी न ले, ऐसा ऐषणा का भाव। समझ में आया? यह चौका करके ले, वह तो उसके ऐषणा का भी ठिकाना व्यवहार का भी नहीं है। निश्चय तो दृष्टि खोटी है। कहो, भारी कठिन काम! यह तो वीतरागमार्ग है, निर्दोष—उसके लिये बिल्कुल बनाया हुआ नहीं ले। पानी की बूँद भी उसके लिये बनायी हुई (प्रासुक की हुई) न ले। पानी की बूँद भी जरा उसके लिये बनावे तो पाँच सेर पानी कहाँ से यह ? न ले। ऐषणा समिति से बराबर निर्दोष ले। वह भाव शुभराग है। उसके लिये बनाया हुआ ले तो उसके प्रश्न में दृष्टि तो मिथ्यात्व है और यहाँ अशुभभाव है।

मुमुक्षु : परन्तु की हुई क्रिया किसके कारण से होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा? उसके कारण से होती है तो भाव उसका है, उसका भाव उसके लिये बनाया, वह उसे ख्याल है या नहीं? ख्याल है या नहीं? मेरे लिये कहाँ, यह बाई तो एक है। यह बारह रोटी कहाँ से आयी वहाँ? समझ में आया? बाई तो यह एक यह नहाकर तैयार हो गयी और पानी इतना अधिक कहाँ से देगी पानी। मेरे लिये तैयार किया है, सवेरे जल्दी उठकर। कुएँ में से पानी खींचकर, लेकर आटा-बाटा बाँधकर सब सरीखा करे। फिर बाई को बुलावे आज तो आहारदान है। आहाहा! बापू! मार्ग दूसरा है, जँचे, न जँचे। ऐई!

यह तो ऐषणासमिति से ले, स्पष्ट निर्दोष आहार लेने का भाव, वह भी शुभराग है। समझ में आया? उसका इतना परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है न। मेरे लिये बनाया हुआ नहीं। यह निर्दोष है। चार व्यक्ति हैं। रोटी तैयार है, दाल-भात तैयार है। उसमें से थोड़ा ले। ऐसी ऐषणासमिति होवे तो भी वह शुभराग है। वह धर्म नहीं। आहाहा!

आदाननिक्षेप... लेते-रखते बराबर प्रयत्न को जोड़ता है। ऐसा कहा न? **प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ते हैं,...** ऐसी भाषा है। पुरुषार्थ को बराबर जोड़ता है। कहीं लेने-रखने में किसी जीव का वह (घात) न हो जाये। नीचे निगोद के जीव हों, अंकुर अभी हरितकाय है। उसमें मैल जरा ऐसा करके डाले। आदाननिक्षेप बराबर ध्यान रखकर कहीं जीव-जन्तु न हो, एकेन्द्रिय जीव की हरितकाय भी न हो। वहाँ लेने-रखने का भाव ध्यान रखकर करे, तथापि वह शुभराग है।

अत्यन्त, प्रयत्न को अत्यन्त जोड़ता है, उसे शुभराग कहा जाता है। और उसमें अज्ञानी यह मुझे संवर होता है और धर्म होता है, ऐसा मानता है। आहाहा! कठिन काम! ऐई! त्रंबकभाई! क्या ऐसा सब होगा यह। ऐसा मार्ग होगा वीतराग का? आहाहा! **आदान...** लेना और **निक्षेप** अर्थात् रखना। लेने-रखने में अत्यन्त प्रयत्न को जोड़ता है। कहीं कोई एकेन्द्रियादि जीव को भी दु:ख न हो। समझ में आया?

और **उत्सर्ग,...** विष्टा, पेशाब विसर्जन के काल में भी किसी जीव को दु:ख न हो, ऐसा अत्यन्त प्रयत्न में जोड़ता है। उत्सर्ग में अर्थात् विसर्जन में... मेल निकाले, कोई पानी-थूँक डाले, उसमें किसी जीव को दु:ख न हो, इस प्रकार प्रयत्न को रखता है। परन्तु

वह सब प्रयत्न शुभराग-विकल्प का है। बन्ध के कारणभाव को वह अज्ञानी धर्म मानता है। अरे! लो! यह चारित्राचार। तीन बोल हुए। एक दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार।

अब तपाचार। **तपाचरण के लिये—अनशन, सतत् उत्साहित रहते हैं,...** ऐसा लेना। भाषा देखो यहाँ! उपवास करने के लिये एक, दो, चार, पाँच और सतत् उत्साही। चौदस आयी, अष्टमी (आयी) उपवास बराबर चाहिए। चतुर्विध आहार (त्याग) चाहिए। पानी... कहाँ जाये, पानी होवे तो यह उपवास कहलाता नहीं। चतुर्विध आहार त्याग उपवास अर्थात् चारों आहार का त्याग, उसमें अत्यन्त उत्साहित रहता है। अनशन करने में। वह तो शुभराग है, शुभविकल्प है, वह धर्म नहीं, वह तप नहीं। अरे... अरे! आहाहा! अनशन और ऊनोदरी, एक-दो ग्रास खाये परन्तु उसमें क्या हो गया। वह तो परवस्तु है। उसमें लक्ष्य है, वह शुभभाव है। इससे कहीं तप हो गया और धर्म हो गया? ऊनोदर किया, इसलिए तपस्या हो गयी और निर्जरा हो गयी। तपस्या, वह निर्जरा। वह निर्जरा-बिर्जरा है नहीं। अरे! गजब बात, भाई! सवेरे पढ़ा न? चार दिन से भाई! वे भाई कहते थे प्रवीणभाई। चार दिन पहले का लेख श्वेताम्बर में कहीं ऐसा लेख नहीं होता। ऐसा यहाँ लेख चार दिन चला न इतना सरस! ओहोहो!

चैतन्य का आया न भाव अन्दर। गुण में प्रवर्तता है और पर्याय में रहकर निर्वतता है। यह उसका लक्षण है। आहाहा! चार, पाँच लाईन में तो पूरा वस्तु का स्वरूप भेदज्ञान की व्याख्या की न। आहाहा! ऐसी शैली! बात नहीं दूसरी। समझ में आया? वीतरागी मुनि, संत, दिगम्बर मुनि महा वनवासी सन्त आत्मा में मस्त थे, मस्तानों में मस्त थे वे। उन्हें यह एक विकल्प आया और शास्त्र बन गया। परन्तु कहते हैं कि विकल्प, वह मेरा कर्तव्य नहीं। आहाहा! हमने पुस्तकें बनायीं... देखो! इसमें हमारा नाम है, देखो! यह। वहाँ घुस गया तू? आत्मा तो यहाँ है। आहाहा! भूलता है, वह कहाँ तक? कहाँ तक? ऊनोदर करे, कितने वर्ष से? अरे! पच्चीस वर्ष से हमने कभी पेट भरकर खाया नहीं।...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८५, गाथा-१७२, ज्येष्ठ शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक -०५-०६-१९७०

पंचास्तिकाय, १७२ गाथा। मोक्षमार्ग का विस्तार है। उसमें चलता है, वह शुभावलम्बी व्यवहारनय के अवलम्बी अकेले शुभपरिणाम की क्रिया में रुके हुए हैं। उन्हें शुभपरिणाम से रहित आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसकी चेतना का उन्हें कुछ भान नहीं।

यह बात चलती है। दर्शनाचार की बात हो गयी, ज्ञानाचार की हो गयी, चारित्राचार की बात हो गयी, तपाचार के बोल हो गये, देखो! तपाचार के चार आये हैं। **अनशन, ऊनोदरी, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग,...** यहाँ तक आया है। तप के आचरण में भी अज्ञानी तल्लीन है, कहते हैं। कहेंगे व्यावृत। **विविक्तशय्यासन...** अपने स्थान में पर से भिन्न—कोई संग न रहे, स्त्री, कुटुम्ब या नपुंसक का, ऐसे एकान्त में रहना, ऐसी उसकी आचरण दशा शुभराग की होती है। परन्तु वह कहीं धर्म नहीं है। समझ में आया?

आत्मा अन्दर राग से भिन्न है, उसका तो भान नहीं। मात्र बाहर की क्रियाकाण्ड में लवलीन है। वह कहेंगे। **विविक्तशय्यासन और कायक्लेश...** लोंच करे, कायक्लेश करे, आसन लगावे, ऐसे मोरासन लगावे इत्यादि। ऐसे काय को क्लेश पहुँचावे, ऐसी तपस्यायें भी बहुत करे। वह सतत् उत्साहित रहता है। उसमें निरन्तर उत्साह है परन्तु आत्मा क्या है, इसका उसे भान नहीं है। ऐसे क्रियाकाण्ड में रुका हुआ—तल्लीन-मग्न हुए। ऐई, छगनभाई!

कहते हैं कि ऐसे क्रियाकाण्ड में रुका हुआ मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वस्तु स्वरूप ही चैतन्यमूर्ति वह शुभविकल्प जो शुभराग की क्रिया से पार—भिन्न है। उसका अन्तर में स्पर्श, आश्रय, अवलम्बन कुछ नहीं। मात्र यह क्रियाकाण्ड करना, वह धर्म, ऐसा अज्ञानी मानता है, वह मिथ्यादृष्टि क्रम से देवलोक में कोई जाकर फिर वनस्पति होनेवाला है। **सतत् उत्साहित रहते हैं,...** यह छह प्रकार के बाह्यतप की बात ली।

अब **प्रायश्चित...** कुछ दोष लगा हो तो प्रायश्चित ले, अरे! अमुक हो गया और

यह क्या? परन्तु वह सब प्रायश्चित की क्रिया भी शुभविकल्प की, राग की है। वह कहीं धर्म की क्रिया नहीं है। आहाहा! **प्रायश्चित्त, विनय,...** देव-गुरु-शास्त्र का इतना विनय रखे। उसमें शास्त्र का विनय था। यहाँ देव-गुरु-शास्त्र का विनय करे बराबर, कहीं अविनय होने दे नहीं। इस प्रकार **अन्तःकरण को अंकुशित रखते हैं;...** विनय में स्वच्छन्दता या उद्धता न हो, ऐसा विनय करे, परन्तु वह सब शुभभाव है, शुभराग है। उस राग की क्रिया में वह कल्याण और धर्म मानता है। मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

विनय, वैयावृत्त्य,... सेवा करे, गुरु की, साधर्मी की सेवा में लवलीन, उसमें रुका हुआ। समझ में आया? **व्युत्सर्ग, कायोत्सर्ग...** ताव काय ठाणेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसिरामि। आता है या नहीं तस्सउत्तरी में? परन्तु वह तो सब विकल्प है। उस शुभराग में सर्वस्व मानता है और वह धर्म है और उससे हमारा कल्याण (होगा, ऐसा मानता है)। वह मिथ्यादृष्टि का कल्याण होगा और वनस्पति में जायेगा, ऐसा कहते हैं, वजुभाई! हाय... हाय! और **स्वाध्याय...** करे। लो आया। शास्त्रों के स्वाध्याय में लवलीन। सवेरे से शाम तक बराबर। बारह-बारह घण्टे, अठारह-अठारह घण्टे शास्त्र का स्वाध्याय। परन्तु वह शास्त्र तो पर है, उनके प्रति का स्वाध्याय का शुभराग पुण्य है। वह कहीं धर्म नहीं है। अरे! गजब बात! सेठी! क्या करना? सेठी को क्या करना यह? शास्त्र पढ़े भले तो भी शुभविकल्प है, राग है और उसमें माने कि धर्म होता है, निर्जरा होती है (तो) मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : स्वाध्याय से ज्ञान होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान कब? ज्ञान उससे होता है या ज्ञान स्वयं से होता है?

मुमुक्षु : निमित्त तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? निमित्त से न हो, इसका नाम निमित्त। आहाहा! शास्त्र फिराया करे, पढ़ा करे, स्वाध्याय करे और उसमें रुके। अब आयेगा उसमें-वीर्य में आयेगा। स्वाध्याय, वाँचन, उपदेश करना, वाँचन देना, वाँचन लेना, प्रश्न पूछना। सुजानमलजी! यहाँ के पूँछड़े-पर्यटन बारम्बार भूल न जाये। उसमें है या नहीं? उसमें देखो न पाठ।

आत्मा अन्तर राग की क्रियारहित चीज़ है। अक्रिय आत्मा है, उसमें राग की क्रिया है ही नहीं। ऐसी चीज़ की श्रद्धा को अन्तर का आश्रय और स्पर्श बिना इसे धर्म नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा का भान होवे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भान होवे तो भी वह (स्वाध्यायादि का भाव) शुभराग हेय है। होता है, यह पंच महाव्रत आदि ज्ञानी को भी होते हैं परन्तु वह धर्म नहीं। ऐसा मानता है, वह हेय है। यह उपादेय, आदरणीय और धर्म मानता है। ऐसा अन्तर है। धर्मी को पंच महाव्रत, स्वाध्याय, शास्त्र का विकल्प होता है परन्तु वह हेय है। अन्तर में उसका आश्रय और आदर नहीं। यह तो उसे ही धर्म मानता है। बहुत लवलीन होकर शास्त्र का स्वाध्याय करे, निर्जरा हो जायेगी।

मुमुक्षु : थोड़ा आदर तो होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी आदर नहीं। राग है, उसका आदर। अज्ञानी को पूरा आदर है। ज्ञानी को जरा भी आदर नहीं।

मुमुक्षु : फिर तो मन नहीं लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु विकल्प आवे, इसलिए वहाँ इसका लक्ष्य जायेगा। परन्तु वह विकल्प हेय है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है। वह तो सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा का है। उसके आनन्द में अन्तर के आनन्द की अन्दर में दृष्टि करने से जो शान्ति और आनन्द प्रगट होता है, उसका नाम संवर और निर्जरा और धर्म है। समझ में आया? व्याख्या अच्छी। क्रियाकाण्ड, वह कहीं धर्म नहीं है। कितना विस्तार किया है, देखो न!

और ध्यान... वापस ध्यान भी करे। दोनों आ गये। परन्तु यह सब ध्यान विकल्प शुभराग हो। समझ में आया? और उसे अन्तर की दृष्टि की खबर नहीं। ध्यान करता है, लो! राग हो... अपना निज स्वरूप (भगवान) आनन्दकन्द, वह तो रागरहित चीज़, उसका ध्यान, वह तो अन्तर स्वरूप की परिणति शुद्ध है। सूक्ष्म बात! व्यवहारावलम्बी शुभोपयोग में धर्म माननेवाले कर्मकाण्डियों का यहाँ निषेध किया है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्मध्यान भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मध्यान, वह कौन सा? शुभविकल्प को धर्मध्यान मानता है। अन्तर में रागरहित स्वभाव में एकाग्र होना, वह धर्मध्यान तो है ही नहीं। स्व का आश्रय तो है नहीं। पर के आश्रय के विकल्प का ध्यान है। देखो न! **ध्यानरूप परिकर,...** है न? यह सब समूह सामग्री। अब सब सामग्री शुभराग की है। आहाहा! समझ में आया? उसमें **परिकर द्वारा निज अन्तःकरण को...** ऐसे समूह सामग्री द्वारा, अपने मन को **अंकुशित रखता है।** आधीन रखता है। अशुभ में जाने नहीं देता। आधीन रखता है परन्तु आधीन रखे वह शुभभाव है। सहज स्वरूप चिदानन्द भगवान आत्मा, उसमें यह राग नहीं है। उसका इसे अनुभव नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्धात्मा का ध्यान करे वह शुक्लध्यान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म, यह धर्मध्यान। ऐसा है नहीं। ठीक लगाते हैं, सेठी! बचाव के लिये। धर्मध्यान के दो प्रकार—एक स्वरूप की एकाग्रता का ध्यान, वह निश्चय धर्मध्यान और यह विकल्प, वह व्यवहार धर्मध्यान। पुण्यबन्ध का कारण।

मुमुक्षु : इसमें से कौन सा होगा इसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : हें? यह कौन सा होगा? यह दूसरा है, वह है। आया था न अपने, नहीं? मोक्ष अधिकार में। चिन्ता किया करे। हाँ, परन्तु यह धर्मध्यान तो कहा था न? यह धर्मध्यान लगता भी है न। शुभराग का विकल्प उठे वह धर्मध्यान, अन्ध है। चैतन्य भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति है आत्मा आनन्द की मूर्ति है, उसकी तो खबर नहीं। उसका स्वसन्मुख और स्वआश्रय तो जरा भी लिया नहीं। पराश्रय का ध्यान आदि किया करे। ऐसा मार्ग है, सेठी! आहाहा! अभी सम्प्रदाय के साथ तो सब विवाद उठे, ऐसा है बस।

अब, निज अतःकरण और ऐसे तप द्वारा, देखो! अभ्यन्तर तप, हों! वे छह लिये। तथापि वह शुभराग है। आहाहा! **वीर्याचार के लिये...** अब यह अन्दर में पुरुषार्थ करता है। उसके लिये **कर्मकाण्ड में सर्व शक्ति द्वारा व्यापृत रहते हैं;...** यह तो बराबर ऐसा करूँ, यह करूँ, खाना ऐसे और पीना ऐसे और लेना ऐसे और शुभराग के क्रियाकाण्ड

में गुँथा हुआ रहता है, रुका हुआ रहता है। वहीं का वहीं, आहाहा! परन्तु राग बिना मेरी चीज़ क्या है, इसके आत्मा का इसे ज्ञान या भान नहीं है। समझ में आया?

वीर्याचरण, पुरुषार्थ करता है। करता है पुरुषार्थ वीर्य का। कर्मकाण्ड में। ज्ञानाचरण का विकल्प, विनय आदि, दर्शनाचरण का निःशंक आदि और चारित्राचार का महाव्रत आदि और तपाचार का विनय आदि। यह वीर्याचार वह सब कर्मकाण्ड में, शुभभाव में अपने आत्मा को **सर्व शक्ति द्वारा...** ऐसा। जितना पुरुषार्थ उघड़ा हुआ है, उसमें जोड़ता है। वह जुड़ा हुआ है, शुभराग में, शुभोपयोग में **व्यापृत रहते हैं;...** व्यापृत ऐसा शब्द है। व्यापृत अर्थात् रुका हुआ रहता है। कर्मकाण्ड में रुका हुआ, बस! आहाहा! कहो, समझ में आया? कहो, पण्डितजी! क्या करना?

छह प्रकार के अभ्यन्तर तप कहते हैं कि शुभराग। बाह्य पर लक्ष्य है न! वह कहाँ अभ्यन्तर तप है? वास्तविक अभ्यन्तर तप तो राग से रहित, इच्छा निरोध करके, अमृत सागर भगवान आत्मा के अमृत का वेदन हो, उसका नाम वास्तविक धर्म और तप कहने में आता है। बाकी यह सब लंघण है, वहाँ ऐसा कहते हैं। यह वर्षीतप करते हैं न। करते हैं न सब। जैचन्दभाई! एक दिन खाना और एक दिन नहीं खाना। बारह महीने में मनावे, वैशाख शुक्ल तीज। पाँच-दस हजार खर्च करके। नहीं तो कहाँ लंघन किया था इसने? लंघन नहीं लंघन का बाप था, सुन न अब। वर्षीतप कभी किया है या नहीं घर में महिलाओं ने? नहीं किया? परदेश में रहे हों, इसलिए नहीं किया होगा। देश में... ऐई मोहनभाई! किया था या नहीं डाहीबहिन ने? पहले किया था। फिर मनाना पड़े। ठीक से न मनावे तो बाधा उठे। ऐ न्यालभाई! यह सब क्रियाकाण्ड है, दया, दान, व्रत और महाव्रत, पूजा, भक्ति, तपस्या, अनशन और ऊनोदर, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रायश्चित, विनय यह सब शुभराग की क्रिया राग की है। यह कर्मकाण्ड में रुके हुए अज्ञानी उसे धर्म मानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्दर इस राग के परिणाम से भिन्न चीज़ है। उसे तो स्पर्श भी नहीं करता, देखता भी नहीं, सन्मुख नहीं होता, स्वआश्रय करता नहीं, मात्र पराश्रय में ही सर्वस्व रुका हुआ है। आहाहा! **ऐसा करते हुए...** पाँचों पूरे हो गये। पाँच कौन? दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। **कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण...**

देखो! अर्थात् क्या? राग है, वह कर्मचेतना है। वह कहीं ज्ञान आचरण चेतना नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह कर्मचेतनामुख्यपने के कारण, करना-महाव्रत पालना, अहिंसा पालना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, रस परित्याग करना, गुरुओं का विनय करना, ऐसा सब भाव कर्मचेतनामुख्यपने के कारण, कर्म अर्थात् राग में चेत गया है। यह चैतन्य में चेता हुआ नहीं है। भारी सूक्ष्म! **कर्मचेतनाप्रधानपने के कारण—यद्यपि अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है...** भले मिथ्यादृष्टि परन्तु इतना तो स्पष्टीकरण किया है जरा। उस प्रकार का अशुभ भले। मिथ्यात्व का अशुभ, यह प्रश्न अभी यहाँ नहीं है। चारित्र का।

अशुभकर्मप्रवृत्ति अर्थात् अशुभभाव। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, काम, इन सब परिणाम से निवृत्त हुआ है। अविनय से निवृत्त हुआ है, स्वच्छन्द से निवृत्त हुआ है। **अशुभकर्मप्रवृत्ति का उन्होंने अत्यन्त निवारण किया है...** अत्यन्त निवारण किया है, वापस ऐसा। जो अपेक्षा है, वह अपेक्षा सिद्ध करते हैं न? अशुभभाव तो बिल्कुल होने नहीं देता।

तथापि शुभकर्मप्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है। शुभउपयोग की क्रिया को बराबर पकड़ रखा है और उसमें ही रुका हुआ, उसमें ही लवलीन और उसमें ही दृढ़ मग्न गूँथा हुआ। आहाहा! गजब काम यह तो कठिन, हों! वाड़ावालों को तो सम्प्रदाय को तो कठिन पड़े। यह कहे कि व्यवहार ऐसा करे, परन्तु व्यवहार ऐसा करे फिर निश्चय हो या ऐसा कुछ करे नहीं और सीधे निश्चय हो जायेगा? अरे! सुन न अब! यह तो शुभराग की क्रिया है। यह तो अनन्त बार की है। परलक्ष्यी शुभपरिणाम है, कहेंगे अभी।

पुण्य बाँधे पुष्कल, पुण्य बाँधे पुष्कल, धर्म की नहीं गन्ध। शुभ कर्मप्रवृत्ति को, यह देखो! कर्म शुभकर्म, कर्म शब्द से राग। शुभराग की प्रवृत्ति परिणति अन्दर शुभराग की प्रवृत्ति को जिन्होंने बराबर ग्रहण किया है, ऐसा। शुभभाव में खण्ड जरा होने देता नहीं। परन्तु वह सब क्रियाकाण्ड के परिणाम हैं। कर्मकाण्ड के हैं, ज्ञानकाण्ड के नहीं। आहाहा!

ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई... लो! अब, ऐसा जो शुभराग विकल्प जो क्रियाकाण्ड, कर्मकाण्ड है, उससे **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई...** ऐसे शुभविकल्प से भिन्न **दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप ज्ञानचेतना को किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,...** लो! समझ में आया? यह शुभविकल्प का व्यापार शुभपरिणाम का, शुभयोग का कर्ता होने से उस क्रियाकाण्ड से रहित यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र भगवान आत्मा की **ऐक्यपरिणतिरूप...** जानना-देखना और स्थिर होना, ऐसी ऐक्यपरिणति जो आत्मा की, उसे **किंचित् भी उत्पन्न न करते हुए,...** लो! इतना करे तो भी ज्ञानचेतना जरा भी करता नहीं। यह परसन्मुख है और यह स्वसन्मुख की क्रिया है। दोनों बातें ही पृथक् हैं।

ऐसे वे, सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से... भाषा देखो न! यह क्रियाकाण्ड का आटोप सब ऐसे मानो। ओहोहो! मानो क्या करते हैं हम, मानो! उपवास और ऊनोदर और रसपरित्याग, वर्षीतप, आंबेल और ओळी। ८६-८६ ओळियाँ। सब होली है। प्रवीणभाई! यह ८६ ओळी की। अमुक किया। क्या है परन्तु अब उसमें? अरे! एक अनाज पर एक चावल और छाछ पर की, अमुक के ऊपर की। वह तो सब कर्मकाण्ड है। उसमें धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात! कहो, समझ में आया इसमें?

सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर से पार उतरी हुई... अर्थात् कि **अन्तर में दर्शनज्ञानचारित्र की ऐक्यपरिणतिरूप...** निर्मल, उसे जरा भी उत्पन्न नहीं करता। ऐसा तो करता है परन्तु यह नहीं करता। ऐसा कहते हैं। ज्ञानस्वभाव समुद्र भगवान आत्मा! चैतन्य का पिण्ड प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत का सागर आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और परिणति, उसे जरा भी स्पर्श नहीं करता, नहीं करता। इतना करता है, तथापि यह नहीं करता, ऐसा कहते हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की इस क्रियाकाण्ड से भिन्न पार उतरी हुई अविचल वस्तु जो भगवान आत्मा, उसका-ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान की प्रतीति और ज्ञान में रमणता, ऐसी जो स्वद्रव्याश्रय परिणति अर्थात् पर्याय, उसे जरा भी उत्पन्न नहीं करता। इसका अर्थ हुआ कि व्यवहार से कहीं निश्चय नहीं होता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

सामायिक करे। तीस-तीस सामायिक, प्रौषध करे। आठ-आठ दिन के पूरे

चतुर्विध आहार त्याग, हों! आठ दिन। पानी नहीं... ओहोहो! इसका करे फिर, विशाल शोभायात्रा निकाले। वाह! तपस्या वाह! अज्ञान है, यहाँ तो कहते हैं। वजुभाई! आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर देह की क्रिया से तो पार परन्तु वह पुण्य के विकल्प से पार उतरा हुआ चैतन्य अन्दर भिन्न है। ऐसे आत्मा की अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जरा भी करता नहीं। कर्मचेतना को करता है और ज्ञानचेतना को करता नहीं। यह दोनों संक्षिप्त शब्द कहे। आहाहा! कहो, अमृतभाई! सम्प्रदाय में तो सब विवाद उठा। बेचारे लाखोंपति की बहू वर्षीतप करे। एक दिन खाये और एक दिन न खाये और अन्त में अठम करने के बाद पारणा हो। अन्त में वापस माला का मिलान चाहिए न ऊपर। माला को वह होता है न बारह महीने पूरा करने के बाद अन्त में अठम। सोंठ चोपड़े और फिर पूछने आवे, और देखने आवे। पाँचवें काल का अठम, वह तो चौथे काल के मासखमण है। ऐसा करके महत्ता करे। महिलायें महत्ता करे अन्दर में हम जायें न! आहाहा! सेठिया की बहुएँ हों बड़ी। अठम अर्थात् पाँचवें काल का अठम, ओहोहो! यह तो पुरुषार्थी हो वह करे।

यहाँ कहते हैं तेरा पुरुषार्थ अठम में गया है। वह राग में गया है, अज्ञान में गया है। ले! छगनभाई! यह सब बेचारे उग-उगकर तपस्यायें करे, यह तो करे न! (संवत्) १९९० में हमारे यहाँ हुआ था। १९९० में सम्प्रदाय में थे न, वहाँ सेठिया आते न, बात ऐसी होगी। गाँव में कितने उग-उगकर लाखोंपति की बहुएँ अपवास करे, उन्हें यह लंघन कहते हैं। लंघन का बाप है, सुन न अब! लंघन तेरा। ऐई! मलूकचन्दभाई! किया था या नहीं? घर में कभी किया था? वर्षीतप किया था कभी? नहीं। यह सब पीछे बहुत इसमें आ गये न? बहुत वर्ष उसमें रहे हैं। फिर कहाँ से करे? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

तब क्या करते हैं? उत्पन्न यह करते नहीं। क्या? आत्मा अन्दर वस्तु भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्द जिसमें यह शुभ क्रियाकाण्ड से भिन्न चीज़ है। उसमें से ज्ञानचेतना आत्मा का ज्ञान, उसका ज्ञान में से चेतना, स्वरूप में चेतना, यह करते नहीं। **उत्पन्न करते हुए,...** तब क्या होता है वहाँ? **पुष्कल (बहुत) पुण्य के भार से...** पुण्य हो, शुभभाव हो। महा **भार से मंथर हुई...** जड़ हो गये। नीचे है या नहीं? देखो! यह पहले

जड़ लिया, फिर मन्द। मन्द हुए। **मंथर,...** अपने शब्द आता है न वह ब्राह्मण का आया था न, लड्डू खाकर बैठा हो, फिर हिल सके नहीं। इसी प्रकार यह प्रमाद में लवलीन हो गया है। आहाहा! जरा भी अन्तर में गति नहीं कर सकता। समझ में आया? **बहुत पुण्य...** अरे! पुण्य तो होगा। पुष्कल तो है या नहीं यह? पुष्कल पुण्य अर्थात् शुभभाव से पुण्य बाँधेगा। उसमें बँधेगा। उसमें अबन्ध परिणाम नहीं होंगे। ऐसा नहीं। शुभ तो नहीं। भारी काम यह भाई! यह तो तीनों सम्प्रदाय में विवाद उठा हुआ है। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी। ऐ कनुभाई!

मुमुक्षु : अटके हुए को निकाल दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुका हुआ वहाँ है कि यह धर्म नहीं। रुका हुआ हो वहाँ आगे, आया था न तीनों ही? गुँथा हुआ है, गुँथ गया है। महिलाएँ गुँथित है न कुछ? इसी प्रकार यह क्रियाकाण्ड में घुस गये हैं। यह करना, यह खाना, यह पीना, यह उपधान... यह देखो न, यह उपधान करे न, जेठाभाई क्यों नहीं? गये? गये। जानेवाले थे। घेलाणी। उनकी लड़की को कुछ है, उसके लिये गये थे। यहाँ घेला हो गये। क्या करना कुछ सूझ पड़ती नहीं, कहे। उत्साह नहीं करते होंगे न? उत्साह करना यह तुम्हारे, क्यों करना, कैसे... उत्साह नहीं करते तुम? ढीले ढस (शिथिल) हो गये। पढ़ा बहुत न, इसलिए ऐसा हो गया कि अपने को तो, जो पढ़े वह तो आता है, ...जो सुने, वह तो आता है। परन्तु अपने को आता है, इसमें रुक गये। हो गया। कल ही कहते थे।

कहते हैं कि अज्ञानी ऐसे शुभ क्रियाकाण्ड में ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार और चारित्राचार। पंच महाव्रत के विकल्प में लवलीन गुँथा हुआ, रुका हुआ। पुण्य बाँधे, कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि यह तो इन दिगम्बर के शास्त्र में उसे पुण्य पुण्य कहा है। अपने शास्त्र में तो उसे निर्जरा कहा है। और ऐसा कहकर वापस बचाव करे। एक आर्यिका ऐसी कहती है। दूसरे को कहने लगा कि यह तुम्हारे पंचम काल, यह तो सब दृष्टि विकल्प है, (तो कहे) नहीं, हमारे शास्त्र में तो इसे निर्जरा कहा है। वह तेरे शास्त्र ही खोटे हैं, सुन न! परसन्मुख के विकल्प को निर्जरा कहा, वह धर्म— वह शास्त्र धर्म के नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक व्यक्ति ने ऐसा कहा था। सब आया है न बाहर। अपने शास्त्र में ऐसा कहा है। उनके शास्त्र में ऐसा होगा। परन्तु शास्त्र से विकल्प उठे, यह उसे कहीं धर्म कहे, वह शास्त्र किसका? आहाहा! वह तो क्रिया का शुभराग है। **बहुत पुण्य के भार से मंथर हुई...** मन्द, सुस्त, सुस्त, आलसी, जैसे वह ब्राह्मण लड्डू खाकर फिर निश्चिन्तता से सोवे, आलसी के गोर जैसा। कहते हैं, ऐसे **मंथर हुई चित्तवृत्तिवाले...** ऐसी वह चित्तवृत्ति, वहाँ ही रुक गयी, वहाँ ही मस्त हो गया, **वर्तते हुए, देवलोकादि के क्लेश की प्राप्ति की परम्परा द्वारा...** लो! वहाँ से देवलोक फलेगा कदाचित् उसे, वहाँ से कोई मनुष्य-बनुष्य हो जरा यह बड़ा करोड़पति, वहाँ से मरकर वापस नीचे त्वरित जाये। ऐई! यह पूर्व में ऐसा कोई शुभभाव हो (तो) स्वर्ग में जाये। देवलोक आदि शब्द हैं न? मनुष्य में जाये। राजा हो, कोई सेठ हो। **प्राप्ति की परम्परा द्वारा...** वह फिर मरकर कहाँ जायेगा? **अत्यन्त दीर्घ काल तक संसारसागर में भ्रमण करते हैं।** चौरासी के अवतार में भटकेगा। उसे भव का अन्त आयेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह व्यवहार के क्रियाकाण्डवाले पाँचों ही आचारवाले लिये। कि जिसे चरणानुयोग में तेरे प्रसाद से, यह तो निमित्तपना है, इसलिए प्रसाद से बात की, बाकी स्वरूप का साधन तो अन्तर से करता है। उसे ऐसा निमित्त था, उसका ज्ञान कराने के लिये कहा है। यह तो कहते हैं, ऐसी क्लेश की परम्परा, ऐसा वापस। देवलोक में भी सुख होगा और सेठ होगा, इसलिए सुखी होगा। धर्मी आत्मा का, आत्मा के भानवाले को शुभराग होता है, वह भी स्वर्ग में सिंकेगा इतना तो और फिर राजा आदि होगा वहाँ भी राग में सिंकेगा। राग है न परसन्मुख का झुकाव। पैसेवाले और करोड़पति और लाखोंपति धूलपति सब है। समझ में आया? अरे! गजब! छगनभाई! सुखी है सुखी, लो! धूल में भी सुखी नहीं। आत्मा के सुख के अतिरिक्त बाहर में सुख है कहाँ तीन काल में? ऐसे क्रियाकाण्ड का भाव वह दुःखरूप है। दुःखरूप है, उसके फल में वापस दुःख है। यह तो शुभभाव है और उसके फल में वापस देवलोक में अशुभभाव होगा वहाँ। पुण्य की सामग्री भोगेगा न ऐसे। सामग्री भोगे अर्थात् उसकी ओर का लक्ष्य जाकर, राग को, क्लेश को भोगेगा। सेठिया होगा मिथ्यादृष्टि ऐसे शुभ परिणाम में। इस पुण्य के फल में क्लेश को भोगेगा।

मुमुक्षु : सेठाई नहीं भोगेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठाई कौन भोगे। जड़ को भोगेगा? हें? हैरान, हैरान हो जायेगा। कहते हैं कि **अत्यन्त दीर्घ काल तक...** अर्थात् परम्परा से ऐसा भोगकर बहुत लम्बे काल तक एकेन्द्रियादि संसार के सागर में भ्रमेगा। लो! संसार सागर में, महासागर संसार। चौरासी के अवतार। आहाहा! और ऐसी क्रिया बताकर दूसरे को ऐसा कि हम कुछ धर्म करते हैं, और हम कुछ अच्छे हैं, ऐसा वापस बतलाना है इसे।

मुमुक्षु : वह तो शुभभाव। शुभभाव उसे आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भले शुभभाव हो। यह तो वापस बतलाने का भाव, ऐसा वापस, ऐसे। गहरे-गहरे। यह और अशुभभाव है वापस, बतलाने का भाव है वह। देखो! हम दूसरे की अपेक्षा अच्छा करते हैं। वह तो करते भी नहीं। हम ऐसा करते हैं। वह मिथ्यात्व को पोषकर, शुभपरिणाम बाँधकर, देवलोक आदि के क्लेश भोगकर संसार में भटकेगा। उसे जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! कहा भी है कि—

'चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कावावारा।
चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण जाणंति॥'

न्याय समझाते हैं, वापस इसका सार। जो चरणपरिणामप्रधान हैं, जिन्हें करना, व्यवहारचारित्र के परिणाम की मुख्यता है। **स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित हैं,...** परन्तु स्वसमय चैतन्य भगवान आत्मा के आनन्द और ज्ञान का लीनता में अभाव है। **वे चरणपरिणाम का सार जो निश्चयशुद्ध (आत्मा) उसे नहीं जानते।** सार अर्थात् कि चरणपरिणाम से हटकर शुद्धता जो होना चाहिए, उसकी उसे खबर नहीं। कहो, शान्तिभाई! ऐसा ही है न यह सब, देखो न! यह भी ऐसा कहाँ ठिकाना है अभी। ...आहाहा! और मानता है कि हम धर्म करते हैं न हम...

कहते हैं कि जो कोई **चरणपरिणामप्रधान हैं...** शुभभाव की क्रिया जिसकी मुख्य है। स्वसमयरूप परमार्थ में व्यापाररहित है। परन्तु यह शुभराग के परिणाम से भिन्न भगवान के ज्ञान-दर्शन के व्यापाररहित है। **वे चरणपरिणाम का सार...** वह शुभ में से निकलकर शुद्ध होना, इसकी उसे खबर नहीं है। वह निश्चयशुद्ध, उसे जानते

नहीं। लो! **चरणपरिणाम का सार...** वापस भाषा ऐसी है कि वे उलझन में आयें। भाई! नीचे (फुटनोट में) अर्थ है, देखो! इसका दूसरा। है न इस प्रकार।

संस्कृत छाया इस प्रकार है: —चरणकरणप्रधानाः स्वसमयपरमार्थमुक्तव्यापाराः। चरणकरणस्य सारं निश्चयशुद्धं न जानन्ति॥ इसका संस्कृत है। ऐकड़ा कहाँ आया? फिर आयेगा न? अन्त में। **जानते नहीं।** लो! अब इसका ऐकड़ा नीचे (फुटनोट में)। **श्री जयसेनाचार्यदेवकृत तात्पर्यवृत्ति-टीका में व्यवहार-एकान्त का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया गया है: —जो कोई जीव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष...** विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव, ऐसा भगवान आत्मा विशुद्धस्वभाववाला शुद्धात्मतत्त्व, उसका जो अन्तर सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण। ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग से निरपेक्ष **केवलशुभानुष्ठानरूप व्यवहारनय को ही मोक्षमार्ग मानते हैं,...** निश्चय से निरपेक्ष अकेले व्यवहार को ही मोक्षमार्ग मानता है। **वे उसके द्वारा देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त करते हुए संसार में परिभ्रमण करते हैं;...**

परन्तु,... अब लेते हैं। **यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षण निश्चयमोक्षमार्ग को माने...** भगवान शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्द ऐसे शुद्धात्मानुभूतिलक्षण जिसका ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग, देखो! शुद्ध अनुभूतिलक्षण, ऐसा निश्चयमोक्षमार्ग, उसको माने-जाने **और अनुभवते हुए और निश्चयमोक्षमार्ग का अनुष्ठान करने की शक्ति के अभाव के कारण...** उसमें स्थिरता की शक्ति का अभाव होता है। है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, परन्तु उसमें स्थिरता का अभाव हो। **निश्चयसाधक शुभानुष्ठान करें,...** निश्चय को व्यवहारसाधकरूप से शुभ अनुष्ठान में आवे तो वे सराग सम्यग्दृष्टि है। इतना रागभाग है, इसलिए उसे सराग समकिती कहा जाता है। है तो सम्यक् निश्चय उसका रागभाग है, इस अपेक्षा से उसे सराग समकिती कहने में आता है। **और परम्परा मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार व्यवहार-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये।**

अब उस सराग का स्पष्टीकरण करते हैं। यहाँ जो 'सराग सम्यग्दृष्टि' जीव कहे, उन जीवों को सम्यग्दर्शन तो यथार्थ ही प्रगट हुआ है। ज्ञानस्वरूप आत्मा आनन्द की अनुभूति तो यथार्थ है। उसका भान भी यथार्थ है। **परन्तु चारित्र-अपेक्षा से उन्हें मुख्यतः**

राग का अस्तित्व होने से... कारण कि वह शुभराग है न आचरण में। अन्दर स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए शुभराग के आचरण में आता है। **राग का अस्तित्व होने से 'सराग सम्यग्दृष्टि' कहा है, ऐसा समझना। और उन्हें जो शुभ अनुष्ठान है, वह मात्र उपचार से ही 'निश्चयसाधक (-निश्चय के साधनभूत)...** अन्दर आया था न? **निश्चयसाधक शुभानुष्ठान...** निश्चय का साधक शुभराग **कहा गया है, ऐसा समझना। वह व्यवहार उपचार से है। उन्हें जो शुभ अनुष्ठान है, वह मात्र उपचार से ही 'निश्चयसाधक (निश्चय के साधनभूत)' कहा गया है,...** वास्तव में है नहीं। परन्तु ऐसा जहाँ कथन आवे इसलिए वे हं... देखो! कहा है या नहीं? निश्चय साधक को शुभभाव को कहा है या नहीं? शुभ का यहाँ तो निषेध करते आते हैं कि जिसे निश्चय का भान नहीं, अकेला शुभ करता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। ऐसा तो कहते आते हैं। उसमें वहाँ साधक कहाँ से आया यह? परन्तु स्वरूप का भान-अनुभवदृष्टि है, उसे जो शुभभाव आता है, उसे इसका व्यवहार से साधक निश्चय का है, ऐसा कहने में आता है। नहीं है, उसे कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। समझ में आया? गजब बात, भाई! लो! यह व्यवहारावलम्बी की बात हुई।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव और आनन्द का धाम ऐसा आत्मा। आता है या नहीं? लड़के बोलते हैं, नहीं? आनन्द का धाम, आनन्द का धाम, क्या? 'मैं हूँ आनन्द का धाम' आता है न लड़कों में आता है वह, बालपोथी में आता है या नहीं कहीं? अन्यत्र आता होगा। लड़के तो बोलते हैं... वह बोलता था न? धनपालभाई का छोटा लड़का। कहाँ गया? नहीं? हें? वह बोलता था। 'मैं हूँ आनन्द का धाम आनन्द का, आनन्द का, आनन्द का धाम। मैं हूँ आत्मा, मैं हूँ परमात्मा।' लड़के बोलते हैं वहाँ, सीखते हैं, वह चम्पक है न? कच्छी, दादर में सीखाते हैं लड़कों को। बोलता था छोटा। लड़कों को बहुतों को कितनों को तो दादर में तो... बोलना तो सीखे!

मैं हूँ शुद्ध शरीर, मैं हूँ एकेन्द्रिय, मैं हूँ मनुष्य, मैं हूँ सेठिया, इसकी अपेक्षा मैं आनन्द आनन्द का धाम हूँ। कहो, समझ में आया? मैं पैसेवाला हूँ, स्त्रीवाला हूँ और पुत्रवाला हूँ, दशाश्रीमाली हूँ और बनिया हूँ... धूल भी नहीं, सुन न! आनन्द का धाम

भगवान अन्तर ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को स्पर्श किये बिना अकेले शुभभाव को ही धर्म मानता है, ऐसे क्रियाकाण्ड को मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

अब केवलनिश्चयावलम्बी (अज्ञानी) जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:— निश्चय का भान नहीं और अकेले निश्चय की बातें करके शुभभाव भी करते नहीं और अशुभ में जाते हैं, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? **केवलनिश्चयावलम्बी...** मात्र निश्चय की बातें करनेवाले शुभभाव को करते नहीं, क्योंकि शुभभाव तो कर्मकाण्ड है। पुण्यबन्ध का कारण है। वह नहीं निश्चय को प्राप्त हुए, नहीं शुभभाव में आते, इसलिए स्वच्छन्दी होकर अशुभभाव में जाते हैं। कहो, समझ में आया?

एक आये थे, हमारे थे न एक, वेरावळ के थे। वेरावळ के एक। यहाँ आते वच्छराजभाई के। वनरावन नहीं? वनरावन। खा के मोटा स्थूल शरीर, ऐसे पड़े रहें। अब कुन्दकुन्दाचार्य तो हमारे पास बहुत बार आ जाते हैं, कहे। अभिमान फटा! सोते रहें और सोते-सोते ध्यान करें और अभी तो मिथ्यादृष्टि। बहुत समय से बात की थी, हों! (संवत्) १९८४ के वर्ष अमरेली। वापस चोरियाँ करे। जिसका नया नाम लिखे, उसका पैसा खा जाये। तीन-तीन हजार खर्च किये थे। फिर कहे कहाँ गये? मैं तो दान में दिये। मेरे पास थे तो कोई लेने आवे तो... परन्तु रुपये कहाँ तेरे बाप के थे तो वे दे दिये। परन्तु कहे, मेरी जेब में हो तो फिर न रहे। मूर्ख ही है न। नामा माँगा लोगों ने। नौकर रखे थे वहाँ। स्थानकवासी में थे। फिर तो पैसे खा गये तीन-चार हजार रुपये। कितने होंगे संघ के। कहे, पैसे का क्या हुआ? मेरी जेब में हो और मैं गरीब को देखूँ तो न रहे। परन्तु पैसे तेरे कहाँ थे? अब? अब मेरे पास कुछ नहीं।

यह सब निश्चयाभासी बातें करे ऐसी बिल्कुल, ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य। अब वे कुन्दकुन्दाचार्य तो मेरे पास कितनी ही बार आ जाते हैं। ठीक! पागल के गाँव कहीं अलग होते हैं?

मुमुक्षु : पागल के ही गाँव होते हैं, चतुर के तो होते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! एक व्यक्ति यहाँ दूसरा आया था स्थानकवासी। थे साधु मन्दिरमार्गी... वह समवसरण देखने आये थे। बीमार होकर फिर पूरा... अरे!

जिसे निश्चय का भान हो, उसे माँस और शराब में अन्तर क्या? उसे खाना... उसे क्या पाप लगे? ओय... यह क्या फट गया प्याला इसका (अभिमान में चढ़ गया) कहा। स्थानकवासी के साधु थे मन्दिरमार्गी में। कमने रहे। फिर आये। जिसे निश्चय का भान हो, उसे फिर माँस और शराब, उसे उनमें क्या अन्तर है? अरे! माँस, शराब खाने (पीने) के भाव समकिती को होते नहीं। सुन तो सही! समझ में आया? और निश्चय को जिसने जाना उसे फिर यह खाना और यह नहीं खाना, ऐसा लेना और नहीं लेना, यह क्या? अरे! मर जायेगा, कहा।

अहा! मुनि होते हैं भावलिंगी सन्त, उन्हें भी उनके लिये बनाया हुआ आहार नहीं लेते। निर्दोष हो तो ले, ऐसा ग्रहण-त्याग का विकल्प तो होता है। समझ तो (सही!) माँस खाते होंगे? शराब पीते होंगे? परस्त्री का लम्पटी, आत्मा को कुछ नहीं। वह स्त्री तो परद्रव्य है, आत्मा को क्या? परद्रव्य किसे... परन्तु भाव हुआ तेरा, उसे भोगने का, वह भाव क्या है? मूढ़ता में मर जायेगा। निश्चय की बातें करके वापस ऐसे स्वच्छन्द का सेवन करे और कहे क्रमबद्ध में आनेवाला था इसलिए, और ऐसा कहे कितने ही। एक व्यक्ति और ऐसा कहता था। यहाँ था न, आया था कलकत्ता से। कलकत्ता में रहता था। वहाँ से उसका लेख आया था। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अपने नहीं था यहाँ? भूपत। बेचारा कहीं रह गया अब। उसने और नियम लिया है यहाँ। वहाँ वेश्या को भोगे। दूसरा पूछे तो (कहे) क्रमबद्ध में ऐसा आया होगा। अरे! मर जायेगा! ऐई! यहाँ खबर पड़ी तो निकाला यहाँ से। यहाँ नहीं भाई तू। यह बोल तेरा लगता है। हाँ। नहीं था भूपत? ऐसे के ऐसे जीव। ऐसा कि, फिर पर का द्रव्य कैसा द्रव्य हो न अपने क्या है उसे? देह की क्रिया विषय की हो, खाने की हो, माँस की हो, शराब की हो। अरे! मर जायेगा तू! भाव किसका है? निश्चय का नाम लेकर स्वच्छन्द सेवन करेगा तो मरकर नरक में जायेगा और वनस्पति में जायेगा नीचे, वापस। समझ में आया?

उसको (व्यवहाराभासी को) तो देवलोक भी मिलेगा। ऐसा कहा था। इसे तो, जायेगा नरक में नीचे सीधे। छगनभाई! ऐसी बात है, भाई! हम आत्मा हैं, हम तो बस। आत्मा ज्ञान-दर्शन ज्ञाता है। अब चाहे जैसी उसकी क्रिया हो, उसे भी चाहे जैसे क्रिया के परिणाम तेरे हैं या किसी के हैं? धर्मी को ऐसे माँस के, शराब के, शिकार के,

अभक्ष्य के ऐसे परिणाम नहीं हो सकते। समझ में आया? लम्पटीपने के, परस्त्री के लम्पटी और कहे कि वह तो इस जाति के क्रमबद्ध में... उसे क्रमबद्ध का जिसने निर्णय किया हो, उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। उसे ऐसा होता है, इसलिए क्रम से हुआ और जानता है, ऐसा नहीं होता। आहाहा! गजब करता है न! पण्डितजी! ऐसे ऐसा करते हैं वापस निश्चयवाले, ऐसा करके लगाया। यह स्वच्छन्दी। चाहे जैसा परिचय करे। समझ में आया? देखो! आता है न? स्त्री भी पैर दबावे, तेल चोपड़े, नग्न मुनि को, नग्न को। अरे! कुकर्म! ऐसा नहीं होता। समझ में आया? ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : मुनि को तेल चुपड़ने का होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। हवा लगे, सर्दी बहुत (हो) शरीर-चमड़ी में। तेल तो बहुत प्रकार के होते हैं न, एक आया है अपने फार्मेसी का एक, उसमें तेल कुछ होगा। पत्र आया था, नहीं? कल रात्रि को, चन्दुभाई, नहीं? नहीं दिया था पत्र यहाँ था न? यहाँ थे। कल थे। कहीं था। पंचांग नहीं, उसके पहले पत्र आया था। तेल वर्णीजी ने महिमा की थी तेल। भाई ने महिमा की मनोहरलालजी ने, उन महावीरकीर्ति ने, यह सब ले सही न! तेल सब चोपड़ने। तुम्हारा तेल बहुत अच्छा। एकदम रोग मिट गया। ऐसा लिखे वापस। संघ के सब प्रयोग करते हैं। अरे! साधु को और क्षुल्लक को तेल चोपड़ना! ऐसा कि अब हमारे क्या? हम तो त्यागी हैं। शरीर के लिये। परन्तु किसके त्यागी? आहाहा! समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा राग हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा राग हो? तीव्र। तीव्रता में तेल चोपड़े और शरीर अच्छा रखे इसलिए फिर सर्दी होय नहीं। इसलिए तो उन्हें यह होली हुई। वे बाबा अन्यमति के नग्न रहते हैं न। नग्न रहते हों, फिर सहन न हो इसलिए राख चोपड़ते हैं। राख घर में होती है न राख। राख समझते हो न? भस्म। इसलिए वह सर्दी नहीं लगे। तब इन्हें राख चोपड़ नहीं सकते, इसलिए तेल चोपड़े। तो वह का वह हुआ वहाँ। पण्डितजी!

कहते हैं कि निश्चय का नाम लेकर ऐसे स्वच्छन्द सेवन करेगा (तो) मर जायेगा। यहाँ पोपाबाई का राज नहीं है। आहाहा! कौन जाने यहाँ दुनिया में हिलायेगा

परन्तु वहाँ कुदरत के नियम में नहीं चलेगा। आहाहा! लम्पटीपना करे, बड़े पाप सेवन करे, मछलियाँ खाये, मछलियों का तेल पीवे। रस के लिये शरीर निरोगी रहेगा। निश्चय में होना होगा वह होना था। होना था, वह भाव तेरा बुरा किया, उसका क्या किया तूने? समझ में आया?

यह उसकी सम्हाल लेते हैं अब। व्यवहारवाले की सम्हाल ली। पागलों जैसी बातें करे। व्यवहार के क्रियाकाण्ड में धर्म मानेगा (तो) मर जायेगा। वहाँ आत्मा का खून होता है। यहाँ निश्चय का नाम लेकर स्वच्छन्दी हो, उसकी बात अब सम्हालते हैं। उसका कलाई पकड़ते हैं, कहे-खड़ा रह तू।

जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए,... व्यवहार के जो दया, दान, व्रत के परिणाम। निश्चय का तो भान है नहीं और व्रत आदि के परिणाम से विरक्त है। यह नहीं। बन्ध के कारण हैं, माने कहे किसने इनकार किया? उसे छोड़कर अशुभ करता है, वह बन्ध का तीव्र कारण नहीं? समझ में आया? **सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर...** आहाहा! मानो कुछ ध्यान किया है। भान तो कुछ है नहीं अन्दर। ऐसे आधी आँख, फिर **आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से...** देखा? **अवलोक कर यथासुख रहते हैं...**

स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके... अन्दर में लाल दिखता है, पीला दिखता है, सफेद दिखता है। पर अब वह तो धूल है। ध्यान करके उसमें से ऐसा पीलापन दिखाई देता है, प्रकाश दिखाई देता है, झबकारा दिखाई देता है आँख में। अब तो आँख ऐसे-ऐसे होती है। झबकारा दिखाई दे, वहाँ जड़ का है, वह तो। समझ में आया? नीचे (फुटनोट में) है। **यथासुख=इच्छानुसार; जैसे सुख उत्पन्न हो वैसे; यथेच्छरूप से। जिन्हें द्रव्यार्थिकनय के (निश्चयनय के) विषयभूत शुद्धात्मद्रव्य का...** भगवान शुद्धस्वरूप के द्रव्य का सम्यक् श्रद्धान या अनुभव नहीं। चैतन्य भगवान आत्मा निर्मलस्वरूप का अनुभव, उसका अनुभव या सम्यक्त्व है नहीं।

उसके लिए उत्सुकता या प्रयत्न नहीं है,... अन्तर में मेरा स्वरूप यह है, ऐसी

उत्सुकता या जिज्ञासा या प्रयत्न भी जिसे नहीं है। **ऐसा होने पर भी जो निज कल्पना से अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्िंचतरूप से स्वच्छन्दपूर्वक वर्तते हैं।** हम तो ज्ञानी हैं। हमारे अब कुछ पाप नहीं लगता। ज्ञानी को बन्ध नहीं है, ऐसा भगवान ने कहा है। परन्तु किसे? सुन न! ज्ञानी हैं हम। वह **अपने में किंचित् भास होने की कल्पना करके निश्िंचतरूप से स्वच्छन्दपूर्वक वर्तते हैं। 'ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को प्राथमिक दशा में आंशिक शुद्धि के साथ...** अब धर्मी की बात करते हैं। ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को, अन्तर के आत्मा के स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और अनुभव होने पर भी पहली दशा में आगे बढ़ता हुआ नहीं इसलिए **आंशिक शुद्धि के साथ-साथ भूमिकानुसार शुभभाव भी होते हैं...** लो! रमणभाई! आया है। होता है, वह अलग बात है। कुछ शुभभाव छोड़कर अशुभ करे? समझ में आया? शुभभाव भी होता है। इस बात को श्रद्धते नहीं, इसे मानते नहीं। शुभभाव नहीं... शुभभाव नहीं... शुभभाव नहीं... परन्तु शुद्ध में आया नहीं और शुभभाव नहीं तो तब जायेगा कहाँ? समझ में आया?

टीकाकार ने सबकी सम्हाल ली है। हें? कन्धा पकड़कर। खड़ा रह... खड़ा रह... हमको कुछ पाप लगता नहीं। क्रमबद्ध में होने का होगा, वह होगा। क्रमबद्ध होने का होगा वह होगा। (परन्तु) तेरी दृष्टि कहाँ है? पर्याय पर? तुझे क्रमबद्ध की श्रद्धा ही नहीं है। समझ में आया? क्रमबद्ध की श्रद्धावाले की दृष्टि तो ज्ञायकस्वभाव पर होती है। उसे ऐसे स्वच्छन्दी के परिणाम उसे नहीं होते। सुजानमलजी! जो बात हो, वह तो सब आनी चाहिए न?

मुमुक्षु : सावधान करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्रमबद्ध कहा न! क्रमबद्ध जिस समय में जो होनेवाला हो, वह होता है, ऐसी जिसकी दृष्टि हो, वह तो द्रव्य पर दृष्टि ज्ञायक पर होती है और होनेवाला हो वह होता है, उसे जानता है। यह तो पर्याय पर दृष्टि, क्रिया पर दृष्टि, करने पर दृष्टि और होनेवाला हो वह होता है, यह आया कहाँ से इसे? समझ में आया? तीन बोल कहे थे न, भाई ने लिखे थे वे, सोगानीजी ने। योग्यता, होनेवाला हो वह होगा और क्रमबद्ध। हमको तो यह तीनों खटकते हैं, कहे। लोग बोलते हैं वहाँ। ...सोगानीजी,

तीसरी पुस्तक, उसमें आया था योग्यता। परन्तु योग्यता का जाननेवाला कौन ? जाननेवाले को जाने बिना योग्यता की पर्याय को जाना किसने ? हमारी योग्यता थी तो हुआ, हमारी योग्यता थी तो हुआ। परन्तु योग्यता की पर्याय का ज्ञान, द्रव्य के ज्ञान बिना योग्यता का ज्ञान सच्चा आया कहाँ से ? समझ में आया ? ऐसी बात है भाई यह तो।

द्रव्य के स्वरूप के ज्ञान बिना क्रमबद्ध का अकर्तापना टलता नहीं और कर्तापना रहे और क्रमबद्ध को माने, ऐसा हो नहीं सकता। क्रमबद्ध का माननवाला अकर्ता है। राग और पर की क्रिया का अकर्ता है और जाननेवाला-देखनेवाला, इसने क्रमबद्ध को माना है। ऐसी भाषा करे कि हमारे ऐसा होनेवाला था। एक व्यक्ति ने विवाह किया, पुनर्विवाह किया। कहे, यह तो क्रमबद्ध में आनेवाला था। परन्तु तुझसे ऐसा नहीं बोला जाता। गजब करता है न। समझ में आया ? सेठी !

हमारे तो सब पढ़ते थे। बहुत आवे न ? हमारे पास आये। वापस पुनर्विवाह करके आये। क्रमबद्ध में यह होनेवाला था। हाँ... भाषा परन्तु... छगनभाई ! ऐसा नहीं बोला जाता बापू ! तुझसे। तेरा काम नहीं, यह तो स्वच्छन्द है। आहाहा ! जिसे क्रमबद्ध की पर्याय का ज्ञान होता है, उसे अन्तर में अकर्तापना उत्पन्न होता है। अकर्तापना नास्ति और अस्ति से कहें तो ज्ञाता-दृष्टापना उत्पन्न होता है।

ये ज्ञाता-दृष्टा वह क्रमबद्ध को जानता है और योग्यता को जानता है। सेठी ! ऐसी बात है। आहाहा ! अकर्तापना सिद्ध करने क्रमबद्ध लिया है। क्रमबद्ध सिद्ध करने के लिये नहीं लिया।

भगवान आत्मा पर का भी अकर्ता है और आया हुआ राग, उसे करूँ—ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है। ऐसा आत्मा का अकर्तापना साबित करने से उसकी क्रमबद्ध की पर्याय को वहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया ? यह तो ऐसा होनेवाला था, ऐसा विकल्प आनेवाला था। परन्तु किसके ऊपर तेरी दृष्टि है। तू कहाँ खड़ा है ? राग में खड़ा है और विकल्प आनेवाला था, वह आया। आया कहाँ से तुझे ? वह स्वच्छन्दी है। हाँ.. बचाव करे कि हमारी भूमिका में ऐसा होता है, अमुक होता है, अमुक होता है, शास्त्र में नहीं आया ? ज्ञानी युद्ध करते हैं। परन्तु वह युद्ध का भाग तो होता है परन्तु उसे

भिन्न रखकर जानते हैं। उनकी दृष्टि में तो आत्मा है। दृष्टि में राग नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती क्षायिक समकिती थे और ९६ हजार स्त्रियों से विवाह किया था। सुन न! कुछ विवाह नहीं किया था, वह विकल्प उठा वह उनका नहीं था। आहाहा! ऐसी अन्तर की दृष्टि खिले बिना विकल्प का जाननेवाला और क्रिया का जाननेवाला हो नहीं सकता। कर्ता हो, उसे क्रमबद्ध का ज्ञान है नहीं। आहाहा! कहो, सेठी! ऐसा है। आहाहा! **निश्चय का अवलम्बन लेनेवाले परन्तु निश्चय से (वास्तव में) निश्चय को नहीं जाननेवाले...** लो! अन्तर को नहीं जाननेवाले। **कई जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए...** ऐसा। वापस स्वरूप का भान नहीं और परिणाम शुद्ध में आलसी हैं, इसलिए अशुभ को करते हैं। **वे चरणपरिणाम का नाश करते हैं।** वे शुभभाव का नाश करते हैं। समझ में आया? यह नीचे में आ गया इसमें। उसमें से रह गया है इसमें।

जीवों का प्रवर्तन और उसका फल। जो केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर... वे कैसे हैं? **भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए,...** लो! यह अभिन्नसाध्यसाधन प्रगट हुआ नहीं और भिन्नसाध्यसाधन को तिरस्कार करते हैं। शुभभाव को छोड़ते हैं, तिरस्कार करते हैं। समझ में आया? कुछ कल्पित कर वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कार करते हुए, **अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए,...** लो! और अन्तर में भगवान आत्मा को पूर्ण निर्मल साधनरूप से निर्मल दशा प्रगट नहीं करते। **अन्तराल में ही (-शुभ तथा शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए...** लम्बी बात है जरा। लो! आयेगा, कल आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८६, गाथा-१७२, ज्येष्ठ शुक्ल २, शनिवार, दिनांक -०६-०६-१९७०

पंचास्तिकाय, १७२ गाथा। अकेले निश्चयावलम्बी अन्तर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आदि अन्तर में प्रगट नहीं हुए। निश्चय का आत्मा ज्ञानानन्द है, शुद्ध है, ऐसा भान हुआ नहीं और निश्चय बिना मात्र निश्चय के आभासी, वे कैसे होते हैं, इसकी बात चलती है। आहाहा! लो! पहले व्यवहारावलम्बी, अकले व्यवहारावलम्बी। बाह्य के क्रियाकाण्ड और शुभभाव को धर्म माननेवाले और उससे मेरा कल्याण होगा। मिथ्यादृष्टि, व्यवहारावलम्बी को वहाँ वनस्पति की उपमा दी है। यहाँ कहे, इसे वनस्पति की उपमा देंगे।

कहते हैं **केवलनिश्चयावलम्बी हैं, सकल क्रियाकर्मकाण्ड के आडम्बर में विरक्त...** यह शुभभाव की क्रिया है, उससे विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, क्योंकि शुभभाव है, वह तो पुण्य है। वह कहीं धर्म नहीं है। ऐसा करके शुभभाव को छोड़ते हैं, शुद्धभाव को प्राप्त होते नहीं। **आडम्बर में विरक्त बुद्धिवाले वर्तते हुए, आँखों को अधमुँदा रखकर...** ऐसे अधमुंदा रखकर मानों ध्यान करते हैं, ऐसा लगे। **कुछ भी स्वबुद्धि से अवलोक कर यथासुख रहते हैं...** जैसे सुख उपजे, वैसे रहते हैं। यह अपने कल आ गया है कल। इसका अर्थ। नीचे फुटनोट।

अर्थात् स्वमतिकल्पना से कुछ भी भास की कल्पना करके... मानो कि मुझे कुछ ज्ञात होता है अन्दर। सफेद, पीला, लाल (ऐसा) कल्पित करके इच्छानुसार जैसे सुख उपजे वैसे रहते हैं। **वे वास्तव में भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए,...** अब यहाँ से शुरु होता है। निश्चय अभिन्नसाध्यसाधन है नहीं और भिन्नसाध्यसाधन को तिरस्कार करते हैं। अर्थात् निश्चय से भी भ्रष्ट हैं और व्यवहार से भी भ्रष्ट हैं, ऐसा। व्यवहार अर्थात् शुभभाव। समझ में आया? कहते हैं कि भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कार करते हुए, एक बात कि राग जो दया, दान, व्रतादि के परिणाम व्यवहाररत्नत्रय के शुभभाव है, वह भिन्न साधन है और साध्य निर्मल अवस्था। परन्तु किसे? कि जिसे अन्तर में अभिन्नसाध्यसाधन प्रगट हुआ है, शुद्ध पूर्ण निर्मल से साध्य है, और उसकी वीतरागी पर्याय स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई है, ऐसे

अभिन्नसाध्यसाधनवाले को यह भिन्नसाध्यसाधन का व्यवहार होता है। उसे तो निश्चय भी नहीं और भिन्नसाध्यसाधन का व्यवहार भी नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुभाशुभ दो लिखे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो लिखे हैं? है, ऐसा कहाँ है? अर्थ में लिखा है। भूल है। मिलान नहीं खाता। कहो, समझ में आया? इसलिए ऐसा नहीं कि भिन्नसाध्यसाधन है, वह व्यवहार शुद्ध है, वह धर्म का कारण है। उसे आरोप से कहा है। जब स्वभाव की दृष्टि हुई, ज्ञान शुद्धचैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की अवस्था जो हुई, तब राग जो व्यवहार से आता है, उसे भिन्नसाधन का आरोप देकर उसे व्यवहार से साधन कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : साधन हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (साधन) हुआ है। नहीं कहा? निरूपण कथन है दो प्रकार के। साधन नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहारनय। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि नहीं निश्चय का साधन, नहीं व्यवहार के अनुष्ठान को तिरस्कारता है। ...आता है न? अभिन्नसाध्यसाधनभाव को नहीं उपलब्ध करते हुए, राग के शुभभाव का अभाव करके स्वरूप की रमणता करे तो वह बराबर है। समझ में आया? परन्तु स्वरूप की श्रद्धा ज्ञायक चिदानन्द है ऐसी दृष्टि, ज्ञान भी नहीं और इस शुभभाव का तिरस्कार करे अर्थात् वह अशुभ में आने का रहा। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, काम, क्रोध में रहा। उसे शुभभाव तो रहा नहीं।

भिन्नसाध्यसाधनभाव को तिरस्कारते हुए, अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए,... अन्तर में शुद्ध द्रव्यस्वभाव शुभराग से भिन्न ऐसे साधन की निर्मल पर्याय प्रगट नहीं। अभिन्नसाध्यसाधन को प्राप्त हुए नहीं। **अन्तराल में...** अर्थात् कि अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान और वीतरागता का अंश भी द्रव्य के आश्रय से होना चाहिए, वह किया नहीं और शुभभाव को तिरस्कारते अर्थात् अन्तराल में शुद्ध भी नहीं और शुभ भी नहीं। अशुभ में जाते हैं। समझ में आया?

अभिन्नसाध्यसाधनभाव को उपलब्ध न करते हुए, अन्तराल में ही (-शुभ तथा

शुद्ध के अतिरिक्त शेष तीसरी अशुभदशा में ही), प्रमादमदिरा के मद से भरे हुए आलसी चित्तवाले वर्तते हुए,... लो! शराब पीये हुए मनुष्य हों, वैसे इसने प्रमाद की मदिरा पी है। मदिरा के मद से भरा हुआ आलसी चित्तवाला वर्तता हुआ, **मत्त, उन्मत्त जैसा...** गहल, पागल जैसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पागल जैसा। दिलीप ने पागल कहा था। फिर पागल जैसा, पागल जैसा कहा था। ऐसा कहता हूँ। यह तो जैसा है न! देखो न यहाँ! उन्मत्त जैसा, ऐसा है। यहाँ जैसा कहा है। यहाँ तो उपमा देनी है न! वह अलग बात है। पागल जैसा अर्थात् कर्ता वह हो। कर्ता जो पर का माने, वह पागल है, यह और अलग बात है।

यहाँ तो कहते हैं, नहीं, अन्तर स्वभाव चैतन्य भगवान राग और व्यवहार के परिणाम से भिन्न, उसकी नहीं श्रद्धा, नहीं उसका ज्ञान, नहीं उसका आश्रय और व्यवहार का राग जो आवे आंशिक तो कहे, नहीं, यह तो पुण्यबन्ध का कारण, पुण्यबन्ध का, इसलिए उसे छोड़े। यहाँ छोड़ा, यह छोड़ा, रहा अकेला अशुभभाव। समझ में आया? कहो, सेठी! दोनों की सम्हाल बुद्धि है।

मुमुक्षु : सबसे अधिक टोटल...

पूज्य गुरुदेवश्री : टोटल में तो वह भी टोटल में है और यह भी टोटल में है। उसको जरा शुभ था। टोटल तो टोटल ही है। परन्तु उसको शुभ था और जरा स्वर्गादि मिले तथा इसे स्वर्गादि नहीं। सीधे नरक में, निगोद में जाये, यह बात ली है। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! **मत्त जैसे...** ऐसा है न? **मूर्च्छित जैसे,...** ऐसे सब। जैसे शब्द है। **मूर्च्छित जैसे,...** मूर्च्छा खाकर पड़े हों न मानो। वह वायु आवे और जैसे मूर्च्छा हो जाये न वैसे। कुछ भान नहीं। न निश्चय का भान, नहीं व्यवहार के शुभपरिणाम के आचरण में जिसका लक्ष्य। ऐसे **मूर्च्छित जैसे, सुषुप्त जैसे,...** मानो सो रहे हों निश्चिन्तता से नींद में खर्राटे लेते हों, ऐसे। कहो, समझ में आया?

बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए... ठीक! पाये हुए हों ऐसे। सबको उपमा है न यह तो। घी-शक्कर-खीर। खीर अर्थात् दूध-दूधपाक। शक्कर और दूधपाक। बहुत दूधपाक खाकर फिर यह... निश्चिन्तता से पड़े हों न! पूड़ी और

दूधपाक चढ़ाये हों फिर नींद में पड़े। ऐसे नहीं चैतन्य की अन्तरस्वभाव सन्मुख दृष्टि, नहीं शुभपरिणाम के आचरण में जिसका लक्ष्य। समझ में आया? ऐसे जीव को **बहुत घी-शक्कर खीर खाकर तृप्ति को प्राप्त हुए (—तृप्त हुए) हों ऐसे, मोटे शरीर के कारण जड़ता (—मन्दता, निष्क्रियता) उत्पन्न हुई हो ऐसे,...** स्थूल शरीर नहीं। परन्तु जिसे किसी का स्थूल शरीर हो न फिर ऐई... ऐसा पड़ा हो, फिर मुश्किल-मुश्किल से चले न ऐसा। ऐसा। हो भले पतला शरीर, ऐसा। समझ में आया?

होता है न, बहुत मोटा स्थूल शरीर हो, फिर मुश्किल-मुश्किल से ऐसे चले। पाडा जैसा। बड़ा पाडा होता है, वह तो ठीक से चलता है। यह तो शरीर हो ऐसा ऐसे। बारह मण का था एक व्यक्ति।

मुमुक्षु : जेठालाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : केशवलाल या क्या होगा? जेठालाल इतना अधिक नहीं था। ध्रोल का दरबार है नहीं? अभी एक व्यक्ति। ध्रोल का दरबार है न? बड़ा है बारह मण का। एक ही गाड़ी में बैठे अकेला। त्रिभोवनभाई, जेठाभाई ऐसे थे परन्तु इतना अधिक नहीं। उसे तो मैंने देखा है। एक ऐक्का (एक बैल या घोड़े से चलनेवाली गाड़ी) चाहिए बैठने के लिये। कहते थे, नहीं कहते थे? कुल्हाड़ी कौन देखता है? बड़ा या छोटा? तो मोटा मैं हूँ, ऐसा कहता था। वह त्रिभोवन सेठ था। जेठालाल सेठ दामनगर में।

यहाँ कहते हैं **मोटे शरीर के कारण जड़ता...** नहीं शुभभाव का ठिकाना, नहीं शुद्ध की श्रद्धा का ठिकाना। दोनों से भ्रष्ट हुए स्थूल शरीरवाले जैसे निष्क्रिय पड़े हों। निष्क्रियता उपजी हो, ऐसे हैं। **दारुण बुद्धिभ्रंश से मूढ़ता हो गई हो ऐसे,...** देखो! कितनी उपमा दी। दारुण बुद्धिभ्रंश से, कठिन बुद्धिभ्रंश से मूढ़ हो गया। जरा भी शुभभाव का ठिकाना नहीं, नहीं शुद्ध का ठिकाना। समझ में आया? **जिसका विशिष्टचैतन्य मुँद गया है,...** भगवान चैतन्यमूर्ति ऐसे संकुचित हो गया है, ऐसे संकुचित हो गया है। पर्याय में संकोच पा गया है, ऐसा। ऐसी वनस्पति जैसा, लो!

मुनीन्द्र की। यहाँ तो मुख्यरूप से साधु की बात है न। **मुनीन्द्र की कर्मचेतना को पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए...** उसे अट्ठाईस मूलगुण चाहिए। पंच महाव्रतादि

के उसमें परिणाम उन्हें नहीं अवलम्बता हुआ। क्योंकि वह तो पुण्यबन्ध है। नहीं उपयोग शुद्धता में आता, नहीं शुभ में आता। दोनों से भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। शुभ में आवे तो उसे पुण्यबन्धन होता है, शुद्धता बिना, और शुद्धता का भान हो और शुभ हो तो भी शुभ का तो पुण्य बँधता है। और शुद्धता से संवर और निर्जरा होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ से निर्जरा-बिर्जरा वह तो उपमा है। शुभ से निर्जरा कुछ नहीं। शुभ तो उदयभाव है। बन्ध करा उदयभावा, है न सिद्धान्त? ऐई! बन्ध-उदय। उदयभाव बन्ध का कारण है। शुभभाव उदयभाव है। किंचित् बन्ध का कारण कम नहीं। बन्ध का ही कारण है। अबन्ध का कारण बिल्कुल नहीं। उदयभाव है। तीर्थंकरगोत्र बाँधता है, वह भाव उदयभाव है। उसमें तो बन्ध पड़ता है। उसमें शुद्धता कहाँ से आयी? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, नहीं शुद्धता की श्रद्धा का प्रयत्न, श्रद्धा का ज्ञान, श्रद्धा का झुकाव, स्वभाव की स्थिरता, यह भी नहीं। और इस शुभपरिणाम में आवे तो तिरस्कार यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। यह पुण्यबन्ध का कारण है।

ऐसा करके भय से, पुण्यबन्ध के डर से **न अवलम्बते हुए और परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होते हुए,...** वापस। शुभभाव से हटे और स्वरूप की स्थिरता करे, तब तो बराबर है यह तो। परन्तु **परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना में...** शुभ-अशुभ विकल्प जो राग है, उससे रहित परम नैष्कर्म्यरूप ज्ञानचेतना। भगवान आत्मा ज्ञान में चेते और एकाग्र हो, ऐसा जो उसका स्वभाव, उसमें विश्रान्ति नहीं पाता हुआ, उसे ज्ञानचेतना की विश्रान्ति है नहीं। शुभभाव है और यह विश्रान्ति नहीं। अशुभभाव में दुःखी होकर, खेद करके भटकेगा। नरकादि, निगोद में जायेगा। समझ में आया? भिन्न का स्पष्टीकरण हो गया न नीचे, नहीं? दो है न नीचे? दोनों हो गये। दो और तीन। नीचे फुटनोट।

मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को... यह धर्मी जीव को, जिसे आत्मा का मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, ऐसे जीव को **सविकल्प प्राथमिक दशा में (छठवें गुणस्थान तक)...** चौथे से पाँचवाँ, छठवाँ इन तक व्यवहारनय की अपेक्षा से भूमिकानुसार भिन्नसाध्यसाधनभाव होता है। निश्चयभान, अनुभवदृष्टि सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, तथापि जब तक

उसे सविकल्प दशा चौथे, पाँचवें, छठवें में है, तब तक भूमिका के अनुसार **भिन्नसाध्यसाधनभाव...** अर्थात् राग की मन्दता का व्यवहार साधनभाव होता है। **भूमिकानुसार नव पदार्थों सम्बन्धी, (विकल्प) अंगपूर्व सम्बन्धी विकल्प और श्रावक-मुनि के आचार सम्बन्धी शुभभाव होते हैं।** प्रत्येक को शुभभाव ले लिया। नौ पदार्थ सम्बन्धी शुभभाव, अंग-पूर्व सम्बन्धी शुभभाव और श्रावक-मुनि के आचारों सम्बन्धी शुभभाव होता है। शुभभाव होता है।

निश्चय शुभभाव का निषेध होकर अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, तथापि उसे पूर्ण वीतराग नहीं, उस सविकल्पदशा में शुभभाव होता है। इतनी बात। है पुण्यबन्ध का कारण, वह धर्म नहीं। परन्तु वह पुण्यभाव आये बिना रहता नहीं। आहाहा! **यह बात केवलनिश्चयावलम्बी जीव नहीं मानता...** मानते ही नहीं। ऐसा कि, और सविकल्पदशा में राग आना, यह क्या? नहीं, नहीं। यह पुण्यबन्ध का कारण है, इसलिए नहीं।

(आंशिक शुद्धि के साथ की) शुभभाववाली प्राथमिकदशा को वे नहीं श्रद्धते... क्या कहते हैं? निश्चयावलम्बी जीव अन्तर शुद्धदशा, श्रद्धा आंशिक प्रगट हो उसके साथ व्यवहार श्रद्धते नहीं हैं। शुभभाववाली प्राथमिकदशा को वे मानते नहीं हैं। शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध ज्ञान राग से लाभ नहीं, ऐसा भान होने पर भी सम्यग्दर्शन की भूमिका में आंशिक शुद्धि स्वभाव के आश्रय से प्रगटी है, उसके साथ ऐसा शुभभाव हो, उसे निश्चयावलम्बी जानते नहीं। समझ में आया?

प्राथमिक दशा में... प्राथमिक शब्द से चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ, छठवाँ, उसे अन्तर में निश्चय सम्यग्दर्शन, स्वभाव की शुद्धि, शुभभावरहित शुद्धि होने से आंशिक शुद्धि है, पूर्ण शुद्धि नहीं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान... तथापि उसे पुण्यभाव आये बिना रहता नहीं। शुभभाववाली प्राथमिक शुद्धि मानते नहीं। तब कहे नहीं, शुभभाव होता नहीं। समझ में आया? **और स्वयं अशुभ भावों में वर्तते होने पर भी अपने में उच्च शुद्ध दशा की कल्पना करते स्वछन्दी रहते हैं।** विकल्प अशुभ रहा करते हैं। शुभभाव में आते नहीं। शुभभाव से-शुभ से दूर रहकर हमारी दशा ऊँची हो गयी है, ऐसा मानकर अशुभभाव में रहते हुए स्वच्छन्दी होते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

तीन (३) **मुनीन्द्र की कर्मचेतना को पुण्यबन्ध के भय से न अवलम्बते हुए...**

केवलनिश्चयावलम्बी जीव पुण्यबन्ध के भय से डरकर मन्दकषायरूप शुभभाव नहीं करते... निश्चय की दृष्टि का ज्ञानादि नहीं और शुभभाव करते नहीं। **पापबन्ध के कारणभूत अशुभभावों का सेवन तो करते रहते हैं।** हिंसा, झूठ, विषय, भोग-वासना इस भाव को तो सेवन किया करते हैं। **इस प्रकार वे पापबन्ध ही करते हैं।** कहो, समझ में आया? **(मात्र) व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते हुए,...** लो! नहीं शुद्ध श्रद्धा के प्रयत्न का ज्ञान और भान। नहीं व्यवहार के कर्मकाण्ड का विकल्प और शुभभाव।

व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद के आधीन वर्तते हुए, प्राप्त हुए हलके (निकृष्ट) कर्मफल की चेतना के प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है,... इस राग का फल हर्ष और शोक वेदते हैं। हर्ष और शोक, उसे वेदते हैं। नहीं आनन्द का वेदन, नहीं शुभ का। समझ में आया? कर्मफल की चेतना के प्रधानपने (मुख्यपने) वाली प्रवृत्ति, देखो! हर्ष-शोक का ही वेदन मुख्यरूप से है। वह शुभ का वेदन तो है नहीं इसलिए। किसी समय आ जाये तथापि उसका आदर करता नहीं। इसलिए **कर्मफल की चेतना के प्रधानपनेवाली प्रवृत्ति जिसे वर्तती है,...** एक तो ऐसा आया था, ऐई! शिक्षा में ज्ञानी हो, समकिती हो न। श्रावक गृहस्थ लड़के भी समकिती होते हैं। छोटी उम्र में आठ वर्ष में समकित पाते हैं न! ऐसे जीवों को धर्मात्मा स्थिर करते हैं। भाई! आया था न यह?

स्थिर करते हैं। स्थिर करते हैं, इसका अर्थ यह कि उसे मदद करते हैं। समकिती होते हैं न! आठ वर्ष के, नौ, दस, बारह वर्ष। राजकुमार होते हैं, देखो न! बड़े समकिती, शिक्षा में जाये। धर्मशिक्षा में जाये, शिक्षा में ही जाये यहाँ तो लो न! लौकिक शिक्षा में जाये। लौकिक शिक्षा लेते हैं न मास्टर के पास। बीस-बीस वर्ष के जवान राजकुमार। समकिती हों, ज्ञानी हों। समझ में आया? उन्हें भी स्थिर करने अर्थात् कि उन्हें उस प्रकार की मदद करने का भाव समकिती को आता है। समझ में आया?

इस भाव का ठिकाना नहीं होता और निश्चय का ठिकाना नहीं होता। यहीं का यहीं तो कहते हैं। **ऐसी वनस्पति की भाँति,...** लो! वनस्पति जैसे पीपल का वृक्ष हो, बिम्ब जैसा लगे। कुछ नहीं हमारे रागादि भाव पुण्यबन्ध का कारण है। शुद्ध में तो आया नहीं। केवल पाप को ही बाँधता है। वह (व्यवहारालम्बी) शुभभाव को-पुण्य को बाँधकर स्वर्गादि परम्परा थी, उसे देवलोक, मनुष्यपना साधारण मिले। फिर चार

गति में भटके। इसे (निश्चयावलम्बी) सीधे वनस्पति में जाये। ऐसा कहा वापस। समझ में आया?

वह भी संसार में भटकता है और यह भी संसार में भटकता है। भटकने में कहीं दोनों में अन्तर नहीं है। कहा है—लो! '**निश्चयमालम्बन्तो निश्चयतो निश्चयमजानन्तः। नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसाः केऽपि॥' अर्थात् निश्चय का अवलम्बन लेनेवाले...** निश्चय को अवलम्बन माने परन्तु निश्चय को निश्चय से जाने नहीं। चैतन्यस्वभाव पुण्य-पाप के विकल्प की विकृत क्रिया से भिन्न, ऐसा जो निश्चयद्रव्य का स्वरूप, उसे तो जाने नहीं। निश्चय। न, हमारे तो बस कुछ बन्ध नहीं। 'बन्ध-मोक्ष है कल्पना, भासे वाणी मांही, वर्ते मोहावेश में (शुष्क ज्ञानी वह आंही)' आया है या नहीं? वह लड़का बोले तो... ऐई! तुम्हारा धनपाल बोला था या नहीं? कल बोला था, नहीं? वह। बन्ध-मोक्ष है कल्पना, बहुत गाथायें कण्ठस्थ की है, हों! छोटा लड़का है। ''बन्ध मोक्ष है कल्पना, भासे वाणी मांही,' वाणी में बोले बन्ध-मोक्ष, परन्तु ... राग की मिठास, विषय की मिठास, भोग की मिठास। और गया वह तो अशुभभाव में गया है। नहीं शुद्ध में आया, नहीं शुभ में आना। समझ में आया?

वर्ते मोहावेश में, मोह के आवेश में, राग में मिठास, खाने-पीने की मिठास, मौज मानने की मिठास। ऐसे पाप के परिणाम को करके ऐसा माने कि निश्चय में हमारे क्रिया-ब्रिया होती नहीं। ऐसा माननेवाला निश्चय को निश्चय से नहीं जानते, ऐसा। वास्तव में जानते नहीं। **कई जीव बाह्य चरण में आलसी वर्तते हुए...** ऐसे अज्ञानी निश्चय को निश्चय रीति से जाना नहीं और बाह्य पुण्यपरिणाम में आलसी हैं। **चरणपरिणाम का नाश करते हैं।** वह शुभभाव का नाश करते हैं। लो! इसके नीचे फुटनोट।

और जो केवलनिश्चयावलम्बी वर्तते हुए... एक निश्चय शुद्ध आत्मा बन्ध-मोक्ष रहित ही है। त्रिकाल बन्ध-मोक्षरहित है, ऐसी बातें करनेवाले, परन्तु स्वभाव का आश्रय और दृष्टि करनेवाले नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? रागादिविकल्परहित परमसमाधिरूप शुद्ध आत्मा को नहीं उपलब्ध करते होने पर भी, भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प की वासना से भिन्न भगवान, ऐसी परम शान्तिरूप शुद्धात्मा को नहीं प्राप्त करते होने पर भी, उसे प्राप्त नहीं करते शुद्ध को।

मुनि को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य... व्यवहार से आचरनेयोग्य **षड्-आवश्यकादिरूप अनुष्ठान को...** सामायिक, चौविसंथो आदि विकल्प हो, शुभराग। **तथा श्रावक को (व्यवहार से) आचरनेयोग्य दानपूजादिरूप अनुष्ठान को दूषण देते हैं,...** नहीं शुद्धस्वभाव का अनुभव करते और व्यवहार क्रियाकाण्ड को दूषण देते हैं। करते नहीं परन्तु उसे दूषण देते हैं व्यवहार का। समझ में आया? वे भी उभयभ्रष्ट वर्तते हुए, लो! शुद्ध से भी भ्रष्ट हैं और शुभ से भी भ्रष्ट हैं। निश्चय-व्यवहार अनुष्ठानयोग्य अवस्थान्तर को नहीं जानते हुए, निश्चय और व्यवहार अनुष्ठानयोग्य दशा। सम्यग्दर्शन, ज्ञान निश्चय दशा, उसके योग्य व्यवहार की दशा। दोनों योग्य अवस्थान्तर, अलग दशा है यह। अत्यन्त निश्चय-व्यवहार की दशा स्वभाव का आश्रय है इतना निश्चय है और जितना शुभभाव आवे, उतना व्यवहार है। ऐसी अवस्थान्तर को न जानते हुए, **पाप को ही बाँधते हैं...** समझ में आया?

केवल निश्चय-अनुष्ठानरूप शुद्ध अवस्था से भिन्न... अकेले केवल निश्चय को माननेवालों को इसके अतिरिक्त निश्चय की अवस्था, निश्चय शुद्ध अवस्था से भिन्न और निश्चय अनुष्ठान यह। **और व्यवहारअनुष्ठानवाली...** और उस काल में अन्दर रागभाव होता है। ऐसी **मिश्र अवस्था उसे न जानते हुए...** शुद्धि भी होती है और शुभभाव भी होता है। इस मोक्ष के मार्ग में यह दो अन्दर होते हैं। समझ में आया? उसे नहीं जानते हुए पाप को ही बाँधते हैं। **परन्तु यदि शुद्धात्मानुष्ठानरूप मोक्षमार्ग को...** शुद्ध अनुष्ठान मोक्षमार्ग को जानते-मानते हैं।

और उसके साधकभूत (व्यवहारसाधनरूप) व्यवहाररमोक्षमार्ग को माने,... जहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, निश्चयमोक्षमार्ग होता है, वहाँ अभी रागभाग व्यवहार मोक्षमार्ग जिसे उपचार कहते हैं, ऐसा भाव होता है। केवलज्ञान हो, उसे नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। क्योंकि जहाँ निश्चयदृष्टि नहीं, वहाँ व्यवहार नहीं होता। ज्ञानी तो निश्चय का भान होने पर भी ऐसा विकल्प व्यवहार का उसे होता है। वे उसे मानते नहीं। व्यवहार मोक्ष के मार्ग को माने। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ अनुष्ठानरहित होता है, ऐसा। क्या कहते हैं? देखो!

उस समय अशुभ होता है न भाई, समकिती को, ज्ञानी को अशुभ होता है। उस समय शुभ नहीं परन्तु अभी दृष्टि में मानता है। शुभभावमार्ग है व्यवहार। निश्चयमार्ग यह है और व्यवहार बीच में आता है, ऐसी मान्यता है परन्तु उस काल में जब मान्यता, तथापि उसे वासना विषयादि की है, उसमें है। तब अशुभभाव नहीं। मानता है। समझ में आया ? देखो ! कहा... आत्मा का ज्ञान है, भान है और शुभभाव अभी नहीं है। मानता है कि एक जगह ऐसा शुभभाव होना चाहिए। अशुभ हो तब। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, मुनि को पंच महाव्रत ऐसा मानने पर भी अशुभभाव में आया है। समझ में आया ? इसलिए उसे मान्यता में है कि शुभभाव ऐसा और शुद्ध ऐसा।

माने, **तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ-अनुष्ठानरहित हों...** ऐसा। उस समय शुभभाव नहीं होता। यह देखो न ! कितना स्पष्टीकरण किया है। **तथापि-यद्यपि वे शुद्धात्माभावना सापेक्ष...** शुद्धस्वरूप चैतन्य के एकाग्रता के सापेक्ष। **शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं...** क्या कहा यह ? निश्चयस्वभाव चैतन्य भगवान का आश्रय लेकर शुद्धता प्रगट हो और उसके साथ उसे दया, दान, व्रतादि जो भूमिका के योग्य भाव होते हैं, ऐसा यह नहीं है।

कारण कि इसे शुभ को और शुद्ध को दोनों को मानते-जानते हुए उस समय इसे शुभभाव का अभाव है। और अशुभभाव में है। अशुभ में है परन्तु मान्यता में है कि निश्चय यह और शुभ यह। तो अशुभ होने पर भी, वह है मोक्षमार्ग में। हाँ। निश्चय सहित का जो व्यवहारमोक्षमार्गी है, ऐसा तो वह नहीं। क्या कहा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : पहले समझना...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो कहा न ? जो शुद्धात्मसन्मुख मोक्षमार्ग को, उसके साधक मोक्षमार्ग को माने। मानता है बराबर। तो चौथे, पाँचवें, छठवें में शुभभाव होवे तो ऐसा होता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो। छठवें में हो तो पंच महाव्रत के विकल्प हों। ऐसा बराबर माने और निश्चयस्वरूप आत्मा रागरहित है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान भी बराबर है, उसे भी मानता है परन्तु उसे अशुभभाव आया है, इस काल में शुभभाव तो नहीं है। मानता है कि शुभ और शुद्ध दोनों होना चाहिए। तो वह अशुभभाववाला है तो मोक्षमार्ग में, परन्तु जैसा निश्चय सहित का शुभभाववाला है, वैसा यह नहीं। निश्चय

की दृष्टिसहितवाला जो शुभभाव है, वैसा यह नहीं। यहाँ तो निश्चयदृष्टि होने पर भी, व्यवहार को मानने पर भी शुभभाव से रहित है। अशुभभाव में है।

मुमुक्षु : निश्चयावलम्बी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, धर्मी। नहीं... नहीं... नहीं, समझे नहीं। ऐ सेठी! क्या कहते हैं? फिर से। देखो! है तो धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि। निश्चय की शुद्धता प्रगटी है और उसे मानता है, उसे शुभभाव देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि गुणस्थानयोग्य हों, उसे भी मानता है। मानता होने पर भी उसे उस काल में शुभभाव होता नहीं। यह है न! देखो न! **माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से शुभ-अनुष्ठानरहित हों...** शुभभाव होता नहीं। है समकिती, है ज्ञानी, है धर्मात्मा। सेठ! बराबर ध्यान रखकर करनेयोग्य है यह।

मुमुक्षु : दिमाग ठिकाने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठिकाने लाओ।

मुमुक्षु : मस्तिष्क में बात बैठती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। अपने यहाँ वहाँ कहाँ... यहाँ तो जयसेनाचार्य सब स्पष्ट करते हैं कि भई! ज्ञानी को निश्चय होता है। सम्यग्दर्शन निश्चय स्वभाव के आश्रय से। उसे भी मानता है और व्यवहार उसे गुणस्थानयोग्य, उसे भी मानता है। परन्तु व्यवहार-शुभभाव होता नहीं, उसे उस काल में। उसे युद्ध का भाव है। विषय की वासना का भाव हो गया, कोई क्रोध का भाव हुआ तो अशुभभाव है। मान्यता में दो है। निश्चय यह है और व्यवहार ऐसा होता है, परन्तु उसे उस काल में नहीं है अशुभभाव, वह तो अशुभ से नरक में जाये ऐसा निश्चयावलम्बी में कहा न, वह कहीं अशुभ आने की स्थिति से अशुभ में है, तथापि ऐसा है, ऐसा लेना है।

फिर से। निश्चयावलम्बी है। नहीं शुद्ध का भान, नहीं शुभ का आदर, तिरस्कार। वह जीव अशुभ से नरक में जायेगा, ऐसा कहा। परन्तु ऐसे को (ज्ञानी को) अशुभ है, उसे क्या कहना, इसके लिये अब लेना है।

मुमुक्षु : तुलनात्मक बात ली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दोनों की तुलना की है। कि हाँ, निश्चयस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति होने पर भी उसे भी मानता है कि निश्चय तो यही सच्चा है और व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग भूमिका प्रमाण ऐसा होता है। मानता है शुद्ध को, परन्तु निश्चयावलम्बी तो नहीं। निश्चय भी नहीं, नहीं व्यवहार और अकेले अशुभ में है, तथापि ज्ञानी को अशुभ में है, उसे क्या कहना? ऐसा कहते हैं। सेठी! सुमनभाई! समझ में आया?

कहते हैं, सीधा सवाल लिया कि निश्चय का भान नहीं, व्यवहार शुभभाव तो अशुभ-नरक में जाये। समकिती ज्ञानी को अशुभ है या नहीं? शुभ नहीं, ऐसा भी काल उसे होता है। नरक में जाये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! जयसेनाचार्य में कितना स्पष्ट किया है। कहते हैं कि भाई! वह व्यवहारमोक्ष और निश्चयमोक्ष माने, वह बराबर मानता है। परन्तु चारित्रमोह के उदय के कारण अर्थात् अशुभभाव तीव्र है, परिणाम में उसे अशुभभाव वर्तता है। है समकिती, है ज्ञानी, है धर्मात्मा परन्तु वर्तमान शुभभाव नहीं। संक्लेश अशुभभाव है। उसे क्या कहना, कहते हैं? कि हाँ, वह निश्चयदृष्टिवालासहित शुभभाववाला है, वैसा तो यह नहीं। उससे हल्का। समझ में आया? और निश्चय का भान नहीं और व्यवहार, वह तो हल्के में हल्का। यह तो धर्मात्मा कहकर हल्का। वह अज्ञानी होकर हल्का। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सम्यग्दर्शन है, निश्चय स्व का आश्रय है सम्यग्दर्शन वह, व्यवहार होता है तो ऐसा हो, ऐसी मान्यता भी बराबर है। परन्तु व्यवहार के शुभभाव में वर्तमान में नहीं है।

मुमुक्षु : मान्यता है, परिणमन नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? **व्यवहाररमोक्षमार्ग को माने, तो भले चारित्रमोह के उदय के कारण शक्ति का अभाव होने से...** यह शुभभाव की शक्ति जो चाहिए, उसका अभी अभाव है। शुद्ध की श्रद्धा, ज्ञान है, **तथापि—यद्यपि वे शुद्धात्म-भावनासापेक्ष...** जिसे भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द की एकाग्रता वर्तती है, वह **सापेक्ष**

शुभ-अनुष्ठानरत... है। और उसमें उसे वापस शुभ दया, दान आदि शुभभाव भी होते हैं। रत है अर्थात् उसे होते हैं, ऐसा।

शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं... रतन का अर्थ कहीं वास्तव में दोनों में रत नहीं। परन्तु व्यवहार से, निश्चय में रत है, इसलिए व्यवहार में रत है और व्यवहार में रत है, ऐसा व्यवहार से कहा है। अरे! समकिती व्यवहार में रत होता ही नहीं। व्यवहार से मुक्त ही है। आहाहा! कठिन! परन्तु यहाँ निश्चय में रत है, इसलिए व्यवहार में रत है, ऐसा व्यवहार साधन में रत है, ऐसा उपचार से कहा है। समझ में आया? शान्तिभाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं न, सोनी का कांटा क्या कहता है? नजरिया का (मध्यस्थ) कांटा। बराबर ऐसे जाये। हीरा, माणेक को तौले वह कांटा कैसा होगा? दस-दस हजार रुपये की एक रति। दस-दस हजार रुपये की एक रति। वह कांटा कहीं चावल तोले ऐसे नीचे ऐसे जाये चार मण और ऐसे जाये, ऐसा नहीं होता। यह तो ऐसा ऐसे लोहे के पत्थर के वे होते हैं न? जरा ऊँचा-नीचा हो, वह तो इसे खबर होती है न? तराजू में अस्सी हजार का हीरा, लाख का हीरा, पाँच लाख का हीरा तोलना, लो! समझ में आया? तो यह जरा ऊँचा-नीचा हो। बहुत ऊँचा, वहाँ तो घसाड़ा होत हो जाये वापस ऊपर। ऐसे कांटा होते हैं न ऊँचे। सेठी! तुम्हें तो खबर होती है वहाँ। हम तो बिना देखी हुई बात करते हैं। तेरह तोले का कांटा रखते थे दुकान में, हों! अभी यहाँ खुशालभाई का पड़ा है। केसर तोलने का, वह कांटा यहाँ है, अपने पास है न, वह कांटा है। खुशालभाई की दुकान का है। पाव भार कोई हरड़े तोलनी हो न, तो वह कांटा पड़ा है, छोटा इतना।

यद्यपि सम्यग्दृष्टि निश्चय का भान और निश्चय का आश्रय होने पर भी और निश्चय को मानता है और शुभव्यवहार ऐसा भूमिकायोग्य हो, ऐसा मानता है। परन्तु उसे शुभभाव सदा ही नहीं होता। अशुभभाव भी होता है। उस समय शुभभाव तो है नहीं। मान्यता में बराबर है कि शुभभाव ऐसा होता है, परन्तु उस समय तो नहीं है। तब क्या है वह? कि धर्मी है या नहीं? कि धर्मी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध और शुभभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस! परन्तु शुद्ध की दृष्टिवन्तवाला और शुभवाला उससे यह हल्का है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? छगनभाई! अब समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : बहुत परिचितवाले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बहुत परिचयवाले हैं। यह तो यों ही करते हैं,... कहो, समझ में आया इसमें? लो! तीन बातें लीं हैं। एक तो अकेले व्यवहार के अवलम्बी राग को धर्म माननेवाले केवल मिथ्यादृष्टि, एक। व्यवहार भी राग से रहित शुद्ध चैतन्य है, वह राग से प्राप्त नहीं होता, शुभभाव से नहीं प्राप्त होता। वह तो सीधा आत्मा के आश्रय से प्राप्त होता है, ऐसी श्रद्धा का भान नहीं। व्यवहारावलम्बी अकेले मिथ्यादृष्टि, अकेले निश्चयावलम्बी। नहीं निश्चय की श्रद्धा का भान और नहीं व्यवहार के आचरण में आता। इसलिए इन दोनों से भ्रष्ट होकर अशुभ में जाये। केवलनिश्चयावलम्बी नरक आदि वनस्पति में जाये।

तीसरा, निश्चय का भान और ज्ञान स्थिरता आदि होने पर भी शुभभाव भी उसे होते हैं। अर्थात् दोनों में रत है। यह तीसरे नम्बर का, यह धर्मी है। नम्बररूप से पहला, ऐसा। उससे हल्का, है धर्मी। शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान का भान है, तथापि अभी शुभभाव नहीं। उसे श्रद्धा में है कि शुभभाव होवे तो ऐसा होता है मुनि को, इसे होवे तो चौथे में ऐसा होता है परन्तु इसे अशुभभाव के काल में शुभ नहीं है। व्यवहार सदा ही नहीं है, यह व्यवहार लो! वह व्यवहार भी नहीं, शुभव्यवहार नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अशुभ को व्यवहार नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ को व्यवहार नहीं कहा जाता। यह बहुत वर्ष पहले यह प्रश्न भक्ति में बैठे थे तब आया था। फिर यहाँ से कहा था। बहुत वर्ष पहले की बात है। कहा, कोई व्यवहार सदा उसे होता नहीं। समझ में आया? धर्मी भी जब दुकान में- उसमें बैठा हो अशुभभाव, तब शुभभाव कहाँ है वहाँ? पुत्र मर गया हो और आर्तध्यान, रौद्रध्यान के परिणाम उसे हों, लो! मर गये के कारण नहीं परन्तु उसके परिणाम हों

रुदन वहाँ। पाँचवें गुणस्थान में भी रौद्रध्यान है या नहीं? तब रौद्रध्यान के समय शुभभाव तो नहीं है। तब वह धर्मी है या नहीं? उसे शुभभाववाला नहीं परन्तु शुद्ध श्रद्धा, ज्ञानवाला है। इसलिए शुद्ध श्रद्धा, ज्ञानवाला और शुभभाववाले की अपेक्षा वह हल्का है परन्तु है धर्मी। उसे अशुभभाववाला निश्चयावलम्बी को अकेला अशुभभाव में नरक गति जरा, ऐसा यह नहीं है। उसी प्रकार निश्चय से शुभ में रहता है, ऐसा यह नहीं है। आहाहा! सुजानमलजी!

भाषा तो ऐसा कहते हैं, लो! यह समकिती है और अभी युद्ध करता है और अमुक है। शास्त्र में तो कहा है कि अशुभभाव करे नरक में जाये। यह सब ऐसे लगते हैं। सुन न! यह, समझ में आया? परन्तु वह परिणाम उसे होते ही नहीं। उसे उसकी भूमिका प्रमाण में अशुभभाव आते हैं। राग का अशुभभाव होता है। तब अशुभ है तथापि व्यवहार का शुभभाव नहीं परन्तु मान्यता में दोनों है। समझ में आया? मान्यता शुभ और शुद्ध की दोनों बराबर है। तथापि अशुभभाव के काल में वह शुभ नहीं तो जो अकेला अशुभभाववाला नरक में जाये, वैसा भी यह नहीं है। तथा जो निश्चय के भानवाला, शुभ में है, वैसा भी नहीं है। उससे (निश्चयावलम्बी से) ऊँचा है और इससे (ज्ञानी-शुभभाव युक्त वाले से) नीचा है। पण्डितजी! समझ में आया?

रहित हों तथापि—यद्यपि वे शुद्धात्मभावनासापेक्ष शुभ-अनुष्ठानरत पुरुषों जैसे नहीं हैं... यह तो बराबर है। परन्तु अकेले शुभभाववाले हैं, ऐसा यह नहीं, और अकेले निश्चयावलम्बी हैं, वैसा यह नहीं। समझ में आया? ऐसे दो जैसा नहीं। और निश्चय के भानसहित के व्यवहार में रत है दोनों में, ऐसा भी यह नहीं। नहीं, तथापि धर्मी नहीं—ऐसा नहीं है। नहीं, तथापि धर्मी नहीं—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

तथापि—सराग सम्यक्त्वादि द्वारा व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं... ठीक! वह राग है न इस अपेक्षा से। चारित्रमोह का राग है न! आहाहा! भारी स्पष्टीकरण! पण्डित जयचन्दजी स्पष्टीकरण कितनी बार करते हैं, परन्तु उसमें से वह बचाव कर डालते हैं कुछ का कुछ। ऐसा नहीं चलता। यहाँ तो कहते हैं कि जब धर्मी है, निश्चय-सम्यग्दर्शन है, निश्चयज्ञान है, स्वरूपाचरण का चारित्र भी अनन्तानुबन्धी के अभाव में प्रगट हुआ है।

अब उसे जब अशुभराग में आता है, तब उससे क्या मानना ? निश्चयाभासी है ? अशुभ में आया, इसलिए निश्चयाभासी है ?

मुमुक्षु : इसलिए तो स्पष्टीकरण किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो यहाँ स्पष्टीकरण किया है। अशुभ में आया है, इसलिए निश्चयाभासी है, ऐसा नहीं है। और अशुभ में आया इसलिए धर्मी नहीं, गुणस्थान चौथा, पाँचवाँ नहीं, ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं है। अरे! गजब!

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी का नाश हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इतनी तो शान्ति और शुद्धता है, परन्तु शुद्धता निश्चय की होने पर भी उसे वर्तमान काल में शुभभाव का विकल्प नहीं, इसलिए अशुभभाव है और उसके आचरण में वह दिखता है, युद्ध दिखता है, वह दिखता है। आहाहा! तो शास्त्र में कहा है कि अशुभभाववाले नरक में जाते हैं। यह कहे, नहीं, नहीं। वह नरक में जाये ऐसा भाव उसे होते नहीं। अशुभभाव होते हैं परन्तु नरक में (आयुष्य) बँधे, ऐसा भाव उसे नहीं होता। आहाहा! तिर्यंच में जाये ऐसा भाव उसे नहीं होता और अशुभभाव के काल में आयुष्य बाँधे, ऐसा भी नहीं होता। बाँधे न! अशुभभाव हो उस काल में भविष्य का आयुष्य बाँधे, ऐसा वह होता ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! कितनी बात को स्पष्ट करते हैं। कहो, समझ में आया या नहीं ? यह तो सीधी बात है। ऐ सुमनभाई! थोड़ा-थोड़ा... तीन चार बोल अधिक आये न ? शुद्ध का। ढीला आवे तो यहाँ जरा... अन्तिम बोल निश्चय का लिया सही न!

मरकर नरक में जाये, वनस्पति होगा। तब यह समकिती हो उसे अशुभभाव हो, उसका क्या करना ? वह वनस्पति में जाये, ऐसा होता है या नहीं ? और वह धर्मी है या नहीं ? धर्मी है। अशुभभाव आता है परन्तु वह भविष्य का आयुष्य भी अशुभभाव के काल में नहीं बाँधेगा। समझ में आया ? जब शुभभाव आयेगा, तब आयुष्य बँधेगा। इतना तो अन्दर शुद्ध श्रद्धा का जोर वर्तता है।

मुमुक्षु : तिर्यंचगति की...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मनुष्य की नहीं, नरक में नहीं, एक देव की, वह भी

वैमानिक की। स्त्री की नहीं, स्त्री की नहीं, पुरुषवेद वैमानिक में, मनुष्यरूप से हो तो और नारकी, देव हो वह अलग बात। नारकी, देव हो तो मनुष्य का बाँधे। शुभभाव हो उस समय बाँधे। परन्तु उस समय धर्मी नहीं, ऐसा नहीं है। इतनी बात है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि भोग और छियानवें हजार स्त्रियों का भोग होता है, तथापि उस भोग के काल में अशुभभाव सही, परन्तु भविष्य का आयुष्य नहीं बाँधता। आहाहा! समझ में आया? और इसलिए वह धर्मी नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और इसलिए वह निश्चयवाले सहित का व्यवहारवाला है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? तथा निश्चयावलम्बी अकेला नरक में जाये और शुद्धता का भान नहीं और शुभ भी नहीं, ऐसा भी नहीं। शुद्धता का भान है। शुभ का व्यवहार ऐसा होता है, ऐसी श्रद्धा है। शुभभाव वर्तमान में नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव के समय आयुष्य का बन्ध नहीं पड़ता?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं पड़ता मनुष्य और तिर्यंच में। समझ में आय? **तथापि—सराग सम्यक्त्वादि द्वारा व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं...** व्यवहारसमकित की व्याख्या करेंगे वापस और परम्परा से मोक्ष को पाता है। **इस प्रकार निश्चय-एकान्त के निराकरण की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये। यहाँ जिन जीवों को 'व्यवहारसम्यग्दृष्टि' कहा है,...** देखो! यहाँ व्यवहारसम्यग्दृष्टि कहा है। उसमें था सराग सम्यग्दृष्टि। उस ओर, पहले। उसमें व्यवहार में सराग सम्यग्दृष्टि था। निश्चय में व्यवहारसम्यग्दृष्टि कहा। भाषा बदली है। व्यवहारसम्यग्दृष्टि कहा है। वे उपचार से सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं समझना। उपचार से व्यवहारसम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा नहीं। है निश्चयसम्यग्दृष्टि, परन्तु अशुभराग साथ में है, इसलिए उसे राग की अपेक्षा से समकित को सराग व्यवहार कहा है। समकित तो निश्चय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सराग सम्यग्दृष्टि...

पूज्य गुरुदेवश्री : है, शुभराग है। रौद्रध्यान होता है। पंचम गुणस्थान तक आर्तध्यान होता है। आहाहा! चारित्रदोष हो परन्तु बन्ध का कारण उसे आयुष्य का नहीं है। दूसरा बन्ध पड़े। बन्ध तो पड़े न, इतना राग है तो। समझ में आया? उसमें तो ऐसा

भी कहा है न भले नरक में बन्ध जाये। ऐसा भी कहा है। योगसार। पहले की बात है न। योगसार में। सम्यग्दृष्टि भले नरक में जाये, परन्तु वह कर्म खिर-क्षय हो जायेंगे। क्योंकि वह उनका स्वामी नहीं है, उसका आश्रय नहीं है, दृष्टि में आश्रय तो आत्मा था और बँध गया नरक का आयुष्य। जाये भी, वह खिर जायेगा। उसे आगे बढ़ेगा नहीं। श्रेणिकराजा देखो न! गये नरक में, खिरकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जगद्गुरु क्षायिक समकित और नरक में गये।

मुमुक्षु : नरक का बन्ध पहले पड़ गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले। पहले बन्ध पड़ गया था। बाद में तो बन्ध पड़ता नहीं। कहते हैं, **वे वास्तव में सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा समझना। उन्हें चारित्र-अपेक्षा से मुख्यतः रागादि विद्यमान होने से...** चारित्र-अपेक्षा से मुख्यरूप से रागादि विद्यमान होने से, ऐसा। सराग समकितवाले कहकर व्यवहार सम्यग्दृष्टि कहा है। उसको पहले सराग कहा था न!

श्री जयेसनाचार्यदेव ने स्वयं ही १५०-१५१वीं गाथा की टीका में कहा है कि—जब यह जीव आगमभाषा से कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है, तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा सराग-सम्यग्दृष्टि होता है। यह स्पष्टीकरण दिया है कि सराग सम्यग्दृष्टि कहा किसे ? कि जिसे **कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणामरूप स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है,...** देखो! स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त करता है, उसे सराग समकिती कहा। वह राग है, इसलिए (सराग सम्यग्दृष्टि कहा)। आत्मा का स्वसंवेदन सम्यग्दर्शन नहीं और अकेला राग है, इसलिए समकिती कहा, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

क्योंकि आचार्यों ने स्वयं ५०-५१ में कहा है कि **कालादिलब्धिरूप और अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख...** देखो! शुद्धात्मा के अन्दर पवित्र से सन्मुख परिणाम, उससे **स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त करता है,...** देखो! सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान।

तब प्रथम तो वह मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम और क्षयोपशम द्वारा...

लो! इस क्षयोपशम द्वारा और उपशम द्वारा सराग सम्यग्दृष्टि। क्षयोपशम-उपशम समकित तो निश्चय है परन्तु रागभाग बाकी है, इस अपेक्षा से उसे -समकित को सरागी कहा। बाकी समकित तो वीतराग ही है। समझ में आया? कितना याद रखना इसमें? आहाहा! लो! यह पूरा हुआ।

अब निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल रहे, अब इसकी बात करते हैं। निश्चय-व्यवहार के सुमेल की स्पष्टता के लिये २५४वें पृष्ठ का दूसरा फुटनोट देखो। पहले इसमें आ गया है। **भूमिकानुसार प्रवर्तनेवाले ज्ञानी जीवों का प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है। परन्तु जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले,** अब निश्चय और व्यवहार सहित और व्यवहार से रहित होकर निश्चय में आयेंगे, यह बात वर्णन करेंगे।

(मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले, धर्मात्मा राग से मुक्त होकर, स्वभाव की प्राप्ति करने का ही उद्यम धर्मी को तो होता है। समझ में आया? अपुनर्भव अर्थात् देखा? भव नहीं। **मोक्ष के लिये नित्य उद्योग करनेवाले, महाभाग भगवन्त,** धर्मात्मा मुनि की मुख्य बात है न इसमें?

मुमुक्षु : .... सावधान...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सावधान थोड़ा काल रहते हैं और फिर छोड़कर आडम्बर क्रिया में छोड़कर स्थिर होंगे। ऐसा लेंगे।

मुमुक्षु : दूसरी की महत्ता नहीं आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, महत्ता नहीं आवे उसे। कहेंगे अन्दर। समझ में आया? माहात्म्य नहीं अर्पित करते हुए, व्यवहार को माहात्म्य नहीं देते हुए, व्यवहार होता अवश्य है परन्तु माहात्म्य उसे समकिती ज्ञानी है, उसे व्यवहार का माहात्म्य नहीं होता। व्यवहार का माहात्म्य हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। आहाहा! कठिन बात! व्यवहार होता है परन्तु व्यवहार का माहात्म्य नहीं होता। ऐसे निश्चयसहित का व्यवहार और फिर व्यवहार को छोड़कर अकेला निश्चय में रहे, उसका मेल क्या है, यह कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८७, गाथा-१७२, ज्येष्ठ शुक्ल ३, रविवार, दिनांक -०७-०६-१९७०

पंचास्तिकाय, २६२ पृष्ठ है। **अब निश्चय-व्यवहार दोनों का सुमेल रहे, इस प्रकार भूमिकानुसार प्रवर्तन करनेवाले ज्ञानी जीवों को प्रवर्तन और उसका फल कहा जाता है:—** सुमेल रहे, उसका ख्याल नीचे दिया है। निश्चय-व्यवहार के सुमेल की स्पष्टता पृष्ठ २५४ में आ गयी है। जरा सूक्ष्म बात है। कि आत्मा अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, उसे स्पर्शकर जो निर्मल वीतरागीपर्याय प्रगट करता है, उसे निश्चय कहा जाता है। आत्मा चैतन्यस्वभाव, वीतरागस्वभाव, पूर्ण आनन्दस्वभाव के आश्रय से अवलम्बकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय निर्विकारी वीतरागी हो, उसे निश्चय कहते हैं। उसके योग्य, भूमिका के योग्य, जैसे कि मुनि हों तो उसे पंच महाव्रतादि के विकल्प शुभराग होता है, वह व्यवहार; और निश्चय तो स्वभाव चैतन्य के आश्रय से प्रगट हुई निर्मल वीतरागीदशा, वह निश्चय। यह निश्चय और व्यवहार का सुमेल है। समझ में आया?

इसी प्रकार श्रावक। सच्चे श्रावक अर्थात् जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन का अनुभव हुआ है। रागरहित शुद्धचैतन्यस्वभाव का अनुभव होकर शुद्धता पवित्रता वीतरागदशा पंचम गुणस्थान के योग्य, स्व के आश्रय से वीतरागदशा हुई है, वह निश्चय और उसके योग्य बारह व्रत के विकल्पादि हों, वह व्यवहार।

मुमुक्षु : प्रतिमा कहाँ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बारह व्रत में प्रतिमा आदि विकल्प उठते हैं। शुभवृत्ति उठे, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, व्रतादि का। वृत्ति विकल्प है वह। वह विकल्प है, वह शुभराग है। और आत्मा रागरहित स्वभाव चैतन्यस्वभाव के आश्रय से आनन्द और शान्ति की दशा जो प्रगट की है, पंचम गुणस्थान श्रावक के योग्य, उसे निश्चय कहते हैं। उसकी भूमिका के योग्य ऐसे बारह व्रत और प्रतिमा आदि के विकल्प-शुभराग हों, उन्हें व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? यह निश्चय-व्यवहार का मेल है। नहीं जहाँ निश्चय और अकेले व्रत आदि के विकल्प हैं, वह तो व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि है।

और नहीं जिसे निश्चय आनन्द और ज्ञान का भान तथा शुभपरिणाम की क्रिया का तिरस्कार करता है, वह अशुभपरिणाम में आता है, वह निश्चयावलम्बी जीव है। समझ में आया? सेठी! यह तो अपने सब आ गया है। यह तो यहाँ शुरु कराते हैं न दोनों का मेल। देखो!

परन्तु जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले महाभाग भगवन्तों,... मुनि तो आत्मा के आनन्दस्वरूप में बहुत ही उद्यम जिन्हें शान्ति और वीतरागदशा अन्तर में वर्तती है, ऐसे नित्य उद्योग करनेवाले, स्वभाव की शान्ति और आनन्द में रमना, वह नित्य प्रयत्न करनेवाले महाभाग्य भगवन्त, महापवित्र जिन्हें अन्तर के आनन्द का उफान प्रगट हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा है अतीन्द्रिय आनन्द। ऐसे आनन्द की जिन्हें वर्तमान दशा में प्रचुर स्वसंवेदन और आनन्द का वेदन वर्तता है। वह अन्तर में स्वभाव की शान्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

ऐसे **महाभाग भगवन्तों, निश्चय-व्यवहार में से किसी एक का ही अवलम्बन न लेने से...** अकेला निश्चय है और विकल्प नहीं, ऐसा नहीं। अकेले विकल्प का क्रियाकाण्ड है और स्वभाव का अनुभव नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? निश्चय में से किसी एक को ही, (फुटनोट में) तीन है न, नीचे है देखो! **मोक्ष के लिये नित्य उद्यम करनेवाले महापवित्र भगवन्तों को (-मोक्षमार्गी ज्ञानी जीवों को) निरन्तर शुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषयभूत...** नीचे। भगवान आत्मा यह विकल्प पुण्य-पाप की वृत्तियाँ हैं, उनसे रहित ऐसा आनन्दघन भगवान। वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय शुद्धात्मस्वरूप। वह पवित्र आनन्द का धाम भगवान, ऐसा जो द्रव्यार्थिक अर्थात् निश्चयनय का विषय, वह उसे **सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से...** धर्मात्मा जीव को चौथे गुणस्थान में हो या पाँचवें में हो या छठे में। वस्तुस्वरूप द्रव्य जो है, उत्पाद-व्यय की पर्याय होने पर भी, ध्रुव जो त्रिकाली है, उसके अवलम्बन से शुद्धता प्रगट की है, उसे यहाँ धर्मात्मा कहा जाता है। गजब सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

उसका सम्यक् अवलम्बन वर्तता होने से उन जीवों को उस अवलम्बन की तरतमतानुसार... अवलम्बन थोड़ा आदि में **सविकल्पदशा में भूमिकानुसार शुद्धपरिणति तथा शुभपरिणति का यथोचित सुमेल (हठरहित) होता है,...** चौथे गुणस्थान में

शुद्धात्मा पुण्य और पाप के विकल्प से रहित ऐसी अन्तर वस्तु की दृष्टि का अनुभव हो, इतनी शुद्धपरिणति तो सम्यग्दृष्टि को चौथे में होती है। इसके अतिरिक्त भक्ति आदि का भाव हो, वह शुभ होता है, वह उसका व्यवहार है। पंचम गुणस्थान के योग्य शुद्धद्रव्यार्थिकनय के आनन्द का अवलम्बन लेकर पवित्रता, वीतरागी आनन्द की दशा उसके योग्य जो प्रगट हुई है, वह शुद्धपरिणति है और बारह व्रत और ग्यारह प्रतिमा के विकल्प हैं, वे शुभभाव हैं, वह पुण्यबन्ध का कारण है; और स्वभाव के आश्रय से आनन्द की शुद्धपरिणति है, वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

यथोचित सुमेल (हठरहित) होता है,... धर्मी को पाँचवें या छठवें गुणस्थान में शुभविकल्प भक्ति, दया, दान, व्रतादि का होता है। हठ बिना होता है। देखो! यहाँ सहज आया, भाई! शुभ में भी सहज कहा है न इस अपेक्षा से। आता है, ऐसा विकल्प। वह अवलम्बन तो सहज चैतन्यद्रव्य ज्ञानमूर्ति प्रभु का अवलम्बन समकिती को तो पहले होता है। इसके बिना सम्यग्दर्शन और धर्म नहीं होता। आहाहा! परन्तु ऐसा अवलम्बन वर्तता होने पर भी, पूर्ण आश्रय किया नहीं; इसलिए उसे शुभ की वृत्तियाँ, बारह व्रत ऐसे शुद्ध की दशा के साथ शुभभाव होते हैं। यह निश्चय और व्यवहार का यथोचित मेल कहा जाता है। सेठी! वीतरागमार्ग ऐसा है। बहुत सूक्ष्म है।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का स्वरूप, उन्होंने जो मार्ग कहा, वह बहुत सूक्ष्म और गम्भीर है। साधारण जनता को तो वह सुनने को मिलना भी मुश्किल है।

यहाँ तो कहते हैं कि, इस शास्त्र में, **इसलिए वे जीव इस शास्त्र में (२५८वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलनिश्चयावलम्बी कहा है, ऐसे केवलनिश्चयावलम्बी नहीं हैं तथा (२५९वें पृष्ठ पर) जिन्हें केवलव्यवहारावलम्बी कहा है, ऐसे केवलव्यवहारावलम्बी नहीं हैं।** अर्थात् क्या कहा? कि आत्मा अखण्डानन्द और ज्ञायक है। राग की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति की क्रिया, राग की क्रियारहित है—ऐसा जिसे अन्तर भान नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड को मानकर धर्म मानता है, वह शुभभाव की क्रिया व्रत, नियम, तप, उसको व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

और जिन्हें निश्चय की दृष्टि और अनुभव नहीं। मात्र बातों में कहते हैं कि आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है। और शुभवृत्तियाँ विकल्प है, उसका तिरस्कार करता है। अर्थात् निश्चयस्वभाव का भान भी नहीं है, व्यवहार के विकल्प, पुण्यबन्ध के कारण, वे भी नहीं हैं। यह तो अशुभ में वर्तता है। उसे निश्चयावलम्बी, निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि कहा है।

अब यह तीसरे नम्बर की बात चलती है। जिसे निश्चय का भी भान है और उसके साथ भूमिका के योग्य व्यवहार होता है, यह उसे निश्चय और व्यवहार का सुमेल योग्य ज्ञानी धर्मात्मा को होता है। **जो, अपुनर्भव के (मोक्ष के) लिये नित्य उद्योग करनेवाले महाभाग भगवन्तों, निश्चय-व्यवहार में से किसी एक का ही अवलम्बन न लेने से (-केवलनिश्चयावलम्बी या केवलव्यवहारावलम्बी न होने से) अत्यन्त मध्यस्थ वर्तते हुए, शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन की...** देखो! अब आया। धर्मी समकिती पाँचवें गुणस्थान में हो या छठवें में हो, सच्चा श्रावक हो या सच्चा साधु हो। वह शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व जो है, उसमें **विश्रान्ति का विरचन...** उसमें विश्रान्ति का विरचन। उसमें विश्रान्ति (अर्थात्) स्थिरता की रचना उत्पन्न करता है। समझ में आया? क्या कहा?

शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व,... है कैसा आत्मा? कि शुद्धचैतन्य। अकेला ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। ऐसा आत्मतत्त्व। उसमें समकिती विश्रान्ति और विरचन के प्रति, उसमें विश्रान्ति-स्थिरता से स्वरूप की रचना करता है। वह आनन्द और शान्ति की उत्पत्ति की रचना करता है। अरे! कठिन बात! समझ में आया? **अभिमुख वर्तते हुए...** वह तो शुद्धस्वभाव ध्रुव अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु, उसके अभिमुख में वर्तते हुए, दृष्टि तो धर्मी की वहाँ पड़ी है। समझ में आया?

उसके **प्रति अभिमुख वर्तते हुए...** एक बात। **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्तिका निवर्तन करनेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते हुए...** आहाहा! धर्मात्मा सन्त और श्रावक उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा इस देह के परमाणु यह मिट्टी, इनसे तो भिन्न, यह तो मिट्टी जड़ है। कर्म अजीवतत्त्व है। कर्म अजीव होकर रहे हैं, उनसे भिन्न; और पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के

परिणाम वे आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व है, भाव बन्धतत्त्व है, उससे भिन्न। ऐसे **आत्मतत्त्व में अभिमुख वर्तते हुए,...** उसकी पर्याय में तीव्र प्रमाद को टालने के लिये, है तो वह भी प्रमाद परन्तु यह तीव्र। मुनि को पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं, २८ मूलगुण का विकल्प होता है, वह रागभाग है। उस पर **माहात्म्य में से वारते हुए...** ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! दो बातें लीं।

शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन की अभिमुख (उन्मुख) वर्तते हुए,... धर्मी तो अपने द्रव्यस्वभाव के सन्मुख ही वर्तता होता है, तथापि उसकी भूमिका प्रमाण में जैसे कि मुनि को तीव्र प्रमाद को टालने के लिये पंच महाव्रत, समिति, और गुप्ति के शुभराग के भाव आते हैं, ऐसी क्रियाकाण्ड परिणति, वह सब क्रियाकाण्ड के शुभराग की अवस्था है। **उसको माहात्म्य में से वारते हुए...** उसका माहात्म्य ज्ञानी को होता नहीं। अरे... अरे! समझ में आया? कहो, सेठी को भी यह बहुत लगता है। यह तो पंचास्तिकाय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो समयसार... सब ग्रन्थ वाँचन हो गया है। अष्टपाहुड़, पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, तत्त्वार्थसार। बहुत ग्रन्थ यहाँ तो वाँचन हो गये हैं। पद्मनन्दिपंचविंशति, द्रव्यसंग्रह, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ईष्टोपदेश, समाधिशतक / समाधितन्त्र आदि। बहुत ग्रन्थ-शास्त्र वाँचन हो गया है। परन्तु बात यह कि इसे रुचे, ऐसी बात नहीं आती। आहाहा!

मुमुक्षु : लड़का तो रोता ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही करे, बात सच्ची है।

मुमुक्षु : विवाह का प्रसंग हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाह का प्रसंग हो तो लड़का तो रोता ही है। ऐसा। वह विवाह करता हो परन्तु उसे पालने के हिचका न करे तो रोवे। परन्तु यह तेरा भाई विवाह करता है (इस समय) नहीं रोया जाता। उसे खबर नहीं (कि) विवाह करता है। इसी प्रकार अज्ञानी को धर्म में कुछ शुभभाव का नाम न आवे तो रोवे। परन्तु यह आत्मा का

विवाह मँडा है। रागरहित स्वरूप की स्थिरता का यहाँ तो विवाह है। आहाहा! क्या हो? जगत घिरा हुआ है न। मिथ्या अभिप्राय से घिरा हुआ जगत, उसे सत्य को सुनते हुए भी अन्दर से ऐसी चोट लगती है। अररर! ऐसा धर्म! यह महाव्रत को पालना, वह धर्म नहीं? धर्म तो नहीं, आते अवश्य हैं परन्तु उनका माहात्म्य धर्मी को नहीं होता है। अज्ञानी को महाव्रत का माहात्मय है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : धर्म तो नहीं, आवे अवश्य, परन्तु उनका माहात्म्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : (माहात्म्य) नहीं।

मुमुक्षु : लिखा है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। आहाहा! बापू! धर्म तो कोई गृहस्थाश्रम में, यह तो बात अपने आ गयी, नहीं? अशुभभाव भी धर्मी को हो, तब शुभभाव नहीं होता। तब निश्चय-व्यवहार का दोनों एक साथ नहीं है। तथापि वह धर्मी तो है। क्योंकि दृष्टि तो शुद्धचैतन्य की परिणति पर पड़ी है। भले उसे व्यवहार के व्रतादि का विकल्प उस समय न हो। अशुभभाव है, परन्तु वह धर्मी नहीं है, ऐसा नहीं है। तथा वह अशुभभाव आया है, इसलिए उसे भविष्य का आयुष्य अशुभभाव में बँधेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा!

फिर भले नारकी का जीव और देव का जीव हो। उसे अशुभभाव आवे, परन्तु उस अशुभभाव के समय भविष्य का आयुष्य नहीं बाँधता। क्योंकि समकिती नारकी और देव तो मनुष्य में आनेवाले हैं और मनुष्य तथा तिर्यंच, देव में जानेवाले हैं। इसलिए उन्हें शुभभाव हो तब ही आयुष्य बँधेगा। समझ में आया? अकेले द्रव्यस्वभाव को दृष्टि में झेला है। आहाहा! ऐसे उत्पाद-व्यय की पर्याय परिणमी होने पर भी, ऐसे ध्रुव, ध्रुव नित्य में वह उत्पाद-व्यय आता नहीं। समझ में आया?

ऐसे ध्रुव के अवलम्बन की दृष्टि में, कहते हैं, उसके योग्य जब शुभभाव हो तो हो। वह प्रमाद की तीव्रता टालने के लिये आवे, तथापि उसका माहात्म्य नहीं है। आहाहा! सेठी! लो! ऐसे सेठी जैसे खानदानी व्यक्ति, वृद्ध व्यक्ति और जयपुर के रहने के रहेवासी, उन्हें ऐसा सुनना मुश्किल पड़ा। लो! आहाहा! यह बात ही ऐसी। फेरफार हो गयी न? सेठी! पूरे मार्ग का फेरफार हो गया।

मार्ग है, प्रभु! अन्दर चैतन्यध्रुव जिसकी खान में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अपरिमित स्वभाव जिसका स्वभाव है, जिसका भाव है। सत् का स्वभाव है, वस्तु का सत्व है। उसके माप का क्या कहना? ऐसा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, अनन्त अमृत—ऐसे गुण का एकरूप स्वरूप। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जहाँ दृष्टि में आया और दृष्टि परिणमी। फिर कहते हैं कि उसे कदाचित् उसकी भूमिकायोग्य शुभभाव हो और किसी समय न हो और अशुभभाव भी आवे। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह धर्मी नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! भले जिसे निश्चय की परिणति के साथ ऐसा शुभराग का भाव हो, वैसा यह भले नहीं। इससे हल्का है। भाई ने कहा था। हल्का है। छोटा तुम्हारा कहाँ गया? कहाँ बैठा है?

मुमुक्षु : लाठी गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाठी गया? तुम्हारे प्रवीणभाई का भाई,...? ध्यान बहुत रखता है, हों! बोलता था... वह तो उससे हल्का कहलाये... अन्दर आकर। लड़का कहा, भाग्यशाली है।

अभी आयुष्य इस प्रकार के भाव कान में पड़ते है न, भाव कहे, उससे हल्का कहलाये। अशुभभाव ऐसा परन्तु धर्मी तो... सेठी! आहाहा! यहाँ कहते हैं, कठिन काम बापू! यह लोगों को ऐसा सुनते हुए ऐसा लगता है कि यह तो सब उच्छेद कर दिया। ऐई! जयन्तीभाई! हमारे यह सब धमाल... धमाल! दिया था न अपने उसमें? धमाल नहीं आया था? क्रियाकाण्ड की धमाल। किसमें था? कितने पृष्ठ पर? २५७। धमाल में, लो! **कर्मकाण्ड के धमाल में वे अचलित रहते होने से।** पूरे दिन पूजा करना, भक्ति करना, नामस्मरण करना और पृष्ठ फिराना। शुभराग के कर्मकाण्ड में धमाल, दया ऐसी करना और झूठ ऐसे नहीं बोलना, शरीर से ब्रह्मचर्य ऐसे पालन करना और ऐसा नहीं खाना, क्रियाकाण्ड की धमाल में पड़े हैं बेचारे! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, ऐसे अकेले क्रियाकाण्ड की धमाल में पड़े हैं, वे तो व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि हैं, परन्तु जिन्हें अन्तर में आत्मद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और परिणति स्वरूप के आश्रय से हुई, उन्हें भी उनकी भूमिका के योग्य,... यहाँ मुनि का

दृष्टान्त दिया है। उन्हें पंच महाव्रत के, २८ मूलगुण के, पाँच समिति के परिणाम तीव्र प्रमाद को टालने के लिये वे आते हैं। वे आते हैं परन्तु उनका माहात्म्य नहीं होता। गजब बात करते हैं न? समझ में आया?

जिसे लोग पंच महाव्रतादि को धर्म मानते हैं, उसे यहाँ निश्चय का भान हुआ हो परन्तु व्यवहार माहात्म्य उसे नहीं है। समझ में आया? देखो! ऐसे परिणाम कहा न? **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति का निवर्तन करनेवाली (टालनेवाली) क्रियाकाण्डपरिणति को...** यह भाषा है। मुनि के योग्य पंच समिति, गुप्ति, विकल्प। पंच महाव्रत, २८ मूलगुण। प्रमाद के उदय को अनुसरती वृत्ति को निवर्तानेवाली (टालनेवाली) ऐसे शुभभाव। क्रियाकाण्ड परिणति आती है अवश्य। समझ में आया? कैसी शैली परन्तु अमृतचन्द्राचार्य की! पाठ में तो वीतरागभाव मात्र कर, (दूसरी) बात जरा भी करना नहीं, ऐसा आया है। परन्तु आचार्य—ऐसे निश्चय में जहाँ पूर्ण नहीं हुआ और निश्चय का भान है, निश्चय की दशा है, उसके योग्य ऐसा व्यवहार राग उचित होता है। उसके योग्य होता है। यह सिद्ध करके वीतरागभाव को सिद्ध करते हैं। बात तो वीतरागभाव को सिद्ध करते हैं। हाँ। परन्तु उसकी भूमिका में ऐसा ही राग होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मुख्यता...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्यता स्वभाव-सन्मुख में है। बस, बात यह। आहाहा! कहो, चेतनजी! क्या इसमें करना, इसमें लोगों को। वापस कहेंगे कि निश्चय और व्यवहार को मिलाओ। व्यवहार आया तो वापस माहात्म्य नहीं, ले। व्यवहार मुश्किल से आया और सुमेल करने गये तो भी वापस उसका माहात्म्य नहीं। उदास। उसका यदि माहात्म्य आया तो—राग का माहात्म्य आया, तो वीतरागी भगवान आत्मा का तो माहात्म्य टल गया उसे दृष्टि में से।

मुमुक्षु : उसका माहात्म्य आवे, इसलिए दृष्टि भी नहीं बदली।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि बदली नहीं। हाँ... सेठ तो ऐसा तो, ...है तो कुछ करे तो सही न! समझ में आया? इसके ख्याल में बात का रूप आना चाहिए। उसका स्वरूप। रूप अर्थात् स्वरूप। यह क्या? यह क्या? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, नित्य उद्योग तो यहाँ वर्तता है। ऐसा आया न पहले? **महाभाग भगवन्त, निश्चय-व्यवहार में से कोई एक को ही नहीं अवलम्बते,...** अन्दर उद्योग वर्तता है। शुद्धता स्वभाव में। आहाहा! और दोनों में अत्यन्त मध्यस्थ अर्थात् कि वीतरागता भी है और राग भी है। यह दोनों का ज्ञान यथार्थरूप से है। **शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन...** करता है। विरचन, हों! विरेचन नहीं, विरचन। विरेचन और विरचन में बड़ा अन्तर है। विरेचन में छोड़ देना और विरचन में रचना।

कहते हैं, धर्मात्मा चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा पूर्णानन्द का स्वरूप जिसका है, ऐसी अन्तर्दृष्टि ध्रुव की ओर जमी है, इसलिए उसे एक को ही अवलम्बकर रहा है, ऐसा है नहीं। उसका अवलम्बन यहाँ है, तो भी उसकी भूमिका प्रमाण तीव्र प्रमाद को टालने के लिये समिति-गुप्ति का विकल्प होता है। परन्तु विरचन प्रत्याभिमुख वर्तते हुए, यहाँ आत्मा की रचना स्थिरता करने में अभिमुख वर्तते, यहाँ (राग में) अभिमुख नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका नाम व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? एक तो यहाँ की छाप ऐसी है कि निश्चय की ही बातें करते हैं। उसमें ऐसा सुने वहाँ, हाँ... अपने कहते थे, ऐसा आया। परन्तु यह सुन तो सही! पाठ में क्या है, यह तो देख!

मुमुक्षु : कहते थे ऐसा ही आवे न, होवे वह सच्चा ही हो। ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह व्यवहार है, (ऐसा) कहा न। परन्तु व्यवहार का माहात्म्य नहीं और व्यवहार का माहात्म्य हो तो दृष्टि सच्ची रहती नहीं। अभिमुखता रहती नहीं। ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने हुए का अर्थ यह है, इतना। यह है। माहात्म्य बाहात्म्य कैसा? व्यवहार है, उसका ज्ञान वर्तता है।

मुमुक्षु : बारहवीं गाथा में आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहवीं में सबका एक ही अर्थ है न! एक ही रीति है। सन्तों की पद्धति ही एक है, चारों ओर से देखो तो।

बारहवीं गाथा में सब निकालते हैं। हे! इसमें कहा देखो, व्यवहार का उपदेश ज्ञानी को करना। परन्तु ऐसा नहीं है। वहाँ उपदेश की बात ही नहीं है। वहाँ तो ज्ञानी को दृष्टि के विषय में मात्र भूतार्थ कहा जब, तब बाकी कुछ पर्याय में अपूर्णता, अशुद्धता कुछ रही है या नहीं? ज्ञान करने को कोई चीज़ रही है या नहीं? क्योंकि दृष्टि का विषय तो अभेद के ऊपर पूर्ण हो गया है। उसमें तो दो भाग पड़ते नहीं। अब जब ज्ञान हुआ उसके साथ, उसने भूतार्थ को भी जाना और पर्याय कितनी है, उसे भी जानने का ज्ञान रहा है या नहीं? ऐसा सिद्ध करते हैं। पण्डितजी! करनेयोग्य है, यह प्रश्न वहाँ है ही नहीं वहाँ। उस अर्थ में लिखा, देखो! इसमें ऐसा करने का है, यह करने का है।

मुमुक्षु : प्रयोजनवान है .... निषेधना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निषेधना नहीं अर्थात् ऐसा विकल्प वहाँ भूमिका में आये बिना रहता ही नहीं। उसकी दशा की मर्यादा ही ऐसी है।

मुमुक्षु : उसमें लिखा है कि सर्वथा निषेध करनेयोग्य नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध करनेयोग्य अर्थात् कि व्यवहार नहीं है, वहाँ ऐसा नहीं है। ऐसा अर्थ करना। ऐई! उसमें नहीं था? जैनधर्म तुझे रखना हो तो निश्चय-व्यवहार को एक को भी छोड़ना नहीं। इसका अर्थ ही व्यवहार है, निश्चय है। निश्चय में अभेद वस्तु, वह है और व्यवहार में भेद, गुणस्थान भेद, निर्मल पर्याय बढ़ती हुई और राग घटता हुआ, ऐसा प्रकार है, उसे व्यवहार कहा जाता है। आदरयोग्य है या आश्रय (करनेयोग्य) यह प्रश्न वहाँ है ही नहीं।

मुमुक्षु : सर्वथा निषेध करनेयोग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सर्वथा निषेध अर्थात् कि शुभराग नहीं, ऐसा नहीं है। वह व्यवहार से ऐसा कहा जाता है। अशुभराग से बचाने के लिये शुभराग करनेयोग्य ऐसा व्यवहार से कहा जाता है अर्थात् कि वास्तव में तो करनेयोग्य नहीं, परन्तु परिणमन में राग ऐसा आता है, इसलिए परिणमता है अर्थात् करता है, ऐसा कहा जाता है। कर्ताबुद्धि

नहीं परन्तु परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को तब मूल समझने में ही पूरी दिक्कत आयी है। समझण पक्की हुई और सम्यक्त्व हुआ तो हो गया। वह तो चला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन? कहाँ से होता था? उसके ज्ञान के अभ्यास में, विचार में शुभभाव तो बहुत आयेंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : भय बहुत रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भय, दुनिया पागल है (इसलिए) भय रहता है। अन्दर दृष्टि करनी नहीं न, इसलिए भय रहता है।

यह ज्ञानी को अशुभभाव आवे तो भी वह खिरने के लिये आता है। ले, सुन। ऐई! आदर नहीं, वहाँ सुखबुद्धि नहीं, तथापि भाव आये बिना रहता नहीं। उसकी बात ही यहाँ सिद्ध नहीं करनी है। यहाँ तो निश्चय के साथ व्यवहार का मैल कितना इतनी बात सिद्ध करनी है। अरे! भगवान! क्या करे परन्तु। तब दूसरा मार्ग की रीति न हो तो इसमें करना भी क्या? दुनिया को ठीक लगे या ठीक न लगे, समाज समतौल रहे या न रहे, इसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : पंचम काल अनुसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल अनुसार, वह वीतरागपना–केवलज्ञान न प्राप्त कर सके, क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ सके, इतनी बात है।

मुमुक्षु : पंचम काल में सम्यग्दृष्टि और चौथे काल के सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा अलग होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अन्तर होगा? पंचम काल में मुनिपना और चौथे काल के मुनिपने में अन्तर होगा? पंचम काल में पंच महाव्रतवाले मुनि और चौथेवाले निश्चयदृष्टि सहित के पंच महाव्रतवाले मुनि, ऐसा अन्तर होगा?

मुमुक्षु : ऐसा तो बने।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं बनता। बने क्या? और बने क्या? होवे ऐसा बने या न हो, ऐसा बने? समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, धर्मी तो **शुद्धचैतन्यरूप आत्मतत्त्व में विश्रान्ति के विरचन,...** विश्रान्ति स्थिरता की रचना के प्रति अभिमुख है। आहाहा! राग की रचना, वह वीर्य ही नहीं। इनकार किया है न! स्वरूप की रचना करे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **प्रमाद के उदय का अनुसरण करती हुई वृत्ति का...** वृत्ति अर्थात् परिणति, उसे निवर्तानेवाली क्रियाकाण्ड परिणति, ऐसा। वर्तमान में मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प आदि होते हैं। वह तीव्र प्रमाद को टालने के लिये ऐसे होते हैं। समझ में आया? तथापि **माहात्म्य में से वारते हुए (-शुभ क्रियाकाण्डपरिणति हठरहित सहजरूप से...)** लो! **हठरहित सहजरूप से...**कर्ताबुद्धि नहीं और आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी चारित्र की पर्याय है, इसलिए आवे न, ऐसा कहते हैं। उस गुण की परिणति ही जहाँ हीन है जहाँ; इसलिए ऐसा भाव आता है।

हठरहित सहजरूप से... लो! भाषा। शुभविकल्प सहज, वह तो विकार है। सहज अर्थात्? ऐई! ऐसा होवे उसे। करने की बुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि नहीं। व्रत का विकल्प है, वह तो वास्तव में जहर है। कर्मसंगवाला, उसकी भावना ज्ञानी को होगी? परन्तु ऐसा पर्याय में आये बिना (रहता नहीं)। छठवें मुनि को, पाँचवें में श्रावक का, बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमा के भाव आवे। वे निश्चय के आनन्द की परिणति के साथ, शुद्धपरिणति के साथ, शुद्ध अवस्था के साथ इतनी शुभरूपी अशुद्ध अवस्था होती है। समझ में आया?

तथापि उस शुभ के प्रति माहात्म्य टालते हुए, उसका माहात्म्य नहीं कि यह रहना और यह होना, क्षण-क्षण में स्वभावसन्मुख ही बढ़ते जाते हैं।

मुमुक्षु : लक्ष्य तो अपने सन्मुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (लक्ष्य तो) यहाँ है। बात तो ऐसी है। क्या हो? लोगों ने बाहर से लगाया है न, इसलिए यह बाहर के साथ मिलान नहीं खाता। ऐई, ऐसा नहीं और वैसा नहीं। ठीक भाई! बापू तुझे।

शुभ क्रियाकाण्डपरिणति हठरहित सहजरूप से भूमिकानुसार... पाँचवें गुणस्थान

के योग्य ग्यारह प्रतिमा, बारह व्रतादि के भाव, भगवान की भक्ति, पूजा का भाव आये बिना रहता नहीं, ऐसा मुनि को पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के भाव आये बिना रहते नहीं।

तथापि अन्तरंग में उसे माहात्म्य नहीं देते, लो! माहात्म्य में से वारते हुए, इसका अर्थ किया। (कि) माहात्म्य नहीं देते, माहात्म्य नहीं देते कि आहा! बहुत अच्छा।

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण पाले, इसलिए अच्छा बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा! अट्ठाईस मूलगुण पाले, इसलिए अच्छा—ऐसा माहात्म्य नहीं। सेठ! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी दूसरा सम्प्रदाय पंच महाव्रत, मिथ्यादृष्टि, उसे पंच महाव्रत के परिणाम, उन्हें चारित्र कह दिया। लो!

मुमुक्षु : यह वस्तु चालू है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चालू है, इस समय माहात्म्य नहीं।

मुमुक्षु : पहले तो माहात्म्य हो, फिर उसे टाले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली बात ही कहाँ है? पहले से दृष्टि के आश्रय में राग का माहात्म्य रहता नहीं। राग आवे, तथापि उसकी महिमा और माहात्म्य नहीं। आहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : शुभ का लाभ तो बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ का क्या लाभ है? पुण्य बँधता है। अब बाहर मिले, उसमें आत्मा को क्या हुआ? भगवान का समवसरण मिले, पूरी दुनिया मिले, उसमें आत्मा को क्या? बाहर का उसमें आत्मा को क्या? वह तो निमित्त है। वह तो बाहर है और उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। यह तो आ गया नहीं अपने? (समयसार गाथा) ७४ में। ७४ में आया है या नहीं? छठा बोल। शुभभाव दुःख फल है। ७४। सत्तर और चार। दुःखफल है, भाई! इस शुभभाव में पुण्य बँधेगा। पुण्यबन्ध में संयोग मिलेंगे। संयोग पर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। भले समवसरण और भगवान मिले परन्तु उनके सामने देखते, इसे शुभराग आकुलता होगी। यह शुभराग, वह आकुलता है।

मुमुक्षु : परन्तु भगवान न मिले तो धर्म नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भगवान यह मिले और धर्म होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐई सुजानमलजी! क्या है?

मुमुक्षु : अचिंत्य शक्ति स्वयमेव देव... निजस्वरूप के स्वध्यान में आगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा स्वयं पवित्र भगवान, उसकी महिमा किसे आवे? समझ में आया? जहाँ दूधपाक के स्वाद की जहाँ महिमा हो, उसे लाल ज्वार के छिलके के भूसी की रोटियों का माहात्म्य होगा? आवे, परन्तु हो, माहात्म्य हो। समझ में आया? आहाहा!

अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,... लो! **क्रियाकाण्डपरिणति को माहात्म्य में से वारते और अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,...** ऐसे दोनों इकट्ठा लेना। समझ में आया?

मुमुक्षु : अत्यन्त उदासीन?

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, किससे? उस क्रियाकाण्ड परिणति से। देखकर चलना, ऐसा विकल्प आया, परन्तु कहते हैं कि क्रियाकाण्ड की परिणति का अभी उसे माहात्म्य नहीं। तथापि उससे उदास है। उदास है। उसमें मैं नहीं, वह मेरा नहीं, वह मुझे नहीं, वह मुझसे तो भिन्न है। उससे मैं भिन्न हूँ और मुझसे वह भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा वीतरागमार्ग है। आहाहा! गजब बात है। लोगों को तो सुनते हुए अन्दर से ऐसा हो जाता है कि यह साधन तो कुछ कहते नहीं। साधन करते हैं और साधन व्यवहार से आया। वह माहात्म्य करनेयोग्य नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। उसे व्यवहार साधन कहा था, कारण कहा था। हेतु—नियत का हेतु आता है न? उसका माहात्म्य करना नहीं और अत्यन्त उदासीन रखना, ऐसा तो साथ में कहते जाते हैं, अब। आहाहा!

मुमुक्षु : (यह) एक जगह लिखा है और वह बहुत जगह...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत जगह हो तो, वह तो व्यवहार का कथन तो बहुत जगह हो, परन्तु उसका फल संसार है।

मुमुक्षु : १७२ गाथा में एक कौने में लिखा है, उसे कौन पढ़ने जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौने में लिखा है परन्तु मुद्दे की रकम चाहे जहाँ लिखी हो! वह रकम सच्ची निकलेगी। कोई खोटी निकलेगी? समझ में आया?

अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,... किसमें? प्रमाद की तीव्रता टालते हुए, टालने में ऐसे पंच महाव्रत और पंच समिति का विकल्प आये बिना रहता नहीं, तथापि **माहात्म्य में से वारते हुए अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए,...** ऐसी तो बात है। कितनी सरस है, देखो न! मात्र उसके योग्य व्यवहार होता है, वह यहाँ साबित करना है। अकेला निश्चय पूर्ण प्रगट नहीं हुआ, इसलिए उसे ऐसा व्यवहार बीच में होता है और निश्चय की परिणति भी साथ में होती है, शुद्धपरिणति भी होती है और साथ में शुभभाव भी होते हैं। यह बात सिद्ध करने, इस विषय में अमृतचन्द्राचार्य (ने लिया है)। कितने ही तो ऐसा कहे अमृतचन्द्राचार्य... मूल पाठ में वीतराग, और अमृतचन्द्राचार्य ने कहाँ पूछना ऐसा। अब उनके जैसे विकल्प की जाति हो, वैसा यहाँ ज्ञान हो, और वैसा ही वहाँ राग हो यह इसे बतलाना है। समझ में आया? आहाहा!

यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से... अब आया वापस। देखो! उससे माहात्म्य निवारते हुए, अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, तब अब करते क्या हैं? **यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से...** राग, वह आत्मा नहीं। क्रियाकाण्ड परिणति, वह आत्मा नहीं। उससे उदास, माहात्म्य वारते हुए, तीव्र प्रमाद को टालते हुए, ऐसा भाव आवे, उसका माहात्म्य वारते हुए, **अत्यन्त उदासीन वर्तते हुए, यथाशक्ति आत्मा को आत्मा से... आत्मा को आत्मा से आत्मा में...** लो! **संचेतते (अनुभवते) हुए...** आहाहा!

यथाशक्ति आत्मा में आत्मा को अन्दर यथाशक्ति अनुभव करते हुए ऐसी योग्य भूमिका के प्रमाण में उसका अनुभव उसे होता है। **नित्य-उपयुक्त रहते हैं,...** वहाँ नित्य उपयोग रहता है। स्वभाव के अनुभव के प्रति उनका नित्य उपयोग (रहता है)। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह तो वीतरागता का राग किंचित् नहीं करना, और वीतरागता करना, ऐसा ही मूल पाठ है। परन्तु ऐसी वीतरागता आंशिक प्रगट हुई है और पूर्ण नहीं, वहाँ क्या है,

ऐसा ज्ञान कराया है पहले। अकेले निश्चयाभासी हो जाये और व्यवहार आया ही न हो और व्यवहार हो तो आदरणीय है, यह दोनों की भूल टालने के लिये यह वर्णन किया है। व्यवहार न ही हो, उसे कहते हैं कि व्यवहार होता है और व्यवहार है, इसलिए साधन है और लाभदायक है, उसे टालने के लिये, व्यवहाराभासी न हो जाये इसलिए उसे कहते हैं कि होता है। समझ में आया? आदरणीय नहीं, माहात्म्य करनेयोग्य नहीं। आता है परन्तु माहात्म्य करनेयोग्य नहीं। आता है परन्तु अन्तर उदासीन रहनेयोग्य है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! यह तो समझे बिना का लिया माहात्म्य और हो गयी दीक्षा। दक्षा में पड़े हैं, अन्दर जहर के कुँए में। आहाहा!

अमृतस्वरूप भगवान की रुचि की दृष्टि की खबर नहीं। जो करनेयोग्य और नित्य आवश्यक है, वह तो स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता वह करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : एक ही आवश्यक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही आवश्यक है। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से करनेयोग्य हो तो भगवान आत्मा शुद्ध का-शुद्ध का शुद्धत्व परिणमन, वह करनेयोग्य है परन्तु ऐसा परिणमन होने पर भी भूमिका से आगे गया नहीं। वीतराग पूर्ण हुआ नहीं। वीतरागता तात्पर्य यहाँ वर्णन करना है। तब उसे वीतराग की अल्प दशा जहाँ है, वहाँ आगे ऐसा शुभभाव, उसकी भूमिका प्रमाण होता है तो उस गुणस्थान को यथार्थ जानता है। समझ में आया?

तथापि उस राग का आदर नहीं, उस राग से उदासीन है। आदर नहीं, इतने से ही नहीं कहा। माहात्म्य दिया इतने से नहीं। वह उदासीन है उससे। अत्यन्त उदासीन वर्तते, नित्य उपयुक्त अन्तर में रहते हुए आत्मा को आनन्दस्वरूप भगवान को, आत्मा से, आनन्दस्वरूप से, आत्मा में, अन्दर आत्मा के स्वभाव में अनुभव करते हुए, कहो, समझ में आया? आहाहा!

वे (-वे महाभाग भगवन्तों), वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार... स्वतत्त्व में-आत्मा में-ज्ञायकभाव भगवानतत्त्व में विश्रान्ति—अनुसार स्थिर होते जायें, उसके अनुसार **क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए...** क्रम-क्रम से शुभभाव का अभाव

करता जाता है, ऐसा। क्रम-क्रम से शुभभाव का अभाव। देखो! तीन बोल लिये। समझ में आया? एक तो कहते हैं शुद्धपरिणति होने पर भी वहाँ ऐसा योग्य राग हो, उसका माहात्म्य नहीं। अत्यन्त उदासीन है और क्षण-क्षण में वह भाव घटता जाता है। समझ में आया?

देखो! **वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार...** विश्रान्ति-एकाग्र हो तद्नुसार... क्रम से। क्रम अर्थात् शुभभाव का संन्यास करते हुए, शुभभाव का त्याग होता जाता है, छूटता जाता है, कम होता जाता है। समझ में आया? अभी समझने का ठिकाना नहीं होता, श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता और एकदम व्रत, चारित्र और महाव्रत और पंचम गुणस्थान। वह पूछा था न उसको। क्या है तुम्हारे? तो कहे पंचम गुणस्थान। क्या हो?

मुमुक्षु : वह तो उदासीन.... चीज़ छोड़ने की चीज़।

पूज्य गुरुदेवश्री : वैसे क्रम-क्रम से घटाने की चीज़, तीन।

मुमुक्षु : यह विधि चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि है। वे वहाँ पंच महाव्रत को पाले, वह विधि। तुम्हारे २७ गुण हैं। श्वेताम्बर साधु के २७ गुण पालो। साधु के २७ गुण। धूल भी नहीं २७। उसे बेचारे को दुःख लगे। बापू! वस्तु ऐसी है। इस वस्तु की स्थिति में जिस प्रकार से है, उस प्रकार से नहीं समझे तो उसे अपने दुःख का कारण है। माने चाहे जो। मान्यता से कहीं वस्तु हो जाती है?

वास्तव में स्वतत्त्व में विश्रान्ति के अनुसार क्रमशः कर्म का संन्यास करते हुए (-स्वतत्त्व में स्थिरता होती जाये तद्नुसार शुभभावों को छोड़ते हुए),... कर्म शब्द से शुभभाव। यह कर्म कहा। शुभभाव कर्म है न! धर्म कहाँ है? वह ज्ञान कहाँ है? आहाहा! देखो! उस कर्म को उसके प्रमाण में शुभभाव को छोड़ते हुए, **अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए,...** लो! मुनि तो आगे बढ़ गये हैं न, अब कहते हैं। उसे शुभभाव था, वह तीव्र प्रमाद टालने के लिये आया, माहात्म्य निवारा है। अत्यन्त उदासीन वर्तते हैं। क्रम से घटता जाता है। घटकर पूर्ण वीतराग होकर मोक्ष जाता है। कहो, समझ में आया?

यह और कहा था वह... वह तो चौथे काल के शुद्धोपयोगी मुनि की ही बात

करते हैं। ऐसा लिखा था। वह बोलता था। शुद्धोपयोगी मुनि की बात करे अभी अब ऐसा कि...

मुमुक्षु : पंचम काल में शुद्धोपयोगी दूसरे प्रकार के होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचवें काल में अभी शुद्धोपयोग होता नहीं। शुभभाववाला ही मुनि अभी होता है, ऐसा कहते हैं न, रतनचन्दजी! उस पक्ष में सब बैठे थे न! क्या हो? लुटता है और इसे हर्ष होता है। यहाँ कहते हैं कि लूटता आता है राग, हर्ष नहीं। अत्यन्त उदास है। राग का हर्ष होगा? विकार का हर्ष होगा? आनन्द का हर्ष कहाँ गया? अतीन्द्रिय आनन्द की ओर का अभिमुख वर्तने का आनन्द का अभिमुखता कहाँ गया? वहाँ अभिमुखता हो गयी और आदरणीय हो गया। आहाहा! गजब टीका!

व्यवहार सिद्ध किया परन्तु व्यवहार तीव्र प्रमाद टालने के लिये आया, तथापि माहात्म्य निवारण किया तथापि अत्यन्त उदासीन रहा। क्रम से स्वभाव की रचना करते हुए अन्दर एकाग्र होने पर, घटता जाता है, घटकर निष्प्रमाद हो जाता है। **अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए,...** हुए, देखो! और शुभभाव है, वह प्रमाद है न इतना। तीव्र प्रमाद टालने के लिये ऐसी समिति, गुप्ति, व्यवहार। परन्तु है वह प्रमाद। पंच महाव्रत के परिणाम, वे प्रमाद। आहाहा! **अत्यन्त निष्प्रमाद वर्तते हुए, अत्यन्त निष्कम्पमूर्ति होने से...** लो! स्थिर हो गये अन्दर में आनन्दस्वरूप में। निष्कम्पमूर्ति, निष्कम्पस्वरूप। मूर्ति अर्थात् स्वरूप। वह विकल्प था, उतना अस्थिरता का कम्प था। उसे घटाकर अकेला निष्कम्प वस्तुस्वरूप होने से **जिन्हें वनस्पति की उपमा दी जाती है तथापि...** वनस्पति की उपमा तो दी जाये, क्योंकि ऐसे अन्दर में स्थिर हो गये हैं। बिल्कुल वृक्ष की भाँति। अन्तर में स्वभाव की रचना में निष्प्रमाद, निष्कम्प स्थिर हो गये हैं। मोक्ष लेना है न। अन्तिम एकदम। स्वयं यहाँ पंचम काल के मुनि तो बात करते हैं, लो! स्वयं को शामिल की ही बात करते हैं।

वनस्पति की उपमा दी जाती है, तथापि जिन्होंने कर्मफलानुभूति... ठीक! राग का, हर्ष-शोक का अनुभव तो अत्यन्त नष्ट किया है। राग का अनुभव, हर्ष-शोक का अनुभव नष्ट किया है। अब कर्म लेते हैं। (नष्ट) की है। **अत्यन्त निरस्त (नष्ट) की है**

ऐसे, कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए,... दूसरा वह रह गया। राग जो कर्मचेतना उत्पन्न हुई, महाव्रत... निरुत्सुकता। उत्सुकता इस ओर नहीं। यहाँ तो है न, पंच महाव्रत का ठिकाना नहीं और दीक्षा ली... चारित्र तो है न, चारित्र तो है। धूल भी नहीं। मिथ्यात्व है। आहाहा! अरे! क्या बापू! तुझे नुकसान का रास्ता कैसा है, यह बतावे तब, ऐई नहीं। नि:शंका, वह शंका नहीं, शंका, वह नि:शंका नहीं।

हिरण हो न हिरण जंगल में। शिकारी ने सामने रचा हो पूर्व। पारधी को क्या कहते हैं? जाल। अर्थात् शिकारी उसे पीछे दौड़ाते हुए जाये हिरण को ऐसे। उसमें बीच में मिले दयालु महाजन। उसे खबर है कि उस ओर सब शिकारी हैं। वापस... वहाँ शंका करे। नहीं, नहीं, शंका नहीं। वह वापस शंका लगे उसमें नि:शंक है। जाल में पकड़ने जाते हैं, उसकी ओर नि:शंक है। ऐसा दृष्टान्त आता है सूयगडांग में। जहाँ शंका करनेयोग्य नहीं, वहाँ शंका करे। वह कहे, वह होंकर मारे। अरे! यह तो उस ओर शिकारियों ने जाल रचा है, वहाँ ले जाते हैं। हकार करते हैं। उसकी ओर से भागे, उसकी ओर जाने से भागे। सामने ऐसे जाये।

इसी प्रकार धर्मात्मा सत्य बात जहाँ आवाज लगाये कि अरे! विपरीत जाते हो, यह पकड़े जाओगे। तो कहे नहीं, यह नहीं। ऐई! आता है वहाँ। सूयगडांग में गाथा। उस समय सूयगडांग को बखानते थे। इस प्रकार से, हों! शंका करनेयोग्य जहाँ नहीं, वहाँ शंका करता है। हिरण-मृग जहाँ संता फरी ताणेन वजिया, यह गाथा। अशंक्यायेन शंकतिं शंकयायेन हिरण-मृग जहाँ संता हिरण मृग जहाँ संता। वेगे संता वेग में चले। ऐसे जाते हैं शिकारी, शंका... वापस शिकारी आते हैं, वहाँ शंका नहीं करते। वह दयालु व्यक्ति जहाँ पुकार करता है जरा। रोकने को लकड़िया लम्बी करे, पत्थर ऐसे मारे। ऐसे करके जो ऐसे चले जाये, ऐसे चले जाओ। नहीं, वह तो हम जायेंगे वहाँ जायेंगे। मोहनभाई! आहाहा!

वे कुँए में पड़ने जाते हैं वहाँ। आहाहा! हरि टाणे हरिणो मृगा जहाँ संता, परिनाणेण... प्राण-प्राण शरण रहित है ऐसा। वे हिरण प्राण शरण रहित है बेचारे। उन्हें वे शिकारी हाँकते हैं, वहाँ शंका नहीं करते, बहुत समय से हाँका हो न, तथापि कहीं

अभी वह दिखाई दिया, वह सामने क्या कहलाता है उसका? बिछाकर। जाल दिखाई न दी हो, इसलिए कुछ बाधा नहीं आने में, दिक्कत नहीं आने में। परन्तु आगे जाकर बिछाई है। एकदम दौड़कर पड़ी वहाँ। अभी तक दौड़े तो ऐसी जाल आयी नहीं। पकड़े नहीं, इसलिए निश्चित छुड़ानेवाले होंगे। वह जो दयालु हकार करते हैं, (तो) नहीं, नहीं उसकी ओर नहीं जाना। उसकी ओर नहीं जाना। पत्थर मारकर ऐसे निकालना चाहते हैं। उनकी अपनी ओर नहीं लम्बावे परन्तु ऐसे। नहीं, जाना तो वहाँ ही जाना, क्योंकि अभी तक ऐसे जाते हैं, वहाँ तो पकड़ में नहीं आये। अरे! ऐसे वे।

यहाँ तो कहते हैं, **कर्मानुभूति के प्रति निरुत्सुक वर्तते हुए,...** धर्मात्मा को राग के प्रति उत्सुकता नहीं। हर्ष-शोक का अनुभव नाश किया है। और **कर्मानुभूति...** कर्म अर्थात् शुभभाव का अनुभव, उसमें **निरुत्सुक वर्तते हुए,...** आहाहा! तीन लिये। कर्मफल, कर्मचेतना और ज्ञानचेतना, तीनों को समाहित कर दिया है। कहते हैं, केवल-मात्र, लो! आया अकेला जाओ। **ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए,...** लो! आहाहा! आगे बढ़ गये न फिर! एकदम ज्ञानानुभूति अकेली ज्ञानधारा, ज्ञानचेतना में एकाकार उत्पन्न हुए **तात्त्विक आनन्द से... ज्ञानानुभूति से उत्पन्न हुए तात्त्विक आनन्द से...** अन्तर का आनन्द। **अत्यन्त भरपूर वर्तते हुए, शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर,...** शीघ्र संसारसमुद्र को पार उतरकर, **शब्दब्रह्म के शाश्वत फल के (-निर्वाणसुख के) भोक्ता होते हैं।** लो! भगवान ने कहा, उसके फल को पाते हैं— ऐसा कहते हैं। शास्त्र का फल वीतराग कहा था न? शास्त्र—तात्पर्य वीतरागता प्रगट करके निर्वाण को पाते हैं। विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७३

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।१७३।।

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया।
भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकसङ्ग्रहं सूत्रम्।।१७३।।

कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम् ।

मार्गो हि परमवैराग्यकरणप्रवणा पारमेश्वरी परमाज्ञा; तस्याः प्रभावनं प्रख्यापनद्वारेण प्रकृष्टपरिणतिद्वारेण वा समुद्योतनम्; तदर्थमेव परमागमानुरागवेगप्रचलितमनसा संक्षेपतः समस्तवस्तुतत्त्वसूचकत्वादतिविस्तृतस्यापि प्रवचनस्य सारभूतं पञ्चास्तिकायसंग्रहाभिधानं भगवत्सर्वज्ञोपज्ञत्वात् सूत्रमिदमभिहितं मयेति । अथैवं शास्त्रकारः प्रारब्धस्यान्तमुपगम्यात्यन्तं कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते ।। १७३ ।।

इति समयव्याख्यां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ।।

प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना।
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना।।१७३।।

अन्वयार्थ :- [प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया] प्रवचन की भक्ति से प्रेरित ऐसे मैंने, [मार्गप्रभावनार्थं] मार्ग की प्रभावना के हेतु, [प्रवचनसारं] प्रवचन के सारभूत [पञ्चास्तिकसंग्रहं सूत्रम्] 'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र [भणितम्] कहा।

टीका :- यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है (अर्थात् यहाँ शास्त्रकर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करते हुए शास्त्र समाप्ति करते हैं।)

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा (अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा); उसकी प्रभावना अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना; [परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना अर्थात् (१) उसकी प्रख्याति— विज्ञापन—करने द्वारा अथवा (२) परमवैराग्यमय प्रकृष्ट परिणमन द्वारा, उसका सम्यक् प्रकार से उद्योत करना;] उसके हेतु ही (-मार्ग की प्रभावना के लिये ही),

परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिाकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा—जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से (-वीतराग सर्वज्ञ जिनभगवान ने स्वयं जानकर प्रणीत किया होने से) 'सूत्र' है, और जो संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का (सर्व वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का) प्रतिपादन करता होने से, अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं (-द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण ऐसे भी जिनप्रवचन के सारभूत है)।

इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए कार्य के अन्त को पाकर, अत्यन्त कृतकृत्य होकर, परमनैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूप में विश्रान्त हुए (परम निष्कर्मपनेरूप शुद्धस्वरूप में स्थिर हुए) -ऐसे श्रद्धे जाते हैं (अर्थात् ऐसी हम श्रद्धा करते हैं)॥१७३॥

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रहशास्त्र की श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य देवविरचित) समयव्याख्या नाम की टीका में नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंचवर्णन नाम का द्वितीय श्रतुस्कन्ध समाप्त हुआ।

[अब, 'यह टीका शब्दों ने की है, अमृतचन्द्रसूरि ने नहीं' ऐसे अर्थ का एक अन्तिम श्लोक कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव टीका की पूर्णाहुति करते हैं।]

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः॥८॥

[श्लोकार्थ :— अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थस्वरूप) भलीभाँति कहा है, ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या (अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है; स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त) अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है॥८॥

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री पंचास्तिकायसंग्रह नामक समय की अर्थात् शास्त्र की (श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित समयव्याख्या नाम की) टीका के (श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह) कृत गुजराती अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर समाप्त हुआ।

प्रवचन-८८, गाथा-१७३, ज्येष्ठ शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक -०८-०६-१९७०

पंचास्तिकाय, १७३ गाथा, अन्तिम गाथा है।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।१७३।।

प्रवचनभक्ति से प्रेरित सदा यह हेतु मार्ग प्रभावना।
दिव्यध्वनि का सारमय यह ग्रन्थ मुझसे है बना।।१७३।।

इसका **अन्वयार्थ :- 'प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया' प्रवचन की भक्ति से प्रेरित होकर...** कहते हैं, टीका में आयेगा। बारम्बार मेरा मन इस प्रवचन की टीका करने में चलित होता था। विकल्प आता था, ऐसा। मूल पाठ में है न, इसलिए इसका अर्थ है टीका का। **परमागम की ओर के अनुराग के वेग से...** अनुराग का वेग आने पर, देखो भाषा! शास्त्र की टीका करने के परमागम के प्रति अनुराग का वेग, ऐसा का ऐसा विकल्प उठता था कि इसकी टीका हो, टीका हो। है तो अनुराग, राग, शुभराग बन्ध का कारण, वह तो भावबन्ध है न वह स्वयं। राग, वह भावबन्ध है।

कहते हैं कि मेरा मन अति चलित होता था। यह प्रवचन करने में भी राग का अनुराग था। उसमें से चलित होता था। देखो! यह तो देखो!

मुमुक्षु : मुनि को भी ऐसा होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को अभी राग है या नहीं? पूर्ण वीतरागता नहीं, वहाँ तक ऐसा राग आता है। **प्रवचन की भक्ति से प्रेरित ऐसे मैंने,...** मैंने शब्द पड़ा है न! मया मार्ग प्रभाव, **मार्ग की प्रभावना के हेतु,...** मार्ग की व्याख्या करेंगे, अलग प्रकार की। **मार्ग की प्रभावना के हेतु,...** प्रवचनसार, **प्रवचन के सारभूत...** लो! भाषा तो ऐसी लिखी है। भगवान ने कहे हुए प्रवचन, सिद्धान्तों का सारभूत **'पंचास्तिकायसंग्रह' सूत्र कहा।** इस कारण मैंने प्रभावना के लिये यह कहा।

टीका :- यह, कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है... देखो! कर्ता आया या नहीं? अन्त में इनकार करेंगे। ऐई! यह शास्त्रकर्ता आया, देखो! कर्ता

की प्रतिज्ञा की पूर्णता–समाप्ति। मुझे यह करना है, ऐसी जो प्रतिज्ञा ली थी। वह कर्ता की प्रतिज्ञा पूरी होती है, ऐसा कहते हैं। पहले से कि मुझे यह पंचास्तिकाय जगत के हित के लिये कहना है, परमेश्वर के प्रवचन का सार। यह कर्ता की प्रतिज्ञा थी पहली। ऐसा था न पहले। पहली गाथा क्या है? देखो न!

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं॥१॥

इतना। फिर दूसरी गाथा में है '**समणमुहुग्गदमट्ठं**' सर्वज्ञ के मुख से निकले हुए अर्थ अर्थात् सिद्धान्त '**चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं**' चार गति की परतन्त्रता का निवारण और मोक्ष की स्वतन्त्रता की प्राप्ति, '**एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि**' यहाँ, प्रतिज्ञा की थी कि मैं अभी कहता हूँ, यह। इस सिद्धान्त को, समय अर्थात् सिद्धान्त को मैं कहूँगा। 'सूणा' सुन। ऐसी जो प्रतिज्ञा की थी, वह प्रतिज्ञा यहाँ पूरी होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कर्ता की प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करनेवाली समाप्ति है अर्थात् यहाँ शास्त्रकर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव... शास्त्रकर्ता आया, हों! धन्नालालजी! यह कहते हैं वे, देखो! शास्त्र कर सकते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : यह कर्ता लिखा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराते हैं। वह यहाँ है न! अन्तिम गाथा आती है या नहीं? हमने कुछ किया नहीं। अमृतचन्द्राचार्य अभी कलश कहेंगे। अन्तिम कलश।

मुमुक्षु : यह तो अपनी महिमा....

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता हो, कर सके नहीं।

आहाहा! ज्ञानस्वरूप चैतन्य। ज्ञानस्वरूप चैतन्य किसे करे? विकल्प को भी करे कहाँ यह? आता है, उसे जानते हैं। आहाहा! उसमें भी था कब? चैतन्यबिम्ब है, आत्मा अकेला चैतन्य का सूर्य है। चैतन्य प्रकाश का सूर्य। उसमें राग है भी कहाँ कि राग को करे और पर तो है कहाँ कि पर को करे। सेठी!

मुमुक्षु : चैतन्य का सूर्य और प्रवचन की भक्ति से प्रेरित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठा है, उसे कहते हैं। बारम्बार अन्दर आया करता है। वृत्ति खलबलाहट होती है, टीका करूँ, टीका करूँ। उस प्रकार टीका का विकल्प था, वह यहाँ अभी पूरा हो गया। आहाहा!

शास्त्रकर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव... श्री—स्वरूप में मद—अर्थात् लक्ष्मीवाले स्वरूप लक्ष्मीवाले ऐसे महिमावन्त भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव **अपनी प्रतिज्ञा की पूर्णता सूचित करते हुए शास्त्र समाप्ति करते हैं।**

मुमुक्षु : इसमें भी शास्त्रकर्ता लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। शास्त्रकर्ता का तो यह अर्थ किया। शास्त्रकर्ता कहा है। निमित्त से कथन तो ऐसा ही आवे न?

मुमुक्षु : सोनगढ़वाले भी शास्त्रकर्ता तो मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं। यह कहा था न उसने, अन्दर तो मानते हैं। फूलचन्दजी ऐसा कहते हैं कि ऐसा करते नहीं। परन्तु यह दूसरे को समझाते हैं। इसका अर्थ कि वे कर्ता होते हैं। अरे भगवान! क्या हो?

मुमुक्षु : अन्दर से मानते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन माने?

ज्ञान भगवान आत्मा करे क्या? वस्तु चैतन्यप्रकाश का नूर, उसमें तो प्रवाह-ज्ञान का प्रवाह होता है। राग और पर के परमाणु की क्रिया उसमें कहाँ से हो, वह करे? होवे उसे करे। न हो उसमें से कहाँ से करे? कहो, पण्डितजी! क्या लिखते हैं कर्ता और फिर कर्ता नहीं? 'वोच्छामि समयपाहुड' ऐसा तो कहते हैं। यहाँ 'वोच्छामिसूणह' ऐसा तो कहा है। मैं कहूँगा। और कहते हैं कि यह कर नहीं सकता। अरे भाई! यह वचन की -कथनी की पद्धति ऐसी होती है। कर किसे सके? यह आगे स्वयं कहेंगे।

अब, व्याख्या, मार्ग शब्द पड़ा है न '**मार्गप्रवभावनार्थं**' इसकी व्याख्या पहले करते हैं। मार्ग अर्थात् **परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी परम आज्ञा...**

देखो! वीतरागता को वर्णन करते हैं। वीतराग हुआ न, इसलिए ऐसे पर से बिल्कुल परम वैराग्य। परम वैराग्य, ऐसा। स्वभाव-सन्मुख ढलने से पर से बिल्कुल हट जाना। राग के विकल्प से बिल्कुल हट जाना। मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने के प्रति। समयसार में आया है न! पुण्य-पाप के विकल्पों का वैराग्य अर्थात् यह नहीं, इसका नाम वैराग्य है। आता है न! वैराग्य। समयसार (में आता है)। वैराग्य सम्पत्तो अर्थात् पुण्य और पाप के दो विकल्प। समझ में आया?

समयसार है न? यह रहा। वैराग्य, वैराग्य की बात की। '**रत्ता बन्धादि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो**' (समयसार, गाथा-१५०) देखो! वह वैराग्य यह। स्वभाव की परिपूर्णता की ओर ढला हुआ अस्तित्व और ऐसे पुण्य और पाप के विकल्प से हट गया हुआ भाव, उसे वैराग्य कहते हैं। समझ में आया? रागी जीव कर्म बाँधता है। वैराग्य को प्राप्त जीव कर्म से छूटता है। लो! वैराग्य की व्याख्या यह—ऐसा। समझ में आया? सामान्यरूप से रागीपने के निमित्त से शुभ और अशुभ दोनों कर्मों के बन्ध के कारणरूप से सिद्ध करते हैं। इसलिए दोनों ओर से वैराग्य करते हैं। कहो, समझ में आया?

पुण्य और पाप का विकल्प जो दो है, उसके प्रति अत्यन्त वैराग्य उसे कहते हैं। शुभ और अशुभ का कहीं प्रेम, उसे अवैराग्य कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....उपदेश तो देना पड़े न? ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देना पड़े क्या? यह तो आवे किसी समय ऐसा हो तो उसे कहे, भाई! शुभभाव है। उसमें क्या? अशुभ टालने के लिये, ऐसा भी कहे। परन्तु इससे धर्म कहाँ था? धर्म तो जो है, वह है। कहो, समझ में आया? विहितं, ज्ञानमेव विहितं है न? शिवहेतु। यह उससे वापस मुड़ा है। पुण्य-पाप के विकल्प से विमुख हुआ है। स्वभावसन्मुख जाने पर पुण्य-पाप से विमुख हुआ है, उसे वैराग्य कहा जाता है। राग का रंग नहीं और स्वभाव का रंग, उसे वैराग्य कहते हैं। पुण्य के परिणाम का रंग नहीं। उसका रंग बिना की चीज़, उसे वैराग्य कहा जाता है। समझ में आया?

मार्ग अर्थात् **परम वैराग्य करने की ओर ढ़लती हुई पारमेश्वरी...** देखो! परमेश्वर

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी की आज्ञा, वह भी **पारमेश्वरी परम आज्ञा अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा...** भगवान की परम आज्ञा कि एक सूक्ष्म विकल्प से भी हट जा। इस ओर ढल जा। समझ में आया? ऐसी परमेश्वर-भगवान की आज्ञा है। **परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा...** इसकी व्याख्या की। यह पहले व्याख्या आ गयी थी, तब भी कहा था। १४१ गाथा, उसमें भाई! संवर, वह चारित्र है, मार्ग है। १४१ गाथा। दूसरा है, तीन जगह है न। १५४ चलने पर भी कहा था।

मार्ग वास्तव में संवर है। है न, १४१। धन्नालालजी! मार्ग वास्तव में संवर है। आहाहा! मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति रुकना—ऐसा जो संवर, वह मार्ग है। समझ में आया? अन्तर में स्वभाव-सन्मुख का सम्यग्दर्शन और वीतरागी पर्याय प्रगट हो, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति से विमुख हुआ है। उसे यहाँ संवर और उसे यहाँ मार्ग कहा जाता है। आहाहा! १४१ है। संवर है और फिर १५४ चारित्र वह मोक्षमार्ग, है न? १५४ शुरु किया है न, वहाँ यह मिलाया वापस। वहाँ मोक्ष का मार्ग, मार्ग कहो या तीन दर्शन, ज्ञान उसमें—संवर में इकट्ठा आ जाता है। जीवस्वभाव में नियत चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। १५४ गाथा।

जीवस्वभाव में, भगवान आत्मा सामान्य चेतना दर्शन और विशेष ज्ञानचेतना, ऐसा जो जीवस्वभाव, भगवान आत्मा का जो ज्ञान-दर्शनस्वभाव, उसमें नियत, निश्चय, स्थिरता, चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। कहो, सेठी! यह पंचास्तिकाय लेना पड़ा, देखो! और चारित्र है वहाँ दर्शन, ज्ञान तो हो। ज्ञान-दर्शन ऐसा जीवस्वभाव। ज्ञानचेतना महासामान्य और ज्ञानविशेष जानो तो, ऐसा आत्मा। उसकी स्वभाव सन्मुख की प्रतीति और उसका ज्ञान, और उसमें स्थिरता वह चारित्र और यह चारित्र, वह मोक्षमार्ग है। संवर मार्ग कहो, वहाँ चारित्र को मोक्षमार्ग कहा। यहाँ मार्ग को यहीं कहा, १७३। हाँ, यह मार्ग। समझ में आया?

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने की ओर... पर के प्रति बिल्कुल उदास। विकल्प और निमित्त-बिल्कुल उदास, उसकी ओर से हटकर। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी हट जाना, उसे परम वैराग्य कहते हैं। समझ में आया? मार्ग भारी कठिन।

मुमुक्षु : रागादि बन्ध है। कर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए उससे हट जाना, ऐसी परमेश्वर की परम वैराग्य की आज्ञा है। राग, वह आज्ञा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिनवर की वाणी में तो राग की आज्ञा होगी? राग को पोषण करे ऐसी वाणी वीतराग की होगी? देखो न! कैसी बात करते हैं। आहाहा!

मार्ग अर्थात् भगवान आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति ऐसा जो मोक्ष, उसका जो मार्ग, उसका जो मार्ग, वह अस्ति की ओर तो ढला हुआ है, परन्तु ऐसे पर से परम वैराग्य की आज्ञा भगवान की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निमित्त और निमित्त सम्बन्धी के विकल्प से वैरागी।

परम वैराग्य परमेश्वर की परम आज्ञा है। चेतनजी! परमेश्वर की आज्ञा में यह शुभराग आदरणीय है या लाभ है, यह आज्ञा भगवान की नहीं होती। आहाहा! भगवान आत्मा वीतराग बिम्ब है। उसे पर की ओर से बिल्कुल परम वैराग्य से। ऐसे पर से हटकर परम वैराग्य में आ जाना। देखो न! कैसी शैली से बात करते हैं! अन्त में वह वीतरागभाव कहा सही न! वीतरागता कहा न? १७२ में वीतरागता कहीं। रागरहित। वीत अर्थात् रागरहित। तो यहाँ कहा कि परमवैराग्य। आहाहा! कोई भी विकल्प पर को समझने का या उसका राग, कहते हैं कि उससे भी हट जाना, यह परमेश्वर की आज्ञा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....व्यवहार आज्ञा कहते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञा-फाज्ञा है ही नहीं। यह तो वह बतलाया है। व्यवहार आज्ञा का अर्थ कि यह नहीं। अभूतार्थ अर्थात् वह आज्ञा का स्वरूप ही नहीं। **मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने की ओर...** एक तो यहाँ शब्द है। और दूसरा **पारमेश्वरी परम आज्ञा...** आहाहा! भगवान चैतन्यबिम्ब प्रभु, परम आनन्द का धाम, उसे पर से बिल्कुल हट जाना। बिल्कुल हट जाना। भगवान कहते हैं कि हमारी भक्ति के प्रति राग से हट

जाना, ऐसे परम वैराग्य की हमारी आज्ञा है। आहाहा! ऐ सुजानमलजी! अरे! गजब यह! आहाहा!

वीतराग कहा था न, वह ऐसे से हटकर। आहाहा! शब्द तो देखो! यहाँ संवर मार्ग कहा, वह भी रागरहित दशा, चारित्र कहा, वह भी रागरहित दशा। खुल्ला कर दिया। मार्ग अर्थात् परम वैराग्य। विकल्प का अंश भी सूक्ष्म, उससे वैराग्य, उसमें से (विकल्प में से) हट जाना। वैराग्य के प्रति ढलती-उसके प्रति ढलती यह पारमेश्वरी परम आज्ञा है। राग के अंश को भी रखना या करना, यह परमेश्वर की आज्ञा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी परम वैराग्य करना, अन्दर से हटकर। ऐसी उसके ओर की ढलती हुई। परम वैराग्य के प्रति ऐसे ढलती हुई, ऐसी **पारमेश्वरी परम आज्ञा...** है। समझ में आया? इसका नाम वैराग्य कहा जाता है। शान्तिभाई!

स्त्री, पुत्र छोड़ दिये और यह हुए, वह तो राग है। बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! वैराग्य-राग के अंश से भी हटकर स्वभाव में स्थिर होना, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! ऐसी, परम वह मार्ग अर्थात्, मार्ग की व्याख्या अमृतचन्द्राचार्य करते हैं। देखो! परम वैराग्य करने के प्रति, परम वैराग्य करने के प्रति; राग और व्यवहार करने के प्रति— ऐसा नहीं। आहाहा! बताया न अमृतचन्द्राचार्य ने कि भाई! ऐसी भूमिका शुद्धपरिणति हो, वहाँ उसे मेलवाला शुभराग अमुक प्रकार का होता है, परन्तु वह उपेक्षणीय है।

मुमुक्षु : करने की आज्ञा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। आहाहा! तीन बोल तो कहे थे। ख्याल है तीन? राग आता है तो भी माहात्म्य वारते हुए और अत्यन्त उदासीन और क्षण-क्षण में स्वभाव सन्मुख ढलते हुए राग घटता जाता है। चौथे में भी यह स्पष्टीकरण किया है। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप में दृष्टि हुई और स्थिरता होने में यहाँ से हटकर स्थिरता होती है। समझ में आया? अरे! गजब परन्तु! अमृतचन्द्राचार्य की टीका वस्तु को कितने स्पष्ट... जैसी बताते हैं। लो!

भगवान चैतन्यस्वभाव, उस स्वभाव को पर से हटाकर, हट जाना। स्वभाव में स्थिर होना तो स्थिर हो जाना, परन्तु यहाँ से हट जाना, यह परम वैराग्य की ढलती, उस

ओर जाने की **पारमेश्वरी परम आज्ञा अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा...** आहाहा! देखो! यह समाप्ति करते हुए, आहाहा! **उसकी प्रभावना,...** अब उसकी प्रभावना। ऐसा जो परम वैराग्य की ओर ढलती आज्ञा, उसकी प्रभावना में। स्वयं को खुद प्रभावना और वाणी द्वारा कथन करना, ऐसे दो प्रकार की (प्रभावना)। समझ में आया? उसकी प्रभावना अर्थात्, वापस प्रभावना अर्थात् **प्रख्यापन द्वारा,...** प्रख्यापन द्वारा अर्थात् कथन द्वारा, एक। अथवा **प्रकृष्ट परिणति द्वारा...** उत्कृष्ट वीतरागी परिणति द्वारा। समझ में आया?

वीतरागपने का कथन, पर से हट जाना। परम वैराग्य की ऐसी भाषा का कथन और अन्तर में भी **प्रकृष्ट,...** विशेष **परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना वह;...** प्रभावना करना। अन्दर में राग से हटकर प्रकृष्ट निर्मल परिणति द्वारा उसका अन्दर में उद्योत करना, वह प्रभावना है। वह निश्चय प्रभावना है। कहो, समझ में आया यह? यहाँ प्रभावना करते हैं न पेड़ा की और पतासा की और अमुक की, अमुक की। पैसे की करते हैं क्या? बर्तन की करते हैं, उसमें क्या? दो-दो रुपये, तीन-तीन रुपये की। अभी रुपये की प्रभावना करते हैं। रुपया,.. रुपया दे। रुपये की कीमत कितनी हो गयी अब। तीन पैसे का रुपया। तीन पैसे का नारियल मिलता था तो यह रुपया तीन पैसे का हो गया। बीसवाँ भाग कर डालो तो। बीस-बीस गुना भाव हो गया है सबका। तीन पैसे का रुपया, उसमें क्या? रुपया दो या तीन पैसा दो अभी। पहले के तीन पैसे और अभी का रुपया। आहाहा!

कहते हैं, अहो! **प्रकृष्ट परिणति द्वारा उसका समुद्योत करना वह;...** दो प्रकार लिये। पहला वह व्यवहार लिया। ऐसा विकल्प है न! ऐसा करे इसलिए वहाँ से लिया। व्यवहार से भगवान का वीतरागमार्ग अर्थात् कि पर से विमुख होना, ऐसे वीतराग स्वभाव में आना, ऐसी ढलती हुई ऐसी आज्ञा। उसके कथन द्वारा, प्रख्यापन द्वारा विकल्प उठा है इस अपेक्षा से, और अन्तर में प्रकृष्ट परिणति द्वारा। वीतरागी धारा रागरहित परिणति द्वारा आत्मा में प्रभावना। **प्र... भावना,** प्रकृष्ट की वीतरागी दशा प्रगट करना, वह प्रभावना है। समझ में आया?

वह, परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना अर्थात्...

अब व्याख्या करते हैं। परम वैराग्य करने की जिन भगवान की परम आज्ञा की प्रभावना अर्थात् ?—परम आज्ञा यहाँ तक मार्ग आया है। अब उसकी प्रभावना अर्थात् ? **उसकी प्रख्याति—विज्ञापन—करने द्वारा...** प्रसिद्धि करना। भगवान पर से हटकर आत्मा में आना बिल्कुल अंश वैराग्य या निमित्त। राग या निमित्त, प्रशस्त राग या प्रशस्त राग का निमित्त। समझ में आया ?

उसमें से भगवान की आज्ञा ऐसे हट जाना वहाँ से हट जाना, वह परम आज्ञा है। भगवान के प्रति प्रेम, उसमें रहना वह आज्ञा नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह आ गया था न पहले १७० में। १७० (गाथा)। नौ तत्त्व की रुचि, तीर्थंकर के प्रति रुचि, प्रेम और... समझ में आया ? क्या आया था ? नौ का आया पहले। सूत्र की–सूत्र की आगम की रुचि। नौ तत्त्व का प्रेम, भगवान के प्रति प्रेम, सूत्र के प्रति प्रेम, १७० में आया था।

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स।।१७०।।

इसे शुभभाव के कारण साक्षात् उस काल में मोक्ष नहीं होता। फिर दूरतर अर्थात् इस शुभराग को टालेगा, तब मोक्ष होगा। सेठी ! क्या करना ? घर में मूर्ति रखना, भक्ति, पूजा करना, इस भाव से आगे धर्म में जाया जायेगा या नहीं ? घर में मूर्ति रखी है। देखो ! जयपुर। कहो, समझ में आया या नहीं ?

हो, कहते हैं यह। और उसके प्रति का विकल्प, परन्तु उससे हट जाना, वह परम वैराग्य की परम आज्ञा भगवान की है। आहाहा ! गजब बात ! ऐसा व्यवहार है, उसे नहीं—ऐसा कहे तो व्यवहार उड़ जाता है, और उसमें रहकर लाभ होता है तो पूरी वीतरागता उड़ जाती है। सेठी ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : भगवान से हट जाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान से हटना किसका ? पर भगवान से, ऐसा कहते हैं। पर भगवान से हटने की भगवान की पारमेश्वरी परम आज्ञा है। समझ में आया ? अरे ! तब वे कहते हैं कि देखो ! इसमें यह आया या नहीं ? इसमें मूर्ति और प्रतिमा कहाँ आयी ? ऐसा कहे। उसमें से तो हट जाने की बात आयी। उसकी भूमिकायोग्य व्यवहार

तो पहले स्थापित कर गये। ऐसा व्यवहार देव-गुरु-धर्म की भक्ति का, प्रतिमा की भक्ति का ऐसा भाव विकल्प का उसकी भूमिका के योग्य आये बिना रहे नहीं। यह निश्चय के साथ इस व्यवहार की सुसंगतता है परन्तु वह निश्चय से आदरणीय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया?

तीर्थंकर नाम पड़ा है। देखो! तीर्थंकर के प्रति भी जिसकी बुद्धि का जुड़ान वर्तता है। उसे निर्वाण दूर है। समझ में आया? **उसकी प्रख्याति—विज्ञापन—करने द्वारा अथवा परमवैराग्यमय प्रकृष्ट परिणमन द्वारा, उसका सम्यक् प्रकार से उद्योत करना; उसके हेतु ही... उसके हेतु ही... (-मार्ग की प्रभावना के लिये ही),...** ऐसा। इसका अर्थ ही, **(-मार्ग की प्रभावना के लिये ही), परमागम की ओर के अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था,...** देखो न! विशिष्टता तो करते हैं। आहाहा! शास्त्र ही करने की टीका में मन, विकल्प बारम्बार आया करता है। ऐसे होता है और ऐसे होता है। राग आया ही करता था, उसके प्रति प्रेम का। आहाहा! नियमसार में भी आया था न? हमारा मन वहाँ टीका करने में, (परमागम के सार की पुष्ट रुचि से बारम्बार अत्यन्त प्रेरित होता है) शुरुआत में ही यह लिया है।

यहाँ कहते हैं **परमागम की ओर के अनुराग...** यह भी एक राग है, शुभभाव है, पुण्य है। **उसके वेग से...** आहाहा! **जिसका मन,...** वापस भाषा ऐसी। **जिसका मन अति चलित होता था,...** ऐसे मैंने, ऐसा। हमारा मन। **अनुराग के वेग से जिसका मन अति चलित होता था,...** वापस मन अति चलित होता था, ऐसा। टीका होती है, टीका होती है, परन्तु यह राग है, कहते हैं। आहाहा! उस राग से, पहली बात तो की परमेश्वर की आज्ञा का, वहाँ से हटकर वैराग्य करना यह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा मैंने... ऐसा। **जिसका मन...** ऐसा करके स्वयं को उद्धृत किया। **जिसका मन अति चलित होता था,...** यह मानों अलग व्यक्ति हो। हमारा मन, ऐसा न कहकर **जिसका मन अति चलित होता था, ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिाकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा...** लो! कहा न यहाँ? परन्तु शब्द तो क्या कहा जाये। ऐसे ही कि 'वोच्छामि समयपाहुड' लो! कहता हूँ। यह तो विकल्प उठा है तो कहता हूँ। यह बात भाषा आये

बिना (रहे नहीं)। भाषा है वह असद्भूतव्यवहारनय है। वह विकल्प आया, वह उपचार ख्याल में आवे इसलिए असद्भूत उपचार है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, उसे इस राग का कहते हैं हमें परन्तु, मुनि स्वयं, हों! कुन्दकुन्दाचार्य (दिगम्बर सन्त)! आहाहा! जिसने परम वैराग्य की, परम वीतरागता की बात करके परम वीतरागपने परिणमित हुए हैं। कृतकृत्य हुए हैं हम। ऐसा अन्दर है न, प्रवचनसार में नहीं, अन्त में? हम कृतकृत्य हुए है। ऐसे भगवान आत्मा, देखो! **ऐसे मैंने यह 'पंचास्तिकायसंग्रह' नाम का सूत्र कहा—जो कि भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से...** देखो! ऐसा सिद्ध करते हैं। भगवान सर्वज्ञ द्वारा, त्रिलोकनाथ परमात्मा। यह उस रजनीश ने कहीं लिखा है, आया है अखबार में। किसी जगह बैठाया होगा महावीर जयन्ती में। भगवान महावीर तो शासन का उपदेश करते थे, वहाँ उसे तुमने सबने भगवान ठहरा दिया, ऐसा लिखा है! गजब है न! ऐसे को सभा में बैठावे। ऐसे भाषण करता था। भगवान ठहरा दिया। वह मानो कि भगवान ऐसे नहीं होते, ऐसा। भगवान तो सर्वांग हो जाये। अरे! पूरे भगवान ही हो गये। सुन न! आहाहा! एक आत्मा पूर्ण भगवान होने का स्वरूप उसका है। पूर्ण स्वरूप अखण्ड... अखण्ड... अखण्ड ज्ञान-दर्शन से भरपूर वह अखण्ड ज्ञान-दर्शन की पर्याय प्रगट हो, ऐसा ही वह आत्मा है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। लोगों ने भगवान ठहरा दिया, ऐसा। भगवान ठहराया नहीं, भगवान थे, इसलिए ठहराया। सुन न!

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, तीन काल, तीन लोक की पर्याय अपनी पर्याय को जानते हुए वे सब ज्ञात हो गये, इतनी तो पर्याय की सामर्थ्य है। आहाहा! **भगवान सर्वज्ञ द्वारा उपज्ञ होने से...** यह शास्त्र तो सर्वज्ञ भगवान से कहा गया है, ऐसा कहते हैं। **वीतराग सर्वज्ञ जिनभगवान ने स्वयं जानकर प्रणीत किया होने से...** त्रिकाल ज्ञान होने के पश्चात् जाना और फिर वाणी निकली। देखो! ऐसा सिद्ध करते हैं कि यह भगवान से निकला हुआ है। अरे! परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य और भगवान को ६०० वर्ष का अन्तर पड़ गया। सुन न अब, अन्तर पड़ गया तो क्या है?

सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने एक समय में सब जाना, तीन काल-तीन लोक। उनके

मुख में से निकला हुआ यह शास्त्र है। **स्वयं जानकर प्रणीत किया होने से...** आहाहा! कहो, समझ में आया? इसलिए **'सूत्र' है,...** ऐसा। इसलिए यह सूत्र है। और जो **संक्षेप से समस्तवस्तुतत्त्व का...** संक्षिप्त में सभी वस्तु के सार का-स्वरूप का, **प्रतिपादन करता होने से,...** लो! पूरे नौ तत्त्व का स्वरूप, छह द्रव्य आदि, गुण-पर्याय सब स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले होने से, **अति विस्तृत ऐसे भी...** कहते हैं कि वह पूर्ण स्वरूप कहनेवाला है। ओहोहो! **अति विस्तृत ऐसे भी जिनप्रवचन के सारभूत हैं...** प्रवचन अति विस्तार है, कहते हैं। उनकी वाणी में क्या कि महा विस्तार, परन्तु उसका सार इसमें सब है। भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा ने कहा हुआ, उसका यह सार है। आहाहा! संवरमार्ग है, चारित्र मोक्षमार्ग है। मार्ग अति परम वैराग्य ऐसी ढलती परम आज्ञा है। ऐसा सूत्र में कहा है। उसका यह सब सार है, कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ राग किया नहीं। राग के जाननेवाले थे। राग-बाग किया नहीं। न्यालभाई!

मुमुक्षु : राग के कर्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग के कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि होता है। राग था, उसे जाना था। उससे हटने की अन्दर की परिणति थी। रखने की वह चीज़ है, ऐसा नहीं था। कहते हैं न, भगवान के प्रति राग था अन्त में। भगवान मोक्ष पधारे, उन्हें भेजा। श्वेताम्बर में ऐसा आता है न। जाओ, बाहर जाओ उस ब्राह्मण को सुनाने, ऐसा आता है। विदा करने भगवान गये वहाँ यहाँ तो मोक्ष हो गया। अरे! भगवान मुझे याद नहीं किया? मुझे साथ नहीं ले गये? अरे! ऐसा होगा? ऐसा राग मुनि को होगा? कुछ भान नहीं होता। ऐसी कथा आती है। भगवान ने, ब्राह्मण-कैसे ब्राह्मण का नाम आता है, नाम भूल गये। श्वेताम्बर में आता है। ऐई चेतनजी! क्या है? नाम याद नहीं? ब्राह्मण का क्या आता है? एक ब्राह्मण था, उसे सम्बोधन के लिये भगवान ने भेजा था। क्योंकि भगवान को अभी केवलज्ञान-मोक्ष जाने का था। और इन्हें दुःख होगा, ऐसा विचार भगवान को आया होगा।

मुमुक्षु : देवसरका ब्राह्मण।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवसरका। हाँ, देवसरका ब्राह्मण। वे जहाँ गये, यहाँ मोक्ष हो गया। आये, अरे! गुरुजी! मुझे क्यों याद नहीं किया? ऐसा गायन आता है।

मुमुक्षु : कलाई (हाथ) पकड़कर नहीं रखा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ पकड़कर नहीं रखा। किसी ने मुझे नहीं रखा, ऐसा। हाथ पकड़कर नहीं रखा। ऐसा वह कहीं राग होगा भगवान गणधर को? यह तो विकल्प-भक्ति का होता है, तथापि वहाँ से विमुख होना ऐसी भगवान की आज्ञा है और स्वयं भी ऐसा मानते हैं। राग से हटकर स्थिर होना, यह मेरा मार्ग है। राग में रहना, वह मार्ग नहीं। परम वैराग्य... परम वैराग्य... परम वैराग्य। आहाहा! **अति विस्तृत ऐसे भी प्रवचन के सारभूत हैं (-द्वादशांगरूप से विस्तीर्ण ऐसे भी...** भले कहते हैं कि बारह अंग का विस्तार हो शास्त्र में, उसमें भी **जिनप्रवचन के सारभूत है।)** उसका यह संक्षिप्त परन्तु पूरा सार है।

मुमुक्षु : पूरा प्रवचन आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा सब प्रवचन आ जाता है, कहते हैं। ओहोहो! लो! यह पंचास्तिकाय है।

इस प्रकार शास्त्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) प्रारम्भ किये हुए... शुरु किये हुए **कार्य के अन्त को पाकर,...** यह पूरा हो गया। विकल्प घट गया, ऐसा कहते हैं। **अत्यन्त कृतकृत्य होकर,...** राग से छूटे, वह कृतकृत्य हो गये, हो! **अत्यन्त कृतकृत्य होकर, परमनैष्कर्म्यरूप शुद्धस्वरूप में विश्रान्त हुए...** देखो! इतना विकल्प था, पूरा हो गया तो छूट गया। यहाँ वाणी पूरी हो गयी। यहाँ विकल्प छूट गया। **परमनैष्कर्म्यरूप...** परम राग विकल्प रहित, **नैष्कर्म्यरूप...** अर्थात् रागरूप कर्म से रहित। **परमनैष्कर्म्यरूप...** सर्वत्र शब्द ही परम। **शुद्धस्वरूप में विश्रान्त हुए...** स्थिर हुए भगवान आत्मा कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं में स्थिर हुए। अब विकल्प छूट गया। **परम निष्कर्मपनेरूप शुद्धस्वरूप में स्थिर हुए...** लो! **ऐसे श्रद्धे जाते हैं...** हुआ।

अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं **ऐसी हम श्रद्धा करते हैं...** ऐसा हम मानते हैं। उनका

विकल्प था वह छूट गया और अन्दर में विश्रान्ति हो गयी। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का जहाँ विकल्प था वह टूट गया और अन्तर में विश्रान्ति ली, ऐसा हम मानते हैं। आहाहा! इतना विकल्प भी अविश्राम था। समझ में आया? **ऐसे श्रद्धे जाते हैं अर्थात् ऐसी हम श्रद्धा करते हैं।** लो! आहाहा!

इस प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रहशास्त्र की श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य देवविरचित) समयव्याख्या नाम की टीका में... पहले कहा न 'समय' **समयव्याख्या नाम की टीका में... समयव्याख्या नाम की टीका में नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्गप्रपंच...** अर्थात् विस्तार **वर्णन नाम का द्वितीय श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** लो!

अब, 'यह टीका शब्दों ने की है,... ऐ... यह टीका शब्दों ने की है। आहाहा! **अमृतचन्द्रसूरि ने नहीं' ऐसे अर्थ का एक अन्तिम श्लोक कहकर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव टीका की पूर्णाहुति करते हैं।** लो!

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वै-
र्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति
कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः।।

विकल्प में हम कहाँ आये हैं? हम तो अन्दर में हैं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान, राग में कहाँ से आवे? हम तो ज्ञान में हैं। आहाहा!

अब इसका क्या अर्थ करते होंगे यह? यह तो कुछ कर्तव्य ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह निर्मानरूप से कहते हैं, ऐसा कहते हैं। कलश टीका में कहा है न। राजमल टीका में कहा है। बड़े पुरुष हैं। बड़े पुरुष हैं तो ऐसा ही कहे न! परन्तु बड़े पुरुष कहते हैं, ऐसा है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बड़े पुरुष सत्य ही कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य अर्थात् क्या? कि हमने किया ही नहीं। इसका अर्थ यह है कि निर्मानी पुरुष थे। है न उसमें। कलश, कलश। यह शब्द अन्तिम उनका ही है न,

देखो! '**स्वशक्तिसंसूचित**' वह का वह है। वह की वह भाषा है। '**कृतेयं**' भाषा एक की एक है। ग्रन्थकर्ता का नाम अमृतचन्द्रसूरी है। उनका नाटक समयसार का करनापना नहीं। शब्दार्थ अलग है इसमें। यह शब्द है इसमें। है न?

'**अमृतचंद्रसूरिः किंचित कर्तव्यम न अस्ति एव**' ग्रन्थकर्ता का नाम अमृतचन्द्रसूरी है। उनका नाटक समयसार का कर्तापना न अस्ति। किंचित् न अस्ति, ऐसा शब्द चाहिए। नहीं, ऐसा नहीं। नाटक समयसार का कर्तापना नहीं। किंचित् कर्तव्य नहीं। वास्तव में तो ऐसा चाहिए। ऐसा अर्थ नहीं किया। इसमें अर्थ किया है। बराबर है। वस्तु का तत्त्व **अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व (-यथार्थस्वरूप) भलीभाँति कहा है...** किसने? वाणी ने। वाणी ने वस्तु का तत्त्व कहा है, हमने नहीं। वाणी में यह स्व-पर कथा करने की ताकत है। हम तो स्व-पर को जानने की सामर्थ्यवाले हैं। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे शब्दों ने यह व्याख्या की है। लो! कुछ कर्तव्य नहीं। लो! उसमें **अमृतचन्द्राचार्य का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** इसमें तो स्पष्ट शब्द डाला है। उसमें यह शब्द ढीला किया है थोड़ा सा। किंचित् अर्थात् नाटक समयसार का इतना ही किंचित् का अर्थ किया है। किंचित् अर्थात् नाटक समयसार का। किंचित् अर्थात् नाटक समयसार का, ऐसा। कर्तव्य न अस्ति। नाटक समयसार का मेरा कर्तव्य नहीं इतना, परन्तु यहाँ तो कहते हैं, हमारा किंचित् कर्तव्य नहीं। आहाहा! हम तो ज्ञान हैं। ज्ञान कहीं राग को करे? वाणी को करे? करे या नहीं?

मुमुक्षु : नहीं करे, प्रभु!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे क्या? तेरा बाप करता है न सब वहाँ।

मुमुक्षु : संकल्प-विकल्प करे प्रभु! किसी का भी करे नहीं। निर्विकल्प वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ ऐसा है कि नाटक समयसार ग्रन्थ की टीका के कर्ता अमृतचन्द्र नाम के आचार्य प्रगट हैं, तो भी महान हैं, बड़े हैं। संसार से विरक्त हैं। इतना वहाँ ढीला किया है, इसलिए लोगों को मिला रहता है। इसलिए ग्रन्थ करने का अभिमान नहीं करते। परन्तु कर सकते ही नहीं। करने का अभिमान क्या? कर सकते ही नहीं। प्रश्न ही कहाँ

है ? सेठी ! वाणी कर सकते नहीं। अनन्त परमाणु के स्कन्ध का एक अक्षर। कौन करे ? ऐसे अनन्त पदार्थ हैं परमाणु में, उसकी पर्याय में होते हैं। पर्याय आत्मा करे ?

कैसे हैं अमृतचन्द्रसूरी ? अभिमान नहीं करते, ऐसा। द्वादशांगसूत्र अनादि निधन है, किसी ने किया नहीं, ऐसा जानकर अपने को ग्रन्थ का कर्तापना नहीं माना। ऐसा वापस। शास्त्र भी अनादि है, ऐसा। और बड़े-महान हैं, इसलिए अहंकार नहीं करते। दर्शनसूत्र अनादिनिधन है, अनादि-अनन्त है। किसी ने किया हुआ नहीं। ऐसा जानकर अपने को ग्रन्थ का कर्तापना नहीं माना जिन्होंने, ऐसा है। ऐसा क्यों है ? कि '**समयस्य इयं व्याख्या शब्दे कृतेयं**' शुद्ध जीवस्वरूप की यह व्याख्या नाटक समयसार नाम ग्रन्थरूप व्याख्या '**शब्देकृता**' वचनात्मक ऐसी शब्दराशि द्वारा की गयी है। लो ! आत्मा से नहीं हुई। आहाहा ! बोले, करे और कहे कि हम बोलते नहीं। यह गजब ! वह कहे।

ग्रन्थकर्ता तो कहा। कैसी है शब्दराशि ? अब, '**स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वै**' शब्दों में है अर्थ सूचित करने की शक्ति। वह शब्दों में है अर्थ सूचित करने की शक्ति, आत्मा में नहीं है, आत्मा के कारण नहीं है। आहाहा ! बड़ा विवाद है उन रतनचन्दजी को और तुम्हारे। इनके गाँव के हैं न वे ? नहीं, किया है उन्होंने। किया है। स्वयं कहते हैं कि हम करते हैं, 'वोच्छामि' कहा। अरे ! वह तो भाषा है। करे कौन ? इनकार करते हैं यहाँ तो। शब्दों में है अर्थ सूचित करने की शक्ति, इसलिए प्रकाशमान हुआ है, शास्त्र। यह पंचास्तिकाय शब्दों से प्रकाशमान हुआ है। हमारे से नहीं। हम तो ज्ञान हैं।

जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप, ऐसी शब्दराशि है। लो ! समझ में आया ? क्योंकि हम तो स्वरूपगुप्त हैं। दर्शनसूत्र को उन्होंने किया नहीं, ऐसा जानकर स्वयं को मानकर वे ऐसे हैं। स्वरूपगुप्त की व्याख्या की। स्वरूपगुप्त है अर्थात् ? द्वादशांगसूत्र अनादिनिधन है, किसी ने किया नहीं, ऐसा जानकर अपने को ग्रन्थ का कर्तापना माना नहीं। ऐसा अर्थ किया है स्वरूपगुप्त का। यह बराबर अर्थ नहीं है। भाई ! समझ में आया ? ढीला अर्थ किया है, स्वरूपगुप्त का इतना अर्थ ! स्वरूप ऐसा कि वह तो वाणी वाणी से, द्वादशीवाणी है, अनादिनिधन है; इसलिए किसी ने की नहीं है, इसलिए ग्रन्थ का कर्तापना नहीं माना। इसलिए नहीं माना। परन्तु स्वरूपगुप्तस्य,

अर्थात् मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य हूँ। राग में आया नहीं और पर में आया नहीं और करना किसे? आहाहा! जरा सा व्यवहार इसमें डाला है। निमित्त को। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अपनी शक्ति से जिसने, अपनी शक्ति से अर्थात्? शब्दों के सामर्थ्य से यह बात, यह टीका हो गयी है। शब्दों के सामर्थ्य से यह टीका हुई है। हमारे बल से यह टीका हुई नहीं। आहाहा! तब यह बोलता कौन है? तेरा बाप—एक व्यक्ति सुनकर यहाँ से गया। एक यहाँ से सुनकर गया न, यहाँ कहते हैं पन्द्रह दिन अहमदाबाद में रहा, फिर पूछा एक को, महाराज! यह कौन बोलता है भाषा? तेरा बाप बोलता है यह? तू नहीं बोलता? जीव बोलता है या नहीं? ऐसा प्रश्न किया। यहाँ के सुननेवाले ऐसे प्रश्न कहीं करते हैं न फिर भटकते हैं। ऐसे को क्या होना?

यहाँ कहते हैं, अपनी शक्ति से जिन्होंने वस्तु का तत्त्व अर्थात् स्वरूप भले प्रकार से कहा है, ऐसा। '**संसूचित**' है न। '**संसूचित।**' संसूचित सम्यक् प्रकार से जैसा है, वैसा वाणी ने कहा है। वाणी ने जैसा है वैसा वाणी ने कहा है। आहाहा! हमने नहीं, हमने नहीं। कहते हैं। **ऐसे शब्दों ने यह समय की व्याख्या (अर्थसमय का व्याख्यान अथवा पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र की टीका) की है; स्वरूपगुप्त (-अमूर्तिक ज्ञानमात्र स्वरूप में गुप्त)...** भाषा देखो! यह अर्थ बराबर है। वह स्वरूपगुप्त अर्थात् द्वादशांग अनादि का है। बस, इतनी व्याख्या। इसका कोई कर्ता नहीं। परन्तु हम तो ज्ञानस्वरूप हैं। विकल्प भी कहाँ है उसमें? बोले कौन? बोले वह दूसरा (अर्थात्) जड़। आत्मा बोलता नहीं। आहाहा! आत्मा बिना बोला जाता होगा? हें, कमल!

मुमुक्षु : बोलना वह भाषावर्गणा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषावर्गणा है? अच्छा। भाषावर्गणा बोलती है, आत्मा नहीं। आत्मा जानता है। ऐसा कि व्यवहार। **स्वरूपगुप्त अमृतचन्द्रसूरि का (उसमें) किंचित् भी कर्तव्य नहीं है।** कुछ 'भी' कर्तव्य नहीं है। ऐसा है न? '**किंचित न किंचिदस्ति**' जरा भी रजकण की पर्याय का मैं कर्ता नहीं। आहाहा! कहो, पण्डितजी! बराबर होगा यह? करते हैं और कर्ता नहीं? करता नहीं। सुन न! भाई! उसके काल में वह परमाणु

की पर्याय, आहाहा! अनन्त परमाणु का स्कन्ध-शब्दवर्गणा इस प्रकार से उसे परिणमती है। उसे परिणमाने में आत्मा निमित्त हुआ, इसलिए कर्ता कहाँ से हो गया?

मुमुक्षु : ....अमृतचन्द्राचार्य शास्त्र के कर्ता नहीं, इसलिए मुझे दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुःख है। यह इसे दुःख है। बात भी सच्ची है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य नहीं करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे।

इस प्रकार (श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री पंचास्तिकायसंग्रह नामक समय की... शास्त्र की। समय है न मूल यहाँ तो। **(श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव-विरचित समयव्याख्या नाम की) टीका के...** अब अन्त में डाला भाई ने, श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह कृत गुजराती अनुवाद समाप्त हुआ। लो! मुश्किल से डाला फिर। यह हिम्मतभाई ने वास्तव में तो संस्कृत में से गुजराती (किया)। निमित्त से कहा जाता है, बाकी अक्षर तो अक्षर से हुए हैं। पंचास्तिकाय पूरा हुआ। लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)